सम्पूर्ण गांधी वाङ्मय

२९

(नवम्बर १९२५-फरवरी १९२६)

प्रकाशन विभाग

सूचना और प्रसारण मन्त्रालय

भूमिका

इस खण्डमें २२ नवम्बर, १९२५ से १० फरवरी, १९२६ तककी सामग्री आती है। खण्डका प्रारम्भ गांधीजीकी पुस्तक 'दक्षिण आफ्रिकाके सत्याग्रहका इतिहास' से प्रारम्भ होता है। यह पुस्तक क्रमशः 'नवजीवन' में छपी थी और उसकी आखिरी किस्त प्रकाशित हुई थी 'नवजीवन' के २२-११-१९२५ के अंकमें।[1] यह पुस्तक गांधीजीके उस महान् संघर्षके प्रारम्भ और उसकी प्रगतिको समझनेके लिए आधारभूत सामग्री प्रस्तुत करती है जिसको गांधीजीने उसकी समाप्तिके बहुत दिनों बाद शान्त भावसे चिन्तन करके समस्त सावधानीके साथ इस प्रकार लेखबद्ध किया; और इसमें उनका उद्देश्य यह रहा कि जो लोग सत्यके शोधकी प्रक्रिया और उसके अमलकी तफसीलमें दिलचस्पी रखते होंगे उनको इससे मदद मिलेगी। इस पुस्तकमें घटनाओंके विस्तृत वर्णन हैं; सम्बन्धित व्यक्तियोंके रेखाचित्र हैं; साथ ही उन विचारोंका भी दिग्दर्शन है (उदाहरणके लिए हिसाब-किताब रखनेके महत्त्वसे सम्बन्धित विचार, पृष्ठ ९५-९६) जो गांधीजीके व्यवहार-दर्शनकी शक्ति और सरलताको स्पष्ट करते हैं।

इस खण्डमें तीन महीनोंसे भी कम अवधिकी सामग्री समाहित है। खण्डके प्रारम्भमें उक्त पुस्तककी समाप्तिके बाद पहली ही बात जो आती है वह है गांधीजीका सात दिनका उपवास, जो उन्होंने आश्रमकी कुछ नैतिक त्रुटियोंके कारण किया था। उपवास समाप्त करनेके पहले १ दिसम्बरको उन्होंने उसके विषयमें विद्यार्थियोंके सामने भाषण दिया और फिर उसके बाद समाचारपत्रोंमें एक वक्तव्य भी प्रकाशित कराया। उसके बाद वे १० दिसम्बरको वर्धा पहुँचे, ११ दिनोंतक वहाँ आराम किया; २२ दिसम्बरको कानपुरके कांग्रेस अधिवेशनके लिए रवाना हो गये और २६ दिसम्बरको दक्षिण आफ्रिकासे सम्बन्धित प्रस्तावपर उन्होंने जोरदार शब्दोंमें अपनी बात रखी।

तीन जनवरीके 'नवजीवन' में गांधीजीने घोषित किया कि वे एक वर्षतक सार्वजनिक सेवासे विराम ले रहे हैं और इस अवधिमें आश्रममें ही रहेंगे। इस तरह दौरों आदिका कार्यक्रम रद हो गया; इस अवधिमें कोई विशेष घटनाएँ भी नहीं हुई और सार्वजनिक भाषण आदिके अवसर भी बहुत कम आये। २१ दिसम्बरको वर्धामें उन्होंने जो भाषण दिया था उसमें उन्होंने आश्रम-जीवनके सौन्दर्यका बड़े ही हृदय-स्पर्शी ढंगसे उल्लेख किया है।

इस खण्डमें दक्षिण आफ्रिकामें भारतीयोंकी समस्या प्रधान रूपसे सामने आती है। यह उपस्थित हुई थी डॉ० मलानके विधेयकके कारण, जिसके विषयमें गांधीजीने यह कहा था कि इसकी पंक्ति-पंक्तिमें रंग-द्वेषकी झलक है और यह १९१४ के गांधी-

१. इसी प्रकार गांधीजीकी **आत्मकथा** भी **नवजीवन**में २९-११-१९२५से और **यंग इंडिया**में ३-१२-१९२५ से क्रमशः प्रकाशित हुई थी। इसे **सम्पूर्ण गांधी वाङ्मय**के ३९ वें खण्डमें **नवजीवन**की आखिरी किस्तकी तिथि ३-२-१९२९ के अन्तर्गत लिया गया है।

स्मट्स समझौतेका स्पष्ट भंग है। "दक्षिण आफ्रिकाके भारतीय", "दक्षिण आफ्रिकाका शिष्टमण्डल" और "दक्षिण आफ्रिकाकी समस्या" शीर्षक लेखोंमें गांधीजीने रंग-भेदपर आधारित कानून बनानेकी समस्यापर विस्तारसे लिखा है। उक्त शीर्षकोंमें अन्तिम शीर्षक एक बहुत ही जोरदार और तर्कसम्मत लेख है और उसका स्वर एकदम आक्रोशहीन, संयत है। २८ जनवरीको इसी प्रश्नपर 'यंग इंडिया' में लिखते हुए गांधीजीने कहा: "यह विधेयक जिस सिद्धान्तपर आधारित है वह स्वयं अन्यायमूलक है। . . . १९१४ से आजतकका इतिहास यही बताता है कि भारतीयोंके अधिकारोंपर एकके बाद एक आक्रमण करना बन्द नहीं हुआ" (पृष्ठ ४२३)। ४ फरवरी, १९२६ को उन्होंने लिखा: "इस कानूनसे स्मट्स-गांधी समझौतेका सरासर भंग होता है" (पृष्ठ ४३२)।

गांधीजीने अपने नवम्बर १९२५ में किये गये उपवास और उसके उद्देश्योंके विषयमें समझाते हुए लिखा: "मैं सत्यका शोधक हूँ। मैं अपने प्रयोगोंको सर्वोत्तम तैयारीके साथ किये गये हिमालय आरोहण-अभियानसे भी कहीं अधिक महत्त्व देता हूँ। और परिणाम? यदि मेरी शोध वैज्ञानिक है तो प्रयत्न और परिणाम इन दोनोंकी कोई तुलना करना निरर्थक ही है। इसलिए, मुझे अपने ही मार्गपर चलने दीजिए। जिस दिन मैं अपने सूक्ष्म अन्तर्नादको सुनना बन्द कर दूँगा, उसी दिन मेरी उपयोगिता समाप्त हो जायेगी। . . . ईश्वरकी इच्छा, वह जैसी कुछ मुझे प्रतीत होती है, के अनुसार ही काम कर सकना-भर मेरे हाथमें है। फल देना तो उसीके हाथकी बात है। छोटी या बड़ी कोई भी बात हो, उसके लिए स्वयं कष्ट उठाना ही सत्याग्रहकी कुंजी है। . . . यदि मुझे भारतमें छोटे और गरीब लोगोंके दुःखोंको अपना दुःख समझना है और यदि मुझमें शक्ति है तो मुझे उन बच्चोंकी भूलोंको अपनी भूल समझना चाहिए, जिन बच्चोंकी देखरेखका भार मुझपर है। यह काम पूर्ण नम्रताके साथ करनेसे ही मैं ईश्वरका — सत्यका — साक्षात्कार कर सकूँगा" (पृष्ठ २७२-७४)।

'आसक्ति या आत्मत्याग' शीर्षकमें उन्होंने जनतासे अपने एकरूप होनेका वर्णन किया है और कहा है: "मेरे और जनताके बीच एक ऐसा सम्बन्ध है जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता, लेकिन जिसे वह और मैं दोनों ही महसूस करते हैं। मुझे जनताके बीच रहनेमें अपने जनार्दनके दर्शन होते हैं। जनता-जनार्दनके बीच रहनेसे ही मुझे अपना समस्त सन्तोष, आशा और शक्ति मिलती है। यदि पूरे ३० वर्ष पहले मैंने यह बन्धन दक्षिण आफ्रिकामें महसूस न किया होता तो मेरे लिए जिन्दगी भार-रूप हो जाती। लेकिन मैं यह जानता हूँ कि चाहे मैं आश्रममें रहूँ, चाहे जनताके बीच, मैं काम उसके लिए ही करता हूँ, उसके ही बारेमें सोचता हूँ और उसके ही लिए प्रार्थना करता हूँ। मैं जनताके लिए ही जीना चाहता हूँ और तभी मेरा जीना सार्थक है" (पृष्ठ ३६९)। कातना इस जीवन-सम्बन्धका एक प्रतीक था। "मेरे लिए चरखा देशके सबसे गरीब लोगोंके साथ समानता स्थापित करनेका प्रतीक है और उसपर प्रतिदिन सूत कातना उन गरीबों और अपने बीचके उस सम्बन्धको नये सिरेसे जोड़ना है। इस प्रकार समझनेपर वह मेरे लिए सदैव सौन्दर्य और आनन्दकी वस्तु है। मैं बिना

भोजनके रहना पसन्द करूँगा, किन्तु बिना चरखेके नहीं; और मैं कहूँगा कि तुम चरखेके इस महान् तात्पर्यको समझो" (पृष्ठ ४५०)।

खण्डमें संगृहीत अन्य महत्त्वपूर्ण सामग्रीमें सत्याग्रह आश्रमके उद्देश्योंको स्पष्ट करनेवाला न्यासपत्र (पृष्ठ ४२७-२८) और सौ से भी अधिक वे विविध व्यक्तिगत पत्र हैं जिनसे हमें गांधीजीके मनकी अन्तरंग झलक, समर्पणकी भावना और पीड़ाका अनुमान होता है। उदाहरणके लिए उन्होंने श्री अन्सारीको लिखे पत्रमें कहा: "इस समय जो आडम्बर और असत्य हमें घेरे है, उससे मैं बेहद त्रस्त हूँ। इसलिए खादी और अस्पृश्यताके छोटेसे काम तथा जो ढंग लोगोंको नापसन्द है उस ढंगसे गोरक्षाके कामके अलावा किसी भी अन्य कामके लिए मुझे भूल ही जायें। मैं स्वीकार करता हूँ कि किसी भी अन्य समस्याको सफलतापूर्वक सुलझानेमें मैं सर्वथा असमर्थ हूँ" (पृष्ठ २६६)। निराशाके स्वरके साथ दूसरी तरफ हमें दूसरोंके प्रति उनके मनकी चिन्ता, कोमलता और स्नेहकी झांकी मिलती है। उदाहरणके लिए सतीशचन्द्र दासगुप्तको लिखे पत्रमें उन्होंने कहा है: "मैं आपसे इस बातका वचन चाहता हूँ कि खादीका कुछ भी क्यों न हो, आप उसके बारेमें क्षुब्ध नहीं होंगे। हम कौन होते हैं? यदि वह अच्छी चीज है तो अवश्य ही ईश्वर स्वयं उसे समृद्ध बनायेगा। हम तो निमित्त-मात्र हैं। यदि हम अपनेको शुद्ध रखते रहें और पवित्रताके लिए सदा द्वार खुले रखें तो हमें जो करना चाहिए था वह हम कर चुके। हमें अपनी लगाम उसके हाथमें दे देनी चाहिए, वह जैसा चलाये वैसे हमें चलना चाहिए" (पृष्ठ ४३९)।

गांधीजीने धर्मके विषयमें अनेक स्थानोंपर बहुत कुछ कहा है। उनका निम्न-लिखित कथन अनेक दृष्टियोंसे अत्यन्त महत्त्वपूर्ण माना जायेगा "मैं संसारके प्रेमका भूखा हूँ। अनेकान्तवादके मूलमें अहिंसा और सत्य दोनों हैं।... वह एक है, अनेक है; अणुसे भी छोटा है और हिमालयसे भी बड़ा है; समुद्रके एक बिन्दुमें भी समा सकता है और सात समुद्र मिलकर भी उसे अपने भीतर समाविष्ट न कर सकें, इतना विशाल है वह! उसे जाननेके लिए बुद्धिका उपयोग ही क्या हो सकता है? वह तो बुद्धिसे परे है। . . . वह तो दयालु है, रहीम है, रहमान है। वह कोई मिट्टीका बना हुआ राजा तो है नहीं कि उसे अपनी सत्ता स्वीकार करानेके लिए सिपाही रखने पड़ें। वह तो हम लोगोंको स्वतन्त्रता देता है, फिर भी केवल अपनी दयाके बलसे हम लोगोंका शासन करता है। लेकिन हम लोगोंमें से यदि कोई उसका शासन नहीं मानता तो भी वह कहता है: 'खुशीसे मेरा शासन न मानो; मेरा सूर्य तो तुम्हें भी रोशनी देगा, मेरा मेघ तो तुम्हारे लिए भी पानी बरसायेगा। मुझे अपनी सत्ता चलानेके लिए तुमपर बलात्कार करनेकी कोई आवश्यकता नहीं'" (पृष्ठ ४०२–३)।

आभार

प्रस्तुत खण्डकी सामग्रीके लिए हम, साबरमती आश्रम संरक्षक तथा स्मारक न्यास और संग्रहालय; नवजीवन ट्रस्ट और गुजरात विद्यापीठ ग्रन्थालय, अहमदाबाद; गांधी स्मारक निधि व संग्रहालय, नई दिल्ली; राष्ट्रीय अभिलेखागार (नेशनल आर्काइव्ज ऑफ इंडिया), नई दिल्ली; मीराबहन, गार्डेन, आस्ट्रिया; श्री आर० एन० पटेल; श्री काशीनाथ केलकर, पूना; श्री घनश्यामदास बिड़ला, कलकत्ता; श्री नारणदास गांधी, राजकोट; श्री वालजी गोविन्दजी देसाई, पूना; श्री शान्तिकुमार मोरारजी, बम्बई; श्री शिवाभाई पटेल; श्री हरिभाऊ उपाध्याय; श्रीमती वसुमती पण्डित, सूरत; श्रीमती शारदाबहन शाह, वढ़वान; तथा 'गांधीजीकी छत्रछायामें', 'दक्षिण आफ्रिकाना सत्याग्रहनो इतिहास', 'पाँचवें पुत्रको बापूके आशीर्वाद', 'ए बंच ऑफ ओल्ड लेटर्स', 'बापुना पत्रो – ४: मणिबहेन पटेलने', 'बापुनी प्रसादी', 'माई डियर चाइल्ड', 'मेजीशियन आफ मेजीशियन्स', 'सत्याग्रह इन साउथ आफ्रिका', नामक पुस्तकोंके प्रकाशकों और निम्नलिखित समाचारपत्रों तथा पत्रिकाओंके आभारी हैं: 'अमृतबाजार पत्रिका', 'कुमार', 'गुजराती', 'नवजीवन', 'बॉम्बे क्रॉनिकल', 'यंग इंडिया', 'लीडर', 'साबरमती', 'हिन्दुस्तान टाइम्स' और 'हिन्दू'।

अनुसन्धान और सन्दर्भ सम्बन्धी सुविधाओंके लिए अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी पुस्तकालय, इंडियन कौंसिल ऑफ वर्ल्ड अफेयर्स, पुस्तकालय, सूचना एवं प्रसारण मन्त्रालयका अनुसन्धान एवं सन्दर्भ विभाग तथा श्री प्यारेलाल नैयर, नई दिल्ली और कागजातकी फोटो-नकल तैयार करनेमें सहायताके लिए सूचना एवं प्रसारण मन्त्रालयका फोटो-विभाग, नई दिल्ली हमारे धन्यवादके पात्र हैं।

पाठकोंको सूचना

हिन्दीकी जो सामग्री हमें गांधीजीके स्वाक्षरोंमें मिली है, उसे अविकल रूपमें दिया गया है। किन्तु दूसरों द्वारा सम्पादित उनके भाषण अथवा लेख आदिमें हिज्जोंकी स्पष्ट भूलें सुधार दी गई हैं।

अंग्रेजी और गुजरातीसे अनुवाद करते समय उसे यथासम्भव मूलके समीप रखनेका पूरा प्रयत्न किया गया है, किन्तु साथ ही भाषाको सुपाठ्य बनानेका भी पूरा ध्यान रखा गया है। जो अनुवाद हमें प्राप्त हो सके हैं हमने उनका मूलसे मिलान और संशोधन करनेके बाद उपयोग किया है। नामोंको सामान्य उच्चारणके अनुसार ही लिखनेकी नीतिका पालन किया गया है। जिन नामोंके उच्चारणमें संशय था उनको वैसा ही लिखा गया है जैसा गांधीजीने अपने गुजराती लेखोंमें लिखा है।

मूल सामग्रीके बीच चौकोर कोष्ठकोंमें दिये गये अंश सम्पादकीय हैं। गांधीजीने किसी लेख, भाषण आदिका जो अंश मूल रूपमें उद्धृत किया है वह हाशिया छोड़कर गहरी स्याहीमें छापा गया है। भाषणोंकी परोक्ष रिपोर्ट तथा वे शब्द जो गांधीजीके कहे हुए नहीं हैं, बिना हाशिया छोड़े गहरी स्याहीमें छापे गये हैं। भाषणों और भेंटकी रिपोर्टोंके उन अंशोंमें जो गांधीजीके नहीं हैं, कुछ परिवर्तन किया गया है और कहीं-कहीं कुछ छोड़ भी दिया गया है।

शीर्षककी लेखन-तिथि दायें कोनेमें ऊपर दे दी गई है; जहाँ वह उपलब्ध नहीं है वहाँ अनुमानसे निश्चित तिथि चौकोर कोष्ठकोंमें दी गई है और आवश्यक होनेपर उसका कारण स्पष्ट कर दिया गया है। जिन पत्रोंमें केवल मास या वर्षका उल्लेख है उन्हें आवश्यकतानुसार मास या वर्षके अन्तमें रखा गया है। शीर्षकके अन्तमें साधन-सूत्रके साथ दी गई तिथि प्रकाशनकी है। गांधीजीकी सम्पादकीय टिप्पणियाँ और लेख, जहाँ उनकी लेखन-तिथि उपलब्ध है अथवा जहाँ किसी दृढ़ आधारपर उसका अनुमान किया जा सका है, वहाँ लेखन-तिथिके अनुसार और जहाँ ऐसा सम्भव नहीं हुआ है वहाँ उनकी प्रकाशन-तिथिके अनुसार दिये गये हैं।

साधन-सूत्रोंमें 'एस० एन०' संकेत साबरमती संग्रहालय, अहमदाबादमें उपलब्ध सामग्रीका, 'जी० एन०' गांधी स्मारक निधि और संग्रहालय, नई दिल्लीमें उपलब्ध कागज-पत्रोंका और 'सी० डब्ल्यू०' 'सम्पूर्ण गांधी वाङ्मय' (कलेक्टेड वर्क्स ऑफ महात्मा गांधी) द्वारा संग्रहीत पत्रोंका सूचक है।

सामग्रीकी पृष्ठभूमिका परिचय देनेके लिए मूलसे सम्बद्ध कुछ परिशिष्ट दिये गये हैं। अन्तमें साधन-सूत्रोंकी सूची और इस खण्डसे सम्बन्धित कालकी तारीखवार घटनाएँ दी गई हैं।

विषय-सूची

दक्षिण आफ्रिकाके सत्याग्रहका इतिहास

मगनलाल खु० गांधीको

दक्षिण आफ्रिकाके सत्याग्रहका इतिहास

विषय-सूची

दक्षिण आफ्रिकाके सत्याग्रहका इतिहास[1]

प्रस्तावना

(१)

दक्षिण आफ्रिकामें हिन्दुस्तानियोंकी सत्याग्रहकी लड़ाई आठ वरस चली। सत्याग्रह शब्दका अनुसन्धान और प्रयोग इसी लड़ाईके सम्बन्धमें किया गया था। बहुत समयसे मेरी यह इच्छा थी कि इस लड़ाईका इतिहास मैं स्वयं लिखूं। उसका कुछ अंश तो लिख भी मैं ही सकता हूँ, क्योंकि कौन-सा कार्य किस उद्देश्यसे किया गया था यह बात तो संघर्षका संचालक ही जान सकता है। फिर बड़े पैमानेपर राजनीतिक क्षेत्रमें यह प्रयोग पहला ही था, इसलिए इस सत्याग्रहके सिद्धान्तका विकास किस तरह हुआ, यह जान सकना किसी भी समय आवश्यक माना जायेगा।

किन्तु इस समय तो हिन्दुस्तानमें सत्याग्रहके लिए विशाल क्षेत्र है। यहाँ इसका अनिवार्य क्रम वीरमगाँवकी चुँगीकी छोटी-सी लड़ाईसे[2] आरम्भ हुआ है।

वीरमगाँवकी चुँगीकी लड़ाईमें निमित्त थे बढवानके साधुचरित्र परोपकारी दर्जी, भाई मोतीलाल। बात १९१५ की है। मैं विलायतसे लौटकर आया था और काठियावाड़ जा रहा था। मैं तीसरे दर्जेके डिब्बेमें बैठा था। मोतीलाल बढवान स्टेशनपर अपने साथियोंके छोटेसे दलको लेकर आये थे। उन्होंने वीरमगाँवके सम्बन्धमें कुछ बातें बताई और फिर मुझसे कहा:

'आप इस दुःखको दूर करनेका उपाय करें। आपने काठियावाड़में जन्म लिया है, उसे आप सार्थक करें।' उनकी आँखोंमें दृढ़ता और करुणा दोनों थीं।

मैंने पूछा: आप जेल जानेके लिए तैयार हैं?

उन्होंने तुरन्त उत्तर दिया: हम फाँसीपर चढ़नेके लिए भी तैयार हैं।

१. गांधीजीने **दक्षिण आफ्रिकाना सत्याग्रहनो इतिहास** २६ नवम्बर, १९२३ को जब वे यरवदा जेलमें थे, लिखना शुरू किया। देखिए खण्ड २३। ५ फरवरी, १९२४ को रिहा होनेके समयतक उन्होंने प्रथम ३० अध्याय लिख डाले थे। यह इतिहास लेखमालाके रूपमें १३ अप्रैल, १९२४ से २२ नवम्बर १९२५ तक **नवजीवन**में प्रकाशित हुआ। पुस्तकके रूपमें इसके दो खण्ड क्रमशः १९२४ और १९२५ में छपे। वालजी देसाई द्वारा किये गये अंग्रेजी अनुवादका प्रथम संस्करण अपेक्षित संशोधनोंके साथ (देखिए प्राक्कथन) एस० गणेशन, मद्रासने १९२८ में और द्वितीय और तृतीय संस्करण नवजीवन प्रकाशन मन्दिर, अहमदाबादने १९५० और १९६१ में प्रकाशित किया।

यह अनुवाद मूल गुजराती पाठ और अंग्रेजी पाठ, जैसा कि वह नवजीवन प्रकाशन मन्दिरके तृतीय संस्करणमें उपलब्ध है, के मिलानके बाद आवश्यक संशोधनोंके साथ किया गया है।

२. काठियावाड़से ब्रिटिश भारतकी हदमें आनेवाली कुछ वस्तुओंपर वीरमगाँवकी सीमापर चुँगी ली जाती थी। नवम्बर १९१० में इसे रद कर दिया गया। देखिए खण्ड १३ व १४ तथा **आत्मकथा,** भाग ५, अध्याय ३।

मैंने कहा: मेरे लिए तो आप जेल जायें इतना ही काफी है। किन्तु यह ध्यान रखें कि वचनभंग न हो।

मोतीलालने कहा: इसे तो अनुभव सिद्ध करेगा।

मैंने राजकोट पहुँचकर इस सम्बन्धमें अधिक विगत प्राप्त की और सरकारसे पत्र-व्यवहार आरम्भ किया। मैंने बगसरा और अन्य स्थानोंमें भाषण देते हुए लोगोंको यह सलाह दी कि यदि वीरमगाँवकी चुँगीके सम्बन्धमें सत्याग्रह करना पड़े तो वे उसके लिए तैयार रहें। मेरे इन भाषणोंकी रिपोर्ट सरकारकी वफादार खुफिया पुलिसने सरकारी दफ्तरमें दी। रिपोर्ट पहुँचानेवालोंने इस तरह सरकारकी सेवाके साथ-साथ अनजाने राष्ट्रकी भी सेवा की। अन्तमें लॉर्ड चैम्सफोर्डसे इस सम्बन्धमें बात-चीत हुई, उसमें उन्होंने चुँगीको रद करनेका वचन दिया और उसको पूरा किया। मैं जानता हूँ कि इस सम्बन्धमें दूसरे लोगोंने भी उद्योग किया था; किन्तु मेरा दृढ़ मत है कि इस प्रश्नको लेकर सत्याग्रह किये जानेकी सम्भावना होनेसे ही चुँगी रद की गई थी।

वीरमगाँवकी चुँगीके बाद आया गिरमिटका कानून[1]। इस कानूनको रद करवानेके लिए बहुत उद्योग किया गया था। इस बातको लेकर खासा सार्वजनिक आन्दोलन भी किया गया था। बम्बईकी सभामें गिरमिट प्रथाको रद करनेकी तारीख ३१ जुलाई, १९१७ निश्चित की गई थी। यह तारीख कैसे निश्चित की गई थी इसका इतिहास यहाँ नहीं दिया जा सकता। इस लड़ाईके सम्बन्धमें पहले बहनोंका एक शिष्टमण्डल वाइसरायसे मिलने गया था। इस सम्बन्धमें खास कोशिश किसने की थी मैं यहाँ यह लिखे बिना नहीं रह सकता। विशेष प्रयत्न इसमें चिरस्मरणीय बहन जाईजी पेटिटने किया था। इस लड़ाईमें भी सत्याग्रहकी तैयारी करनेसे ही जीत मिल गई थी। किन्तु इस सम्बन्धमें सार्वजनिक आन्दोलन करना जरूरी हुआ था, यह अन्तर याद रखने योग्य है। गिरमिट प्रथाका बन्द किया जाना वीरमगाँवकी चुँगी रद करनेकी अपेक्षा अधिक महत्वपूर्ण था। वाइसराय लॉर्ड चैम्सफोर्डने रौलट कानून[2] बनानेके बाद भूलें करनेमें कोई कमी नहीं की। फिर भी वे एक समझदार वाइसराय थे, यह मुझे आज भी लगता है। किन्तु अन्ततक सिविल सर्विसके स्थायी अधिकारियोंके पंजेसे कौन वाइसराय बचा रह सकता है?

तीसरी लड़ाई थी चम्पारन की।[3] इसका ब्यौरेवार इतिहास राजेन्द्रबाबूने लिखा है। इसमें सत्याग्रह करना पड़ा। यहाँ केवल तैयारी करना ही काफी नहीं रहा क्योंकि यहाँ विरोधी पक्षका स्वार्थ इतना बड़ा था! लोगोंने चम्पारनमें कितनी शान्ति रखी, यह बात ध्यान देने योग्य है। सभी नेताओंने मनसा, वाचा, कर्मणा पूरी शान्ति रखी,

१. देखिए खण्ड १३।

२. १८ मार्च, १९१९ को पारित। देखिए खण्ड १५, पृष्ठ ११३-१२१ और खण्ड १७, पृष्ठ १५५-१७०।

३. देखिए *आत्मकथा*, भाग ५, अध्याय १२; तथा खण्ड १३।

इस बातका साक्षी मैं स्वयं हूँ। तभी तो यह जमी-जमाई बुराई छः महीनेमें ही समाप्त हो गई।[1]

चौथी लड़ाई थी अहमदाबादके मिल-मजदूरोंकी।[2] इस लड़ाईका इतिहास गुजरात भली-भाँति जानता है। यहाँ मजदूरोंने कैसी शान्ति रखी! नेताओंके सम्बन्धमें तो मुझे कहना ही क्या है? फिर भी मैंने इस लड़ाईमें जो जीत हुई उसे सदोष माना है, क्योंकि मजदूरोंसे उनकी प्रतिज्ञाको पूरा करनेके लिए मैंने जो उपवास किया था उससे मिल-मालिकोंपर कुछ दबाव पड़ा था। उनमें और मुझमें जो स्नेह था उसके कारण उनपर मेरे उपवासका प्रभाव होना अवश्यम्भावी था। इसके बावजूद इस लड़ाईका सार स्पष्ट है। यदि मजदूर शान्तिसे दृढ़ रहें तो उनकी जीत अवश्य होती है और वे मालिकोंके मनको जीत लेते हैं। किन्तु ये मजदूर मालिकोंके मनको नहीं जीत सके, क्योंकि वे मन, वचन, कर्मसे निर्दोष — शान्त — रहे, यह नहीं कहा जा सकता। वे कर्मणा शान्त रहे यह कहना भी ज्यादा ही होगा।

पाँचवीं लड़ाई थी खेड़ाकी।[3] इसमें सभी नेताओंने पूर्ण सत्यका पालन किया था, यह नहीं कहा जा सकता। उन्होंने शान्ति तो अवश्य रखी थी। किसान वर्गकी शान्ति मजदूरों-जैसी केवल कर्मणा शान्ति ही थी। इसलिए केवल मानरक्षा ही हुई। लोगोंमें भारी जागृति भी हुई। किन्तु खेड़ाके लोगोंने शान्तिका पाठ पूरा नहीं पढ़ा; मजदूरोंने शान्तिका शुद्ध स्वरूप नहीं समझा; इसलिए जब रौलट कानूनके विरुद्ध सत्याग्रह गया किया तो लोगोंको कष्ट सहने पड़े, मुझे अपनी हिमालय-सी बड़ी भूल स्वीकार करनी पड़ी, स्वयं उपवास करना पड़ा और दूसरोंसे उपवास करवाना पड़ा।

छठी लड़ाई रौलट कानूनके विरुद्ध हुई। इस लड़ाईमें हममें जो दोष थे वे स्पष्ट उभर आये। किन्तु हमारा मुख्य आधार सच्चा था। मैंने अपने सब दोष स्वीकार किये और उनका प्रायश्चित किया। रौलट कानूनपर अमल तो कभी नहीं किया जा सकता था और अन्तमें सरकारने वह काला कानून रद भी कर दिया। हमने इस लड़ाईसे बहुत बड़ा पाठ सीखा।

सातवीं लड़ाई खिलाफत और पंजाबके अन्यायोंके निराकरण और स्वराज्यकी प्राप्ति की है। यह इस समय चल रही है। मेरा अटल विश्वास है कि यदि इस लड़ाईमें एक सत्याग्रही भी दृढ़ रहेगा तो हम अवश्य जीतेंगे।

किन्तु वर्तमान संघर्ष महाभारत है। इस लड़ाईकी तैयारी किस तरह अपने-आप होती चली गई उसका क्रम मैं बता चुका हूँ। वीरमगाँवकी चुँगीकी लड़ाईके वक्त मुझे क्या पता था कि दूसरी लड़ाइयाँ भी लड़नी पड़ेंगी। और वीरमगाँवकी लड़ाईके सम्बन्धमें मुझे दक्षिण आफ्रिकामें क्या पता था? सत्याग्रहकी यही खूबी है। वह हमारे पास अपने-आप आता है; हमें उसको खोजनेके लिए कहीं जाना नहीं पड़ता।

१. चम्पारन कृषीय जाँच समितिकी जाँचके फलस्वरूप १९१७ में चम्पारन कृषीय विधेयक पारित कर दिया गया था। देखिए खण्ड १३, पृष्ठ ६२०-२२।

२. देखिए खण्ड १४; तथा महादेव देसाई द्वारा लिखित एक धर्म युद्ध; नवजीवन प्रकाशन मंदिर, अहमदाबाद।

३. देखिए खण्ड १४।

सत्याग्रहकी यह खूबी उसके सिद्धान्तमें ही निहित है। जहाँ छिपा हुआ कुछ नहीं है, जिसमें कोई चालाकी नहीं करनी पड़ती और जिसमें असत्य तो आ ही नहीं सकता, ऐसा यह धर्मयुद्ध अनायास ही प्राप्त होता है और धर्मशील व्यक्ति उसके लिए सदा कटिबद्ध ही रहता है। जिसकी योजना पहलेसे करनी पड़े, वह धर्मयुद्ध नहीं। धर्मयुद्धका संयोजक और संचालक तो ईश्वर है। वह युद्ध ईश्वरके नामपर ही चल सकता है और उसमें ईश्वर तभी सहायता करता है जब सत्याग्रहीके सारे आधार हिल जाते हैं, वह निर्बल हो जाता है और उसके चारों ओर अन्धेरा छा जाता है। ईश्वर तभी सहायता करता है जब मनुष्य अपने-आपको एक रज-कणसे भी तुच्छ मानता है। राम निर्बलको ही बल देता है।

इस सत्यका अनुभव तो हमें अभी होना शेष है; इसीलिए मैं यह मानता हूँ कि 'दक्षिण आफ्रिकाके सत्याग्रहका इतिहास' हमारे लिए सहायक है।

पाठक देखेंगे कि वर्तमान लड़ाईमें हमें जो अनुभव हुए हैं उनसे मिलते-जुलते अनुभव दक्षिण आफ्रिकामें भी हुए थे। हम दक्षिण आफ्रिकाके सत्याग्रहके इतिहाससे यह भी जानेंगे कि हमारी इस लड़ाईमें अभीतक तो निराश होनेका एक भी कारण नहीं है। इसमें जीतनेके लिए केवल इतना ही आवश्यक है कि हम अपनी योजनापर दृढ़ बने रहें।

मैं इस प्रस्तावनाको जुहूमें बैठा हुआ लिख रहा हूँ। इस इतिहासके ३० अध्याय मैंने यरवदा जेलमें लिखे थे। मैं उनको बोलता गया था और भाई इन्दुलाल याज्ञिक उनको लिखते गये थे। शेष अध्याय अब लिखना चाहता हूँ। मेरे पास जेलमें सहायताके लिए पुस्तकें न थीं। मैं यहाँ भी उन्हें इकट्ठा नहीं करना चाहता। ब्यौरेवार इतिहास लिखनेका मुझे अवकाश नहीं है; और वैसा उत्साह अथवा इच्छा भी नहीं है। मैं इतना ही चाहता हूँ कि यह इतिहास वर्तमान संघर्षमें सहायक बन सके और जो साहित्यिक इस इतिहासको फुर्सतसे ब्यौरेवार लिखना चाहें इससे उनका मार्गदर्शन हो। यद्यपि मैंने यह इतिहास बिना किसी पुस्तककी सहायताके लिखा है तो भी मेरी प्रार्थना यह है कि कोई ऐसा न समझे कि इसमें दिया गया कोई तथ्य ठीक नहीं है अथवा इसमें कहीं अत्युक्ति हुई है।

मो० क० गांधी

जुहू[1]
सम्वत् १९८०, फाल्गुन बदी १३,
२ अप्रैल, १९२४।

(२)

पाठक जानते हैं कि मैं उपवास[2] और दूसरे कारणोंसे दक्षिण आफ्रिकाके सत्याग्रहके इतिहासको लिखनेका काम जारी नहीं रख सका था। उसे मैं इस अंकसे फिर शुरू कर रहा हूँ। मुझे आशा है कि मैं इसको अब निर्विघ्न पूरा कर सकूँगा।

१. मूलमें यहाँ बुधवार लिखा है।
२. १७-९-१९२४ से ८-१०-१९२४ तक २१ दिनका उपवास; देखिए खण्ड २५।

इस इतिहासकी बातें सोचता हूँ तो देखता हूँ कि आजकी स्थितिमें एक भी बात ऐसी नहीं है जिसका अनुभव मुझे छोटे पैमानेपर दक्षिण आफ्रिकामें न हुआ हो। वहाँ आरम्भमें ऐसा ही उत्साह, ऐसी ही एकता और ऐसी ही दृढ़ता थी; मध्यमें ऐसी ही निराशा, ऐसी ही उपेक्षा और ऐसे ही आपसी झगड़े और द्वेष आदि थे, फिर भी मुट्ठी-भर लोगोंमें अविचल श्रद्धा, दृढ़ता, त्याग-भावना और सहिष्णुता थी और उसी प्रकार अनेक प्रकारकी अपेक्षित और अनपेक्षित कठिनाइयाँ थीं। हिन्दुस्तानकी लड़ाईका आखरी दौर अभी बाकी है। मुझे आशा है कि आखिरी दौरमें जैसी स्थिति-का अनुभव मुझे दक्षिण आफ्रिकामें हुआ था वैसा ही यहाँ भी होगा। आगे दक्षिण आफ्रिकाकी लड़ाईका आखिरी दौर पाठकके सामने आयेगा और वे देखेंगे कि उसमें किस तरह बिना माँगे सहायता मिली, लोगोंमें किस तरह सहज ही उत्साह उमड़ उठा और अन्तमें किस तरह हिन्दुस्तानियोंकी पूरी-पूरी जीत हुई।

जैसा दक्षिण आफ्रिकामें हुआ वैसा ही यहाँ भी होगा ऐसा मेरा दृढ़ विश्वास है, क्योंकि तपश्चर्यामें, सत्यमें और अहिंसामें मेरी अटल श्रद्धा है। इस बातमें मेरा अक्षरशः विश्वास है कि सत्यसेवीके सम्मुख समस्त संसारकी ऋद्धियाँ आ खड़ी होती हैं और उसको ईश्वरका साक्षात्कार होता है। अहिंसाके सान्निध्यमें वैरभाव टिका नहीं रह सकता, इस बातको मैं भी अक्षरशः सत्य मानता हूँ। कष्ट सहन करनेवालोंके लिए कुछ भी अशक्य नहीं हो सकता, मैं इस सूत्रका उपासक हूँ। कुछ लोक-सेवकोंमें मैं इन तीनों बातोंका संयोग देखता हूँ। ऐसे लोगोंकी साधना निष्फल जाती ही नहीं है, यह मेरा निरपवाद अनुभव है।

किन्तु कोई कह सकता है कि दक्षिण आफ्रिकाकी पूरी-पूरी जीतका इतना ही अर्थ तो निकला कि हिन्दुस्तानी जिस हालतमें थे उस हालतमें वहाँ बने रहे। कहना पड़ेगा कि जो ऐसा कहता है, उसे कुछ मालूम नहीं है। यदि दक्षिण आफ्रिकाकी लड़ाई न लड़ी गई होती तो आज दक्षिण आफ्रिकासे ही नहीं, वल्कि अंग्रेजोंके सभी उपनिवेशोंसे हिन्दुस्तानियोंके पैर उखड़ गये होते और किसीके कानपर जूँतक न रेंगती। किन्तु यह उत्तर पर्याप्त नहीं है; सन्तोषजनक भी नहीं है। यह भी कहा जा सकता है कि यदि सत्याग्रह न किया जाता और समझाने-बुझानेसे जितना काम लिया जा सकता उतना लेकर बैठ जाते तो जैसी स्थिति आज है वैसी न होती। यद्यपि ऐसा कहना निरर्थक है, फिर भी जहाँ केवल तर्क उठाने और अटकल लगानेकी बात हो वहाँ किसका तर्क अथवा अनुमान सर्वश्रेष्ठ है यह कौन कह सकता है? अनुमान लगानेका अधिकार तो सभीको है। किन्तु यह तो अकाट्य बात है कि जो वस्तु जिस साधनसे प्राप्त की जाती है उसी साधनसे उसे कायम रखा जा सकता है।

"काबे अर्जुन लूटियो, वही धनुष वही बाण।"

अर्जुनने युद्धमें शिवको हराया था और कौरवोंके गर्वको नष्ट किया था, किन्तु सारथीके रूपमें कृष्णके न रहनेपर वही अर्जुन गाण्डीव धनुषके रहते हुए भी लुटेरोंके दलसे पार न पा सका। यही बात दक्षिण आफ्रिकाके हिन्दुस्तानियोंपर भी लागू होती है। अभी तो वे लड़ ही रहे हैं। किन्तु जिस सत्याग्रहसे उन्होंने लड़ाई जीती थी

यदि उसे उन्होंने छोड़ दिया होगा तो वे आखिरकार बाजी हार जायेंगे। सत्याग्रह उनका सारथी था और आज भी यही सारथी उनका त्राण कर सकता है।

मोहनदास करमचन्द गांधी

नवजीवन, ५-७-१९२५

प्राक्कथन[1]

श्री वालजी देसाई द्वारा किये गये इस अनुवादका संशोधन मैंने स्वयं किया है। मैं पाठकोंको विश्वास दिलाता हूँ कि अनुवादक मूल गुजरातीके भावोंको पूरी ईमानदारीके साथ उतार पानेमें समर्थ हुआ है। मूल पुस्तक स्मृतिके आधारपर लिखी गई थी। उसके कुछ अध्याय यरवदा जेलमें और कुछ जेलसे अवधिके पहले छूटनेपर लिखे गये थे। अनुवादक श्री वालजी इस बातको जानते थे इसलिए उन्होंने 'इंडियन ओपिनियन'की फाइलें अच्छी तरह पढ़ डालीं और उन्हें जहाँ-कहीं कोई चूक दिखाई दी, उसे सुधारनेमें संकोच नहीं किया। मुझे प्रसन्नता है कि कहीं कोई बड़ी भूल नहीं रहने पाई है पाठकोंको भी इससे प्रसन्नता होगी। पाठकोंसे मैं यह भी कह दूँ कि जो पाठक आजकल 'सत्यना प्रयोगो'की साप्ताहिक लेखमाला पढ़ रहे हैं यदि वे सत्यकी शोधकी सविस्तार जानकारी चाहते हैं तो उन्हें सत्याग्रह सम्बन्धी इन अध्यायोंको भी अवश्य पढ़ना चाहिए

मो० क० गांधी

सावरमती
२६ अप्रैल, १९२८

अध्याय १

भूगोल

आफ्रिका संसारके बड़ेसे-बड़े भूखण्डमें से है। हिन्दुस्तान भी एक बड़ा भूखण्ड है, फिर भी क्षेत्रफलकी दृष्टिसे देखें तो आफ्रिकामें हिन्दुस्तान-जैसे चार या पाँच देश समा जा सकते हैं। दक्षिण आफ्रिका इस भूखण्डका ठेठ दक्षिणी भाग है। हिन्दुस्तानकी तरह आफ्रिका भी प्रायःद्वीप है और उसका बहुत-सा भाग समुद्रसे घिरा हुआ है। आफ्रिकाके सम्बन्धमें आम तौरपर लोगोंकी यह धारणा है कि वहाँ गरमी बड़ी जबर्दस्त पड़ती है और एक तरहसे यह बात सच भी है। भूमध्य रेखा आफ्रिकाके बीचों-बीचसे गुजरती है। भूमध्य रेखाके आसपास कितनी गरमी पड़ती है, हिन्दुस्तानमें रहनेवाले लोग इसकी कल्पना नहीं कर सकते। हम हिन्दुस्तानके धुर दक्षिणमें जितनी गरमी अनुभव करते हैं उससे भूमध्य रेखाके पासकी गरमीकी थोड़ी-बहुत कल्पना की जा सकती है। किन्तु दक्षिण आफ्रिकामें वैसी तेज गरमी नहीं पड़ती; क्योंकि वह

१. पुस्तकके अंग्रेजी अनुवादकी भूमिकासे।

भूमध्य रेखासे बहुत दूर है। दक्षिण आफ्रिकाके अधिकांश भागोंकी जलवायु बहुत अच्छी और इतनी सम है कि वहाँ यूरोपीय जातियाँ मजेमें रह सकती हैं। उनके लिए हिन्दुस्तानमें बसना लगभग असम्भव है। दक्षिण आफ्रिकामें तिब्बत अथवा कश्मीर-जैसे काफी ऊँचे-ऊँचे प्रदेश भी हैं। अलबत्ता वे तिब्बत अथवा कश्मीर-जैसे दससे चौदह हजार फुटतक ऊँचे नहीं हैं। इसलिए उनकी जलवायु सूखी है और ठंड भी वहाँकी सहने योग्य ही होती है। इसीलिए दक्षिण आफ्रिकाका कुछ प्रदेश क्षय रोगियोंके लिए बहुत उपयुक्त माना जाता है। दक्षिण आफ्रिकाकी स्वर्णपुरी जोहानिसबर्ग ऐसा ही एक स्थान है। यह नगर जिस भू-भागमें बसा हुआ है वह आजसे ५० वर्ष पहले सूखी घासका एक बिलकुल वीरान मैदान-भर था। किन्तु जब पता चला कि इस बीहड़ जमीनके भीतर सोना भरा पड़ा है तब वहाँ मानो जादूसे मकानपर-मकान बनने लगे और आज तो वह बड़े-बड़े सुन्दर बंगलोंकी विशाल नगरी है। वहाँ बसे हुए धनी लोगोंने दक्षिण आफ्रिकाके उपजाऊ भागों और यूरोपसे एक-एक गिनी प्रति पौधेतक खर्च करके पेड़ मँगाये और उन्हें यहाँ लगाया। और जो यात्री इस नगरका पूर्व इतिहास नहीं जानता उसे तो यही लगेगा कि शताब्दियोंसे ये पेड़ वहाँ रहे होंगे।

यहाँ मैं दक्षिण आफ्रिकाके सभी भागोंका परिचय देना नहीं चाहता; जिन भागोंका सम्बन्ध हमारे विषयसे है, मैं उन्हींका कुछ परिचय दूँगा। दक्षिण आफ्रिकामें दो जातियोंका राज्य है। एक अंग्रेजोंका और दूसरा पुर्तगालियोंका। पुर्तगाली भाग डेलागोआ-बे कहलाता है और उसका इसी नामका बंदरगाह हिन्दुस्तानसे जाते वक्त मार्गमें आनेवाला पहला बंदरगाह है। उससे कुछ नीचे उतरें तो नेटाल आता है। यह अंग्रेजोंका पहला उपनिवेश है। इसके बंदरगाहका नाम भी पोर्ट नेटाल है; किन्तु हम उसे डर्बन नामसे जानते हैं और वह दक्षिण आफ्रिकामें सामान्यतः इसी नामसे प्रसिद्ध है। डर्बन नेटालका सबसे बड़ा शहर है। नेटालकी राजधानी पीटरमैरित्स-बर्ग कहलाती है और वह डर्बनसे भीतरकी ओर लगभग ६० मील दूर समुद्रतलसे करीब २००० फुटकी ऊँचाईपर बसी हुई है। डर्बनकी जलवायु कुछ-कुछ बम्बईसे मिलती-जुलती है। किन्तु उसमें बम्बईकी अपेक्षा कुछ ठंडक अवश्य अधिक है। नेटालसे निकलकर आगे बढ़ें तो ट्रान्सवाल आता है। आज संसारमें सबसे अधिक सोना वहाँकी जमीनसे निकलता है। कुछ समय पहले वहाँ हीरेकी खानें भी मिली हैं जिनमें से एक खानमें संसारका सबसे बड़ा हीरा क्लीनन निकला है। खानके मालिकके नामपर इसका नाम क्लीनन रखा गया है। इसका वजन तीन हजार केरट है जब कि कोहनूर हीरा लगभग १०० केरट और रूसके राजमुकुटमें जड़ा हुआ ओर्लोफ नामका हीरा २०० केरट वजनका है।

जोहानिसबर्ग स्वर्णपुरी है और उसके पास हीरेकी खानें भी हैं किन्तु वह ट्रान्स-वालकी राजधानी नहीं है। ट्रान्सवालकी राजधानी प्रिटोरिया है। यह जोहानिसबर्गसे ३६ मील दूर है, और वहाँ मुख्यतः शासक वर्ग और उनसे सम्बन्धित लोग रहते हैं। इसलिए वहाँका वातावरण अपेक्षाकृत अधिक शान्तिपूर्ण है, जबकि जोहानिसबर्गका

वातावरण अत्यन्त अशान्त है। यदि कोई प्रिटोरियासे जोहानिसबर्ग जाये तो उसे वहाँ वैसी ही घबराहटका अनुभव होगा जैसी हिन्दुस्तानके किसी कोलाहल रहित गाँव अथवा छोटे कस्बेसे आनेवाले मनुष्यको बम्बईके कोलाहल-भरे व्यस्त वातावरणमें हो सकती है। यदि हम यह कहें कि जोहानिसबर्गके लोग चलते नहीं बल्कि दौड़ते-से लगते हैं तो इसमें कोई अत्युक्ति न होगी। किसीको किसीकी ओर देखनेका अवकाश नहीं है और सभी लोग इसी धुनमें डूबे हुए जान पड़ते हैं कि कमसे-कम समयमें अधिकसे-अधिक धन कैसे बटोरें। यदि हम ट्रान्सवालसे भीतरकी ओर पश्चमकी दिशामें चलें तो ऑरेंज फ्री स्टेट अथवा औरेन्जिया उपनिवेश आ जाता है। इसकी राजधानी ब्लूमफॉटीन है। यह बहुत ही शान्तिपूर्ण एक छोटा-सा शहर है। ऑरेंजियामें खानें आदि नहीं हैं। वहाँसे रेलमें कुछ घंटे यात्राके बाद केप कालोनीकी सीमा शुरू हो जाती है। केप कालोनी यहाँका सबसे बड़ा उपनिवेश है और इसकी राजधानी केप-टाउन सबसे बड़ा बंदरगाह है। केप ऑफ गुड होप, आशा-अन्तरीप यहीं है। जब वास्को-डि-गामा हिन्दुस्तानकी खोजके लिए पुर्तगालसे निकला था तो उसने अपने जहाजका लंगर यहीं डाला था और यहीं उसको यह आशा बँधी थी कि उसकी कामना अवश्य पूरी होगी। इसीलिए उसने इस स्थानका नाम आशा-अन्तरीप रखा।[१]

इन चार मुख्य ब्रिटिश उपनिवेशोंके अतिरिक्त ब्रिटिश साम्राज्यके संरक्षणमें कुछ अन्य अंचल भी हैं जिनमें दक्षिण आफ्रिकाके आदिवासी यूरोपीयोंके आगमनके बहुत पहलेसे रहते चले आते हैं।

दक्षिण आफ्रिकाका मुख्य धन्धा खेती है; यह देश इसके लिए है भी बहुत अच्छा। इसके कुछ भाग तो अत्यन्त उपजाऊ और रमणीक हैं। अनाजोंमें मक्का सबसे अधिक और सुगमताके साथ होती है। दक्षिण आफ्रिकाके वतनी, हब्शियोंका मुख्य आहार यही है। कुछ भागोंमें गेहूँ भी होता है। दक्षिण आफ्रिका फलोंके लिए तो प्रसिद्ध ही है। नेटालमें अनेक प्रकारके और बहुत मीठे केले, पपीते और अनन्नास होते हैं और इतने भरपूर कि गरीबसे-गरीब आदमी भी उनको पा सकता है। नेटाल और दूसरे उप-निवेशोंमें नारंगी, संतरा, आड़ू और खूबानी इतने अधिक होते हैं कि गाँवोंमें हजारों लोग सामान्य श्रम कर उन्हें बिना पैसेके प्राप्त कर लेते हैं। केप कालोनी तो अंगूर और बड़ी किस्मके बेरोंका देश है। जैसे अंगूर वहाँ होते हैं वैसे दूसरी जगह शायद ही होते हों। मौसममें उनकी कीमत भी इतनी कम होती है कि गरीब लोग भी उन्हें भरपेट खा सकते हैं। जहाँ हिन्दुस्तानी रहते हैं वहाँ आम न हों यह नहीं हो सकता। हिन्दुस्तानियोंने वहाँ आमोंकी गुठलियाँ बोई थीं। फलस्वरूप दक्षिण आफ्रिकामें आम भी पर्याप्त मात्रामें मिल सकते हैं और उनकी कुछ किस्में तो बम्बईके हापुस और पायरी आमका मुकाबला कर सकती हैं। इस उपजाऊ भूमिमें शाक-सब्जी भी बहुत होती है। कहा जा सकता है कि खानेके शौकीन हिन्दुस्तानी, हिन्दुस्तानकी लगभग सभी शाक-सब्जी वहाँ पैदा करने लगे हैं।

१. सबसे पहले १६५७ में दियाजने इस अन्तरीपकी खोज की थी और इसका नाम केप ऑफ स्टॉर्म्स रखा था। बादमें राजा जॉनने इसका नाम बदल कर केप ऑफ गुड होप रखा।

यहाँ ढोर-डंगर भी काफी हैं। गाय और बैल हिन्दुस्तानके गायों और बैलोंसे अधिक बड़े और मजबूत होते हैं। जो हिन्दुस्तान अपनेको गोरक्षक कहता है उसमें गायों और बैलोंको हिन्दुस्तानके लोगोंकी ही तरह कमजोर देखकर मुझे लज्जाका अनुभव हुआ है और कई बार मेरा मन भीतर ही भीतर रोया भी है। मैं आफ्रिकाके सभी भागोंमें काफी आया-गया हूँ, फिर भी मुझे कहीं कोई दुबली गाय या दुबले बैलको देखनेकी याद नहीं आता। प्रकृतिने इस भू-भागको भरपूर सम्पन्नताके साथ-साथ इसे प्राकृतिक सौन्दर्य देनेमें भी कृपणता नहीं की है। डर्बन बहुत सुन्दर है, किन्तु केप कालोनी उससे भी अधिक सुन्दर है। केपटाउन टेबल माउन्टेन नामके मध्यम ऊँचाईके पहाड़के तले बसा है। दक्षिण आफ्रिकाकी प्रशंसक एक विदुषी बहनने अपनी कवितामें इस पहाड़का वर्णन करते हुए लिखा है, 'जैसा अलौकिक सौन्दर्य मैंने इस पहाड़में देखा है वैसा किसी दूसरे पहाड़में नहीं देखा'। इसमें अत्युक्ति हो सकती है और मैं मानता हूँ इसमें अत्युक्ति है भी; किन्तु इस विदुषी बहनकी एक बात मेरी समझमें आ गई है। उसने कहा है कि टेबल माउन्टेन मानो केपटाउनके लोगोंका मित्र है। वह बहुत ऊँचा नहीं है, इसलिए भयावना नहीं लगता, लोगोंको उसके प्रति अपनी श्रद्धा दूरसे ही व्यक्त नहीं करनी पड़ती, बल्कि वे इस पहाड़पर मकान बनाकर रहते हैं। बिल्कुल समुद्र तटपर स्थित होनेसे समुद्र अपने स्वच्छ जलसे इसका पाद-प्रक्षालन करता और उसका चरणामृत लेता है। बालक और वृद्ध, स्त्रियाँ और पुरुष निर्भय होकर लगभग सारे ही पहाड़पर घूम सकते हैं और पूरा पहाड़ हर रोज शहरके हजारों लोगोंके स्वरोंसे गूँजता रहता है। बड़े-बड़े पेड़ और सुगंधित रंग-बिरंगे फूलोंने समूचे पहाड़को ऐसा सजा रखा है कि लोग उनको देखते और उनके बीच भ्रमण करते हुए तृप्त ही नहीं होते।

दक्षिण आफ्रिकामें गंगा और यमुना-जैसी बड़ी-बड़ी नदियाँ नहीं हैं। जो थोड़ी बहुत नदियाँ हैं वे छोटी हैं। इस देशमें बहुत-से भागमें नदियोंका पानी पहुँचता ही नहीं है। ऊँचे प्रदेशोंमें नहरें भी कैसे ले जाई जा सकती हैं? और जहाँ अगाध जल-वाली नदियाँ न हों वहाँ नहरें कैसे निकालें? दक्षिण आफ्रिकामें जहाँ-कहीं प्रकृतिने पानीकी तंगी रखी है वहाँ पाताली कुएँ खोदकर उनसे खेतोंकी सिंचाईके लिए पन-चक्कियों और भापसे चलनेवाले इंजनोंकी मददसे पर्याप्त पानी निकाला जाता है। दक्षिण आफ्रिकाकी सरकार खेतीपर बहुत ध्यान देती है। वह किसानोंको सलाह देनेके लिए कृषि-शास्त्री भेजती है और कई जगह लोगोंकी सहायताकी दृष्टिसे अनेक खेती-सम्बन्धी प्रयोग करती है। वह नमूनेके फार्म चलाती है, लोगोंको पशुओंकी और बीजों-की मदद देती है, बहुत कम खर्चसे पाताली कुएँ बनाती है और किसानोंको उनकी लागत किस्तोंमें चुकानेकी सुविधा देती है। सरकार फार्मोंके चारों ओर कटीले तारोंकी बाड़ भी लगाती है।

दक्षिण आफ्रिका भूमध्य रेखाके दक्षिणमें है और हिन्दुस्तान उत्तरमें है, इसलिए वहाँके सारे मौसम हिन्दुस्तानियोंको उलटे-उलटे लगते हैं। जब अपने यहाँ गरमी होती है तब वहाँ जाड़ा होता है। वहाँ वर्षा भी किसी निश्चित नियमसे होती है, यह नहीं

कहा जा सकता। वहाँ चाहे जब वर्षा हो जाती है और फिर भी सामान्यतः सालमें २० इंचसे अधिक वर्षा नहीं होती।

अध्याय २

इतिहास

आफ्रिकाके भूगोलपर दृष्टिपात करते समय हमने जिन भागोंकी चर्चा की है, वे बहुत पुराने समयसे आबाद चले आते हैं, पाठक ऐसा न समझें। यह ठीक-ठीक निश्चय नहीं किया जा सकता है कि प्रारम्भमें इस प्रदेशमें कौन लोग रहते थे। जब यूरोपीय लोग यहाँ आये तब तो यहाँ हब्शी लोग रहते थे। ऐसा खयाल किया जाता है कि जिस समय अमेरिकामें गुलामीकी अन्यायपूर्ण प्रथा जोरोंपर थी उस समय कुछ हब्शी गुलाम भागकर दक्षिण आफ्रिकामें आ बसे थे। ये लोग उन्हींके वंशज हैं। वे जुदी-जुदी जातियोंके नामसे प्रसिद्ध हैं जैसे जुलू, स्वाजी, बसूटो और बेचुवाना आदि। इन लोगोंकी भाषाओंमें भी अन्तर होता है। ये हब्शी ही दक्षिण आफ्रिकाके मूल निवासी माने जाते हैं। किन्तु दक्षिण आफ्रिका इतना विशाल देश है है कि वहाँ जितने हब्शी इस समय हैं उनकी अपेक्षा बीस या तीस गुनी आबादी वहाँ आसानीसे रह सकती है। डर्बनसे केपटाउन रेलसे लगभग १,८०० मील दूर है। समुद्रसे फासला भी १,००० मीलसे कम नहीं है। न चारों उपनिवेशोंका क्षेत्रफल ४,७३,००० वर्गमील है।

इस विशाल प्रदेशमें सन् १९१४ में हब्शियोंकी आबादी लगभग पचास लाख और गोरोंकी आबादी लगभग तेरह लाख थी। हब्शियोंमें जुलू लोग सबसे अधिक दीर्घकाय और सुन्दर माने जा सकते हैं। हब्शियोंके लिए सुन्दर विशेषणका प्रयोग मैंने जान-बूझकर किया है। हम श्वेत वर्ण और नुकीली नाकको सुन्दर मानते हैं। यदि हम थोड़ी देरके लिए यह अन्धविश्वास अपने मनसे हटा दें तो हमें ऐसा नहीं लगेगा कि विधाताने जुलू लोगोंको गढ़नेमें कोई कसर उठा रखी है। स्त्री और पुरुष दोनों कदमें ऊँचे-पूरे और उनके वक्ष तदनुरूप चौड़े होते हैं। शरीरके समस्त अवयव सुगठित और बहुत मजबूत होते हैं। उनकी पिंडलियाँ और बाहें मांसल और गोल होती हैं। आपको शायद ही कोई जुलू स्त्री या पुरुष कमर या कन्धे झुकाकर चलता दिखाई देगा। उनके होंठ अवश्य बड़े और मोटे होते हैं; किन्तु उनके समस्त शरीरके आकारको देखते हुए कमसे-कम मैं तो उन्हें तनिक भी बेढंगा नहीं कह सकता। उनकी आँखें गोल और चमकदार होती हैं। उनकी नाक चपटी और उतनी ही बड़ी होती है जितनी उनके बड़े मुँहपर शोभा दे सके। सिरके घुंघराले बाल उनकी शीशम-जैसी काली और चमकती हुई त्वचापर बहुत फबते हैं। यदि हम किसी जुलूसे यह पूछें कि दक्षिण आफ्रिकामें जो जातियाँ रहती हैं उनमें सबसे सुन्दर जाति कौन-सी है तो वह अपनी जातिको ही सुन्दरतम बतायेगा और मुझे इसमें नासमझीकी कोई बात दिखाई नहीं देती। आज यूरोपमें सैंडो और अन्य पहलवान अपने शिष्योंके बाँहों, हाथों और अन्य अवयवोंके विकासके लिए विविध प्रयत्न करते हैं; किन्तु इस जातिके लोगोंके अंग-

प्रत्यंग बिना इस प्रकारका प्रयत्न किये स्वभावतः सुगठित और सुन्दर होते हैं। भूमध्य रेखाके समीप रहनेवाले लोगोंके वर्णका काला होना स्वाभाविक ही है। प्रकृतिकी गढ़ी हुई आकृतियोंमें सुन्दरता अवश्य होती है, यदि हम इसमें विश्वास करें तो अपनी सौन्दर्य सम्बन्धी संकीर्ण और एकदेशीय कल्पनासे मुक्त हो जायें, इतना ही नहीं, बल्कि अपने वर्णके एक हद्दतक काले होनेसे हम जिस अशोभनीय लज्जा और हीनताका अनुभव करते हैं उससे छुटकारा पा जायें।

ये हब्शी घास और मिट्टीकी गोलाकार झोंपड़ियाँ बनाकर रहते हैं। झोंपड़ियोंके एक ही गोल दीवार और उसके ऊपर घासका एक छप्पर होता है। झोंपड़ीके भीतर एक खम्भा होता है; छप्पर इसीपर टिका होता है। इन झोंपड़ियोंके द्वार इतने नीचे होते हैं कि उनमें झुके बिना नहीं जा सकते। झोंपड़ियोंमें हवा और प्रकाश भी इन्हीं द्वारोंसे जाते हैं। इन द्वारोंमें किवाड़ कदाचित् ही लगाये जाते हैं। वे लोग हमारी तरह दीवारों और फर्शको मिट्टी और गोबरसे लीपते हैं। कहते हैं कि ये लोग कोई चीज चौकोर नहीं बना पाते। इनकी आँखें केवल गोल चीजोंको ही देखने और बनानेकी अभ्यस्त होती हैं। हम देखते हैं कि प्रकृति ज्यामिति-जैसी सीधी रेखायें और वैसी सीधी रेखाओंसे घिरी आकृतियाँ नहीं बनाती। प्रकृतिके इन निर्दोष बालकोंका ज्ञान प्रकृतिमें जो कुछ देखा है उसीपर निर्भर होता है।

उनके इन मिट्टीके महलोंमें साज-सामान भी उनके अनुरूप ही होता है। जब वहाँ यूरोपीय सभ्यता नहीं पहुँची थी तब ये लोग चमड़ा ही पहनते-ओढ़ते और बिछाते थे। इनके इन महलोंमें कुर्सियों, मेजों और सन्दूकोंके रखने लायक जगह ही नहीं होती और कहा जा सकता है कि उनमें ये चीजें आज भी नहीं होतीं। अब उनके घरोंमें कम्बलोंका व्यवहार आरम्भ हो गया है। अंग्रेजी राज्यसे पहले हब्शी स्त्रियाँ और पुरुष लगभग नंगे ही घूमते-फिरते थे। इस समय भी गाँवोंमें तमाम हब्शी ऐसे ही रहते हैं। ये लोग अपने गुह्य अंगोंको चमड़ेसे ढक लेते हैं। कोई-कोई इतना भी नहीं करते। किन्तु इससे पाठक यह अर्थ न निकालें कि ये लोग स्वेच्छाचारी होते हैं। लोगोंके किसी बड़े समुदायका किसी पुरानी प्रथाके अनुसार चलना दूसरे किसी समुदायको अयोग्य भले ही लगे, फिर भी उसका बिलकुल निर्दोष होना सम्भव है। इन हब्शियोंको एक दूसरेकी ओर ताकने-झाँकनेका अवकाश ही नहीं होता। भागवत-कारने बताया है कि शुकदेवजी जब स्नान करती हुई वस्त्रहीन स्त्रियोंके बीचसे गुजरे तब उससे न तो उनके मनमें कोई विकार उत्पन्न हुआ और न उन भोली स्त्रियोंको ही कोई क्षोभ अथवा लज्जाका अनुभव हुआ। मुझे इसमें विचित्र कुछ भी नहीं लगता। यदि आज हिन्दुस्तानमें ऐसी स्थितियोंमें हमें इतनी स्वच्छताका अनुभव नहीं होता तो यह बात हमारी पवित्रताकी द्योतक न होकर हमारे दुर्भाग्यका ही चिह्न है। हम इन लोगोंको जंगली मानते हैं, यह तो हमारा दम्भ है। हम इन्हें जितना जंगली मानते हैं, वे उतने जंगली हैं नहीं।

हब्शियोंको शहरोंमें जानेके कुछ नियम मानने पड़ते हैं। स्त्रियोंके लिए छातीसे लेकर घुटनों तकका भाग ढँककर जाना लाजिमी है। इसलिए उन्हें अनिच्छा होनेपर

भी शरीरके इस भागपर वस्त्र लपेटना पड़ता है। दक्षिण आफ्रिकामें इसीलिए उस मापके कपड़ोंकी बहुत खपत होती है। यूरोपसे हर साल लाखों ऐसे कम्बल और चादर आते हैं। पुरुषोंके लिए कमरसे घुटनों तकका भाग ढँकना आवश्यक होता है। इसलिए उनमें यूरोपके लोगोंके उतरे हुए कपड़े पहननेका चलन शुरू हो गया है। जो लोग ऐसे कपड़े नहीं पहनते वे नाड़ेदार चड्डियाँ पहनते हैं। ये सब कपड़े यूरोपसे ही आते हैं।

इन लोगोंका मुख्य आहार मक्का और मिल जानेपर यदा-कदा माँस है। ये लोग मसालोंसे बिलकुल ही अपरिचित हैं। यदि उनके खानेमें मसाला हो अथवा थोड़ी-बहुत हल्दी भी हो तो वे नाक सिकोड़ेंगे; और जो पूरे जंगली कहे जाते हैं वे तो उसे छुयेंगे भी नहीं। आम जुलूके लिए खड़ी मक्का उबाल कर और नमक लगाकर एक बारमें एक सेर खा जाना कोई आश्चर्यकी बात नहीं। ये लोग मक्काको पीसकर उसका दलिया बनाकर भी खाते हैं और उसमें सन्तोष मानते हैं। उन्हें जब मांस मिल जाता है तब वे उसे कच्चा अथवा उबालकर या भूनकर केवल नमक लगाकर खा लेते हैं। माँस किसी भी पशु-पक्षीका हो उसे खानेमें उन्हें कोई झिझक नहीं होती।

उनकी जातियोंके नाम ही उनकी भाषाओंके नाम भी हैं। उनकी कोई लिपि या वर्णमाला नहीं है। 'बाइबिल' और अन्य पुस्तकें हालमें हब्शियोंकी भाषामें रोमन लिपिमें छापी गई हैं। जुलू भाषा अत्यन्त मधुर है। उसके शब्दोंके अन्तमें ज्यादातर 'आ'की ध्वनि होती है, इसलिए भाषा कानोंको कोमल और मधुर लगती है। मैंने पढ़ा है और सुना भी है कि उसके शब्दोंमें अर्थ और काव्य दोनों हैं। मुझे उसके जिन थोड़ेसे शब्दोंका ज्ञान अनायास ही हो गया है उन्हींपर से मुझे उनकी भाषाके सम्बन्धमें यह मत उचित लगा है। इस पुस्तकमें शहरों आदिके जो नाम दिये गये हैं वे यूरोपीयोंके रखे हुए हैं। उन सबके मधुर और काव्यमय हब्शी नाम भी हैं। किन्तु मुझे वे याद नहीं हैं, इसलिए मैं उनको यहाँ नहीं दे सका हूँ।

ईसाई पादरियोंका मत है कि हब्शियोंका कभी कोई धर्म नहीं रहा। किन्तु यदि धर्मका व्यापक अर्थ लें तो कहा जा सकता है कि वे एक अदृश्य अलौकिक शक्तिको अवश्य मानते और पूजते हैं। वे इस शक्तिसे डरते भी हैं। उनको ऐसा आभास भी होता है कि शरीर नष्ट होनेपर मनुष्यका सर्वथा अन्त नहीं हो जाता। यदि हम नैतिकताको धर्मका आधार मानें तो नैतिकतामें विश्वास रखनेके कारण उन्हें धर्मवान् भी माना जा सकता है। उन्हें सत्यासत्यकी पहचान है। साधारण अवस्थामें सत्यका पालन जितना वे करते हैं, कह नहीं सकते उतना गोरे लोग अथवा हम लोग भी करते हैं या नहीं। उनके यहाँ मन्दिर आदि नहीं होते। अन्य जातियोंके समान उनमें भी कई तरहके अन्धविश्वास दिखाई देते हैं। पाठकको यह जानकर आश्चर्य होगा कि शरीरकी मजबूतीमें जिस जातिका मुकाबला संसारकी कोई भी जाति नहीं कर सकती वह जाति इतनी भोली है कि एक गोरे बालकसे भी डर जाती है। यदि इन लोगोंके सामने कोई रिवाल्वर सीधा करे तो वे या तो भाग खड़े होंगे या भयसे

ऐसे स्तब्ध रह जायेंगे कि उनमें भागनेकी शक्ति ही न रह जायेगी। अवश्य ही इसका एक कारण है। उनके मनमें यह बात बैठ गई है कि मुट्ठीभर गोरोंने इतनी बड़ी और जंगली जातिको वशमें कर लिया है तो अवश्य ही उनके पास कोई जादूगरी होनी चाहिए। वे भालों और तीर-कमानोंका उपयोग करना तो भली-भाँति जानते थे; किन्तु अब वे उनसे छिन गये हैं। उन्होंने बन्दूक कभी देखी सुनी नहीं थी। उनकी समझमें यह नहीं आता कि बिना दियासलाई सिर्फ उँगली हिलाते ही एक छोटी-सी नलीमें से अचानक आवाज कैसे निकल पड़ती है, चमक कैसे दिखाई देती है और कैसे गोली निकलकर क्षणभरमें मनुष्यको घायल करके उसके प्राण ले लेती है। इसलिए ये लोग ऐसी वस्तुका प्रयोग करनेवालोंके भयसे सदा त्रस्त रहते हैं। उन्होंने और उनके बाप-दादोंने स्वयं ऐसी गोलियोंसे अनेक असहाय निर्दोष हब्शियोंके प्राण जाते देखे हैं। यह कैसे और क्योंकर हुआ होगा सो उनमें से बहुतसे लोग आजतक नहीं समझ पाते।

'सभ्यता' धीरे-धीरे इस जातिपर हावी होती जा रही है। एक ओर नेक पादरी उनको अपनी मतिके अनुसार ईसाका सन्देश देते हैं, उनके लिए शालाएँ खोलते हैं और उन्हें अक्षर-ज्ञान देते हैं और उनके इस प्रयत्नके फलस्वरूप कुछ चरित्रवान् हब्शी भी तैयार हुए हैं; किन्तु दूसरी ओर उनमें से ज्यादातर लोग जो निरक्षर और पिछड़े होनेके बावजूद अभीतक अनेक बुराइयोंसे मुक्त थे, आज अनीतिवान हो गये हैं। सभ्यताके सम्पर्कमें आये हुए हब्शियोंमें शायद ही कोई ऐसा होगा जो दारू पीनेकी बुराईसे अछूता बचा हो। और उनके शक्तिशाली शरीर शराबके नशेमें बिलकुल अदम्य हो उठते हैं और वे पागल होकर सभी अकरणीय कर्म कर डालते हैं। सभ्यताके आगमनका अर्थ है जरूरतें बढ़ना। यह तो दो और दो चारकी तरह एक निश्चित बात है। कहना चाहिए कि जरूरतें बढ़ाने और अधिक श्रम आवश्यक करनेके लिए इन सब लोगोंपर व्यक्ति-कर और झोंपड़ी-कर लगाये गये हैं। यदि ये कर न लगाये जायें तो अपने खेतोंको छोड़कर इस जातिके लोग सोना खोदने अथवा हीरा निकालनेके लिए जमीनमें सैकड़ों गज गहरी खानोंमें घुसें ही नहीं। और यदि ये लोग खानोंमें काम न करें तो आफ्रिकाका सोना अथवा वहाँके हीरे पृथ्वीके गर्भमें ही पड़े रह जायें। इसी तरह इन लोगोंपर कर लगाये बिना यूरोपीय लोगोंको नौकर मिलना भी कठिन हो जाये। परिणामस्वरूप खानोंमें काम करनेवाले हजारों हब्शियोंको अनेक रोगोंके साथ-साथ एक तरहका क्षय रोग भी हो जाता, है, जिसे 'खनिकोंका क्षय' (माइनर्स थाइसिस) कहते हैं। यह रोग प्राणघाती है। जो इसके पंजेमें आ जाता है वह कदाचित् ही बचता है। हजारों लोग एक खानपर रहें और उनके बाल-बच्चे उनके साथ न हों तो स्पष्ट है कि ऐसी स्थितियोंमें वे आचारवान् भी नहीं रह सकते। फलतः वे संसर्गज रोगोंसे ग्रस्त हो जाते हैं। दक्षिण आफ्रिकाके विचारशील गोरे भी इस प्रश्नपर अवश्य विचार करते हैं। उनमें से कुछ लोग यह भी मानते हैं कि इस जातिपर सभ्यताका प्रभाव कुल मिलाकर अच्छा पड़ा है, ऐसा दावा शायद ही किया जा सकता है। इसके हानिकर प्रभाव तो सहज ही देखे जा सकते हैं।

ऐसे विशाल देशमें, जहाँ ऐसी निर्दोष जाति बसती थी, लगभग ४०० साल पहले वलन्दा लोग[1] बसने लगे। वे गुलाम तो रखते ही थे। कुछ वलन्दा लोग अपने पहलेके उपनिवेश जावासे कुछ मलायी गुलामोंको साथ लेकर उस प्रदेशमें आये जिसे अब केप कालोनी कहते हैं। ये मलायी लोग मुसलमान हैं। वे वलन्दोंकी सन्तान हैं और उनमें उनके कुछ गुण भी पाये जाते हैं। वे यहाँ-वहाँ सारे दक्षिण आफ्रिकामें बिखरे हुए दिखाई देते हैं; किन्तु उनका मुख्य स्थान केपटाउन ही है। आज उनमें से कुछ लोग गोरोंकी नौकरी करते हैं और शेष अपने-अपने स्वतन्त्र धन्धे करते हैं। मलायी स्त्रियाँ बहुत ही उद्योगशील और चतुर होती हैं। उनका रहन-सहन प्रायः साफ-सुथरा है। ये स्त्रियाँ धुलाई और सिलाईका काम बहुत अच्छा कर सकती हैं। मर्द लोग छोटे-मोटे व्यापार करते हैं। उनमें से बहुतसे ताँगे-गाड़ियाँ चलाकर अपनी आजीविका चलाते हैं। इनमें से कुछ लोग उच्च कोटिकी अंग्रेजी शिक्षा भी प्राप्त कर चुके हैं। उनमें से एक सज्जन प्रसिद्ध डाक्टर हैं। उनका नाम अब्दुर्रहमान हैं। वे केपटाउनमें रहते हैं। वे केपटाउनकी पुरानी विधानसभामें सदस्य भी थे, किन्तु इन लोगोंको नये संविधानके अनुसार मुख्य विधान सभामें अपने सदस्य भेजनेका अधिकार नहीं रहा है।

वलन्दा लोगोंके सन्दर्भमें मलायी लोगोंकी थोड़ी-बहुत चर्चा अपने-आप आ गई। किन्तु अब हम जरा इस बातपर विचार करें कि वलन्दा लोगोंने किस प्रकार उन्नति की। यह तो सभी जानते हैं कि वलन्दाका अर्थ है डच। ये लोग जितने वीर योद्धा थे उतने ही कुशल किसान भी थे; आज भी हैं। उन्होंने देखा कि उनके आसपासका देश खेती करनेके लिए बहुत उपयुक्त है। उन्होंने यह भी देखा कि वहाँके वतनी लोग सालमें थोड़े दिन काम करके सुगमतासे अपना निर्वाह कर सकते हैं। तब उन्होंने सोचा कि इन लोगोंसे मजदूरी क्यों न कराई जाये। वलन्दा लोगोंके पास बुद्धि थी, बन्दूक थी और वे जानते थे कि अन्य प्राणियोंकी भाँति मनुष्योंको वशमें कैसे किया जा सकता है। वे इसमें धर्मकी कोई बाधा नहीं मानते थे। इसलिए अपने कार्यकी अच्छाईके सम्बन्धमें तनिक भी शंका किये बिना उन्होंने दक्षिण आफ्रिकाके वतनियोंसे खेतीका कार्य और अन्य कार्य लेना आरम्भ किया।

जैसे वलन्दा लोग संसार-भरमें अच्छेसे-अच्छे भू-भाग अधिकृत करनेकी दृष्टिसे खोजते फिर रहे थे वैसे अंग्रेज भी इस दिशामें प्रयत्नशील थे। अतः धीरे-धीरे यहाँ अंग्रेज भी आ गये। अंग्रेज और डच मौसेरे भाई तो हैं ही — दोनोंका स्वभाव एक और लोभ-वृत्ति एक। यदि एक ही कुम्हारके बनाये बर्तन एक जगह इकट्ठे किये जाते हैं तो उनमें से कुछ तो टकराकर टूटते-फूटते ही हैं। उसी तरह ये दोनों जातियाँ अपने-अपने पैर फैलाती हुई और धीरे-धीरे हब्शियोंको अपने वशमें करती हुई कभी-कभी परस्पर टकरा जाती थीं और उनमें झगड़े और लड़ाइयाँ भी हो जाती थीं; ऐसे ही एक युद्धमें मजूबाकी टेकरीपर अंग्रेजोंको वलन्दोंसे हार खानी पड़ी थी। किन्तु मजूबाकी इस हारकी कसक उनके मनमें बस गई और उसने भीतर-ही-भीतर नासूरका

१. डच जातिके लोग।

रूप धारण कर लिया। सन् १८९९ से लेकर १९०२ तक होनेवाली संसार प्रसिद्ध लड़ाईके[1] रूपमें यह नासूर फूटा और जब लॉर्ड रॉबर्ट्सके सम्मुख जनरल क्रोंजेने आत्मसमर्पण कर दिया तो लॉर्ड रॉबर्ट्सने स्वर्गीया महारानी विक्टोरियाको तारसे खबर दी, 'मजूबाका बदला ले लिया गया।' जब बोअर युद्धसे पहले दोनोंमें पहली बार मुठभेड़ हुई थी तब वलन्दा लोगोंमें से बहुतसे अंग्रेजोंकी सत्ता किसी भी रूपमें स्वीकार करनेके लिए तैयार न थे; इसलिए वे दक्षिण आफ्रिकाके भीतरी भागोंमें चले गये थे और इसीके परिणामस्वरूप ट्रान्सवाल और ऑरेंज फ्री स्टेटका जन्म हुआ था।

बादमें यही वलन्दा अथवा डच लोग दक्षिण आफ्रिकामें बोअर कहलाने लगे। उन्होंने अपनी भाषाकी सेवा और रक्षा ऐसे ही की जैसे कोई सपूत अपनी माँकी करता है। उनके मनमें यह बात बैठ गई है कि जातिकी स्वतन्त्रता और उसकी मातृभाषामें बड़ा घनिष्ट सम्बन्ध है। निरन्तर प्रहार होनेपर भी ये लोग अपनी मातृ-भाषाकी रक्षा कर रहे हैं। इस भाषाका रूप यहाँ आवश्यकताके अनुकूल बदल गया है। ये लोग हॉलैंडसे निकट-सम्बन्ध नहीं रख सके, इसलिए जिस तरह संस्कृतसे प्राकृत भाषा बन गई उसी तरह डच भाषासे बिगड़कर एक अन्य भाषा बन गई है जिसे ये बोअर बोलने लग गये हैं। वे अब अपने बालकोंपर अनावश्यक बोझ नहीं डालना चाहते; इसलिए उन्होंने इस नई प्राकृत भाषाको स्थायी रूप दे दिया है। यह भाषा 'टाल' के नामसे प्रसिद्ध है। इसी भाषामें वे पुस्तकें लिखते हैं। इसीमें बोअर बालकोंको शिक्षा दी जाती है और बोअर सदस्य विधान सभामें इसीमें भाषण देते हैं। दक्षिण आफ्रिकाका संघ बननेके बाद समस्त दक्षिण आफ्रिकामें टाल और अंग्रेजी दोनों भाषाओंको एक-सा स्थान प्राप्त है, यहाँतक कि संघके सरकारी 'गजट' को और विधानसभाकी कार्रवाईको दोनों भाषाओंमें छापना जरूरी होता है। बोअर लोग सरल स्वभावके भोले-भाले और धर्मपरायण हैं। वे बड़े-बड़े फार्मोंपर रहते हैं। हम दक्षिण आफ्रिकाके फार्मोंकी कल्पना नहीं कर सकते। हमारे खेत दो या तीन बीघेके अथवा कई बार उससे भी छोटे होते हैं। वहाँके फार्म सैकड़ों और हजारों बीघोंके होते हैं। एक आदमीके कब्जेमें बड़े-बड़े रकबेके फार्म होते हैं। इन किसानोंको इन जमीनोंको तत्काल जोतनेका लोभ भी नहीं होता और यदि कोई उनसे तर्क करता है तो वे कहते हैं, 'पड़ी भी रहने दो। जिस जमीनमें हम खेती नहीं करते, हमारी सन्तानें उसे जोतेंगी, बोयेंगी।'

सभी बोअर युद्धकी कलामें पूर्ण कुशल होते हैं। वे आपसमें भले ही लड़ते-झगड़ते रहें, किन्तु उन्हें अपनी स्वतन्त्रता इतनी प्यारी है कि जब उसपर कोई आक्रमण होता है तो वे सभी एक होकर लड़नेके लिए तैयार हो जाते हैं। उनको बहुत अधिक कवायद आदि सिखानेकी आवश्यकता नहीं पड़ती, क्योंकि लड़ना तो उस समस्त जातिका स्वाभाविक गुण ही है। जनरल स्मट्स, जनरल डी'वेट और जनरल हरज़ोग तीनों, जैसे बहुत बड़े वकील और बहुत बड़े किसान हैं, वैसे ही बहुत बड़े योद्धा भी हैं।

१. देखिए खण्ड ३।

जनरल बोथाके पास नौ हजार एकड़का फार्म था। वे खेतीकी सभी बारीकियोंको जानते थे। जब वे सन्धि करनेके लिए यूरोप गये थे तब उनके सम्बन्धमें यह कहा गया कि भेड़ोंकी परीक्षामें उनके समान कुशल मनुष्य यूरोपमें कोई शायद ही होगा। इन्हीं जनरल बोथाने स्वर्गीय राष्ट्रपति क्रूगरका स्थान लिया। उनका अंग्रेजी भाषाका ज्ञान बहुत अच्छा था, फिर भी जब वे इंग्लैंडमें बादशाहसे और मन्त्रियोंसे मिले तब उन्होंने सदा अपनी भाषामें ही उनसे बातचीत करना पसन्द किया। कौन कह सकता है कि उनका यह कार्य ठीक नहीं था? वे अपना अंग्रेजी भाषाका ज्ञान बतानेके लिए गलती करनेकी जोखिम क्यों लेते? वे अंग्रेजी भाषाके उपयुक्त शब्द ढूँढ़नेके लिए अपनी विचार-श्रृंखलाको भंग करनेकी सम्भावनाके फेरमें क्यों पड़ते? अंग्रेज मन्त्री अनजाने ही अंग्रेजी भाषाके एकाध अप्रसिद्ध मुहावरेका उपयोग करते और जनरल बोथा उसका ठीक अर्थ न समझकर उसका कुछका-कुछ उत्तर दे देते अथवा कदाचित् वे घबरा जाते तो उससे उनके कार्यको हानि पहुँचती। वे इस तरहकी गम्भीर भूल क्यों करते?

जैसे बोअर पुरुष वीर और सरल हैं वैसे ही बोअर स्त्रियाँ भी वीर और सरल हैं। बोअर पुरुष बोअर युद्धमें[1] अपना इतना खून बहा सके और इतना बड़ा बलिदान कर सके सो अपनी स्त्रियोंके साहस और प्रोत्साहनके कारण ही। इन स्त्रियों-को न विधवा होनेका भय था और न अपने भविष्यकी चिन्ता। मैं ऊपर कह चुका हूँ कि बोअर लोग धर्मपरायण ईसाई हैं। किन्तु वे ईसाके नये करारको मानते हैं, ऐसा नहीं कहा जा सकता। ठीक तरहसे देखें तो नये करारको तो यूरोपके लोग भी कहाँ मानते हैं; यद्यपि यूरोपके कुछ लोग ईसाके शान्ति धर्मको मानते हैं और उसका पालन करते हैं, फिर भी यूरोपमें नये करारको माननेका तो सिर्फ दावा ही दावा है। बोअर लोगोंके बारेमें तो यही कहा जा सकता है कि वे नये करारके नाम-मात्रसे ही परिचित हैं, पुराने करारको वे बड़े प्रेमसे पढ़ते हैं और उसमें युद्धोंका जो वर्णन आता है उसे कण्ठस्थ करते हैं। वे पैगम्बर मूसाके 'दाँतके बदले दाँत' और 'आँखके बदले आँख' के सिद्धान्तमें पूरा विश्वास करते हैं और अपने विश्वासके अनुसार उसपर आचरण भी करते हैं।

अपनी स्वतन्त्रताकी रक्षाके लिए जितना दुःख सहन करना पड़ा उसे बोअर स्त्रियोंने भी धर्मका आदेश समझकर धैर्यपूर्वक और प्रसन्नतापूर्वक सहन किया। स्वर्गीय लॉर्ड किचनरने इन स्त्रियोंको झुकानेका उपाय करनेमें कोई कमी नहीं रखी। उनको अलग-अलग बाड़ोंमें बन्द किया गया और उन्हें इन बाड़ोंमें असह्य कष्ट सहन करने पड़े। उन्होंने खाने-पीनेका दुःख भी सहा और जबरदस्त सरदी और गरमी भी सही। कभी-कभी इन्हें शराबके नशेमें चूर अथवा काम-विकारसे मत्त सैनिकोंके अत्याचार भी सहने पड़े। इन बाड़ोंमें अनेक प्रकारकी आफतें उनपर आईं,

१. १९०२ में जब बोअर-युद्ध समाप्त हुआ, कोई २००,००० व्यक्ति कारागार-शिविरोंमें नजरबन्द थे। लगभग ४,००० स्त्रियों और १६,००० बच्चोंकी भूख और बीमारीके कारण मृत्यु हुई। — वॉकर: **हिस्ट्री ऑफ साउथ आफ्रिका**

किन्तु ये वीर स्त्रियाँ नहीं झुकीं। अन्तमें स्वयं बादशाह एडवर्डने लॉर्ड किचनरको लिखा, 'यह सब मेरी सहन-शक्तिके बाहर है। यदि बोअरोंको झुकानेका हमारे पास यही उपाय हो तो इसकी अपेक्षा तो किन्हीं भी शर्तोंपर सुलह कर लेना मुझे ज्यादा पसन्द है। आप लड़ाईको जल्दी खतम करें।'

जब इन सब कष्टों और अत्याचारोंके समाचार इंग्लैंड पहुँचे तब अंग्रेज जनता-को बहुत सन्ताप हुआ। लोग बोअरोंकी वीरताके बारेमें जानकर चकित रह गये। एक छोटी-सी जातिने सारी दुनियामें फैले हुए साम्राज्यकी नाकमें दम कर दिया, यह बात पहले अंग्रेजोंके मनमें खटकती थी; किन्तु जब इन बाड़ोंमें कैद स्त्रियोंका आर्तनाद, उन स्त्रियों और लड़ाईमें जूझते हुए उनके पुरुषोंके मार्फत नहीं, बल्कि इक्के-दुक्के उदारमना अंग्रेज स्त्री-पुरुषोंके मार्फत, जो उस समय दक्षिण आफ्रिकामें थे, वहाँ पहुँचा तब अंग्रेज लोगोंके मन अनुतापसे भर गये। स्वर्गीय सर हेनरी कैम्बेल बैनरमैनने अंग्रेजोंके हृदयके इस अनुतापको समझा और युद्धके विरुद्ध जोरदार आवाज उठाई। स्वर्गीय श्री स्टेडने सार्वजनिक रूपसे ईश्वरसे युद्धमें अंग्रेजोंकी पराजयकी प्रार्थना की और साथ ही दूसरे लोगोंको भी ऐसी प्रार्थना करनेके लिए प्रेरित किया। यह दृश्य विस्मयजनक था। शुद्ध मनसे सहन किया गया सच्चा दुःख पत्थर-जैसे हृदयको भी पिघला देता है। इस दुःख-सहनकी अथवा तपस्याकी ऐसी ही महिमा है और यही सत्याग्रहका रहस्य है।

इसके परिणामस्वरूप वेरीनिगिंगकी सन्धि[1] हुई और दक्षिण आफ्रिकाके चारों उपनिवेश एक शासनके नीचे आ गये। यद्यपि इस सन्धिकी बात अखबार पढ़नेवाले सभी हिन्दुस्तानी जानते हैं, फिर भी एक दो बातें ऐसी हैं जिसका ज्यादातर लोगोंको अनुमान भी नहीं हो सकता। दक्षिण आफ्रिकाके चारों उपनिवेश वेरीनिगिंगकी सन्धि होते ही एक नहीं हो गये। उनमें से प्रत्येककी अपनी विधानसभा थी। उनके मन्त्रि-मण्डल इन विधानसभाओंके प्रति पूरी तरह उत्तरदायी नहीं थे। ट्रान्सवाल और ऑरेंज फ्री स्टेटका शासन सम्राट्के अधीनस्थ उपनिवेशोंकी तरह चलाया जाता था। जनरल बोथाको अथवा जनरल स्मट्सको ऐसे संकुचित अधिकारसे सन्तोष होना कठिन था। फिर भी लॉर्ड मिलनरने बिना वरकी बरात निकालना ठीक समझा। फलतः जनरल बोथा विधानसभासे अलग रहे। उन्होंने असहयोग किया और सरकारसे कोई सम्बन्ध रखनेसे साफ इनकार कर दिया। लॉर्ड मिलनरने एक कटु भाषण दिया और कहा कि जनरल बोथाको यह मान लेनेकी कोई जरूरत नहीं है कि राजकाज उन्हींके चलाये चलेगा। वह उनके बिना भी चल सकेगा।

मैंने बोअरोंकी वीरता, स्वातन्त्र्य-प्रियता और त्याग भावनाकी प्रशंसा निस्संकोच होकर की है; फिर भी मैं पाठकोंको इस गलतफहमीमें नहीं डालना चाहता कि संकट-कालमें उनमें कोई मतभेद ही नहीं हुआ अथवा उनमें दुर्बल व्यक्ति थे ही नहीं। बोअरोंमें लॉर्ड मिलनर सहज सन्तुष्ट होनेवाले एक पक्षको खड़ा करनेमें समर्थ हो गये और उन्होंने यह मान लिया कि वे उसकी सहायतासे विधान सभामें काम चलानेमें

१. प्रिटोरियामें ३१ मई, १९०२ को।

सफल हो सकेंगे। नाटकमें भी मुख्य पात्रके बिना काम नहीं चलता। तब इस कठिनाई-भरे संसारमें यदि कोई शासन-संचालक मुख्य पात्रको भुलाकर सफलतापूर्वक शासन चलानेकी आशा रखे तो वह पागल ही माना जायेगा। सचमुच लॉर्ड मिलनरकी दशा भी ऐसी ही हुई। उस समय यह भी कहा जाता था कि लॉर्ड मिलनरने जनरल बोथाको धमकी तो दे दी, किन्तु उनके बिना ट्रान्सवाल और ऑरेन्ज फ्री स्टेटका शासन चलाना लॉर्ड मिलनरके लिए इतना कठिन हो गया कि वे अपने बागमें सिर झुकाये चिन्तित और व्याकुल भावसे घूमते दिखाई देने लगे। जनरल बोथाने स्पष्ट कहा कि उन्होंने वेरीनिगिंगकी सन्धिका अर्थ साफ-साफ यह समझा था कि बोअर लोगोंको अपने प्रदेशोंकी आन्तरिक व्यवस्था करनेका पूरा अधिकार तुरन्त दे दिया जायेगा। उन्होंने कहा कि यदि वे ऐसा न समझते तो सन्धिपर कभी हस्ताक्षर न करते। इसके उत्तरमें लॉर्ड किचनरने कहा कि उन्होंने जनरल बोथाको इस तरहका कोई आश्वासन नहीं दिया था। बोअर लोग ज्यों-ज्यों अपनी विश्वासपात्रता सिद्ध करते जायेंगे त्यों-त्यों उनको धीरे-धीरे स्वतन्त्रता मिलती जायेगी। अब इन दोनोंके बीच निर्णय कौन करता? यदि कोई पंचकी नियुक्तिका प्रस्ताव करता तो जनरल बोथाको वह भी क्यों कर स्वीकार हो सकता था? ऐसे समयमें ब्रिटिश सरकारने जो निर्णय किया वह उसके लिए सर्वथा शोभनीय था। उसने यह स्वीकार किया कि विरोधी पक्ष — उसमें भी निर्बल पक्ष — समझौतेका जो अर्थ करे सबल पक्षको वही अर्थ मानना चाहिए। न्याय और सत्यकी दृष्टिसे तो सदा यही ठीक हो सकता है। हमने अपने कथन या लेखका अपने मनमें जो भी अर्थ किया हो, फिर भी हमें मानना चाहिए कि उसे पढ़कर अथवा सुनकर पाठक अथवा श्रोतापर उसका जो भी प्रभाव पड़े हमने वह बात उसी अर्थमें कही या लिखी थी। हम बहुत बार व्यवहारमें इस स्वर्ण नियमका पालन नहीं करते। इस कारण बहुतसे झगड़े खड़े हो जाते हैं और सत्यके नामपर अर्ध-सत्य अर्थात् ठीक तरहसे देखें तो दुगुना असत्य व्यवहारमें आता है।

इस प्रकार सत्यके — यहाँ जनरल बोथाके — पक्षकी पूरी जीत होनेपर ही जनरल बोथाने शासनको सहयोग दिया और उसीके परिणामस्वरूप चारों उपनिवेश, एक हुए तथा दक्षिण आफ्रिकाको पूर्ण स्वतन्त्रता मिली। दक्षिण आफ्रिकामें झण्डा एक यूनियन जैक, है। नक्शेमें इस प्रदेशका रंग लाल है। फिर भी यह माननेमें कोई अतिशयता नहीं कि दक्षिण आफ्रिका पूर्णतया स्वतन्त्र है। ब्रिटिश साम्राज्य दक्षिण आफ्रिकासे शासकोंकी अनुमतिके बिना एक पाई भी नहीं ले जा सकता। इतना ही नहीं बल्कि ब्रिटेनके मन्त्रियोंने यह भी माना है कि यदि दक्षिण आफ्रिकाके लोग अंग्रेजी झण्डेको हटाना चाहें और नाम-मात्रके सम्बन्ध भी छोड़ देना चाहें तो उनको ऐसा करनेसे कोई भी नहीं रोक सकता। दक्षिण आफ्रिकाके गोरोंने आज यह कदम नहीं उठाया है तो इसका एक प्रबल कारण यह है कि बोअरोंके नेता चतुर और समझदार हैं। यदि वे ब्रिटिश साम्राज्यसे ऐसा साझा अथवा सम्बन्ध रखते हैं जिससे उनकी कोई हानि नहीं होती तो इसमें कोई अनुचित बात नहीं है। किन्तु इसके अतिरिक्त एक

दूसरा व्यावहारिक कारण भी है और वह यह है कि नेटालमें अंग्रेजोंकी संख्या अधिक है, केप कालोनीमें अंग्रेजोंकी संख्या यद्यपि बोअरोंसे अधिक नहीं है फिर भी खासी है और जोहानिसवर्गमें तो पूरा अंग्रेजोंका ही प्रभाव है। इसलिए यदि बोअर समूचे दक्षिण आफ्रिकामें स्वतन्त्र प्रजातन्त्रीय राज्य स्थापित करना चाहें तो दक्षिण आफ्रिकी गोरोंमें आपसमें ही झगड़ा खड़ा हो जायेगा और शायद आपसमें गृहयुद्ध भी हो जाये। इसी कारण दक्षिण आफ्रिका ब्रिटिश उपनिवेश बना हुआ है।

दक्षिणी आफ्रिकी संघका संविधान कैसे बना यह बात भी जानने योग्य है। चारों उपनिवेशोंकी विधानसभाने एकमत होकर यह संविधान बनाया। ब्रिटिश संसदको इसे जैसाका-तैसा स्वीकार करना पड़ा। ब्रिटिश लोकसभाके एक सदस्यने उसकी एक व्याकरण सम्बन्धी अशुद्धिकी ओर ध्यान आकर्षित किया था और उसे शुद्ध करनेका सुझाव रखा था; किन्तु स्वर्गीय सर हेनरी कैम्बैल बैनरमैनने उनका वह सुझाव अस्वीकार कर दिया। उन्होंने कहा कि राजकाज शुद्ध व्याकरणसे नहीं चला करता। यह संविधान ब्रिटिश मन्त्रिमण्डल और दक्षिण आफ्रिकाके मन्त्रियोंके पारस्परिक विचार-विमर्शके फलस्वरूप बना है। उसने अपनी व्याकरण सम्बन्धी अशुद्धि ठीक करनेका अधिकार ब्रिटिश संसदको नहीं दिया है। इसलिए वह संविधान कामन-सभा और लॉर्ड-सभा — दोनोंमें ज्योंका-त्यों ही स्वीकार किया गया।

इस प्रसंगमें एक तीसरी बात भी उल्लेखनीय है: संविधानमें कुछ धाराएँ ऐसी हैं जो तटस्थ पाठकोंको अवश्य ही व्यर्थ लगेंगी। उनके कारण खर्च भी बहुत बढ़ा है। यह बात संविधानके निर्माताओंके ध्यानसे बाहर भी नहीं थी; किन्तु उनका उद्देश्य संविधानको सर्वांगपूर्ण बनाना नहीं, बल्कि पारस्परिक आदान-प्रदानसे एक मत होकर संविधान बनानेके प्रयत्नको सफल बनाना था। इसीलिए इस समय दक्षिण आफ्रिकी संघकी चार राजधानियाँ मानी जाती हैं, क्योंकि संघमें सम्मिलित उपनिवेशोंमें से कोई भी अपनी राजधानीका महत्व छोड़नेके लिए तैयार नहीं था। चारों उपनिवेशोंकी स्थानीय विधान सभाएँ भी बरकरार रखी गई हैं। चारों उपनिवेशोंमें गवर्नर-जैसा अधिकारी रखना भी आवश्यक है, इसलिए ऐसे चार अधिकारी रखनेकी बात स्वीकार की गई है। सभी लोग यह समझते हैं स्थानीय विधान सभाएँ, चार राजधानियाँ और चार प्रमुख अधिकारी अजा-गल-स्तनकी तरह निरुपयोगी और नितान्त आडम्बर रूप है। किन्तु दक्षिण आफ्रिकाके व्यवहारकुशल मन्त्री इससे डरनेवाले नहीं थे? आडम्बर होनेपर भी और खर्च बढ़नेपर भी चारों संस्थानोंका एकमत होना वांछ-नीय था। इसलिए उन्होंने बाहरी दुनियाकी आलोचनाकी चिन्ता न करके जो-कुछ उचित लगा वह किया और उसे ब्रिटिश संसदसे स्वीकार करवाया।

इस प्रकार मैंने दक्षिण आफ्रिकाका यह अत्यन्त संक्षिप्त इतिहास पाठकोंकी जानकारीके लिए देनेका प्रयत्न किया है। मुझे ऐसा लगता था कि इसके बिना सत्याग्रहकी इस महान् लड़ाईका रहस्य नहीं समझा जा सकता। अब मूल विषयपर आनेसे पूर्व हमें यह देखना है कि हिन्दुस्तानी इस प्रदेशमें कैसे आये और सत्याग्रह कालसे पहले अपने ऊपर आनेवाली विपत्तियोंसे कैसे जूझे।

अध्याय ३

दक्षिण आफ्रिकामें हिन्दुस्तानियोंका प्रवेश

हम पिछले प्रकरणमें अंग्रेजोंके नेटालमें आकर बसनेकी बात लिख चुके हैं। उन्होंने जुलू लोगोंसे कुछ हक हासिल किये और फिर अनुभव किया कि नेटालमें गन्ना, चाय और काफीकी फसलें बहुत अच्छी हो सकती हैं और इन फसलोंको बड़े पैमानेपर पैदा करनेके लिए तो हजारों मजदूर चाहिए। दस-पाँच अंग्रेज परिवार इस तरहकी सहायताके बिना उक्त चीजोंकी खेती नहीं कर सकते। उन्होंने हब्शियोंको काम करनेपर ललचाया और डराया-धमकाया भी; किन्तु गुलामीका कायदा अबतक रद हो चुका था — वे हब्शियोंपर पर्याप्त जोर डालनेमें सफल नहीं हुए। हब्शियोंको ज्यादा मेहनत करनेकी आदत नहीं है। वे छः महीनोंकी मामूली मेहनतसे अपना गुजारा अच्छी तरह कर सकते हैं। तब वे किसी मालिकसे लम्बे अर्से तक क्यों बँधें? स्थायी मजदूरोंके अभावमें अंग्रेज अपना अभीष्ट पूरा नहीं कर सकते थे। इसलिए उन लोगोंने हिन्दुस्तानकी सरकारसे पत्र-व्यवहार आरम्भ किया और हिन्दुस्तानसे मजदूर प्राप्त करनेमें सहायता माँगी। हिन्दुस्तानकी सरकारने नेटाल सरकारकी माँग स्वीकार कर ली और हिन्दुस्तानी मजदूरोंका पहला जहाज १६ नवम्बर १८६० को नेटालमें लगा। यह तारीख दक्षिण आफ्रिकाके इतिहासमें उल्लेखनीय है, क्योंकि यह घटना ही इस पुस्तकका और इसके वस्तुविषयका मूल है।

मेरी दृष्टिमें हिन्दुस्तानकी सरकारने नेटालकी इस माँगको स्वीकार करनेसे पहले पूरा विचार नहीं किया। यहाँके अंग्रेज अधिकारियोंने जाने या अनजाने अपने नेटालवासी भाइयोंके साथ पक्षपात किया। निस्सन्देह उन्होंने करारनामेमें मजदूरोंकी रक्षाकी जितनी शर्तें रखी जा सकी उतनी रखवा लीं और उनके गुजारेकी सामान्य व्यवस्था भी करवा दी। किन्तु उन्होंने इस बातका पूरा ध्यान तो अवश्य ही नहीं रखा कि यदि ये अपढ़ मजदूर अपने देशसे दूर जाकर किसी मुसीबतमें पड़ जायें तो उससे छुटकारा कैसे पायेंगे। वे अपने धर्मपालन और अन्य अधिकारोंकी रक्षा कैसे करेंगे, इसका कोई विचार नहीं किया गया। और तो और अधिकारियोंने यह भी नहीं सोचा कि यद्यपि कानूनसे गुलामी हटा दी गई है; किन्तु वह मालिकोंके हृदयोंमें से तो नहीं निकली है। उनके हृदयोंसे दूसरोंको गुलाम बनाकर रखनेका लोभ अभी एकदम निर्मूल नहीं हो गया है। अधिकारियोंको यह बात समझनी थी कि मजदूर एक दूरस्थ देशमें जाकर एक मुद्दतके लिए तो गुलाम ही बन जायेंगे; किन्तु उन्होंने इसे नहीं समझा। सर विलियम विल्सन हंटरने, जिन्होंने इस स्थितिका गहन अध्ययन किया था, इसका वर्णन करते हुए जिन दो शब्दोंका प्रयोग किया वे उल्लेखनीय हैं। उन्होंने नेटालके इन मजदूरोंकी स्थितिको अर्धदासताकी स्थिति लिखा था। एक दूसरे अवसरपर उन्होंने एक पत्रमें कहा कि उनकी स्थिति लगभग दासताकी सीमातक जा पहुँची है। नेटालके एक आयोगके सम्मुख गवाही देते हुए नेटालके प्रतिष्ठित गोरे अंग्रेज स्वर्गीय एस्कम्बने यही बात स्वीकार की थी। नेटालके प्रमुख गोरोंके कहे हुए ऐसे बहुतसे

वक्तव्य प्रमाण-रूप प्रस्तुत किये जा सकते हैं। इनमें से बहुतसे वक्तव्य इस सम्बन्धमें हिन्दुस्तानकी सरकारको दी हुई अर्जियोंमें दिये गये हैं। किन्तु जो होना था वह तो हो गया। जो जहाज इन मजदूरोंको लेकर आफ्रिका गया था उसीमें सत्याग्रहके महान् वृक्षका बीज भी वहाँ ले जाया गया था। हिन्दुस्तानमें नेटालके हिन्दुस्तानी दलालोंने इन मजदूरोंको कैसे धोखा दिया, कैसे ये लोग धोखेमें आकर नेटाल गये, नेटालमें जाकर उनकी आँखें कैसे खुलीं, आँखें खुलनेपर वे वहाँ कैसे रहे, उनके बाद दूसरे लोग वहाँ कैसे गये, उन्होंने वहाँ जाकर धर्म और नीति सम्बन्धी सारे बन्धन कैसे तोड़ डाले अथवा वे बन्धन कैसे टूट गये और कैसे विवाहित [स्त्री] और वेश्याके बीचका भेद बिलकुल मिट गया, इसकी कहानी तो इस छोटी-सी पुस्तकमें लिखी नहीं जा सकती।

ये मजदूर नेटालमें एग्रीमेंटके अन्तर्गत आये हुए मजदूर होनेके कारण अपनेको गिरमिटिया कहने लगे हैं। अतः हम अब एग्रीमेंटको गिरमिट और उसके अन्तर्गत भेजे गये मजदूरोंको गिरमिटिया कहेंगे।

नेटालमें गिरमिटिया मजदूरोंके भेजे जानेकी खबर मॉरिशसमें फैली तब सम्बन्धित हिन्दुस्तानी व्यापारी नेटाल जानेके लिए ललचाये। नेटाल और हिन्दुस्तानके बीच स्थित इस द्वीपमें हजारों हिन्दुस्तानी रहते हैं, जिनमें मजदूर भी हैं और व्यापारी भी। इनमें से एक व्यापारी स्वर्गीय अबूबकर आमदने नेटालमें अपनी पेढ़ी खोलनेका इरादा किया। उस समय नेटालके अंग्रेजोंको भी, हिन्दुस्तानी व्यापारी कितना कुछ कर सकते हैं, इसका अनुमान नहीं था। उनको इसकी परवाह भी नहीं थी। वे गिरमिटियोंकी सहायता से गन्ना, चाय और काफी आदि पैदा करके बड़ा मुनाफा कमा रहे थे और थोड़ी-सी ही अवधिमें चाय, काफी और गन्नेसे चीनी बनाकर दक्षिण आफ्रिकाको देने लगे थे। यह एक बड़ी बात थी। उन्होंने धन कमाकर बड़े-बड़े भवन बना लिए थे और जंगलमें मंगल होने लगे थे। ऐसी स्थितिमें सेठ अबूबकर-जैसे नेक, सरल और कुशल व्यापारीका उनके बीचमें आ बसना उनको क्यों खटकता? और फिर एक अंग्रेजने उनसे साझा भी कर लिया। सेठ अबूबकरने व्यापार किया, जमीन खरीदी और खूब पैसा कमाया। इसकी खबर उनके जन्मस्थान पोरबन्दर और उसके आसपासके शहरोंमें फैल गई। इसलिए दूसरे मेमन भी नेटाल पहुँचे। बादमें सूरतके और बोहरे भी वहाँ पहुँच गये। सेठोंको मुनीमोंकी जरूरत तो पड़ती ही है, इसलिए गुजरात और काठियावाड़के हिन्दू मुनीम भी वहाँ पहुँच गये।

इस प्रकार नेटालमें दो वर्गोंके हिन्दुस्तानी हो गये; एक स्वतन्त्र व्यापारी तथा उनके स्वतन्त्र कर्मचारी और दूसरे शर्तबन्द गिरमिटिया मजदूर। कुछ समयमें गिरमिटियोंकी सन्तानें हुईं। गिरमिटके कानूनके अनुसार यह सन्तान यद्यपि मजदूरी करनेके लिए बन्धी नहीं थीं, फिर भी उसपर इस कानूनकी कड़ी धारायें तो अवश्य ही लागू होती थीं। गुलामीकी छाप गुलामोंकी सन्तानपर लगे बिना कैसे रह सकती थी? ये गिरमिटिये पाँच-वर्षका करार करके वहाँ जाते थे। पाँच वर्षकी अवधि बीतनेपर वे मजदूरी करनेके लिए बाध्य नहीं थे; उनको अधिकार था कि यदि वे चाहें तो

वहाँ स्वतन्त्र रूपसे मजदूरी अथवा व्यापार करें और नेटालमें बस जायें। कुछ लोगोंने अपने इस अधिकारका उपयोग किया और कुछ हिन्दुस्तान वापस आ गये। जो लोग नेटालमें रह गये उनको वहाँ 'फ्री इंडियन' कहते थे। हम उनको गिरमिट-मुक्त अथवा संक्षेपमें मुक्त-हिन्दुस्तानी कहेंगे। यह अन्तर समझ लेनेकी जरूरत है, क्योंकि जो अधिकार केवल ऊपर बताये हुए व्यापारी, मुनीम आदि स्वतन्त्र हिन्दुस्तानियोंको प्राप्त थे वे सभी अधिकार गिरमिटमुक्त हिन्दुस्तानियोंको प्राप्त नहीं थे। उदाहरणके लिए उनको एक जगहसे दूसरी जगह जानेके लिए परवाना लेना जरूरी होता था। यदि वे विवाह करना चाहें और यह चाहें कि वह वैध माना जाये तो इसके लिए यह जरूरी था कि विवाह गिरमिटिया संरक्षक अधिकारीके कार्यालयमें दर्ज कराया जाये। इसके अतिरिक्त उनपर अन्य कड़े बन्धन भी लगे हुए थे।

हिन्दुस्तानी व्यापारियोंने देखा कि वे केवल गिरमिटियों और मुक्त हिन्दुस्तानियोंके साथ ही नहीं, हब्शियोंके साथ भी व्यापार कर सकते हैं। हब्शी लोगोंको हिन्दुस्तानी व्यापारियोंके साथ व्यापार करनेमें बड़ी सुविधा होती थी। वे गोरे व्यापारियोंसे बहुत डरते थे। गोरे व्यापारी हब्शियोंके साथ सौदा-सुलुफ तो चाहते थे, किन्तु हब्शी ग्राहक उनसे मिठास-भरे शब्दोंकी आशा नहीं कर सकता था। अपने पैसेके बदले पूरी चीज पा जाना ही हब्शी गनीमत मानता था। किन्तु कुछ लोगोंको ऐसा कटु अनुभव भी होता था कि चार शिलिंगकी चीज लेनी थी, चीज लेकर उसने एक पौंड तो दिया, बाकी रकम १६ शिलिंगके बजाय चार शिलिंग ही दी गई है अथवा बिलकुल नहीं दी गई। यदि गरीब ग्राहकने बाकी पैसा वापस माँगा अथवा हिसाबकी भूल दिखाई, तो उसे बदलेमें भौंडी गालियाँ मिलीं। यदि इतनेसे ही पीछा छूट गया तो गनीमत, कभी-कभी गालियोंके साथ लात और घूंसे भी खाने पड़ते थे। मेरे कहनेका मतलब यह नहीं है कि सभी अंग्रेज व्यापारी ऐसा कर सकते हैं। किन्तु यह तो अवश्य ही कहा जा सकता है कि ऐसे उदाहरण खासे मिलते हैं। इसके विपरीत हिन्दुस्तानी व्यापारी उनसे मिठासके साथ हँसकर ही बोलते हैं। हब्शी भोले होते हैं और दूकानमें जाकर चीजोंको अच्छी तरह देखना-भालना चाहते हैं। हिन्दुस्तानी व्यापारी इसको सहन करते हैं। यह सच है कि वे परमार्थकी दृष्टिसे ऐसा नहीं करते, उसमें उनकी स्वार्थ दृष्टि होती है; हिन्दुस्तानी व्यापारी अवसर मिलनेपर हब्शी ग्राहकोंको ठगनेसे नहीं चूकते, किन्तु वे फिर भी हब्शियोंमें लोकप्रिय हैं; इसका कारण उनकी यह मिठास ही है। इसके अतिरिक्त हब्शी हिन्दुस्तानी व्यापारियोंसे डरते तो बिलकुल ही नहीं हैं। इसके विपरीत ऐसे उदाहरण मौजूद हैं जहाँ किसी हिन्दुस्तानी व्यापारीने किसी हब्शी ग्राहकको ठगनेका प्रयत्न किया है और ग्राहकने पता चल जानेपर व्यापारीको मारा है। हिन्दुस्तानी व्यापारियोंने गालियाँ तो बहुत बार खाई हैं। इसलिए यदि हिन्दुस्तानी और हब्शियोंके मामलेमें किसीको डरनेकी बात है तो वह हिन्दुस्तानियोंको है। अन्तमें परिणाम यह निकला कि हिन्दुस्तानी व्यापारियोंको हब्शियोंसे व्यापार करना बहुत लाभप्रद लगा और हब्शी तो सारे दक्षिण आफ्रिकामें फैले हुए हैं।

१८८०-९० में ट्रान्सवाल और ऑरेन्ज फ्री स्टेट बोअर प्रजातन्त्र थे। इन प्रजातन्त्रोंमें हब्शियोंको कोई अधिकार प्राप्त नहीं थे। सारी सत्ता गोरे लोगोंके ही हाथमें थी।[1] हिन्दुस्तानी व्यापारियोंने सुन रखा था कि वे बोअरोंसे भी व्यापार कर सकते हैं। बोअर लोग सरल, भोले और आडम्बरहीन होते हैं। वे हिन्दुस्तानी व्यापारियोंसे माल खरीदनेमें लजाते नहीं हैं। इस कारण कुछ हिन्दुस्तानी व्यापारी ट्रान्सवाल और ऑरेन्ज फ्री स्टेटकी ओर भी गये और वहाँ उन्होंने दूकानें खोलीं। उन दिनों वहाँ रेलें नहीं थीं, इसलिए व्यापारमें लाभकी और भी अधिक सम्भावना थी। व्यापारियोंकी यह कल्पना ठीक निकली और बहुतसे बोअर और हब्शी उनका माल खरीदने लगे। अब रह गया केप कालोनी उपनिवेश। कुछ हिन्दुस्तानी व्यापारी वहाँ भी पहुँचे और खासी कमाई करने लगे। इस प्रकार चारों उपनिवेशोंमें थोड़े-बहुत हिन्दुस्तानी फैल गये।

इस समय दक्षिण आफ्रिकामें स्वतन्त्र हिन्दुस्तानियोंकी संख्या चालीस और पचास हजारके बीचमें है तथा मुक्त भारतीय और उनकी सन्तानोंकी संख्या लगभग एक लाख है।[2]

अध्याय ४

मुसीबतोंका सिंहावलोकन (१)

नेटाल

नेटालके गोरे जमींदारोंको तो सिर्फ गुलाम ही चाहिए थे। उनको ऐसे मजदूर अनुकूल पड़ ही नहीं सकते थे जो गिरमिट पूरी होनेपर स्वतन्त्र हो जायें और थोड़ी मात्रामें भी उनसे स्पर्धा करें। ये गिरमिटिये यद्यपि हिन्दुस्तानमें खेतीके कार्यमें सफल न होनेसे नेटाल गये थे, फिर भी वे ऐसे नहीं थे कि उनको खेतीका कोई ज्ञान न हो अथवा वे जमीन या खेतीकी कीमत न समझते हों। उन्होंने देखा कि यदि वे नेटालमें साग-भाजी बोयें तो बहुत-कुछ पैदा कर सकते हैं और यदि एक छोटा-सा जमीनका टुकड़ा भी ले लेते हैं तो उसमें खेती करके अपेक्षाकृत अधिक पैसा कमा सकते हैं। इसलिए बहुतसे गिरमिटियोंने मुक्त होनेपर कोई-न-कोई छोटा-मोटा धन्धा आरम्भ कर दिया। इससे कुल मिलाकर नेटाल-जैसे देशके लोगोंको लाभ ही पहुँचा। वहाँ चतुर किसानोंके अभावमें साग-भाजी पैदा नहीं होती थी, वह पैदा होने लगी या जहाँ साग-भाजी बहुत कम पैदा होती थी, वह बड़ी मात्रामें पैदा होने लगी। इससे साग-भाजियोंकी कीमतें बिलकुल कम हो गईं; किन्तु यह बात धनी गोरे किसानोंको अच्छी नहीं लगी। उनको लगा कि अबतक जिस खेतीमें केवल उनका इजारा था उसमें अब भागीदार पैदा हो गये हैं। इस कारण उन्होंने इन गरीब गिरमिटियोंके

१. ये दो वाक्य अंग्रेजीसे अनूदित हैं।

२. यह अनुच्छेद अंग्रेजीसे लिया गया है। मूल गुजरातीमें इसके स्थानपर निम्न पंक्तियाँ हैं: "यह लिखते समय वहाँ स्वतन्त्र भारतीयोंकी संख्यामें कुछ कमी ही हुई होगी किन्तु वृद्धि तो बिलकुल नहीं हुई!"

विरुद्ध आन्दोलन शुरू कर दिया। पाठकोंको यह जानकर आश्चर्य होगा कि वे लोग जहाँ एक ओर ज्यादासे-ज्यादा मजदूरोंकी माँग करते और जितने हिन्दुस्तानी गिर-मिटिया आते थे उनको तुरन्त ही खपा लेते थे, वहाँ दूसरी ओर उनपर अनेक प्रकारके दबाव डालनेके लिए आन्दोलन करते थे। गिरमिटियोंको उनकी चतुराई और तनतोड़ मेहनतका यह बदला मिला।

इस आन्दोलनमें विभिन्न पक्षोंने विभिन्न माँगें रखीं। एक पक्षने यह माँग की कि गिरमिटसे मुक्त गिरमिटिये फिर हिन्दुस्तान भेज दिये जायें, पुराने करारका रूप बदल दिया जाये और नये करारके अन्तर्गत आनेवाले नये गिरमिटियोंपर यह शर्त लागू की जाये कि वे गिरमिट खतम होनेपर वापस हिन्दुस्तान चले जायेंगे; अथवा फिरसे करार करके गिरमिटिया बन जायेंगे। एक दूसरे पक्षने कहा कि जो लोग गिरमिटसे मुक्त होकर फिर गिरमिटमें न बँधना चाहें उनसे काफी अधिक वार्षिक व्यक्ति-कर लिया जाये। उद्देश्य इन दोनों पक्षोंका एक ही था अर्थात् यह कि येन केन प्रकारेण गिरमिटियोंके वर्गको नेटालमें स्वतन्त्र होकर न रहने दिया जाये। गोरोंका यह हो-हल्ला इतना बढ़ा कि अन्तमें नेटालकी सरकारको एक आयोग[1] नियुक्त करना पड़ा। ये दोनों ही माँगें बिलकुल अनुचित थीं और चूँकि गिरमिटियोंके रहनेसे आर्थिक दृष्टिसे सभी लोगोंको लाभ ही लाभ था, इसलिए आयोगके सम्मुख जो स्वतन्त्र गवा-हियाँ दी गईं वे सभी उन दोनों माँगोंके विरुद्ध रहीं। अतः विरोधी पक्षकी दृष्टिसे इस आन्दोलनका तात्कालिक परिणाम तो कुछ भी नहीं निकला; किन्तु जैसे आग बुझा दिये जानेपर भी उसके कुछ निशान रह जाते हैं वैसे ही नेटाल सरकारपर भी इस आन्दोलनका प्रभाव पड़े बिना न रहा। प्रभाव न रहता, यह हो भी कैसे सकता था। नेटालकी सरकार मुख्यतः धनिक वर्गकी समर्थक थी। उसने हिन्दुस्तानकी सर-कारसे पत्र-व्यवहार आरम्भ किया और दोनों पक्षोंके सुझाव उसके पास भेजे। किन्तु हिन्दुस्तानकी सरकार ऐसे सुझावोंको, जिनसे गिरमिटिये सदाके लिए गुलामीमें बँध जायें एकाएक कैसे स्वीकार कर सकती थी। हिन्दुस्तानियोंको गिरमिटिये बनाकर इतनी दूर भेजनेका एक कारण अथवा बहाना यह भी बताया जाता था कि गिरमिटिये गिरमिट पूरी होनेके बाद स्वतन्त्र होकर अपनी शक्तिका पूरा विकास करके अपनी आर्थिक स्थिति सुधार सकेंगे। उस समय नेटाल शाही उपनिवेश था इसलिए उपनिवेश कार्या-लय भी इस उपनिवेशके शासनके प्रति पूर्ण उत्तरदायी माना जाता था, अतः वह नेटालकी इस अन्यायपूर्ण इच्छा की पूर्तिमें कोई सहायता नहीं कर सकता था। इस कारण और इस प्रकारके दूसरे कारणोंसे नेटालमें उत्तरदायी शासनके लिए आन्दोलन प्रारम्भ किया गया और उसको १८९३-९४में इस प्रकारकी शासन-सत्ता मिल गई; और नेटालने अपनी माँगें प्रबल रूपसे सामने रखना आरम्भ कर दिया। उपनिवेश कार्यालयको भी नेटालकी किसी भी तरहकी माँगें स्वीकार करनेमें कोई कठिनाई नहीं बची थी। फलतः नेटालकी नई सरकारने हिन्दुस्तानकी सरकारसे बातचीत करनेके लिए अपना प्रतिनिधि भेजा। माँग यह थी कि प्रत्येक गिरमिट-मुक्त हिन्दुस्तानीपर २५

१. भारतीय प्रवासी आयोग; देखिए खण्ड १, पृष्ठ ३८१।

पौंड या ३७५ रुपया वार्षिक व्यक्ति-कर लगाया जाये। इसका अर्थ यही होता था कि चूंकि किसी भी हिन्दुस्तानी मजदूरके लिए इतना कर दे सकना सम्भव नहीं था, अतः नेटालमें उसका स्वतन्त्र रूपसे रह सकना भी सम्भव न रहा। उस समय लॉर्ड एलगिन हिन्दुस्तानके वाइसराय थे। उनको यह माँग बहुत ज्यादा लगी, किन्तु अन्तमें उन्होंने तीन पौंड वार्षिक व्यक्ति-कर लगानेकी माँग स्वीकार कर ली। कमाईको देखें तो यह तीन पौंडका कर किसी गिरमिटियाकी छः मासकी मजदूरीके बराबर है।[1] फिर यह कर केवल मजदूरपर ही नहीं था, बल्कि उसकी स्त्री, तेरह साल या ज्यादा उम्रकी लड़की और १६ साल या ज्यादा उम्रके लड़केपर भी था। ऐसा मजदूर शायद ही कोई हो जिसके स्त्री और दो बच्चे न हों; इसलिए सामान्यतः प्रत्येक मजदूरको १२ पौंड वार्षिक कर देना आवश्यक हो गया। यह कर कितना दुःखदाई सिद्ध हुआ इसका वर्णन नहीं किया जा सकता। इस दुःखको तो भुक्तभोगी अथवा वही जिसने इसे आँखों देखा हो कुछ-कुछ समझ सकता है। नेटाल सरकारके इस कदमके विरुद्ध हिन्दुस्तानी बहुत जूझे। उन्होंने ब्रिटिश सरकारको और हिन्दुस्तानकी सरकारको अर्जियाँ भेजीं; किन्तु उनका परिणाम इससे अधिक कुछ न निकला कि २५ पौंडकी माँगकी बजाय कर ३ पौंड तय हुआ। स्वयं गिरमिटिये तो इस सम्बन्धमें क्या कर अथवा समझ सकते थे? यह लड़ाई तो केवल हिन्दुस्तानी व्यापारी वर्गने अपने देशप्रेमके कारण अथवा परमार्थकी दृष्टिसे ही की थी।

जो हालत गिरमिटियोंकी हुई बादमें वही स्वतन्त्र भारतीयोंकी भी हुई। नेटालके गोरे व्यापारियोंने लगभग इन्हीं कारणोंसे उनके विरुद्ध भी आन्दोलन शुरू कर दिया। हिन्दुस्तानी व्यापारी अच्छी तरह जम चुके थे। उन्होंने अच्छे-अच्छे अंचलोंमें जमीनें खरीद ली थीं। गिरमिटसे छूटे हुए हिन्दुस्तानियोंकी संख्या ज्यों-ज्यों बढ़ती गई त्यों-त्यों हिन्दुस्तानियोंकी आवश्यकताकी चीजें ज्यादा बिकने लगीं। हिन्दुस्तानसे हजारों बोरी चावल यहाँ आता और उससे अच्छा लाभ मिलता। इस व्यापारका अधिकांश भाग स्वभावतः हिन्दुस्तानी व्यापारियोंके हाथोंमें ही रहा। इसके अतिरिक्त हब्शियोंके साथ होनेवाले व्यापारका भी अच्छा भाग उनके हाथोंमें आ गया। यह बात छोटे गोरे व्यापारियोंको सहन नहीं हुई। फिर कुछ अंग्रेजोंने ही इन हिन्दुस्तानी व्यापारियोंको यह बताया कि कानूनके मुताबिक उनको भी नेटालकी विधान सभामें सदस्य बनने और सदस्य चुननेका अधिकार है। अतः कुछ लोगोंने अपने नाम भी मतदाताओंमें लिखाये। नेटालके गोरे राजनीतिज्ञ इस स्थितिको सहन न कर सके, क्योंकि उनको यह चिन्ता हो गई कि यदि हिन्दुस्तानियोंकी स्थिति नेटालमें दृढ़ हो गई और उनकी प्रतिष्ठा बढ़ी तो गोरे उनकी स्पर्धामें कैसे टिक सकेंगे। इसलिए उत्तरदायी सरकारने स्वतन्त्र हिन्दुस्तानियोंके सम्बन्धमें पहला कदम यह उठाया कि उन्होंने ऐसा कानून बना दिया जिससे एक भी नया हिन्दुस्तानी मतदाता न बन सके। उन्होंने इस सम्बन्धमें पहला विधेयक[2] नेटालकी विधानसभामें सन् १८९४ में रखा। इस विधेयकमें यह

१. यह वाक्य अंग्रेजीसे लिया गया है।

२. मताधिकार कानून संशोधन विधेयक।

सिद्धान्त निहित था कि हिन्दुस्तानियोंको हिन्दुस्तानीके रूपमें मत देनेका अधिकार न रहे। नेटालमें हिन्दुस्तानियोंके विरुद्ध रंग-भेदके आधारपर उठाया गया यह पहला कानूनी कदम था। हिन्दुस्तानी लोगोंने इसका विरोध किया। उन्होंने रातों-रात एक अर्जी तैयार की और उसपर चार सौ लोगोंके हस्ताक्षर लिये गये।[1] जब यह अर्जी विधानसभामें गई तो वह चौंक उठी। किन्तु विधेयक तो पास कर ही दिया गया। उस समय लॉर्ड रिपन[2] उपनिवेश मन्त्री थे। इस सम्बन्धमें उनको एक अर्जी भेजी गई। इस अर्जीपर दस हजार हिन्दुस्तानियोंने हस्ताक्षर किये। दस हजार हस्ताक्षरोंका अर्थ है नेटालके लगभग सभी स्वतन्त्र हिन्दुस्तानियोंके हस्ताक्षर। लॉर्ड रिपनने इस विधेयकको अस्वीकार[3] कर दिया और कहा कि ब्रिटिश साम्राज्य कानूनमें रंग-भेद स्वीकार नहीं कर सकता। हिन्दुस्तानियोंकी यह जीत कितनी महत्वपूर्ण थी, यह बात आगे चलकर अधिक समझमें आयेगी। नेटालकी सरकारने उत्तरमें एक नया विधेयक प्रस्तुत किया। उसमें रंगभेदकी बात तो नहीं रखी गई, किन्तु अप्रत्यक्ष रूपसे प्रहार हिन्दुस्तानियोंपर ही किया गया था। हिन्दुस्तानी लोगोंने उसके विरुद्ध लड़ाई की, किन्तु वह निष्फल हुई। इस कानूनकी दो व्याख्याएँ हो सकती थीं। उसकी व्याख्या स्पष्ट करानेके लिए हिन्दुस्तानी लोग अन्तिम अदालत अर्थात् प्रिवी कौंसिलतक लड़ सकते थे। किन्तु यह ठीक नहीं समझा गया। मुझे अब भी ऐसा लगता है कि इसके विरुद्ध न लड़ना ही ठीक था। मूल बात स्वीकार कर ली गई, इतना ही बहुत था।

किन्तु नेटालके गोरों अथवा सरकारको चैन कहाँ! हिन्दुस्तानियोंको राजनैतिक अधिकार न मिलने देना तो जरूरी था ही, किन्तु उनकी दृष्टि तो असलमें हिन्दुस्तानियोंके व्यापार और स्वतन्त्र हिन्दुस्तानियोंके प्रवेशपर थी। वे इस भयसे व्याकुल हो गये कि यदि तीस करोड़की आबादीवाला हिन्दुस्तान नेटालकी ओर उमड़ पड़े तो नेटालके गोरोंकी क्या दशा होगी। वे तो उस जन-समुद्रमें विलीन ही हो जायेंगे। नेटालमें आबादी लगभग इस तरह है: ४,००,००० हब्शी, ४०,००० गोरे[4], ३६०,००० गिरमिटिये, १०,००० गिरमिट-मुक्त हिन्दुस्तानी और १०,००० स्वतन्त्र हिन्दुस्तानी। गोरोंके इस भयका कोई ठोस कारण नहीं था। किन्तु भयभीत मनुष्यको तर्कसे समझाया नहीं जा सकता। उन्होंने यह नहीं सोचा कि हिन्दुस्तान परतन्त्र है। उनको हिन्दुस्तानके रीति-रिवाजोंकी जानकारी भी नहीं थी। और इस कारण उनके मनमें एक प्रकारका भय पैदा हो गया था और उन्होंने यह सीधा-सा हिसाब लगा लिया कि जैसे साहसी और शक्तिमान वे स्वयं हैं अवश्य ही हिन्दुस्तानी भी वैसे ही साहसी और शक्तिमान

१. देखिए खण्ड १, पृष्ठ ९३-९८।

२. १८२७-१९०९; भारतके वाइसराय, १८८०-४; उपनिवेश मन्त्री, १८९२-९५। प्रार्थनापत्रके पाठके लिए देखिए खण्ड १, पृष्ठ १८९-२११।

३. साम्राज्यीय सरकारने विधेयकपर मंजूरी न देनेके अपने इरादेकी सूचना १२ सितम्बर, १८९५को नेटाल सरकारको दी थी।

४. खण्ड ३ के अनुसार; "...उपनिवेशमें गोरे लोगोंकी आबादी ६०,००० है और इतनी ही बड़ी संख्यामें वहाँ ब्रिटिश भारतीय बसे हुए हैं।" पृष्ठ २६२।

होंगे। इसमें उनको दोष कैसे दें? कुछ भी हो, किन्तु इसका परिणाम यह हुआ कि नेटालकी विधानसभामें दो दूसरे कानून[1] स्वीकार किये गये। इन कानूनोंमें भी मताधिकार सम्बन्धी लड़ाईमें हुई जीतके फलस्वरूप रंगभेदको सामने न रखकर कूट भाषासे काम लिया गया। फलस्वरूप स्थितिकी कुछ रक्षा हुई। हिन्दुस्तानी लोग इस बार भी खूब लड़े; किन्तु कानून तो फिर भी पास हो ही गये। एक कानूनसे हिन्दुस्तानियोंके व्यापारपर कड़ा प्रतिबन्ध लगा और दूसरेसे हिन्दुस्तानियोंके प्रवेशपर। पहलेके मुताबिक इस कानूनके अन्तर्गत नियुक्त किये गये परवाना अधिकारीकी मंजूरीके बिना किसीको भी व्यापारका परवाना नहीं मिल सकता था। किन्तु व्यवहारमें होता यह था कि गोरा कोई भी जाये उसे परवाना मिल जाता और हिन्दुस्तानीको परवाना लेनेमें भारी परेशानी उठानी पड़ती। उसे वकील आदिका खर्च तो उठाना ही होता था। इस कारण ऐसा-वैसा हिन्दुस्तानी व्यापारी तो इस खट-पटमें नहीं पड़ता था। दूसरे कानूनकी मुख्य शर्त यह थी कि जो हिन्दुस्तानी किसी यूरोपीय भाषामें अर्जी लिख सकता है वही नेटालमें प्रवेश कर सकता है। इसका अर्थ यह हुआ कि हिन्दुस्तानियोंके लिए नेटाल आनेका द्वार बन्द ही हो गया। जाने-अनजाने नेटाल सरकारके प्रति अन्याय न हो जाये, इसलिए मुझे यह बता देना चाहिए कि जो हिन्दुस्तानी यह कानून बननेसे पहले नेटालमें बस गये थे और फिर नेटाल छोड़कर हिन्दुस्तान अथवा किसी दूसरी जगह चले गये हों, वे इच्छा होनेपर 'यूरोपकी कोई भाषा जाने बिना ही अपनी स्त्री और अपने अवयस्क बच्चोंके सहित नेटालमें आ सकते थे।

नेटालके गिरमिटियों और स्वतन्त्र हिन्दुस्तानियोंके विरुद्ध इनके अतिरिक्त कानूनी और दीगर अन्य निर्योग्यताएँ भी थीं और इस समय भी हैं। पाठकोंको उन सबकी जानकारी देना मुझे जरूरी नहीं लगता। इस पुस्तकके विषयको समझनेके लिए जितना जानना जरूरी है मैं केवल उतना ही देना ठीक समझता हूँ। पाठक यह तो समझ ही सकते हैं कि दक्षिण आफ्रिकाके सभी उपनिवेशोंमें हिन्दुस्तानियोंकी स्थितिका इतिहास बहुत विस्तृत होगा; किन्तु वह सारा इतिहास देना इस पुस्तकका उद्देश्य कदापि नहीं है।

अध्याय ५

मुसीबतोंका सिंहावलोकन (२)

ट्रान्सवाल और दूसरे उपनिवेश

नेटालकी तरह दक्षिण आफ्रिकाके दूसरे उपनिवेशोंमें भी हिन्दुस्तानियोंके प्रति कम ज्यादा द्वेष-भाव सन् १८८० के पहलेसे ही आरम्भ हो गया था। केप कालोनीको छोड़कर अन्य सभी उपनिवेशोंका यही एक मत बन गया था कि हिन्दुस्तानी मजदूरोंके रूपमें बहुत अच्छे हैं। किन्तु बहुतसे गोरोंके मनमें यह बात घर कर गई थी कि

१. विक्रेता परवाना अधिनियम और प्रवासी प्रतिबन्धक अधिनियम, १८९७; देखिए खण्ड २, पृष्ठ २६७-२७३ और ३७९-३८६।

स्वतन्त्र हिन्दुस्तानियोंसे तो दक्षिण आफ्रिकाको हानि ही पहुँचती है। ट्रान्सवाल प्रजातन्त्रीय शासन था। ट्रान्सवालके राष्ट्रपतिसे अपने ब्रिटिश प्रजा होनेकी बात कहना अपनी हँसी कराने जैसा था। यदि हिन्दुस्तानियोंको कोई शिकायत करनी हो तो वे केवल ब्रिटिश राजदूतके सामने ही उसे पेश कर सकते थे। किन्तु आश्चर्य तो यह है कि ट्रान्सवाल जब ब्रिटिश साम्राज्यसे बिलकुल अलग था तब ब्रिटिश राजदूत जो सहायता कर पाता था ट्रान्सवालके ब्रिटिश साम्राज्यमें आनेपर उस सहायताका मिलना बिलकुल बन्द हो गया। लॉर्ड मॉर्लेके[1] भारत मन्त्री रहते हुए जब ट्रान्सवालके हिन्दुस्तानियोंका शिष्टमण्डल[2] अपना मामला लेकर उनके पास गया था तब उन्होंने यह साफ-साफ कहा था, 'आप तो जानते ही हैं कि उत्तरदायी शासन प्राप्त राज्योंपर ब्रिटिश सरकारका नियन्त्रण बहुत कम है। ब्रिटिश सरकार स्वतन्त्र राज्योंको लड़ाईकी धमकी दे सकती है और उनसे लड़ाई कर भी सकती है, किन्तु उपनिवेशोंसे तो केवल बातचीत ही की जा सकती है। उनके साथ ब्रिटिश सरकारका सम्बन्ध रेशमके धागेकी तरह बहुत ही नाजुक है और वह थोड़ा-सा भी खींचनेसे टूट जा सकता है। उनके मामलेमें शक्तिसे तो काम लिया ही नहीं जा सकता। इसलिए मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि युक्तिसे जितना कर सकूँगा उतना सब करूँगा। और पहले जब ट्रान्सवालसे लड़ाई छिड़ी थी तो लॉर्ड लैन्सडाउन, लॉर्ड सेल्बोर्न और दूसरे अंग्रेज अधिकारियोंने कहा था कि लड़ाईका एक कारण वहाँके हिन्दुस्तानियोंकी दुःखजनक स्थिति भी है।

अब हम इन दुःखोंके सम्बन्धमें विचार करें। हिन्दुस्तानी ट्रान्सवालमें पहले-पहल १८८१ में आये थे। स्वर्गीय सेठ अबूबकरने ट्रान्सवालकी राजधानी प्रिटोरियामें दूकान खोली और उसके मुख्य मुहल्लेमें जमीन भी खरीदी। फिर वहाँ एकके बाद एक दूसरे व्यापारी भी गये। उनका व्यापार बड़ी तेजीसे चला इसलिए गोरे व्यापारियोंको उनसे ईर्ष्या हुई। हिन्दुस्तानियोंके विरुद्ध अखबारोंमें लेख लिखे जाने लगे। ट्रान्सवालकी विधानसभामें अर्जियाँ दी गईं और उनमें माँग की गई कि हिन्दुस्तानियोंको निकाल दिया जाये और उनका व्यापार बन्द कर दिया जाय। इस नये देशमें गोरोंकी घनेषणाका पार नहीं था। नीति और अनीतिमें वे कदाचित् ही भेद करते थे। विधान सभामें दी गई उनकी याचिकामें इन वाक्योंको देखिए: "ये लोग (हिन्दुस्तानी व्यापारी) मानवीय सभ्यताको जानते ही नहीं। वे बदचलनीसे होनेवाली बीमारियोंसे सड़ रहे हैं। वे सभी स्त्रियोंको अपना शिकार समझते हैं और उनमें आत्मा नहीं मानते।" इन चारों वाक्योंमें से हरएकमें एक-एक झूठ है। ऐसे बहुतसे दूसरे उदाहरण भी दिये जा सकते हैं। जैसे लोग होते हैं वैसे ही उनके प्रतिनिधि होते हैं। हमारे व्यापारियोंको इस बातका पता भी कैसे चलता कि उनके विरुद्ध ऐसी बेहूदी और अन्यायपूर्ण हलचल की जा रही है। वे अखबार भी नहीं पढ़ते थे। अखबारोंकी हलचल और अर्जियोंका असर विधान सभापर हुआ और उसमें एक विधेयक प्रस्तुत

१. (१८३८-१९२३) भारत-मंत्री, १९०५-१०।

२. देखिए खण्ड ६, पृष्ठ २१९-२३१ तथा २३५-३७।

किया गया। इस विधेयककी बात जब हिन्दुस्तानी नेताओंके कानोंमें पड़ी तो वे चौंके। वे राष्ट्रपति क्रूगरके पास गये। स्वर्गीय राष्ट्रपतिने उनको घरमें घुसने भी नहीं दिया। घरके आँगनमें खड़े-खड़े ही उन्होंने उनकी थोड़ी-बहुत बात सुनी। उन्होंने उसके बाद कहा: 'आप तो इस्माइलकी[1] सन्तान हैं; इसलिए आप ईसाकी[2] सन्तानकी गुलामी करनेके लिए ही जन्मे हैं। हम तो ईसाकी सन्तान माने जाते हैं; इसलिए आपको हमारे बराबर अधिकार तो दिया ही नहीं जा सकता। हम आपको जो-कुछ देते हैं आपको उसीसे सन्तोष मानना चाहिए' इसमें कुछ द्वेष या रोष था हम ऐसा नहीं कह सकते। राष्ट्रपति क्रूगरकी शिक्षा ही इस प्रकारकी हुई थी। उनको बचपनमें 'बाइबिल' के पुराने करारमें दी हुई बातें पढ़ा दी गई थीं। उनका उनमें विश्वास था। यदि कोई मनुष्य जैसा उसका विश्वास है वैसा शुद्ध मनसे कहे तो इसमें उसको दोष कैसे दिया जा सकता है? किन्तु शुद्ध हृदयसे उत्पन्न अज्ञानका असर भी बुरा तो होता ही है। परिणाम यह हुआ कि सन् १८८५ में विधानसभाने जल्दी-जल्दी कुछ इस भावसे एक बहुत कड़ा कानून पास कर दिया, मानो हजारों हिन्दुस्तानी ट्रान्सवालमें घुसकर लूटपाट करनेके लिए मौकेकी तलाशमें हों। अंग्रेज राजदूतको हिन्दुस्तानी नेताओंकी प्रेरणासे इस कानूनके विरुद्ध कदम उठाना पड़ा।[3] मामला उपनिवेश मन्त्रीके[4] पास तक गया। कानूनमें कहा गया था कि उपनिवेशमें आनेवाले हिन्दुस्तानियोंसे प्रतिव्यक्ति २५ पौंड पंजीयन शुल्कके लिये जायें। वे इसके अनुसार एक इंच भी जमीन नहीं ले सकते थे और मतदाता तो बन ही नहीं सकते थे। यह सब इतना अनुचित था कि ट्रान्सवालकी सरकार तर्कसे उसका बचाव नहीं कर सकती थी। ट्रान्सवालकी सरकार और ब्रिटिश सरकारके बीच एक संधि हुई थी जो लन्दन-समझौतेके नामसे प्रसिद्ध थी। उसकी १४ वीं धारामें यह शर्त थी कि उपनिवेशमें ब्रिटिश प्रजाजनोंके अधिकारोंकी रक्षा की जायेगी।[5] ब्रिटिश सरकारने इस धाराके आधारपर इस कानूनका विरोध किया। ट्रान्सवालकी सरकारने यह तर्क दिया कि जो कानून बनाया गया है उसपर ब्रिटिश सरकार स्वयं पहले प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष स्वीकृति दे चुकी है।

इस प्रकार दोनों पक्षोंमें मतभेद होनेके कारण यह विवाद पंचोंके सम्मुख गया। इसमें पंचायतने जो फैसला दिया वह निरर्थक सिद्ध हुआ; उसने दोनों पक्षोंको प्रसन्न रखनेका प्रयत्न किया। परिणाममें हिन्दुस्तानियोंकी हानि ही हुई। लाभ उससे केवल इतना ही हुआ कि जितनी हानिकी आशंकाथी उतनी हानि नहीं हुई। इस पंच-निर्णयके अनुसार सन् १८८६ में कानूनमें सुधार किया गया। इसके अनुसार आनेवाले हिन्दु-

१. हजरत इब्राहीमकी हाजरा (दासी) से उत्पन्न पुत्र। मुसलमान इन्हींकी सन्तान बताये जाते हैं। मुहम्मद साहब इन्हींके वंशमें उत्पन्न हुए थे।

२. हजरत इब्राहीमकी ज्येष्ठा पत्नी साराके पुत्र इशाकके बेटे।

३. देखिए खण्ड १, पृष्ठ १७७-७८।

४. देखिए खण्ड १, पृष्ठ १८९-२११।

५. देखिए खण्ड २, पृष्ठ ७०-७१।

स्तानियोंसे ली जानेवाली पंजीयन शुल्ककी रकम २५ पौंडके बजाय तीन पौंड कर दी गई और जमीनें खरीदनेपर पाबन्दीकी जो कड़ी शर्त थी उसकी जगह यह शर्त रख दी गई कि ट्रान्सवाल सरकार जिस क्षेत्र या बाड़ेमें निश्चित करे हिन्दुस्तानी वहाँ जमीन खरीद सकते हैं। सरकारने इस धारापर भी ईमानदारीसे अमल नहीं किया, इसलिए इन क्षेत्रों या बाड़ोंमें भी उनको जमीनकी जड़-खरीदका अधिकार नहीं दिया।[1] ये बाड़े जिन शहरोंमें हिन्दुस्तानी रहते थे उनमें बस्तीसे बहुत दूर और बहुत ही गन्दी जगहोंमें रखे गये। वहाँ पानी और रोशनीकी सुविधा तथा पाखाना-सफाई करनेकी व्यवस्था भी पर्याप्तिसे बहुत कम ही थी। इससे हम हिन्दुस्तानी ट्रान्सवालकी पंचम जाति बन गये और यह कहा जा सकता है कि इन बाड़ोंमें और हिन्दुस्तानके ढेढ़-वाडोंमें बिलकुल अन्तर नहीं रहा। जैसे हिन्दू ढेढ़को छूकर अथवा ढेढ़ोंके पड़ोसमें रहकर अपनेको भ्रष्ट हुआ मानता है वैसे ही गोरे भी हिन्दुस्तानियोंके स्पर्श और पड़ोससे अपनेको भ्रष्ट मानते थे। स्थिति लगभग ऐसी ही आ गई थी। इसके अलावा सन् १८८५ के कानून (३) का अर्थ ट्रान्सवालकी सरकारने यह किया कि हिन्दुस्तानी व्यापारी व्यापार भी इन बाड़ोंमें ही कर सकते हैं। उसका यह अर्थ ठीक है या नहीं, पंचायतने इसका फैसला करना ट्रान्सवालकी अदालतोंपर छोड़ दिया था; इसलिए हिन्दुस्तानी व्यापारियोंकी स्थिति अत्यन्त संकटपूर्ण हो गई। फिर भी उन्होंने कहीं बातचीत, कहीं मुकदमा और किसी जगह सिफारिशसे काम लेना शुरू किया। वे इस तरह अपनी स्थितिकी रक्षा कर सके। जिस समय बोअर युद्ध शुरू हुआ उस समय ट्रान्सवालकी स्थिति ऐसी ही दुःखद और अनिश्चित थी।[2]

अब हम ऑरेन्ज फ्री स्टेटकी स्थिति देखें। वहाँ हिन्दुस्तानियोंकी दस-पन्द्रहसे ज्यादा दूकानें भी नहीं खुल पाई होंगी कि गोरोंने तभीसे भारी आन्दोलन आरम्भ कर दिया। वहाँकी विधान सभाने सावधानीसे काम लिया और इस झगड़ेकी जड़ ही काट दी। उसने एक कड़ा कानून बनाया और थोड़ा-सा मुआवजा देकर सभी हिन्दुस्तानी व्यापारियोंको ऑरेंज फ्री स्टेटसे निकाल दिया। इस कानूनके अनुसार हिन्दुस्तानी व्यापारी जमीनोंके मालिक या किसानोंके रूपमें राज्यमें नहीं बस सकते थे और मतदाता तो बन ही नहीं सकते थे। वे विशेष स्वीकृति लेकर मजदूरों अथवा होटलोंके बैरोंके रूपमें वहाँ रह सकते थे; किन्तु ऐसी स्वीकृति भी सभी प्रार्थियोंको नहीं मिल सकती थी। इसका परिणाम यह हुआ कि ऑरेंज फ्री स्टेटमें कोई प्रतिष्ठित हिन्दुस्तानी दो चार दिन रहना चाहे तो यह भी बहुत कठिनाईसे ही हो सकता था। लड़ाईके दिनोंमें वहाँ लगभग चालीस हिन्दुस्तानी बैरे थे। उनके अतिरिक्त वहाँ दूसरा कोई हिन्दुस्तानी नहीं था।[3]

केप कालोनीमें यद्यपि अखबारोंमें हिन्दुस्तानियोंके विरुद्ध थोड़ा-बहुत आन्दोलन होता रहता था — हिन्दुस्तानी बालक शालाओंमें नहीं जा सकते थे, हिन्दुस्तानी यात्री

१. देखिए खण्ड २, पृष्ठ ३१ से ३३ और १४९-५०।
२. देखिए खण्ड २, पृष्ठ ३५१-२।
३. देखिए खण्ड २, पृष्ठ ७४-५।

होटलोंमें कदाचित् ही ठहर सकते थे, हिन्दुस्तानियोंके प्रति अपमानजनक व्यवहार तो वहाँ भी था —— फिर भी वहाँ वाणिज्य-व्यापार अथवा जमीनके स्वामित्वके बारेमें बहुत समयतक कोई रोकथाम नहीं थी।

यहाँ मुझे इस स्थितिके कारण देने चाहिए। एक तो मुख्यतः केपटाउन और सामान्यतः केप कालोनीमें मलायी लोगोंकी खासी आबादी थी। यह बात हम पहले ही लिख चुके हैं। मलायी लोग मुसलमान हैं, इसलिए जल्दी ही हिन्दुस्तानी मुसलमानोंसे उनके सम्बन्ध बन गये और उनकी मार्फत दूसरे हिन्दुस्तानियोंसे भी उनका थोड़ा-बहुत सम्बन्ध तो हुआ ही। फिर कुछ हिन्दुस्तानी मुसलमानोंके मलायी स्त्रियोंसे विवाह-सम्बन्ध भी हुए। केपकी सरकार मलायी लोगोंके विरुद्ध किसी प्रकारका कानून तो बना ही कैसे सकती थी? केप कालोनी उनकी जन्म भूमि थी और उनकी भाषा भी डच थी। वे लोग डचोंके साथ पहलेसे रहते चले आते थे, इसलिए रहन-सहनमें भी उन्होंने उनका अनुकरण किया है। इन कारणोंसे केप कालोनीमें सदा ही रंग-द्वेष बहुत कम रहा है।

फिर केप कालोनी सर्वाधिक पुराना उपनिवेश है और दक्षिण आफ्रिकामें शिक्षाका केन्द्र है। इस कारण वहाँ प्रौढ़, विनयशील और उदार-हृदय गोरे भी उत्पन्न हुए हैं। मेरा मत तो यह है कि दुनियामें कोई जगह या कोई जाति ऐसी नहीं है, जहाँ या जिसमें उपयुक्त अवसर मिले या उचित शिक्षा दी जाये तो सुन्दरसे-सुन्दर मानव-पुष्प न खिल सकें। मैंने सौभाग्यसे दक्षिण आफ्रिकामें सभी जगह इसके उदाहरण देखे हैं। किन्तु केप कालोनीमें ऐसे लोगोंकी संख्या बहुत अधिक थी। इन लोगोंमें सबसे अधिक प्रसिद्ध और विद्वान श्री मेरीमैन हैं। ये केप कालोनीमें १८७२ में उत्तरदायी शासन मिलनेके बाद मन्त्री बनाये गये थे और उसके बादके मन्त्रिमण्डलमें भी सम्मिलित रहे। जब १९१० में दक्षिण आफ्रिकी संघ बना तब ये अन्तिम मन्त्रि-मण्डलमें प्रधान मन्त्री थे। वे दक्षिण आफ्रिकाके ग्लेड्स्टन माने जाते हैं। श्री मेरीमैनके बाद श्री मॉल्टेनो और श्री श्राइनरके परिवार हैं। सर जॉन मॉल्टेनो १८७२ में कालोनीके प्रथम मन्त्रिमण्डलमें प्रधान मन्त्री थे। श्री डब्ल्यू० पी० श्राइनर प्रसिद्ध वकील हैं। वे कालोनीके अटर्नी जनरल और प्रधानमन्त्री रह चुके हैं। उनकी बहन ऑलिव श्राइनर दक्षिण आफ्रिकाकी लोकप्रिय महिला हैं और जहाँ अंग्रेजी भाषा बोली जाती है वहाँ सर्वत्र प्रसिद्ध हैं। उनको मनुष्य-मात्रसे असीम प्रेम है। इन महिलाने जबसे 'ड्रीम्स' नामकी पुस्तक लिखी है, तबसे वे 'ड्रीम्स'की लेखिकाके नामसे प्रसिद्ध हैं। ये इतनी सरल स्वभावकी थीं कि ऐसे प्रसिद्ध परिवारमें उत्पन्न होने और इतनी विदुषी होनेपर भी वे अपने घरमें बर्तन भी स्वयं ही साफ करती थीं। श्री मेरीमैन और इन दोनों परिवारोंने हब्शियोंका पक्ष सदा लिया है और उनके अधिकारोंपर जब-जब हाथ डाला गया है तब-तब उनके पक्षका प्रबल समर्थन किया है। हिन्दुस्तानियोंके प्रति भी उनका प्रेम ऐसा ही प्रबल था; यद्यपि ये सभी लोग हिन्दुस्तानियों और हब्शियोंके बीच भेद करते थे। दलील यह है कि हब्शी दक्षिण आफ्रिकामें बोअरोंके आनेसे पहलेसे रहते हैं, इसलिए गोरे उनके स्वाभाविक अधिकारोंको नहीं छीन सकते। किन्तु

हिन्दुस्तानियोंसे उन्हें स्पर्धाका भय है। अतः वे इस भयको दूर करनेके लिए विधि-सम्मत कोई कानून बनायें तो यह अन्याय नहीं कहा जा सकता। फिर भी श्री मेरीमैनकी सहानुभूति हिन्दुस्तानियोंके प्रति सदा ही रहती थी। स्वर्गीय गोपालकृष्ण गोखले जब दक्षिण आफ्रिका गये थे तब केप टाउनके नगरपालिका भवनमें उनके सम्मानार्थ की गई दक्षिण आफ्रिकाकी जो पहली सभा हुई थी उसकी अध्यक्षता श्री श्राइनरने की थी। श्री मेरीमैनने भी उनसे बहुत मिठास और शिष्टताके साथ बातचीत की थी और हिन्दुस्तानियोंके प्रति सहानुभूति दिखाई थी।

मैंने जैसा श्री मेरीमैन आदिके सम्बन्धमें लिखा है वैसा ही दूसरे कुछ गोरे सज्जनोंके सम्बन्धमें भी लिखा जा सकता है। यहाँ तो केवल उदाहरणके रूपमें उक्त सर्वमान्य नाम दिये हैं। केप टाउनके अखबारोंमें भी अपेक्षाकृत कम पक्षपात था। केप कालोनीमें रंगभेदकी भावना सदासे कम रहनेके बावजूद दक्षिण आफ्रिकाके तीनों उपनिवेशोंसे जो हवा निरन्तर आती रहती थी उसका प्रभाव केप कालोनीमें न होता यह कैसे सम्भव था? इसलिए वहाँ भी नेटालकी तरह हिन्दुस्तानियोंके प्रवेश और विक्रेता परवानोंके सम्बन्धमें प्रतिबन्धक कानून[1] बनाये गये। इस प्रकार दक्षिण आफ्रिकाका द्वार जो पहले हिन्दुस्तानियोंके लिए खुला था, बोअर युद्धके समय लगभग बन्द हो गया। ट्रान्सवालमें हिन्दुस्तानियोंके प्रवेशपर तीन पौंडके शुल्कके अतिरिक्त अन्य कोई भी अंकुश न था। किन्तु जब नेटाल और केपके बन्दरगाह हिन्दुस्तानियोंके लिए बन्द कर दिये गये तब ट्रान्सवालमें जानेवाले हिन्दुस्तानी भी वहाँसे कैसे गुजर सकते थे। ट्रान्सवाल तो भीतरी भागमें स्थित है? फिर एक ही रास्ता बच रहा और वह था पुर्तगालियोंके डेलागोआ-बे बन्दरगाह होकर। किन्तु वहाँ भी न्यूनाधिक परिमाणमें अंग्रेजी उपनिवेशोंका अनुकरण किया गया। मुझे यह बता देना चाहिए कि ट्रान्सवालमें फिर भी इक्के-दुक्के हिन्दुस्तानी बहुत-सी मुसीबतें उठाकर और घूस देकर नेटाल अथवा डेलागोआ-बेके रास्ते पहुँच जाते थे।

अध्याय ६

हिन्दुस्तानियोंने क्या किया – १

हिन्दुस्तानी लोगोंकी स्थितिपर विचार करते हुए हम पिछले प्रकरणोंमें अंशतः यह देख चुके हैं कि उन्होंने अपने ऊपर किये गये प्रहारोंको किस तरह झेला। किन्तु सत्याग्रहकी उत्पत्तिकी कल्पना भली-भाँति करानेके लिए पहले हिन्दुस्तानी लोगोंके हितोंकी सुरक्षाके सम्बन्धमें किये गये प्रयत्नोंको एक अलग प्रकरणमें देना आवश्यक है।

१८९३ तक दक्षिण आफ्रिकामें हिन्दुस्तानी लोगोंके अधिकारोंकी रक्षाके लिए लड़ सकने योग्य स्वतन्त्र और शिक्षित हिन्दुस्तानी कम ही थे। अंग्रेजी जाननेवाले हिन्दुस्तानियोंमें मुख्यतः मुंशी और मुनीम श्रेणीके लोग थे। वे अपना काम चलाने लायक अंग्रेजी जानते थे, किन्तु वे अंग्रेजीमें प्रार्थनापत्र आदि नहीं लिख सकते थे।

१. देखिए खण्ड २।

फिर उनको अपना पूरा समय अपने मालिकोंको देना होता था। अंग्रेजी पढ़े लोगों का दूसरा वर्ग उन हिन्दुस्तानियोंका था जो दक्षिण आफ्रिकामें ही पैदा हुए थे। ये ज्यादातर गिरमिटियोंकी सन्तान थे। इनमें से जो थोड़े-बहुत कुशल थे, वे ज्यादातर अदालतोंमें दुभाषियोंके रूपमें सरकारी नौकरी करते थे। इसलिए वे जातिकी सेवामें अधिकसे-अधिक सहानुभूति ही दिखा सकते थे। फिर गिरमिटिये और गिरमिट-मुक्त हिन्दुस्तानी मुख्यतः संयुक्त प्रान्त और मद्रास अहातेसे आये हुए लोग थे। स्वतन्त्र हिन्दुस्तानी गुजरातके मुसलमान थे और ये मुख्यतः व्यापारी थे। हिन्दू मुख्यतः मुनीम या मुन्शी थे, यह हम पीछे कह चुके हैं। इनके अतिरिक्त कुछ पारसी भी थे जो व्यापारियों और मुनीमोंके वर्गके थे। समूचे दक्षिण आफ्रिकामें पारसियोंकी कुल संख्या सम्भवतः ३०-४० से अधिक नहीं थी। स्वतन्त्र व्यापारी-वर्गमें एक चौथा समुदाय सिंधी व्यापारियोंका था। पूरे दक्षिण आफ्रिकामें दो सौ या इसके कुछ अधिक सिन्धी होंगे। कहा जा सकता है कि वे हिन्दुस्तानके बाहर जहाँ-जहाँ बसे हैं, उनका व्यापार वहाँ एक ही प्रकारका है। वे फेन्सी मालके व्यापारियोंके रूपमें प्रसिद्ध हैं और मुख्यतः फेन्सी चीजें बेचते हैं, जिनमें रेशम और जरीकी चीजें, बम्बईकी बनी शीशम, चन्दन और हाथीदांतकी खुदाईकी पेटियाँ, और इसी प्रकारकी दूसरी सजावटकी चीजें आती हैं और उनके ग्राहक प्रायः गोरे ही होते हैं।

गोरे लोग गिरमिटियोंको कुली कहकर पुकारते हैं। कुलीका अर्थ है बोझा ढोने-वाला। यह चलन इतना रूढ़ है कि गिरमिटिया भी अपने आपको कुली कहनेमें झिझक नहीं मानता। धीरे-धीरे यह नाम सभी हिन्दुस्तानियोंके लिए प्रयुक्त होने लगा। सैकड़ों गोरे हिन्दुस्तानी वकीलोंको कुली वकील और हिन्दुस्तानी व्यापारियोंको कुली व्यापारी कहते हैं। इस विशेषणका प्रयोग करनेमें ज्यादातर गोरे कोई दोष नहीं मानते। बहुतसे हिन्दुस्तानियोंके लिए कुली शब्दका प्रयोग तिरस्कार प्रकट करनेके उद्देश्यसे ही करते थे। इसलिए स्वतन्त्र हिन्दुस्तानी अपने-आपको गिरमिटियोंसे अलग बतानेका प्रयत्न करते थे। इस कारणसे और अन्य ऐसे कारणोंसे दक्षिण आफ्रिकामें स्वतन्त्र हिन्दुस्तानियोंके वर्ग और गिरमिटियों और गिरमिटमुक्त हिन्दुस्तानियोंके वर्गमें भेद किया जाने लगा।

भारतीयोंके अपार कष्टोंको दूर करनेका काम स्वतन्त्र हिन्दुस्तानियोंके वर्ग और मुख्यतः मुसलमान व्यापारियोंने अपने हाथमें लिया, किन्तु उन्होंने उस समय जानबूझकर गिरमिटियों अथवा गिरमिट मुक्त हिन्दुस्तानियोंको साथ लेनेका कोई प्रयत्न नहीं किया। उनको साथ लेनेकी बात शायद उस समय सूझी भी नहीं, यदि सूझती तो उनको साथ लेनेसे काम बिगड़ भी सकता था। यह मानकर कि संकट मुख्यतः स्वतन्त्र व्यापारी समुदायपर है; इसलिए रक्षाके प्रयत्नने ऐसा सीमित रूप ले लिया। अनेक कठिनाइयोंके बावजूद और अंग्रेजी भाषाके ज्ञान तथा हिन्दुस्तानमें सार्वजनिक कामका कोई पूर्व अनुभव न होनेपर भी, कहा जा सकता है कि इस स्वतन्त्र वर्गने इन कष्टोंके विरुद्ध बहुत अच्छी लड़ाई लड़ी। उन्होंने गोरे वकीलोंकी सहायता ली, प्रार्थनापत्र लिखवाये, कभी-कभी शिष्टमण्डल भेजे और जहाँ सम्भव हो सका और उनको सूझा वहाँ प्रति-रोध किया। १८९३ तक यही स्थिति थी।

पाठकोंको इस पुस्तकको समझनेके लिए कुछ तारीखें याद रखनी पड़ेंगी। यदि वे इस पुस्तकके अन्तमें मुख्य घटनाओंके तारीखवार दिये गये परिशिष्टोंको कभी-कभी देख लेंगे तो उनको इस लड़ाईका मर्म और स्वरूप समझनेमें सहायता मिलेगी। ऑरेंज फ्री स्टेटसे हम सन् १८९३ में बिलकुल निकाले जा चुके थे। ट्रान्सवालमें १८८५ का कानून लागू था और नेटालमें भी किस प्रकार केवल गिरमिटिया हिन्दुस्तानी ही वहाँ रहें और किस प्रकार दूसरोंको निकाल बाहर किया जाये इसपर विचार किया जा रहा था। इसके लिए वे उत्तरदायी शासन प्राप्त कर चुके थे।

मैं १८९३ के अप्रैलमें हिन्दुस्तानसे दक्षिण आफ्रिकाको रवाना हुआ था। मुझे प्रवासी भारतीयोंके पूर्व इतिहासकी कोई जानकारी नहीं थी। मैं वहाँ विशुद्ध स्वार्थ भावसे गया था। डर्बनमें पोरबन्दरके मेमनोंकी दादा अब्दुल्लाके नामसे एक प्रसिद्ध पेढ़ी थी। उतनी ही प्रसिद्ध एक दूसरी पेढ़ी उनके प्रतिद्वन्द्व और पोरबन्दरके दूसरे मेमन तैयब हाजी खान मुहम्मदकी प्रिटोरियामें थी। दुर्भाग्यसे इन दोनों प्रतिस्पर्धियोंमें एक बड़ा मुकदमा चल रहा था। पोरबन्दरमें दादा अब्दुल्लाका जो हिस्सेदार था उसने यह सोचा कि यदि मुझ-जैसा नौसिखिया बैरिस्टर भी वहाँ चला जाये तो उनकी पेढ़ीको कुछ सुविधा हो जायेगी। मुझ-जैसे नये और बिलकुल अनुभवहीन वकीलसे उन्हें काम बिगड़नेका कुछ भय नहीं था; क्योंकि मुझे उनकी ओरसे अदालतमें पैरवी नहीं करनी थी; बल्कि उनके रखे हुए कुशल वकीलों और बैरिस्टरोंको मामला समझानेका अर्थात् दुभाषिएका काम करना था। मैं नये अनुभवोंके लिए उत्सुक रहता था और मुझे सैर-सपाटा भी प्रिय था। बैरिस्टर रहते हुए दलालोंको मुवक्किल जुटानेके लिए कमीशन देना मुझे बहुत बुरा लगता था और काठियावाड़के षड्यन्त्रोंसे भरे वातावरणमें मुझे बेचैनीका अनुभव होता था। मुझे एक ही सालका इकरार करके वहाँ जाना था। मैंने सोचा कि इस इकरारमें कोई अड़चन नहीं है। इससे हानि तो हो ही नहीं सकती। क्योंकि मेरे जाने-आनेका और वहाँ रहनेका खर्च दादा अब्दुल्लाके ही जिम्मे था; और उसके अलावा एक सौ पाँच पौंड मिलते। यह सारी बातचीत मेरे भाई साहबके मारफत हुई थी। वे मेरे लिए पिताके समान थे। जो बात उनको मंजूर थी वह मुझे भी मंजूर थी। उन्होंने मेरे दक्षिण आफ्रिका जानेकी बातको ठीक माना था। इसलिए मैं १८९७ के मई महीनेमें डर्बन पहुँच गया।

बैरिस्टरकी शानका क्या कहना। मैं अपने विचारसे बढ़िया कोट-पैन्ट आदिसे सज्जित होकर ठाठके साथ वहाँ पहुँचा, किन्तु वहाँ उतरते ही मुझे भारतीयोंकी स्थितिका थोड़ा बहुत अन्दाज लग गया। दादा अब्दुल्लाके भागीदारोंने बातचीतमें जैसा बताया था मुझे वहाँकी स्थिति उससे बिलकुल उलटी ही दिखी। इसमें उनका दोष कुछ भी न था। इसका कारण उनका भोलापन, उनकी सरलता और उनका स्थिति विषयक अज्ञान था। नेटालमें हिन्दुस्तानियोंके सम्मुख जो-जो कठिनाइयाँ आती थीं उनकी कल्पना उनको नहीं थी। और वहाँ जो गम्भीर अपमानजनक व्यवहार उनके साथ किया जाता था, वे उसे अपमानजनक नहीं मानते थे। किन्तु मैंने तो पहले ही देख लिया कि भारतीयोंके प्रति गोरोंका व्यवहार बहुत ही अपमानजनक है।

नेटाल पहुँचनेपर पन्द्रह दिनके भीतर ही वहाँ की अदालतोंका जो अनुभव हुआ, गाड़ियोंमें जो कठिनाई आई, यात्रा करते हुए रास्तेमें जो मार खाई, वहाँके होटलोंमें ठहरनेमें जो दिक्कतें सामने आईं—उनमें ठहरना लगभग असम्भव था—उन सारी बातोंका वर्णन मैं यहाँ नहीं करूँगा। इतना अवश्य कहूँगा कि ये सब अनुभव मेरे मर्ममें भिद गये। मैं तो केवल एक ही मुकदमेके सम्बन्धमें गया था और मेरी दृष्टि स्वार्थ और कुतूहलकी दृष्टि थी; इसलिए उस वर्ष-भर तो मैं ऐसे कष्टोंका केवल साक्षी रहकर अनुभव ही करता रहा। किन्तु अपना कर्त्तव्य समझकर तदनुसार व्यवहार तो उसके बाद आरम्भ हुआ। मैंने देख लिया कि स्वार्थकी दृष्टिसे दक्षिण आफ्रिकाका मेरे लिए कोई अर्थ नहीं है। जहाँ अपमान हो वहाँ पैसा कमाने अथवा सैर-सपाटा करनेका मुझे कोई लोभ नहीं हो सकता। इतना ही नहीं यह मुझे अत्यन्त अरुचिकर मालूम पड़ता था। मेरे सामने धर्म-संकट उपस्थित था। एक मार्ग यह था कि जिन परिस्थितियोंको मैं पहले जानता नहीं था उन्हें जान लेनेपर मैं सेठ दादा अब्दुल्लाके साथ किये हुए अपने इकरारसे छुटकारा माँगकर पलायन कर जाऊँ और दूसरा मार्ग यह था कि जो भी संकट आये उनको सहकर हाथमें लिये कामको पूरा करूँ। मैं मैरित्सबर्ग स्टेशनपर रेलवे पुलिसके धक्के खाकर गाड़ीसे उतरकर और अपनी यात्रा स्थगित करके कड़ाकेकी सर्दीमें मुसाफिर-खानेमें बैठा था। मेरा सामान कहाँ है इसका मुझे कोई होश न था। किसीसे पूछनेकी हिम्मत भी न होती थी। भय था कि कोई फिर अपमान करे और मुझे मार खानी पड़े तो? ऐसी स्थितिमें सर्दीसे काँपते हुए नींद भी कैसे आती! मन संकल्प-विकल्पोंमें डूबा था। बहुत रात गये मैंने निश्चय किया कि भागकर चले जाना तो कायरता है। हाथमें लिया काम तो पूरा करना ही चाहिए। व्यक्तिगत अपमान हो तो उसे सहकर और मार खानी पड़े तो मार खाकर प्रिटोरिया पहुँचना ही चाहिए। प्रिटोरिया मेरा सदर मुकाम था। मुकदमा वहीं चल रहा था। यदि सम्भव हो तो मुझे अपना काम करते हुए परिस्थितियोंको सुधारनेका कोई उपाय भी करना ही चाहिए। यह निश्चय करनेके बाद मुझे कुछ शान्ति मिली और मैंने कुछ शक्तिका भी अनुभव किया। किन्तु सो तो मैं बिलकुल ही न सका।

सुबह होते ही तुरन्त मैंने दादा अब्दुल्लाकी पेढ़ीको और रेलवेके जनरल मैनेजरको तार दिया। दोनों जगहसे जवाब भी आया। दादा अब्दुल्लाने और उस समय नेटालमें रहनेवाले उनके भागीदार सेठ अब्दुल्ला हाजी आदम झवेरीने यथोचित कार्रवाई की। उन्होंने अलग-अलग जगहोंपर अपने हिन्दुस्तानी आढ़तियोंको तार दे दिये कि वे मेरी खबरदारी रखें। वे जनरल मैनेजरसे भी मिले। आढ़तियोंको दिये गये तारोंके परिणामस्वरूप मैरित्सबर्गके हिन्दुस्तानी व्यापारी मुझसे मिले। उन्होंने मुझे आश्वासन देते हुए कहा कि मेरे जैसे अनुभव तो उन सभीको हो चुके हैं, किन्तु आदत पड़ जानेसे अब वे उनकी परवाह नहीं करते। व्यापार करना और मन कच्चा रखना, इन दोनोंका मेल कैसे हो सकता है। और इसीलिए उन्होंने अपमान हो तो उसे भी पैसेके साथ पेटीमें जमाकर रखना अपना सिद्धान्त बना लिया है। उन्होंने मुझे यह भी बताया

कि इसी स्टेशनपर हिन्दुस्तानियोंको मुख्य दरवाजेसे आनेकी मनाही है और टिकटें खरीदनेमें भी बहुत दिक्कत होती है। मैं उसी रातकी गाड़ीसे प्रिटोरिया रवाना हो गया। अपने निश्चयपर दृढ़ हूँ या नहीं, इसकी परीक्षा अन्तर्यामी प्रभुने भलीभाँति की। मुझे प्रिटोरिया पहुँचनेसे पहले और भी अपमान सहना पड़ा और मार खानी पड़ी, किन्तु उस सबका असर मेरे मनपर यही हुआ कि मुझे अपने निश्चयपर दृढ़ रहना चाहिए।

इस प्रकार सन् १८९३ में मैंने अनायास ही दक्षिण आफ्रिकाके हिन्दुस्तानियोंकी स्थितिको पूरी तरह देख-समझ लिया। प्रसंग आनेपर मैं इस विषयमें प्रिटोरियाके हिन्दुस्तानियोंसे बातचीत करता था और उनको समझाता भी था, किन्तु मैंने इससे अधिक कुछ नहीं किया। मुझे ऐसा लगा कि दादा अब्दुल्लाके मामलेकी पैरवी और दक्षिण आफ्रिकाके हिन्दुस्तानियोंके कष्ट दूर करनेमें जुटना साथ-साथ नहीं हो सकता। मैंने समझ लिया था कि दोनोंको करूँगा तो दोनों बिगड़ेंगे। जैसे-जैसे सन् १८९४ आ गया। मुकदमा भी खत्म हो गया। मैं डर्बन वापस आ गया। मैंने स्वदेश लौटनकी तैयारी की। दादा अब्दुल्लाने मुझे विदाई देनेके लिए एक सभा भी की। उसी सभामें किसीने डर्बनके 'मर्क्युरी' अखबारकी एक प्रति मुझे दी जिसमें विधानसभाकी कार्यवाहीका विस्तृत विवरण था। इस विवरणमें मैंने 'हिन्दुस्तानी मताधिकार' शीर्षकके नीचे कुछ पंक्तियाँ पढ़ीं। उनको पढ़नसे मुझे लगा कि यह तो हिन्दुस्तानियोंके सारे ही हकोंको छीननेका श्रीगणेश हो रहा है। विधानसभाके सदस्योंके भाषणोंसे भी यह मंशा स्पष्ट होता था। सभामें आये हुए सेठों और दूसरे लोगोंको मैंने यह खबर पढ़नेके लिए दी और उसे मैं जितना समझा सका उतना मैंने उनको समझाया। कार्रवाईकी तफसील तो मुझे मालूम नहीं थी। मैंने सुझाव दिया कि हिन्दुस्तानियोंको इस आक्रमणका विरोध करते हुए डटकर लड़ाई करनी चाहिए। इसकी आवश्यकता उन्होंने भी स्वीकार की, किन्तु कहा कि ऐसी लड़ाई उनके सामर्थ्यके बाहरकी बात है और इसके लिए मुझसे वहीं रुक जानेका आग्रह किया। मैंने यह लड़ाई जबतक खत्म न हो तबतक अर्थात् महीना-दो-महीना वहाँ ठहर जाना स्वीकार किया। मैंने उसी रात विधानसभामें देनेके लिए अर्जी[1] तैयार की। विधेयकपर विचार स्थगित करनेके लिए तार भी दे दिया गया और उसी समय एक समिति नियुक्त कर दी गई। सेठ अब्दुल्ला हाजी आदम अध्यक्ष बनाये गये। तार उन्हींके नामसे दिया गया था। फलस्वरूप विधेयकपर दो दिनके लिए विचार मुल्तवी कर दिया गया। दक्षिण आफ्रिकी विधानसभामें हिन्दुस्तानियोंकी यह पहली अर्जी थी। इसका असर भी खासा हुआ, किन्तु विधेयक तो स्वीकार हो ही गया। मैं चौथे प्रकरणमें उसका परिणाम सूचित कर चुका हूँ। ऐसी लड़ाई लड़नेका वहाँ यह पहला ही अनुभव था। इससे हिन्दुस्तानियोंमें बहुत उत्साह पैदा हुआ। हर रोज सभाएँ होने लगीं और उनमें लोग अधिकाधिक संख्यामें उपस्थित होने लगे। पैसा भी इस कामके लिए जितना जरूरी था उससे ज्यादा इकट्ठा हो गया। प्रार्थनापत्रकी नकलें करने और उसपर लोगोंके हस्ताक्षर लेने आदिके कामोंमें सहायता देनेके लिए बिना पैसे

१. देखिए खण्ड १, पृष्ठ ९३-९८।

लिए बहुतसे स्वयंसेवक — यहाँतक कि अपना पैसा खर्च करके काम करनेवाले — भी मिल गये। उसमें गिरमिट-मुक्त हिन्दुस्तानियोंकी तरुण-पीढ़ीने भी उत्साहपूर्वक भाग लिया। ये सभी युवक अंग्रेजी पढ़े-लिखे थे और उनकी लिखावट भी सुन्दर होती थी। उन्होंने नकलें तैयार करने आदिका काम दिन-रात एक करके बहुत लगनसे किया। एक महीने के भीतर-भीतर १०,००० हिन्दुस्तानियोंके हस्ताक्षर करवा कर लॉर्ड रिपनको अर्जी[1] भेज दी गई और इस प्रकार मेरा तात्कालिक काम पूरा हो गया।

मैंने देश जानेकी छुट्टी माँगी; किन्तु लोगोंको इस कार्यमें इतनी रुचि पैदा हो गई थी कि वे अब मुझे जाने ही नहीं देना चाहते थे। उन्होंने कहा: "आप ही तो हमें समझाते हैं कि यह हमें यहाँसे बिलकुल निकालनेकी पहली कार्रवाई है। इंग्लैंडसे क्या जवाब आता है यह कौन जानता है? आपने हमारा उत्साह तो देख लिया है। हम काम करनेके लिए तैयार हैं। हमारी काम करनेकी इच्छा भी है। हमारे पास पैसा भी है, किन्तु रास्ता दिखानेवाला न हो तो सारा किया-कराया बेकार हो जायेगा। इसलिए हम तो यह मानते हैं कि यहाँ रहना आपका धर्म है।" मुझे भी लगा कि कोई स्थायी संस्था बन जाये तो अच्छा हो। किन्तु मैं रहूँ कहाँ और कैसे? उन्होंने मुझे वेतन देनेका प्रस्ताव किया; किन्तु मैंने वेतन लेना बिलकुल अस्वीकार कर दिया। भारी वेतन लेकर सार्वजनिक कार्य नहीं किया जा सकता और तिसपर मैं ठहरा उस कार्यका प्रारम्भ करनेवाला। मेरे उस समयके विचारके अनुसार मुझे इस ढंगसे रहने की जरूरत थी जो बैरिस्टरको शोभा दे और हिन्दुस्तानी जातिकी प्रतिष्ठाके अनुरूप हो। इसका अर्थ था काफी खर्चीला रहन-सहन। लोगोंपर वजन डालकर संघर्षके लिए पैसा लेना और संघर्षके साथ अपनी आजीविकाको जोड़ना दो विरोधी वस्तुओंको जोड़ने-जैसा होता। उससे मेरी काम करनेकी शक्ति भी घट जाती। इस प्रकार के अनेक कारणोंसे मैंने सार्वजनिक सेवाके लिए पैसा लेनेसे साफ इनकार कर दिया। किन्तु मैंने यह सुझाव दिया कि यदि आपमें से कुछ प्रमुख व्यापारी मुझे अपना अदालती काम देते रहें और उसके लिए मुझे एक वर्षका पेशगी पारिश्रमिक दे दें तो मैं रुकनेके लिए तैयार हूँ। हम एक वर्षतक एक-दूसरेका काम देखें और उसे जाँच कर ठीक जान पड़े तो व्यवस्थाको आगेके लिए जारी रखें। यह सुझाव सबको पसन्द आ गया।

मैंने वकालत करनेकी सनदके लिए अर्जी दी। वहाँके वकील मण्डलने मेरी इस अर्जीका विरोध किया। तर्क यह था कि नेटालके कानूनके मंशाके मुताबिक काले अथवा गेहुँए रंगके लोगोंको वकालत करनेकी सनद नहीं दी जा सकती। मेरी अर्जीका समर्थन वहाँके प्रसिद्ध वकील स्व० श्री एस्कम्बने किया जो नेटालके महान्यायवादी थे। बादमें यही श्री एस्कम्ब उपनिवेशके प्रधान मन्त्री भी बने थे। सामान्यत: लम्बे अर्सेसे ऐसा रिवाज चला आता है कि वकालतकी सनदकी अर्जीको प्रार्थीकी ओरसे सबसे प्रमुख विधिशास्त्री बिना फीस लिए अदालतमें पेश करता है। इस रिवाजके अनुसार श्री एस्कम्बने मेरी वकालतकी सनदकी अर्जी पेश करना स्वीकार कर लिया।

१. देखिए खण्ड १, पृष्ठ ११७-१२८।

वे दादा अब्दुल्लाके बड़े वकील भी थे। वकील मण्डलके तर्कको बड़ी अदालतने अस्वीकार कर दिया और मेरी अर्जी स्वीकार कर ली गई। इस प्रकार न चाहने पर भी वकील मण्डलका विरोध मेरी ख्यातिका दूसरा कारण बन गया। दक्षिण आफ्रिकाके अखबारोंने वकील-मण्डलकी हँसी उड़ाई और कुछ अखबारोंने मुझे बधाई भी दी।

संघर्षकी दृष्टिसे भारतीयोंकी जो कामचलाऊ समिति नियुक्त की गई थी उसे स्थायी रूप दे दिया गया। मैंने तबतक भारतीय कांग्रेसका कोई अधिवेशन देखा तो नहीं था, किन्तु उसके अधिवेशनोंका विवरण पढ़ा था। मैंने भारतके पितामह दादाभाई नौरोजी के दर्शन भी किये थे और मेरे मनमें उनके प्रति श्रद्धा थी। इसलिए मैं कांग्रेसका भक्त तो था ही और उसका नाम भी लोकप्रिय करना चाहता था। नया युवक अपने द्वारा नींव रखी गई संस्थाका नया नाम क्यों ढूंढ़े। उसमें भूल हो जानेकी भी काफी आशंका थी। इसलिए मैंने नई संस्थाका नाम 'नेटाल भारतीय कांग्रेस' रखनेकी सलाह दी। मैंने अपना कांग्रेस-सम्बन्धी अधूरा ज्ञान जैसा बन पड़ा लोगोंपर प्रकट किया और १८९४ के मई या जून मासमें[1] हमारी इस कांग्रेसकी स्थापना हो गई। हिन्दुस्तानकी संस्था और इस संस्थामें इतना अन्तर था कि नेटाल कांग्रेसकी बैठकें सदा होती रहती थीं। जो लोग वर्षमें कमसे-कम ३ पौंड दे सकें वे इसके सदस्य हो सकते थे। इससे ज्यादा कोई जितना भी दे वह स्वीकार कर लिया जाता था। अधिक लेनेका आग्रह भी बहुत किया गया। सालमें २४ पौंड देनेवाले ६ या ७ सदस्य थे। बारह पौंड देनेवाले सदस्योंकी संख्या तो खासी बड़ी थी। हमने एक महीनेमें तीन सौ सदस्य बना लिए। इनमें हिन्दू, मुसलमान, पारसी और ईसाई सभी धर्मोंके और जिन-जिन प्रान्तोंके लोग वहाँ थे उन सभीके प्रतिनिधि सम्मिलित थे। पहले सालमें बहुत उत्साहसे काम हुआ। सेठ लोग अपनी-अपनी गाड़ियाँ लेकर दूर-दूरके शहरोंमें नये सदस्य बनानेके लिए और रुपया इकट्ठा करनेके लिए जाते थे। सभी लोग माँगते ही रुपया नहीं देते थे। उनको समझानेकी जरूरत होती थी। उनको इस प्रकार सब बातें समझानेसे एक प्रकारका राजनैतिक शिक्षण भी हो जाता था और लोग वास्तविकतासे परिचित हो जाते थे। महीनेमें एक बार तो कांग्रेस की बैठक भी होती ही थी। उसमें महीनेका पाई-पाईका खर्च पेश किया जाता था और फिर उसे स्वीकार किया जाता था। महीनेमें जो घटनाएँ होती थीं उनपर भी चर्चा होती थी और वह कार्रवाई किताबमें दर्ज की जाती थी। सदस्य तरह-तरहके सवाल पूछते थे। नये कार्योंके सम्बन्धमें विचार किया जाता था। इस सबसे उन लोगोंको भी जो सभामें कभी नहीं बोले थे, बोलनेका अच्छा अभ्यास हो जाता था। वे भाषण भी विचारपूर्वक ही देते थे। इन सब बातोंसे उनको नया अनुभव मिलता था। इसमें लोगोंने बहुत रुचि दिखाई। आखिर समाचार आया कि लॉर्ड रिपनने नेटालके इस विधेयक को अस्वीकार कर दिया है। इससे लोग बहुत खुश हुए और उनका आत्मविश्वास बहुत बढ़ गया।

१. देखिए खण्ड १, पृष्ठ १३०, जिसके अनुसार कांग्रेसकी स्थापना २२ अगस्त, १८९४ को हुई थी।

जिस तरह बाहरी काम किया जा रहा था, उसी तरह हिन्दुस्तानी समाजके भीतर भी काम करनेका आन्दोलन किया जा रहा था। दक्षिण आफ्रिकाके गोरे हमारे रहन-सहनको लेकर समस्त आफ्रिकामें बड़ा आन्दोलन मचाये हुए थे। हिन्दुस्तानी बहुत गंदे होते हैं, वे कंजूस हैं, जिस मकानमें व्यापार करते हैं, उसीमें रहते हैं, उनके घर माँद-जैसे होते हैं और वे अपने सुखके लिए भी पैसा खर्च नहीं करते — ऐसे कंजूस और गंदे लोगोंसे ईमानदार, अधिक जरूरतमन्द और उदार गोरे व्यापारी मुकाबला कैसे कर सकते हैं; वे सदा यही तर्क गोरी जनताके सामने रखते। इसलिए घर साफ रखने, घर और दुकान अलग-अलग रखने, कपड़े साफ रखने और अधिक आमदनीवाले व्यापारियोंके योग्य रहन-सहन रखनेके सम्बन्धमें कांग्रेसकी सभाओंमें विवेचन और वादविवाद होते थे और सुझाव दिये जाते थे। सब काम मातृभाषामें ही किया जाता था।

पाठक सोच सकते हैं कि इससे लोगोंको सहज ही कितनी व्यावहारिक शिक्षा और राजनैतिक जानकारी मिल जाती होगी। कांग्रेसके अन्तर्गत ही गिरमिट-मुक्त हिन्दुस्तानियोंके बाल-बच्चोंके लिए अर्थात् अंग्रेजी-भाषी नेटालमें उत्पन्न हिन्दुस्तानी नवयुवकोंके लिए एक शिक्षण संस्था भी खोली गई थी। उसमें फीस थोड़ी रखी गई थी। इसका मुख्य उद्देश्य नवयुवकोंको इकट्ठा करना, उनमें हिन्दुस्तानके प्रति प्रेम उत्पन्न करके स्वदेशका सामान्य ज्ञान देना था। इसके अतिरिक्त इसका उद्देश्य यह भी था कि स्वतन्त्र हिन्दुस्तानी व्यापारी उनको अपना भाई समझते हैं यह दिखा दिया जाये और व्यापारियोंमें भी उनके प्रति आदर-भाव उत्पन्न किया जाये। कांग्रेसके पास अपना खर्च चलानेके बाद एक बड़ी रकम जमा हो गई थी। उस रकमसे जमीन खरीदी गई। इस जमीनकी आमदनी नेटाल भारतीय कांग्रेसको अभीतक मिलती रहती है।

इतना विस्तृत विवरण मैंने जानबूझ कर ही दिया है। पाठक यह सब जाने बिना भलीभाँति यह नहीं समझ सकते कि सत्याग्रहका जन्म सहज ही किस तरह हुआ और किस तरह हिन्दुस्तानी तैयार हुए। कांग्रेसपर जो संकट आये और सरकारी अधिकारियोंकी ओरसे जो हमले किये गये, उनसे वह किस तरह बची; यह इतिहास और इस प्रकारकी अन्य जानने योग्य बातें मुझे छोड़ देनी पड़ी हैं। किन्तु एक बात बताना जरूरी है। यह संस्था अतिशयोक्तिसे सदा बचती रहती थी और वह सदा हिन्दुस्तानियोंको उनके दोष बतानेका प्रयत्न करती थी। गोरोंके तर्कमें जितनी सच्चाई होती थी उतनी तुरन्त स्वीकारकी जाती थी और अपनी स्वतन्त्रता और स्वाभिमानकी रक्षा करते हुए गोरोंके साथ सहयोगके प्रत्येक अवसरका स्वागत किया जाता था। वहाँके अखबारोंमें हिन्दुस्तानियोंके आन्दोलनकी जितनी बातोंका प्रकाशन सम्भव दिखता, उतनी बातें उनको भेजी जाती थीं और उनमें हिन्दुस्तानियों-पर जो अनुचित आक्षेप किये जाते थे, उनका उत्तर भी दिया जाता था।

जैसे नेटालमें 'नेटाल भारतीय कांग्रेस' थी वैसे ही ट्रान्सवालमें भी एक संस्था बनी। ट्रान्सवालकी संस्था[1] नेटालकी संस्थासे बिलकुल स्वतन्त्र थी। उनके संविधानोंमें

१. ब्रिटिश भारतीय संघ।

भी कुछ अन्तर था। मैं पाठकोंको उस भेदमें नहीं उलझाऊँगा। केपटाउनमें भी इस प्रकारकी संस्था थी। उसका संविधान नेटाल और ट्रान्सवालकी संस्थाओंसे भी अलग प्रकारका था। फिर भी तीनोंकी हलचलें लगभग एक ही प्रकारकी मानी जा सकती हैं।

१८९४ का साल पूरा गुजर गया। १८९५ के मध्यमें कांग्रेसको भी काम करते हुए एक वर्ष हो गया। मेरा वकालतका काम भी मेरे मुवक्किलोंको पसन्द आया। मेरे दक्षिण आफ्रिकामें रहनेकी मियाद बढ़ी। मैं सन् १८९६ में ६ माहका अवकाश माँगकर हिन्दुस्तान आया। किन्तु यहाँ पूरे छः माह नहीं बिता सका था कि नेटालसे तार आ गया। इस तारके कारण मुझे तुरन्त वापस जाना पड़ा। १८९६-९७ का विवरण हम अगले प्रकरणमें देंगे।

अध्याय ७

हिन्दुस्तानियोंने क्या किया – २

इस प्रकार नेटाल भारतीय कांग्रेसका काम जम गया। मुझे भी नेटालमें प्रायः राजनैतिक काम करते हुए ही लगभग ढाई साल बीत चुके थे। इसलिए मैंने सोचा कि यदि मैं दक्षिण आफ्रिकामें और अधिक रहता हूँ तो मुझे अपने परिवारको साथ रखना जरूरी है। मेरी इच्छा एक चक्कर देशमें लगा आनेकी भी हुई। मैंने यह भी सोचा कि मैं इस चक्करमें हिन्दुस्तानके नेताओंको भी नेटाल और दक्षिण आफ्रिकाके दूसरे भागोंके हिन्दुस्तानियोंकी स्थितिकी संक्षेपमें कल्पना करा दूँगा। कांग्रेसने मुझे ६ महीनेकी छुट्टी दे दी और मेरी जगह नेटालके प्रसिद्ध व्यापारी स्वर्गीय आदमजी मियाँ खाँको मन्त्री बना दिया। उन्होंने अपना काम बड़ी समझदारीसे किया। स्वर्गीय आदमजी मियाँ खाँ अंग्रेजी अच्छी जानते थे। उन्होंने भाषाका अपना यह काम-चलाऊ ज्ञान अनुभवसे बढ़ा लिया था। उनको गुजरातीका भी सामान्य अभ्यास था। उनका व्यापार मुख्यतः हब्शियोंके साथ था इसलिए उनका जुलु लोगोंकी भाषा और उनके रीति-रिवाजोंसे भी ठीक परिचय था। वे स्वभावसे शान्त और मिलनसार थे। जितना जरूरी होता, उतना ही बोलते थे। यह सब लिखनेका उद्देश्य यह बताना है कि किसी बड़े जिम्मेदारीके पदको सम्भालनेके लिए अंग्रेजी भाषा अथवा दूसरी प्रकारके जबर्दस्त अक्षर ज्ञानकी अपेक्षा सचाई, शान्ति, सहनशीलता, दृढ़ता, सामूहिक सूझ-बूझ, साहस और व्यवहार-बुद्धिकी ज्यादा जरूरत होती है। यदि ये गुण न हों तो सामाजिक कार्योंमें ऊँचेसे-ऊँचे शिक्षणकी कीमत धेले-भर भी नहीं होती।

सन् १८९६ के बीचमें मैं हिन्दुस्तान वापस आ गया। मैं कलकत्ता होकर आया था, क्योंकि उस समय नेटालसे कलकत्ते आनेवाले जहाज आसानीसे मिल जाते थे। गिरमिटिये कलकत्ते अथवा मद्राससे जहाजमें बैठते थे। कलकत्तेसे बम्बई आते समय रास्तेमें मैं गाड़ी चूक गया; इसलिए एक दिन इलाहाबादमें रुकना पड़ा। मैंने अपना काम वहींसे शुरू कर दिया। मैं 'पायोनियर' के सम्पादक श्री चेज़नीसे

मिला। उन्होंने मुझसे बड़ी शिष्टताके साथ बातचीत की। उन्होंने मुझे स्पष्ट बताया कि उनकी सहानुभूति उपनिवेशोंके पक्षमें है। किन्तु उन्होंने यह वचन दिया कि यदि मैं कुछ लिखूँगा तो वे उसे पढ़ेंगे और अपने पत्रमें उसपर सम्पादकीय भी लिखेंगे। मैंने इतना पर्याप्त समझा। मैंने देशमें आकर दक्षिण आफ्रिकाके हिन्दुस्तानियोंकी दशाके सम्बन्धमें एक चौपतिया[1] छपवाई। लगभग सभी अखबारोंने इसके सम्बन्धमें टिप्पणियाँ लिखी। इसकी दो आवृत्तियाँ निकालनी पड़ीं। देशके विभिन्न स्थानोंमें इसकी पाँच हजार प्रतियाँ भेजी गई थीं। मैंने इसी समय हिन्दुस्तानके नेताओंके दर्शन भी किये; — मैं बम्बईमें सर फीरोजशाह मेहता, न्यायमूर्ति बदरुद्दीन तैयबजी, महादेव गोविन्द रानडे आदिसे, पूनामें लोकमान्य तिलक तथा उनके साथियों, और प्रो० भांडारकर, गोपालकृष्ण गोखले तथा उनके साथियोंसे मिला। मैंने बम्बई, पूना और मद्रासमें भाषण भी दिये।[2] मैं यहाँ इनका ब्यौरा देना नहीं चाहता।

किन्तु मैं पूनाका एक पुनीत संस्मरण दिये बिना नहीं रह सकता, यद्यपि हमारे विषयसे इसका कोई सम्बन्ध नहीं है। सार्वजनिक सभा लोकमान्यके हाथमें थी और दक्षिण सभा स्व० गोखलेके हाथमें। मैं पहले तिलक महाराजसे मिला। मैंने जब उनसे पूनामें सभा करनेकी बात कही तो उन्होंने मुझसे पूछा : "क्या आप गोपाल रावसे मिल लिए हैं?"

मैं पहले तो उनकी बात नहीं समझा, इसलिए उन्होंने पूछा कि क्या आप गोखलेसे मिल चुके हैं? आप उनको जानते हैं?

मैंने कहा : मैं अभी तो नहीं मिला हूँ। मैं उनको नामसे ही जानता हूँ; किन्तु उनसे मिलनेका विचार है।

लोकमान्य : तब आप हिन्दुस्तानकी राजनीतिसे परिचित नहीं जान पड़ते।

मैंने कहा : मैं शिक्षा समाप्त करनेके बाद हिन्दुस्तानमें कम ही रह पाया और राजनैतिक मामलोंमें तो पड़ा ही नहीं था। मैं इस क्षेत्रको अपनी शक्तिसे बाहर मानता था।

लोकमान्य : तब तो मुझे कुछ बातें बता देनी चाहिए। पूनामें दो पक्ष हैं, एक सार्वजनिक सभाका और दूसरा दक्षिण सभाका।

मैंने कहा : यह बात तो कुछ हदतक मुझे मालूम है।

लोकमान्य : यहाँ सभा करना तो कोई बड़ी बात नहीं है। किन्तु मेरी समझमें आप तो अपना मामला सभी पक्षोंके सामने रखना चाहते हैं और सभी पक्षोंसे मदद लेना चाहते हैं। आपका यह विचार मुझे पसन्द है; किन्तु यदि आपकी सभामें हममें से कोई अध्यक्ष हुआ तो उसमें दक्षिण सभाके लोग नहीं आयेंगे और यदि अध्यक्ष दक्षिण सभाका हुआ तो हमारे पक्षमें से कोई नहीं पहुँचेगा। इसलिए आपको अध्यक्ष पदके लिए कोई तटस्थ व्यक्ति ढूँढ़ना चाहिए। मैं तो इस सम्बन्धमें सुझाव

१. देखिए खण्ड २, पृष्ठ १-५६। पुस्तकका आवरण हरा होनेके कारण बादमें वह **हरी पुस्तिकाके** नामसे प्रसिद्ध हुई।

२. देखिए खण्ड २, पृष्ठ ७७-९०, ९९-१३३ और १४७-४८।

ही दे सकता हूँ। कोई दूसरी सहायता नहीं दे सकता। आप प्रो० भाण्डारकरको तो जानते हैं? न जानते हों तो भी उनके पास जायें। सम्भव है वे उसके लिए तैयार हो जायें। श्री गोखलेसे भी इस बातकी चर्चा करें और उनकी भी सलाह ले लें। बहुत करके वे भी मेरी जैसी ही सलाह देंगे। यदि प्रो० भाण्डारकर-जैसे कोई सज्जन अध्यक्ष हों तो सभाका काम दोनों पक्ष अपने ऊपर ले लेंगे, इसका मुझे विश्वास है। इस कार्यमें आपको मेरी सहायता तो पूरी मिलेगी ही।

इस सलाहके अनुसार मैं गोखलेके पास गया। उनसे मेरी यह पहली भेंट थी। उन्होंने इसी भेंटमें मेरा मन जीत लिया, यह मैं अन्यत्र लिख चुका हूँ। जो सज्जन इसे देखना चाहें वे 'यंग इंडिया,'[1] या 'नवजीवन'[2] उठाकर उसमें देख सकते हैं। लोकमान्यकी सलाह श्री गोखलेको भी पसन्द आई। मैं तुरन्त प्रो० भाण्डारकरके पास गया। मैंने उन विद्वान वयोवृद्ध सज्जनके दर्शन किये। उन्होंने नेटालकी कहानी ध्यानपूर्वक सुननेके बाद कहा, 'आपने तो देखा है कि मैं सार्वजनिक जीवनमें कदाचित् ही भाग लेता हूँ। और अब मैं बूढ़ा भी हो गया हूँ। फिर भी आपकी बातोंका मेरे मनपर बहुत प्रभाव पड़ा है। सभी पक्षोंकी सहायता प्राप्त करनेका आपका विचार मुझे पसन्द आता है। फिर आप हिन्दुस्तानकी राजनीतिसे अपरिचित भी जान पड़ते हैं, और नवयुवक हैं। इसलिए आप दोनों पक्षोंसे कह दें कि मैंने आपकी बात स्वीकार कर ली है। सभा होनेकी सूचना मुझे इन दोनों पक्षोंमें से कोई भी दे दे, मैं अवश्य आजाऊँगा। निदान पूनामें बड़ी अच्छी सभा हुई। उसमें दोनों पक्षोंके नेता सम्मिलित हुए और उन्होंने भाषण भी दिये।

फिर मैं मद्रास गया। वहाँ न्यायमूर्ति सुब्रह्मण्यम् अय्यरसे मिला। मैं श्री पी० आनन्दचारलु, 'हिन्दू' के तत्कालीन सम्पादक श्री जी० सुब्रह्मण्यम् और 'मद्रास स्टैण्डर्ड' के सम्पादक श्री परमेश्वरम् पिल्ले, प्रख्यात वकील श्री भाष्यम् आयंगार और श्री नॉर्टन आदिसे मिला। वहाँ भी सभा की गई। वहाँसे मैं कलकत्ता गया। वहाँ सुरेन्द्रनाथ बनर्जी, महाराजा ज्योतिन्द्रमोहन ठाकुर और 'इंग्लिशमैन' के सम्पादक स्व० श्री सैन्डर्स आदिसे भी मिला।[3] वहाँ जब सभाकी तैयारी की जा रही थी तभी १८९६ के नवम्बर महीनेमें नेटालसे तार[4] मिला, 'तुरन्त चले आओ।' मैं समझ गया कि हिन्दुस्तानियोंके विरुद्ध कोई-न-कोई नया आन्दोलन आरम्भ किया गया है। इसलिए मैं कलकत्तेका काम पूरा किये बिना ही वापस लौट आया और बम्बईसे जो पहला जहाज मिला, अपने परिवारके साथ उसीसे रवाना हो गया। इस जहाजको दादा अब्दुल्लाकी पेढ़ीने खरीद लिया था। नेटाल और पोरबन्दरके बीच जहाज चलानेका उद्योग उनकी पेढ़ीके अनेक उद्योगोंमें से एक था। इस जहाजका नाम 'कूरलैंड' था। इस जहाजके बाद उसी दिन पर्शियन कम्पनीका जहाज 'नादरी'

१ व २. १३ जुलाई १९२१ और २१ जुलाई १९२१ को; देखिए खण्ड २०।

३. गांधीजीने **इंग्लिशमैन** तथा **स्टेट्समैनके** प्रतिनिधियोंसे मुलाकात की थी। **इंग्लिशमैनको** लिखे गये पत्रके लिए देखिए खण्ड २, पृष्ठ १४९-५०।

४. तार पाकर गांधीजी इस भ्रममें थे कि उसका सम्बन्ध केप सरकारकी कार्यवाहीसे है। असली तार प्राप्त होनेपर उन्हें पता चला कि उसका सम्बन्ध ट्रान्सवालसे है। देखिए खण्ड २, पृष्ठ १४९-५०।

भी नेटालको रवाना हुआ। इन दोनों जहाजोंमें दक्षिण आफ्रिका जानेवाले कुल मिलाकर लगभग ८०० हिन्दुस्तानी थे।

मैंने हिन्दुस्तानमें जो हलचल की उसे इतना महत्त्व मिला कि उसके सम्बन्धमें बहुतसे मुख्य-मुख्य अखबारोंमें टिप्पणियाँ लिखी गईं और रायटरने उसकी खबरें तारोंसे इंग्लैंड भेजीं।[1] यह बात मुझे नेटाल पहुँचनेपर मालूम हुई। जो तार इंग्लैंड भेजे गये थे, उनके आधारपर वहाँके रायटरके प्रतिनिधिने एक छोटा-सा तार दक्षिण आफ्रिकाको भी भेज दिया था। इस तारमें मेरे हिन्दुस्तानमें दिये गये भाषणोंका अत्युक्तिपूर्ण विवरण था। इस प्रकारकी अत्युक्ति बहुत बार की जाती है। यों यह सारी अत्युक्ति जान-बूझकर नहीं की जाती। अनेक कार्योंमें व्यस्त व्यक्ति किसी चीजको सतही ढंगसे पढ़ लेता है। और उनके कुछ अपने विचार तो होते ही हैं; उन विचारोंकी एक तसवीर भी उसके मनमें होती है। उसीके अनुसार वे उस विवरणका अपना एक सार तैयार कर डालते हैं। फिर इस सारके भी भिन्न-भिन्न जगहोंमें नये-नये अर्थ किये जाते हैं। और यह सब अनायास ही होता है। सभी सार्वजनिक प्रवृत्तियोंमें यह आशंका रहती ही है। और यही उनकी कसर है। मैंने हिन्दुस्तानमें नेटालके गोरोंपर आक्षेप किये और गिरमिटियोंपर लगाये गये तीन पौंडी करकी बहुत कड़ी आलोचना की। सुब्रह्मण्यम्[2] नामके जिस निरपराध गिरमिटियेको उसके मालिकने मारा-पीटा था उसके घाव मैंने स्वयं देखे थे। उसके मामलेकी सारी कार्रवाई भी मेरे हाथसे हुई थी, इसलिए मैं अपनी योग्यताके अनुसार उसका यथावत् विवरण दे सका था। इस यथावत् विवरणका सार जब नेटाली गोरोंने पढ़ा तो वे मेरे विरुद्ध भड़क उठे। वैसे यह एक अजीब ही बात हुई क्योंकि मैंने जो-कुछ नेटालमें लिखा था वह मेरे हिन्दुस्तानमें लिखी और कही गई बातोंकी अपेक्षा अधिक तीखा और विस्तृत था। मैंने हिन्दुस्तानमें एक भी बात ऐसी नहीं कही थी जिसमें कोई अत्युक्ति हो। किन्तु मैं अनुभवसे इतना जानता था कि यदि हम अनजान श्रोता या पाठकके सामने किसी घटनाका वर्णन भाषण या लेखके रूपमें करें तो वह उसे कुछ बढ़ा-चढ़ाकर ही लेता है। इसी कारण मैंने हिन्दुस्तानमें नेटालका जो वर्णन किया था वह जानबूझकर थोड़ा-बहुत घटाकर ही किया था। किन्तु मैं नेटालमें जो-कुछ लिखता था एक तो उसे बहुत कम गोरे पढ़ते थे और जो पढ़ते भी थे वे उसकी परवाह नहीं करते थे। किन्तु मेरे हिन्दुस्तानके भाषणोंके बारेमें इसके विपरीत प्रतिक्रियाकी सम्भावना थी और हुआ भी वैसा ही। रायटरके संक्षिप्त समाचारोंको तो हजारों गोरे पढ़ते थे। इसके अलावा जो बात तारसे विशेष रूपसे भेजने योग्य समझी गई हो उसका महत्त्व उसके असली महत्त्वसे अधिक माना जाता है। नेटालके गोरोंने सोचा कि यदि मेरे हिन्दुस्तानमें किये गये कामका असर जैसा वे समझते हैं वैसा हुआ हो तो गिरमिटकी प्रथा शायद बन्द ही हो जायेगी और फिर सैकड़ों गोरे मालिकोंको नुकसान पहुँचेगा। इसके अतिरिक्त उन्हें यह भी लगा कि मेरे भाषणोंसे हिन्दुस्तानमें नेटालके गोरोंकी बदनामी हुई है।

१. देखिए खण्ड २, पृष्ठ २००-२।

२. देखिए खण्ड २, पृष्ठ २२; वहाँ दिये गये विवरणके अनुसार इसका नाम बालसुन्दरम् था।

इस प्रकार जब नेटालके गोरोंने अपनी उत्तेजित मानसिक अवस्थामें यह सुना कि मैं अपने कुटुम्बको लेकर 'कूरलैंड' जहाजसे दक्षिण आफ्रिका वापस आ रहा हूँ और उसमें ३०० या ४०० दूसरे हिन्दुस्तानी यात्री भी हैं तथा उसके साथ ही उतने ही अन्य भारतीय यात्री 'नादरी' जहाजमें आ रहे हैं तो इस समाचारने जलती आगमें घी का काम किया और उनका क्रोध और भी भड़क उठा। नेटालके गोरोंने एक बड़ी सभा की जिसमें लगभग सभी अग्रगण्य गोरे शामिल हुए। सभामें मुख्यतः मेरी और सामान्यतः हिन्दुस्तानी जातिकी कड़ी आलोचना की गई तथा 'कूरलैंड' और 'नादरी' के आनेको 'नेटालपर चढ़ाई करना' कहा गया। सभामें वक्ताओंने यही माना और यही विश्वास कराया कि मैं ८०० प्रवासियोंको अपने साथ लाया हूँ और यह नेटालको स्वतन्त्र हिन्दुस्तानियोंसे भर देनेकी दिशामें उठाया गया मेरा पहला कदम है। सभामें ससम्मतिसे यह प्रस्ताव पास किया गया कि दोनों जहाजोंके यात्रियोंको और मुझे उतरने न दिया जाये। यदि नेटालकी सरकार इन लोगोंको न रोके अथवा न रोक सके तो इसके लिए इसी दृष्टिसे गठित समिति कानूनको अपने हाथमें ले ले और बलपूर्वक हिन्दुस्तानियोंको उतरनेसे रोके। दोनों जहाज एक ही दिन नेटालके डर्बन बन्दरगाहमें पहुँचे।

पाठकोंको याद होगा कि सन् १८९६ में हिन्दुस्तानमें पहली बार प्लेगकी बीमारी फैली थी। नेटालकी सरकारके पास हमें कानूनके अनुसार वापस भेजनेका उपाय नहीं था। तबतक प्रवेश प्रतिबन्धक कानून नहीं बनाया गया था। किन्तु नेटाल सरकार-की पूरी सहानुभूति उक्त ढंगसे गठित गोरा समितिके साथ ही थी। एक सरकारी मन्त्री स्व० श्री एस्कम्ब इस समितिके संचालनमें पूरा हाथ भी वटा रहे थे। और वे ही समितिको भड़का भी रहे थे। यदि किसी जहाजमें छूतके किसी रोगका प्रकोप हो अथवा कोई जहाज ऐसी जगहसे आये जहाँ छूतका कोई रोग फैला हो तो बन्दर-गाह कानूनके अनुसार उस जहाजको एक विशेष अवधिके लिए अलग रोककर रखा जा सकता है। अर्थात् उस जहाजका स्थलसे सम्पर्क बन्द कर दिया जाता है एवं उस अवधितक यात्रियोंको और मालको उतरनेसे रोक दिया जाता है। इस प्रकारका प्रतिवन्ध विशुद्ध स्वास्थ्य रक्षाके नियमोंके अन्तर्गत और बन्दरगाहके डाक्टरकी आज्ञासे लगाया जा सकता है। इस प्रतिवन्धको लगानेका उपयोग अथवा दुरुपयोग नेटालकी सरकारने विशुद्ध राजनैतिक दृष्टिसे किया और इन जहाजोंमें छूतके रोगसे ग्रस्त कोई यात्री न होनेपर भी २३ दिनतक बन्दरगाहमें घुसनेसे रोक दिया। इस बीच उक्त समिति अपना काम करती रही। दादा अब्दुल्ला 'कूरलैंड' के मालिक और 'नादरी' के एजेंट थे। समितिने उनको बहुत धमकियाँ दी और जहाजोंको लौटा ले जानेके लिए तरह-तरहके लालच भी दिये। न लौटनेपर कुछने उनके व्यापारको नुकसान पहुँचानेका भय भी दिखाया। किन्तु पेढ़ीके भागीदार भीरु नहीं थे। उन्होंने धमकी देनेवालोंसे कहा: "इस बातपर हम जबतक हमारा सब व्यापार नष्ट नहीं हो जाता और हम बरबाद नहीं हो जाते तबतक लड़ेंगे। हम डरकर इन निर्दोष यात्रियोंको वापस ले जानेका अपराध कभी नहीं करेंगे। आप समझ रखिए कि यदि आपको अपने

देशके विषयमें अभिमान है तो हम भी देशभक्तिसे शून्य नहीं हैं। इस पेढ़ीके पुराने वकील श्री एफ० ए० लॉटन भी साहसी और वीर थे।

सौभाग्यसे इसी बीचमें सूरतके एक कायस्थ सज्जन और स्व० नानाभाई हरिदासके भानजे डॉ० मनसुखलाल नाजर[1] दक्षिण आफ्रिका में आ चुके थे। मैं उनको नहीं जानता था। वे वहाँ आये हुए हैं इसकी मुझे कोई खबर भी नहीं थी। शायद यह कहना जरूरी नहीं है कि 'नादरी' और 'कूरलैंड' के यात्रियोंको लानेमें मेरा कोई भी हाथ नहीं था। उनमें से ज्यादातर लोग दक्षिण आफ्रिकामें रहते चले आये थे और उनमें से अधिकांश ट्रान्सवाल जानेके लिए आये थे। गोरोंकी समितिने इन यात्रियोंको भी धमकी-भरी सूचनायें भेजीं। कप्तानोंने ये सूचनाएँ पढ़कर सुनायीं। उनमें साफ-साफ कहा गया था कि नेटालके गोरे उत्तेजित हो रहे हैं। उनकी मनोदशाको जानते हुए भी यदि हिन्दुस्तानी यात्री बन्दरगाहमें उतरनेका प्रयत्न करेंगे तो बन्दरगाहपर खड़े हुए समितिके आदमी उनमें से हरएकको समुद्रमें ढकेल देंगे। इस सूचनाका अनुवाद 'कूरलैंड'के यात्रियोंको मैंने सुनाया और 'नादरी'के यात्रियोंको उसका अर्थ उसके किसी अंग्रेजी जाननेवाले यात्रीने समझाया। दोनों जहाजोंके यात्रियोंने वापस लौटनेसे साफ इनकार कर दिया। उन्होंने यह भी कहा कि बहुतसे यात्रियोंको तो ट्रान्सवाल जाना है और जो नेटालमें रुकना चाह रहे हैं वे भी ज्यादातर तो नेटालके पुराने बाशिन्दे ही हैं। किसी भी हालतमें उनमें से हरेकको कानूनके मुताबिक नेटालमें उतरनेका अधिकार है और वे समितिकी धमकीके बावजूद अपने अधिकारका दावा करनेके लिए यहाँ अवश्य उतरेंगे।

नेटालकी सरकार भी थक गई। अनुचित प्रतिबन्ध कितने दिन चल सकता था? तेईस दिन हो गये; और न दादा अब्दुल्ला डिगे और न हिन्दुस्तानी यात्री। इसलिए नेटालकी सरकार द्वारा हारकर २३ दिन बाद प्रतिबन्ध हटा दिया गया और जहाजोंको बन्दरगाहमें आनेकी अनुमति दे दी गई। इस बीच श्री एस्कम्ब समितिके क्रोधको समझा-बुझाकर शान्त करनेका प्रयत्न करते रहे। उन्होंने सभा बुलाकर लोगोंसे कहा, डर्बनके गोरोंने एकता और साहसका बहुत अच्छा परिचय दिया है। आपसे जितना बन सका आपने उतना किया। सरकारने भी आपकी सहायता की। उसने इन लोगोंको २३ दिनतक नहीं उतरने दिया। अपने मनोभाव और उत्साहका प्रदर्शन आप कर चुके; इतना काफी है। ब्रिटिश सरकारपर इसका असर गहरा होगा। आपके इस कार्यसे नेटाल सरकारका मार्ग सरल हो गया है। अब यदि आप बल-प्रयोग करके एक भी हिन्दुस्तानी यात्रीको उतरनेसे रोकेंगे तो अपने कामको खुद ही नुकसान पहुँचायेंगे। उससे नेटाल सरकारकी स्थिति विषम हो जायेगी। फिर आप ऐसा करके भी इन लोगोंको उतरनेसे रोकनेमें सफल न होंगे। इसमें यात्रियोंका तो कोई दोष भी नहीं है। उनमें स्त्रियाँ और बच्चे भी हैं। बम्बईसे जहाजमें बैठते वक्त उन्हें आपकी इस मनोदशाका कुछ भी पता नहीं था। इसलिए आप मेरी सलाह मानकर बिखर जायें और इन लोगोंको जहाजोंसे उतरनेमें तनिक भी रुकावट न डालें। किन्तु

१. इन्होंने बादमें दक्षिण आफ्रिकामें गांधीजीके साथ काम किया। देखिए खण्ड ५, पृष्ठ १८७-१९०।

मैं आपको इतना वचन देता हूँ कि आगे आनेवाले लोगोंको रोकनेका नेटाल सरकार विधान सभासे अधिकार ले लेगी। यह तो मैंने श्री एस्कम्बके भाषणका सार ही दिया है। उनके भाषणको सुनकर लोगोंको निराशा तो हुई, किन्तु नेटालके गोरोंपर उनका सदासे बड़ा प्रभाव था, इसलिए वे उनके कहनेसे बिखर गये और दोनों जहाज बन्दरगाहमें आ गये।

श्री एस्कम्बने मेरे सम्बन्धमें यह सन्देश भेजा कि मैं दिन रहते जहाजसे न उतरूँ। वे शामको मुझे लेनेके लिए बन्दरगाहके व्यवस्थापकको भेजेंगे। मैं उन्हींके साथ अपने घर जाऊँ। मेरा परिवार जब चाहे तब उतर सकता है। यह कोई कानूनी हुक्म न था, बल्कि कप्तानने मुझे जहाजसे न उतरने देनेकी सलाह दी और मेरे सम्मुख जो खतरा मौजूद था उससे भी मुझे सचेत किया। कप्तान मुझे जबर-दस्ती तो रोक ही नहीं सकता था, फिर भी मैंने उसकी यह सलाह मान लेना तय किया। अपने बाल-बच्चोंको भी मैंने अपने घर नहीं भेजा, बल्कि डर्बनके प्रसिद्ध व्यापारी और अपने पुराने मुवक्किल तथा मित्र पारसी रुस्तमजीके घर यह कहकर भेज दिया कि मैं उनसे वहीं आ मिलूँगा। यात्री और अन्य सब लोग जहाजसे उतर-कर चले गये थे तब दादा अब्दुल्लाके वकील और मेरे मित्र श्री लॉटन वहाँ आये और मुझसे मिले। उन्होंने मुझसे पूछा, "आप अभीतक क्यों नहीं उतरे हैं?" मैंने श्री एस्कम्बकी चिट्ठीकी बात बताई। उन्होंने कहा, "मुझे तो शाम होनेकी राह देखना और फिर अपराधी अथवा चोरकी तरह शहरमें जाना पसन्द नहीं है। यदि आपको कोई डर न हो तो आप मेरे साथ इसी समय चलें। हम मानो कुछ न हुआ हो इस तरह पैदल ही शहरमें होकर चलें।" मैंने कहा, "मैं भय तो किसी तरहका नहीं मानता किन्तु मेरे सम्मुख विवेक-अविवेकका प्रश्न इतना अवश्य है कि मैं श्री एस्कम्बकी सलाहको मानूँ या न मानूँ। इस सम्बन्धमें कप्तानकी जिम्मेदारी भी कुछ है या नहीं, इसे भी थोड़ा सोच लेना चाहिए।" श्री लॉटन हँसकर बोले, "श्री एस्कम्बने ऐसा क्या किया है, जिससे आपको उनकी सलाहपर तनिक भी ध्यान देनेकी जरूरत हो। फिर उनकी सलाहके पीछे विशुद्ध भलमनसाहत है, कोई छल-कपट नहीं है, यह मान लेनेका भी आपके पास क्या कारण है? शहरमें क्या हुआ है और उसमें इन महाशयका कितना हाथ है, यह बात आपकी अपेक्षा मैं अधिक जानता हूँ।" मैंने बीचमें कुछ कहना चाहा किन्तु वे नहीं रुके। उन्होंने कहा यह मान भी लें कि उन्होंने यह सलाह नेकनीयतीसे दी है, किन्तु इसके बावजूद मेरा पक्का विश्वास है कि इस सलाहपर अमल करनेसे आपकी बदनामी होगी। इसलिए मेरी सलाह तो यह है कि यदि आप तैयार हों तो हम यहाँसे इसी समय रवाना हो जायें। कप्तान तो अपना ही आदमी है। इसलिए उसकी जिम्मेदारी अपनी जिम्मेदारी है। उससे जवाब-तलब करेंगे तो दादा अब्दुल्ला ही करेंगे। वे क्या सोचेंगे, यह मैं जानता हूँ। उन्होंने इस लड़ाईमें बहुत वीरता दिखाई है। मैंने कहा, "तब हम चलें। मुझे कोई तैयारी नहीं करनी है। केवल अपनी पगड़ी सिरपर रख लूँ और कप्तानको कहकर हम यहाँसे रवाना हो जायें।" हमने कप्तानकी अनुमति ले ली।

श्री लॉटन डर्बनके बहुत पुराने और प्रसिद्ध वकील थे। हिन्दुस्तान लौटनेसे पहले ही उनसे मेरे बहुत अच्छे सम्बन्ध बन गये थे। मैं अपने पेचीदा मामलोंमें उन्हींकी सहायता लेता था और बड़े वकीलके रूपमें प्रायः उन्हींको तय करता था। वे स्वयं साहसी और अच्छे ऊँचे पूरे कदके आदमी थे।

हमारा रास्ता डर्बनके सबसे बड़े मुहल्लेमें होकर जाता था। हम जब रवाना हुए तब शामके साढ़े चार बजे होंगे। आकाशमें कुछ हल्के-हल्के बादल थे; किन्तु सूरजको ढकने लायक वे काफी थे। वहाँसे रुस्तमजीके मकानतक पैदल जानेकी दूरी कुछ नहीं तो एक घंटा लगने लायक तो जरूर थी। जहाजसे उतरते ही हमें कुछ लड़कोंने देख लिया। उनमें कोई बड़ी उम्रका आदमी तो नहीं था। बन्दरगाहपर सामान्यतः जितने लोग रहते हैं, उतने ही दिखाई देते थे। चूँकि मेरी जैसी पगड़ी थी वैसी पगड़ी कोई और नहीं पहनता था, इसलिए लड़कोंने मुझे तुरन्त पहचान लिया और 'गांधी,' 'गांधी', 'इसे मारो,' 'इसे घेर लो,' की आवाजें लगाते हुए मेरी ओर आये। कुछ लड़के पत्थर भी फेंकने लगे। कुछ अधेड़ उम्रके गोरे भी उनके साथ आ मिले। धीरे-धीरे उपद्रवियोंकी संख्या बढ़ने लगी और श्री लॉटनको लगा कि पैदल चलते रहे तो जोखिममें पड़ जायेंगे। इसलिए उन्होंने एक रिक्शेवालेको आवाज दी। रिक्शा एक छोटी गाड़ी होती है, जिसे आदमी खींचता है। मैं तो कभी रिक्शामें बैठा नहीं था, क्योंकि जिस सवारीको आदमी खींचता हो उसमें बैठना मुझे बहुत बुरा लगता था। आज मुझे लगा कि मेरा रिक्शेमें बैठ जाना ठीक है। किन्तु जिसकी रक्षा ईश्वरको करनी है, वह डिगना भी चाहे तो ईश्वर उसे डिगने नहीं देता। इस तरहका अनुभव कठिनाईके समयमें मुझे अपने जीवनमें पाँच-सात बार हुआ है। मैं अपने धर्मसे नहीं डिगा, इसका श्रेय मैं बिलकुल नहीं ले सकता। रिक्शा कुली हब्शी ही होते हैं। लड़कोंने और बड़े लोगोंने रिक्शा कुलीको धमकी दी, "यदि तू इस आदमीको रिक्शेमें बिठायेगा तो रिक्शा चकनाचूर कर देंगे और तुझे मार डालेंगे।" इस कारण रिक्शा कुली 'खा' (नहीं) कहकर चलता बना और मैं रिक्शेमें बैठनेसे बच गया।

अब हमारे सम्मुख पैदल चलते रहनेके सिवा दूसरा कोई रास्ता न बचा। भीड़ हमारे पीछे इकट्ठी हो गई। हम ज्यों-ज्यों आगे बढ़ते त्यों-त्यों भीड़ भी बढ़ती जाती। मुख्य सड़क वेस्ट स्ट्रीट आते-आते छोटे-बड़े सैकड़ों गोरे इकट्ठे हो गये। एक तगड़े आदमीने श्री लॉटनको अपनी अँकवारमें भरकर मुझसे दूर कर दिया और वे फिर मुझतक आ पहुँचनेकी स्थितिमें नहीं रहे। अब मुझपर गालियों, पत्थरों और जिसके हाथमें जो-कुछ आया उसकी वर्षा होने लगी। उन्होंने मेरी पगड़ी गिरा दी। तभी एक हट्टे-कट्टे मोटे आदमीने आकर मुझे थप्पड़ मारा और ठोकर लगाई। मैं गश खाकर गिरनेवाला ही था कि रास्तेसे लगे हुए एक घरके अहातेकी जाली मेरे हाथमें आ गई। मैंने उसके सहारे थोड़ा दम लिया और ज्यों ही मुझे होश आया, मैं फिर चलने लगा। मैंने जीवित पहुँचनेकी आशा लगभग छोड़ ही दी थी। किन्तु मुझे इतनी बात ठीक-ठीक याद है कि उस समय भी मैं अपने मनमें इन मारनेवाले लोगोंको तनिक भी दोष नहीं दे रहा था।

इस तरह मेरा चलना जारी ही था कि तबतक डर्बनके पुलिस सुपरिंटेंडेंटकी[1] पत्नी सामनेसे गुजरी। हम एक-दूसरेको अच्छी तरह जानते थे। वह साहसी स्त्री थी। बादल छाये हुए थे और सूरज भी अब छुपनेवाला था। उस महिलाने मेरा बचाव करनेके लिए अपनी छत्री खोलकर मेरे सिरपर लगा दी और मेरी बगलमें चलने लगी। स्त्रीका अपमान और वह भी डर्बनके बहुत पुराने और लोकप्रिय सुपरिंटेंडेंटकी पत्नीका अपमान, गोरे लोग कर ही नहीं सकते थे। वे उसे चोट भी नहीं पहुँचा सकते थे। इसलिए वे उसको बचाते हुए मुझपर जो प्रहार करते थे वह हलका ही होता था। तबतक पुलिस सुपरिंटेंडेंटको हमलेकी खबर मिल गई और उन्होंने पुलिसकी एक टुकड़ी भेज दी जिसने आकर मुझे अपने घेरेमें ले लिया। हमारा रास्ता पुलिस चौकीके पाससे ही जाता था। जब हम वहाँ पहुँचे तो हमें सुपरिंटेंडेंट राह देखते खड़े मिले। उन्होंने मुझको पुलिस चौकीमें चलनेकी सलाह दी। मैंने उनका उपकार माना, किन्तु चौकीमें जानेसे इनकार कर दिया। मैंने कहा, "मुझे तो अपनी जगह ही पहुँचना है। मुझे डर्बनके लोगोंकी न्यायवृत्तिपर और अपनी सत्यनिष्ठापर विश्वास है। आपने पुलिस भेजी, इसके लिए मैं आभारी हूँ। इसके अतिरिक्त श्रीमती अलेक्जेंडरने भी मेरी रक्षा की है।"

मैं सही-सलामत रुस्तमजीके घर पहुँच गया। वहाँ पहुँचते-पहुँचते मुझे लगभग शाम हो गई थी। 'कूरलैंड' के डाक्टर दाजी बरजोर उस समय रुस्तमजीके घरपर ही थे। उन्होंने मेरा उपचार किया। मेरे घाव जाँचे। घाव अधिक तो नहीं आये थे किन्तु एक भीतरी चोट थी जिसमें बहुत दर्द हो रहा था। किन्तु मुझे अभीतक शान्तिसे बैठनेकी गुंजाइश नहीं मिल पाई थी। रुस्तमजी सेठके घरके आगे हजारों गोरे इकट्ठे हो गये थे। रात हो जानेके कारण लुच्चे-लफंगे भी उनमें आ मिले थे। इन लोगोंने रुस्तमजी सेठको यह धमकी दी कि "यदि आप गांधीको हमारे हवाले नहीं करेंगे तो हम गांधीके साथ आपको और आपकी दुकानको भी जला देंगे।" रुस्तमजी किसीके डरानेसे डरनेवाले हिन्दुस्तानी नहीं थे। इसकी खबर सुपरिंटेंडेंट अलेक्जेंडरको मिल गई। इसलिए वे अपनी खुफिया पुलिसको लेकर चुपकेसे इस भीड़में घुस गये और एक चौकी मँगाकर उसपर खड़े हो गये। इस प्रकार उन्होंने लोगोंसे बातचीत करनेके बहाने पारसी रुस्तमजीके घरके दरवाजेपर कब्जा कर लिया, ताकि कोई उसे तोड़कर घरमें न घुस सके। उन्होंने उचित स्थानोंपर गुप्त पुलिस तो रख ही दी थी। उन्होंने साथ ही एक अधिकारीको कहा कि वह हिन्दुस्तानी पोशाक पहनकर अपना मुँह रंगकर हिन्दुस्तानी व्यापारीका भेस बना ले और मेरे पास आकर मुझसे कह दे: "यदि आप अपने मित्र पारसी रुस्तमजीकी, उनके अतिथियोंकी, उनकी सम्पत्तिकी और अपने परिवारकी रक्षा करना चाहते हों तो आप हिन्दुस्तानी सिपाहीका भेष बनाकर रुस्तमजीके गोदामसे निकलकर इसी भीड़में होकर मेरे आदमीके साथ चुपकेसे पुलिस चौकीपर पहुँच जायें। आपके लिए इस गलीके कोनेपर गाड़ी खड़ी कर रखी है। आपको और दूसरे लोगोंको बचानेका मेरे पास यही एक रास्ता है। भीड़

१. आर० सी० अलेक्जेंडर; देखिए खण्ड २, पृष्ठ १७८।

इतनी अधिक उत्तेजित है कि मेरे पास उसको नियन्त्रणमें रखनेका कोई साधन नहीं है। यदि आप इस निर्देशको नहीं मानेंगे तो यह मकान तो नष्ट-भ्रष्ट होगा ही, उसके अतिरिक्त जान-मालका कितना नुकसान होगा मैं इसकी कल्पना भी नहीं कर सकता।"

मैं स्थितिको तुरन्त समझ गया। मैंने उसी समय सिपाहीकी पोशाक माँगी और उसको पहनकर बाहर निकल आया और उस अधिकारीके साथ ही सही सलामत पुलिसकी चौकीपर पहुँच गया। तबतक सुपरिंटेंडेंट अवसरके अनुकूल गीतों और बातोंसे भीड़को रिझाते रहे। जब उनको यह इशारा मिल गया कि मैं पुलिसकी चौकी-पर पहुँच गया हूँ तब उन्होंने अपनी असली बातचीत इस प्रकार आरम्भ की:

'आप क्या चाहते हैं?'

'हम गांधीको चाहते हैं।'

'आप उनका क्या करना चाहते हैं?'

'हम उसको जलायेंगे।'

'उन्होंने आपका क्या बुरा किया है?'

'उसने हमारे सम्बन्धमें हिन्दुस्तानमें बहुत-सी झूठी बातें कहीं हैं और वह नेटालमें हजारों हिन्दुस्तानियोंको लाना चाहता है।'

'किन्तु यदि वे बाहर न निकलें तो आप क्या करेंगे?'

'तो हम इस मकानमें आग लगा देंगे।'

'इसमें तो बाल-बच्चे हैं। दूसरे स्त्री-पुरुष भी हैं। क्या आपको इन स्त्रियों और बालकोंको जलानेमें लज्जा नहीं आयेगी?'

'यह तो आपका दोष है। आप हमें लाचार करते हैं तो हम क्या करें? हम तो किसी दूसरेको नुकसान नहीं पहुँचाना चाहते। आप गांधीको हमें सौंप दें इतना ही पर्याप्त है। यदि आप अपराधीको हमें न सौंपें और उसे पकड़नेमें दूसरोंको नुकसान पहुँचे तो उसका दोष हमारे ऊपर डालना कहाँका न्याय है?'

सुपरिंटेंडेंटने तब उनसे मुसकराते हुए कहा, 'गांधी तो तुम्हारे बीचमें होकर ही सही सलामत निकलकर दूसरी जगह पहुँच गया है।' लोग यह सुनकर खिल-खिलाकर हँस पड़े और "झूठ है, झूठ है" की आवाजें लगाने लगे। सुपरिंटेंडेंट बोला, "यदि आप अपने बूढ़े पुलिस कप्तानकी बातका विश्वास नहीं करते तो आप अपनी पसन्दके तीन-चार आदमियोंकी एक समिति बना लें और दूसरे सब लोग यह वचन दें कि समितिके सदस्योंके सिवा दूसरा कोई भी मकानमें न घुसेगा और यदि समितिके सदस्योंको मकानमें गांधी न मिले तो सब लोग यहाँसे चुपचाप चले जायें। आपने आज जोशमें आकर पुलिसकी सत्ता नहीं मानी है। इसमें बदनामी पुलिसकी नहीं आपकी है। इसीलिए पुलिसने आपके साथ चाल चली। वह आपके बीचमें से आपके शिकारको निकाल ले गई और आप मात खा गये। आप इसमें पुलिसको तो अवश्य दोष नहीं दगे। जिस पुलिसको आपने नियुक्त किया है उसने तो अपने कर्त्तव्यका पालन किया है।"

पुलिस सुपरिंटेंडेंटने ये सब बातें इतनी मिठाससे, हँसकर और दृढ़तापूर्वक कही कि लोगोंने जो वे चाहते थे सो वचन दे दिया। समिति नियुक्त की गई। उसने पारसी रुस्तमजीके घरका कोना-कोना ढूँढ़ डाला और तब लोगोंसे कहा, 'सुपरिंटेंडेंट-का कहना सच है। उन्होंने हमें मात दे दी है।' इससे लोगोंको निराशा तो हुई किन्तु वे अपने वचनपर दृढ़ रहे। उन्होंने कोई नुकसान नहीं किया और अपने-अपने घर चले गये। यह घटना १३ जनवरी १८९७ की है।[१]

उसी दिन सुबह जब यात्रियोंपर से प्रतिबन्ध हटाया गया था तभी डर्बनके एक अखबारका संवाददाता जहाजपर मेरे पास आया था, और मुझसे पूछकर सब तथ्य लिखकर ले गया था।[२] मेरे ऊपर जो आरोप लगाये गये थे उनका पूर्णतः निरा-करण करना बिलकुल आसान था। मैंने सब बातोंके उदाहरण देकर यह बता दिया था कि मैंने तिल-भर भी अतिशयोक्ति नहीं की है। मैंने जो-कुछ किया वह मेरा धर्म था। यदि मैं वैसा न करता तो मनुष्य गिने जाने योग्य भी न होता। ये तथ्य दूसरे दिन पूरेके-पूरे प्रकाशित कर दिये गये और समझदार गोरोंने अपना दोष स्वीकार किया। अखबारोंने नेटालकी स्थितिके सम्बन्धमें अपनी सहानुभूति दिखाई; किन्तु उन्होंने साथ ही मेरे कार्यका पूरा समर्थन किया। इससे मेरी प्रतिष्ठा बढ़ी और उसके साथ-साथ हिन्दुस्तानी जातिकी भी। उनको इस बातका प्रमाण भी मिला कि गरीब होकर भी हिन्दुस्तानी कायर नहीं हैं और हिन्दुस्तानी व्यापारी भी अपने वाणिज्य-व्यवसायकी परवाह न करके अपने सम्मान और अपने देशके लिए लड़ सकते हैं।

इससे यद्यपि एक ओर जातिको कष्ट सहन करना पड़ा और दादा अब्दुल्लाको बहुत नुकसान उठाना पड़ा, फिर भी दूसरी ओर मैं यह मानता हूँ कि अन्तमें लाभ ही हुआ। जातिको भी अपनी शक्तिका कुछ पता चला और उसका आत्मविश्वास बढ़ गया। मेरा भी अनुभव कुछ बढ़ गया और अब जब मैं उस दिनका विचार करता हूँ तो मुझे लगता है कि ईश्वर मुझे इस प्रकार सत्याग्रहके लिए तैयार कर रहा था।

नेटालकी घटनाओंका असर इंग्लैंडमें भी हुआ। उपनिवेश मंत्री श्री चेम्बरलेनने नेटाल सरकारको तार दिया कि जिन लोगोंने मेरे ऊपर हमला किया है उनपर मुकदमा चलाया जाये और मेरे साथ न्याय किया जाये।[३]

श्री एस्कम्ब न्यायविभागके अटर्नी जनरल थे। उन्होंने मुझे बुलाया और श्री चेम्बरलेनके तारका जिक्र किया। उन्होंने मुझे जो कष्ट हुआ इसपर खेद प्रकट किया और मैं बच गया, इसपर प्रसन्नता प्रकट की। उन्होंने फिर कहा, "मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि आपको और आपकी जातिको कोई नुकसान पहुँचे, मेरी यह इच्छा बिलकुल नहीं थी। मुझे भय था कि आपको नुकसान पहुँच सकता है, इसलिए मैंने

१. इस घटनाके विस्तृत विवरणके लिए देखिए खण्ड २, पृष्ठ १९७-३२० तथा **आत्मकथा**, भाग ३, अध्याय २ और ३।

२. देखिए खण्ड २, १६६-१७८।

३. देखिए **आत्मकथा**, भाग ३, अध्याय ३।

आपको रातमें उतरनेका सन्देश भेजा था; किन्तु आपको मेरी सलाह पसन्द नहीं आई। आपने श्री लॉटनकी सलाह मानी, इसमें मैं आपको कोई दोष नहीं देना चाहता। आपने जैसा ठीक समझा वैसा करनेका आपको पूरा अधिकार था। नटाल सरकार श्री चेम्बरलेनकी माँगसे बिलकुल सहमत है। हम चाहते हैं कि अपराधियोंको दण्ड दिया जाये। क्या आप हमला करनेवालोंमें से किसीकी शिनाख्त कर सकेंगे? मैंने उत्तर दिया, "सम्भव है, मैं एक-दोकी शिनाख्त भी कर सकूँ। किन्तु अधिक कुछ कहे बिना मैं कह देना चाहता हूँ कि मैं अपने मनमें जिन लोगोंने मेरे ऊपर हमला किया है उनपर मैं अदालतमें मुकदमा न चलानेका निश्चय कर चुका हूँ। उनपर मुकदमा चलानेकी मेरी इच्छा ही नहीं होती। मैं हमला करनेवाले लोगोंका कोई दोष नहीं देखता। उनको जो खबर मिली थी वह उन्हें अपने नेताओंसे मिली थी। उसके सच होने-न-होनेकी जाँच वे लोग नहीं कर सकते थे। उन्होंने मेरे सम्बन्धमें जो-कुछ सुना उस सबको उन्होंने सच समझा, इसलिए वे भड़क गये और जोशमें आकर जो काम उन्हें नहीं करना था उसको कर बैठे। इसके लिए उन्हें मैं दोषी नहीं मानता। उत्तेजित भीड़ें इसी तरह बरतती हैं। यदि इसमें किसीका दोष है तो इस सम्बन्धमें नियुक्त की गई समितिका, स्वयं आपका और इस कारण नेटाल सरकारका है। रायटरने जैसा भी तार दिया हो, किन्तु जब मैं यहाँ आ रहा था और यह बात आप जानते थे तब आपका और समितिका कर्त्तव्य था कि आपके मनमें जो शंकाएँ उठी थीं आप उनको मेरे सम्मुख रखते और मेरा उत्तर सुनते। उसके बाद आप जो करना योग्य समझते वह करते। अब मेरे ऊपर हमला किया गया इस बातको लेकर मैं आपपर और समितिपर मुकदमा चलाऊँ ऐसा नहीं हो सकता। इसकी सुविधा हो तो भी मैं अदालतसे न्याय प्राप्त करना नहीं चाहता। आपने नेटालके गोरोंके अधिकारोंकी रक्षाके लिए जो कदम उठाना उचित समझा वह कदम उठाया; यह मामला राजनैतिक है। मुझे भी इसी क्षेत्रमें आपसे जूझना है और आपको और गोरे लोगोंको यह बताना है कि हिन्दुस्तानी जाति ब्रिटिश साम्राज्यके एक बड़े अंगके रूपमें गोरोंको नुकसान पहुँचाये बिना अपने सम्मान और अधिकारोंकी रक्षा करना चाहती है।" श्री एस्कम्बने कहा, 'आपने जो बात कही मैं उसे समझ गया। और वह मुझे अच्छी भी लगी है। मैं यह आशा नहीं करता था कि आप मुकदमा नहीं चलाना चाहेंगे। यदि आप मुकदमा चलाना चाहते तो मैं तनिक भी अप्रसन्न न होता। किन्तु जब आपने मुकदमा न चलानेका निश्चय प्रकट कर दिया है तो मुझे यह कहनेमें संकोच नहीं होता कि आपने यह निर्णय उचित ही किया है। इतना ही नहीं; बल्कि आपके इस आत्मसंयमसे आपकी जातिको लाभ पहुँचेगा। यह भी मुझे स्वीकार करना चाहिए कि आप इस तरह नेटाल सरकारको भी विषम स्थितिमें पड़नेसे बचा लेंगे। यदि आप चाहें तो हम गिरफ्तारियाँ आदि अवश्य करेंगे; किन्तु यह स्पष्ट है कि इस सबसे गोरोंमें रोष पैदा होगा और वे अनेक प्रकारकी आलोचनाएँ करेंगे। कोई भी सरकार इस सबको पसन्द नहीं कर सकती। किन्तु यदि आपने अन्तिम रूपसे निर्णय कर लिया हो तो आपको मेरे नाम इस तरहकी

एक चिट्ठी लिख देनी चाहिए कि आपका विचार मुकद्दमा चलानेका नहीं है। मैं श्री चेम्बरलेनके सम्मुख केवल अपनी बातचीतका सार प्रस्तुत करके ही अपनी सरकारका बचाव नहीं कर सकता। मुझे तो आपकी चिट्ठीका सार ही तारसे भेजना होगा। किन्तु मैं यह नहीं कहता कि आप यह चिट्ठी इसी समय लिख दें, आप इस सम्बन्धमें अपने मित्रोंसे सलाह कर लें। आप श्री लॉटनकी सलाह भी ले लें। यदि उसके बाद भी आपका यह विचार पक्का रहे तो आप मुझे पत्र लिख दें, किन्तु मुझे इतना तो कहना ही चाहिए कि आप अपने पत्रमें साफ स्वीकार करें कि मुकदमा न चलानेकी जिम्मेदारी आपकी ही है। मैं उस हालतमें ही उसका उपयोग कर सकूँगा।' मैंने कहा, "मैंने इस सम्बन्धमें अभीतक किसीसे सलाह नहीं ली है। आपने मुझे किसलिए बुलाया है, मैं यह भी नहीं जानता था। मुझे इस सम्बन्धमें किसीसे सलाह करनेकी इच्छा भी नहीं है। मैंने जब श्री लॉटनके साथ जहाजसे निकलनेका निश्चय किया, तभी अपने मनमें यह तय कर लिया था कि यदि मुझे कोई नुकसान पहुँचेगा तो मैं उससे मनमें बुरा नहीं मानूँगा। अतः अब मैं मुकदमा चला ही कैसे सकता हूँ? मेरे लिए तो यह धार्मिक प्रश्न है और आपकी तरह मैं यह भी मानता हूँ कि मेरे आत्मसंयमसे मेरी जातिको लाभ होगा। इतना ही नहीं मेरी मान्यता यह भी है कि उससे स्वयं मुझे भी लाभ पहुँचेगा। इसलिए मैं सारी जिम्मेदारी अपने ऊपर लेकर यहीं आपको पत्र लिख देना चाहता हूँ। और मैंने वहीं उनसे एक कोरा कागज लेकर पत्र[1] लिख दिया।

अध्याय ८

हिन्दुस्तानियोंने क्या किया – ३

इंग्लैंडसे सम्बन्ध

पाठकोंने पिछले प्रकरणोंमें देखा होगा कि हिन्दुस्तानी जातिने जाने और अनजाने अपनी स्थिति सुधारनेका कितना प्रयत्न किया और अपनी प्रतिष्ठा बढ़ाई। इस समाजने जहाँ दक्षिण आफ्रिकामें अपने सर्वांगीण विकासका यथाशक्ति प्रयत्न किया वहाँ हिन्दुस्तान और इंग्लैंडसे भी जितनी सहायता मिल सकी उतनी लेनेका प्रयत्न किया। मैं हिन्दुस्तानकी सहायताके सम्बन्धमें तो थोड़ा-सा लिख ही चुका हूँ। इंग्लैंडसे सहायता लेनेके सम्बन्धमें हमने क्या किया, यह लिखना भी जरूरी है। हमारा कांग्रेसकी ब्रिटिश समितिसे सम्बन्ध स्थापित करना तो आवश्यक था ही; इसलिए हर सप्ताह भारतके पितामह दादाभाई नौरोजीको और समितिके प्रमुख सर विलियम वेडरबर्नको सारी खबरें पत्रके[2] रूपमें भेज दी जाती थीं और अवसर आनेपर प्रार्थना-

१. उपलब्ध नहीं है।

२. इससे पहला पत्र शायद ५ जुलाई १८९४ को लिखा गया। इसके बाद गांधीजी कई सालतक नियमित रूपसे दक्षिण आफ्रिकाके समाचार, दादाभाई नौरोजी, सर विलियम वेडरबर्न और ब्रिटिश भारतीय समितिको भेजते रहे। देखिए खण्ड १ से ७ ।

पत्रोंकी नकलें आदि भेजनेके डाकखर्चमें और सामान्य खर्चके लिए सुविधाकी दृष्टिसे कमसे-कम दस पौंड भेजे जाते थे।

मैं यहाँ दादाभाईका एक पुनीत संस्मरण दे दूँ। दादाभाई इस ब्रिटिश समितिके प्रमुख नहीं थे। फिर भी मुझे ऐसा लगा कि पैसा उन्हींके मार्फत भेजना ठीक होगा। वे चाहेंगे तो उसे अध्यक्षको दे देंगे। किन्तु पहली बार जो पैसा भेजा, दादाभाईने उसको लौटा दिया और हमें लिखा, आप लोगोंको समितिसे सम्बन्धित पैसा आदि भेजनेका सब काम सर विलियम वेडरबर्नके मार्फत ही करना चाहिए। उसमें मैं तो सहायता दूँगा ही; किन्तु समितिकी प्रतिष्ठा सर विलियम वेडरबर्नके मार्फत काम करनेसे ही बढ़ेगी। मैंने यह भी देखा कि दादाभाई वृद्धावस्थामें अशक्त हो जानेपर भी पत्रव्यवहारमें बहुत नियमित थे। यदि उनको कोई खास बात नहीं लिखनी होती थी तो भी पत्रकी पहुँच तो वे लौटती डाकसे ही दे देते थे और उसीमें एक पंक्ति आश्वासनकी भी जोड़ देते थे। ऐसे छोटे-मोटे पत्र भी वे स्वयं ही लिखते थे और उसकी नकल भी अपनी टिश्यू पेपरकी पुस्तिकामें रख लेते थे।

एक पिछले प्रकरणमें मैं यह भी बता चुका हूँ कि यद्यपि मैंने संस्थाका नाम 'कांग्रेस' रखा था, फिर भी मैंने प्रश्नको एकपक्षीय बनानेका विचार कभी नहीं किया। इसलिए दादाभाईकी जानकारीमें ही हमारा पत्र-व्यवहार अन्य पक्षोंके साथ भी चलता था। पत्र-व्यवहार जिन मुख्य दो व्यक्तियोंके साथ होता था वे थे सर मंचरजी भावनगरी और सर विलियम विल्सन हंटर। सर मंचरजी भावनगरी उस समय ब्रिटिश संसदके सदस्य थे। वे हमारी बहुत सहायता करते थे और सदा सलाह भी देते रहते थे। किन्तु दक्षिण आफ्रिकाके प्रश्नका महत्त्व हिन्दुस्तानियोंसे भी पहले सर विलियम विल्सन हंटरने समझा और उसके सम्बन्धमें मूल्यवान सहायता दी। वे 'टाइम्स'के हिन्दुस्तानियोंसे सम्बन्धित विभागके सम्पादक थे। हमारा पहला पत्र पानेके बादसे ही उन्होंने अपने विभागमें दक्षिण आफ्रिकाकी स्थितिको उसके सच्चे रूपमें प्रस्तुत करना आरम्भ कर दिया था और साथ ही वे इस सम्बन्धमें जिनसे पत्रव्यवहार उचित समझते थे उनसे पत्र-व्यवहार भी शुरू कर दिया था। जब कोई महत्त्वपूर्ण प्रश्न चल रहा होता था तब लगभग प्रति सप्ताह हमें इनका पत्र मिलता था। इन्होंने अपने पहले ही पत्रमें यह लिखा था, "आपने जो स्थिति बताई है उसको जानकर मुझे दुःख हुआ है। आप अपना काम विनय, शान्ति और संयमसे कर रहे हैं। इस प्रश्नके सम्बन्धमें मेरी सहानुभूति पूर्णतः आपके साथ है। मैंने यह निश्चय किया है कि आपके साथ न्याय करवानेके लिए मुझसे जितना हो सकेगा मैं उतना प्रयत्न निजी और सार्वजनिक रूपसे करूँगा। मुझे लगता है कि हम अपनी माँगोंको तनिक भी कम नहीं कर सकते। आपकी माँगें इतनी संयत हैं कि उनमें कमी करनेका सुझाव कोई निष्पक्ष मनुष्य नहीं दे सकता।" उन्होंने 'टाइम्स'में प्रकाशित अपने पहले लेखमें भी लगभग यही लिखा था। वे अन्ततक इसी स्थितिपर कायम रहे। उनकी पत्नीका एक पत्र हमें मिला था जिसमें उन्होंने लिखा था कि उन्होंने अपनी मृत्युसे कुछ पहले हिन्दुस्तानियोंके प्रश्नपर लिखनेके लिए एक लेखमालाकी रूपरेखा तैयार की थी।

मैं मनसुखलाल नाजरका उल्लेख पिछले प्रकरणमें कर चुका हूँ। हमने उन्हें इंग्लैंडके लोगोंको यह प्रश्न अधिक अच्छी तरह समझानेके लिए हिन्दुस्तानी समाजकी ओरसे इंग्लैंड भेजा था और यह समझा दिया था कि वे सभी पक्षोंको साथ लेकर चलें। वे जबतक वहाँ रहें तबतक स्व० सर विलियम विल्सन हंटर, सर मंचरजी भावनगरी और ब्रिटिश समितिके सम्पर्कमें रहें। वे साथ ही हिन्दुस्तानसे पेंशन प्राप्त भूतपूर्व अधिकारियों, भारत मन्त्रीके कार्यालय और उपनिवेश विभाग आदिसे भी सम्पर्क रखते थे। इस प्रकार हमने यथासम्भव हर दिशामें प्रयत्न करनेमें कुछ उठा नहीं रखा। इस सबका परिणाम स्पष्ट रूपसे यह हुआ कि हिन्दुस्तानसे बाहर रहनवाले हिन्दुस्तानियोंकी स्थिति ब्रिटिश सरकारके लिए एक बड़ा प्रश्न बन गई और उसका अच्छा और बुरा प्रभाव दूसरे उपनिवेशोंपर भी पड़ा। इससे जहाँ-जहाँ हिन्दुस्तानी रहते थे वहाँ सब जगहोंमें हिन्दुस्तानी और गोरे जाग्रत हो गये।

अध्याय ९

बोअर युद्ध

पिछले प्रकरण ध्यानपूर्वक पढ़नेपर पाठकोंने बोअर युद्धके समय दक्षिण आफ्रिकाके हिन्दुस्तानियोंकी स्थिति कैसी थी यह अवश्य समझ लिया होगा। हम यहाँतक किये गये उनके प्रयत्नोंका वर्णन भी कर चुके हैं।

सन् १८९९ में[१] डॉ० जेमिसनने सोनेकी खानोंके मालिकोंसे षड्यन्त्र करके जोहानिसबर्गपर हमला किया था। वे आशा तो यही रखते थे कि बोअर सरकारको जोहानिसबर्गपर अधिकार हो जानेके बाद ही हमलेका पता चलेगा। किन्तु डॉ० जेमिसन और उनके मित्रोंका यह अनुमान एक बड़ी भूल थी। उनका दूसरा अनुमान यह था कि यदि इस षड्यन्त्रका भेद खुल गया तो भी रोडेशियामें सीखे-सिखाये निशानेबाजोंका सामना अनाड़ी बोअर किसान कैसे कर सकेंगे? वे यह भी समझते थे जोहानिसबर्ग नगरमें रहनेवाले लोगोंमें से अधिकांश तो उनका स्वागत ही करेंगे। भोले डाक्टरका ऐसा अनुमान लगाना खालिस भूल थी। राष्ट्रपति क्रूगरको ठीक समयपर षड्यन्त्रका पता चल गया था। उन्होंने अत्यन्त शान्तिपूर्वक चतुराईसे और छुपे-छुपे डॉ० जेमिसनका सामना करनेकी तैयारी की और साथ ही षड्यंत्रमें सम्मिलित लोगोंको गिरफ्तार करनेकी व्यवस्था भी। इसलिए डॉ० जेमिसनके जोहानिसबर्गके पास पहुँचनेसे पहले ही बोअर सेनाने गोलियोंसे उनका स्वागत किया। इस सेनाके सम्मुख डॉ० जेमिसनकी टुकड़ीके पैर उखड़ गये। जोहानिसबर्गमें भी कोई विरोधमें खड़ा न हो सके, इसकी भी बोअरोंने पूरी तैयारी कर ली थी। इसलिए शहरमें किसीने सिर नहीं उठाया। राष्ट्रपति क्रूगरकी आनन-फानन कार्रवाईसे जोहानिसबर्गके करोड़पति दंग रह गये। इतनी अच्छी तैयारीका बहुत ही सुन्दर परिणाम यह निकला कि लड़ाईमें अधिक खर्च नहीं आया और खून-खराबी भी कमसे-कम हुई।

१. १८९५ में; देखिए वॉकरकी **हिस्ट्री ऑफ साउथ आफ्रिका**, पृष्ठ ४५५।

डॉ० जेमिसन और उनके सोनेकी खानोंके मालिक मित्र गिरफ्तार कर लिये गये। उनपर बड़ी शीघ्रतासे मुकदमे चलाकर कुछ लोगोंको फाँसीकी सजाएँ भी दे दी गईं। इनमें ज्यादातर तो करोड़पति ही थे। इसमें ब्रिटिश सरकार क्या कर सकती थी? हमला तो दिन-दहाड़े हुआ ही था। इससे राष्ट्रपति क्रूगरकी प्रतिष्ठा एकदम बढ़ गई। उपनिवेश मन्त्री श्री चेम्बरलेनने दीनता-भरा तार दिया और राष्ट्रपति क्रूगरके दयाभावको जगाकर इन बड़े-बड़े लोगोंके लिए दयाकी भीख माँगी। राष्ट्रपति क्रूगरको भली-भाँति पासे फेंकना आता था। उनको यह भय तो था ही नहीं कि दक्षिण आफ्रिकामें कोई भी शक्ति उनसे राज्यसत्ता छीन सकती है। डॉ० जेमिसन और उनके मित्रोंने अपनी समझसे तो यह गुप्त योजना सुन्दर ढंगसे तैयार की थी, किन्तु राष्ट्रपति क्रूगरकी दृष्टिसे तो यह लड़कपन-भरी ही निकली। इसलिए उन्होंने चेम्बरलेनकी प्रार्थना स्वीकार कर ली और किसीको भी फाँसीकी सजा नहीं दी, यही नहीं बल्कि सबको पूरी माफी देकर छोड़ भी दिया।

किन्तु उबकाईके साथ ऊपर आया हुआ अन्न पेटमें कबतक ठहर सकता है। राष्ट्रपति क्रूगर भी जानते थे कि डॉ० जेमिसनका हमला गम्भीर रोगका एक छोटा-सा लक्षण-भर है। जोहानिसबर्गके करोड़पति अपनी बदनामीको किसी भी तरह दूर करनेका प्रयत्न न करें, यह असम्भव है। फिर जिन सुधारोंके अभावमें डॉ० जेमिसनने हमलेकी योजना की थी उनमें से कोई भी सुधार तबतक नहीं किया गया था। इसलिए करोड़पति भी चुप नहीं बैठ सकते थे। उनकी माँगसे दक्षिण आफ्रिकी ब्रिटिश साम्राज्यके मुख्य प्रतिनिधि (उच्चायुक्त) लॉर्ड मिलनरकी पूरी सहानुभूति थी। इसी प्रकार श्री चैम्बर-लेनने ट्रान्सवालके विद्रोहियोंके प्रति दिखाई गई राष्ट्रपति क्रूगरकी उदारताकी सराहना करनेके साथ-साथ उनका ध्यान सुधारोंकी आवश्यकताकी ओर भी खींचा था। खान-मालिकोंकी माँगें ऐसी थीं कि उनके परिणामस्वरूप अन्तमें ट्रान्सवालमें बोअरोंकी प्रधानताका अन्त हुए बिना न रह सकता था। दोनों पक्ष इस बातको समझते थे कि इसका अन्तिम परिणाम युद्ध ही है। इसलिए दोनों युद्धकी तैयारी कर रहे थे। इन दिनों दोनोंका वाग्युद्ध भी देखने योग्य था। राष्ट्रपति क्रूगर जब अधिक हथियार और युद्ध-सामग्री इकट्ठा करते तब ब्रिटिश प्रतिनिधि उन्हें चेतावनी देता था कि अंग्रेज सरकारको भी दक्षिण आफ्रिकामें आत्मरक्षाके लिए कुछ सेना लानी होगी। और जब दक्षिण आफ्रिकामें अंग्रेजी सेना आती तब राष्ट्रपति क्रूगरकी ओरसे भी ताना मारा जाता और युद्धकी तैयारियाँ तेज कर दी जाती थीं। इस प्रकार प्रत्येक पक्ष दूसरे-पर आरोप लगाता और युद्धकी तैयारियाँ करता जाता था।

राष्ट्रपति क्रूगरने जब युद्धकी पूरी तैयारी कर ली तब उन्होंने सोचा कि अब बैठे रहना तो अपने-आप शत्रुके सम्मुख समर्पण करनेके समान होगा। ब्रिटिश साम्रा-ज्यके पास अनन्त धनबल और सैन्यबल है। ब्रिटिश साम्राज्य धीरे-धीरे एक ओर युद्धकी तैयारी और दूसरी ओर राष्ट्रपति क्रूगरसे न्याय करनेकी प्रार्थना करता हुआ लम्बा समय निकाल दे सकता है और दुनियाको यह दिखा सकता है कि जब राष्ट्र-पति क्रूगर न्याय करना ही नहीं चाहते तब उन्हें लाचार होकर युद्ध करना पड़ा है।

वह यह कहकर ऐसी पूरी तैयारीसे युद्ध करेगा कि राष्ट्रपति क्रूगर लड़ाईमें उनका सामना न कर सकेंगे और ब्रिटिश साम्राज्यकी माँगें माननेके लिए मजबूर हो जायेंगे। जिस जातिके १८ से लेकर ६० तककी आयुके सभी पुरुष युद्ध-कुशल हों और जिसकी स्त्रियाँ भी चाहें तो लड़ सकती हों और जिस जातिमें जातीय स्वतन्त्रता धार्मिक सिद्धान्त मानी जाती हो, वह जाति किसी चक्रवर्तीके बलके सम्मुख भी ऐसी दीन-दशाको प्राप्त नहीं हो सकती। बोअर जाति ऐसी ही वीर थी।

राष्ट्रपति क्रूगरने ऑरेंज फ्री स्टेटसे तो पहले ही सलाह कर ली थी। इन दोनों बोअर राज्योंकी शासन पद्धति एक समान थी। राष्ट्रपति क्रूगरका विचार अंग्रेजोंकी माँगे पूरी तरह स्वीकार करने अथवा खान-मालिकोंको सन्तुष्ट करनेका बिलकुल नहीं था। इसलिए राष्ट्रपति क्रूगरने लॉर्ड मिलनरको अन्तिम रूपसे अपने विचार और अपनी माँगसे आगाह करके ट्रान्सवाल और ऑरेंज फ्री स्टेटकी हदोंपर अपनी सेनाएँ जमा दीं। इसका परिणाम सिवा युद्धके और कुछ हो ही नहीं सकता था। ब्रिटिश साम्राज्य जैसा चक्रवर्ती राज्य धमकीके आगे नहीं झुक सकता था। जब अन्तिम चुनौतीकी अवधि पूरी हो गई तब बोअर सेना बिजलीकी तरह तेजीसे आगे बढ़ी। उसने लेडीस्मिथ, किम्बर्ले और मेफिंकिंग नगरोंको घेर लिया। इस प्रकार सन् १८९९ में इस जबरदस्त युद्धका आरम्भ हो गया। पाठक जानते ही हैं कि युद्धके कारणोंमें एक कारण बोअर राज्योंमें हिन्दुस्तानियोंकी स्थिति थी; अर्थात् अंग्रेजोंकी एक माँग यह भी थी कि बोअर राज्योंमें हिन्दुस्तानियोंकी स्थिति सुधारी जाये।

इस अवसरपर दक्षिण आफ्रिकाके हिन्दुस्तानियोंको क्या करना चाहिए, यह बड़ा प्रश्न उनके सम्मुख उपस्थित हुआ। बोअर जातिमें से तो सभी पुरुष युद्धमें चले गये थे। वकीलोंने वकालत, किसानोंने खेती, व्यापारियोंने अपना व्यापार और नौकरोंने अपनी नौकरियाँ छोड़ीं और फौजमें भरती हो गये। अंग्रेजोंके पक्षमें बोअरोंके बराबर तो नहीं, किन्तु केप कालोनी, नेटाल और रोडेशियासे असैनिक वर्गोंके लोग बहुत बड़ी संख्यामें स्वयंसेवक बन गये थे। बहुतसे बड़े-बड़े अंग्रेज वकील और व्यापारी स्वयंसेवकोंमें सम्मिलित हुए। मैं जिस अदालतमें वकालत करता था उसमें बहुत कम वकील दिखाई देते थे। बहुत-से बड़े-बड़े वकील युद्धके कामोंमें लग गये थे। हिन्दुस्तानियोंपर जो आरोप लगाये जाते थे उनमें से एक आरोप यह था कि ये लोग दक्षिण आफ्रिकामें केवल धन कमानेके लिए ही आते हैं, वे अंग्रेजोंपर केवल भाररूप हैं और जैसे घुन भीतर-ही-भीतर लकड़ीको खोखला कर देता है, ये लोग वैसे ही हमारे कलेजोंको कुतर-कुतर कर खानेके लिए ही यहाँ आये हैं। यदि देशपर हमला हुआ और हमारे घरबार लुटनेका अवसर आया तो ये हमारे काम बिलकुल न आयेंगे। उस समय हमें लुटेरोंसे केवल अपना ही नहीं, इनका बचाव भी करना पड़ेगा। हम सब हिन्दुस्तानियोंने इस आरोपपर भी विचार किया। हम सबको लगा कि इस आरोपमें सत्य नहीं है, यह सिद्ध करनेका यह एक बहुत अच्छा अवसर आया है। किन्तु दूसरी ओरसे यह भी कहा गया कि:

"हमें तो अंग्रेज और बोअर दोनों समान रूपसे सताते हैं। हमें ट्रान्सवालमें कष्ट उठाने पड़ते हैं और नेटाल तथा केपमें भी। हम वहाँ उनसे बरी हों सो बात नहीं

है। यदि कोई अन्तर है तो वह मात्राका है। फिर हम तो गुलाम ही माने जाते हैं। हम यह बात जानते हैं कि बोअरोंकी छोटी-सी जमात अपने अस्तित्वके लिए लड़ रही है, फिर हम उसके विनाशके कारण क्यों बनें और यदि व्यवहार-दृष्टिसे सोचें तो कोई यह भी नहीं कह सकता कि अन्तमें बोअर हारेंगे। यदि वे जीत जायेंगे तो हमसे वैर निकालनेमें कोई कसर नहीं रखेंगे।"

हम लोगोंमें से जिन्होंने यह तर्क बहुत जोरसे रखा उनका पक्ष काफी सबल था। मैं स्वयं भी इस तर्कको समझ गया था और मैंने उसे आवश्यक महत्त्व दिया। फिर भी मुझे यह तर्क ठीक न लगा और मैंने अपने मनमें इस तर्कको समझकर हिन्दुस्तानी समाजको इस प्रकार समझाया कि:

"हम दक्षिण आफ्रिकामें केवल ब्रिटिश प्रजाके रूपमें ही रहते हैं। हमने जितनी अर्जियाँ दी हैं उन सभीमें ब्रिटिश प्रजाकी हैसियतसे अपने अधिकार माँगे हैं। हमने ब्रिटिश प्रजा होनेमें अपना सम्मान समझा है और राज्याधिकारियों और संसारको भी यह बताया है कि हमारा सम्मान इसीमें है। राज्याधिकारियोंने भी ब्रिटिश प्रजा होनेके नाते ही हमारे अधिकारोंकी रक्षा की है और हमारे अधिकारोंकी जितनी भी रक्षा हो सकी है उतनी ब्रिटिश प्रजा होनेके कारण ही हो सकी है। हमें अंग्रेज दक्षिण आफ्रिकामें कष्ट देते हैं इस कारण उनके और अपने घरबार नष्ट हो सकनेकी घड़ीमें हम हाथपर-हाथ धरे किसी तमाशबीनकी तरह तमाशा खड़े देखते रहें, यह हमारी मनुष्यताको शोभा नहीं देता; इतना ही नहीं, बल्कि यह तो अपने कष्टोंको और भी बढ़ा लेने जैसा होगा। जिस आरोपको हमने झूठ माना है उसे झूठा सिद्ध करनेका यह अवसर हमें अनायास मिला है। इस अवसरको हाथसे निकल जाने देना आरोपको सच्चा सिद्ध करनेके समान होगा। तब यदि हमपर अधिक कष्ट आयें और अंग्रेज हमपर अधिक आरोप लगायें तो कोई आश्चर्य नहीं होगा। यह तो हमारा ही दोष माना जायेगा। तब यह कहना कि अंग्रेजोंके जितने भी आरोप हैं उनमें तनिक भी सचाई नहीं है, और न उनमें बहसमें पड़ने लायक ही कोई तथ्य है, अपने आपको धोखा देनेके समान होगा। हम ब्रिटिश साम्राज्यमें गुलाम-जैसे हैं यह बात सच है, लेकिन अभीतक हमारी नीति यही रही है कि हम ब्रिटिश साम्राज्यमें रहते हुए ही इस गुलामीसे छूटनेका प्रयत्न करते रहें। हिन्दुस्तानके समस्त नेता और हम स्वयं यही प्रयत्न कर रहे हैं। यदि हम ब्रिटिश साम्राज्यके अंगके रूपमें ही स्वतन्त्रता प्राप्त करना और उन्नति करना चाहते हों तो हमें इस समय युद्धमें तन, मन और धनसे सहायता देकर ऐसा करनेका उक्त स्वर्ण अवसर मिला है।[1] बोअरोंका पक्ष न्यायका पक्ष है यह तो काफी हदतक माना जा सकता है। किन्तु एक राज्यतन्त्रमें रहते हुए प्रत्येक प्रजाजन अपने स्वतन्त्र विचारोंपर अमल नहीं कर सकता। राज्याधिकारी जो-कुछ करते हैं वह सभी कार्रवाई प्रायः उचित नहीं होती। फिर भी जबतक प्रजाजन किसी शासनको स्वीकार करते हैं तबतक उनका स्पष्ट धर्म है कि वे सामान्यतः शासनके कार्योंके अनुकूल रहें और उन्हें पूरा करनेमें सहायता दें।"

१. अन्ततः भारतीय समाजने युद्धमें जो सहायता दी उसके विस्तृत विवरणके लिए देखिए खण्ड ३।

मैंने यह भी कहा कि, "यदि प्रजाका कोई वर्ग धार्मिक दृष्टिसे राज्यतन्त्रके किसी कार्यको अनीतिमय मानता हो तो उसे उस कार्यमें विघ्न डालने अथवा सहायता देनेसे पहले अपने जीवनको जोखिममें डालकर भी राज्यतन्त्रको उस अनीतिसे बचानेका पूरा प्रयत्न करना चाहिए। अभीतक तो हमने ऐसा कुछ किया नहीं है। ऐसा धर्म-संकट अभीतक हमारे सामने आया नहीं है। हममें से कोई ऐसा कहता या मानता भी नहीं है कि हम किसी ऐसे सार्वजनिक और सम्पूर्ण कारणको लेकर युद्धमें भाग लेना नहीं चाहते। इसलिए प्रजाके रूपमें हमारा सामान्य धर्म तो यही है कि जब यह युद्ध हो रहा है तब हम युद्धके गुण-दोषका विचार किये बिना उसमें यथाशक्ति सहायता दें। यदि अन्तमें, बोअर राज्योंकी जीत हुई — उनकी जीत नहीं होगी यह माननेका कोई भी कारण नहीं है — तो हम चूल्हेमें से निकल कर भाड़में गिरेंगे और बोअर हमसे मनमाना बैर निकालेंगे ऐसा कहना अथवा मानना वीर बोअरोंके प्रति और स्वयं अपने प्रति अन्याय करनेके समान है। यह तो केवल अपनी कायरताकी निशानी होगी। ऐसा खयाल भी करना वफादारीको बट्टा लगाना है। क्या कोई अंग्रेज एक क्षणके लिए भी यह सोच सकता है कि यदि अंग्रेज हार जायेंगे तो उनका अपना क्या होगा? युद्ध-क्षेत्रमें जानेवाला कोई भी मनुष्य, जबतक उसका मनुष्यत्व नष्ट न हो गया हो, ऐसा तर्क कर ही नहीं सकता।"

मैंने यह बात सन् १८९९ में कही थी और आज भी उसमें कोई फेरफार करना मुझे उचित नहीं लगता, क्योंकि मुझे उस समय ब्रिटिश साम्राज्यसे जो मोह था और मैंने ब्रिटिश साम्राज्यमें रहकर ही हिन्दुस्तानकी स्वतन्त्रता लेनेकी जो आशा बाँधी थी, मेरा वह मोह और वह आशा आज भी कायम होती तो मैं आज भी बिलकुल यही तर्क दक्षिण आफ्रिकामें और ऐसी स्थितियोंमें यहाँ भी प्रस्तुत करता। मैंने इस तर्कके विरुद्ध दक्षिण आफ्रिकामें बहुत-सी दलीलें सुनी हैं और उसके बाद इंग्लैंडमें भी सुनी हैं। फिर भी मुझे उसमें परिवर्तन करनेका कोई कारण दिखाई नहीं दिया है। मैं जानता हूँ कि मेरे आजकलके विचारोंका प्रस्तुत विषयसे कोई सम्बन्ध नहीं है। किन्तु मैंने ऊपर जो अन्तर बताया है उसके दो प्रबल कारण हैं। एक कारण तो यह है कि व्यस्त पाठकोंसे इस पुस्तकको हाथमें लेनेपर मुझे यह आशा रखनेका कोई अधिकार नहीं है कि वे इसे ध्यानपूर्वक धीरजके साथ पढ़ेंगे। उन पाठकोंको मेरी वर्तमान प्रवृत्तियोंसे उक्त विचारोंका मेल-बैठानेमें कठिनाई होगी। दूसरा कारण यह है कि इस विचार-श्रेणीमें भी सत्यका ही आग्रह है। जैसा हमारे हृदयमें हो वैसा ही व्यक्त करना और उसीके अनुसार व्यवहार करना यह धर्माचरणकी अन्तिम नहीं, बल्कि पहली शर्त है। इस नींवके बिना धर्मरूप भवनका निर्माण असम्भव है।

अब हम पिछले इतिहासपर आयें।

मेरी बात बहुत-से लोगोंको ठीक लगी। यह बात केवल मेरी ही थी, मैं पाठकोंको ऐसा आभास नहीं देना चाहता। बेशक मेरे यह सब कहनेके पहले भी बहुतसे हिन्दुस्तानी लड़ाईमें भाग लेनेके पक्षमें थे। किन्तु अब व्यावहारिक प्रश्न यह उठा कि युद्धके इस नक्कारखानेमें हिन्दुस्तानियोंकी यह तूती सुनेगा कौन? इसमें

हिन्दुस्तानियोंकी गिनती ही क्या है? हममें से किसीने भी कभी हथियारोंको तो हाथ लगाया नहीं था। युद्धमें बिना हथियारोंका काम करनेके लिए भी शिक्षण तो आवश्यक है ही। हममें से तो किसीको कदमसे-कदम मिलाकर चलना भी नहीं आता था। फिर सेनाके साथ लम्बी-लम्बी मंजिलें तय करना और अपना-अपना सामान उठाकर यात्रा करना यह सब हम कैसे कर सकेंगे? इसके अतिरिक्त गोरे हम सबको कुली मानेंगे, हमारा अपमान करेंगे और हमें तिरस्कारकी दृष्टिसे देखेंगे। यह हमसे कैसे सहन हो सकेगा? यदि हम लड़ाईमें भाग लेनेकी माँग करें तो उस माँगको मनवायेंगे कैसे? अन्तमें हम सब इस निश्चयपर पहुँचे कि हमें अपनी माँगके सुने जानेका प्रबल प्रयत्न करना चाहिए, काम स्वयं काम करना सिखा देगा और इच्छा होगी तो ईश्वर शक्ति देगा ही; मिला हुआ काम कैसे होगा इसकी चिन्ता हमें छोड़ देनी चाहिए; जो शिक्षण मिल सके वह लेना चाहिए और एक बार सेवाधर्म स्वीकार करनेका निश्चय कर लेनेपर मान-अपमानकी चिन्ता छोड़कर, यदि अपमान हो तो उसको सहन करके भी, सेवा करनी चाहिए।

हमें अपनी माँग स्वीकार करानेमें बेहद मुश्किलोंका सामना करना पड़ा। इसका इतिहास मनोरंजक है; किन्तु उसको यहाँ देनेकी गुंजाइश नहीं; इसलिए इतना ही कहे देता हूँ कि हममें से मुख्य-मुख्य लोगोंने घायलों और रोगियोंकी सेवा-शुश्रूषा करनेका शिक्षण लिया। हमने अपनी शारीरिक स्थितिके सम्बन्धमें डाक्टरी प्रमाणपत्र प्राप्त किये और युद्धमें भाग लेनेकी माँग सरकारको भेज दी।[1] हमारे इस पत्रका और अपनी माँगको स्वीकार करानेके हमारे आग्रहका प्रभाव बहुत अच्छा हुआ। सरकारने इस पत्रके उत्तरमें कृतज्ञता प्रकट की; किन्तु उस समय उसने हमारी वह माँग स्वीकार करनेमें अपनी असमर्थता प्रकट की।[2] इस बीच बोअरोंका पलड़ा भारी होता चला गया। वे एक तेज बाढ़की तरह आगे बढ़े और ऐसा भय लगा कि वे नेटालकी राजधानी तक पहुँच जायेंगे। लोग बड़ी संख्यामें घायल हुए। हमारा प्रयत्न तो जारी था ही। अन्तमें घायलोंको उठानेवाली और उनकी सेवा-शुश्रूषा करनेवाली टुकड़ीके रूपमें हमारी सेवाएँ स्वीकार हुईं। हमने तो यह भी लिख दिया था कि हमें अस्पतालोंमें पाखाने साफ करनेका या झाड़ू देनेका काम करना भी स्वीकार है। इसलिए हमने सरकारके सेवादलके रूपमें हमारी टुकड़ी बनानेके विचारको स्वागत-योग्य समझा, इसमें क्या आश्चर्य है? हमने जो प्रस्ताव रखा था, वह स्वतन्त्र और गिरमिट-मुक्त हिन्दुस्तानियोंके सम्बन्धमें था। किन्तु हमने यह सलाह भी दी कि इस दलमें गिरमिटियोंको लेना भी वांछनीय है। उस समय तो सरकारको जितने लोग मिलें उतनोंकी जरूरत थी; इसीलिए कोठियोंमें भी निमन्त्रण भेजे गये। परिणामस्वरूप लगभग ग्यारह सौ हिन्दुस्तानियोंकी खासी बड़ी टुकड़ी डर्बन से चली। उसकी विदाईके समय श्री एस्कम्बने, जिनके नामसे पाठक परिचित हैं और जो नेटालके गोरे स्वयंसेवकोंके मुख्य नायक थे, हमें धन्यवाद और आशीर्वाद दिया।

१. देखिए खण्ड ३, पृष्ठ १२२-३।
२. देखिए खण्ड ३, पृष्ठ १३८-३९।

अंग्रेजी अखबारोंको यह सब चमत्कार-जैसा ही लगा। हिन्दुस्तानी कौम लड़ाईमें कुछ भी भाग लेगी ऐसी कोई आशा नहीं की गई थी। इस बातको लेकर एक प्रमुख स्थानीय अखबारमें एक अंग्रेजी कविता भी छपी जिसकी टेकका आशय था "आखिरकार हम सब एक ही राज्यकी प्रजा हैं।"

इस टुकड़ीमें लगभग तीन-चार सौके बीच गिरमिट-मुक्त हिन्दुस्तानी रहे होंगे। ये लोग स्वतन्त्र हिन्दुस्तानियोंके प्रयत्नसे इकट्ठे हुए थे। इनमें से सैंतीस आदमी मुखिया माने जाते थे, क्योंकि सरकारको उन लोगोंके हस्ताक्षरोंसे ही प्रस्तावपत्र भेजा गया था और इन्हींने लोगोंको इकट्ठा किया था। इन मुखियोंमें बैरिस्टर, मुंशी और मुनीम आदि थे। बाकीके लोग कारीगर — राज, मजूर, बढ़ई आदि थे। उनमें हिन्दू-मुसलमान, मद्रासी और उत्तर-भारतीय सभी वर्गोंके लोग शामिल थे। कहा जा सकता है कि व्यापारी वर्गका कोई भी आदमी उनमें न था। किन्तु व्यापारियोंने चन्देके रूपमें बहुत धन दिया था।

टुकड़ीको जो फौजी-भत्ता दिया जाता था उसकी जरूरतें उससे ज्यादा होती थीं। इन जरूरतोंके पूरे किये जा सकनेपर टुकड़ीके लोगोंकी दिक्कतें कुछ कम हो जायेंगी, इस विचारसे ऐसी राहत देनेवाली चीजें जुटानेका जिम्मा व्यापारी वर्गने अपने ऊपर लिया और उसके साथ ही हमें जिन घायलोंकी सार-संभाल करनी पड़ती थी उनको भी मिठाइयाँ और बीड़ी-सिगरेट आदि जुटानेके रूपमें खासी सहायता दी। इसके अतिरिक्त हमारा पड़ाव जिन-जिन शहरोंके पास होता था उनके व्यापारी भी ऐसी सहायता देनेमें पूरा भाग लेते थे।

इस टुकड़ीमें जो गिरमिटिया आये थे, कोठियोंकी ओरसे उनके अंग्रेज मुखिया भेजे गये थे, किन्तु काम तो सबका एक ही था और सभी रहते भी एक ही जगह थे। गिरमिटिये हम लोगोंको टुकड़ीमें देखकर बहुत प्रसन्न हुए और पूरी टुकड़ीकी व्यवस्था भी सहज ही हमारे हाथमें आ गई। इस कारण यह समूची टुकड़ी हिन्दुस्तानी जातिकी टुकड़ी ही मानी गई और उसके कार्यका श्रेय हिन्दुस्तानी जातिको ही मिला। यों, गिरमिटियोंकी भरतीका श्रेय हिन्दुस्तानी कौम नहीं ले सकती थी, उसका श्रेय तो कोठीदारोंको ही जाता है। किन्तु यह बात ठीक है कि इस टुकड़ीके बन जानेपर उसकी सुव्यवस्थाका श्रेय तो स्वतन्त्र हिन्दुस्तानी वर्ग अर्थात् हिन्दुस्तानी समाजको ही था और इस बातको जनरल बुलरने अपने खरीतोंमें स्वीकार किया है।

रोगियोंकी परिचर्याकी शिक्षा देनेवाले डा० बूथ भी चिकित्सा-व्यवस्थापकके रूपमें हमारी टुकड़ीके साथ थे। ये एक बड़े सज्जन पादरी थे और हिन्दुस्तानी ईसाइयोंमें काम करते हुए भी सबसे मिलते-जुलते थे। मैंने ऊपर सैंतीस मुखियोंका जो उल्लेख किया उसमें से ज्यादातर इन्हीं सज्जन पादरीके शिष्य थे। शुश्रूषाके लिए जैसी टुकड़ी हिन्दुस्तानियोंकी बनाई गई थी वैसी ही टुकड़ी यूरोपीयोंकी भी बनाई गई थी और दोनोंको काम भी एक ही जगह करना होता था।

हमारे सहयोगके प्रस्तावमें कोई शर्त नहीं रखी गई थी। किन्तु उसकी स्वीकृति-का जो पत्र आया उसमें बताया गया था कि हमें तोप या बन्दूककी मारके भीतर

काम नहीं करना है। इसका अर्थ यह था कि युद्धक्षेत्रमें जो सिपाही घायल हों उनको सेनाकी स्थायी सार-सँभाल करनेवाली टुकड़ी उठाकर लायेगी और सेनाके पिछले भागमें पहुँचा देगी। गोरोंकी और हमारी तात्कालिक टुकड़ियाँ तैयार करनेका कारण यह था कि जनरल बुलर लेडीस्मिथमें घिरे हुए जनरल व्हाइटको निकालनेका एक जबरदस्त प्रयत्न करनेवाले थे और उसमें स्थायी टुकड़ीकी शक्तिसे ज्यादा सैनिकोंके जख्मी होनेका डर था। यह युद्ध ऐसे अंचलमें चल रहा था जहाँ युद्धक्षेत्र और मुख्य चिकित्सा केन्द्रके बीच पक्की सड़कें नहीं थीं। इसलिए घोड़ा-गाड़ी आदि सवारियोंसे घायल सैनिकोंको वहाँ पहुँचाना अशक्य था। मुख्य चिकित्सा केन्द्र प्रायः किसी रेलवे स्टेशनके पास और युद्धक्षेत्रसे ७, ८ मीलसे लेकर २५ मीलतक दूर होता था।

हमको तुरन्त ही काम दे दिया गया। काम जितना हमने सोचा उससे ज्यादा सख्त निकला। घायलोंको ७–८ मीलतक उठाकर ले जाना आसान था, किन्तु हमें तो २५ मीलतक भयंकर रूपसे घायल सिपाहियों और अफसरोंको उठाकर भी ले जाना पड़ता था। मार्गमें उनको दवा भी देनी होती थी। कूच सुबह ८ बजे शुरू होती और शामको ५ बजेतक लौटकर चिकित्सा केन्द्रमें पहुँचना होता था। यह काम बहुत कठिन था। घायलोंको उठाकर २५ मील ले जानेका अवसर तो एक ही बार आया, किन्तु आरम्भमें अंग्रेजोंकी हारपर-हार हुई और घायलोंकी संख्या इतनी बढ़ गई कि अधिकारियोंने मजबूर होकर हमें गोलाबारीकी मारकी हदमें न भेजनेका विचार त्याग दिया। मुझे यह बता देना चाहिए कि जब ऐसा प्रसंग आया तब उन्होंने यह कहा, "आपके साथ जो शर्त हुई है उसके अनुसार हम आपको गोलोंकी मारके भीतर नहीं भेज सकते, इसलिए यदि आप जोखिममें न पड़ना चाहें तो जनरल बुलरका इरादा आपको उसके लिए बाध्य करनेका तनिक भी नहीं है। किन्तु यदि आप यह जोखिम अपने ऊपर लें तो सरकार आपकी कृतज्ञ होगी।" हम तो इस जोखिममें पड़ना ही चाहते थे। जोखिमसे बाहर रहना हमको पसन्द नहीं था। इस कारण सभीने इस अवसरका स्वागत किया; किन्तु इसमें न तो कोई हिन्दुस्तानी गोला लगनेसे घायल हुआ और न अन्य प्रकारसे क्षतिग्रस्त।

इस टुकड़ीके बहुतसे दिलचस्प अनुभव हैं; किन्तु वे सब यहाँ नहीं दिये जा सकते। फिर भी इतना तो कहना ही चाहिए कि हमारी टुकड़ीको, जिसमें अशिक्षित माने जानेवाले गिरमिटिये भी थे, यूरोपीयोंकी तात्कालिक टुकड़ीसे और काली सेनाके गोरे अफसरोंसे अनेक बार सम्पर्कमें आना पड़ा, फिर भी हममें से किसीको यह अनुभव नहीं हुआ कि गोरे हमसे अशिष्टताका बर्ताव करते हैं अथवा हमारा तिरस्कार करते हैं। गोरोंकी तात्कालिक टुकड़ीमें तो दक्षिण आफ्रिकावासी गोरे ही थे। उनमें वे लोग भी थे जिन्होंने युद्धसे पहले हिन्दुस्तानियोंके विरुद्ध आन्दोलनोंमें भाग लिया था। किन्तु इस संकटके समय हिन्दुस्तानी अपने निजी कष्टोंको भूलकर हमारी सहायता करनेके लिए आये हैं, यह जानकर और देखकर उस समय उन लोगोंके हृदय कोमल हो गये थे। जनरल बुलरके खरीतोंमें हमारी सेवाकी सराहना की गई थी, यह बात पहले कही जा चुकी है। इसके अलावा उक्त सैंतीसों मुखियोंको लड़ाईके तमगे भी दिये गये थे।

लेडीस्मिथको स्वतन्त्र करनेके लिए किये गये जनरल बुलरके आक्रमणके पूरा होनेपर दो महीनेके भीतर-भीतर हमारी और गोरोंकी टुकड़ीको छुट्टी दे दी गई। लड़ाई उसके बाद भी बहुत दिनतक चलती रही। हम तो लड़ाईमें आनेके लिए सदा ही तैयार थे और जब हमको घर जानेका हुक्म दिया गया था तब यह कह दिया गया था कि यदि कोई बड़ी जंगी कार्रवाई की जायेगी तो सरकार अवश्य ही हमारा उपयोग फिर करेगी।

दक्षिण आफ्रिकाके हिन्दुस्तानियोंने इस युद्धमें जो भाग लिया वह छोटा ही कहा जा सकता है। कह सकते हैं कि इसमें जानकी जोखिम भी कुछ नहीं थी। किन्तु फिर भी शुद्ध इच्छाका प्रभाव तो हुए बिना नहीं रहता। फिर यदि यह इच्छा अप्रत्याशित हो तो उसका मूल्य दूना आँका जाता है। और युद्धकालमें इसीलिए हिन्दुस्तानियोंके सम्बन्धमें गोरोंका खयाल बहुत अच्छा रहा।

इस प्रकरणको समाप्त करनेसे पहले मुझे एक जानने योग्य घटनाका उल्लेख करना ही चाहिए। लेडीस्मिथमें घिरे हुए लोगोंमें अंग्रेज और वहाँ रहनेवाले इक्के-दुक्के हिन्दुस्तानी भी थे। हिन्दुस्तानियोंमें व्यापारी और गिरमिटिये दोनों ही थे। गिरमिटिये या तो रेल विभागमें काम करते थे या सम्भ्रान्त गोरोंके यहाँ नौकर थे। इन गिरमिटियों में एक का नाम प्रभुसिंह था। प्रमुख अधिकारी घिरे हुए लोगोंको कोई-न-कोई काम तो सौंपता ही। उसने एक बहुत ही जोखिम-भरा और उतना ही महत्त्वपूर्ण काम कुली माने जानेवाले प्रभुसिंहको दिया। लेडीस्मिथके पासकी एक पहाड़ीपर बोअर लोगोंकी पोम-पोम नामकी तोप लगी थी। इस तोपके गोलोंसे बहुत-से मकान नष्ट हो गये थे और कुछ लोग भी मारे गये थे। तोपसे गोला छूटने और निशानेतक पहुँचने में एक-दो मिनट तो लगते ही हैं। यदि घिरे हुए लोगोंको जरा पहले सावधान कर दिया जाये तो वे गोला गिरनेसे पहले किसी-न-किसी आश्रय स्थानमें छुप जायें और अपनी जान बचा सकेंगे। इस विचारसे प्रभुसिंहको एक पेड़पर बैठनेका आदेश दिया गया। जबसे तोप चलनी शुरू होती और जबतक चलती रहती वह तबतक वहीं बैठा रहता। उसका काम यह था कि वह तोपवाली पहाड़ीकी ओर देखता रहे और जब वहाँ गोलेकी चमक देखे तब तुरन्त घंटा बजा दे। जैसे बिल्लीको देखकर चूहे बिलमें घुस जाते हैं वैसे ही शहरके लोग प्राणघाती गोलेके छूटनेपर घंटेकी आवाज सुनकर किसी आश्रय-स्थानमें छुप जाते थे और अपनी जान बचा लेते थे।

प्रभुसिंहकी इस अमूल्य सेवाकी प्रशंसा करते हुए लेडीस्मिथके अधिकारीने कहा था कि प्रभुसिंहने अपना काम अत्यन्त निष्ठासे किया और वह एक बार भी घंटा बजाने-से नहीं चूका। शायद यह बताना जरूरी नहीं है कि प्रभुसिंहको तो स्वयं सदा जोखिममें ही रहना पड़ता था। इस बातकी चर्चा नेटालमें ही नहीं हुई, लॉर्ड कर्जनके सामने भी यह बात आई और उन्होंने प्रभुसिंहको भेंट करनेके लिए एक कश्मीरी चोगा भेजा और नेटाल सरकारको लिखा कि वह इस चोगेको सार्वजनिक समारोह करके यथा-सम्भव धूमधामसे प्रभुसिंहको भेंट करे। चोगेको भेंट करनेका काम डर्बनके मेयरको सौंपा गया और उन्होंने डर्बनके नगरपालिका भवनके कौंसिल चेम्बरमें सार्वजनिक सभा

बुलाकर प्रभुसिंहको वह भेंट दी। इस दृष्टान्तसे हम दो निष्कर्ष निकाल सकते हैं: एक तो हम किसी भी आदमीको छोटा या तुच्छ न मानें और दूसरे भीरुसे-भीरु आदमी भी अवसर आनेपर वीर बन सकता है।

अध्याय १०

युद्धके बाद

लड़ाई मुख्य रूपसे सन् १९०० तक लड़ी जा चुकी थी। लेडीस्मिथ, किम्बर्ले और मेफिकिंग तबतक वापस छीने जा चुके थे और जनरल क्रोंजेने हार मान ली थी। ब्रिटिश उपनिवेशोंका जो भाग बोअरोंके कब्जेमें चला गया था ब्रिटिश साम्राज्यके अन्तर्गत आ गया। लॉर्ड किचनरका ट्रान्सवाल और ऑरेंज फ्री स्टेटपर भी अधिकार हो गया था तथा अब केवल छापामार लड़ाई चल रही थी।

मैंने सोचा कि अब दक्षिण आफ्रिकामें मेरा काम समाप्त हो गया। मुझे एक महीनेकी जगह वहाँ छः साल हो गये। फिर हमारे कार्यकी रूपरेखा भी बन ही चुकी थी। किन्तु समाजकी सहर्ष स्वीकृतिके बिना मैं वहाँसे नहीं आ सकता था। मैंने अपने साथियोंको बताया, "मैं अब हिन्दुस्तान जाकर सेवा करना चाहता हूँ। स्वार्थकी जगह सेवा-धर्मका पाठ मैं दक्षिण आफ्रिकामें पढ़ चुका हूँ और मुझे उसकी लगन लगी हुई थी। मनसुखलाल नाजर दक्षिण आफ्रिकामें हैं ही और खान[1] भी हैं। दक्षिण आफ्रिकासे गये हुए कई हिन्दुस्तानी युवक बैरिस्टर बनकर वापस आ चुके हैं इसलिए मेरा स्वदेश लौटना किसी भी प्रकार अनुचित नहीं माना जा सकता।" इन सब दलीलोंको ठीक माननेपर भी मुझे इस एक तर्कपर ही छुट्टी दी गई कि यदि दक्षिण आफ्रिकामें कोई आकस्मिक बाधा उत्पन्न हुई और मेरी जरूरत जान पड़ी तो समाज मुझे जब चाहे तब वापस आनेको लिखेगा और तब मुझे तत्काल वापस आना होगा। उस हालतमें मेरे आने-जाने और यहाँ रहनेका खर्च समाज उठायेगा। मैंने यह शर्त स्वीकार की और हिन्दुस्तान लौट आया।

मैंने स्वर्गीय गोखलेकी सलाहसे और मार्गदर्शन में मुख्यतः सार्वजनिक कार्य करने और सामान्यतः आजीविका कमानेके हेतुसे बम्बईमें बैरिस्टरी करनेका निश्चय किया और उसके लिए जगहका प्रबन्ध किया। मेरी वकालत भी कुछ-कुछ चलने लगी। दक्षिण आफ्रिकासे मेरा बहुत सम्बन्ध होनेसे मेरा खर्च दक्षिण आफ्रिकाके मुवक्किलोंसे ही आसानीके साथ निकल आता था। किन्तु स्थिर होकर बैठना मेरे भाग्यमें बदा नहीं था। मुझे बम्बईमें शायद तीन या चार महीने ही हुए होंगे कि दक्षिण आफ्रिकासे तार मिला, "स्थिति गम्भीर, श्री चेम्बरलेन कुछ दिनोंमें ही आ रहे हैं; आपका आना आवश्यक[2]।"

१. एक भारतीय बैरिस्टर; देखिए खण्ड ३।

२. देखिए खण्ड ३, पृष्ठ २८३-५।

मैंने अपना बम्बईका दफ्तर और घरद्वार समेटा और पहले ही जहाजसे रवाना हो गया। यह १९०२के आखिरी दिनोंकी बात है। सन् १९०१ के अन्तमें हिन्दुस्तान लौटकर सन् १९०२ के मार्च-अप्रैलमें बम्बईमें मैंने अपना दफ्तर खोला था। तारसे ज्यादा तो कुछ समझ नहीं सका, इतना ही अनुमान लगाया कि ट्रान्सवालमें ही कोई संकट आया होगा। मैं चार या छः महीनोंमें वापस लौट सकूँगा, यह समझकर बिना परिवारको साथ लिये ही रवाना हो गया। डर्बन पहुँचकर सारी स्थिति सुनकर मैं स्तब्ध हो गया। हममें-से बहुतोंका खयाल था कि युद्धके बाद हिन्दुस्तानियोंकी स्थिति दक्षिण आफ्रिका-भरमें अवश्य ही सुधरेगी और ट्रान्सवाल तथा ऑरेंज फ्री स्टेटमें तो कोई कठिनाई आ ही नहीं सकती। क्योंकि लॉर्ड लैंसडाउन, लॉर्ड सेलबोर्न और अन्य बड़े अधिकारियों-ने हिन्दुस्तानियोंकी विषम स्थितिको भी युद्धका एक कारण बताया था। प्रिटोरिया-का ब्रिटिश एजेंट भी मेरे सामने कई बार कह चुका था कि यदि ट्रान्सवाल ब्रिटिश उपनिवेश बन जायेगा तो हिन्दुस्तानियोंके सारे कष्ट मिट जायेंगे। गोरोंने भी ऐसा ही माना था कि राज्य-सत्ता बदलनेपर ट्रान्सवालका पुराना कानून हिन्दुस्तानियों पर लागू नहीं किया जा सकेगा। यह बात यहाँतक सर्वमान्य हो गई थी कि जो नीलाम-अधिकारी जमीन नीलाम करते वक्त लड़ाईसे पहले हिन्दुस्तानियोंकी बोली मंजूर नहीं करते थे, वे अब उनकी बोली खुल्लम-खुल्ला मंजूर करने लगे थे। बहुतसे हिन्दुस्तानियोंने इस तरह नीलाममें जमीनें खरीदीं भी। किन्तु जब वे तहसीलमें इन जमीनोंके दस्तावेजोंका पंजीयन कराने गये तब माल-अधिकारीने १८८५ के कानूनके अनुसार आपत्ति उठाई और पंजीयन करनेसे इनकार कर दिया। डर्बनमें जहाजसे उतरते ही मैंने इतनी बात तो सुन ली थी। नेताओंने बताया, "आपको ट्रान्सवाल जाना है। पहले तो श्री चेम्बरलेन यहीं आयेंगे। उनको यहाँकी स्थिति भी बतानी जरूरी है। यहाँका काम निबटाकर जैसे ही श्री चेम्बरलेन ट्रान्सवाल जायें, आप भी ट्रान्सवाल रवाना हो जायें।"

नेटालमें भी श्री चेम्बरलेनसे एक शिष्ट मण्डल मिला।[1] उन्होंने सब बातें सौजन्य-पूर्वक सुनीं और उनके सम्बन्धमें नेटाल मन्त्रिमण्डलसे बातचीत करनेका वचन दिया। मुझे स्वयं ऐसी आशा नहीं थी कि नेटालमें लड़ाईसे पहले बनाये गये कानूनोंमें कोई फेरफार किया जायेगा। इन कानूनोंकी चर्चा पिछले प्रकरणोंमें की जा चुकी है।

पाठक यह बात जानते ही हैं कि लड़ाईसे पहले ट्रान्सवालमें कोई भी हिन्दुस्तानी चाहे जब जा सकता था। किन्तु मैंने देखा कि अब बात ऐसी नहीं रही है। फिर उस समय जो भी प्रतिबन्ध था वह गोरों और हिन्दुस्तानियों, दोनोंपर लागू होता था। इस समयतक स्थिति यह थी कि यदि ट्रान्सवालमें बहुतसे लोग आ जायें तो उनके लिए अन्न और वस्त्र पूरा नहीं पड़ सकता था, क्योंकि लड़ाईके कारण दूकानें अभीतक बन्द थीं और उनका प्रायः सबका-सब माल बोअर सरकारने जब्त कर लिया था; इस-लिए मेरा खयाल यह था कि यदि यह प्रतिबन्ध कुछ समयके लिए ही हो तो उसमें भयका कोई कारण नहीं है। किन्तु गोरों और हिन्दुस्तानियोंके लिए ट्रान्सवाल जानेके परवाने

१. २७ दिसम्बर १९०२ को; देखिए खण्ड ३, पृष्ठ २८६-२९०।

लेनेकी रीतिमें भी भेद था और यह भेद मेरे लिए शंका और भयका कारण बन गया। परवाने लेनेके लिए दक्षिण आफ्रिकाके विभिन्न बंदरगाहोंमें दफ्तर खोले गये थे। परवाने गोरोंको तो लगभग माँगते ही मिल जाते थे। किन्तु हिन्दुस्तानियोंके लिए ट्रान्सवालमें एक एशियाई विभाग खोल दिया गया था; यह विभाग एक नई ही चीज थी। हिन्दुस्तानियोंको इस विभागके बड़े अधिकारीके सामने अर्जी देनी पड़ती थी और सामान्यतः इस अर्जीके मंजूर हो जानेपर ही डर्बनसे या किसी अन्य बन्दरगाहसे उन्हें परवाना मिल सकता था।

यदि मुझे भी यह अर्जी देनी पड़ती तो परवाना श्री चेम्बरलेनके ट्रान्सवालसे जानेसे पहले मिलनेकी आशा नहीं थी। ट्रान्सवालके हिन्दुस्तानी मेरे लिए यह परवाना नहीं ले सके थे। यह बात उनकी शक्तिके बाहर थी। किन्तु उन्होंने सोच लिया था कि डर्बनमें अपने पुराने परिचयके बलपर परवाना मिल जायेगा। मैं परवाना अधिकारीको तो नहीं जानता था, किन्तु डर्बनके पुलिस सुपरिंटेंडेंट मुझे जानते थे इसलिए मैंने उनको साथ ले जाकर उनसे अपना परिचय दिलाया और मैं ट्रान्सवालमें १८९३ में एक साल रह चुका हूँ, यह जानकर उसने मुझे परवाना दिया तथा मैं प्रिटोरिया पहुँच गया।

मैंने वहाँ जो वातावरण देखा वह एकदम अजीब था। मुझको स्पष्ट आभास हो गया कि एशियाई विभाग एक भयानक विभाग है और वह केवल हिन्दुस्तानियोंपर अत्याचार करनेके लिए ही बनाया गया है। उसके अधिकारी लड़ाईके दिनोंमें हिन्दुस्तानसे सेनाके साथ आये हुए वर्गमें से थे और दक्षिण आफ्रिकामें अपना भाग्य आजमानेके लिए रह गये थे। उनमें से कुछ अधिकारी घूसखोर थे और दोपर घूस लेनेके आरोपमें मुकदमे भी चलाये जा चुके थे। पंचोंने तो उनको छोड़ दिया; किन्तु घूस लेनेका सन्देह रहनेके कारण वे नौकरीसे हटा दिये गये। पक्षपातका तो कोई पार ही न था। जिस पृथक् विभागके खोले जानेका उद्देश्य हिन्दुस्तानियोंके अधिकारोंपर अंकुश रखना ही था, अपना अस्तित्व कायम रखने और यह बतानेके लिए कि वे अपने उक्त कर्त्तव्य-का समुचित पालन करते हैं उस विभागके अधिकारियोंकी प्रवृत्ति सदा नये-नये अंकुश खोजनेकी ही हो सकती थी; उन्होंने ऐसा ही किया भी।

मैंने देखा कि मुझे तो नये सिरेसे ही कार्य आरम्भ करना पड़ेगा। एशियाई विभागको तत्काल यह पता नहीं चला कि मैं ट्रान्सवालमें किस तरह आ गया। मुझसे पूछनेकी तो यकायक हिम्मत ही नहीं हुई। मैं मानता हूँ कि उसके अधिकारियोंको यह विश्वास तो था कि मैं यहाँ चोरी-छिपे तो नहीं आया हूँगा। उन्होंने इधर-उधरसे पूछकर यह पता लगा लिया कि मुझे परवाना किस तरह मिला। प्रिटोरियाका शिष्टमण्डल भी श्री चेम्बरलेनसे मिलनेके लिए तैयार हो गया। उसको जो अर्जी देनी थी वह मैंने तैयार कर दी; किन्तु एशियाई विभागने मुझे श्री चेम्बरलेनके सम्मुख जानेसे रोक दिया। हिन्दुस्तानी नेताओंकी राय थी कि ऐसी स्थितिमें किसीको भी श्री चेम्बरलेनके सम्मुख नहीं जाना चाहिए। किन्तु मुझे उनकी यह राय ठीक नहीं लगी। मैंने तय किया कि मुझे अपने अपमानके इस घूँटको पी जाना चाहिए। मैंने हिन्दुस्तानी समाजको सलाह दी कि उसे इसकी परवाह नहीं करनी चाहिए। अर्जी तो तैयार है

ही, इसे श्री चेम्बरलेनके सामने पेश करना बहुत जरूरी है।[1] वहाँ हिन्दुस्तानी बैरिस्टर जॉर्ज गॉडफ्रे मौजूद थे। मैंने उनको अर्जी पढ़कर सुनानेके लिए तैयार किया। शिष्टमण्डल श्री चेम्बरलेनसे मिलने गया। मेरे सम्बन्धमें भी बात उठी। श्री चेम्बरलेनने कहा, "मैं श्री गांधीसे डर्बनमें मिल चुका हूँ। इसलिए मैंने यह सोचकर उनसे मिलनेसे इनकार किया कि मैं यहाँका हाल यहींके लोगोंके मुँहसे सुनूँ तो ज्यादा अच्छा होगा।" मेरी दृष्टिसे यह उत्तर जलती आगमें आहुति जैसा था। श्री चेम्बरलेनने वही बात कही जो उसे एशियाई विभागने पढ़ाई थी। एशियाई विभागने, जैसा वातावरण हिन्दुस्तानमें है वैसा ही वातावरण ट्रान्सवालमें पैदा कर दिया। हम सभी जानते हैं कि चम्पारनके अंग्रेज अधिकारी बम्बईवासियोंको विदेशी मानते हैं। इस नियमके अनुसार एशियाई विभागने श्री चेम्बरलेनको यह समझाया कि मैं डर्बनमें रहनेवाला ट्रान्सवालकी बात क्या जान सकता हूँ। श्री चेम्बरलेन क्या जानते थे कि मैं ट्रान्सवालमें रह चुका हूँ और मैं ट्रान्सवालमें न रहा होऊँ तो भी ट्रान्सवालकी स्थितिसे भलीभाँति परिचित हूँ। प्रश्न एक ही था — ट्रान्सवालकी स्थितिको सबसे अधिक कौन जानता है? हिन्दुस्तानी समाजने मुझे खासतौरसे हिन्दुस्तानसे बुलाकर इस प्रश्नका उत्तर दे दिया था; किन्तु शासकोंके सम्मुख न्यायकी बात नहीं चलती, यह कोई नया अनुभव नहीं है। उस समय श्री चेम्बरलेनपर स्थानीय अंग्रेज अधिकारियोंका प्रभाव इतना अधिक था कि वे न्याय करेंगे ऐसी आशा बिलकुल नहीं थी अथवा थी भी तो बहुत कम। किन्तु न्याय प्राप्त करनेका कोई भी उचित कदम भूलसे अथवा आत्मसम्मानवश उठाये बिना न रह जाये, इसी कारण शिष्टमण्डल उनसे मिला था।

किन्तु मेरे सम्मुख १८९४ में जैसी विषम स्थिति थी उससे भी अधिक विषम स्थिति आ गई। एक दृष्टिसे विचार करनेपर मुझे ऐसा लगा कि मैं श्री चेम्बरलेनकी पीठ फिरते ही हिन्दुस्तान लौट सकता हूँ। दूसरी दृष्टिसे मुझे यह स्पष्ट दिखाई दिया कि यदि मैं कौमको भयंकर स्थितिमें देखते हुए भी हिन्दुस्तानमें सेवा करनेके खयालसे लौट जाऊँ तो मुझे सेवा-धर्मका जो रूप दिखाई दिया है वह कलंकित हो जायेगा। मैंने सोचा कि मेरा पूरा जीवन भी दक्षिण आफ्रिकामें क्यों न निकल जाये फिर भी जबतक दक्षिण आफ्रिकी हिन्दुस्तानी समाजपर घिरी हुई घनी घटाएँ छिन्न-भिन्न न हो जायें अथवा रोकनेका पूरा प्रयत्न करनेपर भी समाजपर बरस न पड़ें और सबको नष्ट-भ्रष्ट न कर दें तबतक मुझे ट्रान्सवालमें ही रहना चाहिए। मैंने नेताओंके सम्मुख अपने ये विचार व्यक्त किये और १८९४ की तरह इस समय भी वकालत करके अपना निर्वाह करते हुए वहाँ रहनेका निश्चय बताया। समाज तो चाहता ही यह था।

मैंने तुरन्त ट्रान्सवालमें वकालतकी दरख्वास्त दी। मुझे थोड़ा भय था कि वहाँका वकील-मण्डल भी मेरी दरख्वास्तका विरोध करेगा, किन्तु मेरा यह भय निराधार निकला। मुझे सर्वोच्च न्यायालयकी वकालतकी सनद मिल गई और मैंने जोहानिसबर्गमें दफ्तर खोला। ट्रान्सवालमें हिन्दुस्तानियोंकी सबसे बड़ी आबादी जोहानिसबर्गमें ही थी। इसलिए आजीविका और सार्वजनिक कार्य दोनों दृष्टियोंसे मेरे लिए जोहानिसबर्ग ही

१. देखिए खण्ड ३, पृष्ठ २९२-२९६।

अनुकूल केन्द्र था। मुझे रोज-रोज एशियाई कार्यालयकी गन्दगीका कड़वा अनुभव हो रहा था और वहाँके हिन्दुस्तानी संघकी पूरी शक्ति इसी गन्दगीको दूर करनेमें लग रही थी। १८८५ के कानूनको रद करानेकी बात तो एक दूरका लक्ष्य हो गई थी। हमारे सम्मुख तात्कालिक कार्य तो एशियाई कार्यालय रूपी भयंकर बाढ़से अपना बचाव करना ही था। हमारे शिष्टमण्डल लॉर्ड मिलनरसे,[1] लॉर्ड सेल्बोर्नसे, जो उस समय वहाँ आये थे, सर आर्थर लालीसे, जो ट्रान्सवालके लेफ्टिनेन्ट गवर्नर थे और बादमें मद्रासके गवर्नर बनाये गये थे और इनसे नीचेके अधिकारियोंसे मिले। मैं उनसे बहुत बार अकेला भी मिलता। इससे थोड़ी बहुत राहत मिल जाती; किन्तु यह तो चीथड़ोंपर पैबन्द लगाने-जैसा था। लुटेरे हमारा सब धन लूट लें और हमारे गिड़गिड़ानेसे उसमें कुछ हमें वापस दे दें और हम उससे सन्तोष मानें, इस राहतसे भी हमें ऐसा ही कुछ सन्तोष मिलता था। मैंने ऊपर जिन अधिकारियोंके हटाये जानेकी चर्चा की है उनपर इस आन्दोलनके कारण ही मुकदमे चलाये गये थे। मैं हिन्दुस्तानियोंके प्रवेशपर प्रतिबन्ध लगाये जानेके जिस भयका उल्लेख कर चुका हूँ वह सच्चा निकला। गोरोंके लिए परवाना लेनेका नियम हटा दिया गया, किन्तु हिन्दुस्तानियोंके लिए वह अनिवार्य ही बना रहा। ट्रान्सवालकी पिछली सरकारने जितने कड़े कानून बनाये थे उनपर इतनी सख्तीसे अमल नहीं किया जाता था। इसका कारण उदारता या भलमनसाहत नहीं, बल्कि शासन-विभागकी उदासीनता थी। यदि इस विभागके अधिकारी अच्छे हों तो उनको भलमनसी दिखानेका जितना अवसर पिछली सरकारकी अधीनतामें मिलता था उतना अब अंग्रेज सरकारकी अधीनतामें नहीं था। ब्रिटिश तन्त्र पुराना होनेके कारण दृढ़ और सुगठित बन गया है और उसमें अधिकारियोंको यन्त्रकी तरह काम करना पड़ता है, क्योंकि उनपर एकके ऊपर एक चढ़ते-उतरते अंकुश लगे होते हैं। इसलिए ब्रिटिश संविधानमें राज्य-पद्धति उदार हो तो प्रजाको उसका अधिकतम लाभ मिल सकता है और यदि यह पद्धति अन्यायपूर्ण अथवा अनुदार हो तो प्रजा इस नियन्त्रित सत्तामें उनका दबाव भी अधिकतम अनुभव करती है। ट्रान्सवालकी पिछली शासन-पद्धति-जैसे तन्त्रमें इससे उल्टी स्थिति होती है। उसमें उदार कानूनका लाभ मिलना न मिलना बहुत-कुछ उस विभागके अधिकारीपर निर्भर होता है। इस नीतिके अनुसार ट्रान्सवालमें जब ब्रिटिश सत्ता कायम हुई तब हिन्दुस्तानियोंसे सम्बन्धित सब कानूनोंपर और भी अधिक कड़ाईसे अमल होने लगा। उनमें जहाँ-जहाँ बचावकी कोई गुंजाइश थी वह अब बिल्कुल खत्म हो गई। हम पहले देख ही चुके हैं कि एशियाई विभागकी नीति कड़ी थी, इसलिए पुराने कानूनको रद करानेकी बात तो एक ओर रही, उसकी सख्तियोंको अमलमें नरम कैसे कराया जाये, हिन्दुस्तानियोंको इसी दृष्टिसे उद्योग करना शेष रह गया।

हमें आगे पीछे एक सैद्धान्तिक चर्चा तो करनी ही पड़ेगी। कदाचित् भावी स्थिति और हिन्दुस्तानियोंके दृष्टिकोणको समझनेमें उसे यहीं कर लेना सहायक होगा। ट्रान्सवाल और ऑरेंज फ्री स्टेटमें ब्रिटिश ध्वजाके फहराते ही लॉर्ड मिलनरने एक

1. देखिए खण्ड ३, पृष्ठ ३२४-३३१।

समिति नियुक्त की। उसे राज्यके पुराने कानूनोंकी छानबीन करके उनमें से प्रजाके अधिकारोंपर अंकुश लगानेवाले अथवा ब्रिटिश संविधानकी भावनाके विरुद्ध जानेवाले कानूनोंकी सूची तैयार करनी थी। इसमें स्पष्ट हिन्दुस्तानियोंकी स्वतन्त्रतापर आघात करनेवाले कानून भी आ जाते हैं। किन्तु इस समितिकी नियुक्तिमें लॉर्ड मिलनरका हेतु हिन्दुस्तानियोंके कष्टोंका निवारण करना न होकर अंग्रेजोंके कष्टोंका निवारण करना था। उनका उद्देश्य यह था कि जिन कानूनोंसे अप्रत्यक्ष रूपसे भी अंग्रेजोंको हानि पहुँचती हो उनको जल्दीसे-जल्दी रद कर दिया जाये। इस समितिने अपनी रिपोर्ट बहुत कम समयमें ही तैयार कर ली और हम कह सकते हैं कि छोटे-बड़े बहुतसे कानून, जो अंग्रेजोंके विरुद्ध बनाये गये थे, एक कलमसे रद कर दिये गये।

इसी समितिने हिन्दुस्तानियोंके विरुद्ध बनाये गये कानूनोंको भी इकट्ठा कर दिया और उनकी एक अलग पुस्तक प्रकाशित कर दी और फल इतना ही हुआ कि एशियाई विभाग उनका उपयोग, अथवा हम अपनी दृष्टिसे कहें तो दुरुपयोग सुगमता-से करने लग गया।

अब हिन्दुस्तानी विरोधी कानून यदि उनके नाम देकर और विशेष रूपसे उनके विरुद्ध न बनाये गये होते बल्कि ऐसे बनाये गये होते कि वे सभीपर लागू हों और केवल उनपर अमल करना या न करना अधिकारियोंकी इच्छापर छोड़ दिया गया होता अथवा उन कानूनोंमें ही ऐसे नियन्त्रण रखे गये होते कि उनका अर्थ तो सार्व-जनिक होता, किन्तु उनका अधिक प्रभाव हिन्दुस्तानियोंपर पड़ता, तो ऐसे कानूनोंसे भी कानूनके निर्माताओंका प्रयोजन पूरा हो जाता और वे सार्वजनिक भी कहे जाते। उनसे किसीका अपमान न होता और कालान्तरमें जब विरोधका भाव कम हो जाता तब कानूनोंमें कोई परिवर्तन किये बिना उनके उदार अमलसे ही जिस जातिके विरुद्ध वे बनाये गये थे, उसकी रक्षा हो जाती। मैंने जैसे इन दूसरे प्रकारके कानूनोंको सार्वजनिक कानून कहा है वैसे ही पहले प्रकारके कानून एकदेशीय अथवा एकजातीय कानून कहे जा सकते हैं। ये कानून दक्षिण आफ्रिकामें रंगभेदकारी कानून कहलाते हैं, क्योंकि उनमें चमड़ीका भेद रखकर काले अथवा गेहुँआ वर्णकी चमड़ीके लोगोंपर गोरी चमड़ीके लोगोंकी अपेक्षा अधिक नियन्त्रण रखा जाता है; और यह नीति 'कलर बार', रंगभेद अथवा रंगद्वेष कही जाती है।

इसका एक उदाहरण उस समयतक बने हुए कानूनोंमें से ही लें। पाठकोंको याद होगा कि नेटालमें मताधिकारका जो पहला कानून बनाया गया था और जो बादमें रद कर दिया गया था उसकी एक धारा यही थी कि भविष्यमें किसी भी एशियाईको मतदानका अधिकार न रहेगा। अब यदि ऐसे कानूनमें परिवर्तन करवाना हो तो लोकमत इतना अधिक प्रशिक्षित किया जाना चाहिए कि बहुसंख्यक लोग एशि-याइयोंसे द्वेष न करें; बल्कि उनके प्रति मित्रभाव रखें। ऐसा सुअवसर आनेपर ही नया कानून बनाकर रंगभेदके इस कलंकको दूर किया जा सकता है। यह एकदेशीय अथवा रंगभेदकारी कानूनका एक उदाहरण है। अब उक्त कानूनको रद करके उसकी जगह जो दूसरा कानून बनाया गया है, उससे भी लगभग मूल अभिप्रायकी रक्षा

हो जाती है। फिर भी चूँकि उसमें से रंगभेदका दोष दूर कर दिया गया था, इसलिए वह सार्वजनिक हो गया। इस कानूनकी नई धाराका अर्थ इस प्रकार है: "जिन जातियों-को अपने देशमें संसदीय मताधिकार अर्थात् ब्रिटिश लोक सभाके सदस्योंके चुनावके ढंगका मताधिकार प्राप्त न हो उन जातियोंके लोगोंको नेटालमें मताधिकार नहीं दिया जा सकता।" इसमें कहीं भी हिन्दुस्तानियों अथवा एशियाइयोंका नाम नहीं आता। हिन्दुस्तानमें इंग्लैंडके ढंगका मताधिकार है या नहीं, इस सम्बन्धमें विधि-शास्त्रियोंके मत भिन्न-भिन्न हैं। किन्तु दलीलके तौरपर मान लेते हैं कि उस समय अर्थात् सन् १८९४ में हिन्दुस्तानमें वैसा मताधिकार नहीं था अथवा वैसा मताधिकार यहाँ आज भी नहीं है। फिर भी यदि नेटालका मतदाताओंके नाम दर्ज करनेवाला अधि-कारी मतदाता सूचीमें हिन्दुस्तानियोंका नाम दर्ज करे तो कोई यकायक यह नहीं कह सकता कि उसका यह काम गैरकानूनी है। कानूनमें सामान्य अर्थ सदा लोगोंके अधिकारोंके पक्षमें किया जाता है। इसलिए जबतक उस समयकी सरकार उसका विरोध न करना चाहे तबतक उक्त अधिकारी कानूनके मौजूद रहते हुए भी हिन्दु-स्तानियों और अन्य एशियाइयोंके नाम मतदाता सूचीमें दर्ज कर सकता है। अब मान लें कि कुछ समय बीतनेपर नेटालमें हिन्दुस्तानियोंके प्रति घृणाभाव कम हो जाता है और सरकार हिन्दुस्तानियोंका विरोध करना नहीं चाहती तो वह कानूनमें कोई परिवर्तन किये बिना हिन्दुस्तानियोंके नाम मतदाता सूचीमें दर्ज कर सकती है। सार्व-जनिक कानूनमें यह विशेषता होती है। मैं दक्षिण आफ्रिकाके जिन कानूनोंका उल्लेख पिछले प्रकरणोंमें कर चुका हूँ उनमें से ऐसे अनेक उदाहरण दिये जा सकते हैं। इसलिए दूरदर्शिताकी राजनीति यही मानी जा सकती है कि एकदेशीय कानून कमसे-कम बनाये जायें और यदि बिल्कुल न बनाये जायें तो सबसे अच्छा। यदि कोई कानून एक बार बन जाता है तो फिर उसे बदलनेमें अनेक बाधाएँ आती हैं। लोकमत बहुत प्रशिक्षित करनेपर ही बने हुए कानून रद किये जा सकते हैं। जिस प्रजातन्त्रमें कानून सदा बदलते या रद होते ही रहते हैं वह प्रजातन्त्र सुव्यवस्थित नहीं माना जा सकता।

अब हम ट्रान्सवालमें बनाये गये एशियाई-विरोधी कानूनोंमें व्याप्त विषको आसानीसे समझ सकते हैं। ये सभी कानून एकदेशीय हैं। एशियाई मतदाता नहीं बन सकते और सरकार द्वारा निर्धारित क्षेत्रोंके अतिरिक्त अन्यत्र जमीनें नहीं खरीद सकते। ये कानून जबतक रद नहीं किये जाते तबतक अधिकारी हिन्दुस्तानियोंकी हित-सिद्धि कदापि नहीं कर सकते। ये कानून सार्वजनिक नहीं थे, इसीलिए तो लॉर्ड मिलनरकी नियुक्त की हुई समिति उनको छाँटकर अलग कर सकी। किन्तु यदि सार्वजनिक होते तो एशियाइयोंका नाम न होनेपर भी जिन कानूनोंका प्रभाव एशियाइयोंपर ही पड़ता है ये सभी कानून दूसरे कानूनोंके साथ ही रद हो जाते। तब अधिकारी ऐसा कभी न कह सकते, "हम क्या कर सकते हैं, हम तो लाचार हैं। जबतक नई विधानसभा इन कानूनोंको रद नहीं कर देती तबतक हमारे लिए उनपर अमल करानेके सिवा दूसरा कोई चारा ही नहीं है।"

जब ये कानून एशियाई विभागके हाथमें आये तब उसने उनको पूरी तरह अमलमें लाना शुरू किया। किन्तु होना यह था कि यदि मन्त्रिमण्डल इन कानूनोंको अमलमें लानेके योग्य मानता है तो उसे इनमें जो दोष छूट गये थे या छोड़ दिये गये थे उन्हें दूर करनेके लिए अधिक सत्ता भी प्राप्त करनी चाहिए थी। यह सीधी-सादी दलील है कि यदि कानून बुरे हैं तो उन्हें रद किया जाये और यदि अच्छे हैं तो उनमें जो भी दोष रह गये हों वे दूर किये जायें। मन्त्रिमण्डलने इन कानूनोंको अमलमें लानेकी नीति तो स्वीकार कर ली थी। हिन्दुस्तानियोंने बोअर युद्धमें अंग्रेजोंके साथ कन्धेसे-कन्धा भिड़ाकर और अपनी जानको जोखिममें डालकर भाग लिया था। मगर यह बात तो अब तीन-चार वर्ष पुरानी हो गई थी। ट्रान्सवालके ब्रिटिश एजेंटने हिन्दुस्तानी लोगोंके अधिकारोंके लिए जद्दोजहद की थी, यह बात पुराने प्रजातन्त्रके साथ चली गई। युद्धका एक कारण हिन्दुस्तानियोंके कष्ट भी हैं, यह बात अधिकारियोंने बिना दीर्घ दृष्टिसे सोचे और बिना स्थानीय परिस्थितियोंको जाने कह दी थी। अब अधिकारियोंने अनुभवसे अपनी यह राय बनाई कि बोअरोंके शासनकालमें हिन्दुस्तानियोंके विरुद्ध बनाये गये कानून पर्याप्त कठोर और व्यवस्थित नहीं हैं। यदि हिन्दुस्तानी जब चाहें तब ट्रान्सवालमें आ जायें और जैसे चाहें वैसे और जहाँ चाहें वहाँ व्यापार करें तो अंग्रेज व्यापारियोंको बहुत नुकसान पहुँचेगा। इन और ऐसे ही दूसरे तर्कोंने गोरों और उनके प्रतिनिधि मन्त्रियोंको अभिभूत कर लिया। सभी गोरे कमसे-कम समयमें अधिकसे-अधिक धन इकट्ठा कर लेना चाहते थे। हिन्दुस्तानी उसमें से थोड़ा-बहुत भी भाग बँटा लें, यह बात उन्हें पसन्द कैसे आ सकती थी? इस लोभमें तत्वज्ञानके ढोंगका मिश्रण भी किया गया। दक्षिण आफ्रिकाके बुद्धिमान लोग स्वार्थ-भरे व्यापारिक तर्कसे ही सन्तोष नहीं कर सकते थे। मनुष्यकी बुद्धि अन्याय करनेके लिए भी सदा उचित जँचनेवाले तर्क खोजती है। दक्षिण आफ्रिकाके इन लोगोंने भी अपनी बुद्धिसे ऐसे ही तर्क खोज लिये। इस प्रकारके तर्क जनरल स्मट्स और उन-जैसे अन्य लोगोंने प्रस्तुत किये :

"दक्षिण आफ्रिका पाश्चात्य सभ्यताका प्रतिनिधि है। हिन्दुस्तान प्राच्य सभ्यताका केन्द्र-स्थल है। इस युगके तत्वज्ञानी यह बात स्वीकार नहीं करते कि इन दोनों सभ्यताओंका समन्वय सम्भव है। यदि इन दोनों सभ्यताओंका प्रतिनिधित्व करनेवाली जातियाँ छोटे-छोटे समुदायोंमें ही इकट्ठी हों तो भी उसका परिणाम विस्फोटकारी ही होगा। पश्चिम सादगीका विरोधी है। पूर्वके लोग सादगीको मुख्य मानते हैं। दोनोंके दृष्टिकोणोंमें मेल कैसे बैठ सकता है? इन दोनों सभ्यताओंमें से कौन-सी सभ्यता अधिक अच्छी है यह देखना राजनीतिज्ञों अथवा व्यावहारिक लोगोंका काम नहीं। पाश्चात्य सभ्यता अच्छी हो या बुरी, किन्तु पश्चिमके लोग तो उसीको अपनाये रहना चाहते हैं। पश्चिमके लोगोंने इस सभ्यताकी रक्षाके लिए अथक प्रयत्न किये हैं, खूनकी नदियाँ बहाई हैं और अन्य अनेक प्रकारके कष्ट सहे हैं। इसलिए पश्चिमके लोग अब किसी दूसरे मार्गपर जा ही नहीं सकते। इस विचारके अनुसार देखें तो हिन्दुस्तानियों और गोरोंका प्रश्न न तो व्यापारिक द्वेषका है और न वर्णद्वेषका; बल्कि वह केवल

अपनी सभ्यताकी रक्षा अर्थात् आत्मरक्षाके उच्चतम अधिकारका प्रयोग करने और उसके अन्तर्गत कर्त्तव्यका पालन करनेका है। लोगोंको भड़कानेके लिए हिन्दुस्तानियोंके दोष निकालना वक्ताओंको भले ही अच्छा लगता हो, किन्तु राजनैतिक दृष्टिसे विचार करनेवाले लोग तो यही मानते और कहते हैं कि दक्षिण आफ्रिकामें हिन्दुस्तानियोंके गुण ही दोष बने हुए हैं। वे सरलता, अनवरत अध्यवसाय, मितव्ययिता, परलोक-परायणता और सहनशीलता-जैसे गुणोंके कारण ही दक्षिण आफ्रिकामें अप्रिय हो गये हैं। पश्चिमके लोग साहसी, अधीर, अपनी भौतिक आवश्यकताओंको बढ़ाने और पूरा करनेमें व्यस्त, खाने-पीनेके शौकीन, शरीर-श्रमको बचानेके लिए व्यग्र और खर्चीले स्वभाव-के हैं। इसलिए उन्हें भय रहता है कि यदि पूर्वकी सभ्यताके हजारों प्रतिनिधि दक्षिण आफ्रिकामें बस जायेंगे तो पश्चिमके लोगोंको उनसे हार ही माननी पड़ेगी। पश्चिमकी दक्षिण आफ्रिकावासी जातियाँ आत्मघात करनेके लिए तैयार नहीं हो सकतीं, अतः उनके पक्ष-पोषक नेता उन्हें इस प्रकारकी जोखिममें कभी नहीं पड़ने देंगे।"

मुझे लगता है कि ये तर्क अच्छेसे-अच्छे और चरित्रवान गोरोंने जिस रूपमें दिये हैं मैंने उन्हें यहाँ निष्पक्ष भावसे वैसे ही प्रस्तुत किया है। मैं ऊपर इन तर्कोंको तत्वज्ञानका ढोंग कह चुका हूँ; किन्तु मेरे इस कथनका अभिप्राय यह नहीं है कि इन तर्कोंमें कोई तथ्य ही नहीं है। व्यावहारिक दृष्टिसे अथवा तात्कालिक स्वार्थकी दृष्टिसे तो इनमें बहुत-कुछ तथ्य हैं। किन्तु तात्त्विक दृष्टिसे तो ये ढोंग रूप ही हैं। मुझे अपनी अल्पमतिसे ऐसा प्रतीत होता है कि इन तर्कोंको किसी भी तटस्थ मनुष्यकी बुद्धि स्वीकार नहीं करेगी। कोई भी सुधारक अपनी सभ्यताको ऐसी लाचारी-की हालतमें नहीं रखेगा जैसी लाचारीकी हालतमें उक्त तर्क करनेवालोंने अपनी सभ्यताको रखा है। मैं नहीं जानता कि किसी भी प्राच्य तत्वज्ञानीको ऐसा भय है कि यदि प्राच्य जातियाँ पाश्चात्य जातियोंके अबाध सम्पर्कमें आयेंगी तो प्राच्य सभ्यता पाश्चात्य सभ्यताके प्रवाहमें बालूकी तरह बह जायेगी। मैं जहाँतक प्राच्य तत्वज्ञानको समझा हूँ वहाँतक मुझे तो ऐसा लगता है कि प्राच्य सभ्यताको पाश्चात्य सभ्यतासे अबाध सम्पर्क रखनेमें कोई भय नहीं है; इतना ही नहीं, वह इस प्रकारके सम्पर्कका स्वागत करती है। यदि पूर्वमें बात इसके विपरीत भी दिखाई दे तो इससे मेरे बताये सिद्धान्तपर कोई आँच नहीं आती। इस सिद्धान्तके समर्थनमें बहुत उदाहरण दिये जा सकते हैं। फिर भी पाश्चात्य तत्वज्ञानियोंका तो कहना है कि पशुबलको सर्वाधिक शक्तिमान मानना पाश्चात्य सभ्यताका तो मूल सिद्धान्त ही है; इसीलिए इस सभ्यताके पक्ष-पोषक पशुबलकी रक्षाके लिए अपने समयका अधिकसे-अधिक भाग देते हैं। उनकी मान्यता तो यह भी है कि जो जातियाँ अपनी आवश्यकताओंको न बढ़ायेंगी वे अन्तमें नष्ट-भ्रष्ट हो जायेंगी। इस मान्यताके अनुसार ही पश्चिमके लोग दक्षिण आफ्रिकामें आकर बसे हैं और अपनी अपेक्षा संख्यामें बहुत अधिक हब्शियोंको अपने अधीन करके बैठे हैं। उन्हें हिन्दुस्तानके सीधे-सादे लोगोंसे कोई भय कैसे हो सकता है? अपनी सभ्यताकी दृष्टिसे उन्हें वास्तवमें ऐसा कोई भय नहीं है? और इसका सबसे बड़ा प्रमाण यह है कि यदि हिन्दुस्तानी दक्षिण आफ्रिकामें सदा मजदूरोंके ही

रूपमें रहते तो वहाँ हिन्दुस्तानियोंको बसाये जानेके विरोधमें कभी आन्दोलन न किया जाता।

अब इसके अतिरिक्त जो-कुछ बच रहता है वह तो केवल व्यापार और वर्ण है। हजारों गोरे यह लिख चुके हैं और मान चुके हैं कि हिन्दुस्तानियोंके व्यापारसे छोटे अंग्रेज व्यापारियोंको नुकसान पहुँचता है और गेहुआँ रंगसे गोरोंके मनमें फिलहाल गहरी घृणा बैठ गई है। उत्तर अमरीकामें कानूनकी दृष्टिसे सबको समान अधिकार प्राप्त हैं, किन्तु वहाँ भी बुकर टी० वाशिंगटन[१]-जैसा उच्च पाश्चात्य शिक्षा-प्राप्त, अत्यन्त चरित्रवान् ईसाई और पाश्चात्य सभ्यतामें पूर्णतः दीक्षित मनुष्य राष्ट्रपति रूजवेल्टके दरबारमें नहीं जा सका था और आज भी नहीं जा सकता। अमेरिकामें बसे हुए हब्शी पाश्चात्य सभ्यताको स्वीकार कर चुके हैं और ईसाई भी बन गये हैं। किन्तु उनकी चमड़ीका काला वर्ण उनका अपराध है। उत्तरमें अमेरिकाके गोरे उनके प्रति असम्मानका व्यवहार करते हैं और दक्षिणमें उनपर किसी अपराधका सन्देह होनेपर जीवित ही जला देते हैं। दक्षिण अमेरिकामें इस दण्डनीतिका एक खास नाम भी है जो अंग्रेजी भाषामें प्रचलित हो गया है। वह है "लिंच लॉ"। 'लिंच लॉ' के मानी हैं, वह दण्डनीति जिसके अनुसार पहले सजा दी जाती है, पीछे अपराधका विचार किया जाता है। यह प्रथा "लिंच" नामके व्यक्तिसे चली है और उसी नामसे इसे पुकारा जाता है।

इससे पाठक समझ सकेंगे कि तात्त्विक कहे जानेवाले ऊपरके तर्कोंमें अधिक तथ्य नहीं है। किन्तु वे इससे यह अर्थ भी न निकाल लें कि जिन लोगोंने उक्त तर्क दिये हैं उन्होंने अपना विश्वास अन्यथा होनेपर भी ऐसा किया है। उनमें से बहुत-से सचाईसे अपने तर्कोंको तात्त्विक मानते हैं। सम्भव है कि यदि ऐसी ही स्थितिमें हम भी हों तो शायद ऐसे ही तर्क दें। 'बुद्धि कर्मानुसारिणी' इस उक्तिका मूल कोई ऐसी ही परिस्थिति होगी। ऐसा अनुभव किसे नहीं हुआ होगा कि हमारी अन्तर्वृत्ति जैसी बन जाती है हमें वैसे ही तर्क सूझते हैं और यदि ये तर्क दूसरोंको स्वीकार न हो सकें तो उससे हमारे मनमें असन्तोष, अधैर्य और अन्तमें रोष उत्पन्न होता है।

मैंने यहाँ इतना सूक्ष्म विवेचन जानबूझकर ही किया है। मैं चाहता हूँ कि पाठक विभिन्न दृष्टियोंको समझें और यदि वे अबतक इन विभिन्न दृष्टियोंको मान देने और समझनेके अभ्यस्त न हों तो अब उसके अभ्यस्त बनें। सत्याग्रहका रहस्य जानने और विशेष रूपसे सत्याग्रहका प्रयत्न करनेके लिए ऐसी उदारता और ऐसी सहिष्णुता बहुत आवश्यक है। इनके बिना सत्याग्रह नहीं किया जा सकता। मैंने यह पुस्तक केवल इसी हेतुसे नहीं लिखी है। इसको लिखनेका हेतु यह भी नहीं है कि मुझे दक्षिण आफ्रिकाके इतिहासका एक प्रकरण लोगोंके सम्मुख रखना है। किन्तु इसको लिखनेका हेतु यह है कि मैं जिस वस्तुके लिए जीवित हूँ, जीवित रहना चाहता हूँ और मानता हूँ कि जिसके लिए मैं प्राण देनेके लिए भी तैयार हूँ, वह वस्तु कैसे

१. अमेरिकाकी सुप्रसिद्ध शिक्षा संस्था टेस्केजी कालेजके प्राध्यापक।

उत्पन्न हुई और उसका पहला सामूहिक प्रयोग किस प्रकार किया गया, इस बातको देशके सब लोग जानें, समझें और उसे ठीक मानकर यथाशक्ति व्यवहारमें लायें।

अब हम अपने पिछले वस्तु-विषयको लें। हम यह देख चुके हैं कि अंग्रेज अधिकारियोंने यह निश्चय कर लिया था कि ट्रान्सवालमें नये हिन्दुस्तानियोंको आनेसे रोका जाये और पुराने हिन्दुस्तानियोंकी स्थिति ऐसी कठिन बना दी जाये जिससे वे भयभीत होकर ट्रान्सवालसे चले जायें और यदि न जायें तो लगभग मजदूर बनकर ही रहें। दक्षिण आफ्रिकाके महान् माने जानेवाले अनेक राजनीतिज्ञोंने कई बार कहा है कि इस देशमें हिन्दुस्तानी केवल लकड़हारे और काँवरिये [पनिहारे]के रूपमें ही खप सकते हैं। मैंने जिस एशियाई विभागका जिक्र ऊपर किया है उसमें श्री लायनल कर्टिस नामके एक अधिकारी भी थे। वे हिन्दुस्तानमें रह चुके थे तथा द्वैध शासन पद्धतिके आविष्कारक और प्रचारकके रूपमें प्रसिद्ध थे। वे एक ऊँचे परिवारमें उत्पन्न युवक हैं और उस समय १९०५-६ में वह युवक ही थे। वे लॉर्ड मिलनरके बड़े विश्वासपात्र थे। उनका दावा था कि वे समस्त कार्य शास्त्रीय विधिसे ही करते हैं; किन्तु बहुत बड़ी-बड़ी भूलें भी उनसे हुईं। उनकी एक ऐसी ही भारी भूलसे जोहानिसबर्ग नगरपालिकाको १४,००० पौंडका नुकसान उठाना पड़ा था। उन्होंने ट्रान्सवालमें नये हिन्दुस्तानियोंका प्रवेश रोकनेके लिए एक नई योजना सोची। उन्होंने इसके लिए पहला कदम यह सुझाया कि पुराने हिन्दुस्तानियोंका पंजीयन इस प्रकार किया जाये जिससे एकके बदले दूसरा न आ पाये और यदि आ जाये तो तुरन्त पकड़ा जाये। अंग्रेजी शासनकी स्थापनाके बाद जो परवाने दिये जाते थे उनमें परवाना लेनेवाले हिन्दुस्तानियोंको अपने हस्ताक्षर और हस्ताक्षर न कर सकें तो अँगूठेके निशान करने होते थे। फिर किसी अधिकारीने यह सुझाव दिया कि हिन्दुस्तानियोंके फोटो भी माँगे जाने चाहिए। इस तरह फोटो, अँगूठेका निशान और हस्ताक्षर इन तीनोंकी प्रथा चल पड़ी। इसके लिए कोई कानून बनानेकी जरूरत तो थी नहीं। इसलिए हिन्दुस्तानी नेताओंको तुरन्त इसका पता नहीं लग सकता था। धीरे-धीरे इन नई बातोंका पता चला। कौमकी ओरसे सत्ताधिकारियोंके पास प्रार्थनापत्र भेजे गये और शिष्टमण्डल भी भेजे गये। सत्ताधारियोंका तर्क यह था कि कोई भी आदमी किसी भी रीतिसे यहाँ आ जाये, यह हमें सह्य नहीं है। इसलिए सब हिन्दुस्तानियोंके पास एक ही तरहके निवासके परवाने होने चाहिए और उनमें इतना पूरा विवरण होना चाहिए कि उनको लेकर जिनके परवाने हैं केवल वे ही यहाँ आ सकें, उनके सिवा दूसरा कोई भी आदमी न आ सके। मैंने यह सलाह दी कि यद्यपि हम कानूनके मुताबिक ऐसे परवाने लेनेके लिए बंधे तो नहीं हैं, फिर भी जबतक शान्ति रक्षा अध्यादेश अस्तित्वमें है तबतक हमसे उसके अनुसार परवाने अवश्य ही माँगे जा सकते हैं। जैसे हिन्दुस्तानमें भारत रक्षा अधिनियम था वैसे ही दक्षिण आफ्रिकामें शान्ति रक्षा अध्यादेश था और जैसे हिन्दुस्तानमें केवल लोगोंको सतानेके लिए ही भारत रक्षा अधिनियम चलता रहा है वैसे ही हिन्दुस्तानियोंको सतानेके लिए शान्ति रक्षा अध्यादेश चलता था। कह सकते हैं, उसका प्रयोग सामान्यतः गोरोंके विरुद्ध बिलकुल नहीं किया जाता था। अब यदि

परवाना लेना जरूरी हो तो उसमें कोई पहचानकी निशानी भी होनी चाहिए। इसलिए जो लोग हस्ताक्षर नहीं कर सकते थे उनके लिए तो अँगूठेका निशान देना ठीक ही था। यह निशान देना काफी भी था, क्योंकि पुलिसकी खोजके अनुसार एक मनुष्यके अँगूठेकी रेखाएँ किसी भी दूसरे मनुष्यके अँगूठेकी रेखाओंसे नहीं मिलती। इन रेखाओंकी आकृति और संख्याके वर्गीकरणसे इस विज्ञानका ज्ञाता दो मनुष्योंके अँगूठोंके निशानोंको एक या दो मिनिट देखकर ही बता सकता है कि वे निशान दो भिन्न-भिन्न मनुष्योंके अँगूठोंके हैं। अतः फोटो देनेकी बात मुझे तनिक भी ठीक नहीं लगती थी; और मुसलमानोंकी दृष्टिसे तो उसमें धार्मिक आपत्ति भी थी।

अन्तमें सरकार और हिन्दुस्तानियोंकी बातचीतका परिणाम यह निकला कि प्रत्येक हिन्दुस्तानीको अपना पुराना परवाना लौटा देना चाहिए और नये प्रकारका परवाना ले लेना चाहिए एवं नये आनेवाले हिन्दुस्तानियोंको भी ऐसे ही नये प्रकारके परवाने दिये जाने चाहिए। हिन्दुस्तानी ऐसा करनेके लिए कानूनन बिलकुल बंधे नहीं थे; किन्तु उन्होंने इस आशासे अपनी मर्जीसे ये परवाने ले लिये कि ऐसा करनेसे उनपर नये अंकुश नहीं लगाये जायेंगे। वे इससे यह सिद्ध कर सकेंगे कि हिन्दुस्तानी कौम धोखाधड़ीसे किसीको नहीं लाना चाहती और चाहती है कि शान्ति रक्षा अध्यादेशका प्रयोग नये आनेवाले हिन्दुस्तानियोंको सतानेमें न किया जाये। कहा जा सकता है कि लगभग सभी हिन्दुस्तानियोंने नये प्रकारके ये परवाने ले लिये। यह कोई मामूली बात नहीं थी। जिस कामको करना कौमके लिए कानूनमें लाजमी नहीं था, उस कामको कौमने संगठित रूपसे और बड़ी शीघ्रतासे पूरा करके दिखा दिया। यह कौमकी सचाई, व्यवहार-कुशलता, उदारता, समझदारी और नम्रताकी निशानी थी। कौमने इस कामसे यह भी सिद्ध कर दिया था कि हिन्दुस्तानी ट्रान्सवालके किसी भी कानूनको किसी भी तरह भंग करना नहीं चाहते। हिन्दुस्तानियोंने यह मान लिया था कि यदि वे सरकारके प्रति इस प्रकार सौजन्यपूर्ण व्यवहार करेंगे तो सरकार भी उनकी रक्षा करेगी, उनको सम्मान देगी और अन्य अधिकार भी देगी। ट्रान्सवालकी अंग्रेज सरकारने इस सौजन्यके महान् कार्यका बदला किस तरह दिया यह हम अगले प्रकरणमें देख सकेंगे।

अध्याय ११

सौजन्यका बदला — खूनी कानून

परवानोंका रद्दोबदल होते-होते सन् १९०६ आ गया।[१] मैं सन् १९०३ में ट्रान्सवाल वापस पहुँचा था, और मैंने उस वर्षके लगभग मध्यमें जोहानिसबर्गमें अपना दफ्तर खोला था। इस तरह मेरे ये दो साल एशियाई कार्यालयके आक्रमणोंको रोकनेमें लगे। इस सबके बाद लोगोंने यह मान लिया था कि परवानोंका प्रश्न इस तरह तय हो गया है, और इससे सरकारको पूरा सन्तोष मिल जायगा और हिन्दुस्तानियों-

१. देखिए खण्ड ५, पृष्ठ ३९२-३।

को भी कुछ चैन मिलेगा। किन्तु हिन्दुस्तानी कौमके भाग्यमें चैन कहाँ? मैं श्री लायनेल कर्टिसका परिचय पिछले प्रकरणमें दे चुका हूँ। उनको ऐसा लगा कि हिन्दुस्तानियोंने नये परवाने ले लिये, इतनेसे गोरोंका हेतु सिद्ध नहीं होता। उनका मत यह था कि बड़े-बड़े कार्योंका पारस्परिक समझौतेसे निपट जाना पर्याप्त नहीं है। उनके पीछे कानूनका जोर होना ही चाहिए, उनका तभी कुछ महत्त्व हो सकता है और उनमें निहित सिद्धान्तोंकी रक्षा तभी की जा सकती है। श्री कर्टिस चाहते थे कि हिन्दुस्तानियोंपर नियन्त्रण रखनेके लिए कोई एसा कार्य किया जाना चाहिए जिसका प्रभाव समस्त दक्षिण आफ्रिकापर पड़े और अन्तमें जिसका अनुकरण अन्य ब्रिटिश उपनिवेश भी करें। उनका कहना था कि जबतक दक्षिण आफ्रिकाका एक भी द्वार हिन्दुस्तानियोंके लिए खुला रहेगा तबतक ट्रान्सवाल सुरक्षित नहीं माना जा सकता। इसके अतिरिक्त उनकी दृष्टिमें सरकार और हिन्दुस्तानी कौमके बीचके समझौतेसे हिन्दुस्तानी कौमकी प्रतिष्ठा बढ़ी थी। वे यह नहीं चाहते थे कि उसकी प्रतिष्ठा बढ़े, बल्कि चाहते थे कि वह घटे। उन्हें हिन्दुस्तानियोंकी सहमतिकी आवश्यकता नहीं थी। वे तो यह चाहते थे कि हिन्दुस्तानियोंपर कोई बाह्य प्रतिबन्ध लगाकर उन्हें कानूनके आतंकसे कँपा दिया जाये। इसलिए उन्होंने एशियाई कानूनका मसविदा बनाया और सरकारको उसे पास करनेकी सलाह देते हुए यह मत व्यक्त किया कि जबतक इस मसविदेके मुताबिक कानून नहीं बनाया जाता तबतक हिन्दुस्तानी ट्रान्सवालमें चोरी-छिपे जाते ही रहेंगे और वर्तमान कानूनमें इस तरह आये हुए लोगोंको बाहर निकालनेका कोई भी साधन नहीं है। सरकारको श्री कर्टिसके ये तर्क जँचे। उसे उनका मसविदा भी अच्छा लगा और उसने उसके मुताबिक विधानसभामें प्रस्तुत करनेके उद्देश्यसे ट्रान्सवालके सरकारी गजटमें एक एशियाई कानून संशोधक विधेयक प्रकाशित किया।

इस विधेयककी तफसील लिखनेसे पहले यह आवश्यक है कि मैं बीचमें हुई एक महत्त्वपूर्ण घटनाका वर्णन थोड़ेसे शब्दोंमें कर दूँ। चूँकि मैं सत्याग्रहका प्रवर्तक हूँ, इसलिए पाठकोंके लिए मेरी स्थितिको पूरी तरह समझ लेना बहुत आवश्यक है। जब ट्रान्सवालमें हिन्दुस्तानियोंपर इस प्रकार प्रतिबन्ध लगानेका प्रयत्न किया जा रहा था तभी नेटालमें जुलू लोगोंने विद्रोह किया। जो-कुछ हुआ उसे विद्रोह कहा जा सकता है या नहीं, इस सम्बन्धमें मुझे तब भी शंका थी और अब भी है; फिर भी नेटालमें यह घटना इसी नामसे प्रसिद्ध है। इस विद्रोहको दबानेके लिए नेटालके बहुतसे गोरे स्वयंसेवकोंके रूपमें सेनामें भरती हुए। मैं भी नेटालवासी माना जाता था; इसलिए मुझे लगा कि इस लड़ाईमें मुझे भी सेवा करनी चाहिए। निदान मैंने हिन्दुस्तानी कौमकी मंजूरी लेकर सरकारके सम्मुख यह प्रस्ताव रखा कि हम घायलोंकी सेवा-शुश्रूषाके लिए एक टुकड़ी बनाना चाहते हैं।[१] मेरा यह प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया। इसलिए मैंने अपना ट्रान्सवालका मकान छोड़ दिया और बाल-बच्चोंको नेटालमें फीनिक्स फार्मपर जहाँ 'इंडियन ओपीनियन' नामका अखबार छपता

१. देखिए खण्ड ५, पृष्ठ ३०२।

था और मेरे संगी-साथी रहते थे, भेज दिया। किन्तु वहाँका अपना दफ्तर मैंने बन्द नहीं किया; क्योंकि मैं जानता था कि मुझे अधिक समयतक यह कार्य नहीं करना पड़ेगा।

मैं बीस-पच्चीस लोगोंकी एक छोटी-सी टुकड़ी बनाकर सेनामें चला गया। इस छोटी-सी टुकड़ीमें भी लगभग सभी जातियोंके हिन्दुस्तानी सम्मिलित थे। इस टुकड़ीने एक महीने सेवा की। इस महीने-भरमें हमें जो काम मिला मैंने उसके लिए सदा ईश्वरका अनुग्रह माना है। मैंने देखा कि जो हब्शी घायल हुए थे उनको जब हम उठाते, तभी वे उठाये जाते अन्यथा उसी तरह पड़े तड़पते रहते थे। इन घायलोंके घावोंकी मरहम पट्टीमें किसी गोरेकी सहायता मिलना सम्भव नहीं था। हमें एक सर्जन डाक्टर सेवेजकी अधीनतामें काम करना होता था। यह डाक्टर बहुत ही दयालु था। घायलोंको उठाकर अस्पतालमें पहुँचा देनेके बाद उनकी सार-संभाल करना हमारे क्षेत्रसे बाहरका काम था, किन्तु अपनी दृष्टिसे तो हमें जो भी काम दिया जाये वह सभी हमारे क्षेत्रमें आता है, यही समझकर हम वहाँ गये थे। इसलिए इस सज्जन डाक्टरने हमसे कहा, इन लोगोंकी सार-संभालके लिए कोई गोरा नहीं मिलता। मैं इसके लिए आपको बाध्य कर सकूँ इतना मुझे अधिकार नहीं है; इसलिए यदि आप दयाके इस कामको अपने हाथमें ले लें तो मैं आपका उपकार मानूँगा। हमने इस कामको सहर्ष स्वीकार कर लिया। कुछ हब्शियोंके घाव पाँच-पाँच और छः-छः दिनसे नहीं धोये-पोंछे गये थे; इसलिए उनमेंसे दुर्गन्ध उठ रही थी। इन सबको साफ करनेका काम हमारे जिम्मे आया और वह हमें बहुत भाया। हब्शी हमसे बात तो नहीं कर सकते थे, किन्तु हम उनकी चेष्टासे और उनकी आँखोंसे यह देख सकते थे कि वे ऐसा अनुभव करते हैं मानो हमें ईश्वरने ही उनकी सहायता करनेके लिए वहाँ भेजा हो। इस कार्यमें हमें कभी-कभी दिनमें चालीस-चालीस मीलका सफर करना पड़ा।

हमारा काम एक महीनेमें समाप्त हो गया।[1] अधिकारियोंको उससे सन्तोष हुआ। गवर्नरने हमें धन्यवादका पत्र भेजा। हमारी इस टुकड़ीमें तीन गुजराती थे। उनको सार्जेन्टका पद दिया गया था। गुजराती भाई उनका नाम जानकर अवश्य ही प्रसन्न होंगे। इनके नाम थे उमियाशंकर शेलत, सुरेन्द्रराय मेढ़ और हरिशंकर जोशी। ये तीनों व्यक्ति शरीरसे सुगठित थे और उन्होंने अत्यन्त कठिन परिश्रम किया। मुझे दूसरे हिन्दुस्तानियोंके नाम इस समय याद नहीं आ रहे हैं। किन्तु इतना ठीक-ठीक याद है कि उनमें एक पठान भी था। मुझे यह भी याद है कि हम भी उसके बराबर बोझ उठाकर उतनी ही लम्बी मंजिल तय कर सकते हैं, यह देखकर उसे आश्चर्य होता था।

मेरे मनमें दो विचार धीरे-धीरे रूप धारण कर रहे थे। मैं कह सकता हूँ कि ये विचार इस टुकड़ीमें काम करते हुए पूरी तरह पक गये। एक विचार तो यह था कि जो मनुष्य सेवाधर्मको मुख्य मानता है उसे ब्रह्मचर्यका पालन अवश्य करना चाहिए

१. विस्तृत विवरणके लिए देखिए खण्ड ५, पृष्ठ ३७८-८३।

और दूसरा यह था कि सेवाधर्म अंगीकार करनेवाले मनुष्यको सदाके लिए दरिद्रताका व्रत ले लेना चाहिए एवं किसी ऐसे धन्धेमें नहीं पड़ना चाहिए जिसके कारण सेवाके कार्यमें उसे कभी कुछ भी संकोच हो अथवा उसमें तनिक भी विघ्न पड़े।

टुकड़ीमें रहकर काम करनेकी अवधिमें ही मेरे पास इस आशयके पत्र और तार आने लगे कि जैसे भी हो मैं जल्दीसे-जल्दी ट्रान्सवाल जा पहुँचूँ। इसलिए मैं फीनिक्समें सबसे मिलकर जल्दी ही जोहानिसबर्ग पहुँच गया और वहाँ मैंने उस विधेयकका मसविदा पढ़ा जिसका उल्लेख मैं ऊपर कर चुका हूँ। यह २२ अगस्त १९०६के ट्रान्सवाल सरकारके असाधारण गजटमें छपा था। मैं इस गजटको दफ्तरसे घर लाया। घरके पास ही एक छोटी-सी पहाड़ी थी। मैं उसीपर बैठकर अपने साथीके साथ 'इंडियन ओपीनियन'के लिए उस विधेयकका अनुवाद कर रहा था। अनुवाद करते हुए उस विधेयककी धाराओंको पढ़ते-पढ़ते मेरा मन आशंकासे भर गया। मुझे उसमें हिन्दुस्तानियोंके प्रति द्वेषके अतिरिक्त और कुछ दिखाई नहीं दिया। मुझे ऐसा लगा कि यदि यह विधेयक कानूनके रूपमें पास हो गया और हिन्दुस्तानियोंने इसे स्वीकार कर लिया तो हिन्दुस्तानी कौमके पैर दक्षिण आफ्रिकासे बिलकुल उखड़ जायेंगे। मुझे यह बात साफ-साफ दिखाई दे गई कि हिन्दुस्तानियोंके लिए यह जीवन-मरणका प्रश्न है। मुझे यह भी भास गया कि यदि कौम इसे प्रार्थनापत्रोंसे रोकनेमें सफल न हुई तो उसके बाद भी उसे कुछ-न-कुछ करना पड़ेगा। इस कानूनको माननेसे तो मर जाना अच्छा है। किन्तु कोई मरना स्वीकार कैसे कर सकता है? हिन्दुस्तानी कौम ऐसा कौन-सा जोखिम उठाये अथवा उठानेका साहस करे कि जिससे उसके सामने सफलता अथवा मरणके सिवा कोई रास्ता ही न रहे? मेरे सम्मुख भयंकर दीवार आकर खड़ी हो गई और मैं किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो गया। जिस विधेयकने मुझे इतना विचलित कर दिया था उसका ब्यौरा पाठकोंके जानने योग्य है। उसका सार यह था:

ऐसे हिन्दुस्तानी पुरुष, स्त्री और आठ वर्ष या आठ वर्षसे अधिक आयुके बालक-बालिकाको जिसे ट्रान्सवालमें रहनेका अधिकार कायम रखना है, एशियाई दफ्तरमें जाकर अपने नामका पंजीयन करा लेना चाहिए और उसका परवाना ले लेना चाहिए। प्रार्थियोंको परवाना लेते समय अपना पुराना परवाना पंजीयन अधिकारीको सौंप देना चाहिए। पंजीयनके प्रार्थनापत्रमें प्रार्थियोंको अपना नाम, निवासस्थान, जाति और आयु आदि सबका ब्यौरा देना चाहिए। पंजीयन अधिकारीको चाहिए कि वह प्रार्थीके शरीरपर जो खास-खास निशान हों उन्हें लिखले। उसे उसकी दसों अँगुलियों और अँगूठोंके निशान ले लेन चाहिए। जो हिन्दुस्तानी स्त्री या पुरुष निश्चित अवधिके भीतर परवाना बदलवानेका यह प्रार्थनापत्र नहीं देगा उसका ट्रान्सवालमें रहनेका हक रद कर दिया जायेगा। प्रार्थनापत्र न देना भी कानूनी अपराध होगा। इस अपराधके लिए कैद, जुर्माना और यदि अदालत चाहे तो देशनिकालेका दण्ड दिया जा सकता है। नाबालिग बच्चोंके प्रार्थनापत्र माँ-बापको देने चाहिए और उनकी अँगुलियोंके निशान देनेके लिए उनको पंजीयम अधिकारीके सम्मुख प्रस्तुत करनेकी जिम्मेदारी भी उन्हींकी

होगी। यदि इस जिम्मेदारीको माँ-बाप पूरा न करेंगे तो उसे सोलह वर्षकी आयु होने-पर बालकोंको स्वयं पूरा करना होगा और ऐसा न करनेपर इन सोलह वर्षकी आयुके तरुणोंको भी माँ-बापोंके समान ही सजा दी जा सकेगी। प्रार्थियोंको जो परवाने दिये जायेंगे उनको जब भी कोई पुलिस अधिकारी देखना चाहे उसी समय परवाने उसके सामने उन्हें प्रस्तुत करने होंगे। परवाना न दिखाना अपराध होगा और उसके लिए अदालत कैद या जुर्मानेकी सजा दे सकेगी। यह परवाना राह चलते हिन्दुस्तानियोंसे भी माँगा जा सकेगा। पुलिस अधिकारी किसीके भी घरमें घुसकर परवाना देख सकेंगे। ट्रान्सवालमें बाहरसे आनेवाले हिन्दुस्तानी स्त्री या पुरुषके लिए अपना परवाना जाँच करनेवाले पुलिस अधिकारीको दिखाना आवश्यक होगा। यदि कोई हिन्दुस्तानी किसी कारण अदालतमें या चुंगीके दफ्तरमें व्यापारका परवाना अथवा साइकिलकी मंजूरी लेनेके लिए जायेगा तो उसे वहाँके अधिकारीको भी परवाना दिखाना होगा। इसका अर्थ यह है कि यदि कोई हिन्दुस्तानी किसी सरकारी दफ्तरमें उस दफ्तरसे सम्बन्धित कामके लिए जायेगा तो हिन्दुस्तानीकी प्रार्थना स्वीकार करनेसे पहले अधिकारी उससे उसका परवाना दिखानेके लिए कह सकेगा। इस पर-वानेको दिखानेसे अथवा जिसके पास परवाना हो उससे अधिकारी कोई ब्यौरा पूछे तो उसे बतानेसे इनकार करना दण्डनीय अपराध होगा और उसके लिए अदालत कैद या जुर्मानेकी सजा दे सकेगी।

जहाँतक मैं जानता हूँ, दुनियाके किसी भी भागमें स्वतन्त्र लोगोंके लिए ऐसा कोई कानून नहीं है। मैं जानता हूँ कि नेटालमें हिन्दुस्तानी गिरमिटिया भाइयोंके लिए परवानेका कानून बहुत कड़ा है, किन्तु वे तो बेचारे स्वतन्त्र मनुष्य ही नहीं माने जाते। फिर भी कहा जा सकता है कि उनका परवाना कानून इस कानूनसे नरम है और उस कानूनको तोड़नेके जुर्ममें दी जानेवाली सजा इस कानूनको तोड़नेकी सजाके मुका-बलेमें कुछ भी नहीं है। लाख रुपयेका व्यापार करनेवाला हिन्दुस्तानी व्यापारी इस कानूनके अन्तर्गत निर्वासित किया जा सकता है अर्थात् इस कानूनको तोड़नेपर ऐसी स्थिति पैदा हो सकती है कि वह आर्थिक दृष्टिसे बिलकुल बरबाद हो जाये। धैर्यवान पाठक आगे चलकर देखेंगे कि इस कानूनको भंग करनेके अपराधमें निर्वासनकी सजाएँ दी भी गईं। हिन्दुस्तानमें जरायमपेशा जातियोंके लिए कुछ कड़े कानून हैं। उन कानूनोंकी तुलना सहज ही इस कानूनसे की जा सकती है और तुलना करनेपर कुल मिलाकर यह कानून उन कानूनोंसे किसी भी तरह कम कठोर नहीं कहा जा सकता। इस कानूनमें दसों अँगुलियों और अँगूठोंकी निशान लेनेकी जो बात थी वह दक्षिण आफ्रिकाके लिए बिलकुल नई थी। मैंने इस सम्बन्धका साहित्य पढ़नेके विचारसे एक पुलिस अधिकारी श्री हेनरीकी लिखी 'अँगुलियोंकी निशानियाँ (फिंगर इम्प्रेशन्स) नामक पुस्तक पढ़ी। मैंने उसमें देखा कि कानूनके मुताबिक इस तरह अँगुलियों की निशानियाँ केवल अपराधियोंसे ही ली जाती हैं। इसलिए, मुझे जबर्दस्ती दसों अँगुलियों और अँगूठोंकी निशानियाँ लेनेकी बात बहुत ही भयंकर लगी। इस विधेयकमें स्त्रियोंके लिए परवाना लेनेका नियम पहली बार ही रखा गया था और इसी प्रकार सोलह वर्ष या इससे अधिक आयुके बालक-बालिकाओंके लिए परवाना लेनेका नियम भी नया ही था।

मने दूसरे दिन प्रमुख हिन्दुस्तानियोंको इकट्ठा किया और उनको इस काननूका शब्दशः अर्थ समझाया। फलतः इसका जो असर मुझपर हुआ वही असर उनपर भी हुआ। उनमें से एकने तो आवेशमें यह भी कहा कि यदि कोई मेरी पत्नीसे परवाना माँगने आया तो मैं तो उसे वहीं गोलीसे उड़ा दूँगा, उसके बाद चाहे मेरा कुछ भी हो। मैंने उनको शान्त किया और सब लोगोंसे कहा : 'यह मामला बहुत गम्भीर है। यदि यह विधेयक कानून बन जाये और हम इसे स्वीकार कर लें तो उसके अनुकरणमें पूरे दक्षिण आफ्रिकामें कानून बनाया जायेगा। मुझे तो इसका हेतु ही यहाँ हमारा अस्तित्व मिटा देना लगता है। यह कानून अखीरी नहीं, हमें दक्षिण आफ्रिकासे खदेड़नेका पहला कदम है। इस-लिए हमारे ऊपर ट्रान्सवालमें रहनेवाले दस हजार या पन्द्रह हजार हिन्दुस्तानियोंकी ही जिम्मेदारी नहीं है, बल्कि दक्षिण आफ्रिकामें बसे हुए सभी हिन्दुस्तानियोंकी जिम्मेदारी है। फिर यदि हम इस विधेयकको पूरी तरह समझें तो हमपर समूचे हिन्दुस्तानकी प्रतिष्ठाकी रक्षा करनेकी जिम्मेदारी भी आती है, क्योंकि इस विधेयकसे हमारा ही अपमान नहीं होता, बल्कि समस्त हिन्दुस्तानका अपमान होता है। अपमानका अर्थ ही है निर्दोष व्यक्तिका मान भंग होना। यह नहीं कहा जा सकता कि हम ऐसे कानूनके योग्य हैं। हम निर्दोष हैं और जातिके किसी भी निर्दोष अंगका अपमान समूची जातिके अपमानके बराबर है। इसलिए यदि हम ऐसी विषम स्थितिमें उतावली करेंगे, धैर्य खो देंगे और क्रोधमें आ जायेंगे तो हम इस आक्रमणसे अपनी रक्षा नहीं कर सकेंगे। और यदि हम शान्त चित्तसे उचित उपाय खोजकर उचित समयपर तदनुसार कार्य करेंगे, संगठित रहेंगे और इस अपमानके विरुद्ध कार्रवाई करते हुए हमें जो-कुछ कष्ट सहन करने पड़ें उन सबको सहन करेंगे तो मेरा विश्वास है कि ईश्वर स्वयं हमारी सहायता करेगा। तब उपस्थित सभी लोगोंने इस विधेयककी गम्भीरताको समझकर यह निश्चय किया कि एक सार्वजनिक सभा की जाये और उसमें कोई प्रस्ताव पास किया जाये। इसके लिए एक यहूदी नाट्यशाला (एम्पायर थियेटर) किरायेपर ली गई और उसमें सभा बुलाई गई।

अब पाठक समझ सकेंगे कि इस प्रकरणके शीर्षकमें इस कानूनका नाम 'खूनी कानून' क्यों दिया गया है। मैंने इस प्रकरणका यह विशेषण स्वयं नहीं चुना है। दक्षिण आफ्रिकामें इस कानूनका परिचय देनेके लिए इसी विशेषणका प्रयोग किया जाता था।

अध्याय १२

सत्याग्रहका जन्म

नाटचशाला (एम्पायर थियेटर) में ११ सितम्बर, १९०६ को सभा की गई। इसमें ट्रान्सवालके विभिन्न नगरोंके प्रतिनिधि बुलाये गये। किन्तु मुझे स्वीकार करना चाहिए कि सभामें रखनेके लिए मैंने जो प्रस्ताव तैयार किये थे उनका पूरा अर्थ तो मैं स्वयं भी नहीं समझ सका था और न मैं उस समय यह अनुमान ही कर सका था कि उसका क्या परिणाम हो सकता है। सभाके दिन नाटचशाला ठसाठस भरी

हुई थी। सभीके मुखपर यह भाव दिखाई दे रहा था कि कुछ नया काम करना है और कोई नई बात होनी है। ट्रान्सवाल ब्रिटिश भारतीय संघके अध्यक्ष श्री अब्दुल गनी सभापति निर्वाचित किये गये। वे ट्रान्सवालके बहुत पुराने निवासी थे और मुहम्मद कासिम कमरुद्दीन नामकी प्रसिद्ध पेढ़ीके भागीदार और उसकी जोहानिसबर्ग शाखाके व्यवस्थापक थे। सभामें जो प्रस्ताव प्रस्तुत किये गये उनमें मुख्य प्रस्ताव चौथा[1] प्रस्ताव ही था। इसका आशय यह था कि यदि यह विधेयक पूरी शक्तिसे विरोध करनेपर भी कानून बना दिया जाय तो हिन्दुस्तानियोंको उसे नहीं मानना चाहिए और उसको न माननेके फलस्वरूप उन्हें जो भी कष्ट सहन करने पड़ें वे सब उनको सहन करने चाहिए।

मैंने इस प्रस्तावको सभामें उपस्थित लोगोंके सामने भली-भाँति समझाकर रखा। लोगोंने सब बातें शान्तिपूर्वक सुनीं। सभाकी कार्रवाई हिन्दी और गुजरातीमें ही की गई थी, इसलिए कोई उसे न समझ सका हो, ऐसा सम्भव नहीं था। जो तमिल-भाषी और तेलगु-भाषी भाई हिन्दी नहीं समझ सकते थे उनको सब बातें उन भाषाओंके वक्ताओंने भली-भाँति समझा दीं। प्रस्ताव नियमपूर्वक रखा गया और कई लोगोंने इसका अनुमोदन-समर्थन किया। वक्ताओंमें सेठ हाजी हबीब एक थे। वे भी दक्षिण आफ्रिकाके बहुत पुराने और अनुभवी निवासी थे। उन्होंने बहुत जोशीला भाषण दिया और आवेशमें आकर यहाँतक कह दिया, "हमें यह प्रस्ताव खुदाको हाजिर-नाजिर जानकर स्वीकार करना है। हम डरकर इस कानूनको कभी नहीं मानेंगे। मैं तो खुदाकी कसम खाकर कहता हूँ कि इस कानूनको हर्गिज नहीं मानूँगा। इस सभामें मौजूद आप लोगोंको भी मैं सलाह देता हूँ कि आप सब भी खुदाको हाजिर-नाजिर जानकर ऐसी कसम लें।"

प्रस्तावके समर्थनमें दूसरे लोगोंने भी तीखे और जोरदार भाषण दिये। जब सेठ हाजी हबीब बोलते-बोलते कसमकी बातपर आये तब मैं चौंका और सावधान हुआ। मुझे अपनी और कौमकी जिम्मेदारीका पूरा-पूरा खयाल तभी हुआ। कौमने अबतक बहुतसे प्रस्ताव पास किये थे। उनमें अधिक सोच-विचार और नये अनुभवोंके बाद परिवर्तन भी किये थे। उन प्रस्तावोंपर कुछ लोगोंने अमल नहीं किया, ऐसा भी हुआ था। संसार-भरमें सार्वजनिक जीवनका यह स्वाभाविक अनुभव है कि प्रस्तावोंमें परिवर्तन किये जाते हैं और जो लोग उनसे सहमत होते हैं वे कई बार उनके अनुसार नहीं चलते। किन्तु इन प्रस्तावोंमें ईश्वरका नाम बीचमें नहीं लाया जाता। तात्त्विक दृष्टिसे विचार करें तो किसी निश्चयमें और ईश्वरका नाम लेकर की गई किसी प्रतिज्ञामें कोई अन्तर नहीं होना चाहिए। यदि कोई विवेक शील मनुष्य विचारपूर्वक कोई निश्चय करता है तो फिर वह उससे विचलित नहीं होता। उसके मनमें उस निश्चयका महत्व उतना ही होता है जितना ईश्वरको साक्षी रखकर की हुई प्रतिज्ञाका। किन्तु दुनिया तात्त्विक आधारपर नहीं चलती। वह तो सामान्य निश्चय और ईश्वरको साक्षी रखकर की गई प्रतिज्ञाके बीच महासागरोंका

१. देखिए खण्ड ५, पृष्ठ ४३३-३४।

अन्तर मानती है। जो मनुष्य अपने सामान्य निश्चयमें परिवर्तन करता है उसको ऐसा करनेमें लज्जा नहीं आती; किन्तु यदि वह ईश्वरकी शपथ लेकर प्रतिज्ञा करके फिर उसे भंग करता है तो उसको स्वयं लज्जा आती है, समाज भी उसे धिक्कारता और पापी मानता है। यह बात इस हदतक बद्धमूल हो गई है कि कानूनमें भी कसम खाकर कही हुई बातके झूठ सिद्ध होनेपर कसम खानेवाला मनुष्य अपराधी माना जाता है और उसको कड़ी सजा दी जाती है।

मैं प्रतिज्ञाएँ लेता रहा हूँ और उसके शुभ फलोंके रसको भी मैं जानता हूँ। इसलिए उक्त प्रतिज्ञाकी बात सोचकर मैं भयभीत हो गया। मैंने एक क्षणमें ही उसके परिणाम समझ लिये। मेरी इस घबराहटसे मुझमें उत्साह पैदा हुआ। यद्यपि मैं सभामें प्रतिज्ञा करने अथवा लोगोंसे प्रतिज्ञा करवानेके विचारसे नहीं गया था, फिर भी मुझे सेठ हाजी हबीबका सुझाव बहुत पसन्द आया। किन्तु उसके साथ ही मुझे यह भी लगा कि मुझे लोगोंको इसके जो परिणाम हो सकते हैं, उनसे आगाह कर देना चाहिए। मुझे उनको प्रतिज्ञाका अर्थ स्पष्ट रूपसे समझा देना चाहिए और उसके बाद लोग प्रतिज्ञा करें तभी उसे स्वागतके योग्य मानना चाहिए। और यदि वे उसके बाद प्रतिज्ञा न कर सकें तो मुझे समझ लेना चाहिए कि लोग अभी अन्तिम कसौटीपर कसे जानेके लिए तैयार नहीं हैं। इसलिए मैंने अध्यक्षसे सेठ हाजी हबीबके कथनका मर्म लोगोंको समझानेकी अनुमति माँगी। उन्होंने मुझे अनुमति दे दी और मैं बोलनेके लिए खड़ा हुआ। मैंने जो-कुछ कहा उसे मैं स्मृति से नीचे दे रहा हूँ:

"मैं सभाको यह बात समझा देना चाहता हूँ कि हमने आजतक जो प्रस्ताव स्वीकार किये हैं और जिस तरीकेसे स्वीकार किये हैं, उन प्रस्तावों और उस तरीकेमें तथा इस प्रस्ताव और इसके तरीकेमें भारी अन्तर है। यह प्रस्ताव अति गम्भीर है। क्योंकि, दक्षिण आफ्रिकामें हमारा अस्तित्व तभी रह सकता है जब हम इसपर पूरी तरह अमल करें। प्रस्तावको स्वीकार करनेकी जो रीति हमारे भाईने सुझाई है वह जितनी गम्भीर है, उतनी ही नवीन है। मैं खुद इस रीतिसे प्रस्ताव करवानेके विचारसे यहाँ नहीं आया था। इस यशके अधिकारी अकेले सेठ हाजी हबीब हैं, और इसकी जिम्मेदारी भी उन्हींपर है। मैं उन्हें मुबारकबाद देता हूँ। उनका सुझाव मुझे बहुत रुचा है। पर यदि आप उस सुझावको स्वीकार कर लेते हैं तो उसकी जिम्मेदारीमें आप भी साझी हो जायेंगे। यह जिम्मेदारी क्या है, इसे आपको समझना ही चाहिए, और भारतीय समाजके सलाहकार और सेवकके नाते इसे पूरी तरहसे समझा देना मेरा धर्म है।

"हम सब एक ही सिरजनहारको माननेवाले हैं। उसे मुसलमान भले ही खुदाके नामसे पुकारें, हिन्दू भले ही ईश्वरके नामसे भजें, पर वह है एक ही स्वरूप। उसे साक्षी करके, उसको बीचमें रखकर हम कोई प्रतिज्ञा करें या शपथ लें, यह कोई छोटी-मोटी बात नहीं है। इस तरहसे शपथ लेनेके बाद भी यदि हम बदलते हैं तो समाजके, जगतके और खुदाके प्रति गुनहगार होंगे। मैं तो मानता हूँ कि सावधानीसे, शुद्ध बुद्धिसे मनुष्य कोई प्रतिज्ञा करे और बादमें तोड़ दे तो वह अपनी इन्सानियत,

अथवा मनुष्यता खो बैठता है। और जैसे पारा चढ़ा हुआ तांबेका सिक्का रुपया नहीं है, यह मालूम होते ही सिर्फ सिक्का ही मूल्य रहित नहीं होता, बल्कि उसका मालिक भी दण्डका पात्र हो जाता है, वसे ही झूठी शपथ लेनेवाला अपनी प्रतिष्ठा ही नहीं खोता वह लोक और परलोक दोनोंमें दण्डका पात्र हो जाता है। सेठ हाजी हबीब हमें ऐसी ही शपथ लेने की बात सुझा रहे हैं। इस सभामें एक भी ऐसा व्यक्ति नहीं जो बालक या नासमझ माना जा सके। आप सब प्रौढ़ हैं, दुनिया देखे हुए हैं; आपमें से अधिकांश तो प्रतिनिधि हैं और थोड़ी बहुत जिम्मेदारी भी भोग चुके हैं। अतः इस सभामें एक भी व्यक्ति ऐसा नहीं है जो यह कहकर छूट जाये कि मैंने बिना समझे प्रतिज्ञा की थी।

"मैं जानता हूँ कि प्रतिज्ञाएँ, व्रत आदि किसी गम्भीर प्रसंगपर ही लिये जाते हैं, और लिये भी जाने चाहिए। उठते-बैठते प्रतिज्ञा करनेवाला निश्चय ही प्रतिज्ञा भंग कर सकता है। परन्तु यदि हमारे सामाजिक जीवनमें इस देशमें प्रतिज्ञाके योग्य किसी अवसरकी कल्पना मैं कर सकता हूँ तो वह अवसर यही है। बहुत सावधानीसे और डर-डरकर कदम रखना बुद्धिमानी है। किन्तु डर और सावधानीकी भी सीमा होती है। उस सीमापर हम पहुँच चुके हैं। सरकारने सभ्यताकी मर्यादा तोड़ दी है। उसने हमारे चारों ओर जब दावानल सुलगा रखा है तब भी यदि हम बलिदानकी पुकार न करें और आगे-पीछे देखते रहें तो हम नालायक और नामर्द साबित होंगे। अतः यह शपथ लेनेका अवसर है, इसमें तनिक भी शंका नहीं। पर यह शपथ लेनेकी हममें शक्ति है या नहीं, यह तो हरएकको अपने लिए सोचना होगा। ऐसे प्रस्ताव बहुमतसे पास नहीं किये जाते। जितने लोग शपथ लेंगे उतने ही उससे बँधते हैं। ऐसी शपथ दिखावेके लिए नहीं ली जाती; उसका यहाँकी सरकार, बड़ी सरकार, या भारत सरकारपर क्या असर होगा, इसका कोई तनिक भी खयाल न करे। हरएकको अपने हृदयपर हाथ रखकर उसे ही टटोलना है। और तब यदि अन्तरात्मा कहती है कि हममें शपथ लेनेकी शक्ति है, तभी शपथ ली जाये, और वही शपथ फलेगी।

"अब दो शब्द परिणामके विषयमें। अच्छीसे-अच्छी आशा बाँधकर तो यह कह सकते हैं कि यदि सब लोग शपथपर कायम रहें और भारतीय समाजका बड़ा हिस्सा शपथ ले सके तो यह अध्यादेश एक तो पास नहीं होगा, और यदि पास हो गया तो तुरन्त रद हुए बिना नहीं रहेगा। समाजको अधिक कष्ट न सहना पड़ेगा। हो सकता है कि कुछ भी कष्ट न सहना पड़े। पर शपथ लेनेवालोंका धर्म जैसे एक ओर श्रद्धा-पूर्वक आशा रखना है, वैसे ही दूसरी ओर नितान्त आशारहित होकर शपथ लेनेको तैयार होना है। इसलिए मैं चाहता हूँ कि हमारी लड़ाईमें जो कड़वेसे-कड़वे परिणाम सामने आ सकते हैं, उनकी तसवीर इस सभाके सामने खींच दूँ। मान लीजिए कि यहाँ उपस्थित हम सब लोग शपथ लेते हैं। हमारी संख्या अधिकसे-अधिक तीन हजार होगी। यह भी हो सकता है कि बाकीके दस हजार शपथ न लें। शुरूमें तो हमारी हँसी होनी है। इसके अलावा इतनी चेतावनी दे देनेपर भी यह बिलकुल सम्भव है कि शपथ

लेनेवालोंमें से कुछ या बहुत-से पहली कसौटीमें ही कमजोर साबित हो जायें। हमें जेल जाना पड़े। जेलमें अपमान सहने पड़ें। भूख-प्यास, सर्दी-गर्मी भी सहनी पड़े। सख्त मशक्कत करनी पड़े। उद्धत सन्तरियोंकी मार भी खानी पड़े। जुर्माने हों। कुर्कीमें माल-असबाब भी बिक जाये। यदि लड़नेवाले बहुत थोड़े रह गये, तो आज भले हमारे पास बहुत पैसा हो, कल हम कंगाल बन सकते हैं; हमें निर्वासित भी किया जा सकता है। जेलमें भूखे रहते और दूसरे कष्ट सहते हुए हममें से कुछ बीमार हो सकते हैं और कोई मर भी सकते हैं। अर्थात् थोड़ेमें कहा जा सकता है कि जितने कष्टोंकी आप कल्पना कर सकते हैं वे सभी हमें भोगने पड़ें — और इसमें कुछ भी असम्भव नहीं है — फिर भी समझदारी इसीमें है कि यह सब सहन करना होगा, यह मानकर ही हम शपथ लें। मुझसे कोई पूछे कि इस लड़ाईका अन्त क्या होगा, और कब होगा तो मैं कह सकता हूँ कि अगर सारी कौम लड़ाईमें पूरी तरह उत्तीर्ण हो गई तो लड़ाई-का फैसला तुरन्त हो जायेगा और यदि संकटका सामना होनेपर हममें से बहुतेरे फिसल गये तो लड़ाई लम्बी होगी। लेकिन इतना तो मैं हिम्मतके साथ और निश्चय-पूर्वक कह सकता हूँ कि मुट्ठीभर लोग भी यदि अपनी प्रतिज्ञापर दृढ़ रहे तो इस लड़ाईका एक ही अन्त समझिए — अर्थात् इसमें हमारी जीत ही होगी।

"अब मेरी व्यक्तिगत जिम्मेदारीके बारेमें दो शब्द। मैं एक ओर तो प्रतिज्ञाकी जोखिमें बता रहा हूँ, पर साथ ही आपको शपथ लेनेकी प्रेरणा भी दे रहा हूँ। इसमें मेरी अपनी जिम्मेदारी कितनी है, इसे मैं पूरे तौरपर समझता हूँ। यह भी संभव है कि आजके जोश या गुस्से में आकर सभामें उपस्थित लोगोंका बड़ा भाग प्रतिज्ञा कर ले, पर संकटके समय कमजोर साबित हो, और मुट्ठीभर लोग ही अन्तिम ताप सहन करनेके लिए बच जायें। फिर भी मुझ-जैसे आदमीके लिए तो एक ही रास्ता होगा; मर मिटना, पर इस कानूनके आगे सिर न झुकाना। मैं तो मानता हूँ कि फर्ज करो ऐसा हो — ऐसा होनेकी सम्भावना तो बिलकुल नहीं है, फिर भी फर्ज कर लें कि सब गिर गये और मैं अकेला ही रह गया, तो भी मेरा विश्वास है कि प्रतिज्ञाका भंग मुझसे हो ही नहीं सकता। इस कथनका तात्पर्य आप समझ लें। यह घमण्डकी बात नहीं, बल्कि खास तौरसे इस मंचपर बैठे हुए नेताओंको सावधान करनेकी बात है। अपनी मिसाल लेकर मैं नेताओंसे विनयपूर्वक कहना चाहता हूँ कि अकेला रह जानेपर भी दृढ़ रहनेका निश्चय या वैसा करनेकी शक्ति न हो, तो इतना ही नहीं कि आप प्रतिज्ञा न करें, बल्कि लोगोंके सामने अपना विरोध जाहिर कर दें और आप अपनी सम्मति यहाँ न दें। यह प्रतिज्ञा यद्यपि हम सब साथ मिलकर करना चाहते हैं फिर भी कोई इसका यह अर्थ कदापि न करें कि एक या अनेक व्यक्ति अपनी प्रतिज्ञा तोड़ दें, तो दूसरे सहज ही बन्धन-मुक्त हो सकते हैं। हरएक अपनी-अपनी जिम्मेदारीको पूरी तरहसे समझकर स्वतन्त्ररूपसे प्रतिज्ञा करे, और यह समझकर करे कि दूसरे कुछ भी करें, मैं खुद तो मरते दमतक उसका पालन करूँगा ही।"[१]

१. देखिए खण्ड ५, पृष्ठ ४३०-३३।

मैं इतना कहकर बैठ गया। लोगोंने अत्यन्त शान्तिपूर्वक एक-एक शब्द सुना। दूसरे नेता भी बोले। सभीने अपनी जिम्मेदारी और श्रोताओंकी जिम्मेदारीका विवेचन किया। फिर सभापति उठे। उन्होंने भी प्रस्तावको समझाया और तब अन्तमें पूरी सभाने खड़े होकर, हाथ ऊँचे करके और ईश्वरको साक्षी मानकर कानून पास हो जाये तो उसको न माननेकी प्रतिज्ञा की। इस दृश्यको मैं तो कभी भूल नहीं सकता। लोगोंमें अपार उत्साह था। दूसरे दिन इस नाटयशालामें कोई दुर्घटना हुई और पूरा भवन जलकर राख हो गया। मुझे लोगोंने यह खबर उसके एक दिन बाद सुनाई और नाटयशालाके भस्म होनेको शुभ शकुन बताकर हिन्दुस्तानी समाजको बधाई दी। उन्होंने कहा कि यह कानून भी नाटयशालाकी तरह भस्म होकर रहेगा। ऐसे शकुनों और अपशकुनोंका मेरे ऊपर कभी कोई प्रभाव नहीं हुआ, इसलिए मैंने उसे कोई महत्त्व नहीं दिया। यहाँ मैंने इस बातका उल्लेख लोगोंकी उस समयके उत्साह और भावना बतानेके उद्देश्यसे ही किया है। इन दोनों बातोंके दूसरे बहुतसे प्रमाण पाठक अगले प्रकरणोंमें देखेंगे।

इस जबर्दस्त सभाके होनेके बाद कार्यकर्त्ता काममें जुट गये। उन्होंने जगह-जगह सभाएँ कीं और उनमें सर्वत्र सबकी अनुमतिसे प्रतिज्ञा कराई। अब 'इंडियन ओपिनियन' में मुख्यतः इस खूनी कानूनकी ही चर्चा रहती थी।

दूसरी ओर स्थानीय सरकारसे मिलनेकी कार्रवाई भी की गई। उपनिवेश विभागके मन्त्री श्री डंकनसे एक शिष्टमण्डल मिला।[१] उसने उनको समाजकी प्रतिज्ञासे अवगत किया। इस शिष्टमण्डलमें सेठ हाजी हबीब भी थे। उन्होंने कहा, "यदि कोई अधिकारी मेरी स्त्रीकी अँगुलियोंकी निशानी लेने आयेगा तो मैं अपने गुस्सेपर काबू नहीं रख सकूँगा। मैं उसे गोली मार दूँगा और स्वयं अपनेको गोली मारकर मर जाऊँगा।" मन्त्रीने एक क्षण हाजी हबीबके मुखकी ओर देखा और फिर कहा, "सरकार इस कानूनको स्त्रियोंपर लागू करने या न करनेके सम्बन्धमें विचार कर रही है। मैं इतना विश्वास तो तत्काल ही दिला सकता हूँ कि कानूनमें से स्त्रियोंसे सम्बन्धित धाराएँ निकाल दी जायेंगी। सरकार इस सम्बन्धमें आपके मनोभावोंको समझ सकती है और वह उनका आदर करना चाहती है। किन्तु दूसरी धाराओंके सम्बन्धमें तो मुझे खेदपूर्वक यही कहना पड़ेगा कि सरकार दूसरी धाराओंपर दृढ़ है और दृढ़ रहेगी। जनरल बोथा चाहते हैं कि आप लोग भली-भाँति विचार करके इस कानूनको मंजूर कर लें। इसे सरकार गोरोंके अस्तित्वकी रक्षाके लिए आवश्यक समझती है। यदि कानूनके उद्देश्यकी रक्षा करते हुए आप लोग उसके ब्यौरेकी बातोंके सम्बन्धमें कोई सुझाव देना चाहें तो सरकार उसपर अवश्य ध्यान देगी। मैं शिष्टमण्डलको यह सलाह देता हूँ कि आप लोग कानूनको मंजूर कर लें और उसकी ब्यौरेकी बातोंके बारेमें ही सुझाव दें। आप लोगोंका हित इसीमें है।" मैं यहाँ मन्त्रीके सम्मुख दिये हुए तर्कोंका उल्लेख नहीं करता क्योंकि इन सबका हम पहले उल्लेख कर चुके हैं। मन्त्रीके सम्मुख दलीलें तो वही रखी गई थीं; अलबत्ता शब्दोंमें अन्तर अवश्य था। शिष्टमण्डलने मन्त्री महोदयको बताया कि

१. देखिए खण्ड ५, ४२०-२१।

उनकी सलाहके बावजूद कोई भी भारतीय इस कानूनको मंजूर नहीं कर सकता और उसने स्त्रियोंको कानूनसे मुक्त रखनेके विचारके कारण सरकारका आभार माना और वहाँसे चला आया। कानूनसे स्त्रियोंकी मुक्ति कौमके आन्दोलनके कारण हुई अथवा विचार करनेके बाद श्री कर्टिसकी शास्त्रीय पद्धतिको अमान्य करते हुए लोक-व्यवहारके ख्यालसे स्वयं सरकारने उन्हें मुक्त किया, यह कहना कठिन है। सरकारी पक्षका यह दावा था कि इसका कारण कौमका आन्दोलन नहीं बल्कि सरकारका स्वतन्त्र रूपसे किया गया निश्चय है। कुछ भी हो, किन्तु काकतालीय न्यायसे कौमने तो यह मान ही लिया था कि इसका कारण केवल उसके आन्दोलनका प्रभाव ही है; इसलिए उससे हिन्दुस्तानियोंका लड़नेका उत्साह और बढ़ गया।

उस समयतक हम लोगोंमें से कोई यह नहीं जानता था कि कौमके इस विचार अथवा आन्दोलनको क्या नाम दिया जा सकता है। मैंने उस समय इस अन्दोलन-का परिचय 'पैसिव रेजिस्टेंस' (निष्क्रिय प्रतिरोध) नाम से दिया। मैं उस समय 'पैसिव रेजिस्टेन्स' का मर्म भी पूरी तरह नहीं जानता या समझता था। मेरी समझ-में तो इतना ही आया था कि यह किसी नई वस्तुका जन्म हुआ है। लड़ाई ज्यों-ज्यों आगे बढ़ती गई त्यों-त्यों पैसिव रेजिस्टेन्स' नामके कारण उलझन बढ़ती गई और इस महान् युद्धका परिचय इस अंग्रेजी नामसे देनेमें मुझे लज्जा आने लगी। फिर यह शब्द ऐसा था कि कौमकी जबानपर चढ़ भी नहीं सकता था। इसलिए मैंने 'इंडियन ओपिनियन' में इसके लिए सबसे अच्छा नाम खोजनेवाले मनुष्यको एक छोटा-सा इनाम देनेकी घोषणा[1] की। इसपर कुछ नाम आये। 'इंडियन ओपिनियन' में इस लड़ाईके मर्मका विश्लेषण तबतक भली-भाँति किया जा चुका था। इसलिए स्पर्धामें हिस्सा लेनेवाले लोगोंके सम्मुख पूरी सामग्री मौजूद थी, ऐसा कहा जा सकता है। इस होड़-में मगनलाल गांधीने भी हिस्सा लिया था। उन्होंने 'सदाग्रह' नाम भेजा था और इस शब्दको चुननेका कारण बताते हुए लिखा था कि कौमका यह आन्दोलन एक बड़ा आग्रह है और यह आग्रह सद् अर्थात् शुभ है, इसीलिए मैंने यह नाम चुना है। मैंने उनके तर्कका सार संक्षेपमें दिया है। मुझे यह नाम पसन्द आया; फिर भी मैं उसमें जिस अर्थका समावेश करना चाहता था वह उसमें नहीं आ पाया था। इसलिए मैंने 'द्' का 'त्' बनाकर उसमें 'य' जोड़ा और 'सत्याग्रह' नाम बनाया। मैंने 'सत्य' में शांतिको निहित माना। किसी भी वस्तुका आग्रह रखनेसे बल उत्पन्न होता है, मैंने इसीलिए आग्रहमें बलका समावेश माना। इस प्रकार हिन्दुस्तानियोंका यह आन्दोलन सत्याग्रह अर्थात् सत्य और शान्तिसे उत्पन्न बलके नामसे पहचाना जाने लगा। तभीसे इस आन्दोलनके सम्बन्धमें 'पैसिव रजिस्टेन्स' शब्दोंका प्रयोग बन्द हुआ। यहाँतक की अंग्रेजी लेखोंमें भी प्राय: 'पैसिव रेजिस्टेन्स' का प्रयोग छोड़कर 'सत्याग्रह' का अथवा किसी दूसरे अंग्रेजी शब्दका प्रयोग करना आरम्भ कर दिया। इस प्रकार जो वस्तु सत्याग्रहके नामसे प्रसिद्ध हो रही थी, उसका और 'सत्याग्रह' नामका जन्म हुआ। 'पैसिव रेजिस्टेन्स' और 'सत्याग्रह' का भेद इस इतिहासको आगे प्रस्तुत

१. देखिए खण्ड ७, पृष्ठ ४५१ तथा खण्ड ८, पृष्ठ १२६-२७।

करनेसे पहले ही समझ लेना आवश्यक है। इसलिए अगले प्रकरणमें हम इसी भेदका विवेचन करेंगे।

अध्याय १३

सत्याग्रह बनाम अनाक्रामक प्रतिरोध

आन्दोलन ज्यों-ज्यों आगे बढ़ता गया त्यों-त्यों उसमें अंग्रेज भी ज्यादा दिलचस्पी लेने लगे। मुझे इतना कह देना चाहिए कि यद्यपि ट्रान्सवालमें अंग्रेजीके अखबारोंमें प्रायः खूनी कानूनके पक्षमें ही लेख लिखे जाते थे और गोरोंके भारतीय विरोधका समर्थन किया जाता था फिर भी यदि कोई प्रसिद्ध हिन्दुस्तानी इन अखबारोंमें कोई लेख भेजता तो वे उसे प्रसन्नतापूर्वक प्रकाशित कर देते थे। हिन्दुस्तानियोंकी ओरसे सरकारको जो प्रार्थनापत्र भेजे जाते थे उनको भी वे या तो पूरा प्रकाशित कर देते थे या उनका सार दे देते थे। जो बड़ी-बड़ी सभाएँ की जाती थीं उनमें भी प्रायः ये पत्र अपने संवाददाताओंको भेजते थे और यदि ऐसा नहीं कर पाते थे तो हमारी भेजी हुई खबरोंको संक्षेपमें छाप देते थे।

उनका इस प्रकारका सौजन्य हिन्दुस्तानी समाजके लिए बहुत उपयोगी सिद्ध हुआ और आन्दोलन बढ़नेके साथ-साथ कुछ गोरे भी उसमें दिलचस्पी लेने लगे। ऐसे प्रमुख गोरोंमें जोहानिसवर्गके एक लखपति श्री हॉस्केन भी थे। उनमें रंग-द्वेषकी भावना तो पहलेसे ही नहीं थी; किन्तु आन्दोलन आरम्भ होनेपर उन्होंने हिन्दुस्तानियोंके प्रश्नमें अधिक दिलचस्पी ली। जर्मिस्टन कस्बेमें जिसे जोहानिसवर्गका उपनगर कह सकते हैं, गोरोंने मेरे विचार सुननेकी इच्छा प्रकट की। अतः एक सभा बुलाई गई। उसकी अध्यक्षता श्री हॉस्केनने की और मैंने उसमें भाषण दिया। इस सभामें श्री हॉस्केन-ने आन्दोलनका और मेरा परिचय देते हुए कहा, "ट्रान्सवालके हिन्दुस्तानियोंने न्याय प्राप्तिके अन्य उपाय निष्फल होनेपर 'पैसिव रेजिस्टेन्स' (अनाक्रामक प्रतिरोध) का मार्ग अपनाया है। उनको मत देनेका अधिकार प्राप्त नहीं है। उनका संख्या-बल कम है। वे कमजोर हैं और उनके पास हथियार नहीं हैं। इसलिए उन्होंने कमजोरोंका हथियार (अनाक्रामक प्रतिरोध) काममें लिया है।" यह बात सुनकर मुझे आश्चर्य हुआ और मैं अपने भाषणमें जो-कुछ कहनेवाला था उसे न कहकर मैंने श्री हॉस्केनके कथनका विरोध करते हुए अपने अनाक्रामक प्रतिरोधको कमजोरी न मानकर आत्मबल कहा।[१] इस सभामें यह बात मेरे सामने स्पष्ट हो गई कि अनाक्रामक प्रतिरोध शब्दोंके प्रयोग-से भयंकर भ्रम फैलनेकी सम्भावना है। मैं सभामें दिये हुए अपने तर्कों और अन्य आवश्यक विशेष तर्कोंको मिलाकर इन दोनों शब्द समुदायोंके अर्थसे अपना विरोध समझानेका प्रयत्न करूँगा।

"पैसिव रेजिस्टेन्स" शब्दोंका प्रयोग अंग्रेजी भाषामें सबसे पहले कब किया गया अथवा किसने किया इसका ध्यान तो मुझे नहीं है; किन्तु इस पद्धतिका

१. भाषणका पाठ उपलब्ध नहीं है; देखिए खण्ड ९, पृष्ठ २४२-४४।

प्रयोग अंग्रेज लोगोंके छोटे-छोटे समाजोंने किसी कानूनके पसन्द न आनेपर समय-समयपर किया है। उन्होंने ऐसे कानूनके विरुद्ध विद्रोह करनेके बजाय कोई हलका कदम उठाकर उसका प्रतिरोध किया और उसके फलस्वरूप जो दण्ड दिया गया उसको भोगना पसन्द किया। कुछ वर्ष पूर्व जब ब्रिटिश संसदमें शिक्षा-सम्बन्धी कानून स्वीकार किया गया तब नॉन-कनफॉमिस्ट नामक ईसाई दलने डॉ० क्लिफर्डके नेतृत्वमें अनाक्रामक प्रतिरोधका मार्ग अपनाया था। इंग्लैंडकी स्त्रियोंने मताधिकार प्राप्त करनेके लिए जो भारी आन्दोलन चलाया था वह भी पैसिव रेजिस्टेन्स कहा जाता था। इन्हीं बातोंको ध्यानमें रखकर श्री हॉस्केनने यह कहा था कि अनाक्रामक निष्क्रिय प्रतिरोध कमजोरोंका अथवा मताधिकारहीन लोगोंका शस्त्र है। डॉ० क्लिफर्डके दलको मताधिकार प्राप्त था, किन्तु लोकसभामें उसके सदस्योंकी संख्या कम थी, इसलिए वह अपने मतके बलसे शिक्षा सम्बन्धी उक्त कानूनको स्वीकृत होनेसे न रोक सका। वह अपने कार्यकी सिद्धिके लिए शस्त्रका प्रयोग नहीं कर सकता था ऐसी कोई बात नहीं थी। किन्तु वह इसके लिए शस्त्रका प्रयोग करता तो सफल नहीं हो सकता था। फिर जब चाहे तब अकस्मात विद्रोह करके अधिकार प्राप्त करनेकी विधि व्यवस्थित राज्यतन्त्रमें चल नहीं सकती। इसके अतिरिक्त डॉ० क्लिफर्डके दलके कुछ ईसाई सदस्य शस्त्रका प्रयोग सामान्यतः सम्भव होनेपर भी उसका विरोध करते थे; और जिन स्त्रियोंने आन्दोलन किया उनको अवश्य ही मताधिकर प्राप्त नहीं था। वे संख्या-बल और शरीर-बल दोनोंमें कमजोर थीं; अतः यह उदाहरण भी श्री हॉस्केनके तर्कका पोषक ही था। उनके आन्दोलनमें शस्त्रका प्रयोग वर्जित नहीं था। उनके एक पक्षने मकान जलाये और पुरुषोंपर हमला किया। उन्होंने कभी किसीकी हत्या करनेका विचार किया हो यह तो मुझे मालूम नहीं है, किन्तु अवसर आनेपर मारपीट करना और लोगोंको परेशान करना उनकी एक पद्धति अवश्य थी।

किन्तु हिन्दुस्तानियोंके आन्दोलनमें शस्त्रके लिए तो कहीं भी और किन्हीं भी परिस्थितियोंमें अवकाश नहीं था। पाठक ज्यों-ज्यों आगे बढ़ेंगे, त्यों-त्यों देखेंगे कि सत्याग्रहियोंने भारीसे-भारी संकट आनेपर भी शरीर-बलका प्रयोग नहीं किया और ऐसी अवस्थामें भी नहीं किया जब उनमें सफलतापूर्वक उसका प्रयोग करनेका सामर्थ्य था। फिर हिन्दुस्तानी कौमको मताधिकार प्राप्त नहीं था और वह दुर्बल थी, ये दोनों बातें सच होनेपर भी आन्दोलनकी योजनासे इन बातोंका कोई सम्बन्ध नहीं था। मेरे इस कथनका आशय यह नहीं है कि यदि हिन्दुस्तानियोंको मताधिकार प्राप्त होता अथवा उनको शस्त्रबल प्राप्त होता तो भी वे सत्याग्रह करते। मताधिकारका बल प्राप्त हो तो प्रायः सत्याग्रहके लिए अवकाश नहीं होता। यदि शस्त्रबल प्राप्त हो तो विरोधी पक्ष अवश्य ही सचेत होकर चलता है। अतएव यह बात भी समझमें आती है कि शस्त्र-बलधारीके लिए सत्याग्रह करनेका अवसर ही कठिनाईसे आ सकता है। मेरे उक्त कथनका तात्पर्य इतना ही है कि हिन्दुस्तानियोंके आन्दोलनकी कल्पनामें शस्त्रबलकी शक्यता अथवा अशक्यताकी बात मेरे मनमें उठी ही नहीं थी; यह मैं निश्चयपूर्वक कह सकता हूँ। सत्याग्रह केवल आत्माका बल है, इसलिए जहाँ और जितने अंशमें

शस्त्रबल अर्थात् शरीरबल अथवा पशुबलका प्रयोग हो सकता हो अथवा उसकी कल्पना की जा सकती हो, वहाँ और उतने अंशमें आत्मबलका प्रयोग कम हो जाता है। मेरे मतसे ये दोनों परस्पर विरोधी शक्तियाँ हैं और यह विचार आन्दोलनके जन्म-कालमें ही मेरे हृदयमें पूरी तरह पैठ गया था।

किन्तु यहाँ यह विचार उचित है अथवा अनुचित इसका निर्णय नहीं करना है, हमें तो केवल अनाक्रामक प्रतिरोध और सत्याग्रहका अन्तर ही समझना है। हम देख चुके हैं कि मूलतः इन दोनों शक्तियोंमें बहुत बड़ा अन्तर है। इसलिए जो मनुष्य इस अन्तरको समझे बिना अपनेको पैसिव रेजिस्टर (अनाक्रामक प्रतिरोधी) अथवा सत्याग्रही मानता है और दोनोंको एक ही वस्तु समझता है, वह दोनोंके प्रति अन्याय करता है और इससे परिणामतः हानि ही होगी। हम स्वयं भी दक्षिण आफ्रिकामें पैसिव रेजिस्टेन्स (अनाक्रामक प्रतिरोध) शब्दोंका प्रयोग करते थे। इससे लोग हमें मताधिकारके लिए संघर्ष करनेवाली स्त्रियोंकी भाँति निर्भीक और त्यागी होनेका गौरव तो कम ही देते थे; अलबत्ता वे प्रायः हमें उन स्त्रियोंकी तरह जान और मालका नुकसान करनेवाला समझते थे। श्री हॉस्केन-जैसे उदार और शुद्ध हृदयके मित्रने भी हमें दुर्बल मान लिया था। विचारमें ऐसी शक्ति होती है कि मनुष्य अपने-आपको जैसा मानता है अन्तमें वैसा ही हो जाता है। यदि हम यह मानते रहें और दूसरोंसे भी कहते रहें कि हम निर्बल हैं और इस कारण विवश होकर अनाक्रामक प्रतिरोधका प्रयोग करते हैं तो हम अनाक्रामक प्रतिरोध करते हुए कभी शक्तिमान नहीं हो सकते और अगर किसी प्रकार शक्तिसम्पन्न हो गये तो अवसर मिलते ही निर्बलोंके इस शस्त्रको छोड़ बैठेंगे। इसके विपरीत यदि हम सत्याग्रही बनते हैं और अपने आपको सबल समझकर इस शक्तिका प्रयोग करते हैं तो उसके स्पष्ट दो परिणाम होते हैं। हम शक्तिके विचारका पोषण करते हुए दिन-प्रतिदिन शक्तिमान बनते जाते हैं और ज्यों-ज्यों हमारी शक्ति बढ़ती जाती है त्यों-त्यों सत्याग्रहका तेज बढ़ता जाता है और हम कभी इस शक्तिको त्यागनेका प्रसंग तो खोजेंगे ही नहीं। फिर अनाक्रामक प्रतिरोधमें प्रेमभावके लिए अवकाश नहीं होता, जबकि सत्याग्रहमें वैरभावके लिए कोई अवकाश नहीं होता, इतना ही नहीं बल्कि उसमें वैर-भाव अधर्म होता है। अनाक्रामक प्रतिरोधमें अवसर मिले तो शस्त्र-बलका प्रयोग किया जा सकता है; सत्याग्रहमें शस्त्रके प्रयोगका चाहे जितना अनुकूल अवसर प्राप्त हो जाये तो भी उसका प्रयोग त्याज्य ही है। अनाक्रामक प्रतिरोध प्रायः शस्त्रबलकी तैयारीकी दिशामें एक कदम माना जाता है। सत्याग्रहका प्रयोग इस ढंगसे नहीं किया जा सकता। अनाक्रामक प्रतिरोध शस्त्र बलके साथ-साथ चल सकता है। सत्याग्रह और शस्त्रबल परस्पर विरोधी और विसंगत हैं, इस कारण दोनों साथ-साथ कदापि नहीं निभ सकते। सत्याग्रहका प्रयोग अपने प्रियजनोंके विरुद्ध भी किया जा सकता है और किया जाता है। अनाक्रामक प्रतिरोधका प्रयोग असलमें प्रियजनोंके विरुद्ध किया ही नहीं जा सकता अर्थात् प्रियजनोंको अपना वैरी मानें तभी उनके विरुद्ध अनाक्रामक प्रतिरोधका प्रयोग किया जा सकता है। अनाक्रामक प्रतिरोधमें विरोधी पक्षको कष्ट देने और सतानेकी कल्पना सदा मौजूद

रहती है और विरोधी पक्षको कष्ट देते हुए स्वयं जो कष्ट सहना पड़ता है उसको सहनेकी तैयारी होती है। इसके विपरीत सत्याग्रहमें विरोधीको कष्ट देनेका विचार भी नहीं आना चाहिए। उसमें तो स्वयं कष्ट सहकर ही विरोधीको वशमें करनेका विचार किया जाना चाहिए।

इन दोनों शक्तियोंका मुख्य अन्तर यही है। मैंने अनाक्रामक प्रतिरोधके गुण-दोष भी सूचित कर दिये हैं। मेरे कहनेका यह मतलब नहीं है कि वे सभी गुण-दोष हर अनाक्रामक प्रतिरोध आन्दोलनमें दिखाई देते हैं; इसका इतना अर्थ अवश्य है कि ये दोष अनाक्रामक प्रतिरोधके बहुतसे उदाहरणोंमें दिखाई देते हैं। मुझे पाठकोंको यह भी बता देना चाहिए कि बहुतसे ईसाई ईसाको अनाक्रामक प्रतिरोधका आदि नेता मानते हैं। किन्तु उस प्रसंगमें अनाक्रामक प्रतिरोधका अर्थ शुद्ध सत्याग्रह ही मानना चाहिए। इतिहासमें वैसे अनाक्रामक प्रतिरोधके उदाहरण अधिक दिखाई नहीं देते। टॉल्स्टॉयने रूसके दुखोबर लोगोंका जो उदाहरण दिया है, वह ऐसे ही अनाक्रामक प्रतिरोध अथवा सत्याग्रहका उदाहरण है। जब ईसाकी मृत्युके बाद हजारों ईसाइयोंने अत्याचार सहन किये तब अनाक्रामक प्रतिरोध शब्दोंका प्रयोग किया ही नहीं जाता था। इसलिए उन जैसे जितने शुद्ध उदाहरण मिलते हैं, मैं तो उनको सत्याग्रहके उदाहरणोंके रूपमें ही मानता हूँ। यदि हम इन्हें अनाक्रामक प्रतिरोधके उदाहरणोंके रूपमें मानें तो अनाक्रामक प्रतिरोध और सत्याग्रहमें कोई अन्तर नहीं रहता। इस प्रकरणका हेतु तो यह बताना था कि अंग्रेजी भाषामें सामान्यत: पैसिव रेजिस्टेंस (अनाक्रामक प्रतिरोध) शब्दोंका जैसा प्रयोग किया जाता है उससे सत्याग्रहकी कल्पना बिलकुल भिन्न है।

मैंने ऊपर जो चेतावनी अनाक्रामक प्रतिरोधके लक्षण बताते हुए दी है उसका हेतु यह है कि इस शक्तिका प्रयोग करनेवाले मनुष्यके प्रति किसी तरहका अन्याय न हो। उसी तरह सत्याग्रहके गुण बताते हुए यह कह देना जरूरी है कि जो लोग अपने आपको सत्याग्रही कहते हैं मैं उनकी ओरसे इन सब गुणोंका दावा नहीं करता। मैं जानता हूँ कि बहुतसे सत्याग्रही मेरे बताये हुए सत्याग्रहके गुणोंसे बिलकुल बेखबर हैं। बहुतसे यह मानते हैं कि सत्याग्रह निर्बलोंका शस्त्र है। मैंने बहुतोंके मुँहसे यह भी सुना है कि सत्याग्रहका हेतु शस्त्रबलकी तैयारी है। किन्तु मैं यह बात फिर कह देना चाहता हूँ कि सत्याग्रह करनेवाले लोगोंमें कैसे गुण-दोष देखनेमें आये, मैंने यह बात नहीं बताई है, बल्कि सत्याग्रहकी कल्पनामें क्या-क्या बातें निहित हैं और उसके अनुसार सत्याग्रहीको कैसा होना चाहिए, मैंने यही बतानेका प्रयत्न किया है।

संक्षेपमें इस प्रकरणको लिखनेका हेतु यह है कि हिन्दुस्तानियोंने ट्रान्सवालमें जिस शक्तिका प्रयोग आरम्भ किया था उसका ठीक स्वरूप समझमें आ जाये, लोग 'पैसिव रेजिस्टेंस' (अनाक्रामक प्रतिरोध) नामकी वस्तुसे उसको अलग करके देख सकें, इसी उद्देश्यसे इस शक्तिके अर्थके बोधक एक शब्दकी खोज भी करनी पड़ी थी। इसका हेतु यह बताना भी है कि उस समय इसके अन्तर्गत किन बातोंका समावेश माना जाता था।[1]

१. सत्याग्रहकी विस्तृत विवेचनाके लिए देखिए खण्ड १०, पृष्ठ ४६-५२।

अध्याय १४

इंग्लैंडको शिष्टमण्डल

ट्रान्सवालमें खूनी कानूनके विरुद्ध प्रार्थनापत्र आदिके जो-जो कदम उठाने जरूरी थे वे सब उठाये जा चुके थे। किन्तु फिर भी विधानसभाने धारा विधेयकमें से स्त्रियोंसे सम्बन्धित अंश निकालकर शेष विधेयक लगभग जैसा प्रकाशित किया गया था वैसा ही स्वीकृत कर दिया। उस समय तो भारतीय समाजमें उत्साह बहुत था और ऐक्य और मतैक्य भी बहुत था; इसलिए कोई निराश नहीं हुआ और हम लोग भी इसी निश्चयपर कायम रहे कि कानूनके मुताबिक जो कदम उठाये जा सकते हों, वे उठाये जायें। उस समय ट्रान्सवाल 'शाही उपनिवेश' अर्थात् ऐसा उपनिवेश था जिसके कानून और शासन आदिकी जिम्मेदार साम्राज्य सरकार थी। इसलिए शाही उपनिवेशकी विधानसभा जिस कानूनको मंजूर करे उसपर सम्राट्की सम्मति ली जाती है। यह केवल व्यवहार और सौजन्य निभानेके लिए ही नहीं होता बल्कि यदि सम्राट् अपने मन्त्रिमण्डलकी सलाहसे किसी कानूनको ब्रिटिश विधानके सिद्धान्तके विरुद्ध समझे तो वह उसपर अपनी सम्मति देनेसे इनकार भी कर सकता है। इस प्रकारके अवसर बहुत बार आये हैं। इसके विपरीत जिन उपनिवेशोंको उत्तरदायी शासन दे दिया जाता है उनकी विधानसभाओंके बनाये हुए कानूनोंपर सम्राट्की सम्मति मुख्यतः केवल शिष्टाचारके रूपमें ही ली जाती है।

लोगोंको यह बात समझायी जानी थी कि यदि इंग्लैंडको शिष्टमण्डल भेजा जाये तो कौमको अपनी जिम्मेदारीसे ज्यादा अच्छी तरह आगाह हो जाना चाहिए। यह समझानेकी जिम्मेदारी मुझपर ही थी; इसलिए मैंने अपनी संस्थाके सम्मुख तीन सुझाव रखे। इनमें एक सुझाव तो यह था कि यद्यपि हम पहले यहूदी नाट्यशाला एम्पायर थियेटरमें की गई सभामें प्रतिज्ञा[1] ले चुके हैं फिर भी हमें मुख्य-मुख्य हिन्दुस्तानियोंसे व्यक्तिगत रूपसे फिर प्रतिज्ञा करानी चाहिए, जिससे यदि उन लोगोंमें इस समयतक किसी भी प्रकारकी शंका या निर्बलता आ गई हो तो उसका पता चल जाये। इस सुझावके समर्थनमें मैंने एक तर्क यह दिया था कि यदि शिष्टमण्डलके पीछे सत्याग्रहकी तैयारीका बल होगा तो वह निर्भय होकर इंग्लैंड जायेगा और वहाँ उपनिवेश-मन्त्री और भारत-मन्त्रीके सम्मुख कौमके निश्चयको निर्भय होकर रख भी सकेगा। मेरा दूसरा सुझाव यह था कि हमें शिष्टमण्डलके लिए खर्चेका पूरा इन्तजाम पहले ही कर लेना चाहिए। मैंने तीसरी बात यह कही कि शिष्टमण्डलमें कमसे-कम लोग जाने चाहिए। बहुत बार लोगोंका खयाल यह देखा जाता है कि यदि अधिक मनुष्य जायेंगे तो अधिक काम हो सकेगा। मैंने इसी खयालको ध्यानमें रखकर यह सुझाव दिया था। इस सुझावके मूलमें एक व्यावहारिक दृष्टि यह थी कि लोगोंको यह समझ लेना ठीक होगा कि शिष्टमण्डलमें जाना किसी सम्मान आदिकी दृष्टिसे

१. ११ सितम्बर १९०६ को; देखिए खण्ड ५, पृष्ठ ४३०-३४। सभाकी कार्यवाहीके विवरणके लिए देखिए पृष्ठ ४५१-५६।

न होकर सेवाकी दृष्टिसे होना चाहिए और खर्चमें भी कमी करनी थी। मेरे ये तीनों सुझाव स्वीकार कर लिये गये। लोगोंसे प्रतिज्ञापर हस्ताक्षर कराये गये। बहुतोंने हस्ताक्षर किये। किन्तु मैंने यह स्पष्ट देखा कि जिन लोगोंने सभामें प्रतिज्ञा ली थी उनमें से भी कुछ-एक हस्ताक्षर देनेमें संकोच कर रहे थे। एक बार प्रतिज्ञा लेनेके बाद उसको पचास बार दोहरानेमें भी संकोच नहीं होना चाहिए। तिसपर भी यह अनुभव किसे नहीं हुआ होगा कि लोग विचारपूर्वक प्रतिज्ञा लेनेके बाद भी उसके सम्बन्धमें कमजोर पड़ जाते हैं अथवा मौखिक रूपसे ली गई प्रतिज्ञाको लिखित रूप देते हुए आगा-पीछा करने लगते हैं? खर्चके लिए जितने पैसेका अन्दाज किया था उतना इकट्ठा हो गया। सबसे अधिक कठिनाई प्रतिनिधि चुननेमें आई।[1] प्रतिनिधियोंमें मेरा नाम तो था ही। किन्तु मेरे साथ कौन जाये, यह तय करनेमें समितिने बहुत वक्त लिया। इसे सोचनेके लिए कई बैठकें हुईं और सभा-समितियोंमें जो-जो बुराइयाँ दिखाई देती हैं उनका पूरा-पूरा अनुभव हुआ। कोई कहता था, 'यदि आप अकेले जायेंगे तो सबका समाधान हो जायेगा।' किन्तु मैंने इस बातको माननेसे बिलकुल ही इनकार कर दिया। सामान्यतः यह कहा जा सकता है कि दक्षिण आफ्रिकामें हिन्दू-मुस्लिम समस्या थी ही नहीं। किन्तु दोनों जातियोंके मनोंमें तनिक भी अन्तर नहीं था, यह बात दावेसे नहीं कही जा सकती। उनके मनोंका यह अन्तर कभी विषाक्त रूपमें प्रकट नहीं हुआ, इसका कारण कुछ हदतक दक्षिण आफ्रिकाकी विचित्र स्थितियाँ भले ही रही हों, किन्तु इसका वास्तविक और निश्चित कारण तो यह था कि नेतागण एकनिष्ठ होकर और शुद्ध हृदयसे अपने कर्त्तव्यका पालन करते और कौमको रास्ता दिखाते थे। मेरी सलाह यह थी कि मेरे साथ एक मुसलमान सज्जन अवश्य हों और दोसे अधिक प्रतिनिधियोंकी आवश्यकता नहीं है। किन्तु हिन्दुओंकी ओरसे तुरन्त ही यह कहा गया कि आप तो पूरे समाजके प्रतिनिधि माने जाते हैं, इसलिए शिष्टमण्डलमें हिन्दुओंका भी एक प्रतिनिधि होना चाहिए। साथ ही कुछने यह भी कहा कि एक प्रतिनिधि कोंकणी मुसलमानोंका, एक मेमनोंका, एक पाटीदारोंका और एक अनाविलोंका होना चाहिए। इस प्रकार अनेक जातियोंकी ओरसे दावे किये गये; किन्तु अन्तमें सबने समझसे काम लिया और सर्वसम्मतिसे दो ही प्रतिनिधि श्री हाजी वजीर अली और मैं चुने गये।

हाजी वजीर अली आधे मलायी माने जा सकते थे। उनके पिता हिन्दुस्तानी और माता मलायी थीं।[2] उनकी मातृभाषा डच कही जा सकती थी; किन्तु उन्होंने अंग्रेजी भी इतनी पढ़ ली थी कि वे डच और अंग्रेजी दोनों भाषाएँ भली-भाँति बोल सकते थे। उन्हें अंग्रेजीमें भाषण देनेमें कहीं भी रुकना नहीं पड़ता था। उन्होंने अखबारोंको पत्र लिखनेका अभ्यास भी कर लिया था। वे ट्रान्सवाल ब्रिटिश भारतीय संघके सदस्य थे और बहुत दिनोंसे सार्वजनिक कार्योंमें भाग लेते आये थे। वे हिन्दुस्तानी भी धाराप्रवाह बोल सकते थे।

१. देखिए खण्ड ५, पृष्ठ ४५९।

२. मूल गुजरातीमें यहाँ यह वाक्य हैं: उन्होंने एक मलायी महिलासे विवाह किया था और उससे उनके कई बच्चे हुए।

हम दोनों इंग्लैंड पहुँचते ही तुरन्त काममें लग गये।[1] हमने मन्त्रीको दिया जानेवाला प्रार्थनापत्र[2] जहाजमें ही लिख लिया था। हमने उसे इंग्लैंडमें छपवा डाला। उस समय लॉर्ड एलगिन उपनिवेश-मन्त्री थे और लॉर्ड मॉर्ले भारत-मन्त्री। हम वहाँ भारतके पितामह दादाभाई नौरोजीसे भी मिले। हमने उनकी मारफत भारतीय कांग्रेसकी ब्रिटिश समितिसे सम्पर्क किया, उसके सम्मुख अपना मामला रखा और उसको बताया कि हम सभी दलोंको साथ रखते हुए काम करना चाहते हैं। दादाभाईकी सलाह तो यह थी ही; समितिको भी यही उचित लगा। हम इसी तरह सर मंचरजी भावनगरीसे मिले। उन्होंने हमें बहुत सहायता दी। उनकी और दादाभाई — दोनोंकी सलाह यह थी कि लॉर्ड एलगिनके पास जो शिष्टमण्डल जाये उसमें कोई तटस्थ और भारतमें रहे हुए प्रख्यात अंग्रेज सज्जन नेतृत्व करनेके लिए मिल जायें तो अच्छा होगा। सर मंचरजीने कुछ नाम भी सुझाये थे। उनमें एक नाम सर लेपेल ग्रिफिनका था। पाठकोंको यह बता देना चाहिए कि उस समय सर विलियम विल्सन हंटर गुजर चुके थे। यदि वे जीवित होते तो दक्षिण आफ्रिकाके हिन्दुस्तानियोंकी स्थितिसे उनका परिचय इतना गाढ़ा था कि वे ही नेता बनकर जा सकते थे अथवा वे स्वयं किसी लॉर्ड वर्गके महान् नेताको खोज ले सकते थे।

हम सर लेपेल ग्रिफिनसे मिले। वे राजनैतिक दृष्टिसे हिन्दुस्तानकी तत्कालीन सार्वजनिक प्रवृत्तियोंके विरोधी थे। किन्तु उन्होंने इस प्रश्नमें बहुत दिलचस्पी बताई और सौजन्यकी दृष्टिसे नहीं, बल्कि न्यायकी दृष्टिसे हमारे शिष्टमण्डलका नेतृत्व करना स्वीकार कर लिया। उन्होंने सब सम्बन्धित कागज पढ़े और इस प्रश्नकी पूरी जानकारी प्राप्त कर ली। हम भारतमें रहे हुए दूसरे अंग्रेज सज्जनोंसे, ब्रिटिश कॉमन सभाके बहुतसे सदस्योंसे और इस प्रश्नसे सहानुभति रखनेवाले जितने भी लोग मिल सके उन सबसे मिले। हमारा शिष्टमण्डल लॉर्ड एलगिनसे मिला।[3] उन्होंने हमारी पूरी बात ध्यानसे सुनी और हमसे सहानुभूति दिखाई। उन्होंने अपनी कठिनाइयाँ भी बताईं; किन्तु फिर भी यथासम्भव सहायता करनेका वचन दिया। यही शिष्टमण्डल लॉर्ड मॉर्लेसे भी मिला। उन्होंने भी सहानुभूति प्रकट की। मैं उनके कथनका सार पहले दे चुका हूँ।[4] सर विलियम वेडरबर्नके प्रयत्नसे हिन्दुस्तानी कार्योंसे सम्बन्धित कॉमन सभाकी एक बैठक सभाके दीवानखानेमें बुलाई गई। हमने इस बैठकमें भी अपना मामला यथाशक्ति समझाया।[5] हम उस समयके आयरिश दलके नेता श्री रेडमंडसे विशेष रूपसे भेंट करने गये। संक्षेपमें हमने लोकसभाके उन सभी दलोंके सदस्योंसे जिनसे मिलना सम्भव हुआ, मुलाकात की। हमें कांग्रेसकी ब्रिटिश समितिसे भी बहुत सहायता मिली। किन्तु उसमें तो इंग्लैंडकी प्रथाके अनुसार एक विशेष दल

१. शिष्टमण्डल २० अक्तूबर १९०६ को इंग्लैंड पहुँचा। उसके कार्य-विवरणके लिए देखिए खण्ड ६, पृष्ठ १-२७६।

२. देखिए खण्ड ६, पृष्ठ ४९-५७।

३. देखिए खण्ड ६, पृष्ठ ११७-११९।

४. देखिए खण्ड ६, पृष्ठ २१९-२३१।

५. देखिए खण्ड ६, पृष्ठ १११-१२।

और विशेष मतके लोग ही थे। ऐसे अन्य बहुतसे लोगोंने भी जो इस समितिमें नहीं थे, हमारे कार्यमें बड़ा सहयोग दिया। मुझे लगा कि यदि हम इन सभी लोगोंको इकट्ठा करके कार्यमें लगा सकें तो अधिक अच्छा फल निकल सकता है। मैंने इसी विचारसे एक स्थायी समिति बनानेका निश्चय किया और मेरा यह विचार सभी दलोंके लोगोंको रुचा।

किसी भी संस्थाका कार्यभार मुख्यतः उसके मन्त्रीपर होता है। मन्त्री ऐसा होना चाहिए जो संस्थाके उद्देश्यमें पूरा-पूरा विश्वास ही न रखता हो बल्कि जो उस उद्देश्यकी सिद्धिके लिए अपना अधिकांश समय दे सकता हो और जिसमें कार्यक्षमता भी हो। श्री एल० डब्ल्यू० रिचमें ये समस्त गुण थे। वे दक्षिण आफ्रिकाके थे। वे वहाँ मेरे दफ्तरमें लिपिकका काम कर चुके थे और इन दिनों लन्दनमें बैरिस्टरी पढ़ रहे थे। वे चूँकि इंग्लैंडमें ही थे और इस कार्यको करना भी चाहते थे, इसलिए हम दक्षिण आफ्रिकी ब्रिटिश भारतीय समितिकी स्थापनाका[1] साहस कर सके।

इंग्लैंडमें ही नहीं, बल्कि समस्त पश्चिममें एक प्रथा है जो मुझे तो असभ्यता-पूर्ण लगती है। वहाँ अच्छेसे-अच्छे कार्यका शुभारम्भ किसी भोजमें किया जाता है। ब्रिटेनके प्रधानमन्त्री अपने वार्षिक कार्यक्रम और भविष्यके बारेमें अपने अनुमानकी घोषणा मेंशन हाउस नामक लन्दनके बड़े-बड़े व्यापारियोंके केन्द्रीय भवनमें भाषण देते हुए प्रतिवर्ष ९ नवम्बरको किया करते हैं और इसी कारण उसकी ओर दुनिया-भरका ध्यान जाता है। उस समय लन्दनके मेयरकी ओरसे मन्त्रियोंको भोजका निमन्त्रण दिया जाता है। वहाँ भोजके बाद शराबकी बोतलें खोली जाती हैं और मेजबान और मेह-मानोंके स्वास्थ्यकी कामना करते हुए शराब पी जाती है। इस प्रकारके शुभ अथवा अशुभ (पाठक अपनी दृष्टिसे विशेषण स्वयं चुन लें) कृत्यके चलते हुए वहाँ भाषण भी दिये जाते हैं। इसके साथ ही साम्राज्यके मन्त्रियोंके स्वास्थ्यके निमित्त टोस्टका प्रस्ताव किया जाता है। तब इस प्रस्तावका उत्तर देते हुए प्रधानमन्त्री उक्त महत्त्वपूर्ण भाषण देते हैं। जब किसीको कोई खास सलाह करनी होती है तब इस सार्वजनिक व्यवहारकी तरह व्यक्तिगत व्यवहारमें भी जिससे सलाह करनी होती है उसको प्रथाके अनुसार भोजनके लिए निमंत्रित किया जाता है। यह सलाह कभी-कभी भोजनके बीचमें और कभी भोजनके बाद शुरू की जाती है। हमें भी एक बार नहीं, बल्कि कई बार इस प्रथाका पालन करना पड़ा। किन्तु पाठक इससे यह अर्थ न निकालें कि हममें से किसीने भी अखाद्य खाया अथवा अपेय पिया। इस प्रकार हमने इस प्रथाके अनुसार एक दिन मध्याह्नको भोजनके लिए अपने सब मुख्य सहायकोंको बुलाया। निमन्त्रित सज्जनोंकी संख्या लगभग १०० थी। इस भोजका उद्देश्य इन सहायकोंके प्रति कृतज्ञता प्रकट करना, इनसे विदा लेना और साथ ही स्थायी समिति बनाना था। इस अवसर-पर भी प्रथाके अनुसार भोजनके पश्चात् भाषण[2] दिये गये और समितिकी स्थापना की गई। इससे भी हमारे आन्दोलनके प्रचारमें अच्छी मदद मिली।

१. खण्ड ६, पृष्ठ १७५, १९६ और २४२-४४।

२. विदाई समारोहमें दिये गये गांधीजीके भाषणके लिए देखिए खण्ड ६, पृष्ठ २५९-६१।

हम इंग्लैंडमें इस प्रकार लगभग छः सप्ताह बिताकर दक्षिण आफ्रिका वापस रवाना हुए। जब हम मदीरा पहुँचे तो हमें श्री रिचका तार[1] मिला कि "लॉर्ड एलगिनकी घोषणाके अनुसार मन्त्रिमण्डलने सम्राट्को ट्रान्सवालके एशियाई कानूनको अस्वीकार कर देनेकी सलाह दी है।" हमारी प्रसन्नताका तो पूछना ही क्या था? मदीरासे केपटाउन पहुँचनेमें १४-१५ दिन लगते हैं। हमने ये दिन बड़ी प्रसन्नतामें निकाले और हम भविष्यमें शेष कष्टोंको दूर करनेके सम्बन्धमें शेखचिल्ली-जैसे हवाई किले बनाते रहे। किन्तु दैवकी गति न्यारी है। हमारे ये हवाई किले किस प्रकार ढह गये, इसकी चर्चा हम अगले प्रकरणमें करेंगे।

किन्तु इस प्रकरणको समाप्त करनेसे पहले हम एक दो पुनीत संस्मरण दिये बिना नहीं रह सकते। मुझे इतना तो कहना ही चाहिए कि हमने इंग्लैंडमें अपना एक क्षण भी व्यर्थ नहीं खोया। हमें बहुतसे गश्तीपत्र भेजने पड़े। यह काम कोई एक आदमी नहीं कर सकता था। उसमें बड़ी सहायताकी आवश्यकता थी। पैसा खर्च करनेसे बहुत-कुछ सहायता मिल सकती है; किन्तु मेरा चालीस सालका अनुभव बताता है कि इस सहायताकी तुलना स्वेच्छासे दी गई शुद्ध सहायतासे नहीं की जा सकती। सौभाग्यसे हमें ऐसी सहायता करनेवाले लोग भी वहाँ मिल गये। वहाँ पढ़ने-वाले बहुतसे हिन्दुस्तानी युवक हमारे पास आ जाते और उनमें से अनेक सुबह-शाम इनाम अथवा नामकी आशा किये बिना हमारे कार्यमें सहायता देते। चिट्ठियोंपर पते लिखना, चिट्ठियोंकी नकलें करना, उनपर टिकटें लगाना और उनको डाकमें छोड़ना; उनमें से किसीने भी ऐसे किसी भी कामको अपनी प्रतिष्ठाके अयोग्य बताकर करनेसे इनकार किया हो ऐसा मुझे याद नहीं आता। किन्तु इन सबसे भी बढ़कर हमारा एक अंग्रेज मित्र था जो हमें दक्षिण आफ्रिकामें मिला था। वह हिन्दुस्तानमें रह चुका था। उसका नाम सीमंड्स था। अंग्रेजीमें एक कहावत है कि प्रभु, जिसे चाहता है उसे जल्दी अपने पास बुला लेता है। काल देवता इस 'परदुःखभंजन' अंग्रेजको भरे यौवनमें उठा ले गये। मैंने उसके लिए परदुःखभंजन विशेषणका प्रयोग एक विशेष कारणसे किया है। इस सज्जन व्यक्तिने १८९७में बम्बईमें प्लेगसे पीड़ित हिन्दुस्तानियोंकी सहायता उनके बीच निर्भय घूम-घूमकर की थी। छूतरोगसे पीड़ित रोगियोंकी सहायता करते हुए मृत्युका लेशमात्र भी भय न करना उसका स्वभाव बन गया था। उसमें जातिद्वेष या रंगद्वेष रंचमात्र भी न था। उसका स्वभाव अत्यन्त स्वतन्त्र था। उसका एक सिद्धान्त यह था कि सत्य सदा अल्प मतके साथ होता है। इस सिद्धान्तको माननेके कारण ही वह जोहानिसबर्गमें मेरी ओर आकर्षित हुआ था और विनोदमें बहुत बार यह कहा करता था, आप जिस दिन बहुमतमें हो जायेंगे, आप निश्चित समझें कि मैं आपके साथ नहीं रहूँगा, क्योंकि मेरा विश्वास है कि बहुमतके हाथमें सत्य भी असत्यके रूपमें बदल जाता है। वह बहुपठित व्यक्ति था। वह जोहानिसबर्गके एक करोड़पति सर जॉर्ज फेरारका निजी और विश्वस्त सचिव था। वह आशु लिपिमें बेजोड़ था। जब हम इंग्लैंड पहुँचे तब वह अकस्मात् हमारे

१. देखिए खण्ड ६, पृष्ठ २७५।

पास आ गया। मुझे तो उसका अता-पता भी मालूम न था। किन्तु हम तो सार्वजनिक लोग थे, इसलिए अखबारोंमें हमारी चर्चा हुई। बस उसीसे इस अंग्रेज सज्जनने हमें खोज लिया और हमसे कहा: "मैं आपकी जो-कुछ भी सहायता कर सकता हूँ, करना चाहता हूँ। आप मुझे मामूली नौकरोंके करने योग्य काम देंगे तो मैं उसे भी करूँगा और यदि आशुलिपिमें कुछ लिखाना हो तो आप जानते ही हैं कि उसमें मुझ-जैसा कुशल मनुष्य आपको दूसरा नहीं मिलेगा।" हमें तो दोनों ही प्रकारकी सहायताकी आवश्यकता थी। यदि मैं यह कहूँ कि इस अंग्रेजने दिन-रात बिना पैसा लिये हमारी बेगार की तो इसमें तनिक भी अतिशयोक्ति नहीं होगी।[1] रातको बारह-बारह और एक-एक बजेतक वह टाइपरायटरपर बैठा ही रहता। सीमंड्स सन्देश ले जाने और डाक पहुँचानेका काम भी हँसी-खुशी करता। मैं जानता था कि वह महीनेमें लगभग पैंतालीस पौंड कमाता है। किन्तु वह इस सब रुपयेको अपने मित्रोंकी सहायतामें व्यय कर देता था। उस समय उसकी आयु कोई ३० वर्षकी होगी। किन्तु वह तबतक अविवाहित था और जीवन-भर अविवाहित ही रहना चाहता था। मैंने उससे बहुत आग्रह किया कि कुछ पैसा तो ले लो; किन्तु उसने इससे साफ इनकार कर दिया। उसने कहा, "यदि मैं इस सेवाका पुरस्कार ले लूँ तो धर्म भ्रष्ट हो जाऊँ।" मुझे याद है कि पिछली रातको हमें अपना सब काम निपटाते हुए और सामान बाँधते हुए रातके तीन बज गये थे। तबतक वह भी जागता रहा और हम लोग दूसरे दिन जब जहाजमें बैठ गये तभी हमसे जुदा हुआ। उससे जुदा होना बहुत दुःखजनक था। मैंने बहुतसे अवसरोंपर यह अनुभव किया है कि परोपकार करना गेहुएँ वर्णके लोगोंकी ही बपौती नहीं है।

मैं युवा सार्वजनिक कार्यकर्त्ताओंकी जानकारीके लिए यह भी बता दूँ कि हमने शिष्टमण्डलके खर्चका हिसाब इतनी सावधानीसे रखा था कि जहाजमें सोडा-वाटर पीते तो उसकी रसीद भी खर्चके साथ सबूतके तौरपर सँभाल कर रख लेते थे। इसी तरह हम तारोंकी रसीदें भी रखते थे। मुझे याद नहीं आता कि हिसाबकी तफसीलमें हमने कहीं किसी रकमके आगे 'फुटकर खर्च' लिखा हो। हमारे लिए फुटकर खर्च-जैसी कोई मद तो थी ही नहीं। 'याद नहीं आता' यह कहनेका कारण इतना ही है कि यदि दिनके अन्तमें एकाध बार खर्च लिखते वक्त दो-चार शिलिंगके खर्चका विवरण याद न रहा हो और वह फुटकर खर्चमें लिख दिया हो तो कह नहीं सकता।

मैंने इस जीवनमें एक बात बिलकुल साफ देख ली है कि हम वयस्क होते ही न्यासी अथवा उत्तरदायी बन जाते हैं। हम जबतक माँ-बापके साथ रहते हैं तबतक यदि वे हमें कोई काम अथवा पैसा सौंपे तो हमें उसका हिसाब उनको देना ही चाहिए। वे हमपर विश्वास रखकर हिसाब न माँगें तो हम इस उत्तरदायित्वसे मुक्त नहीं होते। जब हम माँ-बापसे स्वतन्त्र रहने लगें तब हमारा यह उत्तरदायित्व पत्नी और पुत्र-पुत्रियोंके प्रति होता है। अपनी आयके स्वामी हम अकेले ही नहीं होते बल्कि उसमें

१. देखिए खण्ड ६, पृष्ठ २७५, यहाँ गांधीजीने सीमंड्सको वेतन दिये जानेका उल्लेख किया है।

वे भी भागीदार होते हैं। हमें उनकी खातिर पाई-पाईका हिसाब रखना चाहिए। यदि निजी जीवनमें हिसाब रखना आवश्यक है तब सार्वजनिक जीवनमें तो कहना ही क्या है? मैंने देखा है कि स्वयंसेवक ऐसा खयाल बना लेते हैं मानो वे सौंपे हुए काम और पैसेका तफसीलसे हिसाब देनेके लिए बँधे हुए ही नहीं हैं क्योंकि वे अवि-श्वासके पात्र तो हो ही नहीं सकते। यह तो घोर अज्ञान ही माना जा सकता है। हिसाब रखनेका विश्वास या अविश्वाससे कोई भी सम्बन्ध नहीं। हिसाब रखना तो स्वतन्त्र धर्म ही है। उसके बिना हमें अपने कामको स्वयं ही गन्दा मानना चाहिए। हम जिस संस्थामें स्वयंसेवक हों यदि उस संस्थाका नेता झूठे शिष्टाचार अथवा भयके कारण हमसे हिसाब न माँगे तो वह भी दोषका पात्र है। काम अथवा पैसेका हिसाब रखना जितना सवेतन कार्यकर्त्ताका कर्त्तव्य है उससे दुगुना स्वयंसेवकका है क्योंकि उसने अपने कामको ही अपना वेतन माना है। यह बात बहुत ही महत्वपूर्ण है। मैं जानता हूँ कि सामान्यतः बहुत-सी संस्थाओंमें इस ओर पर्याप्त ध्यान नहीं दिया जाता, इसलिए मैंने यहाँ उसकी चर्चा करनेमें इतना स्थान घेरनेका साहस किया।

अध्याय १५

कुटिल राजनीति अथवा क्षणिक हर्ष

केपटाउन उतरनेपर[1] विशेष रूपसे जोहानिसबर्ग पहुँचनेपर मैंने समझ लिया कि हमें मदीरामें जो तार मिला था उसे हमने जितना कीमती आँका था वह वास्तवमें उतना कीमती नहीं था। इसमें तार भेजनेवाले श्री रिचका दोष न था। उन्होंने तो कानून नामंजूर किये जानेकी बात जैसी सुनी थी वैसी तारसे भेज दी थी। हम ऊपर देख चुके हैं कि उस समय अर्थात् १९०६ में ट्रान्सवाल शाही उपनिवेश था। ऐसे उपनिवेशोंके एजेन्ट अथवा प्रतिनिधि उपनिवेश मन्त्रीको अपने-अपने उपनिवेशके सम्बन्धमें परिचित रखनेके लिए इंग्लैंडमें रहते थे। वहाँ ट्रान्सवालके प्रतिनिधि सर रिचर्ड सॉलोमन थे जो दक्षिण आफ्रिकाके प्रख्यात वकील थे। लॉर्ड एलगिनने उनसे सलाह करके ही खूनी कानूनको नामंजूर करनेका निश्चय किया था। १ जनवरी १९०७ से ट्रान्सवालको उत्तरदायी शासन दिया जाना था। इसलिए लॉर्ड एलगिनने सर रिचर्ड सॉलोमनको विश्वास दिलाया कि यदि उत्तरदायी शासन मिलनेके बाद विधानसभा इस कानूनको स्वीकार कर देगी तो साम्राज्य सरकार उसको नामंजूर नहीं करेगी। किन्तु उन्होंने यह भी कहा कि जबतक ट्रान्सवाल शाही उपनिवेश माना जाता है तबतक इस प्रकारके जातीय भेदभावसे युक्त कानून बनानेकी सीधी जिम्मेदारी साम्राज्य सरकारकी मानी जाती है और साम्राज्य सरकारके संविधानमें जातीय भेदभावकी नीतिको स्थान नहीं है; इसलिए मेरे लिए फिलहाल तो इस सिद्धान्तका पालन करनेके लिए सम्राट्को इस कानूनको नामंजूर करनेकी सलाह देनी जरूरी है।

१. १८ दिसम्बर, १९०६ को।

इस प्रकार कानून नामके लिए रद भी होता था और साथ ही ट्रान्सवालके गोरोंका उद्देश्य भी सिद्ध होता था। सर रिचर्ड सॉलोमनको इसमें कोई आपत्ति नहीं थी — आपत्ति हो भी क्या सकती थी? मैंने इस राजनीतिको 'कुटिल' विशेषण दिया है। किन्तु मेरी समझमें इससे भी तीखे किसी विशेषणका उपयोग करना उक्त नीतिके संचालकोंके प्रति अन्याय करना नहीं होगा। शाही उपनिवेशोंके कानूनोंकी सीधी जिम्मेदारी साम्राज्य सरकारपर है। उसके संविधानमें रंगभेद और जातिभेद को स्थान नहीं है। ये दोनों बातें बहुत ठीक हैं। साम्राज्य सरकार उत्तरदायी शासन-प्राप्त उपनिवेशोंके बनाये कानूनोंको एकाएक रद नहीं कर सकती यह बात भी समझमें आने योग्य है। किन्तु क्या उपनिवेशके प्रतिनिधिसे छुपे तौरपर बातचीत करना और उसके साम्राज्य सरकारके संविधानके विरुद्ध एक कानूनको नामंजूर न करनेका वचन देना उनके प्रति विश्वासघात और अन्याय नहीं है जिन लोगोंके अधिकार इस कानून-के द्वारा छिनते हैं? यदि सच पूछा जाये तो लॉर्ड एलगिनने ऐसा वचन देकर ट्रान्स-वालके गोरोंको हिन्दुस्तानियोंके विरुद्ध आन्दोलन जारी रखनेकी शह दी। यदि उनको ऐसा ही करना था तो उन्हें यह बात हिन्दुस्तानी प्रतिनिधियोंको साफ-साफ बता देनी थी। असलमें उत्तरदायी शासन-प्राप्त उपनिवेशोंके कानूनोंके लिए भी साम्राज्य सरकार उत्तरदायी है। उत्तरदायी शासन-प्राप्त उपनिवेशोंको भी ब्रिटिश संविधानके मूल सिद्धान्त तो मानने ही पड़ते हैं। उदाहरणके लिए कोई भी उत्तरदायी शासन-प्राप्त उपनिवेश कानून बनाकर गुलामीकी प्रथाको फिर जारी नहीं कर सकता। यदि लॉर्ड एलगिनने खूनी कानूनको अनुचित मानकर रद किया होता — वे उसे अनु-चित मानकर ही रद कर भी सकते थे — तो उनका स्पष्ट कर्त्तव्य था कि वे सर रिचर्ड सॉलोमनको एकान्तमें बुलाकर यह कहते कि ट्रान्सवालकी सरकार उत्तरदायी शासन मिलनेपर ऐसा अन्यायपूर्ण कानून नहीं बना सकती। यदि वह ऐसा कानून बनाना चाहती है तो उसे उत्तरदायी शासन दिया जाये या नहीं, साम्राज्य सरकारको इसपर पुनर्विचार करना होगा। यह भी हो सकता था कि वे हिन्दुस्तानियोंके अधि-कारोंकी पूरी रक्षाकी शर्तपर ही ट्रान्सवालको उत्तरदायी शासन दे देते। इसके बजाय लॉर्ड एलगिनने बाहरसे तो हिन्दुस्तानियोंकी हिमायत करनेका ढोंग किया और उसके साथ भीतरसे ट्रान्सवाल सरकारकी हिमायत ही की और जिस कानूनको उन्होंने स्वयं रद किया था उसीको फिर पास करनेके लिए उसे बढ़ावा दिया। इस प्रकारकी वक्र राजनीतिका यह कोई अनोखा अथवा पहला ही उदाहरण नहीं है। ब्रिटिश साम्राज्यके इतिहासका सामान्य विद्यार्थी भी ऐसे अनेक उदाहरण ढूँढ़ ले सकता है।

इसलिए जोहानिसबर्गमें मैंने एक ही बात सुनी कि लॉर्ड एलगिन और साम्राज्य सरकारने हमें धोखा दिया है। मदीरामें जितना उत्साह मनमें आया था, दक्षिण आफ्रिकामें उतनी ही निराशा हुई। फिर भी इस कुटिलताका तात्कालिक परिणाम तो यह हुआ कि जातिमें संघर्षका जोश और बढ़ गया तथा सभी लोगोंने यह कहा, हमें इसकी क्या चिन्ता है? हमें कुछ साम्राज्य सरकारकी सहायताके बलपर तो जूझना नहीं है, हमें तो अपने बल-बूतेपर और जिस ईश्वरको साक्षी रखकर प्रतिज्ञा

ली है, उसके सहारे जूझना है। यदि हम सच्चे रहेंगे तो कुटिल वक्र राजनीति भी सीधी हो जायेगी।

जब ट्रान्सवालको उत्तरदायी सत्ता मिल गई तब उत्तरदायी विधानसभाका पहला काम हुआ बजट पास करना और दूसरा हुआ इस खूनी विधेयकको कानूनका रूप देना। उसने इस कानूनकी एक धारामें केवल तारीखका बदलाव छोड़कर, जिसे पुरानी हो जानेके कारण बदलना जरूरी था, २१ मार्च १९०७ की[1] एक ही बैठकमें वह जैसा पहले बनाया गया था, उसी रूपमें पूराका-पूरा पास कर दिया गया। एक-दो शब्दों-का जो सामान्य परिवर्तन किया गया उसका कानूनकी कठोरतासे कोई सम्बन्ध नहीं था। कठोरता तो जैसी थी वैसी ही कायम रही और कानूनका रद होना तो स्वप्नकी-सी बात जान पड़ने लगी। हिन्दुस्तानी कौमने अपनी परम्पराके अनुसार प्रार्थनापत्र आदि दिये, किन्तु तूतीकी इस आवाजको कौन सुनता? कानून १ जुलाई, १९०७ से लागू किया गया। और भारतीयोंको अपने परवाने ३१ जुलाईतक ले लेने थे। कौम-को इतनी मोहलत देनेका कारण ट्रान्सवाल सरकारकी मेहरबानी नहीं थी; बल्कि उसे इस कानूनपर नियमके अनुसार साम्राज्य सरकारसे स्वीकृति भी लेनी थी और इसमें कुछ समय अवश्य लगता। फिर उसे उसके परिशिष्टके अनुसार पत्रक, पुस्तिकाएँ, परवाने और अन्य कागज तैयार करने थे और जगह-जगह परवाना-दफ्तर खोलने थे। इसके लिए भी वक्त देना जरूरी था। इसलिए ट्रान्सवाल सरकारने यह अवधि अपनी सुविधाकी दृष्टिसे ही रखी थी।

अध्याय १६

अहमद मुहम्मद काछलिया

जब हमारा शिष्टमण्डल इंग्लैंड जा रहा था तब दक्षिण आफ्रिकामें रहे हुए एक अंग्रेज यात्रीने ट्रान्सवालके कानूनकी बात मेरे मुँहसे सुनकर और शिष्टमण्डलके इंग्लैंड जानेका कारण जानकर कहा, "अच्छा, आप लोग 'कुत्तेका पट्टा' (डॉग्स कॉलर) बँधवानेसे इनकार करना चाहते हैं।" इस अंग्रेजने ट्रान्सवालके परवानेको यह नाम दिया था। वह यह कहकर 'पट्टे'के बारेमें अपनी सहमति और हिन्दुस्तानियोंके प्रति अपना तिरस्कार सूचित करना चाहता था या हमारे प्रति अपनी सहानुभूति व्यक्त करना चाहता था, यह बात उस समय मेरी समझमें नहीं आई और आज भी जब मैं उस घटनाका उल्लेख कर रहा हूँ, मैं इस सम्बन्धमें कोई निश्चय नहीं कर सका हूँ। हम किसी आदमीकी बातका ऐसा अर्थ न करें जिससे उसके प्रति अन्याय हो, यह एक अच्छी बात है। इस दृष्टिसे मैं यही क्यों न मानूँ कि स्थितिकी यथा-र्थताको प्रकट करनेवाले बोधक वे शब्द उस अंग्रेजने अपनी सहानुभूति व्यक्त करनेके लिए ही कहे थे। एक ओर ट्रान्सवालकी सरकार हमारे गलेमें यह 'कुत्तेका पट्टा'

१. देखिए खण्ड ६, पृष्ठ ४०३ पर दिये गये विवरणके अनुसार अध्यादेश २० मार्चको विधान सभामें पेश हुआ और २२ को विधान परिषद् द्वारा पास कर दिया गया।

बाँधनेकी तैयारी कर रही थी; दूसरी ओर हम इस पट्टेको अपने गलेमें न बँधने देनेके निश्चयको निभाने और ट्रान्सवाल सरकारकी दुष्ट नीतिके विरुद्ध जूझनेकी तैयारी कर रहे थे। इंग्लैंड और हिन्दुस्तानके सहायकोंको पत्र लिखने और उन्हें वर्तमान स्थितियोंसे परिचित रखनेका काम भी जारी था। किन्तु सत्याग्रह संघर्षमें ऐसे बाह्य उपचारोंसे अधिक काम नहीं चलता। सत्याग्रहमें तो आन्तरिक उपाय ही अचूक उपाय होते हैं। इसीलिए कौमके सब नेता अपना पूरा समय कौमको सर्वांग सशक्त और सचेत बनानेके उपायोंमें लगा रहे थे।

कौमके सामने एक महत्त्वका प्रश्न यह तय करनेका था कि सत्याग्रहकी प्रवृत्ति किस संस्थाकी मारफत चलाई जाये। ट्रान्सवाल ब्रिटिश भारतीय संघके सदस्य तो बहुतसे लोग थे। जब उसकी स्थापना हुई थी तब सत्याग्रहका जन्म भी नहीं हुआ था। उस संस्थाको एक नहीं, अनेक कानूनोंके विरुद्ध लड़ना पड़ा था और अब भी लड़ना था। कानूनोंके विरुद्ध लड़नेके अलावा उसको राजनीतिक, सामाजिक और ऐसे ही अन्य प्रकारके दूसरे काम करने थे। फिर इस संस्थाके सभी सदस्योंने सत्याग्रहकी प्रतिज्ञा की थी ऐसा भी नहीं था। सत्याग्रह करनेसे उस संस्थापर जो बाहरी जोखिमें आ सकती थीं उनका विचार करना भी जरूरी था। सत्याग्रहकी लड़ाईको ट्रान्सवाल सरकार राजद्रोह ठहरा दे तब क्या होगा और उस हालतमें उक्त संघर्षका संचालन करनेवाली संस्थाको गैरकानूनी करार दे दे तब क्या होगा? तब इस संस्थामें सम्मिलित सदस्योंमें जो सत्याग्रही नहीं हैं उनकी क्या स्थिति होगी? जिन लोगोंने सत्याग्रहसे पहले उसमें धन दिया है, उनके दिये हुए धनका क्या होगा? इन सब बातोंका विचार करना उचित था। फिर सत्याग्रहियोंने यह दृढ़ निश्चय भी किया था कि जो लोग अश्रद्धा अथवा अशक्त होनेके कारण अथवा किसी अन्य कारणसे सत्याग्रहमें सम्मिलित न हों उनके प्रति कोई द्वेषभाव न रखा जाये, इतना ही नहीं; बल्कि उनके साथ किये जानेवाले व्यवहारमें स्नेहभावकी तनिक भी कमी न होने दी जाये और सत्याग्रहके अतिरिक्त अन्य प्रवृत्तियोंमें उनके साथ रहकर काम किया जाये।

इस प्रकारके विचारोंके कारण कौमने यह निश्चय किया कि सत्याग्रहकी प्रवृत्ति किसी मौजूदा संस्थाकी मारफत न चलाई जाये। दूसरी संस्थाएँ उसको जितना प्रोत्साहन दे सकें उतना प्रोत्साहन दें और साथ ही सत्याग्रहके अतिरिक्त वे खूनी कानूनके विरुद्ध अन्य जो-कुछ कर सकें, करें। इसलिए सत्याग्रहियोंने 'पैसिव रेजिस्टेंस एसोसिएशन' (अनाक्रामक प्रतिरोध संघ) अथवा 'सत्याग्रह संघ' नामकी नई संस्था बनाई। पाठक अंग्रेजी नामसे समझ जायेंगे कि जिस समय यह नई संस्था बनाई गई उस समय तक सत्याग्रह शब्द नहीं बना था। ज्यों-ज्यों समय बीतता गया त्यों-त्यों यह अनुभव होता गया कि अलग संस्था बनानेसे हर तरहसे लोगोंका लाभ ही हुआ है और यदि अलग संस्था न बनाई गई होती तो सत्याग्रहकी प्रवृत्तिको शायद नुकसान पहुँचता। इस नई संस्थाके बहुतसे सदस्य बने और लोगोंने उसके लिए धन भी मुक्तहस्तसे दिया।

मुझे अपने अनुभवसे तो यही मालूम हुआ है कि कोई भी प्रवृत्ति धनके अभाव-के कारण मन्द अथवा बन्द नहीं होती। इसका अर्थ यह नहीं है कि दुनियाकी तमाम प्रवृत्तियाँ धनके बिना चल सकती हैं। इसका यह अर्थ अवश्य है कि जहाँ किसी कामको चलानवाले लोग सच्चे होते हैं वहाँ धन अपने-आप आता चला आता है। इसके विरुद्ध मेरा यह अनुभव भी है कि किसी प्रवृत्तिके लिए बहुलतासे धन मिल जानेके बाद ही उस प्रवृत्तिकी अवनति आरम्भ हो जाती है। इसीलए मैंने अपने अनुभवके आधारपर यह निष्कर्ष निकाला है कि किसी सार्वजनिक संस्थाको कोई बड़ी धनराशि इकट्ठी करके उसके व्याजसे चलाना यदि पाप नहीं तो अनुचित अवश्य कहा जा सकता है। सार्वजनिक संस्थाका धन तो समाज ही है। सार्वजनिक संस्था जबतक समाज चाहे तभीतक चलाई जानी चाहिए। धनराशि इकट्ठी करके उसके व्याजसे काम चलानेवाली संस्था सार्वजनिक नहीं रहती, बल्कि स्वच्छन्द और निरंकुश हो जाती है। वह सार्वजनिक आलोचनाके अंकुशकी परवाह नहीं करती। यहाँ यह बताना आवश्यक नहीं है कि व्याजसे चलनेवाली धार्मिक और सामाजिक संस्थाओंमें प्रायः बहुत-सी बुराइयाँ आ जाती हैं। यह बात तो लगभग स्वयंसिद्ध ही है।

अब हम फिर अपने मूल विषयपर आयें। बारीक दलीलें और नुक्ताचीनी करना वकीलों और अंग्रेजी पढ़े सुसंस्कृत लोगोंके ही हिस्सेमें नहीं आया है। मैंने दक्षिण आफ्रिकामें देखा कि बिना पढ़े-लिखे हिन्दुस्तानी भी बड़ी बारीक दलीलें पेश कर सकते हैं। कुछ लोगोंने कहा कि पहले बनाया हुआ खूनी कानून रद हो जानेसे नाटयशालामें की गई प्रतिज्ञा तो पूरी हो गई है और जिन लोगोंके मनमें कमजोरी आ गई थी, उन्हें इस दलीलमें सार नजर भी आया। इस दलीलमें कोई तथ्य था ही नहीं, यह तो नहीं कहा जा सकता। फिर भी उन लोगोंपर इसका कोई असर नहीं हुआ जो उस कानूनके नहीं, बल्कि उसके तत्त्वके विरुद्ध खड़े हुए थे। ऐसा होनेपर भी सुरक्षाकी दृष्टिसे, अधिक जागृति उत्पन्न करनेके उद्देश्यसे और लोगोंमें कमजोरी आई है तो कितनी आई है, उसकी थाह ले लेनेके विचारसे प्रतिज्ञाको दोहरानेकी आवश्यकता जान पड़ी। इसके लिए जगह-जगह सभाएँ की गईं जिनमें लोगोंको स्थिति समझाई गई और उनसे फिर प्रतिज्ञा भी कराई गई और हमें ऐसा दिखाई नहीं दिया कि लोगोंके उत्साहमें कोई कमी हुई है।

जुलाईका महीना पास आ गया था[1]; इसलिए उसके पहले ट्रान्सवालकी राजधानी प्रिटोरियामें एक बृहद् सभा करनेका निश्चय किया गया। उसमें दूसरे शहरोंमें से भी प्रतिनिधि बुलाये गये। सभा खुली जगहमें प्रिटोरियाकी मस्जिदके चौगानमें की गई; सत्याग्रह आरम्भ होनेके बाद सभाओंमें इतने लोग आने लगे थे कि किसी भवनमें सभा करना सम्भव नहीं था। पूरे ट्रान्सवालमें हिन्दुस्तानियोंकी आबादी १३,००० से अधिक नहीं थी; किन्तु इसमें से १०,००० से ज्यादा लोग तो जोहानिसबर्ग और प्रिटोरियामें ही रहते थे। इस संख्याकी आबादीमें से पाँच-छः हजार लोगोंका किसी सभामें आ

१. अंग्रेजी अनुवादमें यह वाक्य है: "जुलाई महीना समाप्त होनेपर आ गया था।" गांधीजीने प्रिटोरियाकी जिस सभाका वर्णन किया है वह ३१ जुलाई, १९०७ को हुई थी।

जाना कहीं भी बहुत और सन्तोषजनक माना जायेगा। सामूहिक सत्याग्रहकी लड़ाई किसी दूसरी तरह लड़ी ही नहीं जा सकती। जो लड़ाई अपनी ही शक्तिपर अवलम्बित हो और उसके लिए सार्वजनिक शिक्षण न दिया जाये तो वह आगे नहीं बढ़ सकती। इसलिए हम कार्यकर्त्ताओंको इतने लोगोंका उपस्थित हो जाना आश्चर्यजनक नहीं लगता था। हमने पहलेसे ही यह निश्चय कर लिया था कि अब सार्वजनिक सभा खुले मैदानमें ही की जानी चाहिए ताकि खर्च भी कुछ न हो और लोगोंको जगहकी तंगीके कारण लौटकर भी न जाना पड़े। यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि इन सभी सभाओंमें प्रायः पूर्ण शान्ति रहती थी। उनमें उपस्थित सभी लोग सारी बातें ध्यानपूर्वक सुनते थे। यदि कुछ लोगोंको सभामें दूर खड़े होनेके कारण भाषण सुनाई नहीं देता था तो वे वक्तासे जोरसे बोलनेकी प्रार्थना करते थे। पाठकोंको यह बतानेकी जरूरत नहीं होनी चाहिए कि ऐसी सभाओंमें कुर्सियोंकी व्यवस्था तो की ही नहीं जा सकती थी। सब लोग जमीनपर ही बैठ जाते थे। केवल अध्यक्ष, भाषणकर्त्ता और दूसरे दो-चार लोगोंके बैठने लायक मंच बना लिया जाता था और उसपर एक छोटी मेज और दो-चार कुर्सियाँ या चौकियाँ रख ली जाती थीं।

प्रिटोरियाकी इस सभाके अध्यक्ष ब्रिटिश भारतीय संघके कार्यकारी प्रधान यूसुफ इस्माइल मियाँ थे। खूनी कानूनके अन्तर्गत परवाने लेनेका समय निकट आ रहा था। इसलिए जैसे हिन्दुस्तानी बहुत उत्साहयुक्त होनेपर भी चिन्तित थे, वैसे ही अपनी सरकारके पास अजेय बल होनेपर भी जनरल बोथा और जनरल स्मट्स भी चिन्तित थे। एक पूरी जातिको बलपूर्वक झुकाना किसीको अच्छा नहीं लग सकता। इसलिए जनरल बोथाने श्री हॉस्केनको हम लोगोंको समझानेके लिए इस सभामें भेजा। श्री हॉस्केनका परिचय मैं सातवें प्रकरणमें दे चुका हूँ। सभामें उनका स्वागत किया गया। उन्होंने अपने भाषणमें कहा, 'मैं आपका मित्र हूँ, यह तो आप जानते ही हैं। मेरी सहानुभूति आपके साथ है, यह भी कहनेकी आवश्यकता नहीं है। यदि मेरा वश चले तो मैं आपकी माँगको मंजूर करादूँ। किन्तु यहाँके सामान्य गोरे इसका कितना विरोध करते हैं, मुझे आपको यह बताना अनावश्यक है। मैं आज आपके पास जनरल बोथाके कहनेसे आया हूँ। जनरल बोथाने मुझे कहा है कि मैं इस सभामें उपस्थित होकर आपको उनका सन्देश सुना दूँ। उनके मनमें हिन्दुस्तानी कौमके प्रति आदरका भाव है। वे इस कौमकी भावनाओंको समझते हैं। किन्तु उनका कहना यह है कि हम लाचार हैं। ट्रान्सवालके सभी गोरे कानून बनानेका आग्रह किये हुए हैं। मैं स्वयं भी इस कानूनको जरूरी समझता हूँ। ट्रान्सवाल सरकारमें कितनी शक्ति है इस बातको हिन्दुस्तानी जानते हैं। साम्राज्य सरकारने इस कानूनको स्वीकार कर लिया है। हिन्दुस्तानी कौमने जितना हो सका उतना किया और अपनी प्रतिष्ठाकी रक्षा की। किन्तु जब कौमका विरोध सफल न हुआ और यह कानून मंजूर हो गया तब कौमको उस कानूनको मान लेना चाहिए और अपनी राजभक्ति और शान्तिप्रियता सिद्ध करनी चाहिए। यदि इस कानूनके अन्तर्गत

बनाये गये नियमों और उपनियमोंमें कोई छोटा-मोटा परिवर्तन कराना हो तो उसके सम्बन्धमें कौमकी आपत्तिको जनरल स्मट्स ध्यानपूर्वक सुनेंगे’ श्री हॉस्केनने इस सन्देशको सुनानेके बाद कहा, ‘मैं भी आपको यह सलाह देता हूँ कि आप जनरल बोथाकी इस सलाहको मान लें। मैं जानता हूँ कि ट्रान्सवालकी सरकार इस कानूनके सम्बन्धमें दृढ़ है। उसका विरोध करना दीवारसे सिर मारना है। मैं चाहता हूँ कि आपकी जाति इसका विरोध करके तबाह न हो और व्यर्थ कष्ट न भोगे।’ मैंने इस भाषणका शब्दशः अनुवाद लोगोंको सुना दिया और अपनी ओरसे भी उनको सावधान किया।[1] फिर श्री हॉस्केन तालियोंकी गड़गड़ाहटके बीच वहाँसे विदा हो गये।

अब हिन्दुस्तानियोंके भाषण आरम्भ हुए। इस प्रकरणके, और सच कहें तो इस इतिहासके, नायकका परिचय देना तो अभी शेष ही रहता है। जो वक्ता बोलनेके लिए खड़े हुए उनमें एक स्वर्गीय अहमद मुहम्मद काछलिया थे। मैं उनको एक मुवक्किल और दुभाषियेके रूपमें ही जानता था। वे अभीतक सार्वजनिक कार्योंमें आगे बढ़कर भाग नहीं लेते थे। उनका अंग्रेजी भाषाका ज्ञान कामचलाऊ था, किन्तु उन्होंने अनुभवसे उसे इतना बढ़ा लिया था कि जब वे अपने मित्रोंको अंग्रेज वकीलोंके पास ले जाते तो दुभाषियेका काम स्वयं ही करते। दुभाषियेका काम उनका धन्धा नहीं था। वे उसे मित्र होनेके नाते ही करते थे। वे पहले फेरी लगाकर कपड़े बेचते थे किन्तु बादमें उन्होंने अपने भाईके साझेमें एक छोटा-सा व्यापार कर लिया था। वे सूरती मैमन थे और सूरत जिलेमें जन्मे थे। सूरती मैमनोंमें उनका बहुत सम्मान था। पहले उनका गुजरातीका ज्ञान भी साधारण ही था, किन्तु उन्होंने उसे अनुभवसे बढ़ा लिया था। किन्तु उनकी बुद्धि इतनी कुशाग्र थी कि वे किसी भी प्रश्नको बहुत आसानीसे समझ लेते थे। वे मुकदमोंकी पेचीदगियोंको इस तरह सुलझा सकते थे कि मैं भी बहुत बार आश्चर्यमें पड़ जाता। वे वकीलोंसे कानूनी बहस करते हुए भी झिझकते नहीं थे और उनकी दलीलोंपर वकीलोंको भी विचार करना पड़ता था।

साहस और निष्ठामें उनसे बढ़कर कोई व्यक्ति मुझे न दक्षिण आफ्रिकामें मिला और न हिन्दुस्तानमें। उन्होंने कौमकी खातिर अपने सर्वस्वकी आहुति दे दी। मुझे उनके साथ सम्पर्कमें आनेके जितने अवसर मिले उनमें मैंने उन्हें सदा अपनी बातका धनी पाया। वे सच्चे मुसलमान थे। और सूरती मैमनोंकी मस्जिदके एक न्यासी थे, किन्तु साथ ही वे हिन्दुओं और मुसलमानोंके प्रति समदृष्टि रखते थे। मुझे ऐसा एक भी प्रसंग याद नहीं आता जब उन्होंने साम्प्रदायिक दृष्टि अपनाकर अनुचित रूपसे हिन्दुओंके विरुद्ध मुसलमानोंका पक्ष लिया हो। वे बिलकुल निडर और निष्पक्ष थे, इसलिए जब आवश्यकता होती तब हिन्दुओं और मुसलमानों, दोनोंके दोष बतानेमें उन्हें तनिक भी संकोच नहीं होता था। उनकी सरलता और निरभिमानिता अनुकरणीय थी। वर्षोंके गाढ़े परिचयके बाद उनके बारेमें मेरा यह दृढ़ मत बना है कि हमारे समाजको स्वर्गीय अहमद मुहम्मद काछलिया-जैसा आदमी मिलना मुश्किल है।

1. देखिए खण्ड ७, पृष्ठ १३९-४१ और पृष्ठ १५१-५२।

प्रिटोरियाकी सभामें भाषण देनेवाले लोगोंमें यह नर-केसरी भी एक था। उन्होंने बहुत संक्षिप्त-सा भाषण दिया। उन्होंने कहा, "इस खूनी कानूनसे हरएक हिन्दुस्तानी परिचित है। उसका अर्थ हम सब लोग समझ रहे हैं। श्री हॉस्केनका भाषण मैंने ध्यानपूर्वक सुना है। आपने भी उसे सुना। मेरे ऊपर तो उसका यही असर पड़ा कि मैं उससे अपनी प्रतिज्ञापर और भी दृढ़ हो गया हूँ। ट्रान्सवालकी सरकार कितनी शक्तिशाली है, यह हम जानते हैं। किन्तु इस खूनी कानूनसे बड़ा हमारे लिए और क्या खतरा हो सकता है? वह हमें जेलमें डाल देगी, हमारा माल नीलाम कर देगी, हमें देशनिकाला दे देगी, फाँसीपर लटका देगी। हम यह सभी सहन कर सकते हैं, किन्तु हम इस कानूनको सहन नहीं कर सकते।" मैं देख रहा था कि अहमद मुहम्मद काछलिया जब भाषण दे रहे थे तब वे बहुत उत्तेजित थे। उनका चेहरा लाल हो गया था। उनकी गलेकी और माथेकी रगें खूनकी तेजीसे उभर आई थीं। उनका शरीर काँप रहा था। उन्होंने अपने दाहिने हाथकी अँगुलियाँ फैलाकर अपने गलेपर फेरीं और गरजते हुए कहा, "मैं खुदाकी कसम खाकर कहता हूँ कि मुझे कत्ल भले ही कर दिया जाये, पर मैं इस कानूनको नहीं मानूँगा। और मैं यह चाहता हूँ कि यह सभा भी ऐसा ही निश्चय करे।" वे यह कहकर बैठ गये। जब उन्होंने अपने गलेपर अँगुलियाँ फेरकर यह कहा था, तब मंचपर बैठे हुए कुछ लोगोंके चेहरोंपर प्रसन्नता दौड़ गई थी। मुझे याद है कि उन लोगोंमें मैं भी था। मुझे अपने मनमें शंका थी कि सेठ काछलियाने इन शब्दोंमें जितना जोर लगाया है उतना वे काममें भी लगा सकेंगे या नहीं। जब मुझे उस शंकाका ख्याल आता है तब और यहाँ उसका उल्लेख करते समय भी मुझे संकोच होता है। इस महान् लड़ाईमें जिन बहुतसे लोगोंने अपनी प्रतिज्ञाका अक्षरशः पालन किया उन सबमें सेठ काछलिया सदा अगुआ रहे। मैंने किसी भी दिन उनका रंग बदला हुआ नहीं देखा।

सभामें उनके इस भाषणपर तालियोंकी भारी गड़गड़ाहट हुई। उस समयतक मैं उनसे जितना परिचित था उससे सभाके दूसरे लोग उन्हें अधिक जानते थे, क्योंकि उनमें से बहुतसे इस गुदड़ीके लालसे व्यक्तिगत रूपमें परिचित थे। वे जानते थे कि काछलिया जो करना चाहते हैं, वही कहते हैं और जो-कुछ कहते हैं, वही करते हैं। सभामें दूसरे लोगोंने भी जोशीले भाषण दिये थे किन्तु मैंने सेठ काछलियाका भाषण इसलिए उद्धृत किया है कि यह भाषण उनके बादके कार्यकलापकी भविष्यवाणी साबित हुआ। जोशीले भाषण देनेवाले सभी लोग अपनी बातपर पक्के नहीं रह सके। इस नर-केसरीकी मृत्यु कौमकी सेवा करते हुए इस लड़ाईका अन्त हो जानेके चार वर्ष बाद १९१८में हुई।

इसका एक संस्मरण अन्यत्र कहीं नहीं दिया जा सकेगा, इसलिए मैं उसे भी यहीं दे देता हूँ। पाठक आगे चलकर टॉल्स्टॉय फार्मकी बात पढ़ेंगे। इस फार्ममें सत्याग्रहियोंके परिवार रहते थे। सेठ काछलियाने अपने लड़केको दूसरे लोगोंके सम्मुख उदाहरण रखने और सादा जीवनका अभ्यस्त-बनाने और लोक-सेवक तैयार करनेके लिए विचारसे वहाँ शिक्षा लेनेके लिए भेजा था। हम कह सकते हैं कि उन्हींके कारण दूसरे मुसलमानोंने भी अपने बच्चोंको वहाँ भेजा। बालक काछलियाका नाम अली था। उस समय उसकी

आयु १० या १२ वर्षकी थी। अली नम्र, चंचल, सत्यवादी और सरल बालक था। खुदाके फरिश्ते उसको भी सेठ काछलियाकी मृत्युसे पहले और इस लड़ाईके बाद खुदाके दरबारमें बुला ले गये। मेरा विश्वास है कि यदि यह बालक जीवित रहता तो अपने पिताकी कीर्तिको अवश्य बढ़ाता।

अध्याय १७

पहली फूट

१९०७की पहली जुलाई आ गई और परवाना देनेके दफ्तर भी खुल गये। कौमका आदेश हुआ कि हरएक दफ्तरपर खुले आम धरना दिया जाये, अर्थात् दफ्तरोंके रास्तोंपर स्वयंसेवक नियुक्त कर दिये जायें ताकि वे दफ्तरोंमें जानेवाले लोगोंको समझा-बुझाकर सावधान करें। हर स्वयंसेवकको लगानेके लिए एक विशिष्ट बिल्ला दिया गया और उसे यह बात खासतौरसे समझा दी गई कि परवाना लेनेवाले किसी भी हिन्दुस्तानीसे अशिष्ट व्यवहार न हो। स्वयंसेवक परवाना लेनेवालोंसे उनके नाम पूछें; किन्तु यदि वे न बतायें तो उनसे कोई जबर्दस्ती अथवा अशिष्ट व्यवहार न करें। वे एशियाई दफ्तरमें जानेवाले हर हिन्दुस्तानीको कानूनसे हो सकनेवाली हानियोंकी छपी सूची दें और उसमें क्या लिखा है यह बात समझा दें। वे पुलिसके साथ भी शिष्टता ही बरतें। यदि पुलिस उन्हें गालियाँ दे अथवा उनसे मारपीट करे तो वे यह सब शान्तिके साथ सहन कर लें। यदि वे मार बर्दाश्त न कर पायें तो वहाँसे चले जायें। यदि पुलिस उन्हें गिरफ्तार करे तो वे खुशीसे गिरफ्तार हो जायें। यदि ऐसी घटना जोहानिसबर्गमें हो तो वे उसकी सूचना मुझे दे दें। दूसरे स्थानोंमें ऐसी सूचना वहाँ नियुक्त किये गये मन्त्रियोंको दें और वे जैसा निर्देश दें वैसा करें। स्वयंसेवकोंकी हरएक टुकड़ीका एक मुखिया भी निश्चित किया गया। स्वयंसेवकोंको उसके आदेशके अनुसार चलना था।

भारतीय समाजके लिए इस प्रकारका यह पहला ही अनुभव था। १२ वर्षसे अधिक आयुके लोग धरने देनेवालोंमें अपना नाम लिखा सकते थे, इसलिए बारह वर्षसे अठारह वर्षतक के बहुत-से किशोरोंने धरनेदारोंकी सूचीमें नाम लिखाये। जिन्हें स्थानीय कार्यकर्त्ता नहीं जानते थे, ऐसे लोग धरनेदारोंमें नहीं लिये जाते थे। इस सावधानीके अतिरिक्त सभाओंमें घोषणा करके और अन्य प्रकारसे लोगोंको यह बता दिया गया था कि जो कोई हानिके भयसे अथवा अन्य कारणसे परवाना लेना चाहता हो, किन्तु धरनेदारोंसे डरता हो, उसे मुखियाकी ओरसे एक स्वयंसेवक दिया जायेगा और वह स्वयंसेवक उसको साथ ले जाकर एशियाई दफ्तरमें छोड़ देगा और उसका काम पूरा होनेपर उसे फिर धरनेदारोंकी हदसे बाहर पहुँचा आयेगा। कुछ लोगोंने इस सुरक्षा-व्यवस्थाका लाभ उठाया भी था।

स्वयंसेवकोंने सभी स्थानोंमें बहुत उत्साहसे काम किया। वे अपने कार्यमें सदा तत्पर और जागरूक रहते थे। सामान्यतः यह कहा जा सकता है कि पुलिस

उन्हें बहुत परेशान नहीं करती थी। यदि कभी परेशान करती भी तो स्वयंसेवक उसे सह लेते थे। स्वयंसेवकोंने इस कार्यमें हास्य-रसका मिश्रण भी किया था। उसमें कभी-कभी पुलिस भी भाग लेती थी। स्वयंसेवकोंने अपना समय हँसी-खुशीसे बितानेके लिए कई प्रकारके मनोरंजनके सूत्र-साधन खोज लिये थे। एक बार वे सार्वजनिक यातायातके कानूनके अन्तर्गत रास्तेमें रुकावट डालनेके जुर्ममें भी गिरफ्तार किये गये। सत्याग्रहमें असहयोग सम्मिलित नहीं था, इसलिए अदालतोंमें बचाव करनेकी मनाही नहीं थी। फिर भी यह सामान्य नियम तो रखा ही गया था कि सार्वजनिक धन बचानेकी दृष्टिसे वकील रखकर बचाव न किया जाये। इन स्वयंसेवकोंको अदालतने निरपराध कहकर छोड़ दिया। इससे उनके उत्साहमें और भी वृद्धि हुई।

इस प्रकार यद्यपि प्रकटतः स्वयंसेवकोंकी ओरसे परवाना लेनेके इच्छुक हिन्दुस्तानियोंके प्रति कोई अशिष्टता या जबर्दस्ती नहीं की जाती थी, फिर भी मुझे यह तो स्वीकार करना ही होगा कि इस लड़ाईमें एक ऐसा दल भी उत्पन्न हो गया था जिसका काम स्वयंसेवक बने बिना गुप्त रीतिसे परवाना लेनेवाले लोगोंको मारपीटकी धमकियाँ देना और अन्य प्रकारसे हानि पहुँचाना था। यह एक दुःखद बात थी। इसका पता ज्यों ही चला त्यों ही इसको रोकनेके कड़े उपाय किये गये। फलतः धमकियाँ देना लगभग बन्द हो गया; किन्तु इस बुराईकी जड़ सर्वथा नहीं कटी। ऐसी धमकियाँ थोड़ी-बहुत तो दी ही जाती रहीं और मैंने देखा कि उस हद तक आन्दोलनको हानि पहुँची। जिन्हें भय लगता था उन्होंने तुरन्त सरकारसे संरक्षण माँगा और सरकारने उनको संरक्षण दिया। इस प्रकार कौमके बीचमें विकार आया और दुर्बलोंकी दुर्बलता बढ़ी। कुछ लोगोंके मनमें दुर्बलता बढ़नेके परिणामस्वरूप परस्पर वैमनस्यमें भी वृद्धि हुई, क्योंकि दुर्बलका स्वभाव बदला लेना होता ही है।

इन धमकियोंका तो नहीं, किन्तु दो बातोंका अर्थात् लोकमतके दबाव और स्वयंसेवकोंके उपस्थित रहनेसे परवाना लेनेवालेका नाम समाजपर प्रकट होनेके भयका प्रभाव बहुत गहरा हुआ। मुझे ऐसा हिन्दुस्तानी तो कोई भी नहीं मिला जो खूनी कानूनको मानना अच्छा समझता हो। जो लोग परवाना लेने गये वे केवल कष्ट अथवा हानि सहन करनेकी अपनी असमर्थताके कारण गये और इस कारण उन्होंने लज्जाका अनुभव भी किया।

एक ओर लोक-लाज थी और दूसरी ओर अपने व्यापारको हानि पहुँचनेका भय। कुछ प्रमुख हिन्दुस्तानियोंने इन दोनों कठिनाइयोंमें से निकलनेका एक मार्ग खोजा। उन्होंने एशियाई दफ्तरसे मिलकर यह व्यवस्था की कि उस दफ्तरका कोई अधिकारी एक निजी मकानमें और वह भी रातको ९ या १० बजेके बाद आकर उनको परवाने दे दे। उन्होंने यह सोचा था कि ऐसा करनेसे कुछ समयतक तो लोगोंको यह पता ही न चलेगा कि हमने खूनी कानून मान लिया है और चूँकि वे लोग समाजमें काफी प्रतिष्ठित थे इसलिए उन्होंने यह भी माना था कि कुछ समय बाद दूसरे लोग भी उस कानूनको मान लेंगे, अधिक कुछ न होगा तो इससे कुछ दिन तो लज्जित होनेकी सम्भावना टल जायेगी और बादमें यह बात प्रकट हो भी गई तो उसकी क्या चिन्ता।

किन्तु स्वयंसेवक इतने जागरूक थे कि समाजको एक-एक क्षणकी गतिविधिका पता चलता रहता था। एशियाई दफ्तरमें भी कोई ऐसा अवश्य होगा जो सत्याग्रहियोंको इस तरहका समाचार दे देता था। फिर कुछ लोग ऐसे भी थे जो स्वयं कमजोर होनेपर भी यह सहन नहीं कर सकते थे कि उनके मुखिया कानूनके आगे झुक जायें। यदि मुखिया दृढ़ रहेंगे तो हम भी दृढ़ रह सकेंगे, वे इस शुद्ध भावसे सत्याग्रहियोंको सूचना दे देते थे। इस सावधानीके कारण एक बार यह समाचार मिला कि अमुक रातको अमुक दूकानमें अमुक-अमुक सज्जन परवाने लेंगे। इसलिए पहले तो समाजकी ओरसे ऐसा विचार करनेवाले लोगोंको समझाने-बुझानेका प्रयत्न किया गया और जब वे न समझे तो उस दूकानपर धरनेदार रख दिये गये। किन्तु मनुष्य कमजोरीमें पड़ जायें तो उसपर कबतक निगाह रखी जा सकती है? कुछ मुखियोंने काफी रात गये, १०–११ बजे परवाने ले लिये और एक स्वरमें बजती हुई बंशीके कुछ स्वर भंग हो गये। दूसरे दिन इन लोगोंके नाम समाजके आगे प्रकाशित कर दिये। किन्तु एक हदके बाद व्यक्ति लोक-लाजसे परे हो जाता है। जब स्वार्थ ही प्रधान हो जाता है, तब लोक-लाज भी व्यक्तिको नहीं रोक पाती और वह विपथगामी हो जाता है। इस पहली फूटके कारण धीरे-धीरे लगभग ५०० हिन्दुस्तानियोंने परवाने लिये। कुछ दिनतक तो निजी मकानोंमें परवाने लिये जाते रहे, किन्तु फिर लोक-लाजकी भावना कम होनेपर कुछ लोग खुल्लम-खुल्ला नाम लिखाने एशियाई दफ्तर भी जाने लगे।[1]

अध्याय १८

पहला सत्याग्रही कैदी

जब एशियाई दफ्तरको अथक प्रयत्न करनेपर भी पाँच सौसे अधिक नाम लिखानेवाले हिन्दुस्तानी नहीं मिले तब दफ्तरके अधिकारियोंने किसी प्रमुख व्यक्तिको गिरफ्तार करनेका निर्णय किया। पाठक जर्मिस्टन कस्बेका नाम पढ़ चुके हैं। वहाँ बहुत-से हिन्दुस्तानी रहते थे। उनमें रामसुन्दर पण्डित नामका एक व्यक्ति था। वह ऊपरसे साहसी दिखता था और वाचाल था। उसे कुछ श्लोक मुखाग्र थे। वह उत्तर हिन्दुस्तानका रहनेवाला था, इसलिए स्वभावतः उसे 'रामायण' के कुछ दोहे और चौपाइयाँ याद थीं। फिर पण्डित कहे जानेसे लोगोंमें उसकी कुछ प्रतिष्ठा भी थी। उसने जगह-जगह भाषण दिये और वे भाषण बड़े जोशीले थे। वहाँके कुछ विघ्नप्रिय हिन्दुस्तानियोंने एशियाई दफ्तरको बताया कि यदि पण्डित रामसुन्दर गिरफ्तार कर लिया जाये तो जर्मिस्टनके बहुत-से हिन्दुस्तानी एशियाई दफ्तरमें आकर परवाने ले लेंगे। इस दफ्तरके अधिकारी इस लालचको नहीं रोक सके; इसलिए उन्होंने रामसुन्दर पण्डितको गिरफ्तार कर लिया। चूँकि यह इस ढंगका पहला ही मामला था, इसलिए इससे सरकारी क्षेत्रों और हिन्दुस्तानी समाजमें बहुत खलबली मची। जिस रामसुन्दर पण्डितको

१. विस्तृत विवरणके लिए देखिए खण्ड ७।

केवल जर्मिस्टन ही जानता था वह क्षण-भरमें समस्त दक्षिण आफ्रिकामें प्रसिद्ध हो गया। जैसे किसी बड़े आदमीपर मुकदमा चले तो सबका ध्यान उसकी ओर खिंचता है, वैसे ही लोगोंका ध्यान रामसुन्दर पण्डितकी ओर खिंच गया। सरकारको शान्ति-रक्षा-की किसी प्रकारकी व्यवस्था करनेकी आवश्यकता नहीं थी। किन्तु उसने उसकी व्यवस्था की। अदालतमें भी रामसुन्दरका आदर इस खयालसे किया गया कि वह हिन्दुस्तानी कौमका प्रतिनिधि है, सामान्य अपराधी नहीं। अदालत उत्सुक हिन्दुस्तानियोंसे ठसाठस भर गई। रामसुन्दरको एक महीनेकी सादी कैदकी सजा दी गई। वह जोहानिस-बर्गकी जेलमें रखा गया और उसके लिए गोरे वार्डमें अलग कमरा दिया गया। लोगों-को उससे मुलाकात करनेमें तनिक भी कठिनाई नहीं होती थी। उसे बाहरसे खाना मँगानेकी इजाजत थी और कौमकी ओरसे उसके खाने-पीनेके लिए अच्छेसे-अच्छे व्यंजन भेजे जाते रहे। उसकी जो इच्छा होती वह पूरी की जाती। कौमने उसके जेल जानेका दिन बहुत धूमधामसे मनाया। निराशा किसीको नहीं हुई, बल्कि सबका उत्साह बढ़ा। सैकड़ों लोग जेल जानेके लिए तैयार हो गये। एशियाई दफ्तरने जो आशा की थी वह पूरी नहीं हुई। जर्मिस्टनके हिन्दुस्तानी भी परवाने लेनेके लिए नहीं आये। इस गिरफ्तारीका लाभ कौमको ही मिला। एक महीना पूरा होनेपर रामसुन्दर जेलसे छोड़ दिया गया। लोग उसे गाजे-बाजेसे जुलूस बनाकर सभास्थलमें ले गये। सभामें बहुत ही उत्साह-भरे भाषण दिये गये। रामसुन्दर फूल मालाओंसे ढंक दिया गया। स्वयंसेवकोंने उसके सम्मानमें भोज दिया और सैकड़ों हिन्दुस्तानियोंको यह लगा, 'हम भी जेल गये होते तो कैसा अच्छा होता' और उन्हें ऐसा मानकर उससे मधुर ईर्ष्या हुई।

किन्तु रामसुन्दर खोटा रुपया निकला। उसकी शक्ति झूठी सतीकी-सी थी। वह अकस्मात् गिरफ्तार किया गया था, इसलिए एक महीनेकी जेलसे बच निकलना तो उसके लिए सम्भव ही न था। उसे जेलमें जैसी अमीरी भोगनेको मिली वैसी उसने बाहर देखी भी न थी। फिर भी स्वतन्त्र घूमने-फिरने वाले व्यसनी मनुष्यको विविध व्यंजन मिलनेपर भी जेलका एकान्त और जेलका अनुशासन सह्य नहीं हो सकता। रामसुन्दर पण्डितके सम्बन्धमें भी ऐसा ही हुआ। कौमने और जेलके अधिकारियोंने उसकी पूरी खातिर-खुशामद की, किन्तु फिर भी उसे जेलमें रहना कड़वा लगा। फलतः वह ट्रान्सवालको और इस आन्दोलनको सदाके लिए नमस्कार करके चला गया। सभी समाजोंमें चतुर खिलाड़ी होते हैं और ऐसे लोग आन्दोलनोंमें भी आ जाते हैं। ये लोग रामसुन्दरकी रग-रगको जानते थे; किन्तु उससे कौमकी कोई अर्थ-सिद्धि हो सकती है यह समझकर उन्होंने रामसुन्दर पण्डितका गुप्त इतिहास मुझसे छुपा कर रखा और मुझे उसका कुछ भी पता तबतक नहीं चलने दिया जबतक उसकी पोल नहीं खुल गई। मुझे बादमें मालूम हुआ कि रामसुन्दर गिरमिटिया था, उसने अपनी गिरमिटकी मियाद पूरी नहीं की थी और उससे पहले ही भाग आया। वह गिरमिटिया था मैंने यह बात उसके प्रति घृणा व्यक्त करनेके लिए नहीं कही। गिरमिटिया होना कोई बुराई नहीं। इस आन्दोलनकी प्रतिष्ठा तो

गिरमिटियोंने ही बढ़ाई थी, यह बात पाठक अन्तमें देखेंगे। इस लड़ाईको जीतनेमें सबसे बड़ा हिस्सा उन्हींका था। रामसुन्दरका दोष यह था कि वह गिरमिटकी अवधि पूरी किये बिना भाग आया था।

किन्तु मैंने रामसुन्दरका यह हाल उसके दोष बतानेकी दृष्टिसे नहीं लिखा। किन्तु इस इतिहासमें जो तत्त्व छिपा है उसे स्पष्ट करनेकी दृष्टिसे ही इसे सम्मिलित किया है। प्रत्येक शुद्ध आन्दोलनके नेताओंका कर्त्तव्य है कि वे अपने आन्दोलनमें शुद्ध लोगोंको ही सम्मिलित करें। किन्तु भरपूर सावधानी रखनेपर भी अशुद्ध लोग उसमें आनेसे नहीं रुक सकते। ऐसा होनेपर भी यदि आन्दोलनके संचालक निडर और सच्चे हों तो उसमें अनजाने अशुद्ध लोगोंके घुस जानेसे अन्ततः हानि नहीं पहुँचती। रामसुन्दर पण्डितका असली रूप प्रकट हो गया तब उसका मूल्य नहीं रहा। उस बेचारेके नामसे पण्डित शब्द हट गया और वह केवल रामसुन्दर रह गया। हिन्दुस्तानी समाज उसे भूल गया, किन्तु उसकी गिरफ्तारीसे आन्दोलनको बल तो मिला ही। आन्दोलनके निमित्त भोगी हुई कैद बट्टे खातेमें नहीं गई, उसकी जेल-यात्रासे आन्दोलनको जो बल मिला, वह स्थायी रहा और उसके उदाहरणसे दूसरे निर्बल लोग इस आन्दोलनमें से अपने-आप चुपचाप खिसक गये। ऐसी निर्बलताकी कुछ दूसरे लोगोंकी मिसालें भी दिखाई दीं। उनका नाम-धाम देनेका मेरा कोई विचार नहीं है, क्योंकि उससे कोई प्रयोजन सिद्ध नहीं हो सकता। पाठकोंको कौमकी निर्बलता और सबलताका ध्यान भी बना रहे, इसलिए इतना कह देना आवश्यक है कि इस आन्दोलनमें रामसुन्दर एक ही नहीं था, बल्कि कई थे और इन सब रामसुन्दरोंने आन्दोलनकी सेवा ही की।

पाठक रामसुन्दरके दोष न देखें। इस संसारमें सभी मनुष्य अपूर्ण हैं। किसीकी अपूर्णता विशेष रूपसे दिखाई दे जाती है तो हम उसकी ओर उंगली उठाते हैं। वस्तुतः देखें तो ऐसा करना भूल है। रामसुन्दर जानबूझकर निर्बल नहीं बना। मनुष्य अपने स्वभावकी दशा बदल सकता है और उसको अपने वशमें रख सकता है, किन्तु उसको पूर्णतः ऐसा कौन कर सकता है? इस संसारके रचयिताने उसे इतनी स्वतन्त्रता दी ही नहीं है। यदि बाघ अपने चमड़ेकी विचित्रताको बदल सकता हो तो मनुष्य भी अपने स्वभावकी विचित्रताको बदल सकता है। रामसुन्दरको भाग जानेपर भी अपनी निर्बलतापर कितना पश्चात्ताप हुआ होगा, यह बात हम कैसे जान सकते हैं? क्या उसका भाग जाना ही उसके पश्चात्तापका एक प्रबल प्रमाण नहीं माना जा सकता? यदि वह निर्लज्ज होता तो उसे भागनेकी क्या आवश्यकता थी? वह परवाना लेकर खूनी कानूनके अंतर्गत सदा जेलसे बाहर रह सकता था; इतना ही नहीं, बल्कि यदि वह चाहता तो एशियाई दफ्तरका दलाल बनकर दूसरे लोगोंको भ्रमित कर सकता था और सरकार द्वारा मान भी पा सकता था। इसके बजाय हम इस घटनाका अर्थ ऐसा उदार क्यों न करें कि उसने कौमको अपनी निर्बलता बतानेमें लजानेके कारण अपना मुँह छिपा लिया और अपने इस कार्यसे भी हिन्दुस्तानी समाजकी सेवा ही की?

अध्याय १९

'इंडियन ओपिनियन'

हमें सत्याग्रहकी लड़ाईके बाहरी और भीतरी सभी साधन पाठकोंके सम्मुख रखने हैं, इसलिए 'इंडियन ओपिनियन' नामके साप्ताहिक अखबारका — वह दक्षिण आफ्रिकामें इस समय भी निकल रहा है, परिचय करा देना आवश्यक है। दक्षिण आफ्रिकामें पहला हिन्दुस्तानी छापाखाना खोलनेका श्रेय मदनजीत व्यावहारिक नामके गुजराती सज्जनको है। उन्होंने इस छापेखानेको कुछ सालतक मुसीबतें सहकर चलाया। उसके बाद उन्होंने एक अखबार निकालनेका विचार किया। उन्होंने इस सम्बन्धमें स्व० मनसुखलाल नाजरकी और मेरी सलाह ली। अखबार डर्बनसे निकाला गया।[1] मनसुखलाल नाजर अवैतनिक सम्पादक नियुक्त किये गये। इस अखबारमें प्रारम्भसे ही घाटा आने लगा। अन्तमें यह निश्चय किया गया कि छापेखानेमें काम करनेवाले लोगोंको भागीदार अथवा भागीदार जैसा बना लिया जाये, उनको एक फार्म खरीद कर उसमें बसाया जाये और फार्मसे ही अखबार निकाला जाये। यह फार्म डर्बनसे १३ मील दूर एक सुन्दर पहाड़ीपर है। वहाँसे सबसे अधिक पास रेलवेका जो फीनिक्स नामका स्टेशन है वह तीन मील दूर है। अखबारका नाम 'इंडियन ओपिनियन' है और वह प्रारम्भसे ही अंग्रेजी, गुजराती, तमिल, और हिन्दीमें प्रकाशित होता था। चूँकि तमिल और हिन्दीका बोझ हर तरहसे भारी लगता था तथा तमिल और हिन्दीके ऐसे लेखक जो फार्मपर रह सकें, नहीं मिलते थे और उनके लेखों पर नियन्त्रण रखना सम्भव न था; इसलिए ये दोनों विभाग बादमें बन्द कर दिये गये[2] और अंग्रेजी तथा गुजरातीके विभाग चालू रखे गये। जब सत्याग्रहकी लड़ाई शुरू हुई तब यह अखबार इसी रूपमें निकलता था। उक्त संस्थामें गुजराती, तमिल, उत्तर भारतीय और अंग्रेज सभी रहते थे। मनसुखलाल नाजरकी असमय मृत्यु हो जानेपर एक अंग्रेज मित्र हरबर्ट किचिन सम्पादक बनाये गये। हेनरी पोलक तो बहुत वर्ष सम्पादक रहे। जब मैं और श्री पोलक जेलमें थे तब कुछ समयतक उसका सम्पादन पादरी सज्जन जोजेक डोकने किया। अखबारकी मारफत कौमको प्रति सप्ताह पूरी खबरें देनेका काम भली-भाँति किया जा सकता था। अंग्रेजी विभागकी मारफत गुजराती न जाननेवाले हिन्दुस्तानियोंको थोड़ा बहुत लड़ाईका शिक्षण मिलता और हिन्दुस्तान, इंग्लैंड और दक्षिण आफ्रिकाके अंग्रेजोंके लिए तो 'इंडियन ओपिनियन' साप्ताहिक समाचार पत्रका काम देता। मेरी मान्यता है कि जिस लड़ाईका आधार आन्तरिक बल हो वह लड़ाई अखबारके बिना चलाई जा सकती है, किन्तु साथ ही मेरा अनुभव यह भी है कि 'इंडियन ओपिनियन' के होनेसे हमें कौमको आसानीसे शिक्षा दे सकने और संसारमें जहाँ-जहाँ हिन्दुस्तानी रहते थे वहाँ-वहाँ हमारी हलचलोंकी खबरें भेजते रहनेमें आसानी हुई।

१. १९०३ में; देखिए खण्ड ३, पृष्ठ ३३६। अक्तूबर १९०४ से गांधीजीने इसे अपने हाथमें ले लिया; देखिए खण्ड ४, पृष्ठ ३५८-५९।

२. फरवरी १९०६ में। देखिए खण्ड ५, पृष्ठ १८२ और १९१।

यह सब काम कदाचित् किसी दूसरी रीतिसे नहीं किये जा सकते थे। इसलिए यह निश्चित रूपसे कहा जा सकता है कि लड़ाईके साधनोंमें 'इंडियन ओपिनियन' भी एक बहुत उपयोगी और सबल साधन था।

जैसे-जैसे कौममें लड़ते-लड़ते और अनुभव करते-करते परिवर्तन हुए वैसे-वैसे 'इंडियन ओपिनियन' में भी परिवर्तन हुए। इस पत्रमें पहले विज्ञापन लिये जाते थे और छापेखानेमें छपाईका बाहरका फुटकर काम भी किया जाता था। मैंने देखा कि हमारे सर्वोत्तम कार्यकर्त्ता इन दोनों कामोंमें खप जाते हैं। विज्ञापन लेने ही हों तो कौन-से विज्ञापन लिये जायें और कौन-से न लिये जायें यह तय करनेमें सदा धर्म-संकट उपस्थित होता है। फिर किसी अनुचित विज्ञापनको न लेनेका निर्णय करते हुए यदि विज्ञापन कौमके किसी नेताका हो तो उसका मन न दुखे इस खयालसे अनुचित होनेपर भी उसको लेनेकी बात सोचनी पड़ती थी। विज्ञापन प्राप्त करनेमें और उनका पैसा इकट्ठा करनेमें अच्छे-अच्छे कार्यकर्त्ताओंका समय जाता और लोगोंकी खुशामद करनी पड़ती सो अलग। यह भी विचार आया कि यदि अखबारको धन कमानेके लिए नहीं, बल्कि जातिकी सेवाके लिए चलाया जा रहा हो तो यह सेवा जबर्दस्ती नहीं की जानी चाहिए, बल्कि जातिकी इच्छा हो तभी की जानी चाहिए। जाति अखबार द्वारा सेवा चाहती है या नहीं इसका निश्चित प्रमाण तो यही माना जा सकता है कि जातिके लोग उचित संख्यामें ग्राहक बनकर उसका खर्च उठा लें। फिर यह भी सोचा कि अखबारको चलानेके लिए उसका माहवारी खर्च निकालनेकी खातिर कुछ व्यापारियोंको सेवाभावके नामसे विज्ञापन देनेके लिए समझानेकी अपेक्षा जातिके सामान्य वर्गको अखबार खरीदनेका कर्त्तव्य समझानेमें लुभानेवाले और लुभाये जानेवाले दोनों ही पक्षोंको अधिक अच्छी शिक्षा मिल सकती है। यह विचार निश्चित होते ही कार्यान्वित किया गया। परिणाम यह हुआ कि जो लोग विज्ञापन आदिकी झंझटमें पड़े थे, वे अखबारको सुन्दर बनानेके कार्यमें जुट गये। जातिने तुरन्त समझ लिया कि 'इंडियन ओपिनियन' उसकी अपनी मिल्कियत है और उसको चलानेकी जिम्मेदारी भी उसीकी है। हम सभी कार्यकर्त्ता निश्चिन्त हो गये। हमें इतनी ही चिन्ता करनी रह गई कि यदि जाति अखबारकी माँग करती रहे तो उसको निकालनेमें पूरी मेहनत करें। हमें किसीका हाथ पकड़कर 'इंडियन ओपिनियन' खरीदनेके लिए कहनेमें भी संकोच न रहा। इतना ही नहीं, बल्कि हम सभीको उसे खरीदनेके लिए कहना अपना कर्त्तव्य मानने लगे। 'इंडियन ओपिनियन' का आन्तरिक बल और रूप भी बदल गया और वह पत्र एक महान् शक्ति बन गया। जहाँ सामान्यतः उसके १२०० से १५०० तक ग्राहक होते थे, वहाँ अब उनकी संख्या दिन-प्रतिदिन बढ़ने लगी। अखबारका मूल्य बढ़ाना पड़ा था, फिर भी जब आन्दोलनने उग्र रूप लिया तब उसकी ग्राहक-संख्या ३५०० तक बढ़ गई थी। 'इंडियन ओपिनियन' के पाठकोंकी संख्या तो २०,००० तक रही होगी। इनमें ३००० से अधिक प्रतियोंका खरीदकर पढ़ा जाना पत्रका आश्चर्यजनक प्रचार माना जा सकता है। जातिने इस अखबारको इतना अपना लिया था कि यदि निश्चित

समयपर वह कभी जोहानिसबर्गमें न पहुँच पाता तो मेरे पास शिकायतोंका ढेर लग जाता। अखबार प्रायः रविवारके सवेरे जोहानिसबर्ग पहुँचता था। मुझे मालूम है कि बहुतसे लोग अखबार आते ही पहला काम यह करते कि उसके गुजराती भागको आदिसे अन्ततक पढ़ जाते। कोई एक मनुष्य अखबार पढ़ता और दस-पाँच मनुष्य उसके इर्द-गिर्द बैठकर उसे सुनते। कुछ लोग गरीब होनेके कारण मिल-जुलकर भी अखबार खरीदते थे।

छापेखानेमें फुटकर काम बन्द करनेकी बात मैं लिख चुका हूँ। जो कारण विज्ञापन बन्द करनेके थे, प्रायः वे ही कारण इस कामको बन्द करनेके भी थे।[1] इसके बन्द करनेसे कम्पोजीटरोंका जो वक्त बचा उसका उपयोग छापेखानेसे पुस्तकें प्रकाशित करनेमें किया गया। जाति जानती थी कि हमारे इस कार्यका उद्देश्य भी धन कमाना नहीं है। फिर पुस्तकें भी लड़ाईमें सहायता देनेके लिए ही प्रकाशित की जाती थीं, इसलिए उनकी बिक्री भी पर्याप्त होने लगी। इस प्रकार अखबार और छापेखाने दोनोंका लड़ाईमें हिस्सा रहा। सत्याग्रहकी जड़ें जातिमें ज्यों-ज्यों गहरी होती गई त्यों-त्यों सत्याग्रहकी दृष्टिसे अखबार और छापेखानेकी नैतिक उन्नति होती गई, यह स्पष्ट रूपसे देखा जा सकता था।

अध्याय २०

पकड़-धकड़

रामसुन्दरकी गिरफ्तारीसे सरकारको कोई सहायता न मिल सकी, यह हम देख चुके हैं। बल्कि, अधिकारियोंने यह देखा कि जाति और उत्साहमें भरकर संगठित रूपसे आगे बढ़ने लगी है। एशियाई विभाग के अधिकारी 'इंडियन ओपिनियन' के लेखोंको तो ध्यानसे पढ़ते ही थे। लड़ाईके सम्बन्धमें कोई भी बात छुपाकर नहीं रखी जाती थी। जातिकी निर्बलता और सबलताको शत्रु, मित्र और उदासीन, जो भी चाहें अखबारको पढ़कर देख सकते थे। कार्यकर्त्ताओंने पहलेसे ही जान लिया था कि जिस लड़ाईमें कोई बुरा काम नहीं करना है, जिसमें धोखाधड़ी अथवा चालबाजीकी कोई भी गुंजाइश नहीं हैं और जिसमें बल होता तो ही जीत हो सकती है, उसमें छुपाने योग्य कोई बात हो ही नहीं सकती। जातिके स्वार्थका यह तकाजा था कि यदि निर्बलता रूपी रोगको निर्मूल करना हो तो उस निर्बलताकी परीक्षा करके उसे यथोचित् रूपसे प्रकट करना चाहिए। अखबार इसी नीतिके आधारपर चलाया जा रहा है, जब यह बात अधिकारियोंको मालूम हो गई तो उनके लिए अखबार जातिके वर्तमान इतिहासको जाननेके लिए दर्पण रूप बन गया और इसीलिए उन्होंने सोचा कि जबतक खास-खास नेताओंको न पकड़ा जायेगा तबतक इस लड़ाईका बल कदापि न टूटेगा।

१. विज्ञापन न देनेका निर्णय १९१२ में किया गया, लेकिन फुटकर काम उससे काफी समय पूर्व बन्द कर दिया गया था। देखिए खण्ड ११, पृष्ठ ३२२-२३ और ३२६ ।

इसलिए उन्होंने दिसम्बर १९०७ में कुछ नेताओंको अदालतमें हाजिर होनेके नोटिस दिये। मुझे यह बात स्वीकार करनी चाहिए कि अधिकारियोंने इस तरहके नोटिस देकर सभ्यताका ही व्यवहार किया। वे चाहते तो नेताओंको वारंटोंके जरिए पकड़ सकते थे। उन्होंने ऐसा न करके उनको अदालतमें हाजिर होनेके नोटिस भेजे, इससे अधिकारियोंने सभ्यताका व्यवहार करनेके साथ-साथ अपना यह विश्वास भी प्रकट किया था कि हिन्दुस्तानी नेता गिरफ्तार होनेके लिए तैयार हैं। नोटिसोंमें कहा गया था, 'कानूनके मुताबिक आप लोगोंको परवाने लेने थे; किन्तु आपने वे नहीं लिये। आप अदालतमें आकर इस बातका जवाब दें कि आपको एक खास मुद्दतके भीतर ट्रान्सवाल-से निकल जानेका हुक्म क्यों न दिया जाये?' इसके मुताबिक २८ दिसम्बर १९०७ को नेताओंको अदालतमें आना था और वे उस दिन अदालतमें हाजिर हो गये।[1]

इन नेताओंमें क्विन नामका जोहानिसबर्गमें रहनेवाला चीनियोंका नेता भी था। जोहानिसबर्गमें चीनियोंकी आबादी ३०० और ४०० के बीच होगी। वे सब या तो व्यापार करते हैं या छोटा-मोटा खेतीका काम। हिन्दुस्तान खेतीके लिए प्रसिद्ध है; किन्तु मेरी मान्यता है कि खेतीमें जितनी उन्नति चीनियोंने की है उतनी हमने नहीं की। इन दिनोंमें अमेरिका और अन्य पाश्चात्य देशोंने खेतीमें जो प्रगति की है, उसका वर्णन तो किया ही नहीं जा सकता, किन्तु पाश्चात्य कृषिको भी अभी प्रयोगकी अवस्थामें ही मानता हूँ। किन्तु चीन तो हमारे देशकी भाँति ही एक प्राचीन देश है और वहाँ प्राचीन कालसे खेतीका विकास किया गया है। इसलिए हम चीन और हिन्दुस्तानकी तुलना करके कुछ सीख सकते हैं। जोहानिसबर्गमें चीनियोंकी खेती देख-कर और उनसे बातचीत करके मुझे तो ऐसा लगा कि चीनियोंका खेतीका ज्ञान हमसे बढ़ा-चढ़ा है और वे हमारी अपेक्षा उद्योगी भी अधिक हैं। हम बंजर मानकर जिस जमीनका कोई उपयोग नहीं करते, चीनी लोग उसमें अच्छी फसलें उगा सकते हैं। वे अपने विभिन्न खेतोंका सूक्ष्म ज्ञान रखते हैं।

इस उद्योगी और चतुर जातिपर भी खूनी कानून लागू होता था। इसलिए उसने भी इस लड़ाईमें हिन्दुस्तानियोंका साथ देना उचित समझा था। फिर भी शुरूसे लेकर आखिरतक दोनों जातियोंका समस्त कामकाज बिलकुल अलग रहा। दोनों अपनी संस्थाओंकी मार्फत लड़ाई लड़ रही थीं। ऐसी नीतिका एक शुभ परिणाम यह होता है कि जबतक दोनों जातियाँ दृढ़ रहती हैं तबतक दोनोंको लाभ पहुँचता है, किन्तु जब एक हार जाता है तो दूसरीको उससे हानि पहुँचनेका कोई कारण नहीं होता और वह चाहे तो हार सकती ही नहीं। अन्तमें तो बहुतसे चीनियोंने हार मान ली थी, क्योंकि उनके नेताने उनको धोखा दिया था। उनका नेता कानूनके आगे तो नहीं झुका, किन्तु एक दिन मुझे किसीने बताया कि वह बिना हिसाब-किताब दिये भाग गया है। नेताके भाग जानेपर अनुयायियोंका टिकना सदा कठिन होता

१. जिन लोगोंपर मुकदमा चलाया गया था उनमें गांधीजीके साथ पी० के० नायडू, सी० एम० पिल्ले, थम्बी नायडू, कड़वा और ईस्टन, क्विन तथा जॉन फोर्तोएन तीन चीनी भी थे। देखिए खण्ड ७, पृष्ठ ४५८-६४ तथा पृष्ठ ४७०।

है। फिर जब नेतामें कोई दोष दिखाई दे तब तो दोहरी निराशा उत्पन्न होती है। किन्तु जब पकड़-धकड़ शुरू हुई थी उस समय चीनी बहुत जोशमें थे। उनमें से शायद ही किसीने परवाना लिया हो। इसलिए हिन्दुस्तानी नेताओंकी तरह चीनियोंके कर्त्ता-धर्त्ता श्री क्विन भी गिरफ्तार किये गये। कहा जा सकता है कि उन्होंने कुछ समयतक तो अच्छा काम किया।

गिरफ्तार हुए लोगोंमें से जिस दूसरे मुखियाका परिचय मैं इस स्थानपर देना चाहता हूँ वे हैं थम्बी नायडू। थम्बी नायडू तमिल थे। उनका जन्म मॉरिशसमें हुआ था। किन्तु उनके माता-पिता मॉरिशस मद्रास अहातेसे आजीविका कमानेके लिए आये थे। थम्बी नायडू सामान्य व्यापारी थे। उनकी स्कूली शिक्षा नहींके बराबर ही थी। किन्तु उनका अनुभवजन्य ज्ञान उच्च प्रकारका था। वे अंग्रेजी भली-भाँति बोल और लिख सकते थे, यद्यपि उसमें भाषा-विज्ञानकी दृष्टिसे दोष दिखते थे। उन्होंने तमिलका ज्ञान भी अनुभवसे ही प्राप्त किया था। ये हिन्दुस्तानी भी अच्छी तरह समझ और बोल लेते थे। उनका तेलुगुका ज्ञान भी पर्याप्त था, किन्तु वे नागरी और तेलुगु लिपियाँ नहीं जानते थे। थम्बी नायडूको मॉरिशसकी भाषा क्रीओलका, जो फ्रान्सीसी भाषाका अपभ्रंश मानी जाती है, ज्ञान भी बहुत अच्छा था। वे अकेले ही ऐसे दक्षिण भारतीय न थे जिन्हें इतनी भाषाओंका व्यावहारिक ज्ञान था। दक्षिण आफ्रिकामें ऐसे सैकड़ों हिन्दुस्तानी मिल सकते हैं जिन्हें इन सब भाषाओंका सामान्य ज्ञान हो। फिर इन सबके साथ-साथ उन्हें हब्शियोंकी भाषाका ज्ञान भी होता ही है। इन सब भाषाओंका ज्ञान उनको अनायास ही हो जाता है और हो सकता है। इसका कारण मुझे तो यही दिखाई दिया कि उनके मस्तिष्क परायी भाषाके माध्यमसे शिक्षा प्राप्त करके थके हुए नहीं होते। उनकी स्मरण-शक्ति तीव्र होती है और वे इन भाषाओंको बोलने वालोंके साथ रहते-रहते इन भिन्न-भिन्न भाषाओंका ज्ञान प्राप्त करते हैं। उन्हें इसमें अधिक माथा-पच्ची नहीं करनी पड़ती। बल्कि इस प्रकारके सुगम मानसिक व्यायामसे उनकी बुद्धिका स्वाभाविक विकास हो जाता है। ऐसा ही बौद्धिक विकास थम्बी नायडू का भी हुआ था। उनकी बुद्धि बहुत तीव्र थी। वे नये-नये प्रश्नोंको बहुत शीघ्र समझ लेते थे। उनकी हाजिर-जवाबी देखकर तो अचम्भा होता था। यद्यपि उन्होंने हिन्दुस्तान नहीं देखा था, फिर भी हिन्दुस्तानके प्रति उनका प्रेम अगाध था। देशभक्ति उनकी रग-रगमें व्याप्त थी। उनकी दृढ़ताका तो उनके चेहरेसे ही अनुमान हो जाता था। उनका शरीर सुदृढ़ और सुगठित था। वे श्रम करते हुए थकते ही नहीं थे। वे किसी सभाकी अध्यक्षताका निर्वाह उचित रूपसे कर सकते थे और इतने ही स्वाभाविक रूपसे भार-वाहकका काम भी। बोझा उठाकर आम रास्तोंपर चलनेमें उन्हें तनिक भी संकोच नहीं होता था। मेहनतकी आवश्यकता होनेपर तो वे रात-दिनका भेद करना जानते ही नहीं थे। जातिके निमित्त सर्वस्व होमनेमें वे किसीके भी साथ होड़ कर सकते थे। यदि थम्बी नायडू अति साहसी न होते और उनमें क्रोध न होता तो यह वीर पुरुष इस समय ट्रान्सवालमें काछलियाकी अनुपस्थितिमें जातिका नेतृत्व सहज ही सँभाल सकता था। जबतक ट्रान्सवालकी लड़ाई जारी रही

तबतक उनके क्रोधका विपरीत परिणाम नहीं हो सका, और उनके अमूल्य गुण रत्नोंकी भाँति चमकते रहे। किन्तु बादमें मुझे मालूम हुआ कि उनका अति-साहस और क्रोध उनके प्रबल शत्रु सिद्ध हुए और उन्होंने उनके गुणोंको ढक लिया। कुछ भी हो, दक्षिण आफ्रिकाकी सत्याग्रहकी लड़ाईके इतिहासमें थम्बी नायडूका नाम सदा प्रथम श्रेणीमें ही रहेगा।[१]

हम सबको अदालतमें साथ ही हाजिर होना था पर सबपर मुकदमे अलग-अलग ही चलाये गये थे। मजिस्ट्रेटने कुछ लोगोंको ४८ घंटेमें और कुछको ७ या १४ दिनमें ट्रान्सवालसे चले जानेकी आज्ञा दी थी।

इस आज्ञाकी अवधि १० जनवरी १९०८ को पूरी होती थी और हमें उसी दिन सजा सुननेके लिए अदालतमें हाजिर होनेकी आज्ञा दी गई थी।[२]

हममें से किसीको अपना बचाव तो करना था ही नहीं। हमें तो अपना यह अपराध स्वीकार करना था[३] कि मजिस्ट्रेटको इस बातका विश्वास न दिला सकनेपर कि हमें कानूनके मुताबिक जो परवाना लेना था, सो हमने लिया है और इसलिए अदालतने हमें एक निर्दिष्ट अवधिके भीतर ट्रान्सवाल छोड़कर चले जानेकी जो आज्ञा दी, उसका हमने उल्लंघन किया है।

मैंने अदालतसे एक छोटा-सा वक्तव्य देनेकी अनुमति माँगी और उसने मुझे अनुमति दे दी। मैंने इस आशयका वक्तव्य दिया:[४]

'मेरे मुकदमेमें और मेरे बादमें जो मुकदमे किये जाने हैं उनमें अन्तर किया जाना चाहिए। मुझे अभी प्रिटोरियासे खबर मिली है कि वहाँ मेरे देश-बन्धुओंको तीन-तीन महीनेकी कड़ी कैदीकी और भारी जुर्मानेकी सजाएँ दी गई हैं। उन्हें जुर्माने न देनेपर तीन-तीन महीनेकी कड़ी कैद और भुगतनी होगी। यदि उन लोगोंने अपराध किया है तो मैंने उनसे बड़ा अपराध किया है। इसलिए मैं मजिस्ट्रेटसे प्रार्थना करता हूँ कि वे मुझे बड़ीसे-बड़ी सजा दें।' किन्तु मस्जिस्ट्रेटने मेरे इस वक्तव्यपर कोई ध्यान नहीं दिया और मुझे दो महीनेकी सादी कैदीकी सजा दी।[५] उस समय मुझे यह विचार विचित्र अवश्य लगा कि मैं जिस अदालतमें सैकड़ों बार वकीलकी हैसियतसे खड़ा हुआ था और वकील-समुदायके साथ बैठा था, उसीमें मैं आज अपराधियोंके कठघरेमें खड़ा हूँ। किन्तु इतना तो मुझे ठीक-ठीक याद है कि मैं वकील मण्डलकी बैठकमें बैठनेमें जो सम्मान मानता था, अपराधियोंके कठघरेमें खड़ा होनेमें मैंने उससे अधिक सम्मान माना। उसमें खड़े होते वक्त मुझे लेशमात्र भी क्षोभ होनेका

१. इसके बादका एक वाक्य और एक अनुच्छेद अंग्रेजीसे अनूदित हैं।

२. देखिए खण्ड ८, पृष्ठ ३६-७।

३. इसके बादका अंश अंग्रेजीसे अनूदित हैं। मूल गुजराती पाठमें यहाँ ये पंक्तियाँ हैं। "मैंने अदालतके सामने कोई इकरार भी पेश नहीं किया था। मैंने विचारपूर्वक और धर्म समझकर खूनी कानूनका विरोध किया है, और इसके लिए जो सजा मिली है उसे सहन करनेमें मैं अपना गौरव मानता हूँ। मैंने इस आशयका वक्तव्य दिया था। मुझे दो मासकी सादा कैदकी सजा मिली।"

४. देखिए खण्ड ८, पृष्ठ ३६-७।

५. यहाँतकका अंश अंग्रेजीसे अनूदित है।

स्मरण नहीं है। मैं अदालतमें सैकड़ों हिन्दुस्तानी भाइयों, वकीलों और मित्रोंके सामने खड़ा था। ज्यों ही मुझे सजा सुनाई गई त्यों ही मुझे एक सिपाही दरवाजेसे उस जगह ले गया जहाँ कैदी बाहर ले जानेसे पहले रखे जाते थे।

उस समय मुझे अपने आसपास सब सुनसान दिखाई दिया। वहाँ कैदियोंके बैठनेकी बेंच पड़ी थी। सिपाही मुझे उसपर बैठनेका आदेश देकर दरवाजा बन्द करके चला गया। यहाँ मुझे अवश्य क्षोभ हुआ। मैं गहरे विचारमें डूब गया। कहाँ है मेरा घर-बार! कहाँ है मेरी वकालत! कहाँ हैं वे सभाएँ! यह सब स्वप्नवत् हो गया। आज मैं कैदी हूँ! दो महीनेमें क्या होगा? क्या दो महीनेकी कैद पूरी काटनी पड़ेगी? यदि सब लोग अपने वचनके अनुसार जेलमें आयेंगे तो दो महीनेकी कैद क्यों काटनी पड़ेगी? किन्तु यदि सब जेलमें नहीं आयेंगे तो दो महीने कितने लम्बे हो जायेंगे? इन विचारोंको लिखनेमें जितना समय लग रहा है, उनको मेरे मनमें आनेमें उसका सौवाँ भाग भी नहीं लगा होगा। यह विचार जैसे ही मेरे मनमें आये मैं वैसे ही लजा गया। यह कितना बड़ा मिथ्या अभिमान है। मैं तो लोगोंसे कहता था कि वे जेलको महल मानें। खूनी कानूनका विरोध करते हुए जो कष्ट सहन करने पड़ें उन्हें सुख समझें और इस कानूनके विरुद्ध सत्याग्रह करते हुए प्राण देनेमें और सम्पत्तिका त्याग करनेमें आनन्द मानें। मेरा यह सब ज्ञान कहाँ चला गया? ये विचार मनमें आते ही मैं फिर सुस्थिर हो गया और मुझे अपनी मूर्खतापर हँसी आ गई। उसके बाद मैं इन व्यावहारिक विचारोंमें पड़ गया कि दूसरे भाइयोंको कैसी कैद मिलेगी और क्या वे भी मेरे ही साथ रखे जायेंगे। मैं इस उधड़बुनमें पड़ा ही था कि इतनेमें दरवाजा खुला और पुलिसके सिपाहीने मुझे अपने पीछे आनको कहा। मैं उसके पीछे चला। उसके बाद उसने मुझे आगे कर लिया और वह मेरे पीछे-पीछे चला। वह मुझे जेलकी सींखचेदार गाड़ीके पास ले गया और मुझे उसमें बैठ जानेको कहा। वहाँसे मैं गाड़ीमें जोहानिसबर्ग जेलकी ओर ले जाया गया।[1]

जेलमें पहुँचनेपर मेरे कपड़े उतरवाये गये। मैं जानता था कि जेलमें कैदियोंको नंगा किया जाता है। हम सबने निश्चय किया कि हम जेलके कायदे कानूनोंको जबतक वे अपमानजनक और धर्म-विरुद्ध न होंगे स्वेच्छासे मानेंगे। हमने यह सत्याग्रहीका धर्म माना था। मुझे जो कपड़े पहननेको दिये गये वे बहुत गन्दे थे। मुझे उन कपड़ोंको पहनना तनिक भी नहीं रुचा। उनको पहननेके लिए अपने मनको दबाते हुए मुझे दुःख हुआ, किन्तु कुछ गन्दगी तो सहन करनी ही पड़ेगी, यह सोचकर मैंने अपने मनपर अंकुश रखा। मेरा नाम-धाम लिखकर जेल कर्मचारी मुझे एक बड़ी कोठरीमें ले गये। मैं वहाँ थोड़ी ही देर बैठा था कि मेरे साथी भी हँसते-बोलते वहाँ आ गये। उन्होंने मुझे बताया कि मेरे बाद उनका मुकदमा किस तरह चला और क्या-क्या हुआ। उन्हें भी मेरे बराबर सादे कैदकी सजा दी गई थी।[2] उन्होंने बताया कि मेरा मुक-

१. जोहानिसबर्ग जेलके अनुभवोंके लिए देखिए खण्ड ८।

२. यह वाक्य अंग्रेजीसे अनूदित है।

दमा तय होनेके बाद लोगोंने काले झंडे हाथमें लेकर एक जुलूस निकाला था। कुछ लोग उत्तेजित भी हुए थे। पुलिसने हस्तक्षेप किया। दो चार लोगोंको मार भी पड़ी। मैं उनकी बातचीतसे बस इतना ही जान सका। हम सभी लोग एक ही जेलमें और एक ही कोठरीमें रखे गये थे, इससे हमें बहुत प्रसन्नता हुई।

छः बजेके करीब हमारी कोठरीका दरवाजा बन्द कर दिया गया। जेलकी कोठरियोंके दरवाजोंमें सींखचे नहीं थे। हवा आनेके लिए दीवारमें बहुत ऊँचाईपर एक छोटा-सा झरोखा था। इससे हमें तो ऐसा लगा मानो हम तिजोरीमें बन्द कर दिये गये हों। पाठक देखेंगे कि जेल अधिकारियोंने रामसुन्दरका जैसा आदर-सत्कार किया था वैसा हमारा नहीं किया। इसमें आश्चर्यकी कोई बात नहीं। रामसुन्दर पहला सत्याग्रही कैदी था, इसलिए अधिकारी ठीक तरहसे यह नहीं सोच पाये थे कि उसके साथ कैसा व्यवहार किया जाये। हम लोगोंकी संख्या तो पहलेसे ही काफी थी और सरकारका इरादा दूसरे लोगोंको गिरफ्तार करनेका भी था। इसलिए हम हब्शियोंके वार्डमें रखे गये। दक्षिण आफ्रिकाकी जेलोंमें दो ही विभाग होते हैं — एक गोरोंका और दूसरा कालोंका। हिन्दुस्तानी कैदियोंकी गिनती भी हब्शियोंके ही वर्गमें की जाती है।[1]

सुबह होनेपर हमें मालूम हुआ कि सादी कैद पाये हुए कैदियोंको अपने कपड़े पहननेका हक होता है। यदि वे अपने कपड़े न पहनना चाहें तो उन्हें सादी कैदके कैदियोंके लिए निश्चित अलग कपड़े दिये जाते हैं। हमने निश्चय किया था कि घरके कपड़े पहनना तो अनुचित ही है, जेलके कपड़े पहनना ठीक होगा। हमने इसकी सूचना अधिकारियोंको दे दी। इसलिए हमें सादी कैदवाले हब्शी कैदियोंके कपड़े दिये गये। किन्तु दक्षिण आफ्रिकाकी जेलोंमें अवश्य ही सादी कैद पाये हुए कैदी बहुत नहीं होते। इसलिए जब सादी कैद पाये हिन्दुस्तानी कैदी ज्यादा आये तब जेलमें उक्त प्रकारके कैदियोंके कपड़े खत्म हो गये। हमें तो इस सम्बन्धमें कोई झगड़ा करना था ही नहीं, इसलिए हमने कड़ी कैदवाले कैदियोंके कपड़े पहननेमें आनाकानी नहीं की। पीछे आनेवाले कुछ हिन्दुस्तानी कैदियोंने इन कपड़ोंके बजाय अपने कपड़े ही पहनना पसन्द किया। यह बात मुझे ठीक नहीं लगी, किन्तु मुझे इस सम्बन्धमें आग्रह करना उचित नहीं जान पड़ा।

दूसरे या तीसरे दिनसे ही जेलमें सत्याग्रही कैदी भरने लगे। वे तो जानबूझकर गिरफ्तार होते थे। इनमें प्रायः सब फेरीदार थे। दक्षिण आफ्रिकामें गोरे और काले सभी फेरीदारोंको फेरीके परवाने लेने पड़ते हैं। उन्हें इन परवानोंको सदा साथ रखना और माँगनेपर पुलिसको दिखाना आवश्यक होता है। प्रायः कोई न कोई पुलिस सिपाही रोज ही परवाना देखता और जो नहीं दिखाते उनको गिरफ्तार कर लेता। मेरी गिरफ्तारीके बाद कौमने जेलें भर देनेका निश्चय किया था। इसमें फेरीदार सबसे आगे थे। उनका गिरफ्तार होना आसान भी था। वे फेरीका परवाना न दिखाते और गिरफ्तार हो जाते। इस प्रकार एक सप्ताहमें गिरफ्तार किये हुए

१. मूल गुजरातीमें यहाँ यह वाक्य है: मेरे साथियोंको भी मेरी तरह सादी कैदकी सजा हुई थी।

सत्याग्रही कैदियोंकी संख्या १०० से अधिक हो गई। थोड़े बहुत कैदी तो हर रोज ही आते थे। इससे अखबारके बिना ही हमें खबरें अखबारकी तरह मिल जाती थीं। ये भाई रोजकी खबरें लाते। जब बहुत अधिक सत्याग्रही गिरफ्तार होने लगे तब या तो मजिस्ट्रेट सादी कैदकी सजाएँ देते-देते थक गये या उनसे सरकारने ही सत्याग्रहियोंके बारेमें यह निर्देश दे दिया था, इसलिए सत्याग्रहियोंको कड़ी कैदकी सजा दी जाने लगी। मेरा खयाल यह है कि मजिस्ट्रेटोंको सरकारका ही यह निर्देश मिला था। मुझे आज भी यह लगता है कि इस सम्बन्धमें कौमका अनुमान ठीक ही था, क्योंकि जिन शुरूआतके मुकदमोंमें सादी कैदकी सजा दी गई थी उनके बाद इस लड़ाईमें, और बादमें समय-समयपर लड़ी जानेवाली अन्य लड़ाइयोंमें भी, किसी भी पुरुषको तो क्या, किसी स्त्रीको भी ट्रान्सवाल या नेटालकी किसी भी अदालतसे सादी कैदकी सजा नहीं दी गई। जबतक सभीको एक ही प्रकारका निर्देश या आदेश न दिया जाये तबतक मजिस्ट्रेट हर बार हर पुरुष और स्त्रीको कड़ी कैदकी ही सजा दे, ऐसा केवल आकस्मिक संयोगवश हुआ हो तो वह लगभग चमत्कार ही माना जायेगा।

इस जेलमें सादी कैदके कैदियोंको खानेमें सुबहके वक्त मक्काके आटेका दलिया दिया जाता था। उसमें नमक नहीं डाला जाता था, किन्तु हर कैदीको थोड़ा नमक अलग दे दिया जाता था। बारह बजे दोपहरके खानेमें ये चीजें होतीं — एक पाव भात, नमक, आधी छटांक घी और पावभर डबल रोटी। शामको मक्काके आटेका दलिया और उसके साथ शाक, मुख्यतः आलू दिया जाता था। आलू छोटे होते तो दो दिये जाते और बड़े होते तो एक दिया जाता। इस खानेसे किसीका पेट न भरता। भातका माँड अलग नहीं किया जाता था। हमने जेलके डाक्टरसे कुछ मसाला माँगा। हमने उनको बताया कि मसाला हिन्दुस्तानकी जेलोंमें भी दिया जाता है। उसने दो टूक जवाब दिया, यह हिन्दुस्तान नहीं है और कैदीके लिए स्वाद नहीं होता, इसलिए मसाला नहीं दिया जा सकता। ऊपर बताये गये खानेमें ऐसी कोई चीज नहीं होती थी जिसमें मांसपेशियोंको बनानेका गुण हो, इसलिए हमने दालोंकी माँग की। डाक्टरने कहा कि कैदियोंको डाक्टरी आधारपर दलीलें पेश नहीं करनी चाहिए। फिर खानेमें स्नायु बनानेवाली चीजें दी जाती हैं, क्योंकि सप्ताहमें दो बार शामको मक्काके दलियेके बदले उबली हुई मटर मिलती है। यदि मनुष्यका जठर सप्ताहमें अथवा दो सप्ताहमें पृथक्-पृथक् गुणोंकी खानेकी वस्तुएँ विभिन्न समयोंपर लेकर उनका सत्त्व खींच सके तो डाक्टरकी यह दलील ठीक थी। असल बात तो यह थी कि डाक्टरका विचार किसी भी प्रकार हमारी अनुकूलताका ध्यान रखनेका नहीं था। सुपरिन्टेन्डेन्टने हमारी अपने हाथसे खाना पकानेकी माँग स्वीकार कर ली। हमने थम्बी नायडूको अपना रसोइया चुना। उन्हें रसोईमें बहुत झगड़ा करना पड़ता। सब्जियाँ वजनमें कम मिलतीं तो वे पूरी माँगते; और दूसरी वस्तुओंके बारेमें भी ऐसा ही करते। सप्ताहमें दो दिन, जब सब्जियाँ मिलती थीं हम खाना दो बार और बाकी दिन एक बार बनाते थे[1], चूँकि हमें सिर्फ अपना दोपहरका ख़ाना अपने-

१. मूल गुजरातीमें यह वाक्य नहीं है।

आप पकानेकी ही मंजूरी मिली थी। यह व्यवस्था हमारे हाथमें आ जानेपर हमें अपने खानेसे कुछ सन्तोष होने लगा।

किन्तु ये सब सुविधाएँ मिलें अथवा न मिलें, हमें अपनी सजा हँसी-खुशी काटनी है, हमारी टुकड़ीमें कोई भी इस निश्चयसे विचलित नहीं हुआ था। सत्याग्रही कैदियोंकी संख्या बढ़ते-बढ़ते १५० से अधिक हो गई थी। सादी कैदके कैदी होनेसे हमारे पास अपनी कोठरी साफ करनेके सिवा दूसरा कोई काम नहीं था। हमने सुपरिन्टेन्डेन्टसे काम माँगा। उसने उत्तर दिया, "यदि मैं आपको काम दे दूँ तो यह माना जायेगा कि मैंने अपराध किया। इसलिए मैं मजबूर हूँ। आप सफाईमें और दूसरे अपने कामोंमें चाहे जितना वक्त लगा सकते हैं।" हमने यह भी माँग की कि हमें कवायद वगैरा कसरत करवाई जाये, क्योंकि हम देखते थे कि कड़ी कैदवाले हब्शी कैदियोंसे भी कवायद करवाई जाती थी। इसका जवाब यह मिला "यदि आपके वार्डरको वक्त मिले और वह आपसे कसरत करवाये तो मैं विरोध नहीं करूँगा, किन्तु मैं उसे इसके लिए बाध्य नहीं करूँगा। आपकी संख्या बेहद बढ़ गई है इसलिए उसे बहुत काम रहता है।" वार्डर बहुत अच्छा आदमी था। उसे तो इतनी ही मंजूरीकी जरूरत थी। उसने हमें रोज सुबह मन लगाकर कवायद कराना शुरू कर दिया। हम इसे अपनी कोठरीके छोटेसे आँगनमें ही करते थे। वार्डर सिखाकर चला जाता तब एक पठान भाई नवाब खाँ उसे वैसे ही जारी रखते और कवायदके अंग्रेजी आदेशोंका उर्दू उच्चारण करके हमें हँसाते-हँसाते लोट-पोट कर देते। वे 'स्टेण्ड एट ईज' को 'टंडलीज' कहते। कुछ दिनतक तो मेरी समझमें यही नहीं आया कि यह कौन-सा हिन्दुस्तानी शब्द है। किन्तु मुझे बादमें यह सूझा कि यह नवाबखानी अंग्रेजी है।

अध्याय २१

पहला समझौता

इस तरह जेलमें रहते एक पखवाड़ा हो गया होगा कि तबतक नये आनेवाले यह खबर लाने लगे कि सरकारके साथ समझौतेकी कुछ बातचीत चल रही है। इसके दो-तीन दिन बाद[1] जोहानिसबर्गके 'ट्रान्सवाल लीडर' नामक दैनिक पत्रके सम्पादक अल्बर्ट कार्टराइट मुझसे मिलनेके लिए आये।

उस समय जोहानिसबर्गमें जो दैनिक पत्र चलते थे उनमें से प्रत्येकका स्वामित्व सोनेकी खानोंके किसी न किसी गोरे मालिकके हाथमें था। परन्तु जिन मामलोंमें इन मालिकोंका अपना खास स्वार्थ न होता उनमें इन पत्रोंके सम्पादक अपने विचार स्वतन्त्रतापूर्वक व्यक्त कर सकते थे। इन पत्रोंके सम्पादक विद्वान् और ख्याति-प्राप्त लोग ही चुने जाते हैं। उदाहरणके लिए दैनिक पत्र 'स्टार' के सम्पादक किसी समय लॉर्ड मिलनरके निजी मन्त्री थे और बादमें वे 'स्टार' से 'टाइम्स' के सम्पादक श्री बकलका स्थान लेनेके लिए इंग्लैंड गये थे। अल्बर्ट कार्टराइट समझदार होनेके साथ-

१. २१ जनवरी, १९०८ को।

साथ बड़े उदार हृदय व्यक्ति थे। उन्होंने प्राय: सदा ही अपने अग्रलेखोंमें हिन्दुस्तानियोंका पक्ष लिया था। उनके और मेरे बीच प्रगाढ़ स्नेह हो गया था। वे मेरे जेल जाने पर जनरल स्मट्ससे मिले। जनरल स्मट्सने उन्हें मध्यस्थ बनाना स्वीकार कर लिया। वे कौमके अन्य नेताओंसे भी मिले। इन नेताओंने उन्हें एक ही जवाब दिया, 'कानूनकी बारीकियोंको हम नहीं जानते। गांधीजी जेलमें हैं, इसलिए हम कोई बातचीत करें यह नहीं हो सकता। हम समझौता चाहते हैं, किन्तु यदि सरकार हमारे लोगोंको जेलमें रखते हुए ही समझौता करना चाहती हो तो आपको गांधीजीसे मिलना चाहिए। वे जो कुछ करेंगे हम उसे मान लेंगे।'

इसपर अल्बर्ट कार्टराइट मुझसे मिलने आये[१] और अपने साथ जनरल स्मट्सका बनाया हुआ अथवा स्वीकार किया हुआ समझौतेका मसविदा भी लाये। उसकी भाषा गोलमोल थी। वह मुझे पसन्द नहीं आई। फिर भी एक परिवर्तनके साथ मैं स्वयं उसपर हस्ताक्षर करनेके लिए तैयार था। फिर भी मैंने कहा कि बाहरवालोंकी मंजूरी होनेपर भी मैं इसपर अपने जेलके साथियोंकी सम्मति लिए बिना हस्ताक्षर नहीं कर सकता।

इस कागजका मतलब इतना ही था कि 'हिन्दुस्तानी अपने परवाने स्वेच्छासे बदल लें तो उनपर कानूनी अमल न होगा। सरकार हिन्दुस्तानियोंसे सलाह करके परवानेका रूप निश्चित करेगी और यदि हिन्दुस्तानी कौमका बड़ा भाग स्वेच्छासे परवाने ले लेगा, तो सरकार खूनी कानूनको रद कर देगी और ऐच्छिक परवानोंको कानूनी बनानेके लिए दूसरा कानून बनायेगी।' इसमें खूनी कानूनको रद करनेकी बात साफ नहीं थी। मैंने उसमें ऐसा फेरफार सुझाया जो मेरी दृष्टिसे इस बातको साफ करनेके लिए जरूरी था। किन्तु अल्बर्ट कार्टराइटको इतना फेरफार भी अच्छा नहीं लगा। उन्होंने कहा, जनरल स्मट्सने यह कागज अन्तिम रूपसे बनाया है। मैंने स्वयं भी इसको पसन्द कर लिया है। मैं आपको इतना विश्वास दिलाता हूँ कि यदि आप सब परवाने ले लेंगे तो फिर खूनी कानूनको रद हुआ ही समझें।

मैंने उत्तर दिया, "समझौता हो या न हो, किन्तु हम आपकी सहानुभूति और सहायताके लिए सदा आभारी रहेंगे। मैं गैर-जरूरी एक भी फेरफार नहीं कराना चाहता। जिस भाषासे सरकारकी प्रतिष्ठाकी रक्षा हो मैं उस भाषाका विरोध नहीं करूँगा। किन्तु जहाँ मुझे स्वयं उसके अर्थके सम्बन्धमें शंका हो वहाँ तो मुझे फेरफार सुझाना ही होगा और यदि अन्तत: समझौता होना ही है तो दोनों पक्षोंको इस मसविदेमें फेरफार करनेका अधिकार होना ही चाहिए। 'यह अन्तिम है!' यह कहकर जनरल स्मट्सको हमपर पिस्तौल नहींताननी चाहिए। खूनी कानूनकी पिस्तौल तो हमपर तनी ही हुई है, इसलिए इस दूसरी पिस्तौलका असर हमपर हो भी क्या सकता है?"

श्री कार्टराइट इस तर्कके विरुद्ध कुछ नहीं कह सके और उन्होंने मेरे सुझाये हुए फेरफारको जनरल स्मट्सके सामने रखना स्वीकार कर लिया।

१. विस्तृत विवरणके लिए देखिए खण्ड ८, पृष्ठ ६४-७३।

मैंने साथियोंसे सलाह की। वह भाषा उनको भी पसन्द नहीं आई। किन्तु उन्होंने भी, जनरल स्मट्स उस मसविदेमें फेरफार करना स्वीकार कर लें तो, समझौता करना ठीक माना। बाहरसे आनेवाले लोगोंने मुझे नेताओंका यह सन्देश दे दिया था कि यदि उचित समझौता होता हो तो मैं उनकी सहमतिकी राह देखे बिना समझौता कर डालूँ। मैंने इस मसविदेपर श्री क्विन और थम्बी नायडूके हस्ताक्षर कराये और तीनोंके हस्ताक्षरों सहित उसे कार्टराइटको दे दिया।[1]

इसके दूसरे या तीसरे दिन अर्थात् ३० जनवरी १९०८ को जोहानिसबर्ग जेलके पुलिस सुपरिन्टेन्डेन्ट मुझे जनरल स्मट्सके पास प्रिटोरिया ले गये। हमारे बीच बहुत-सी बातें हुईं। उन्होंने मुझे श्री कार्टराइटसे हुई अपनी सब बातचीत बताई। कौम मेरे जेल जानेके बाद भी अडिग रही, इसपर उन्होंने मुझे बधाई दी और कहा, "मुझे आप लोगोंसे द्वेष हो ही नहीं सकता। मैं भी बैरिस्टर हूँ, यह आप जानते ही हैं। मेरे समयमें मेरे साथ कुछ हिन्दुस्तानी विद्यार्थी भी पढ़ते थे। मुझे तो केवल अपने कर्त्तव्यका पालन करना है। गोरे लोग इस कानूनकी माँग करते हैं। ये लोग मुख्यतः बोअर नहीं हैं, बल्कि अंग्रेज हैं यह बात आप स्वीकार करेंगे। मैं आपके किये हुए फेर-फारको स्वीकार करता हूँ। मैंने जनरल बोथासे भी बात कर ली है। मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि आपमें से ज्यादातर लोग परवाना ले लेंगे तो मैं एशियाई कानून-को रद कर दूँगा। मैं ऐच्छिक परवानोंको स्वीकार करनेके लिए कानून बनाऊँगा तो उसके मसविदेकी नकल आपकी राय लेनेके लिए भेज दूँगा। मैं नहीं चाहता कि यह लड़ाई फिर शुरू की जाये; मैं आप लोगोंकी भावनाका सम्मान करना चाहता हूँ।"

इस आशयकी बातचीत होनेके बाद जनरल स्मट्स खड़े हो गये। मैंने पूछा, "अब मुझे कहाँ जाना है और मेरे साथके दूसरे कैदियोंका क्या होगा? उन्होंने हँसकर कहा, "आप तो इस समयसे ही मुक्त हैं। आपके साथियोंको कल सवेरे छोड़ दिया जायेगा, मैं यह आदेश टेलीफोनसे दे रहा हूँ। किन्तु मेरी इतनी सलाह है कि आप लोग बहुत अधिक सभा-समारोह न करें। यदि करेंगे तो सम्भव है कि सरकारकी स्थिति उससे कुछ विषम बने।"

मैंने कहा, "आप विश्वास रखें मैं सभाकी खातिर सभा बिलकुल नहीं होने दूँगा, किन्तु समझौता किस प्रकार हुआ है, उसका स्वरूप क्या है और अब हिन्दु-स्तानियोंकी जिम्मेदारी कितनी बढ़ गई है, यह बात समझानेके लिए मुझे सभाएँ करनी ही होंगी।"

जनरल स्मट्सने कहा, "ऐसी सभाएँ तो आप जितनी करनी चाहें, करें। मैं क्या चाहता हूँ यह आप समझ गये, बस इतना ही काफी है।"

उस समय शामके लगभग सात बजे होंगे। मेरे पास तो एक पाई भी न थी। जनरल स्मट्सके मन्त्रीने मुझे जोहानिसबर्ग जानेके लिए किरायेके पैसे दिये। यह बातचीत प्रिटोरियामें हुई थी। प्रिटोरियामें वहाँके हिन्दुस्तानियोंके पास ठहरकर समझौतेकी बात कहना आवश्यक नहीं था। मुख्य लोग तो जोहानिसबर्गमें थे। प्रधान

१. देखिए खण्ड ८, पृष्ठ ३९-४१।

कार्यालय भी जोहानिसबर्गमें ही था। जानेके लिए आखिरी गाड़ी ही बाकी थी। मुझे यह गाड़ी मिल गई।

अध्याय २२

समझौतेका विरोध—मुझपर हमला

मैं रातको ९ बजेके करीब जोहानिसबर्ग पहुँचा।[1] मैं सीधा अध्यक्ष ईसप मियाँके यहाँ गया। मैं प्रिटोरिया ले जाया गया हूँ, यह खबर उन्हें मिल गई थी, इसलिए वे एक तरहसे मेरी राह भी देख रहे थे। फिर भी मुझे अकेला किसी वार्डरके बिना आया देखकर सबको आश्चर्य और हर्ष हुआ। मैंने सुझाव दिया कि जितने लोग बुलाये जा सकें उतनोंको बुलाकर इसी समय सभा की जाये। ईसप मियाँ और दूसरे मित्रों को भी यह बात पसन्द आई। चूँकि वहाँ अधिकांश हिन्दुस्तानी एक ही मुहल्लेमें रहते हैं, इसलिए उन्हें खबर देना कुछ मुश्किल नहीं था। अध्यक्षका घर मस्जिदके पास ही था और सभाएँ प्रायः मस्जिदके अहातेमें ही की जाती थीं। इसलिए इन्तजाम भी बहुत नहीं करना था। मंचपर एक बत्ती पहुँचाने भरकी व्यवस्था करनी थी। रातके लगभग ११ या १२ बजे सभा की गई। खबर देनेका वक्त कम होनेपर भी लगभग हजार आदमी इकट्ठे हो गये होंगे।

सभा होनेसे पहले जो नेता वहाँ मौजूद थे मैंने उन्हें समझौतेकी शर्तें समझाई थीं। पहले कुछ लोगोंने उनका विरोध किया, किन्तु वे लोग मेरा तर्क सुननेके बाद समझौतेको समझ गये। फिर भी एक सन्देह तो सभीको था, "जनरल स्मट्स दगा करें तो क्या होगा? खूनी कानून अमलमें न आनेपर भी हमारे ऊपर तलवारकी तरह लटकता तो रहेगा ही। यदि हम इस बीच ऐच्छिक परवाने लेकर अपने हाथ कटा देंगे तो हमारे हाथसे इस कानूनके विरोधका एकमात्र बड़ा शस्त्र भी निकल जायेगा। यह तो जान-बूझकर शत्रुके पंजेमें फँसने-जैसा होगा। सच्चा समझौता तो वही कहा जायेगा कि पहले खूनी कानून रद किया जाये और बादमें हम ऐच्छिक परवाने लें।"

मुझे यह दलील अच्छी लगी। मुझे दलील करनेवालोंकी तीक्ष्ण बुद्धि और हिम्मतपर गर्व हुआ। मैंने अनुभव किया कि सत्याग्रही ऐसे ही होने चाहिए। उनके इस तर्कके उत्तरमें मैंने कहा, "आपका तर्क अच्छा और विचारणीय है। हम खूनी कानून रद होनेके बाद ही ऐच्छिक परवाने लें, इससे अच्छी बात तो दूसरी हो ही नहीं सकती। किन्तु मैं इसे समझौतेका लक्षण नहीं मानूँगा। समझौतेका तो अर्थ यह है कि जिन बातोंमें सिद्धान्तका भेद न हो उनमें दोनों पक्ष एक-दूसरेको पर्याप्त छूट दें। हमारा सिद्धान्त यह है कि हम खूनी कानूनके आगे न झुकेंगे और उसके अनुसार जिस कामको करनेमें हमें कोई आपत्ति न होगी, उस कामको भी न करेंगे। हमें इस सिद्धान्तपर दृढ़ रहना है। सरकारका सिद्धान्त यह है कि हिन्दुस्तानी ट्रान्सवालमें

१. ३० जनवरी, १९०८ को।

चोरी-छिपे प्रवेश न करें। इसके लिए यह आवश्यक है कि पर्याप्त हिन्दुस्तानी शिनाख्ती निशानोंवाले और जो बदले न जा सकें ऐसे परवाने लेकर गोरोंके सन्देहको दूर करें और उनको अभय कर दें। सरकार इस सिद्धान्तको नहीं छोड़ सकती। इस सिद्धान्त-को हमने अबतक अपने व्यवहारसे स्वीकार भी किया है, अतः हम उसके विरुद्ध तबतक नहीं लड़ सकते जबतक इसके लिए नये कारण उत्पन्न न हो जायें। हमारी लड़ाई इस सिद्धान्तको तोड़नेके लिए नहीं है बल्कि कानूनके काले दागको दूर करनेके लिए है। अतः यदि हम अब अपनी जातिमें उत्पन्न इस नये और प्रचण्ड बलका प्रयोग एक नया मुद्दा मनवानेके लिए उठायेंगे तो इससे सत्याग्रहियोंके सत्यपर आँच आयेगी। इसलिए उचित रूपमें तो हम इस समझौतेका विरोध कर ही नहीं सकते। अब खूनी कानून रद किये जानेसे पहले हम अपने हाथ कैसे कटा दें और शस्त्रहीन कैसे हो जायें, इस तर्कपर विचार करें। इसका उत्तर तो बहुत सीधा है। सत्याग्रही भयको तो एक ओर ही रख देता है, इसलिए वह विश्वास करते कभी डरता नहीं। बीस बार विश्वासघात किये जानेपर भी वह इक्कीसवीं बार विश्वास करनेके लिए तैयार रहता है, क्योंकि सत्याग्रह की गाड़ी तो विश्वाससे ही चलती है; अतः विश्वास करनेमें वह अपने हाथ कटा देता है, ऐसा कहना तो सत्याग्रहको न समझनेके बराबर है। मान लें कि हमने नये ऐच्छिक परवाने ले लिये। फिर सरकारने विश्वासघात किया और खूनी कानूनको रद न किया तब क्या हम उस समय सत्याग्रह न कर सकेंगे? इन परवानोंको ले लेनेपर भी यदि हम उचित समयपर उनको दिखानेसे इनकार कर देंगे तो इनका क्या मूल्य होगा? उस हालतमें ट्रान्सवालमें हजारों हिन्दुस्तानी चोरीसे प्रविष्ट हो जायें तो सरकार उनके और हमारे बीच किस प्रकार अन्तर कर सकेगी। अतः सरकार, कानूनसे या कानूनके बिना, हमारी सहायताके बिना हमपर किसी भी तरह नियन्त्रण नहीं रख सकती। कानूनका अर्थ केवल इतना ही है कि यदि हमपर सरकार अंकुश लगाना चाहे और हम उसे स्वीकार न करें तो हम दण्डके पात्र होंगे। सामान्यतः होता यह है कि आदमी दण्डके भयसे अंकुशको मानता है। किन्तु सत्याग्रही इस सामान्य नियमका उल्लंघन करता है। यदि वह अंकुशको मानता है तो उस कानूनके दण्डके भयके कारण नहीं, बल्कि इस कारण मानता है कि वह उसको माननेमें लोक-कल्याण समझता है। इस समय इस परवानेके सम्बन्धमें हमारी स्थिति भी ऐसी ही है। सरकार हमें चाहे जितना धोखा दे, किन्तु वह इस स्थितिको नहीं बदल सकती। इस स्थितिके उत्पन्नकर्त्ता तो हम ही हैं और उसको बदल भी हम ही सकते हैं। जबतक सत्याग्रहका शस्त्र हमारे हाथमें है हम तबतक स्वतन्त्र और निर्भय हैं। यदि कोई मुझसे यह कहे कि आज कौममें जो शक्ति आई है वह चली जायेगी और फिर कदापि नहीं आयेगी, तो मैं उसे इसका उत्तर यह दूंगा कि ऐसा कहनेवाला सत्याग्रही नहीं है और सत्याग्रहका तत्त्व नहीं समझता। उसके कहनेका अर्थ तो यही हो सकता है कि आज जो बल प्रकट हुआ है वह सच्चा नहीं है, बल्कि नशेकी तरह झूठा और क्षणिक है। यदि यह बात ठीक हो तो हम विजयके योग्य नहीं हैं और ऐसी अवस्थामें हम यदि जीत भी गये तो हम जीत

कर भी हार जायेंगे। कल्पना करें कि सरकारने खूनी कानून रद कर दिया और हमने ऐच्छिक परवाना ले लिया। यदि सरकारने उसके बाद इसी खूनी कानूनको फिर पास करके बाधित परवाने देना शुरू किया तो उस समय सरकारको रोकनेवाला कौन होगा? यदि हमें इस समय अपने बलके सम्बन्धमें शंका हो तो उस समय भी हमारी ऐसी ही दुर्दशा होगी। अतः इस समझौतेको चाहे जिस दृष्टिसे जाँचें, हम यही कह सकते हैं कि इस प्रकारका समझौता करनेमें कौमकी कोई हानि नहीं होगी, बल्कि लाभ ही होगा। मैं तो यह भी मानता हूँ कि हमारे विरोधी भी हमारी नम्रता और न्यायपरताको देखकर हमारा विरोध करना छोड़ देंगे या कम कर देंगे।

इस प्रकार इस छोटी-सी मण्डलीमें जिन एक-दो लोगोंने विरोध प्रकट किया था उनके मनका समाधान तो मैंने पूरी तरह कर दिया; किन्तु जो आँधी मध्यरात्रिकी बड़ी सभामें उठनेवाली थी उसकी कल्पना तो मैंने सपनेमें भी नहीं की थी। मैंने सभामें पूरे समझौतेको स्पष्ट किया और कहा:

"इस समझौतेसे कौमकी जिम्मेदारी बहुत बढ़ गई है। हम दगा-फरेबसे अथवा बेजा तरीकेसे एक भी हिन्दुस्तानीको ट्रान्सवालमें लाना नहीं चाहते, यह बतानेके लिए हमें ऐच्छिक परवाने लेने हैं। यदि कोई परवाना न लेगा तो फिलहाल उसे भी सजा नहीं दी जायेगी, किन्तु परवाना न लेनेका अर्थ यह किया जायेगा कि कौम इस समझौतेको नहीं मानती। आपके लिए समझौतेका समर्थन हाथ उठाकर करना आवश्यक है। यह मेरी माँग भी है। किन्तु इसका अर्थ यही है और मैं यही करूँगा कि जो लोग हाथ उठायें वे नये परवाने देनेकी व्यवस्था होते ही परवाने लेने लग जायें और जैसे अबतक आपमें से बहुत-से लोग लोगोंको परवाना न लेनेकी बात समझानेके लिए जैसे स्वयंसेवक बने थे, वैसे ही वे अब परवाना लेनेकी बात समझानेके लिए स्वयंसेवक बनें। हम जब अपना काम पूरा कर लेंगे तभी इस जीतका ठीक-ठीक फल देख सकेंगे।"

मैं जब बोल रहा था तभी एक पठान भाईने खड़े होकर मुझपर प्रश्नोंकी झड़ी लगा दी।

इस समझौतेके मुताबिक हमें दसों अँगुलियोंके निशान देने पड़ेंगे या नहीं?

"हाँ और नहीं। मेरी सलाह तो यही होगी कि सब लोग दसों अँगुलियोंके निशान दें। किन्तु जिन्हें कोई धार्मिक आपत्ति हो अथवा जो अँगुलियोंके निशान देनेमें अपने सम्मानकी हानि मानते हों वे यदि निशान नहीं देंगे तो भी काम चल जायेगा।"

"आप स्वयं क्या करेंगे?"

"मैंने तो दसों अँगुलियोंके निशान देनेका ही निश्चय किया है। मैं निशान न दूँ और दूसरोंको वैसा करनेकी सलाह दूँ, यह मुझसे नहीं हो सकता।"

"आप दसों अँगुलियोंके निशानोंके सम्बन्धमें बहुत लिखते थे। ये निशान तो अपराधियोंसे ही लिये जाते हैं, आप ही हमें ऐसा बताते थे। यह भी आप ही ने कहा था कि यह लड़ाई दसों अँगुलियोंके निशानकी लड़ाई है। आज ये सब बातें कहाँ गईं?"

"मैंने स्वीकार किया कि मैंने दसों अँगुलियोंके निशानोंके बारेमें पहले जो-कुछ भी लिखा है, मैं उसपर आज भी कायम हूँ। हिन्दुस्तानमें दसों अँगुलियोंके निशान अपराधी जातियोंसे लिये जाते हैं, यह बात मैं आज भी कहता हूँ। खूनी कानूनके मुताबिक दसों अँगुलियोंके निशान तो क्या अपने हस्ताक्षर भी देना पाप है, यह मैंने कहा है और आज भी कहता हूँ। मैंने दसों अँगुलियोंके निशानोंके मामलेमें बहुत जोर दिया है, यह बात भी सच है और मैं यह मानता हूँ कि इस तरहका जोर देकर मैंने समझदारी की थी। खूनी कानूनकी जिन छोटी-छोटी बातोंको हम आजतक भी व्यवहारमें लाते हैं उनपर जोर देकर कौमको समझानेकी अपेक्षा दसों अँगुलियोंके निशान देनेकी मोटी और नई बातपर जोर देना आसान था और मैंने देखा कि कौम इस बातको तुरन्त समझ गई है। किन्तु आजकी स्थिति भिन्न प्रकार की है। जो बात कल अपराध थी वही आजकी नई स्थितिमें सज्जनता अथवा भलमनसाहत-की निशानी है, मैं इस बातको जोर देकर कहता हूँ। आप मुझसे जबरदस्ती सलाम कराना चाहें और मैं सलाम करूँ तो ऐसा करके मैं आपकी, लोगोंकी और अपनी नजरमें भी हीन ठहरूँगा। किन्तु यदि मैं आपको अपना भाई अथवा इनसान समझकर अपने-आप सलाम करूँ तो इससे मेरी नम्रता और भलमनसाहत जाहिर होगी। यह बात खुदाके दरबारमें भी मेरे हिसाबमें जमाके खातेमें जायेगी। मैं इसी दलीलसे कौमको दसों अँगुलियोंके निशान देनेकी सलाह देता हूँ।"

"हमने सुना है कि आपने कौमसे दगा की है और उसे १५००० पौंड लेकर ज़नरल स्मट्सको बेचा है। मैं तो दस अँगुलियोंके निशान हरगिज नहीं दूँगा और किसी दूसरेको नहीं देने दूँगा। मैं खुदाकी कसम खाकर कहता हूँ कि जो आदमी एशियाई दफ्तरमें जानेकी पहल करेगा उसे मैं जानसे मार दूँगा।"

"मैं पठान भाइयोंकी भावनाको समझ सकता हूँ। मैंने रिश्वत लेकर कौमको बेचा है, मुझे विश्वास है कि इसे कोई भी सही नहीं मानेगा। जिन्होंने दसों अँगुलियों-के निशान न देनेकी सौगन्ध खाई हो उनको अँगुलियोंके निशान देनेके लिए कोई मजबूर नहीं कर सकता, यह मैं पहले ही समझा चुका हूँ। इसलिए मैं पठानों अथवा दूसरे मनुष्योंको भी, जो अँगुलियोंके निशान दिये बिना परवाना लेना चाहेंगे, पर-वाना दिलानेमें पूरी मदद करूँगा। मैं विश्वास दिलाता हूँ कि वे अपने अँगुलियोंके निशान दिये बिना ऐच्छिक परवाने ले सकेंगे। जानसे मारनेकी धमकी मुझे नहीं रुचती, यह बात मुझे स्वीकार करनी पड़ेगी। मैं यह भी मानता हूँ कि किसीको मारनेकी कसम खुदाके नामपर नहीं खाई जा सकती। इसलिए मैं तो यही समझूँगा कि इस भाईने क्रोधके आवेशमें आकर ही जानसे मारनेकी कसम खाई है। वे इस कसमको चाहे अमलमें लायें चाहे न लायें, किन्तु इस समझौतेको करवानेवाले मुख्य मनुष्यके रूपमें और जातिके सेवकके रूपमें मेरा स्पष्ट कर्त्तव्य यह है कि अँगुलियोंके निशान सबसे पहले मैं ही दूँ। मैं तो ईश्वरसे प्रार्थना करता हूँ कि वह इस कार्यमें मुझको ही पहल करने दे। मरना तो सबके भाग्यमें है ही। रोगसे अथवा किसी ऐसे ही दूसरे कारणसे मरनेकी अपेक्षा यदि मैं अपने ही किसी भाईके हाथसे मरूँ तो मुझे

इसमें दुःख नहीं होगा। यदि मैं उस समय भी बिलकुल ही गुस्सा न करूँ और मनमें हत्यारेके प्रति द्वेष न रखूँ तो मैं जानता हूँ कि इससे मेरा भविष्य सुधरेगा और बादमें मेरा हत्यारा भी समझ जायेगा कि मैं बिलकुल निर्दोष था।"

उक्त प्रश्न क्यों किये गये इसका कारण बताना आवश्यक है। जिन लोगोंने कानूनको मान लिया था, यद्यपि उनके प्रति कोई भी वैरभाव नहीं रखा जाता था, फिर भी इस सम्बन्धमें स्पष्ट और कठोर शब्दोंमें बहुत-कुछ कहा और 'इंडियन ओपिनियन' में लिखा गया था। इससे कानूनके आगे झुकनेवालोंका जीवन अप्रिय तो अवश्य ही बना था। उन्होंने कभी खयालतक नहीं किया था कि जातिका बड़ा भाग अडिग रह सकेगा और इतना बल दिखायेगा कि समझौता होनेका अवसर आ जायेगा। किन्तु जब १५० से अधिक सत्याग्रही जेलमें पहुँच गये और समझौतेकी बात चलने लगी तब कानूनके आगे झुकनेवालोंको बहुत बुरा लगा और उनमें कुछ लोग ऐसे भी निकले जो चाहते थे कि समझौता न होने पाये और यदि हो तो टूट जाये।

ट्रान्सवालमें रहनेवाले पठानोंकी संख्या बहुत कम थी। मैं सोचता हूँ, वे कुल मिलाकर ५० से अधिक नहीं होंगे। उनमें से अधिकतर लोग लड़ाईमें आये हुए सैनिक थे और जैसे लड़ाईके वक्त आये हुए बहुतसे गोरे दक्षिण आफ्रिकामें बस गये थे वैसे ही उस लड़ाईमें आये हुए पठान और दूसरे हिन्दुस्तानी वहाँ बस गये थे। उनमें से कुछ मेरे मुवक्किल भी हो गये थे और उनसे मेरा दूसरी तरहसे भी परिचय हो गया था। वे बहुत भोले होते हैं; शूरवीर तो होते ही हैं। मारना और मरना उनकी दृष्टिमें बहुत ही सामान्य बातें हैं। यदि उन्हें किसीपर रोष आ जाता है तो वे मारपीट कर डालते हैं — उनकी भाषामें कहें तो उसकी पीठ गरम कर देते हैं और उसे कभी-कभी जानसे भी मार देते हैं। वे चाहे जिसके साथ ऐसा कर सकते हैं। उनका सगा भाई हो तो उससे भी वे ऐसा ही व्यवहार करते हैं। यहाँ पठानोंकी संख्या इतनी कम है, फिर भी उनमें तकरार हो जाती है और वे एक-दूसरेपर हमला कर डालते हैं। ऐसी घटनाओंमें कई बार मुझे बीच-बचाव करना पड़ता था। इसमें भी यदि कभी दगाबाजीकी कोई घटना हो तब तो वे अपना गुस्सा रोक ही नहीं सकते थे। उनके पास न्याय प्राप्त करनेका केवल यही एक तरीका था। इस आन्दोलनमें पठानोंने पूरा भाग लिया था। कोई भी पठान इस कानूनके आगे नहीं झुका था। उनको बहकाना आसान था। दसों अँगुलियोंके निशानोंके बारेमें उनमें गलतफहमी होनेकी बात बिलकुल समझी जा सकती थी। इसके जरिये उनको भड़काना जरा भी मुश्किल नहीं था। यदि मैंने रिश्वत नहीं ली तो मैं दसों अँगुलियोंके निशान लेनेकी बात क्यों कहता हूँ, इतना कहना पठानोंमें शक पैदा करनेके लिए काफी था।

इसके अलावा ट्रान्सवालमें एक दूसरा दल भी था। इस दलमें वे लोग थे जो ट्रान्सवालमें या तो बिना परवाने लिये गुप्त रूपसे आये थे या दूसरोंको बिना परवाने अथवा जाली परवानोंके बलपर गुप्त रूपसे यहाँ लाते थे। इस दलका स्वार्थ समझौता न होनेमें था। जबतक आन्दोलन चलता था तबतक किसीको भी परवाना दिखानेकी जरूरत न थी और इससे यह दल बेखटके अपना काम चला पाता था।

फिर जबतक आन्दोलन चलता था तबतक ऐसे लोग जेलमें जानेसे आसानीसे बच सकते थे। इसलिए आन्दोलन लम्बा खिंचे तो उसे ये लोग अपने लिए सम्पन्नताका काल मानते थे। इस प्रकार इन लोगों द्वारा भी पठानोंका समझौतेके विरुद्ध भड़काया जाना सम्भव था। अब पाठक समझ सकते हैं कि पठान एकाएक क्यों भड़क गये थे।

किन्तु आधी रातके वक्त कही गई इन तीखी बातोंका प्रभाव सभामें बिलकुल नहीं हुआ। मैंने सभाका मत माँगा। अध्यक्ष और दूसरे नेता मजबूत थे। अध्यक्षने इस बातचीतके बाद भाषण देते हुए समझौतेकी व्याख्या की और उसको माननेकी आवश्यकतापर बल देकर सभाका मत माँगा। सभामें उपस्थित दो-चार पठानोंके सिवाय बाकी सब लोगोंने एकमतसे समझौतेका समर्थन किया।

मैं रातको दो या तीन बजे घर पहुँचा। मैं सो तो कैसे सकता था; मुझे तो जल्दी उठकर दूसरे लोगोंको रिहा करानेके लिए जेलपर जाना था। मैं सात बजे जेल जा पहुँचा। सुपरिंटेंडेंटको टेलीफोनसे हुक्म मिल ही चुका था और वह मेरी राह देख रहा था। एक घंटेके भीतर-भीतर सभी सत्याग्रही कैदी छोड़ दिये गये। अध्यक्ष और दूसरे हिन्दुस्तानी उन सबका स्वागत करनेके लिए आये। जेलसे हमारा मजमा पैदल सभा-भूमिमें गया। उसके बाद सभा हुई। वह दिन और उससे अगले दो-चार दिन दावतोंमें और लोगोंको समझाने-बुझानेमें गये।

ज्यों-ज्यों दिन बीतते गये त्यों-त्यों जहाँ लोग एक ओर समझौतेका मर्म समझते गये वहाँ दूसरी ओर उनमें उसके सम्बन्धमें भ्रम भी बढ़ता गया। लोगोंके भड़कनेके कारणोंकी चर्चा ऊपर की जा चुकी है। इनके अलावा जनरल स्मट्सको लिखे गये पत्रमें भी भ्रमका कारण मौजूद था। इसलिए जो अनेक प्रकारके तर्क उठाये जाते थे उनका उत्तर देनेमें मुझे आन्दोलनके समय होनेवाले कष्टकी अपेक्षा बहुत अधिक हुआ। लड़ाईमें तो जिन्हें हम अपना दुश्मन मानते हैं उनके साथ व्यवहार करनेमें ही कठिनाई खड़ी होती है, किन्तु मेरा अनुभव यह है कि हम इन कठिनाइयोंको सदा सहज ही दूर कर सकते हैं। इसमें पारस्परिक झगड़े और अविश्वास या तो होते ही नहीं या होते हैं तो बहुत कम होते हैं। किन्तु लड़ाई समाप्त होनेपर पारस्परिक विरोध आदि, जो सामने आई हुई आपत्तिके कारण दबे हुए होते हैं, उभर आते हैं। और यदि लड़ाईके अन्तमें समझौता हो गया तो उसमें दोष निकालना सदा सुगम होनेसे बहुतसे लोग इस काममें लग जाते हैं। जहाँ तन्त्र राष्ट्रीय अथवा प्रजासत्तात्मक होता है वहाँ छोटे-बड़े सभी लोगोंको उत्तर देना और सन्तुष्ट करना पड़ता है। यह है भी ठीक। मनुष्यको जितने अनुभव ऐसे समयमें अर्थात् मित्रोंके बीच भ्रम अथवा झगड़ा होनेके समयमें प्राप्त हो सकते हैं उतने विरोधी पक्षके विरुद्ध लड़ाई करनेमें नहीं हो सकते। विरोधी पक्षसे लड़नेमें एक प्रकारका नशा रहता है अतः उसमें उल्लास होता है। किन्तु जब मित्रोंके बीच भ्रम अथवा विरोध पैदा होता है, तब वह एक असाधारण स्थिति मानी जाती है और वह सदा दुःखद ही होती है। फिर भी मनुष्यकी कसौटी ऐसे समयमें ही होती है। यह मेरा निरपवाद अनुभव है और मुझे लगता है कि मैंने अपनी आन्तरिक सम्पदा सदा ऐसे समयमें

ही संचित की है। जो लोग इस लड़ाईका शुद्ध रूप लड़ते-लड़ते नहीं समझ सके थे वे समझौतेके समय और उसके बाद उसे भली-भाँति समझ गये। वास्तविक विरोध तो पठानोंके सिवा किसी औरने किया ही नहीं।

इस प्रकार दो-तीन महीने निकल गये। इस बीच एशियाई दफ्तरने ऐच्छिक परवाने देनेकी तैयारी कर ली। परवानोंका रूप बिलकुल बदल गया था और उसको यह रूप सत्याग्रही मण्डलसे बातचीत करके दिया गया था।

१० फरवरी, १९०८की सुबह हम कुछ लोग परवाने लेनेके उद्देश्यसे जानेके लिए तैयार हुए। लोगोंको भली-भाँति समझा दिया गया था कि कौमको परवाना लेनेका काम जल्दी ही समाप्त कर देना है। यह भी तय कर लिया गया था कि पहले दिन सबसे पहले नेतागण ही परवाने लेंगे। उद्देश्य यह था कि लोगोंकी झिझक, निकल जाये, एशियाई दफ्तरके अधिकारी अपना काम नम्रतासे करते हैं या नहीं, यह पता लगा दिया जाये और इस कार्यपर दूसरी तरहसे भी निगाह रखी जा सके।

मेरा दफ्तर ही सत्याग्रहका दफ्तर भी था। जब मैं वहाँ पहुँचा तब मुझे दफ्तरके बाहर मीर आलम और उनके साथी खड़े दिखाई दिये। मीर आलम मेरा पुराना मुवक्किल था और मुझसे अपने सब कामोंमें सलाह लेता था। ट्रान्सवालमें बहुतसे पठान घास और नारियलकी जटाके गद्दे बनानेका काम करते थे। इसमें उनको अच्छा मुनाफा मिल जाता था। वे इन गद्दोंको मजदूरोंसे तैयार करवाते थे और स्वयं मुनाफा लेकर बेचते थे। मीर आलम भी यही काम करता था। वह छः फीटसे ज्यादा ऊँचा रहा होगा। उसका डील-डौल विशाल था और वह दोहरी देहका आदमी था। मैंने मीर आलमको आज पहली बार ही दफ्तरके अन्दरकी बजाय बाहर खड़े देखा था। निगाहें मिलनेपर भी उसने मुझे सलाम नहीं किया, ऐसा भी उसने पहली ही बार किया था। किन्तु मैंने उसको सलाम किया और उसने उसका जवाब दिया। मैंने उससे अपने रिवाजके मुताबिक पूछा, "कहो, कैसे हो?" मुझे ऐसा खयाल आता है कि उसने जवाबमें यह कहा था, "अच्छा है।" किन्तु आज उसका चेहरा हमेशा-की तरह खुशीसे चमक नहीं रहा था। उसकी आँखोंमें मुझे क्रोधकी झलक दिखाई दी। यह बात मैंने अपने मनमें समझ ली। कुछ होना है यह भी सोचा। मैं दफ्तरमें घुसा। अध्यक्ष ईसप मियाँ और दूसरे मित्र आ गये और हम एशियाई दफ्तरको रवाना हुए। मीर आलम और उसके साथी भी साथ-साथ चले।

एशियाई दफ्तरने जो मकान लिया था वह वहाँसे एक मीलसे कुछ कम दूर वॉन ब्रैंडिस स्क्वेयरमें था। बीचमें कई आम रास्ते पड़ते थे।[1] ब्रैंडिस स्क्वेयरमें मैसर्स आर्नोट ऐंड गिब्सनकी इमारतके बाहर पहुँचनेपर जब एशियाई दफ्तरका लगभग तीन मिनटका रास्ता रह गया तब मीर आलमने मेरे पास आकर मुझसे पूछा, "आप कहाँ जा रहे हैं?"

१. यह वाक्य मूल गुजरातीमें नहीं है।

मैंने उत्तर दिया, "मैं दश अंगुलियो देकर रजिस्टर नीकलवाना चाहता हूँ, अगर तुम भी चलोगे तो तुमारे अंगुलियाँ देनेकी जरूरत नहीं हय। तुमारा रजिस्टर पहेले नीकलवाके मे अंगुलियाँ देकर मेरा नीकलवाऊँगा।"

मेरा इतना कहना ही था कि मेरी खोपड़ीपर पीछेकी ओरसे डण्डेका प्रहार हुआ। मैं 'हे राम!' कहता हुआ औंधा गिर पड़ा और बेहोश हो गया। इसके बाद जो-कुछ हुआ उसका मुझे कुछ पता नहीं। किन्तु मीर आलम और उसके साथियोंने मुझपर लाठियोंसे और प्रहार किये और मुझे ठोकरें भी मारीं। इनमें से कुछ चोटें ईसप मियाँ और थम्बी नायडूने झेलीं। इस तरह कुछ मार ईसप मियाँपर और थम्बी नायडूपर भी पड़ी। इतनेमें शोरगुल मच गया। राह चलते गोरे इकट्ठे हो गये। मीर आलम और उसके साथी भागे; किन्तु उनको गोरोंने पकड़ लिया। तबतक वहाँ पुलिस भी आ गई और वे लोग पुलिसको सौंप दिये गये। इसके पास ही श्री जे० सी० गिब्सन नामके गोरेका दफ्तर था। लोग मुझे उठाकर उसीमें ले गये। जब मुझे कुछ देरमें होश आया तब मैंने पादरी डोकको अपने ऊपर झुका हुआ देखा। उन्होंने मुझसे पूछा, आप कैसे हैं?

मैंने हँसकर उत्तर दिया, "मैं ठीक तो हूँ, किन्तु मेरे दाँतोंमें और पसलियोंमें दर्द है।" फिर मैंने पूछा, "मीर आलम कहाँ है?"

उन्होंने कहा, "वह तो गिरफ्तार कर लिया गया है और उसके साथके दूसरे लोग भी गिरफ्तार कर लिये गये हैं।"

मैंने कहा, "उनको छोड़ देना चाहिए।"

डोकने जवाब दिया, "यह सब तो हो ही जायेगा। यहाँ तो आप किसी दूसरेके दफ्तरमें पड़े हुए हैं। आपका होंठ फट गया है और गाल भी। पुलिस आपको अस्पतालमें ले जानेवाली है। किन्तु यदि आप मेरे यहाँ चलें तो मेरी पत्नी और मैं आपकी यथासम्भव सार-सँभाल करेंगे।"

मैंने कहा, "मुझे तो आप अपने घर ही ले चलें। पुलिस अधिकारियोंको उनके प्रस्तावके लिए धन्यवाद दे दें; किन्तु उनको यह कह दें कि मुझे आपके घर जाना पसन्द है।"

तबतक एशियाई दफ्तरके पंजीयन अधिकारी श्री चैमने वहाँ आ गये। वे मुझे एक गाड़ीमें लिटाकर स्मिथ स्ट्रीटमें इस भले पादरीके घर ले गये। डाक्टर बुलाया गया। इस बीच मैंने श्री चैमनेसे कहा: "मैंने तो यह आशा की थी कि मैं आपके दफ्तरमें आकर दसों अँगुलियोंके निशान देकर पहला परवाना लूँगा। किन्तु यह ईश्वरको स्वीकार नहीं था। परन्तु अब मेरी प्रार्थना यह है कि आप अभी कागज ले आयें और मेरा पंजीयन कर लें। मुझे आशा है कि आप मुझसे पहले किसी दूसरेका पंजीयन नहीं करेंगे।"

उन्होंने कहा: "ऐसी क्या जल्दी है? अभी डाक्टर आयेगा। आप आराम करें बादमें सब-कुछ हो जायेगा। यदि मैं दूसरोंको परवाना दूँगा तो भी आपका नाम सबसे पहले रखूँगा।"

मैंने कहा: "ऐसा नहीं हो सकता; मेरी प्रतिज्ञा है कि यदि मैं जीता रहूँगा और ईश्वरको स्वीकार होगा तो सबसे पहले मैं ही परवाना लूँगा। इसलिए मेरा यह अनुरोध है कि आप कागज यहाँ ले आयें।"

इसलिए वे कागज लेने चले गये।

मैंने इसके बाद दूसरा काम यह किया कि अटर्नी जनरल अर्थात् बड़े सरकारी वकीलको इस तरहका तार[1] दिया, "मीर आलम और उसके साथियोंने मेरे ऊपर जो आक्रमण किया है उसके लिए मैं उन्हें दोषी नहीं मानता। कुछ भी हो, मैं नहीं चाहता कि उनपर फौजदारीका मुकदमा चलाया जाये। मुझे आशा है कि आप उन्हें मेरी खातिर छोड़ देंगे।" मेरे इस तारपर मीर आलम और उसके साथी छोड़ दिये गये। किन्तु जोहानिसबर्गके गोरोंने अटर्नी जनरलको इस प्रकारका कड़ा पत्र लिखा: "अपराधियोंको दण्ड देनेके सम्बन्धमें गांधीजीके विचार कुछ भी हों, किन्तु वे इस देशमें नहीं चल सकते। उन्हें जो मारा-पीटा गया है, वे चाहे स्वयं उसके सम्बन्धमें कुछ भी न करें, किन्तु अपराधियोंका यह काम उनके अपने घरके कोनेमें नहीं हुआ है; बल्कि यह अपराध आम रास्तेमें हुआ। यह सार्वजनिक अपराध माना जायेगा। इस अपराधकी साक्षी कुछ गोरे भी दे सकते हैं। अपराधी गिरफ्तार किये ही जाने चाहिए।" सरकारी वकीलने इस आन्दोलनके कारण मीर आलम और उसके एक साथीको फिर गिरफ्तार कर लिया और उनको तीन-तीन महीनेकी कैदकी सजा दी गई। इतना अवश्य हुआ कि मैं साक्षीके रूपमें नहीं बुलाया गया।

अब हम फिर घायलके कमरेमें निगाह डालें। श्री चैमने कागज लेने गये, इतनेमें ही डाक्टर थ्वैट्स आ गये। उन्होंने मेरी चोटें देखीं। मेरा ऊपरका ओठ फट गया था, उन्होंने उसे सिया और गालमें भी टाँके लगाये। उन्होंने पसलियोंकी परीक्षा करके उनपर लगानेकी दवा दी। उन्होंने हिदायत की कि जबतक टाँके न काटे जायें तबतक मैं बोलूँ नहीं। उन्होंने खानेमें दूध जैसे तरल पदार्थोंके सिवा दूसरी चीजें खानेकी मनाही की। उन्होंने बताया कि मुझे कहीं भी कोई गहरी चोट नहीं आई है। मैं एक सप्ताहमें अपने बिस्तरसे उठ सकूँगा और अपने सामान्य कामकाजमें लग सकूँगा। मुझे केवल दो-एक महीनेतक शरीरको अधिक श्रमसे बचानेकी आवश्यकता होगी। इतना कहकर वे चले गये।

इस प्रकार मेरे बोलनेपर रोक लग गई, किन्तु मैं अपना हाथ हिला-डुला सकता था। मैंने अध्यक्षकी मार्फत कौमके नाम गुजरातीमें एक छोटा-सा सन्देश[2] लिखकर प्रकाशनार्थ भेजा। मैंने लिखा:

"मेरी तबीयत अच्छी है। श्री डोक और उनकी पत्नी मेरी सेवामें तन-मनसे लगे हैं, अतः मैं कुछ दिनमें ही फिर सेवाकार्य आरम्भ कर सकूँगा।"

जिन लोगोंने मुझसे मारपीट की है मेरे मनमें उनके प्रति कोई क्रोध नहीं है। उन्होंने यह काम अज्ञानमें किया है। उनपर कोई मुकदमा चलानेकी जरूरत नहीं है। यदि दूसरे लोग शान्त रहेंगे तो इस घटनासे भी लाभ ही होगा।

१. यह तार उपलब्ध नहीं है।
२. देखिए खण्ड ८, पृष्ठ ७४।

हिन्दुओंको अपने मनमें तनिक भी रोष नहीं रखना चाहिए। मैं चाहता हूँ कि इस घटनासे हिन्दुओं और मुसलमानोंमें कड़वाहटके बजाय मिठास पैदा हो। मैं खुदासे — ईश्वरसे — यही प्रार्थना करता हूँ।

मुझे मारा-पीटा गया; इससे भी अधिक मारा-पीटा जाये तो भी मैं एक ही सलाह दूँगा और वह यह है कि लगभग सभी लोग दसों अँगुलियोंके निशान दें दें। इसमें जिन लोगोंको कोई भारी धार्मिक आपत्ति होगी उनको सरकार इससे मुक्त कर देगी। इसीमें कौमकी और गरीबोंकी भलाई और रक्षा है।

यदि हम सच्चे सत्याग्रही होंगे तो हम मारपीटसे अथवा भविष्यमें विश्वास-घातके भयसे तनिक भी नहीं डरेंगे।

जो लोग दसों अँगुलियोंके निशान न देनेकी बातपर अड़े हुए हैं, उन्हें मैं नादान मानता हूँ।

मैं ईश्वरसे प्रार्थना करता हूँ कि वह कौमका कल्याण करे, उसे सत्पथपर ले जाये और हिन्दुओं और मुसलमानोंको मेरे खूनसे जोड़े।"[1]

श्री चैमने आ गये। मैंने जैसे-तैसे अपनी अँगुलियोंके निशान दिये। उस समय मैंने उनकी आँखोंमें आँसू छलकते देखे। उनके विरुद्ध तो मुझे तीखे लेख भी लिखने पड़े थे; किन्तु प्रसंग आनेपर मनुष्यका हृदय कितना कोमल हो सकता है, इसका चित्र मेरी आँखोंके सामने अब भी घूम रहा है।

पाठक अनुमान कर सकते हैं कि इस सब विधिको पूरा करनेमें कुछ ज्यादा समय नहीं लगा होगा। मैं बिलकुल शान्त और स्वस्थ चित्त हो जाऊँ इस बातके लिए श्री डोक और उनकी भली पत्नी चिन्तित थे। घायल होनेके बाद मुझे यह मानसिक श्रम करते देखकर उन्हें व्यथा होती थी। उनको यह भय था कि कहीं इसका दुष्प्रभाव मेरे स्वास्थ्यपर न पड़े। अतः उन्होंने सभी लोगोंको संकेत करके और अन्य युक्तियोंसे मेरे पलंगके पाससे हटा दिया और मुझे कुछ भी लिखने अथवा कुछ और काम कर-

१. अंग्रेजी अनुवादमें ये अनुच्छेद इस प्रकार हैं:

"यह जानकर कि प्रहार मुसलमान या मुसलमानों द्वारा किया गया था, हिन्दू लोग कदाचित् क्षुब्ध होंगे। यदि ऐसा हुआ तो वे संसारके सामने और परमपिता ईश्वरके सामने गुनहगार होंगे। मैं तो यही कह सकता हूँ कि जो रक्त बहा है वह दोनों जातियोंके बीच स्थायी मैत्री स्थापित करे। मैं हृदयसे यही प्रार्थना करता हूँ। ईश्वर करे वह फलवती हो।

वारदातके होने न होनेसे मेरी सलाहमें अन्तर नहीं आ सकता। एशियाई लोगोंके इस बहुत बड़े समाजको अँगुलियोंकी छाप देनी चाहिए। जिन्हें कोई ऐसी आपत्ति हो, जिसका सम्बन्ध अन्तरात्मासे है, उन्हें सरकारसे छूट मिल जायेगी। इससे अधिककी याचना करना लड़कपन प्रकट करनेके समान होगा।

सत्याग्रहकी भावनाको अच्छी तरहसे समझ लेनेपर ईश्वरके सिवा और किसीसे डरनेकी बात ही नहीं जाती। इसलिए विवेकशील और गम्भीर हृदयवाले ज्यादातर भारतीय लोगोंको चाहिए कि वे अपने कर्त्तव्यपालनके मार्गमें किसी प्रकारके कायरतापूर्ण भयके द्वारा बाधा उत्पन्न न होने दें। स्वेच्छासे कराये गये पंजीयनके खिलाफ कानूनको मंसूख कर देनेका वादा किया ही जा चुका है; इसलिए प्रत्येक नेक भारतीयका यह पवित्र कर्त्तव्य हो जाता है कि वह भरसक सरकारकी तथा उपनिवेशकी सहायता करे।"

नेसे रोक दिया। मैंने यह अनुरोध किया (यह भी लिखकर ही) कि यदि उनकी पुत्री ऑलिव, जो उस समय बिलकुल बालिका ही थी, मुझे मेरा प्रिय अंग्रेजी भजन 'लीड काइंडली लाइट' (प्रेमल ज्योति) सुना देगी तो मैं बिलकुल शान्त होकर सो जाऊँगा। नरसिंहरावके गुजराती अनुवादसे बहुतसे गुजराती इस भजनका अर्थ जानते हैं। इसकी पहली पंक्ति इस प्रकार है:

प्रेमल ज्योति तारो दाखवी
मुज जीवनपंथ उजाल

श्री डोकको मेरी यह प्रार्थना बहुत रुची। मीठी हँसी हँसते हुए उन्होंने मुझे यह बात बताई और संकेतसे ऑलिवको बुलाकर दरवाजेके बाहर खड़ी होकर धीरे-धीरे सरलतासे उस भजनको गानेका आदेश दिया। यह बात लिखाते वक्त वह सारा दृश्य मेरी आँखोंके आगे फिर रहा है और ऑलिवका वह पवित्र स्वर मेरे कानोंमें गूँज रहा है।[1]

मैं इस प्रकरणमें ऐसी बहुत-सी बातें लिख गया हूँ जो मेरे विचारसे इसके लिए अप्रासंगिक हैं और जिन्हें पाठक भी अप्रासंगिक मानेंगे। फिर भी, मैं एक संस्मरण जोड़े बिना इस प्रकरणको समाप्त नहीं कर सकता। इस समयके सभी संस्मरण मेरे लिए इतने पवित्र हैं कि मैं उन्हें भुला नहीं सकता। डोक परिवारकी सेवाका वर्णन मैं किस प्रकार कर सकता हूँ?

जोजेफ डोक बेप्टिस्ट सम्प्रदायके पादरी थे।[2] वे दक्षिण आफ्रिकामें आनेसे पहले न्यूजीलैंडमें थे। मेरे ऊपर आक्रमण होनेकी घटनासे कोई ६ महीने पहले वे मेरे दफ्तरमें आये थे और उन्होंने अपना नाम मेरे पास भेजा था। उसमें नामके आगे 'रेवरेंड' विशेषण लगा था। इससे मैंने उनके सम्बन्धमें यह अनुचित कल्पना कर ली कि जैसे कुछ दूसरे पादरी ईसाई बनानेके खयालसे अथवा इस आन्दोलनको बन्द करवानेके विचारसे अथवा मेरे हितैषीके रूपमें इस आन्दोलनके प्रति सहानुभूति दिखानेके अभिप्रायसे मुझे समझाने आते हैं वैसे ही ये भी आये होंगे। किन्तु श्री डोकने अन्दर आकर मुझसे कुछ मिनट ही बात की थी, इतने में ही मुझे इस सम्बन्धमें अपनी भूल मालूम हो गई और मैंने मन ही मन उसके लिए उनसे क्षमा माँगी। उसी दिनसे हम दोनों गाढ़े मित्र बन गये। आन्दोलनके सम्बन्धमें पत्रोंमें जो भी बातें छपती थीं उनसे उन्होंने अपनी पूरी जानकारी बताई। उन्होंने कहा: "आप इस आन्दोलनमें मुझे अपना मित्र ही मानें। मुझसे जो भी सेवा हो सके उसे मैं अपना धर्म समझकर करना चाहता हूँ। यदि मैंने ईसाके जीवनका चिन्तन करके कुछ सीखा है तो वह दुःखी लोगोंके दुःखोंको दूर करनेमें भाग लेना ही सीखा है।" इस तरह हमारी जान-पहचान हुई और हमारा यह स्नेह और सम्बन्ध उसके बाद दिन-प्रतिदिन बढ़ता ही गया। पाठक इस इतिहासमें यहाँसे आगे डोकका नाम बहुत-से प्रसंगोंमें

१. विस्तृत विवरणके लिए देखिए खण्ड ८, पृष्ठ ९०-४।

२. अंग्रेजी अनुवादमें यहाँ है: उनकी आयु ४६ वर्ष थी।

देखेंगे। किन्तु डोक परिवारने मेरी जो सेवा की उसको बतानेसे पहले मुझे पाठकोंको उनका इतना परिचय देना आवश्यक था।

रात हो या दिन हो, डोक-परिवारमें से कोई-न-कोई मेरे पास अवश्य रहता है। मैं जबतक श्री डोकके घर रहा तबतक उनका घर धर्मशाला बना रहा! हिन्दुस्तानी कौममें फेरीदार और ऐसे ही दूसरे लोग थे, वे तो मजदूरों-जैसे कपड़े पहनते थे, गन्दे भी होते थे और उनके जूतोंपर सेर-सेर धूल जमी होती थी। फिर उनके पास उनकी गठरी अथवा छाबड़ी भी होती थी। ऐसे हिन्दुस्तानियोंसे लेकर अध्यक्ष तक अमीर और गरीब दोनों वर्गोंके हिन्दुस्तानी श्री डोकके घर आते-जाते ही रहते। ये सभी लोग मेरी खबर लेने और जब डाक्टरने छूट दे दी तब मुझसे मिलने-जुलने आते थे। श्री डोक इन सभीको समान रूपसे सम्मान देकर और प्रेमभावसे अपनी बैठकमें बिठाते। जबतक मैं डोक-परिवारके साथ रहा तबतक मेरी सार-सँभालमें और मुझसे मिलनेके लिए आनेवाले सैकड़ों लोगोंके आदर-सत्कारमें उनका सारा समय चला जाता। वे रातको भी दो-तीन बार मेरे कमरेमें चुपचाप आकर मुझे देख ही जाते। उनके घरमें रहते हुए मुझे किसी दिन भी यह खयाल नहीं आ सका कि यह घर मेरा नहीं है अथवा मेरा कोई प्रिय सगा-सम्बन्धी होता तो वह मेरी सार-सँभाल अधिक करता।

पाठक यह भी न मानें कि हिन्दुस्तानी कौमकी लड़ाईकी इतनी खुली तरफदारी करने अथवा मुझे अपने घरमें रखनेके कारण श्री डोकको कोई हानि नहीं उठानी पड़ी थी। वे अपने पन्थके गोरोंके लिए एक चर्च चलाते थे। उन्हें अपनी जीविका इस पन्थके लोगोंसे ही मिलती थी। ऐसे लोग सभी उदारहृदयके होते हैं, यह तो मानना ही नहीं चाहिए। हिन्दुस्तानियोंके प्रति सामान्य घृणा उनमें भी थी ही। श्री डोकने इस बातकी परवाह ही नहीं की। जब आरम्भमें हम दोनोंका परिचय हुआ मैंने उनसे तभी इस नाजुक विषयपर चर्चा की थी। उन्होंने इस सम्बन्धमें जो उत्तर दिया था वह ध्यान देने योग्य है। उन्होंने कहा था: "प्यारे मित्र! आप ईसाके धर्मको कैसा मानते हैं? जो मनुष्य अपने धर्मकी खातिर सूलीपर चढ़ गया और जिसका प्रेम संसार-जैसा ही विशाल था, मैं उसी ईसाका अनुयायी हूँ। जिन गोरों द्वारा मेरे त्याग दिये जानेका भय है यदि मैं ईसाके अनुयायीके रूपमें उन गोरोंके सम्मुख तनिक भी आदर्श उपस्थित करना चाहता हूँ तो मुझे इस आन्दोलनमें खुल्लम-खुल्ला भाग लेना ही चाहिए और यदि ऐसा करते हुए मेरा सम्प्रदाय मुझे त्याग दे तो मुझे उसमें तनिक भी दुःख नहीं मानना चाहिए। मुझे उनसे जीविका मिलती है यह सच है, किन्तु आप यह तो अवश्य ही नहीं मानते होंगे कि मैं उनसे अपनी जीविकाके खातिर ही सम्बन्ध रखता हूँ अथवा मेरी जीविका देनेवाले वे हैं। मुझे मेरी जीविका ईश्वर देता है। वे लोग तो निमित्त-मात्र हैं। उनके और मेरे सम्बन्धकी स्वतः ही मानी हुई एक शर्त यह है कि उनमें से कोई भी मेरी धार्मिक स्वतन्त्रतामें बाधक नहीं हो सकता। इसलिए आप मेरे सम्बन्धमें निश्चिन्त रहें। मैं इस आन्दोलनमें हिन्दुस्तानियोंपर कोई अनुग्रह करनेके लिए नहीं आया हूँ, बल्कि मैं तो इसे अपना

धर्म मानता हूँ। और मैंने अपने धर्माधिकारी (डीन) को इस सम्बन्धमें स्पष्टीकरण दे रखा है। मैंने उन्हें यह विनयपूर्वक बता दिया है कि यदि उन्हें हिन्दुस्तानियोंसे मेरा प्रेम-सम्बन्ध अच्छा न लगता हो तो वे मुझे खुशीसे छुट्टी दे सकते हैं और किसी दूसरेको पादरी नियुक्त कर सकते हैं। किन्तु उन्होंने मुझे बिलकुल निश्चिन्त कर दिया है, इतना ही नहीं; बल्कि प्रोत्साहन भी दिया है। फिर आपको यह भी नहीं समझना चाहिए कि सभी गोरे समान रूपसे आप लोगोंको तिरस्कारकी दृष्टिसे देखते हैं। आपके प्रति परोक्ष रूपमें गोरोंकी कितनी अधिक सहानुभूति है, आप उसकी कल्पना नहीं कर सकते; किन्तु आप यह स्वीकार करेंगे कि उसका अनुभव मुझे तो होना ही चाहिए।"

इतनी साफ-साफ बात होनेपर मैंने इस विषयको फिर कभी नहीं छेड़ा। इसके बाद इस लड़ाईके दरम्यान भी जब रोडेशियामें अपना धार्मिक कार्य करते हुए श्री डोकका स्वर्गवास हो गया तब उनके सम्प्रदायके लोगोंने गिरजेमें एक शोक-सभा की। उन्होंने इस सभामें स्व० काछलियाको, दूसरे हिन्दुस्तानियोंको और मुझे बुलाया था और मुझे बोलनेका भी निमन्त्रण दिया था।[1]

मैं ठीक तरहसे चलने-फिरनेके योग्य हुआ, मुझे इसमें दस-एक दिन लगे होंगे। उसके बाद मैंने इस प्रेमी परिवारसे छुट्टी ली और इस तरह बिछुड़ते हुए हम दोनोंको दुःख हुआ।

अध्याय २३

गोरे सहायक

इस संघर्षमें पर्याप्त संख्यामें प्रतिष्ठित गोरोंने हिन्दुस्तानी कौमकी ओरसे आगे बढ़कर भाग लिया था। यहाँपर उनका कुछ परिचय दे देना अनुचित न होगा। इससे एक तो जगह-जगहपर उनके नाम आनेपर पाठकोंको वे अपरिचित नहीं लगेंगे, दूसरे मुझे भी संघर्षका वर्णन करते हुए बीच-बीचमें उनका परिचय देनेके लिए रुकना नहीं पड़ेगा। उनके नाम यहाँ जिस क्रममें आये हैं उससे पाठक यह न समझ लें कि वह क्रम उनकी प्रतिष्ठा अथवा उनकी सहायताके मूल्यांकनके खयालसे रखा गया है। समझना यही चाहिए कि मैंने उनके नाम परिचय होनेके क्रमसे और संघर्षमें जिस दौरमें उनकी सहायता मिली उसके क्रमसे दिये हैं।

सबसे पहले, अल्बर्ट वेस्टके बारेमें। कौमके साथ उनका सम्बन्ध इस संघर्षसे पहले ही आरम्भ हो गया था और मेरे साथ तो उनका सम्बन्ध उससे भी पहले हो चुका था। मैंने जब जोहानिसबर्गमें अपना दफ्तर खोला तब मेरा परिवार मेरे साथ नहीं था। पाठकोंको याद होगा कि मैं १९०३ में दक्षिण आफ्रिकासे हिन्दुस्तानियोंका तार मिलनेपर एकाएक चल पड़ा था और वह भी एक वर्षके भीतर वापस आ जानेके विचारसे। जोहानिसबर्गमें एक निरामिष भोजन-गृह था। मैं उसमें दोपहरको

१. गांधीजीके भाषणके लिए देखिए खण्ड १२, पृष्ठ १६९-१७०।

और सायंकालको नियमपूर्वक भोजन करने जाता था। वेस्ट भी उसीमें भोजन करनेके लिए आते। हम दोनोंकी जान-पहचान वहीं हुई थी। वे तब एक दूसरे गोरेके साझेमें एक छापाखाना चलाते थे।

१९०४ में जोहानिसबर्गके हिन्दुस्तानियोंमें जबर्दस्त प्लेग फैली; उस समय मैं बीमारोंकी सार-सम्भालमें व्यस्त हो गया और उक्त भोजन-गृहमें मेरा जाना अनियमित हो गया। मैं वहाँ जब जाता तब भी दूसरोंको बीमारीकी छूत लग जानेका भय न रहे इस विचारसे मैं दूसरोंके आनेसे पहले ही भोजन करके चला जाता। जब वेस्टने मुझे लगातार दो दिनतक वहाँ नहीं देखा तब उनको चिन्ता हुई। उन्होंने पत्रोंमें पढ़ा कि मैं बीमारोंकी सार-सँभालमें लगा हूँ। अतः उन्होंने तीसरे दिन सुबह ६ बजे, जब मैं हाथ-मुँह धो रहा था मेरे कमरेके किवाड़ खटखटाये। किवाड़ खोले तो सामने वेस्ट मुस्कराते हुए खड़े थे।

वे बहुत प्रसन्न जान पड़े और तुरन्त बोले, "आपको देखकर चित्तको शान्ति हुई। आपको भोजन-गृहमें नहीं देखा तो मुझे चिन्ता हो गई थी। मेरे लायक कुछ काम हो तो मुझे अवश्य बतायें।"

मैंने हँसकर पूछा, "बीमारोंकी सार सँभालमें?"

"क्यों नहीं? बेशक मैं उसके लिए तैयार हूँ।"

इस बीच मैंने काम सोच लिया था। मैंने कहा, "आपसे दूसरे किसी उत्तरकी आशा तो हो ही नहीं सकती थी। इस कार्यमें सहायता देनेवाले बहुत लोग हैं। मैं तो आपसे इससे भी अधिक कड़ा काम लेना चाहता हूँ। मदनजीत यहाँ आ गये हैं; इसलिए 'इंडियन ओपिनियन' के छापेखानेको सँभालनेवाला कोई नहीं है। मैंने मदनजीतको प्लेगके निवारणके काममें लगा दिया है। यदि आप डर्बन जाकर छापाखाना सँभाल लें तो यह सच्ची सहायता होगी। उसमें लुभावनी बात तो कुछ है नहीं। मैं आपको थोड़ा ही दे पाऊँगा, अर्थात् दस पौंड प्रति मास। इसके अतिरिक्त छापेखानेमें कुछ लाभ होगा तो उसका आधा आपका होगा।"

"यह काम कुछ अटपटा अवश्य है। मुझे अपने साझेदारसे स्वीकृति लेनी होगी। कुछ उगाही बाकी है; किन्तु चिन्ताकी कोई बात नहीं। आप मुझे आज सायंकालतक की छुट्टी तो देंगे न?"

"हाँ, हम ६ बजे पार्कमें मिलें।"

"मैं अवश्य आऊँगा।"

हम तदनुसार मिले। वेस्टने अपने साझेदारसे स्वीकृति ले ली थी। उन्होंने अपना उगाहीका काम मुझे सौंपा और दूसरे दिन सायंकालकी गाड़ीसे रवाना हो गये। एक महीनेके भीतर उनकी यह रिपोर्ट आई कि छापेखानेमें लाभ तो कुछ है ही नहीं, घाटा बहुत है। उगाही भी बहुत बाकी है। हिसाब-किताब ढंगसे नहीं रखा गया है। ग्राहकोंको नाम-पते ठीक नहीं लिखे गये हैं। दूसरी तरहकी अव्यवस्था भी बहुत है। यह बात मैं शिकायतके तौरपर नहीं लिख रहा हूँ। मैं यहाँ लाभ कमानेके लिए नहीं आया हूँ इसलिए जो काम हाथमें लिया है उसे मैं कभी नहीं

छोड़ूँगा, यह आप निश्चित मानें। किन्तु मैं आपको यह नोटिस अभीसे दिये देता हूँ कि आपको लम्बे अर्सेतक घाटा पूरा करते रहना होगा।

मदनजीत ग्राहक बनाने और छापेखानेकी व्यवस्थाके सम्बन्धमें मुझसे बातचीत करनेके लिए जोहानिसबर्ग आ गये थे। मैं उसमें हर महीने थोड़ा-बहुत घाटा देता रहता था, इसलिए मैं यह जानना चाहता था कि मुझे कहाँतक घाटा उठाना होगा। मैं पाठकोंको बता चुका हूँ कि मदनजीतको छापेखानेका अनुभव आरम्भसे ही नहीं था; इसलिए मैं सोचता रहता था कि यदि मैं उनके साथ किसी ऐसे आदमीको रख सकूँ जिसे इस कामका अनुभव हो तो अच्छा रहे। इसी बीच प्लेग फैल गया। मदनजीत इस सेवाके काममें बहुत कुशल और निर्भीक मनुष्य थे। इसलिए मैंने उनको इसमें लगा दिया था। अत: जब वेस्टका यह अनपेक्षित प्रस्ताव सामने आया तब मैंने उसे स्वीकार किया। मैंने उनको यह भी समझा दिया था कि उनको वहाँ जब-तक प्लेग है तभीतकके लिए नहीं, बल्कि स्थायी रूपसे रह जाना चाहिए। इसीलिए मेरे पास उनकी उक्त रिपोर्ट आई थी।

पाठक जानते हैं कि अखबार और छापाखाना अन्तमें फीनिक्स चले गये थे। वहाँ वेस्टकी गुजारेकी रकम १० पौंडसे तीन पौंड मासिक हो गई और ये सब परि-वर्तन उनकी पूर्ण सहमतिसे ही हुए। उनकी आजीविका कैसे चलेगी, मैंने उन्हें ऐसी चिन्ता करते कभी नहीं देखा। उन्होंने धर्मग्रन्थोंका अध्ययन नहीं किया था, फिर भी मैं जानता हूँ कि वे अत्यन्त कर्त्तव्यपरायण व्यक्ति थे। वे स्वतन्त्र स्वभावके मनुष्य थे। वे जिस बातको जैसा समझते उसको वैसा ही कहते थे। वे कालेको साँवला नहीं काला ही कहते थे। उनका रहन-सहन बहुत ही सादा था। जब उनसे मेरा परि-चय हुआ तब वे अविवाहित थे और ब्रह्मचर्यका पालन करते थे, यह मैं जानता हूँ। कुछ वर्ष बाद वे अपने माता-पिताको देखनेके लिए इंग्लैंड गये और वहाँसे विवाह करके वापस आये। वे मेरी सलाहसे अपनी पत्नी, सास और अपनी एक कुमारी बहनको अपने साथ ले आये थे। ये सब लोग फीनिक्समें बहुत ही सादगीसे और हर तरहसे हिन्दुस्तानियोंके साथ घुलमिल कर रहते थे। कुमारी एडा वेस्ट (जिन्हें हम देवी बहन कहते थे) अब ३५ वर्षकी होंगी, किन्तु वे अब भी कुमारी ही हैं और बहुत ही पवित्र जीवन बिताती हैं। उन्होंने भी कुछ कम सेवा नहीं की थी। उन्होंने फीनिक्समें रहनेवाले बच्चोंको रखने, उन्हें अंग्रेजी पढ़ाने, सार्वजनिक रसोईघरमें खाना पकाने, मकानकी सफाई, हिसाब-किताब रखने, कम्पोज करने और छापेखानेमें दूसरे काम करनेमें कभी आगा-पीछा नहीं किया। वे इस समय फीनिक्समें नहीं हैं और इसका कारण एकमात्र यही है कि मेरे हिन्दुस्तान चले आनेके बाद छापेखानेसे उनका वह थोड़ा-सा खर्च भी नहीं निकल पाता था। वेस्टकी सासकी उम्र अब ८० सालसे ज्यादा होगी। उन्हें सिलाईका काम बहुत अच्छा आता है। यह वृद्धा भी इस आश्रममें सीने-पिरोनेके काममें पर्याप्त सहायता देती थी। उसे फीनिक्समें सब दादी (ग्रैनी) कहते और मानते थे। वेस्टकी पत्नीके सम्बन्धमें तो कुछ कहनेकी जरूरत ही नहीं। जब फीनिक्सके बहुतसे लोग जेल चले गये तब वेस्ट परिवारने

फीनिक्सका सारा कामकाज मगनलाल गांधीके सहयोगसे चलाया। पत्र और छापाखाने-का बहुत-सा काम वेस्ट करते थे। मैं और दूसरे लोग जब वहाँ नहीं रहे तब वे ही डर्बनसे गोखलेको तार आदि भी भेजते। अन्तमें वे भी गिरफ्तार कर लिये गये (वे जल्दी ही छोड़ भी दिये गये थे।); अतः श्री गोखलेको बहुत चिन्ता हुई और उन्होंने एन्ड्रचूज और पियर्सनको दक्षिण आफ्रिका भेजा।

दूसरे गोरे सज्जन थे रिच। मैं उनके सम्बन्धमें लिख चुका हूँ। वे भी संघर्षसे पहले मेरे दफ्तरमें आ गये थे। वे मेरी अनुपस्थितिमें मेरा काम सँभाल सकेंगे, इस विचारसे बैरिस्टरी पास करने इंग्लैंड चले गये थे। इंग्लैंडमें दक्षिण आफ्रिकी ब्रिटिश भारतीय समितिकी पूरी जिम्मेदारी उन्हींपर थी।

तीसरे व्यक्ति थे पोलक। वेस्टकी तरह पोलकसे भी भोजनगृहमें अनायास ही परिचय हुआ था। वे भी 'ट्रान्सवाल क्रिटिक' पत्रके उप-सम्पादकका स्थान छोड़कर एक क्षणमें ही 'इंडियन ओपिनियन'में आ गये थे। सभी जानते हैं कि उन्होंने हिन्दुस्तानियोंके संघर्षके सम्बन्धमें इंग्लैंड और हिन्दुस्तानका दौरा किया था। रिचके इंग्लैंड चले जानेपर मैंने उन्हें फीनिक्ससे अपने दफ्तरमें बुला लिया था। वे वहाँ मेरे 'आर्टिकल्ड क्लर्क' रहे और फिर स्वयं भी वकील बन गये। उन्होंने बादमें विवाह कर लिया था। पोलककी पत्नीको भी हिन्दुस्तानके लोग जानते हैं। इस महिलाने भी संघर्ष सम्बन्धी कार्योंमें अपने पतिकी पर्याप्त सहायता की और विघ्न तो उसमें कभी डाला ही नहीं। ये दोनों यद्यपि इस समय असहयोग आन्दोलनमें हमारे साथ काम नहीं कर रहे हैं, फिर भी वे हिन्दुस्तानकी यथाशक्ति सेवा कर रहे हैं।

इसके बाद आते हैं हरमान कैलनबैक। इनसे भी मेरा परिचय लड़ाईसे पहले हुआ था। ये जातिके जर्मन हैं और यदि अंग्रेजों और जर्मनोंके बीच युद्ध न होता तो वे आज हिन्दुस्तानमें होते। उनका हृदय विशाल है और वे बेहद भोले हैं। उनकी भावनाएँ बहुत ही तीव्र हैं। वे वास्तुशिल्पी हैं। ऐसा कोई भी काम नहीं जिसे करनेमें उन्होंने आपत्ति की हो। मैं अपना जोहानिसबर्गका घर समेट लेनेके बाद उन्हींके साथ रहता था। मेरा खर्च भी तब वे ही उठाते थे। घर तो उनका अपना था ही। जब मैं खानेके खर्चमें अपना हिस्सा देता तब वे नाराज होते और यह कहकर मुझे उसे देनेसे रोकते कि उन्हें फजूलखर्चीसे बचानेवाला भी तो मैं ही हूँ। उनके इस कथनमें सचाई थी। किन्तु मुझे यहाँ इन गोरे सज्जनोंके साथ अपना निजी सम्पर्क नहीं बताना है। जब गोखले आये थे तब वे जोहानिसबर्गमें हिन्दुस्तानियोंकी ओरसे कैलनबैककी कोठीमें ठहराये गये थे। गोखलेको यह मकान बहुत पसन्द आया था। कैलनबैक उनको विदा करनेके लिए मेरे साथ जंजीबारतक गये थे। पोलकके साथ वे भी गिरफ्तार हुए थे और उन्होंने भी कैद भोगी थी। जब मैं दक्षिण आफ्रिकाको छोड़कर इंग्लैंडमें गोखलेसे मिलकर हिन्दुस्तान आ रहा था तब कैलनबैक मेरे साथ थे। उन्हें तब युद्धके कारण हिन्दुस्तान आनेका परिपत्र नहीं दिया गया था और वे इंग्लैंडमें अन्य जर्मनोंके साथ बन्द कर लिये गये थे। युद्ध समाप्त होनेपर वे फिर जोहानिसबर्ग चले गये और उन्होंने वहाँ अपना धन्धा फिर आरम्भ कर दिया। जब जोहानिसबर्गमें सत्याग्रही

कैदियोंके परिवारोंको एक जगह रखनेका निश्चय किया गया तब कैलनबैकने अपना ११०० बीघेका फार्म कौमको बिना किराया लिये दिया था। इसका विवरण पाठक आगे पढ़ेंगे।

अब मैं एक पवित्र लड़कीका परिचय दूँ। उसे गोखलेने जो प्रमाणपत्र दिया था उसे मैं पाठकोंके सम्मुख रखे बिना नहीं रह सकता। इस लड़कीका नाम कुमारी श्लेसिन था। गोखलेकी लोगोंको पहचाननेकी शक्ति अद्भुत थी। हमें डेलागोआ-बेसे जंजीबारतक शान्तिसे बातचीत करनेका अच्छा अवसर मिल गया था। श्री गोखलेने दक्षिण आफ्रिकाके हिन्दुस्तानी और गोरे नेताओंका भी पर्याप्त परिचय प्राप्त किया था। अतः उन्होंने उनमें से मुख्य-मुख्य लोगोंका सूक्ष्म विश्लेषण भी किया। मुझे ठीक-ठीक याद है कि उन्होंने कुमारी श्लेसिनको हिन्दुस्तानियों और गोरों, सबमें मिलाकर पहला स्थान दिया था। उन्होंने कहा था, "मैंने उसके समान अन्तःकरणकी निर्मलता, काममें दत्तचित्तता और दृढ़ता बहुत कम लोगोंमें देखी है। हिन्दुस्तानियोंके संघर्षमें बिना किसी लाभके ऐसा सम्पूर्ण समर्पण देखकर मैं तो आश्चर्यचकित हो गया हूँ। इसके अतिरिक्त, इन सब गुणोंके साथ उसकी कार्यकुशलता और तत्परता उसे इस संघर्षमें एक अमूल्य सेविका बना देती है। मुझे कहनेकी जरूरत तो नहीं है, किन्तु मैं फिर भी कहता हूँ कि आप उसे अवश्य अपने साथ बनाये रखें।"

एक स्कॉच कुमारी, जिसका नाम डिक था, मेरी स्टेनो-टाइपिस्ट थी। वह बहुत ही वफादार और नीतिमान थी। मुझे अपने जीवनमें बहुतसे कटु अनुभव हुए हैं; किन्तु मेरा सम्बन्ध बहुतसे उच्च चरित्रके अंग्रेजों और हिन्दुस्तानियोंसे भी हुआ है और मैं इसे सदा अपना सौभाग्य मानता आया हूँ। जब कुमारी डिकके विवाहका समय आया तब उसे हमसे अलग होना पड़ा। उस समय श्री कैलनबैक कुमारी श्लेसिनको मेरे पास लाये थे और मुझसे कहा था, "इस लड़कीकी माँने इसे मुझे सौंपा है। यह चतुर है और प्रामाणिक है किन्तु इसके स्वभावमें शरारत और स्वतन्त्रता बहुत है। सम्भव है, यह उद्धत भी हो। यदि आप उसे निभा सकें तो अपने पास रखें। मैंने इसे आपके पास वेतनकी दृष्टिसे नहीं रखा।" मैं तो अच्छे स्टेनो-टाइपिस्टको २० पौंड मासिकतक देनेको तैयार था। मैं कुमारी श्लेसिनकी योग्यता तबतक नहीं जानता था। श्री कैलनबैकने कहा, "इसे फिलहाल ६ पौंड वेतन दें।" मुझे यह वेतन स्वीकार करनेमें क्या अड़चन हो सकती थी?

कुमारी श्लेसिनकी शरारतका अनुभव तो मुझे तुरन्त ही हो गया; किन्तु उसने मेरा मन एक महीनेमें ही जीत लिया। रात हो या दिन, उसे किसी भी समय काम दे दीजिये। उसके लिए कोई भी काम अशक्य अथवा कठिन नहीं था। उस समय उसकी आयु १६ वर्षकी थी। उसने अपनी शुद्धचित्तता और सेवा-परायणतासे मेरे मुवक्किलों और सत्याग्रहियोंका मन मोह लिया था। यह लड़की मेरे दफ्तरकी और इस लड़ाईकी नीतिकी चौकीदार और निगहबान हो गई थी। यदि उसे किसी कार्यकी नीति-सम्मतताके सम्बन्धमें तनिक भी शंका होती तो वह मुझसे बिलकुल खुलकर वादविवाद करती और मैं जबतक उसकी नीति सम्मतताके सम्बन्धमें उसको आश्वस्त न कर देता तबतक वह सन्तुष्ट न होती।

जब सब लोग गिरफ्तार कर लिये गये और नेताओंमें एक काछलिया ही बाहर रह गये तब इस बहनने लाखों रुपयेका हिसाब रखा और भिन्न-भिन्न प्रकृतिके व्यक्तियोंसे काम लिया। काछलिया भी उसका सहारा मानते और उसकी सलाह लेते। हम सब लोगोंके जेल चले जानेपर 'इंडियन ओपिनियन' का काम श्री डोकने सँभाला; किन्तु ये श्वेतकेशी और अनुभवी वयोवृद्ध भी 'इंडियन ओपिनियन' के लिए लिखे गये लेखोंको कुमारी श्लेसिनको दिखाकर ही अन्तिम रूप देते थे। उन्होंने मुझसे कहा था, "यदि कुमारी श्लेसिन न होती तो मैं नहीं जानता कि अपने कामसे मैं स्वयं अपनेको ही किस प्रकार सन्तुष्टकर पाता। मैं उसकी सहायता और उसके सुझावोंका मूल्य नहीं आँक सकता। कई बार स्वयं मैंने भी उसके बताये हुए परिवर्तन और परिवर्धन उचित समझकर स्वीकार किये हैं। पठान, पटेल, गिरमिटिये, सभी धन्धों और सभी अवस्थाओंके हिन्दुस्तानी उसको घेरे रहते, उससे सलाह लेते और जैसा वह कहती वैसा करते।

दक्षिण आफ्रिकामें गोरे और हिन्दुस्तानी रेल-गाड़ीके डिब्बोंमें प्रायः साथ-साथ नहीं बैठते थे। ट्रान्सवालमें तो उनके साथ-साथ बैठनेका निषेध ही था। सत्याग्रहियोंका नियम तीसरे दरजेमें ही सफर करनेका था। इसके बावजूद कुमारी श्लेसिन जानबूझकर हिन्दुस्तानियोंके ही डिब्बेमें बैठती और रोकनेवाले गार्डोंसे हुज्जत भी करती। वह किसी दिन गिरफ्तार हो जायेगी, यह भय मुझे था और स्वयं उसके मनमें भी गिरफ्तार होनेकी हौंस थी। उसकी योग्यता, आन्दोलनके सम्बन्धमें उसका पूर्ण ज्ञान और सत्याग्रहियोंके हृदयोंपर उसका अधिकार — ये तीनों बातें ट्रान्सवाल सरकारके ध्यानमें थीं; किन्तु फिर भी ट्रान्सवाल सरकारने कुमारी श्लेसिनको गिरफ्तार नहीं किया और इस प्रकार इस हदतक उसने नीति और शिष्टताका त्याग नहीं किया।

कुमारी श्लेसिनने अपना मासिक वेतन ६ पौंडसे बढ़ानेकी इच्छा या माँग कभी नहीं की। मैंने उसकी कुछ जरूरतोंको देखकर उसको १० पौंड वेतन देना शुरू किया; किन्तु उसने इसे भी आनाकानी करते हुए ही स्वीकार किया और इससे अधिक वेतन लेनेसे तो साफ इनकार ही कर दिया। उसने कहा, "इससे ज्यादाकी मुझे जरूरत ही नहीं है। यदि मैं इससे ज्यादा लूँ तो मैं जिस निष्ठासे आपके पास आई हूँ वह झूठी सिद्ध होगी।" उसके इस उत्तरसे मैं चुप हो गया। पाठक शायद यह जानना चाहेंगे कि कुमारी श्लेसिनने शिक्षा कहाँतक पाई थी। उसने केप विश्वविद्यालयसे इंटरमीडिएटकी परीक्षा उत्तीर्णकी थी और आशुलिपिमें प्रथम श्रेणीका प्रमाणपत्र प्राप्त किया था। इस आन्दोलनसे मुक्त होनेपर उसने उसी विश्वविद्यालयकी स्नातक परीक्षा उत्तीर्णकी और इस समय वह ट्रान्सवालकी किसी कन्याशालामें प्रधान अध्यापिका है।

हर्बर्ट किचिन एक शुद्ध हृदयके अंग्रेज थे। वे बिजलीका काम जानते थे और बोअर युद्धमें हमारे साथ काम करते थे। वे कुछ समयतक 'इंडियन ओपिनियन' के सम्पादक भी रहे थे। उन्होंने ब्रह्मचर्यका आजन्म पालन किया था।

मैंने ऊपर जिन लोगोंका उल्लेख किया है, वे तो ऐसे लोग हैं जो मेरे विशेष सम्पर्कमें आये थे। उनकी गणना ट्रान्सवालके मुख्य गोरोंमें नहीं की जा सकती। फिर भी कहा जा सकता है कि ट्रान्सवालके गोरोंने हमें बहुत सहायता दी थी। प्रतिष्ठा की दृष्टिसे श्री हॉस्केनका स्थान पहला है। वे दक्षिण आफ्रिकाके व्यापार मण्डलोंकी सभाके अध्यक्ष रहे थे और उस समय ट्रान्सवाल विधान सभाके सदस्य थे। मैं उनका परिचय पहले दे चुका हूँ। उनकी अध्यक्षतामें सत्याग्रह आन्दोलनके सहायक गोरोंकी एक स्थायी समिति बनाई गई थी। इस समितिने हमें यथाशक्ति सहायता दी। जब आन्दोलनका रंग पूरी तरह जम गया तब स्थानीय सरकारसे हमारे बातचीतके सम्बन्ध कैसे जारी रह सकते थे? असहयोगका तत्त्व इसका कारण नहीं था, बल्कि कारण यह था कि जो लोग सरकारी कानूनोंको तोड़ते थे उनसे सरकार बातचीतका व्यवहार नहीं रख सकती थी। इस कारण उस समय गोरोंकी इस समितिने सरकार और सत्याग्रहियोंको जोड़नेवाली कड़ीका काम किया।

मैं अल्बर्ट कार्टराइटका परिचय भी पहले करा चुका हूँ। रेवरेंड चार्ल्स फिलिप्स नामके एक दूसरे भले पादरी थे। इनसे भी हमारा सम्बन्ध श्री डोककी तरह घनिष्ठ था और इन्होंने हमारी बहुत सहायता की थी। वे ट्रान्सवालमें बहुत वर्षोंतक धर्मोपदेष्टा पादरी (कोंग्रिगेशनल मिनिस्टर) रहे थे। उनकी पत्नी भी हमें सहायता देती थी। एक तीसरे प्रमुख पादरी रेवरेंड ड्यूडनी ड्रू थे जिन्होंने पादरीका काम छोड़कर एक अखबार-का सम्पादकत्व स्वीकार किया था। ये ब्लूमफॉन्टीनसे प्रकाशित दैनिक पत्र 'फ्रेन्ड' के सम्पादक थे। इन्होंने गोरोंका तिरस्कार मोल लेकर अपने पत्रमें हिन्दुस्तानियोंका पक्ष पोषण किया था। उनकी गणना दक्षिण आफ्रिकाके प्रसिद्ध वक्ताओंमें की जाती थी। इसी तरहकी मुक्त सहायता देनेवाले 'प्रिटोरिया न्यूज' के सम्पादक श्री वेर स्टेंट थे। एक बार प्रिटोरियाके नगरपालिका भवनमें वहाँके मेयरके सभापतित्वमें गोरों-की एक बहुत बड़ी सभा की गई थी। उसका उद्देश्य हिन्दुस्तानियोंके आन्दोलनकी निन्दा करना और खूनी कानूनका समर्थन करना था। श्री वेर स्टेंटने उस सभामें अकेले ही उन गोरोंका विरोध किया। अध्यक्षने उनको बैठ जानेका आदेश दिया, किन्तु उन्होंने उसे नहीं माना। गोरोंने उन्हें मारने-पीटनेकी भी धमकी दी; किन्तु यह वीर पुरुष फिर भी सिंहकी भाँति दहाड़ते हुए नगरपालिका-भवनमें अड़े रहे। अन्तमें संयोजकोंको सभा प्रस्ताव पास किये बिना ही विसर्जित करनी पड़ी।

मैं ऐसे अन्य गोरोंके नाम भी गिना सकता हूँ जो किसी संस्थामें तो सम्मिलित नहीं हुए, किन्तु जिन्होंने सहायताका एक भी अवसर हाथसे नहीं जाने दिया। मैं इस प्रकरणको अधिक लम्बा करना नहीं चाहता और इसे तीन महिलाओंका परिचय देकर ही समाप्त कर दूँगा। इनमें से एक थीं कुमारी हॉबहॉउस। ये लॉर्ड हॉबहॉउसकी पुत्री थीं। ये बहन बोअर युद्धके समय लॉर्ड मिलनरका विरोध करके ट्रान्सवालमें गई थीं। जिस समय लॉर्ड किचनरने युद्धमें सम्मिलित बोअरोंकी स्त्रियोंको नजरबन्द करनेके लिए ट्रान्सवाल और ऑरेंज फ्री स्टेटमें प्रख्यात या कुख्यात नजरबन्द शिविर (कंसेंट्रेशन कैम्प) खोले, उस समय ये बहन बोअर स्त्रियोंमें अकेली ही

घूमती थीं, उनको दृढ़ रहनेके लिए समझाती थीं और उनका साहस बढ़ाती थीं। वे अंग्रेजोंकी बोअर सम्बन्धी नीतिको पूर्णतः अन्यायपूर्ण मानती थीं, इसलिए वे स्व० स्टेडकी भाँति ही ईश्वरसे युद्धमें अंग्रेजोंकी पराजयकी कामना और प्रार्थना करती थीं। बोअरोंकी इतनी बड़ी सेवा करनेके बाद जब उन्होंने यह देखा कि बोअर जिस अन्यायके विरुद्ध लड़े थे स्वयं अज्ञानके कारण पथभ्रष्ट होकर हिन्दुस्तानियोंके प्रति वही अन्याय करनेके लिए तैयार हो गये हैं; तब वे इसे सहन नहीं कर सकीं। बोअर जाति उनका बहुत सम्मान करती और उनसे बहुत प्रेम रखती थी। कुमारी हॉबहॉउसका जनरल बोथासे बहुत निकटका सम्बन्ध था। वे उन्हींके यहाँ ठहरती थीं। उन्होंने इस खूनी कानूनको रद करानेके सम्बन्धमें बोअर संस्थाओंमें यथाशक्ति चर्चा की।

दूसरी बहन थीं ऑलिव श्राइनर। मैं इन बहनकी चर्चा पाँचवें प्रकरणमें कर चुका हूँ। ये विदुषी बहन दक्षिण आफ्रिकाके प्रसिद्ध श्राइनर परिवारमें जन्मी थीं। श्राइनर नाम इतना अधिक प्रसिद्ध है कि विवाहके बाद इनके पतिको इनका पारिवारिक नाम ही कायम रखना पड़ा था। इसमें उनका हेतु यह था कि दक्षिण आफ्रिकाके गोरोंमें श्राइनर परिवारके साथ ऑलिवका सम्बन्ध लुप्त न हो। इस सम्बन्धमें उनका अभिमान मिथ्या न था। मेरा खयाल है कि उनसे मेरा परिचय अच्छा था। जैसे विद्वत्ता इन बहनकी भूषण थी वैसे ही सादगी और नम्रता उनका भूषण थीं। उन्होंने अपने हब्शी नौकरों और अपने बीच कभी अन्तर माना ही नहीं। उनकी 'ड्रीम्स' नामकी पुस्तक जहाँ भी अंग्रेजी भाषा बोली जाती है वहाँ सर्वत्र आदरसे पढ़ी जाती है। यह पुस्तक गद्य होनेपर भी काव्यकी श्रेणीमें रखी जाती है। इसके अलावा भी उन्होंने बहुत-कुछ लिखा है। लेखनीपर इतना अधिकार होनेपर भी वे अपने घरमें अपने हाथसे भोजन बनाने, झाड़ने-बुहारने और बर्तन माँजनेमें शरमाती या झिझकती नहीं थीं। वे यह मानती थीं कि इस प्रकारके उपयोगी शरीर-श्रमसे उनकी लेखनी कुण्ठित नहीं बल्कि प्रखर होगी और उनकी भाषा और भावोंमें एक प्रकारकी विनम्रता और गम्भीरता आयेगी। इन बहनने भी दक्षिण आफ्रिकाके गोरोंपर अपना प्रभाव हिन्दुस्तानियोंके पक्षमें डालनेका यथाशक्ति उद्योग किया था।

तीसरी बहन थीं कुमारी मॉल्टेनो। ये दक्षिण आफ्रिकाके पुराने मॉल्टेनो परिवारकी वयोवृद्ध महिला थीं। इन्होंने भी भारतीयोंकी शक्ति-भर सहायता की थी।

पाठक पूछेंगे कि इतने सारे गोरोंकी सहायाताका परिणाम क्या निकला? मेरा उत्तर यह है कि मैंने यह प्रकरण परिणाम बतानेके लिए नहीं लिखा। इनमें से कुछके कामका वर्णन मैं कर चुका हूँ। यही उसके परिणामका साक्षी भी है। किन्तु इन हितैषी गोरोंके समस्त कार्योंका क्या परिणाम हुआ, यह प्रश्न उठ सकता है। यह लड़ाई ही ऐसी थी कि उसका परिणाम उसीमें आ जाता है। यह लड़ाई आत्मावलम्बन, आत्म त्याग और ईश्वरपर श्रद्धाकी लड़ाई थी। इन गोरे सहायकोंके नामोंके उल्लेखका एक हेतु यह है कि यदि दक्षिण आफ्रिकाके सत्याग्रहके इतिहासमें इनकी

दी हुई सहायताकी सराहना न की जाती तो यह इस इतिहासकी त्रुटि ही होती। फिर मैंने सभी गोरे सहायकोंके नाम तो दिये नहीं हैं, किन्तु जितने नाम दिये हैं उनसे इस प्रकरणमें हमारी ओरसे सभी सहायकोंके प्रति आभार व्यक्त हो जाता है। इसका दूसरा हेतु यह है कि यद्यपि हम किसी कार्य-विशेषका परिणाम स्पष्ट रूपसे नहीं देख सकते, फिर भी जो कार्य शुद्धचित्तसे किया जाता है उसका दृश्य अथवा अदृश्य शुभ परिणाम होता ही है — मैं इस सिद्धान्तके सम्बन्धमें सत्याग्रहीके रूपमें अपनी श्रद्धा प्रकट करना चाहता था। इनके अतिरिक्त इसका तीसरा सबल हेतु यह है कि सद्वृत्तियोंसे अनेक प्रकारकी शुद्ध और निःस्वार्थ सहायता सहज ही आकृष्ट होती है, मुझे यह बात बतानी थी। यदि इस प्रकरणसे यह बात अबतक समझमें न आई हो तो मैं यह स्पष्ट कर देना चाहता हूँ कि यदि हम सत्याग्रहकी लड़ाईमें सत्यकी रक्षाको ही मुख्य प्रयास मानें तो इन गोरोंकी सहायता प्राप्तिका इसके अतिरिक्त कोई दूसरा प्रयास नहीं किया गया था। वे लोग इस लड़ाईकी ओर इसकी शक्तिसे ही आकृष्ट हुए थे।

अध्याय २४

विशेष भीतरी कठिनाइयाँ

२२ वें प्रकरणमें हमें कुछ भीतरी कठिनाइयोंका आभास मिला। मेरे ऊपर आक्रमण होनेके समय मेरे परिवारके लोग फीनिक्समें रहते थे। इस आक्रमणसे उनका चिन्तित होना स्वाभाविक था, परन्तु वे मुझे देखनेके लिए पैसा खर्च करके फीनिक्ससे जोहानिसबर्ग भागे आयें, यह सम्भव नहीं था। इसलिए ठीक होनेपर मुझे वहाँ जाना था। नेटाल और ट्रान्सवालके बीच कार्यवश मेरा आना-जाना होता ही रहता था। समझौतेको लेकर नेटालमें बहुत भ्रम फैल रहा है, यह बात भी मेरी जानकारीके बाहर नहीं थी। वहाँसे मेरे नाम और दूसरोंके नाम जो पत्र आते उनसे मैं यह बात जान गया था; 'इंडियन ओपिनियन' के नाम आये हुए आलोचनात्मक पत्रोंका ढेर भी मेरे पास पड़ा था। यद्यपि अभीतक सत्याग्रह ट्रान्सवालके हिन्दुस्तानियोंतक ही सीमित रहा था, फिर भी नेटालके हिन्दुस्तानियोंकी सहमति और सहानुभूति तो प्राप्त करनी ही थी। ट्रान्सवालके हिन्दुस्तानी ट्रान्सवालके निमित्तको लेकर समस्त दक्षिण आफ्रिकाके हिन्दुस्तानियोंकी लड़ाई लड़ रहे थे। इसलिए नेटालमें फैले हुए भ्रमको दूर करनेके लिए मेरा डर्बन जाना आवश्यक था। इस कारण मैं जल्दीसे-जल्दी अवसर मिलते ही वहाँ गया।

डर्बनमें हिन्दुस्तानियोंकी सार्वजनिक सभा की गई। मुझे कुछ मित्रोंने पहले ही चेता दिया था, इस सभामें आपके ऊपर आक्रमण किया जायेगा; अतः आप या तो सभामें जाना स्थगित कर दें या अपने बचावकी कोई व्यवस्था कर लें। किन्तु मैं इन दोनोंमें से कोई भी काम नहीं कर सकता था। यदि स्वामी सेवकको बुलाये और सेवक भयके कारण न जाये तो इससे उसके सेवा-धर्मका लोप होगा। यदि सेवक

स्वामीके दण्डसे डरे तो वह सेवक कैसा? सेवाकी खातिर लोकसेवा करना खाँडेकी धार पर चलने जैसा है। लोकसेवक स्तुति सुननेके लिए तैयार होता है तो वह निन्दा सुननेसे कैसे भाग सकता है? इसलिए मैं तो सभामें नियत समयपर पहुँच गया। समझौता कैसे हुआ, मैंने यह बात लोगोंको समझाई।[1] उन्होंने जो प्रश्न किये मैंने उनके उत्तर भी दिये। यह सभा सायंकालके समय लगभग ८ बजे हुई थी। सभाकी कार्यवाही लगभग समाप्त होनेको थी, तभी एक पठान अपना लठ लेकर मंचपर चढ़ आया। तभी बतियाँ बुझ गईं। मैं स्थितिको समझ गया। अध्यक्ष सेठ दाऊद मुहम्मद अपनी मेजपर चढ़ गये और लोगोंको समझाने लगे। मुझे बचाव करनेवाले लोगोंने घेर लिया था। स्वयं मैंने अपने बचावकी कोई कार्यवाही नहीं की थी। किन्तु मैंने बादमें देखा कि जिन्हें आक्रमण होनेका डर था वे सब तैयार होकर आये थे। उनमें से एक आदमी अपने जेबमें रिवाल्वर भी रख कर लाया था। उसने उससे एक खाली फायर भी किया। इसी दर्मियान पारसी रुस्तमजीने आक्रमणकी तैयारियाँ देखकर बिजलीकी तरह तेजीसे दौड़ लगाई और पुलिस सुपरिंटेंडेंट अलेक्जेंडरको खबर दी। पुलिस सुपरिंटेंडेंटने अपने सिपाहियोंकी एक टुकड़ी भेज दी और वह इस भीड़-भाड़में से रास्ता बनाकर मुझे अपने बीचमें घेर कर पारसी रुस्तमजीके घर ले गई।

दूसरे दिन सुबह पारसी रुस्तमजीने डर्बनके पठानोंको इकट्ठा किया और उनसे कहा कि उनको मुझसे जो भी शिकायतें हों वे उन्हें मेरे सम्मुख रखें। मैं उनसे मिला। मैंने उनको शान्त करनेका प्रयत्न किया, किन्तु मैं उन्हें शान्त कर सका हूँ ऐसा मुझे नहीं लगा। शकका इलाज दलीलोंसे और समझानेसे नहीं हो सकता। उनके मनमें तो यह बात बैठ गई थी कि मैंने कौमके साथ दगा की है और जबतक यह मैल उनके मनमें से नहीं निकलता तबतक उन्हें समझानेका मेरा प्रयत्न बेकार था।

मैं उसी दिन फीनिक्स गया। जिन मित्रोंने पिछली रात मेरी रक्षा की थी उन्होंने साफ-साफ कहा कि वे मुझे अकेला न छोड़ेंगे और स्वयं भी फीनिक्समें ही डेरा डालेंगे। मैंने कहा, "यदि आप मेरे इनकारकी परवाह न करके मेरे साथ चलना चाहें तो मैं आपको रोक नहीं सकता। किन्तु वहाँ तो जंगल है और यदि वहाँ रहनेवाले हम लोग आपको खाना भी न दें तो आप क्या करेंगे?" उनमें से एकने उत्तर दिया, "हमें ऐसा डर दिखानेकी जरूरत नहीं। हम अपना इन्तजाम खुद कर लेंगे। और जब हम चौकीदारी करेंगे तब हमें आपका भण्डार लूटनेसे भी कौन रोकेगा? इस तरह हास्य-विनोद करते हुए हम फीनिक्स पहुँच गये।

इस टुकड़ीका मुखिया जेक मूडले नामका एक व्यक्ति था जो हिन्दुस्तानियोंमें प्रसिद्ध था। वह नेटालमें तमिल माँ-बापके घर जन्मा था। उसने मुक्केबाजीका विशेष प्रशिक्षण प्राप्त किया था और उसका विश्वास था कि इस युद्धमें गोरा या काला कोई भी उसका मुकाबला नहीं कर सकता। उसके साथी भी ऐसा ही मानते थे।

दक्षिण आफ्रिकामें बहुत सालोंसे मेरी यह आदत बन गई थी कि जब वर्षा न होती तब मैं सदा बाहर खुलेमें सोता। मैं इस आदतको इस समय बदलनेको तैयार

१. ५ मार्च, १९०८ को। भाषण उपलब्ध नहीं है।

न था। इसलिए मेरे रक्षकोंकी अपने-आप बनी हुई टुकड़ीने रातको मेरे बिस्तरके पास ही पहरा देनेका फैसला किया। यद्यपि मैंने डर्बनमें इस टुकड़ीकी हँसी उड़ाई थी और उसे यहाँ आनेसे रोकनेका प्रयत्न किया था, फिर भी मुझे अपनी इतनी कमजोरी तो स्वीकार करनी ही चाहिए कि जब टुकड़ीके सदस्योंने पहरा देना शुरू किया तब मुझे अपने मनमें अभयकी अनुभूति हुई और यह खयाल भी आया कि यदि ये लोग यहाँ न आते तो क्या मैं इतना अभय हो कर सो सकता? मुझे ऐसा खयाल आता है कि कोई आवाज होती थी तो मैं उससे अवश्य चौंक पड़ता था।

मेरा खयाल है कि ईश्वरपर मेरी अविचल श्रद्धा है। बहुत वर्षोंसे मैं अपनी बुद्धिसे यह भी मानता आया हूँ कि मृत्यु मनुष्यके जीवनमें एक बड़ा परिवर्तन-मात्र है और वह जब भी आये स्वागत योग्य ही है। मैंने अपने हृदयमें से मृत्यु-भयको और अन्य भयोंको ज्ञानपूर्वक निकालनेका भारी प्रयत्न किया है। फिर भी मुझे स्मरण है कि मैं अपने जीवनमें अनेक अवसरोंपर मृत्युसे भेंट होनेकी सम्भावनाका विचार आनेपर किसी वियुक्त मित्रसे भेंट होनेके विचार-जैसा आनन्दविभोर नहीं हो सका हूँ। मनुष्य इस प्रकार सबल बननेका महान् प्रयत्न करनेपर भी बहुत बार निर्बल रह जाता है और बुद्धि-जनित ज्ञान, व्यवहारका अवसर आनेपर, अधिक काम नहीं आ पाता। फिर जब उसे बाह्य आश्रय मिल जाता है और उसे वह स्वीकार कर लेता है तब तो वह अपने आन्तरिक बलको बहुत-कुछ खो ही बैठता है। सत्याग्रहीको चाहिए कि वह इस प्रकारके भयोंसे सदा बचता रहे।

मैंने फीनिक्समें एक ही काम किया और वह था इस भ्रमको दूर करनेके लिए खूब लिखना। मैंने सम्पादक और सन्देहग्रस्त पाठकोंका एक कल्पित संवाद भी लिखा। इस संवादमें मैंने अपनी सुनी हुई समस्त आपत्तियों और आलोचनाओंका यथासम्भव विस्तारसे विवेचन किया।[1] मेरा खयाल है कि इसका फल अच्छा निकला। कुछ लोगोंको सचमुच भ्रम हुआ होता अथवा बना रहता तो उसका परिणाम दुःखदायी होता। ऐसे लोगोंमें यह भ्रम जमा नहीं है, यह भली-भाँति प्रकट हो गया। समझौतेको मानना या न मानना केवल ट्रान्सवालके हिन्दुस्तानियोंका काम था। इसलिए उनकी परीक्षा उनके कार्योंसे होनी थी और नेता और सेवकके रूपमें मेरी भी परीक्षा होनी थी। ऐच्छिक परवाने जिन्होंने नहीं लिये ऐसे हिन्दुस्तानी बहुत कम ही रहे होंगे। परवाने लेनेके लिए इतने हिन्दुस्तानी जाते थे कि परवाने देनेवाले अधिकारियोंको फुरसत नहीं मिलती थी। कौमने समझौतेके अन्तर्गत अपनी तरफकी शर्तोंको बहुत जल्दी पूरा कर दिया था। यह बात सरकारको भी स्वीकार करनी पड़ी।[2] मैंने यह भी देखा कि यद्यपि भ्रमने उग्र रूप ले लिया था, किन्तु वह बहुत कम क्षेत्र तक ही सीमित था। जब कुछ पठानोंने कानून अपने हाथमें ले लिया और जोर-जबरदस्तीका रास्ता पकड़ा तब भारी खलबली मची। किन्तु यदि हम ऐसी खलबलीका

१. देखिए खण्ड ८, पृष्ठ ७५-८३।

२. २१ अगस्त, १९०८को विधान परिषद्में स्मट्सने भी इसे स्वीकार किया था। देखिए खण्ड ८, परिशिष्ट १०।

विश्लेषण करें तो हमें यह मालूम पड़ जाता है कि वह बहुत गहरी नहीं होती और प्राय: क्षणिक भी होती है। फिर भी संसारमें उसका जोर आज भी कायम है, क्योंकि हम खून-खराबीसे काँप जाते हैं। किन्तु यदि हम धैर्यपूर्वक विचार करें तो हमें तुरन्त मालूम हो जायेगा कि काँपनेका कोई भी कारण नहीं है। मान लें कि मीर आलम और उसके साथियोंकी चोटोंसे घायल होनेके बजाय मेरा शरीर नष्ट हो जाता। यह भी मान लें कि कौम ज्ञानपूर्वक निश्चिन्त और शान्त बनी रहती और मीर आलम अपनी बुद्धिके अनुसार इससे भिन्न कुछ कर ही नहीं सकता था, यह समझकर उसके प्रति मित्रभाव और क्षमाभाव रखती। तब कौमका कोई नुकसान न हुआ होता, इतना ही नहीं, बल्कि उससे उसको बहुत लाभ पहुँचता, क्योंकि कौममें से भ्रम बिलकुल निकल जाता। उससे कौम अपनी प्रतिज्ञापर दुगुने उत्साहसे आरूढ़ रहती और अपने कर्त्तव्यका पालन करती। उससे मुझे तो विशुद्ध लाभ ही हुआ होता, क्योंकि सत्याग्रहीको सत्यका आग्रह करते हुए सत्याग्रहके प्रसंगमें ही अनायास मृत्युको आलिंगन करना पड़े, वह इससे अधिक मंगल किसी अन्य परिणामकी कल्पना ही नहीं कर सकता। ऐसे तर्क सत्याग्रह-जैसे संघर्षपर ही लागू हो सकते हैं, क्योंकि उसमें वैरभावके लिए स्थान नहीं होता। उसमें आत्मशक्ति अथवा आत्मावलम्बन ही एकमात्र साधन होता है। उसमें एकको दूसरेके मुँहकी ओर ताकते बैठा नहीं रहना पड़ता। उसमें कोई नेता नहीं होता, इसलिए कोई सेवक भी नहीं होता, अथवा कहना चाहिए कि उसमें सभी सेवक और सभी नेता होते हैं। इसलिए चाहे कितने ही प्रमुख मनुष्यकी मृत्यु क्यों न हो जाये उससे यह लड़ाई शिथिल नहीं होती, बल्कि और भी तीव्र होती है।

यह सत्याग्रहका शुद्ध और मूल रूप है। हमें व्यवहारमें ऐसा दिखाई नहीं देता, क्योंकि सभी लोग वैरका त्याग नहीं कर पाते। व्यवहारमें देखा जाता है कि सत्याग्रहका मर्म सभी नहीं समझते। बहुतसे लोग तो थोड़ेसे लोगोंको देखकर उनका अन्धानुकरण करते हैं। फिर टॉल्स्टॉयके कथनानुसार तो ट्रान्सवालका प्रयोग सामुदायिक और सामाजिक सत्याग्रहका पहला ही प्रयोग है। स्वयं मैं ऐसे सत्याग्रहका ऐतिहासिक उदाहरण नहीं जानता। मेरा ऐतिहासिक ज्ञान बहुत कम है, इसलिए मैं इस सम्बन्धमें अपना कोई निश्चित मत नहीं बना सकता। किन्तु असलमें देखें तो इस तरहके उदाहरणोंसे हमारा कोई सम्बन्ध नहीं है। यदि आप सत्याग्रहके मूलतत्व स्वीकार कर लें तो आप देखेंगे कि मैंने जो परिणाम बताये हैं, वे उसमें मौजूद हैं।

इनपर अमल करना मुश्किल या नामुमकिन है ऐसा तर्क देखकर हम इस अमूल्य वस्तुकी उपेक्षा नहीं कर सकते। शस्त्रबलके दूसरे प्रयोग तो हजारों सालोंसे होते आये हैं। उनके कटु परिणाम हम प्रत्यक्ष देख रहे हैं। भविष्यमें उनके मीठे परिणाम होनेकी आशा कम ही की जा सकती है। यदि अन्धकारमें से प्रकाश उत्पन्न हो सकता हो तो वैरभावमें से प्रेमभाव भी प्रकट हो सकता है।

अध्याय २५

जनरल स्मट्सका विश्वासघात (?)

पाठकोंको आन्तरिक कठिनाइयोंका कुछ आभास मिल गया। इसमें बहुत-कुछ तो मुझे अपनी कहानी ही देनी पड़ी है। ऐसा करना अनिवार्य था क्योंकि सत्याग्रहके सम्बन्धमें मेरी कठिनाइयाँ सत्याग्रहियोंकी कठिनाइयाँ भी बन गई थीं।

इस प्रकरणका शीर्षक देते समय मुझे लज्जाका अनुभव हुआ है और ऐसा ही अनुभव इस प्रकरणको लिखते समय भी हो रहा है; क्योंकि इसमें मनुष्यके स्वभावकी कुटिलताका दिग्दर्शन हुआ है। जनरल स्मट्स १९०८ में भी दक्षिण आफ्रिकाके योग्य-तम नेता माने जाते थे। आज भी वे संसार-भरमें नहीं तो ब्रिटिश साम्राज्य-भरमें एक उच्च प्रकारके व्यवहार-कुशल मनुष्य माने जाते हैं। वे बहुत योग्य हैं इस सम्बन्धमें भी मुझे अपने मनमें कोई शंका नहीं है। वे जैसे कुशल वकील हैं वैसे ही कुशल सेनापति और राजनीतिज्ञ भी हैं। दक्षिण आफ्रिकामें अन्य राजनीतिज्ञ आये और चले गये; किन्तु यह मनुष्य १९०७ से लेकर अबतक दक्षिण आफ्रिकामें राज-काजकी बागडोर अपने हाथमें सँभाले है। अब भी दक्षिण आफ्रिकामें कोई दूसरा मनुष्य उनकी स्पर्धामें खड़ा नहीं रह सकता। इन पंक्तियोंको लिखते वक्त मुझे दक्षिण आफ्रिकाको छोड़े नौ वर्ष हो गये हैं। मैं नहीं जानता कि आज दक्षिण आफ्रिकाके लोग उनको क्या विशेषण देते हैं। जनरल स्मट्सका मुख्य नाम जॉन है और उन्हें दक्षिण आफ्रिकाके लोग "स्लिम जैनी" कहकर याद करते हैं। यहाँ 'स्लिम'का अर्थ 'फिसल-नेवाला', 'पकड़में न आ सकनेवाला' है। गुजरातीमें उससे मिलते-जुलते अर्थवाला शब्द 'खन्धो' (धूर्त) है, या नरम विशेषण बरतें तो विपरीत अर्थमें 'चालाक' है। मुझे बहुतसे अंग्रेज मित्रोंने कहा था, "आप जनरल स्मट्ससे सावधान रहें। यह बहुत घाघ आदमी है। उसे बात पलटते देर नहीं लगती। अपने कहे शब्दोंका ठीक अर्थ वही समझ सकता है। वह बहुत बार इस तरहसे बात करता है कि दोनों पक्ष उसके शब्दोंका अपने अनुकूल अर्थ निकाल सकते हैं। फिर अवसर आनेपर वह दोनों पक्षोंके अर्थको एक ओर रखकर अपना एक तीसरा ही अर्थ करता है, और उसीके अनुसार व्यवहार करता है और उसके समर्थनमें ऐसे चतुराई-भरे तर्क देता है कि एक क्षणके लिए दोनों पक्षोंको यह विश्वास हो जाता है कि भूल हमारी ही होनी चाहिए और जनरल स्मट्स जो अर्थ करता है वही ठीक है।" मुझे इस प्रकरणमें एक ऐसे ही विषयका वर्णन करना है। जब यह घटना घटी उस समय भी मैंने उसे विश्वासघात माना था और वैसा कहा था। मैं अब भी उसे कौमकी दृष्टिसे विश्वासघात मानता हूँ। फिर भी मैंने शीर्षकमें इस शब्दके बाद प्रश्नसूचक चिह्न लगाया है। इसका कारण यह है कि हो सकता है, इस कार्यमें उनकी नीयत वास्तवमें विश्वासघातकी न रही हो। यदि उसमें उनकी नीयत ऐसी न हो तो वह विश्वासघात कैसे माना जा सकता है। १९१३-१४में मुझे जनरल स्मट्सका जो अनुभव हुआ था मैंने उसे उस समय कटु नहीं माना था और आज भी जब मैं उसका विवेचन अधिक तटस्थतासे कर सकता हूँ, उसे कटु

नहीं मान सकता। यह सर्वथा सम्भव है कि १९०८ में हिन्दुस्तानियोंके प्रति किया गया उनका व्यवहार जानबूझकर किया गया विश्वासघात न हो।

मैंने यह प्रस्तावना इसलिए दी है कि मैं उनके प्रति न्याय कर सकूँ और साथ ही उनके नामके साथ मैंने "विश्वासघात" शब्दका जो प्रयोग किया है उसका, और मुझे इस प्रकरणमें जो-कुछ कहना है उसका, बचाव हो सके।

हम पिछले प्रकरणमें देख चुके हैं कि हिन्दुस्तानियोंने ट्रान्सवालकी सरकारकी दृष्टिसे सन्तोषप्रद ऐच्छिक परवाने ले लिये थे। अब सरकारके लिए खूनी कानून रद करना बच रहता था। यदि वह उसे रद कर देती तो सत्याग्रहकी लड़ाई बन्द हो जाती। इसका अर्थ यह नहीं है कि ट्रान्सवालमें हिन्दुस्तानियोंके विरुद्ध जो भी कानून बने थे वे सभी रद हो जाते अथवा हिन्दुस्तानियोंके सभी कष्ट मिट जाते। इसके लिए तो उन्हें पहलेकी तरह ही कानूनी लड़ाई लड़नी थी। सत्याग्रह तो खूनी कानून रूपी नई घनघोर घटाको हटानेके लिए ही किया गया था। उसे स्वीकार करनेसे कौमकी बदनामी होती और पहले ट्रान्सवालमें से और फिर समस्त दक्षिण आफ्रिकामें से उसका अस्तित्व मिट जाता। किन्तु जनरल स्मट्सने खूनी कानूनको रद करनेके बजाय नया ही कदम उठाया। उन्होंने जो विधेयक[1] प्रकाशित किया उसके द्वारा खूनी कानून बहाल रखा और ऐच्छिक परवानोंको कानूनी माना। किन्तु उन्होंने उसमें एक धारा यह रखी कि इन परवाने लेनेवालोंपर खूनी कानून लागू नहीं किया जा सकता। इसका अर्थ यह हुआ कि एक ही उद्देश्यके लिए दो कानून साथ-साथ रहें और नये आनेवाले अथवा नये परवाने लेनेवाले हिन्दुस्तानी खूनी कानूनसे नियन्त्रित हों।

इस विधेयकको पढ़कर मैं तो किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो गया। मैं अब कौमको क्या जवाब दूँगा। आधी रातके समय होनेवाली उस सभामें जिन पठान भाइयोंने मुझपर तीखे आक्षेप किये थे उनको इससे कैसा अच्छा समर्थन मिला। किन्तु मुझे कहना चाहिए कि इस धक्केसे मेरा सत्याग्रहमें विश्वास दुर्बल नहीं हुआ, बल्कि पुष्ट ही हुआ। मैंने समितिकी बैठक बुलाई और उसमें सब बातें समझाईं। कुछ लोगोंने मुझे ताने भी दिये, "हम तो आपसे कहते ही आये हैं कि आप बहुत भोले हैं। कोई भी कुछ कह देता है और आप उसीपर विश्वास कर लेते हैं। यदि आप अपने निजी कामोंमें ही भोले बनें तो कोई बात नहीं किन्तु आप कौमी मामलोंमें भोलापन बरतते हैं तो उसका नुकसान कौमको उठाना पड़ता है। हमें तो पहले-जैसा उत्साह अब फिर आना बहुत कठिन मालूम होता है। हमारी कौम कैसी है, क्या आप यह नहीं जानते? यह तो सोडा-वाटरकी बोतल है। उसमें घड़ीभर उफान आता है। हमें उसीका उपयोग जितना किया जा सके उतना करना होता है। यह उफान ठंडा हो जाये तो फिर कुछ नहीं रहता।"

शब्दोंके इन बाणोंमें विष नहीं था। मैंने ऐसी तीखी बातें अन्य प्रसंगोंपर भी सुनी थीं। मैंने हँसकर उत्तर दिया, "आप जिसे मेरा भोलापन कहते हैं वह तो

१. विधेयकके पाठके लिए देखिए खण्ड ८, पृष्ठ ४४८-९।

मेरे स्वभावका एक अंग है। यह भोलापन नहीं है, बल्कि विश्वास है; और विश्वास करना तो मेरा और आप सबका धर्म है। फिर यदि आप इसे दोष मानें तो भी, यदि मेरी सेवासे कुछ लाभ उठाया जा सकता है तो आपको मेरे दोषका नुकसान भी सहन करना चाहिए। आप मानते हैं कि कौमका उत्साह सोडा-वाटरके उफान-जैसा है किन्तु मैं ऐसा नहीं मानता। कौममें तो मैं और आप भी हैं। यदि आप मेरे उत्साहके साथ ऐसा विशेषण लगायें तो मैं उसमें अवश्य ही अपना अपमान मानूंगा और मुझे विश्वास है कि आप स्वयंको भी अपवाद ही मानते होंगे। यदि न मानते हों और अपने ही पैमानेसे कौमको नापते हों तो आप कौमका अपमान करते हैं। ऐसी बड़ी लड़ाइयोंमें उतार-चढ़ाव तो आते ही रहते हैं। कितनी ही सफाई की हो फिर भी विरोधी पक्ष विश्वासका भंग करना चाहे तो उसे इससे कौन रोक सकता है? इस संस्थामें ऐसे बहुतसे लोग हैं जो मेरे पास दावेके लिए अपने रुक्के लाते हैं। रुक्के लिखनेवाले दस्तखत करके अपने हाथ कटा देते हैं, इससे अधिक सावधानी क्या की जा सकती है? तिसपर भी उनपर अदालतमें दावे दायर करने पड़ते हैं। वे उनके विरुद्ध खड़े होते हैं और बहुत तरहसे अपना बचाव करते हैं। डिग्रियाँ होती हैं और कुर्कियाँ निकाली जाती हैं। ऐसी अशोभनीय घटनाएँ फिर न हो सकें इसके लिए क्या सावधानी हो सकती है? इसलिए मेरी सलाह तो यही है कि जो उलझन पैदा हो गई है उसे हम धीरजसे सुलझायें। हमें फिर लड़ना पड़े तो हम क्या कर सकते हैं, अर्थात् दूसरे लोग क्या करेंगे इसका विचार न करके प्रत्येक सत्याग्रहीको यही विचार करना चाहिए कि स्वयं वह क्या करेगा अथवा क्या कर सकता है। मुझे तो ऐसा लगता है कि यदि हम इतने लोग सच्चे रहें तो दूसरे भी सच्चे ही रहेंगे और यदि उनमें कोई निर्बलता आ गई होगी तो वे हमारे उदाहरणसे अपनी निर्बलताको दूर कर शक्ति प्राप्त कर सकेंगे।"

मुझे लगता है कि लड़ाई फिर छिड़ सकनेके सम्बन्धमें जिन्होंने नेक इरादेसे तानोंके रूपमें अपनी शंका प्रकट की थी उनका समाधान हो गया। इस अवसरपर काछलिया अपना जौहर हर रोज अधिकाधिक दिखा रहे थे। वे सभी मामलोंमें कमसे-कम शब्दोंमें अपना निश्चय प्रकट करते और उसपर अडिग रहते। मुझे ऐसा एक भी प्रसंग याद नहीं आता जब उन्होंने कमजोरी बताई हो अथवा अन्तिम परिणामके सम्बन्धमें शंका प्रकट की हो। फिर वह समय निकट आ गया। जब ईसप मियाँ तूफानी समुद्रमें हमारे कर्णधार रहनेके लिए तैयार नहीं हुए, उस समय सभीने एक स्वरसे कर्णधारके रूपमें काछलियाका स्वागत किया और उस समयसे लेकर अन्तिम क्षणतक उन्होंने अपने हाथसे पतवार नहीं छोड़ी। जिन कष्टोंको शायद ही कोई आदमी सहन कर सकता, उनको उन्होंने निश्चिन्त और निर्भय होकर सहन किया। लड़ाईमें आगे चलकर ऐसा वक्त भी आया जब जेलमें जाकर बैठना आसान काम हो गया —— लगभग आराम करने-जैसा काम हो गया; पर बाहर रहकर सब बातोंको बारीकीसे जाँचना, उनकी व्यवस्था करना और बहुतसे लोगोंको समझाना, यह सब बहुत कठिन काम बन गया।

ऐसा वक्त भी आया जब काछलियाको उनके गोरे लेनदारोंने अपने शिकंजेमें कसा। बहुतसे हिन्दुस्तानियोंका व्यापार गोरे व्यापारियोंकी पेढ़ियोंपर निर्भर रहता है। ये पेढ़ियाँ लाखों रुपयोंका माल किसी तरहकी जमानत लिये बिना हिन्दुस्तानी व्यापारियोंको उधार देती हैं। हिन्दुस्तानी व्यापारी ऐसा विश्वास प्राप्त कर सके हैं, यह उनके व्यापारकी सामान्य प्रामाणिकताका एक अच्छा प्रमाण है। सेठ काछलियाको भी बहुत-सी अंग्रेज पेढ़ियोंने माल उधार दिया था। प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूपसे सरकारके उकसानेसे इन व्यापारियोंने काछलियासे अपना पैसा तुरन्त माँगा। उन्होंने काछलियाको बुलाकर भी कहा — "यदि आप इस लड़ाईमें से बाहर निकल आयें तो हमें अपना पैसा लेनेकी कोई जल्दी नहीं है। यदि आप लड़ाईसे न हटे तो हमें भय है कि सरकार आपको चाहे जब पकड़ लेगी। उस अवस्थामें हमारे पैसेका क्या होगा? इसलिए यदि आप इस लड़ाईको न छोड़ सकें तो हमारा पैसा हमें तुरन्त लौटा दें।" इस वीर पुरुषने उत्तर दिया: "लड़ाई तो मेरी निजी बात है। उसका मेरे व्यापारसे कोई सम्बन्ध नहीं है। इस लड़ाईमें मेरा धर्म, मेरे लोगोंका सम्मान और मेरा अपना सम्मान निहित है। आपने मुझे उधार माल दिया, इसके लिए मैं आपका आभारी हूँ। किन्तु मैं इसको या अपने व्यापारको सर्वप्रथम नहीं मान सकता। आपके पैसे मेरे लिए सोनेकी मुहर हैं। मैं ीता रहूँगा तबतक अपना तन बेचकर भी आपका पैसा दे सकता हूँ। मान लें कि मुझे कुछ हो गया तो भी आप यह समझ लें ाक मेरा उधार खाता और माल आपके हाथोंमें है। आपने आजतक मेरा विश्वास किया है और मैं चाहता हूँ कि आप अब भी मेरा विश्वास करें।" यद्यपि यह तर्क बिलकुल उचित ही था और काछलियाकी दृढ़ता गोरे व्यापारियोंके लिए विश्वासका अतिरिक्त कारण थी फिर भी इस समय उसका प्रभाव उनके ऊपर नहीं हो सकता था। हम सोते आदमीको जगा सकते हैं; किन्तु जगता हुआ सोनेका बहाना करता हो, उसे नहीं जगाया जा सकता। इन गोरे व्यापारियोंकी भी यही दशा थी। उन्हें तो काछलियाको दबाना था; उनका पावना खतरेमें बिलकुल नहीं था।

मेरे दफ्तरमें इन लेनदारोंकी बैठक हुई।[1] मैंने उनसे स्पष्ट शब्दोंमें कहा कि वे लोग काछलियापर जो दबाव डाल रहे हैं वह व्यापार-नीति नहीं है, बल्कि राजनीति है। यह नीति व्यापारियोंको शोभा नहीं देती। वे इससे और भी खीझ गये। सेठ काछलियाके मालकी और उगाहीकी सूची मेरे पास थी। मैंने यह सूची उनको दिखाई और उससे यह सिद्ध किया कि उनका पावना आना-पाईसे दिया जा सकता है। फिर यदि वे लोग इस व्यापारको किसी दूसरेको बेचना चाहें तो काछलिया अपना सब माल और उधारखाता किसी खरीददारको सौंपनेके लिए भी तैयार हैं। यदि वे ऐसा न करना चाहें तो वे दूकानमें मौजूद मालको असली मूल्यमें ले लें और फिर भी उनके पावनेमें कुछ कमी रहे तो उसकी भरपाई इस उगाहीमें से पसन्द करके उससे कर लें। पाठक समझ सकते हैं कि इस प्रस्तावको मान लेनेसे गोरे व्यापारियोंकी कोई हानि नहीं हो सकती थी, और इस तरहसे मैंने संकटके समय बहुतसे

१. २२ जनवरी १९०९ को; देखिए खण्ड ९, पृष्ठ १५८।

आसामियोंकी लेनदारोंके साथ ऐसी व्यवस्था कराई भी थी, किन्तु इस मामलेमें व्यापारी न्याय करना नहीं चाहते थे। वे तो काछलियाको झुकाना चाहते थे। किन्तु काछलिया नहीं झुके और दिवालिये करार दे दिये गये, यद्यपि उनका माल और पावना बादमें उनकी देनदारीसे बहुत ज्यादा निकला।

यह दिवालियापन उनके लिए कलंक रूप न था, बल्कि भूषण-रूप था। इससे कौममें उनका सम्मान बढ़ गया और सभीने उन्हें उनकी दृढ़ता और वीरताके लिए बधाई दी। किन्तु इस प्रकारकी वीरता अलौकिक है। सामान्य मनुष्य इसे नहीं समझ सकता। सामान्य मनुष्य तो यह कल्पना भी नहीं कर सकता कि दिवाला किस तरह दिवाला न रहकर अथवा अपयश कैसे आदर और मानका रूप ले सकता है। काछलियाको यही बात स्वाभाविक लगी। बहुतसे व्यापारी केवल दिवालेके डरसे खूनी कानूनके आगे झुके थे। काछलिया चाहते तो दिवालेसे बच सकते थे। लड़ाईसे अलग होकर बचनेका उपाय तो था ही, किन्तु इस स्थानमें मेरे मनमें यह बात नहीं है। बहुत-से हिन्दुस्तानी काछलियाके मित्र थे। वे ऐसे संकटके समय उन्हें पैसा उधार दे सकते थे; किन्तु यदि वे ऐसी व्यवस्था करके अपने व्यापारकी रक्षा करते तो इससे उनकी वीरतामें बट्टा लगता। जेल जानेका जो जोखिम उनके सामने था वह तो सभी सत्याग्रहियोंके सामने था। इसलिए किसी सत्याग्रहीसे पैसा लेकर गोरोंका पैसा चुकाना कभी शोभा न देता। किन्तु जैसे सत्याग्रही व्यापारी उनके मित्र थे वैसे ही कानूनके माननेवाले व्यापारी भी उनके मित्र थे। मैं जानता हूँ कि उन्हें उनकी सहायता मिल सकती थी। मुझे याद आता है कि उनके एक दो मित्रोंने उनके पास यह प्रस्ताव भेजा भी था। किन्तु उनकी सहायता लेना तो खूनी कानूनको मानना ठीक है, यह स्वीकार करनेके समान होता। इसलिए हम दोनोंने यह निश्चय किया कि उनकी सहायता कदापि नहीं ली जा सकती।

इसके अतिरिक्त हम दोनोंने यह भी सोचा कि यदि काछलिया स्वयंको दिवालिया घोषित होने देंगे तो उनका दिवाला दूसरोंके लिए ढाल-रूप बन सकता है, क्योंकि लेनदार शत-प्रतिशत नहीं तो नब्बे प्रतिशत दिवालोंमें कुछ-न-कुछ खोता ही है। यदि उसे रुपयेमें आठ आने मिलते हैं तो वह खुश होता है, और रुपयेमें बारह आने मिलते हैं तो उन्हें वह रुपयेके बराबर ही मानता है, क्योंकि दक्षिण आफ्रिकाके व्यापारमें बड़े व्यापारी सामान्यतः सवा छः प्रतिशत लाभ नहीं लेते, बल्कि पच्चीस प्रतिशत लाभ लेते हैं। इसलिए यदि उनको रुपयेमें बारह आने मिल जाते हैं तो वे उसे घाटेका व्यापार ही नहीं मानते। किन्तु दिवालेमें पावनेकी पूरी रकम तो शायद ही मिलती है। इसी कारण कोई भी लेनदार यह नहीं चाहता कि कर्जदारको दिवालिया बनवा दे। इसलिए काछलियाके दिवालेसे यह जरूरी था कि गोरे दूसरे व्यापारियोंको धमकी देना बन्द कर देते। ऐसा ही हुआ भी। गोरोंका उद्देश्य यह था कि काछलिया इस लड़ाईसे अलग हो जायें और यदि अलग न हों तो वे उनसे अपना पावना आना-पाईसे वसूल कर लें। इन दोनों उद्देश्योंमें से उनका एक भी उद्देश्य पूरा नहीं हुआ, बल्कि उलटा विपरीत परिणाम निकला। एक प्रतिष्ठित हिन्दुस्तानी व्यापारीने दिवालेका स्वागत किया, इसका यह पहला ही उदाहरण था। गोरे

व्यापारी यह देखकर दंग रह गये और सदाके लिए शान्त हो गये। गोरोंको सेठ काछलियाके मालमें से एक सालके भीतर ही अपने पावनेका पूरा रुपया, आना-पाईसे मिल गया। दक्षिण आफ्रिकामें दिवालेमें लेनदारोंको आना-पाईसे पूरा पावना मिला हो, मेरी जानकारीमें इसका यह पहला उदाहरण था। इससे लड़ाईके दिनोंमें ही गोरे व्यापारियोंमें काछलियाकी प्रतिष्ठा बहुत बढ़ गई और उन्हीं व्यापारियोंने लड़ाईके चलते हुए भी उनको जितना चाहिए उतना माल उधार देनेकी तैयारी दिखाई, किन्तु काछलियाका बल तो दिन-प्रतिदिन बढ़ता ही जाता था। वे इस लड़ाईका मर्म भी भली-भाँति समझ गये थे। बादमें तो कोई यह नहीं कह सकता था कि यह लड़ाई कितनी लम्बी चलेगी। इसलिए दिवालेके बाद हमने यह निश्चय किया था कि जबतक लड़ाई चलती है तबतक तो किसी लम्बे व्यापारमें न पड़ें। उन्होंने यह भी निश्चय किया कि लड़ाईके दरम्यान उतना ही व्यापार करनेकी प्रवृत्ति रखी जाये जितनेसे एक गरीब आदमी अपना खर्च चला सकता है और बाकी व्यापार तबतक बन्द रखा जाये। इसलिए उन्होंने गोरोंकी दी हुई सुविधाका उपयोग ही नहीं किया।

पाठक समझ ही लेंगे कि सेठ काछलियाके जीवनकी जिन घटनाओंका वर्णन मैंने यहाँ किया है, वे सब इस प्रकरणमें बताई हुई समितिकी बैठकके बाद ही घटित नहीं हुई थीं। मैंने उन्हें यहाँ इस खयालसे दिया है कि इन सबका वर्णन एकसाथ ही कर देना उचित होगा। तारीखवार देखें तो सत्याग्रहकी दूसरी लड़ाई १० सितम्बर १९०८को आरम्भ हुई। सेठ काछलिया उसके बाद अध्यक्ष बनाये गये और उसके लगभग ५ मासके बाद दिवालिया घोषित किये गये।

अब हम समितिकी बैठकके परिणामपर विचार करें। मैंने इस बैठकके बाद जनरल स्मट्सको पत्र[1] लिखा कि आपका नया विधेयक समझौतेके विरुद्ध जाता है। उन्होंने समझौतेके बाद एक सप्ताहके भीतर ही एक भाषण[2] दिया था। मैंने उनका ध्यान उस भाषणकी ओर भी खींचा। उन्होंने अपने भाषणमें इन शब्दोंका प्रयोग किया था: "ये (एशियाई) लोग मुझसे एशियाई कानूनको रद करनेकी बात कहते हैं। मैंने जबतक वे ऐच्छिक परवाने नहीं ले लेते तबतक इस कानूनको रद करनेसे इनकार कर दिया है।" प्रशासक ऐसी किसी बातका उत्तर नहीं देते जिससे वे किसी उलझनमें फँस जायें और देते भी हैं तो वह गोल-मोल होता है। जनरल स्मट्स इस कलामें भली-भाँति कुशल हो गये थे। उन्हें चाहे जितने पत्र लिखे जाते और भाषणोंमें चाहे जितनी आलोचना की जाती, किन्तु जबतक उनकी इच्छा उत्तर देनेकी न होती तबतक उनसे उत्तर नहीं लिया जा सकता था। वे इस सामान्य शिष्टताका बन्धन भी नहीं मानते थे कि प्राप्त पत्रोंका उत्तर दिया ही जाना चाहिए। इसलिए मुझे अपने पत्रोंका उनकी ओरसे कोई सन्तोषजनक उत्तर नहीं मिल सका।

मैं अल्बर्ट कार्टराइटसे, जो हमारे बीच मध्यस्थ थे, मिला। उनको इससे बहुत आघात लगा और उन्होंने मुझसे कहा: "सच तो यह है कि मैं इस आदमीको समझ

१. पत्र उपलब्ध नहीं है।

२. यह भाषण रिचमंडमें दिया गया था। देखिए खण्ड ८, परिशिष्ट ८।

ही नहीं सकता। उन्होंने एशियाई कानूनको रद करनेकी बात कही थी, यह मुझे ठीक-ठीक याद है। मैं जो-कुछ कर सकता हूँ, वह करूँगा। किन्तु आप तो जानते ही हैं कि यह आदमी जब निश्चय कर लेता है तब इसपर किसीका कोई बस नहीं चलता। वे अखबारोंके लेखोंको तो गिनते ही नहीं, इसलिए मुझे बहुत भय है कि मेरी सहायता आपके काम नहीं आ सकेगी।" मैं हॉस्केन और दूसरे लोगोंसे भी मिला। हॉस्केनने जनरल स्मट्सको पत्र लिखा। उन्हें भी बहुत ही असन्तोषजनक उत्तर मिला। मैंने "यह दगा तो नहीं है" शीर्षकसे[1] 'इंडियन ओपिनियन' में लेख भी लिखे; किन्तु जनरल स्मट्स उनकी भी क्या परवाह करते? आप तत्त्ववेत्ता अथवा निष्ठुर मनुष्यके सम्बन्धमें कितने ही कटु विशेषणोंका प्रयोग करें, उसपर उनका प्रभाव नहीं पड़ता। वह तो अपने मनका काम करनेमें ही जुटा रहता है। मैं नहीं जानता कि जनरल स्मट्सके सम्बन्धमें इन दोनोंमें से किस विशेषणका प्रयोग किया जा सकता है। उनकी वृत्तिमें एक प्रकारकी दार्शनिकता है, यह तो मुझे स्वीकार करना ही चाहिए। मुझे याद है कि जिस समय हमारा पत्र-व्यवहार चलता था और मैं अखबारोंमें लेख लिखता था उस समय मैंने उन्हें निष्ठुर ही माना था। किन्तु उस समयतक तो लड़ाईकी पहली अवस्था ही थी। वह इस लड़ाईका दूसरा वर्ष था और लड़ाई ८ वर्ष चली। मैं इस बीचमें उनसे बहुत बार मिला हूँ। हमारे बीच बादमें जो बातें हुईं उनसे मुझे ऐसा लगता था कि दक्षिण आफ्रिकामें जनरल स्मट्सकी धूर्तताके सम्बन्धमें जो सामान्य मान्यता है उसमें परिवर्तन किया जाना चाहिए। मुझे दो बातें स्पष्ट दिखाई दीं कि उन्होंने अपनी राजनीतिके सम्बन्धमें कुछ सिद्धान्त बना लिये हैं और जो बिलकुल अनैतिक भी नहीं हैं; किन्तु इसके साथ मैंने यह भी देखा कि उनके राजनीति-शास्त्रमें चालाकीके और अवसर आनेपर सत्याभासके प्रयोगके लिए स्थान है।

अध्याय २६

लड़ाईकी पुनरावृत्ति

एक ओर जनरल स्मट्ससे समझौतेकी शर्त पूरी करनेके लिए अनुनय-विनय और दूसरी ओर कौमको फिर जाग्रत करनेका काम भी उत्साहपूर्वक किया जा रहा था। यह अनुभव किया गया कि सभी जगहोंपर लोग लड़ाईको फिर चालू करने और जेल जानेके लिए तैयार हैं। सभी जगहोंपर सभाएँ करना आरम्भ कर दिया गया था। इन सभाओंमें सरकारके साथ जो पत्र-व्यवहार चल रहा था उसके विषयमें समझाया जाता था। 'इंडियन ओपिनियन' में तो सप्ताहकी डायरी दी ही जाती थी, ताकि कौमको सारी स्थिति मालूम रहे। सभीको यह बात समझा दी गई थी कि ऐच्छिक परवाने निष्फल होनेवाले हैं। यदि खूनी कानून रद न किया जाये तो हमें उनको जला ही देना होगा, जिससे स्थानीय सरकार यह समझ सके कि कौम अडिग

१. देखिए खण्ड ८, पृष्ठ २४०।

और निश्चिन्त है एवं लोग जेल जानेके लिए भी तैयार हैं। इस उद्देश्यसे सभी स्थानोंसे परवाने भी इकट्ठे किये जा रहे थे।

जिस विधेयकका उल्लेख हम पिछले प्रकरणमें कर चुके हैं सरकारने उसे पास करनेकी तैयारी शुरू की। ट्रान्सवाल विधानसभाकी बैठक हुई। कौमने वहाँ भी अर्जी[1] भेजी; किन्तु इसका भी परिणाम कुछ नहीं हुआ। अन्तमें सत्याग्रहियोंकी ओरसे निश्चय-पत्र[2] (अल्टीमेटम) भेजा गया। वैसे अल्टीमेटमका अर्थ है लड़ाईके विचारसे भेजा गया निश्चयपत्र अथवा धमकीका पत्र। 'अल्टीमेटम' शब्दका प्रयोग कौमकी ओरसे नहीं किया गया था; यह नाम तो जनरल स्मट्सने विधानसभामें उस पत्रको दिया जिसे हिन्दुस्तानी कौमने अपना निश्चय बतानेके लिए भेजा था और साथ ही यह भी कहा: "जो लोग सरकारको ऐसी धमकी दे रहे हैं उन्हें सरकारकी शक्तिका अनुमान नहीं है। मुझे तो इसी बातका दुख है कि कुछ आन्दोलनशील व्यक्ति गरीब हिन्दुस्तानियोंको भड़का रहे हैं और यदि ये गरीब लोग उनके जोरपर भड़के तो वे बरबाद हो जायेंगे।" अखबारोंके संवाददाताओंने इस प्रसंगका वर्णन करते हुए लिखा था कि विधानसभाके बहुतसे सदस्य 'अल्टीमेटम' की बात सुनकर बहुत क्रुद्ध हुए, उनकी आँखें लाल हो गईं और उन्होंने जनरल स्मट्सके प्रस्तुत किये हुए विधेयकको सर्वसम्मतिसे और उत्साहपूर्वक पारित कर दिया।

उक्त 'अल्टीमेटम' में इतनी ही बात थी: "हिन्दुस्तानी कौम और जनरल स्मट्सके बीच जो समझौता हुआ था उसका स्पष्ट मुद्दा यह था कि यदि हिन्दुस्तानी ऐच्छिक परवाने ले लें तो विधानसभामें उनको कानूनसम्मत बनानेका विधेयक प्रस्तुत किया जायेगा और एशियाई कानून रद कर दिया जायेगा। यह बात स्पष्ट है कि हिन्दुस्तानी कौमने अधिकारियोंकी दृष्टिमें सन्तोषजनक रूपसे ऐच्छिक परवाने ले लिए हैं, इसलिए अब एशियाई कानून रद किया ही जाना चाहिए। कौमने इस सम्बन्धमें जनरल स्मट्ससे बहुत लिखा-पढ़ी की। उसने न्याय प्राप्तिके लिए दूसरे जो कानूनी उपाय किये जाने चाहिए, वे भी किये; किन्तु अभीतक कौमका प्रयत्न निष्फल हुआ है। विधेयक विधानसभामें पास किया ही जानेवाला है; अतः इस समय कौमकी बेचैनी और भावना सरकारको बताना नेताओंका कर्त्तव्य है। हमें खेदपूर्वक कहना पड़ता है कि यदि समझौतेकी शर्तके अनुसार एशियाई कानून रद नहीं किया जायेगा और इस सम्बन्धमें किये गये निर्णयकी सूचना एक निश्चित अवधिके भीतर कौमको नहीं दी जायेगी तो कौमने जो परवाने इकट्ठे किये हैं, वह उन्हें जला देगी और फलस्वरूप अपने ऊपर आनेवाले कष्टोंको वह विनयपूर्वक और दृढ़तापूर्वक सहन करेगी।"

इस पत्रको 'अल्टीमेटम' माननेका एक कारण तो यह था कि उसमें उत्तरके लिए अवधि रखी गई थी। उसका दूसरा कारण गोरोंका यह सामान्य विचार था कि हिन्दुस्तानी कौम एक असभ्य कौम है। यदि गोरे हिन्दुस्तानियोंको अपनी बराबरीका मानते होते तो वे इस पत्रको विनयपत्र मानते और उसपर ध्यान भी देते।

१. देखिए खण्ड ८, पृष्ठ ४४३-५।

२. गांधीजीका तात्पर्य सम्भवतः १४ अगस्त १९०८को लिखे पत्रसे है। देखिए खण्ड ८, पृष्ठ ४४५-६।

किन्तु गोरोंका हिन्दुस्तानियोंके सम्बन्धमें बना हुआ यह सामान्य विचार ही उक्त पत्रको लिखनेका पर्याप्त कारण था। कौमके सामने दो स्थितियाँ थीं; एक तो यह कि वह अपने आपको असभ्य मानकर दबी रहे और दूसरी यह कि अपने आपको असभ्य माननेसे इनकार करके कुछ अमली कदम उठाये। यह पत्र ऐसे कदमोंमें पहला कदम था। यदि इस पत्रके पीछे उसपर अमल करनेका दृढ़ निश्चय न होता तो वह उद्धतताका सूचक माना जाता और यह सिद्ध करता कि भारतीय कौम विचार-हीन और असंस्कृत है।

पाठकोंके मनमें शायद यह शंका उत्पन्न हो कि अपनेको असभ्य माननेसे इन्कार करनेका कदम तो १९०६ में जब सत्याग्रहकी प्रतिज्ञा की गई, तभी उठाया जा चुका था और यदि यह बात ठीक हो तो इस कागजमें ऐसी कौनसी नई बात थी जिससे मैं इसे ऐसा महत्व देता हूँ और यह मानता हूँ कि कौमने उसी समयसे अपने-आपको असभ्य माननेसे इन्कार किया। एक दृष्टिसे ऐसा तर्क ठीक माना जा सकता है किन्तु विशेष विचार करनेसे मालूम होगा कि इस इनकारीका ठीक-ठीक आरम्भ तो इस निश्चय-पत्रसे हुआ। पाठकोंको याद रखना चाहिए कि सत्याग्रहकी प्रतिज्ञाकी घटना तो अकस्मात् हुई थी। उसके बाद जेल जाना आदि तो उसका अनिवार्य परिणाम ही था। उससे कौमकी जो प्रतिष्ठा बढ़ी, वह अनजाने ही बढ़ी थी। इस पत्रको लिखते समय तो परिणामोंका पूरा ज्ञान और प्रतिज्ञाकी रक्षाका पूरा संकल्प था। खूनी कानून रद करानेका उद्देश्य तो जैसा पहले था वैसा अब भी था। किन्तु उसके साथ भाषाकी शैली, कार्य-पद्धतिके चुनाव आदिमें भेद था। एक गुलाम अपने मालिकको सलाम करता है और एक दोस्त दूसरे दोस्तको सलाम करता है—सलाम तो ये दोनों ही करते हैं किन्तु इन दोनोंमें इतना बड़ा भेद है कि तटस्थ दर्शक भी यह पहचान ले सकता है कि उनमें कौन गुलाम है और कौन मित्र।

'अल्टीमेटम' भेजते वक्त भी हमने आपसमें यह विचार तो किया ही था कि उत्तरकी अवधि बाँधनेको क्या अविनय नहीं समझा जायेगा, क्या ऐसा नहीं हो सकता कि स्थानीय सरकार हमारी माँग स्वीकार करना चाहती हो तो भी इसके कारण वह उसे स्वीकार न करे? क्या अप्रत्यक्ष रीतिसे कौमका निश्चय सरकारको बताना पर्याप्त न होगा? इन सब बातोंपर विचार करनेके बाद हम सबने एकमत होकर यह निश्चय किया कि हम जिस बातको ठीक और उचित मानते हों हमें वही करनी चाहिए। अशिष्ट माने जानेका खतरा हो तो उसे भी उठाना चाहिए। जो देना चाहिए सरकार उसे भी अनुचित रोषके कारण न दे, यह जोखिम भी उठाई जानी चाहिए। यदि हम किसी भी तरह अपनेको मनुष्यके रूपमें हीन माननेके लिए तैयार न हों और कितने ही समयतक कैसे ही कष्ट आयें उन्हें सहन करनेकी शक्ति अपने भीतर मानते हों तो हमें जो मार्ग उचित और सीधा हो वही स्वीकार करना चाहिए।

पाठक अब देख सकेंगे कि इस बार जो कदम उठाया गया था उसमें कुछ नवीनता और विशेषता थी। उसकी प्रतिध्वनि विधान सभामें और उसके बाहर गोरोंकी

सभाओं तथा संस्थाओंमें भी हुई। कुछ ने हिन्दुस्तानियोंके साहसकी प्रशंसा की और कुछ बहुत क्रुद्ध हुए। उन्होंने यह भी कहा कि हिन्दुस्तानियोंको उनकी इस उद्धतताका दण्ड मिलना ही चाहिए। दोनों ही पक्षोंने अपने व्यवहारसे स्वीकार किया कि हमारे इस कदममें नवीनता है। जब सत्याग्रह शुरू किया गया था तब सच देखें तो वह एक बिलकुल नया ही कदम था। फिर भी उससे जो खलबली मची थी उसकी अपेक्षा इस पत्रसे अधिक खलबली मची। इसका एक कारण तो स्पष्ट ही है। जब सत्याग्रह शुरू हुआ था तब किसीको कौमकी शक्तिका अन्दाजा नहीं था। अतः उस समय हमें न ऐसा पत्र शोभा देता और न ऐसी भाषा। अब कौमकी थोड़ी-बहुत परीक्षा हो चुकी थी और सभीने यह देख लिया था कि कौममें सामाजिक संकटका सामना करते हुए जो भी कष्ट आयें उनको सहनेकी शक्ति है; इसलिए निश्चयपत्रकी भाषा स्वाभाविक रूपसे ऐसी बन गई और वह अशोभनीय भी नहीं लगी।

अध्याय २७

ऐच्छिक परवानोंकी होली

'अल्टीमेटम' अथवा निश्चयपत्रकी अवधिकी समाप्ति दूसरा एशियाई कानून पारित किये जानेके दिन ही रखी गई थी। परवानोंको जलानेकी क्रिया करनेके लिए बुलाई गई सभा इस अवधिकी समाप्तिके एक दो घंटे बाद की गई थी। सत्याग्रह समितिने यह सोचा था कि यदि आशाके प्रतिकूल सरकार अनुकूल उत्तर दे दे तो भी वह सभा व्यर्थ न होगी; उस अवस्थामें उसी सभामें सरकारके अनुकूल निश्चयके बारेमें बताया जा सकता है।

समितिका खयाल तो यह था कि सरकार इस निश्चयपत्रका कोई उत्तर ही नहीं देगी। हम सभी लोग बहुत पहले ही सभा स्थलमें पहुँच गये थे। हमने यह व्यवस्था भी कर ली थी कि यदि सरकारका उत्तर तारसे मिले तो वह सभामें तुरन्त पहुँचाया जा सके। सभाका समय सायंकाल ४ बजेका रखा गया था। यह सभा १६ अगस्त १९०८के[1] दिन सदाकी भाँति जोहानिसबर्गमें हमीदिया मस्जिदके मैदानमें रखी गई थी। मैदान हिन्दुस्तानियोंसे बिलकुल भरा हुआ था। दक्षिण आफ्रिकामें हब्शी लोग अपना भोजन पकानेके लिए छोटी-बड़ी लोहेकी बनी चार पायोंकी कड़ाहियाँ काममें लाते हैं। परवाने जलानेके लिए बड़ीसे-बड़ी एक ऐसी ही कड़ाई एक हिन्दुस्तानी व्यापारीकी दूकानसे मँगा ली गई थी और मंचके एक कोनेमें रख दी गई थी।

सभा आरम्भ करनेका समय हुआ ही था इतनेमें ही एक स्वयंसेवक साइकिलपर चढ़कर आ गया। उसके हाथमें एक तार था। इस तारमें सरकारका उत्तर आया था। उत्तरमें कौमके निश्चयपर खेद प्रकट किया गया था और यह भी कहा गया था कि सरकार अपना निश्चय नहीं बदल सकती। यह तार सभामें पढ़कर सुनाया गया। सभाने उसका स्वागत किया। सरकार निश्चय-पत्रमें की गई माँग स्वी-

१. यह तिथि तथा आगे दी गई तिथियाँ अंग्रेजी अनुवादसे ली गई हैं।

कार कर लेती तो मानों कौमके हाथसे परवानोंकी होली जलानेके इस शुभ कार्यको करनेका अवसर ही निकल जाता। ऐसा हर्ष उचित माना जाये अथवा अनुचित, यह निश्चय करना बहुत कठिन है। जिन लोगोंने तालियोंकी गड़गड़ाहटसे उत्तरका स्वागत किया था उसका हेतु समझे बिना उसके औचित्य अथवा अनौचित्यका निर्णय नहीं किया जा सकता। किन्तु इतना तो कहा जा सकता था कि यह हर्ष-प्रदर्शन सभाके उत्साहका एक अच्छा लक्षण था। सभा इस बातसे एक हदतक अपनी शक्तिको समझनेमें समर्थ हुई थी।

सभा आरम्भ हुई। अध्यक्षने सभाको सावधान किया। उन्होंने उसे सब स्थिति समझाई। सभामें इस अवसरके अनुरूप प्रस्ताव पारित किये गये। जो विभिन्न स्थितियाँ हमारे सामने आई थीं मैंने उन्हें स्पष्ट करके समझाया और कहा[1]: "जिन लोगोंने अपने परवाने जलानेके लिए दिये हैं यदि उनमें से कोई अपना परवाना वापस लेना चाहे तो ले सकता है। केवल परवाना जलाना कोई अपराध नहीं है। इतना करने भरसे जेल जानेके लिए उत्सुक लोगोंको जेल नहीं मिलेगी। परवाना जलाकर तो हम केवल अपना यह निश्चय प्रकट करते हैं कि हम खूनी कानूनके आगे नहीं झुकेंगे और हम अपने पास परवाने दिखानेका अधिकार भी नहीं रखना चाहते। किन्तु जो मनुष्य आज परवाना जलानेकी क्रियामें सम्मिलित हो वह दूसरे ही दिन जाकर नया परवाना ले तो, ऐसा करनेसे कोई उसका हाथ नहीं पकड़ेगा। जिसका विचार ऐसा कुकर्म करनेका हो अथवा जिसे परीक्षाके समय टिक सकनेकी अपनी शक्तिमें शंका हो, उसके लिए अब भी समय है कि वह अपना परवाना वापस ले ले; वह निस्सन्देह उसे वापस ले सकता है। इस समय परवाना वापस लेनेमें लज्जित होनेका कोई कारण नहीं है। मैं तो इसे एक प्रकारका साहस ही मानूँगा। किन्तु बादमें परवानेकी नकल लेनेमें लज्जा, अपयश और कौमकी हानि है। फिर इस समय कौमको यह भी समझ लेना चाहिए कि यह लड़ाई सम्भवतः लम्बी चलेगी। हममें से कुछ लोग अपनी प्रतिज्ञासे डिग गये हैं, यह भी हम जानते हैं; अतः कौमकी गाड़ीको खींचनेके लिए जो लोग बाकी बचे हैं उन्हें उस हदतक ज्यादा जोर लगाना पड़ेगा, यह भी साफ है। इसीलिए मेरी सलाह है कि हमें इतनी बातोंका विचार करनेके बाद ही आज परवाने जलानेका साहस करना चाहिए।"

मेरे भाषणके बीचमें ही सभामें इस तरहकी आवाजें आ रही थीं — "हम परवाने वापस नहीं लेना चाहते; आप इनकी होली जलाएँ।' अन्तमें मैंने कहा कि यदि किसीको प्रस्तावका विरोध करना हो तो वह खड़ा हो जाये; किन्तु कोई भी खड़ा न हुआ। इस सभामें मीर आलम भी मौजद था। उसने घोषणा की कि मुझपर हमला करके उसने गलती की थी। यह कहकर उसने अपना असल परवाना जलानेके लिए दिया। उसने ऐच्छिक परवाना तो लिया ही नहीं था। मैंने मीर आलमका हाथ पकड़ा और उसे प्रसन्नतासे दबाते हुए कहा कि मेरे मनमें तो तुम्हारे प्रति कभी रोष था ही नहीं। मीर आलमके इस कार्यसे सभामें हर्षका पार न रहा।

१. गांधीजीके भाषणके लिए देखिए खण्ड ८, पृष्ठ ४५०-५४।

समितिके पास जलानेके लिए दो हजारसे[1] ज्यादा परवाने आ चुके थे। उनका बंडल ऊपर बताई हुई कड़ाहीमें रखा गया, उसपर मिट्टीका तेल छिड़का गया और उसके बाद मैंने[2] दियासलाईसे उसमें आग लगाई। सभामें बैठे सब लोग खड़े हो गये और जबतक जलानेकी यह क्रिया चली तबतक वह मैदान तालियोंसे गूँजता रहा। जो परवाने अभीतक लोगोंने अपने पास रख छोड़े थे वे भी मंचपर बरसने लगे और उक्त कड़ाहीमें ही डाल दिये गये। जब उन लोगोंसे यह पूछा गया कि उन्होंने अपने परवाने होली जलानेसे पहले क्यों नहीं दिये तब उनमें से एकने कहा, "हमारा खयाल था कि यदि हम उन्हें होली जलते वक्त देंगे तो ज्यादा अच्छा होगा और दूसरोंपर उसका ज्यादा असर होगा।" कुछ अन्य लोगोंने शुद्ध मनसे स्वीकार किया: "हमारी हिम्मत नहीं होती थी। अन्तिम समयतक हमारा खयाल यही था कि शायद परवाने न जलाये जायें। किन्तु जब हमने होली जलती देखी तब हम अपने आपको न रोक सके। हमने सोचा, जो सबका होगा सो हमारा भी हो जायेगा।" हमें इस तरहकी मनकी शुद्धताका अनुभव इस लड़ाईके प्रसंगमें अनेक बार हुआ था।

इस सभामें अंग्रेजी अखबारोंके संवाददाता भी आये थे। उनके ऊपर भी इस समस्त दृश्यका बहुत असर पड़ा और उन्होंने इस सभाका अपने पत्रोंके लिए बहुत सजीव वर्णन भेजा। इंग्लैंडके "डेली मेल" पत्रके जोहानिसबर्ग स्थित संवाददाताने भी अपने पत्रको इस सभाका वर्णन भेजा था। उसमें उसने परवानोंकी होलीकी तुलना बोस्टन बंदरगाहकी अंग्रेजी चायकी पेटियाँ समुद्रमें डुबानेकी उस घटनासे की थी जिसके द्वारा अमेरिकाके अंग्रेजोंने अपना इंग्लैंडकी अधीनतामें न रहनेका निश्चय व्यक्त किया था। दक्षिण आफ्रिकामें एक ओर था तेरह हजार हिन्दुस्तानियोंका असहाय समुदाय और दूसरी ओर था ट्रान्सवालका शक्तिशाली राज्य। अमेरिकामें एक ओर सब बातोंमें कुशल गोरे थे और दूसरी ओर ब्रिटिश साम्राज्य था। इन दोनोंकी स्थितियोंकी तुलना करके देखें तो मुझे नहीं लगता कि 'डेली मेल' के सम्वाददाताने हिन्दुस्तानियोंके सम्बन्धमें कुछ अतिशयोक्ति की थी। हिन्दुस्तानी कौमके पास सत्य और ईश्वरपर श्रद्धाके अतिरिक्त कोई दूसरा हथियार न था। इसमें कोई सन्देह नहीं कि यह हथियार श्रद्धालु मनुष्यके लिए सबसे बड़ा हथियार है, किन्तु जबतक जन-समाजमें यह दृष्टि नहीं आती तबतक १३००० निहत्थे हिन्दुस्तानी अमेरिकाके शस्त्रबलसे लैस गोरोंकी तुलनामें तुच्छ ही माने जायेंगे। किन्तु ईश्वर तो निर्बलका ही बल है; इसलिए संसारका इसे तुच्छ मानना ठीक ही है।

१. **ट्रान्सवाल लीडरमें** दिये गये विवरणके अनुसार कोई १३०० पंजीयन प्रमाणपत्र और ५०० व्यापारिक परवाने जलाये गये। देखिए खण्ड ८, पृष्ठ ४५० की पादटिप्पणी २।

२. उपलब्ध विवरणों तथा अंग्रेजी अनुवादके अनुसार यहाँ ईसप मियाँका नाम होना चाहिए।

अध्याय २८

कौमपर नये मुद्देका आरोप

विधान सभाकी जिस बैठकमें यह दूसरा एशियाई कानून पास किया गया था उसी बैठकमें जनरल स्मट्सने एक दूसरा विधेयक भी प्रस्तुत किया। इसका नाम था ट्रान्सवाल प्रवासी प्रतिबन्धक विधेयक (१९०७ का अधिनियम १५)[१]। यह कानून सभी लोगोंपर लागू होता था, किन्तु उसका मुख्य उद्देश्य नये आनेवाले हिन्दुस्तानियोंको आनेसे रोकना था। इस कानूनको बनानेमें नेटालमें प्रचलित एक ऐसे ही कानूनका अनुकरण किया गया था। किन्तु इसमें एक धारा ऐसी थी जिसमें कहा गया था कि निषिद्ध प्रवासियोंकी व्याख्यामें, जिन लोगोंपर एशियाई कानून लागू होता है, उनका समावेश भी होगा अर्थात् इस कानूनमें ऐसी युक्ति की गई थी कि जिससे वहाँ कोई भी नया हिन्दुस्तानी प्रवासी न आ सके।

इस कानूनका विरोध करना तो कौमके लिए आवश्यक ही था; किन्तु कौमके सम्मुख यह समस्या खड़ी हुई कि उसे सत्याग्रहमें सम्मिलित किया जाये या नहीं। सत्याग्रह कब और किस विषयको लेकर किया जाये, इस सम्बन्धमें कौमने कोई बन्धन नहीं रखा था। यह प्रश्न केवल कौमके विवेक और बलसे ही मर्यादित था। यदि कोई बात-बातमें सत्याग्रह करे तो वह दुराग्रह होगा। इसी तरह कोई अपनी शक्तिका माप किये बिना इस शस्त्रका प्रयोग करे और बादमें हार जाये तो इस तरहके अविवेकसे वह स्वयं तो कलंकित होगा ही, इस शस्त्रको भी दूषित करेगा।

समितिने देखा कि हिन्दुस्तानी कौमका सत्याग्रह केवल खूनी कानूनके विरुद्ध है। यदि खूनी कानून रद्द हो जाये तो इस प्रवासी प्रतिबन्धक कानूनका ऊपर बताया हुआ विष अपने-आप दूर हो जायेगा। फिर भी खूनी कानून रद्द होनेपर प्रवासी प्रतिबन्धक कानूनके बारेमें अलग चर्चा अथवा आन्दोलनकी आवश्यकता नहीं है, यह समझकर कौम बैठी रहे तो उसका यह अर्थ माना जायेगा कि उसने नये हिन्दुस्तानी प्रवासियोंपर पूरा प्रतिबन्ध लगाना स्वीकार कर लिया है। इस तरह हमें उस कानूनका विरोध तो अवश्य ही करना था; विचारणीय यही था कि उसे सत्याग्रहमें सम्मिलित किया जाये या नहीं। कौमने विचार किया कि यदि सत्याग्रह चलते समय भी कौमपर कोई नया आक्रमण किया जाये तो उसे सत्याग्रहमें सम्मिलित करना अवश्य ही उसका धर्म है। यदि अशक्तिके कारण वैसा न किया जा सके तो यह अलग बात है। नेताओंको यह लगा कि शक्तिके अभावका अथवा शक्तिकी अपर्याप्तताका बहाना करके इस विषैले कानूनको छोड़ा नहीं जा सकता और इसलिए उसे भी सत्याग्रहमें सम्मिलित करना ही होगा।

इस कारण इस सम्बन्धमें स्थानीय सरकारसे पत्र-व्यवहार किया गया। उससे कानूनमें कोई फेरफार तो नहीं किया गया; किन्तु जनरल स्मट्सने इसे कौमको —ठीक देखें तो मुझे—बदनाम करनेका नया साधन माना। वे जानते थे कि

१. यह कानून १ जनवरी, १९०८ से लागू हुआ।

जितने गोरे कौमको खुल्लम-खुल्ला सहायता दे रहे हैं उनकी अपेक्षा कहीं अधिक गोरोंकी सहानुभूति गुप्त रूपसे कौमके साथ है। अतः उनके लिए यह सोचना स्वाभाविक ही था कि यदि इन लोगोंकी यह सहानुभूति नष्ट की जा सकती हो तो अवश्य की जाये। इसलिए उन्होंने मुझपर नया मुद्दा उठानेका आरोप लगाया और अपने पत्रोंमें तथा बातचीत करके भी हमारे अंग्रेज सहायकोंसे यही कहा, "गांधीको जितना मैं पहचानता हूँ उतना आप लोग नहीं पहचानते। यदि आप उन्हें अँगुल-भर दें तो वे एक हाथ-भर माँगेंगे। मैं यह सब जानता हूँ; इसीलिए मैं एशियाई कानूनको रद नहीं करता। जब उन्होंने सत्याग्रह शुरू किया था तब नये प्रवासियोंकी तो कोई बात ही नहीं थी। अब यदि हम ट्रान्सवालकी रक्षाके लिए नये हिन्दुस्तानियोंके आनेपर प्रतिबन्धका कानून बनाते हैं तो वे उसके विरुद्ध भी सत्याग्रह करना चाहते हैं। इस तरहकी चालाकी कहाँतक बर्दाश्त की जा सकती है? वे चाहें जो करें और एक-एक हिन्दुस्तानी बर्बाद हो जाये तब भी मैं इस कानूनको रद करनेवाला नहीं हूँ। और सरकार भी हिन्दुस्तानियोंके सम्बन्धमें अपनी नीतिको छोड़नेवाली नहीं है। अतः न्यायसंगत नीतिका समर्थन प्रत्येक गोरेको करना चाहिए।"

थोड़ा-सा विचार करें तो यह देखा जा सकता है कि उनका उक्त तर्क नितान्त अनुचित और नीति-विरुद्ध था। जिस समय प्रवासी प्रतिबन्धक कानूनका जन्म भी नहीं हुआ था उस समय मैं अथवा कौम उसका विरोध किस तरह कर सकते थे? उन्होंने मेरी 'चालाकी' के बारेमें अपने अनुभवकी बात कही; किन्तु वे उसका एक भी उदाहरण नहीं दे सके। मैं स्वयं तो जानता हूँ कि दक्षिण आफ्रिकाके अपने इतने सालके निवासकालमें मैंने कभी चालाकी की हो यह मुझे याद नहीं आता; बल्कि इस समय तो मैं यहाँतक कहनेमें भी नहीं झिझकता कि मैंने अपने समस्त जीवनमें चालाकीसे कभी काम नहीं लिया है। मेरा विश्वास है कि चालाकीसे काम लेना नीति-विरुद्ध है, यही नहीं, मैं तो उसे युक्ति-विरुद्ध भी मानता हूँ। इसलिए व्यवहार-दृष्टिसे भी चालाकीसे काम लेना मुझे सदा नापसन्द रहा है। मैं अपनी सफाईमें यह बात लिखना भी जरूरी नहीं मानता। मैं जिन पाठकोंके लिए यह पुस्तक लिख रहा हूँ, उनके सम्मुख अपने मुँहसे अपनी सफाई देनेमें मुझे लज्जा आती है। यदि उनको अबतक इस बातका अनुभव न हुआ हो कि मुझमें कोई चालाकी नहीं है तो मैं अपनी सफाई देकर यह बात सिद्ध कर ही नहीं सकता। मैंने ऊपर जो बात लिखी है उसका उद्देश्य केवल इतना ही है कि सत्याग्रहकी लड़ाई किन संकटोंके बीच लड़ी जानी थी, पाठकोंको इसकी कल्पना हो सके और वे यह जान सकें कि यदि कौम नीतिके प्रशस्त पथसे तनिक भी डिगती तो लड़ाई कैसे जोखिममें पड़ जाती। बीस फुट ऊँचे लट्ठे-से बंधे रस्सेपर जब नट चलता है तब उसे अपनी दृष्टि एकाग्र करके ही चलना पड़ता है। यदि उसकी दृष्टि तनिक भी चूकती है तो वह चाहे जिस बाजू गिरे, उसकी मृत्यु तो निश्चित ही है। सत्याग्रहीको अपनी दृष्टि उससे भी अधिक एकाग्र करके चलना पड़ता है। मैंने आठ वर्षकी उस लम्बी अवधिमें यह अनुभव प्राप्त कर लिया था। जनरल स्मट्सने जिन मित्रोंके सम्मुख मुझपर उक्त आरोप

लगाया था वे मुझे भली-भाँति जानते थे। इस कारण उनपर जैसा जनरल स्मट्सने समझा था उससे उल्टा ही असर हुआ। उन्होंने मेरा अथवा उस लड़ाईका साथ नहीं छोड़ा; इतना ही नहीं, बल्कि सहायता देनेमें और अधिक उत्साह दिखाया और बादमें तो कौमने भी यह देख लिया कि प्रवासी प्रतिबन्धक कानून सत्याग्रहमें सम्मिलित न किया जाता तो हमें भारी मुसीबतका सामना करना पड़ जाता।

मैंने अपने अनुभवसे यह सीखा है कि वह नियम, जिसे मैं विकासका नियम कहता हूँ, प्रत्येक शुद्ध लड़ाईपर लागू होता है। किन्तु मैं उसे सत्याग्रहके सम्बन्धमें सिद्धान्त-रूप ही मानता हूँ। जैसे गंगा नदी ज्यों-ज्यों आगे बढ़ती है त्यों-त्यों उसमें बहुतसी नदियाँ आकर मिलती जाती हैं और मुहानेतक पहुँचने-पहुँचते उसका पाट इतना चौड़ा हो जाता है कि दायें-बायें जिधर भी देखें किनारा दिखाई ही नहीं दे सकता और पोतमें बैठे यात्रीको विस्तारकी दृष्टिसे समुद्रमें और उसमें कोई अन्तर नहीं जान पड़ता, वैसे ही सत्याग्रहकी लड़ाई ज्यों-ज्यों आगे बढ़ती है त्यों-त्यों उसमें बहुत-सी दूसरी चीजें आकर मिलती जाती हैं और उससे उत्पन्न परिणाममें भी विकास होता जाता है। सत्याग्रहका यह परिणाम अनिवार्य है, मैं ऐसा मानता हूँ। इसका कारण उसके मूल तत्वमें ही मौजूद है, क्योंकि सत्याग्रहमें कमसे-कम ही अधिक-से-अधिक होता है, अर्थात् उस कमसे-कममें से कुछ घटानेकी कोई गुंजाइश तो होती ही नहीं है; इसलिए उससे पीछे नहीं हटा जा सकता और विकासकी क्रिया ही उसके लिए स्वाभाविक हो सकती है। दूसरी लड़ाइयाँ शुद्ध हों तो भी उनमें माँगमें कमी करनेकी गुंजाइश पहलेसे ही रख ली जाती है। इसीसे मैंने उनमें विकासका नियम निरपवाद-रूपसे लागू होनेमें शंका प्रकट की है। अब मुझे यह बात समझानी रहती है कि जब कमसे-कम ही अधिकसे-अधिक भी है तब विकासका नियम कैसे लागू हो सकता है। जैसे गंगा नदी विकासकी खोजमें अपनी गति नहीं छोड़ती वैसे ही सत्याग्रही भी तलवारकी धार-जैसा अपना मार्ग नहीं छोड़ता। किन्तु जैसे गंगा नदीका प्रवाह ज्यों-ज्यों आगे बढ़ता जाता है त्यों-त्यों दूसरे नदी-नालोंको अपने भीतर समेटता जाता है, वैसी ही बात सत्याग्रहकी गंगाके सम्बन्धमें भी कही जा सकती है।

प्रवासी प्रतिबन्धक कानूनको सत्याग्रहमें सम्मिलित करनेके बाद उसको ध्यानमें रखते हुए सत्याग्रहके सिद्धान्तसे अनभिज्ञ हिन्दुस्तानियोंने आग्रह किया कि ट्रान्सवालके हिन्दुस्तानियोंके विरुद्ध जितने भी कानून हैं वे सब भी सत्याग्रहमें सम्मिलित किये जायें। कुछ लोगोंने यह भी कहा कि इस लड़ाईके चालू रहते इसमें नेटाल, केप कालोनी और ऑरेंज फ्री स्टेट आदि सभी उपनिवेशोंके हिन्दुस्तानियोंको निमन्त्रित किया जाये और दक्षिण आफ्रिकाके हिन्दुस्तानियोंके विरुद्ध बनाये गये प्रत्येक कानूनके विरुद्ध सत्याग्रह किया जाये। इन दोनों बातोंसे सिद्धान्तका भंग होता था। मैंने उनको साफ-साफ बताया कि हमने जो स्थिति सत्याग्रह आरम्भ करते समय स्वीकार नहीं की थी यदि हम उसे अनुकूल अवसर देखकर इस समय स्वीकार करें तो यह अप्रामाणिक होगा। हमारी शक्ति चाहे कितनी ही हो तो भी जिन माँगोंको लेकर सत्याग्रह किया गया है, उन माँगोंके स्वीकार हो जानेपर वह बन्द किया ही जाना चाहिए।

यदि हम इस सिद्धान्तपर दृढ़ न रहते तो मेरा यह दृढ़ विश्वास है कि हमें जीतके बजाय हार ही मिलती; इतना ही नहीं बल्कि हमें जो सहानुभूति मिल सकी, हम उसे भी खो बैठते। इसके विपरीत जब सत्याग्रहके चालू रहते प्रतिपक्षी स्वयं ही नई कठिनाइयाँ उत्पन्न करता है तो वे अनायास ही सत्याग्रहमें सम्मिलित हो जाती हैं। सत्याग्रही अपनी दिशामें आगे बढ़ता हुआ मार्गमें आनेवाली चीजोंकी उपेक्षा सत्याग्रहको छोड़े बिना कर ही नहीं सकता। और प्रतिपक्षी तो सत्याग्रही होता ही नहीं, क्योंकि सत्याग्रहके विरुद्ध सत्याग्रह असम्भव ही होता है; इसलिए वह कम या अधिकके बन्धनसे भी नहीं बँधा होता। वह कोई भी नई बात उठाकर सत्याग्रहीको डराना चाहे तो डरा सकता है। किन्तु सत्याग्रही तो भयमुक्त हो जाता है; इसलिए प्रतिपक्षी नई कठिनाइयाँ खड़ी करता है तो वह उनके विरुद्ध भी अपने इसी मन्त्रका उच्चारण करता है और यह विश्वास रखता है कि बीचमें आनेवाली सभी कठिनाइयोंके विरुद्ध उसके इस मन्त्रका उच्चारण फलदायी होगा। इसलिए सत्याग्रह ज्यों-ज्यों लम्बा होता है — अर्थात् उसे प्रतिपक्षी ज्यों-ज्यों लम्बा करता है, त्यों-त्यों प्रतिपक्षीको अपनी दृष्टिसे हानि ही उठानी पड़ती है और सत्याग्रहीका अधिकाधिक लाभ ही होता है। इस नियमके अन्तर्गत दूसरे उदाहरण हम इस लड़ाईके इतिहासमें ही देखेंगे।

अध्याय २९

सोराबजी शापुरजी अडाजानिया

अब जब प्रवासी प्रतिबन्धक कानून भी इस लड़ाईमें सम्मिलित कर लिया गया तब नये शिक्षित प्रवासियोंको यहाँ लानेके अधिकारकी परीक्षा करना भी सत्याग्रहियोंके लिए जरूरी हो गया। समितिने निश्चय किया कि यह परीक्षा किसी सामान्य हिन्दुस्तानीके मार्फत न कराई जाये। यह सोचा गया कि प्रवासी प्रतिबन्धक कानूनमें प्रतिबन्धकी ऐसी शर्तोंको, जिनसे हमारा विरोध नहीं था, पूरा कर सकनेवाला मनुष्य ट्रान्सवालमें लाकर जेल-महलमें बिठा दिया जाये। हमें सिद्ध यह करना था कि सत्याग्रह मर्यादा-धर्म है। इस कानूनकी एक धारामें नये प्रवासीके लिए यूरोपकी कोई भी एक भाषा जाननेकी शर्त थी। इसलिए समितिने सोचा कि यहाँ कोई ऐसा हिन्दुस्तानी प्रवासी लाया जाये जिसे अंग्रेजी आती हो; किन्तु जो पहले ट्रान्सवालमें न रहा हो। इसके लिए कुछ हिन्दुस्तानी नवयुवकोंने अपने नाम प्रस्तावित किये, किन्तु उनमें से इस अधिकारकी परीक्षाके लिए सोराबजी शापुरजी अडाजानियाके नामका ही प्रस्ताव स्वीकार किया गया।

पाठक नामसे ही देख सकते हैं कि सोराबजी पारसी थे। समस्त दक्षिण आफ्रिकामें पारसियोंकी संख्या १०० से अधिक न होगी। पारसियोंके सम्बन्धमें मैंने जो मत हिन्दुस्तानमें व्यक्त किया है, उनके बारेमें मेरा वही मत दक्षिण आफ्रिकामें भी बना था। दुनिया-भरमें पारसी एक लाखसे अधिक न होंगे। इतनी छोटी जाति अपनी प्रतिष्ठाकी रक्षा कर रही है, अपने धर्मपर आरूढ़ है और दानशीलतामें दुनियाकी

सब जातियोंसे आगे है, ये बातें ही इस जातिकी उच्चताको प्रमाणित करती हैं। किन्तु इसमें सोराबजी तो व्यवहारकी कसौटीपर रत्न ही निकले। वे जब लड़ाईमें सम्मिलित हुए तब उनसे मेरा परिचय बहुत मामूली-सा था। उन्होंने लड़ाईमें सम्मिलित होनेके सम्बन्धमें मुझे जो पत्र लिखे थे, मुझपर उनकी अच्छी छाप पड़ी थी। मैं जहाँ पारसियोंके गुणोंका पुजारी हूँ वहाँ जातिके रूपमें उनमें कुछ दोष भी हैं इस बातसे अनजान नहीं हूँ; और तब भी नहीं था। इसलिए मेरे मनमें यह सन्देह था कि अवसर आनेपर सोराबजी टिक भी सकेंगे या नहीं; किन्तु जबतक सम्बन्धित मनुष्य अपने आचरणसे अन्यथा सिद्ध न कर दे तबतक इस तरहके सन्देहको महत्त्व न देना मेरा नियम था। इसलिए मैंने समितिको सलाह दी कि सोराबजीने अपने पत्रोंमें जिस दृढ़ताका परिचय दिया है वह उसपर विश्वास करें; और अन्तमें तो सोराबजी प्रथम कोटिके सत्याग्रही सिद्ध हुए।[1] वे लम्बीसे-लम्बी सजा भुगतनेवाले सत्याग्रहियोंमें से एक थे, इतना ही नहीं, बल्कि उन्होंने इस लड़ाईका इतना गहरा अध्ययन कर लिया था कि उसके कारण वे लड़ाईके सम्बन्धमें जो-कुछ भी कहते उस सबपर ध्यान देना ही पड़ता था। उनकी सलाहमें सदा ही दृढ़ता, उदारता और शान्ति आदि गुण दिखाई देते। वे उतावलीमें कोई मत नहीं बनाते थे और जो मत बना लेते थे उसे बदलते नहीं थे। उनमें जितना पारसीपन था — और वह बहुत था — उतना ही हिन्दुस्तानीपन भी था। उनमें संकुचित जातीय गर्वकी गंधतक भी नहीं देखी गई। सत्याग्रहकी लड़ाईकी समाप्तिपर डॉ० मेहताने किसी अच्छे सत्याग्रहीको बैरिस्टरी करनेके लिए इंग्लैंड भेजनेके उद्देश्यसे एक छात्रवृत्ति दी थी। इस सत्याग्रहीका चुनाव तो मुझको ही करना था। इसके लिए दो-तीन योग्य हिन्दुस्तानी थे; किन्तु सब मित्रोंको यही लगा कि प्रौढ़ता और समझदारीमें सोराबजीकी बराबरी कोई नहीं कर सकता। इस कारण इसके लिए वे ही चुने गये थे। ऐसे किसी हिन्दुस्तानीको इंग्लैंड भेजनेका हेतु यह था कि वह दक्षिण आफ्रिकामें लौटकर मेरा स्थान ले और कौमकी सेवा करे। सोराबजी कौमका आशीर्वाद और सम्मान प्राप्त करके इंग्लैंड गये और बैरिस्टर बन गये। वे गोखलेके सम्पर्कमें दक्षिण आफ्रिकामें ही आ चुके थे; किन्तु इंग्लैंडमें उनसे उनका निकट सम्बन्ध हो गया। सोराबजीने उनका मन हर लिया। उन्होंने सोराबजीसे आग्रह किया कि वे जब हिन्दुस्तान लौटें तब "भारत सेवक समाज" में सम्मिलित हों। सोराबजी छात्र-समुदायमें बहुत प्रिय हो गये थे। वे सभीके दुखोंमें भाग लेते थे। उनके मनपर इंग्लैंडके आडम्बर या सुख-चैनके जीवनका तनिक भी असर नहीं पड़ा था। जब वे इंग्लैंडमें गये तब वे तीस वर्षके हो चुके थे। उनका अंग्रेजीका ज्ञान उच्च कोटिका न था और वे व्याकरण तो भूल-भाल ही गये थे। किन्तु मनुष्यकी लगनके सामने ऐसी बाधाएँ नहीं टिक सकतीं। सोराबजी शुद्ध विद्यार्थी जीवन बिताते हुए अपनी परीक्षाओंमें उत्तीर्ण होते गये। मेरे जमानेकी बैरिस्टरीकी परीक्षा आसान थी। आजकल बैरिस्टरोंको बहुत ज्यादा पढ़ाई करनी पड़ती है। सोराबजीने इससे हार नहीं मानी। जब इंग्लैंडमें आहत सहायक दल बनाया गया तब उसका आरम्भ

१. देखिए खण्ड ११, पृष्ठ १०३।

करनेवालोंमें ये भी थे और उसमें अन्ततक बने रहे। उस दलको भी सत्याग्रह करना पड़ा था।[1] उसमें बहुत-से लोगोंने हार मान ली थी; किन्तु जो लोग अडिग रहे उनमें सबसे पहला स्थान सोराबजीका ही था। मैं यहाँ यह भी कह दूँ कि सत्याग्रहमें इस दलकी जीत ही हुई थी।

सोराबजी बैरिस्टरी पास करके जोहानिसबर्ग आये। वहाँ उन्होंने समाज-सेवा और वकालत दोनों शुरू की। मेरे पास दक्षिण आफ्रिकासे जितने पत्र आते उन सबमें सभी उनकी प्रशंसा ही करते थे: "वे पहले जैसे सादे थे अब भी वैसे ही सादे हैं। उनमें आडम्बर बिलकुल भी नहीं है। वे छोटे बड़े सभीसे मिलते-जुलते हैं।" किन्तु लगता है कि ईश्वर जितना दयालु है उतना ही निर्दयी भी है। सोराबजीको तीव्र क्षय हो गया और वे कुछ ही महीनेमें कौमका नया प्रेम प्राप्त करके उसको रोता हुआ छोड़कर चल बसे। इस प्रकार ईश्वरने कुछ ही समयमें कौमसे दो नररत्न छीन लिए —— एक काछलिया और दूसरे सोराबजी। यदि मुझे इन दोनोंमें से चुनाव करना पड़े कि पहला स्थान किसे दूँ, तो मैं कर नहीं सकूँगा। दोनों ही अपने-अपने क्षेत्रमें बेजोड़ थे। जैसे काछलिया जितने पक्के मुसलमान थे उतने ही पक्के हिन्दुस्तानी थे, वैसे ही सोराबजी भी जितने पक्के पारसी थे उतने ही पक्के हिन्दुस्तानी थे।

योजनानुसार सोराबजी ही पहलेसे सरकारको नोटिस देकर कानूनके अन्तर्गत अपने अधिकारकी परीक्षा करनेके लिए ट्रान्सवालमें प्रविष्ट हुए। सरकार इस कदमके लिए बिलकुल तैयार न थी। इसलिए सोराबजीका क्या किया जाये, वह इस सम्बन्धमें तुरन्त निश्चय न कर सकी। सोराबजी खुल्लमखुल्ला सरहद पार करके ट्रान्सवालमें घुसे।[2] परवाने देखनेवाला सरहदी अधिकारी उनको जानता था। सोराबजीने उससे कहा: "मैं अपने अधिकारकी परीक्षा करनेके लिए समझ-बूझकर ट्रान्सवालमें जा रहा हूँ। आप मेरी अंग्रेजीकी परीक्षा लेनी चाहें तो ले लें और मुझे गिरफ्तार करना चाहें तो गिरफ्तार कर लें।" अधिकारीने उत्तर दिया: "आप अंग्रेजी जानते हैं इसका मुझे पता है, इसलिए मुझे परीक्षा तो लेनी ही नहीं है। आपको गिरफ्तार करनेका मुझे हुक्म नहीं मिला है। इसलिए आप खुशीसे जायें। आप जहाँ जायेंगे वहाँ सरकार आपको गिरफ्तार करना चाहेगी तो कर लेगी।"

इस प्रकार सोराबजी आशाके विपरीत जोहानिसबर्ग पहुँच गये। हम सबने अत्यन्त प्रसन्न होकर उनका स्वागत किया। किसीको यह आशा नहीं थी कि सरकार उनको ट्रान्सवालके सरहदी स्टेशन फोक्सरस्टसे तनिक भी आगे बढ़ने देगी। बहुत बार ऐसा होता है कि जब हम विचार करके और निर्भय होकर तत्काल कोई कदम उठाते हैं तब सरकार पहलेसे उसका मुकाबला करनेके लिए तैयार नहीं होती। सभी सरकारोंका ऐसा स्वभाव माना जा सकता है। सामान्य आन्दोलनोंमें सरकारका कोई भी अधिकारी अपने विभागका काम इतने मनसे नहीं करता कि वह अपने प्रत्येक कार्यका विचार करके उसकी आवश्यक व्यवस्था और तैयारी पहलेसे ही कर ले।

१. विस्तृत विवरणके लिए देखिए खण्ड १२ पृष्ठ ५२८-३७ और ५३९।

२. २४ जून, १९०८ को; देखिए खण्ड ८, पृष्ठ ३१०।

फिर उसके पास एक ही काम नहीं होता, बल्कि बहुतसे काम होते हैं, अतः उनमें उसका ध्यान बँट जाता है। इसके अतिरिक्त उसमें सत्ताका मद होता है, अतः वह उसके कारण निश्चिन्त रहता है। और यह विश्वास कर लेता है कि किसी भी आन्दोलनको दबा देना अधिकारियोंके लिए बाँयें हाथका खेल है। इसके विपरीत यदि आन्दोलनकारी अपने ध्येयको जानता हो, साधनको जानता हो और उसकी योजना सुनिश्चित हो तो वह पूरी तरह तैयार होता है। फिर उसे रात-दिन एक ही कामकी चिन्ता करनी होती है, इसलिए यदि वह दृढ़तासे सच्ची कार्यवाही कर सकता है तो सरकारसे सदा आगे ही आगे रहता है। बहुत-से आन्दोलनोंके असफल होनेका कारण सरकारका असाधारण बल नहीं होता, बल्कि संचालकोंमें ऊपर बताये हुए गुणोंका अभाव होता है।

सारांश यह है कि सरकारकी उपेक्षाके कारण अथवा हमारी सुविचारित योजनाके कारण सोराबजी जोहानिसबर्गतक पहुँच सके। इस तरहके मामलेमें एक अधिकारीका क्या कर्त्तव्य होता है, स्थानीय अधिकारीको इसका कोई खयाल न तो स्वयं था और न उसे इस सम्बन्धमें अपने उच्च अधिकारीका कोई निर्देश ही मिला था। सोराबजीके इस तरह आनेसे कौमका उत्साह बहुत बढ़ा और कुछ युवकोंको तो यह भी लगा कि अब सरकार हार गई और कुछ समयमें ही समझौता कर लेगी। किन्तु ऐसी कोई बात न थी। इन युवकोंने यह बात तुरन्त ही सिद्ध होती देखी। इतना ही नहीं, बल्कि उन्होंने यह भी देखा कि समझौतेसे पहले तो शायद बहुतसे युवकोंको अपना बलिदान देना होगा।

सोराबजीने जोहानिसबर्गके पुलिस सुपरिन्टेन्डेन्टको यह सूचना दी, "मैं यहाँ आ गया हूँ। मैं प्रवासी प्रतिबन्धक कानूनके अनुसार ट्रान्सवालमें रहना अपना अधिकार मानता हूँ। मुझे अंग्रेजी भाषाका सामान्य ज्ञान है और यदि अधिकारी मेरी परीक्षा लेना चाहें तो मैं उसके लिए तैयार हूँ।" उन्हें अपने इस पत्रका कोई उत्तर नहीं मिला अथवा यह कहें कि इसके उत्तरमें उन्हें कुछ दिन बाद अदालतमें जानेका समन मिला।

सोराबजीका मुकदमा ८ जुलाई १९०८ को पेश हुआ। अदालत हिन्दुस्तानी दर्शकोंसे ठसाठस भर गई। मुकदमा शुरू होनेसे पहले अदालतके अहातेमें आये हुए हिन्दुस्तानियोंको इकट्ठा करके उनकी एक तात्कालिक सभा की गई। उसमें सोराबजीने एक ओजस्वी भाषण देते हुए प्रतिज्ञा की कि "जबतक जीत नहीं मिलती तबतक जितनी बार जेल जाना पड़ेगा मैं उतनी बार जेल जानेके लिए तैयार रहूँगा और चाहे कितने ही कष्ट आयें मैं उनको सहन करूँगा।" अरसा लम्बा बीत चुका था; मैंने इस बीच सोराबजीको भली-भाँति पहचान लिया था और मैं समझ गया था कि सोराबजी अवश्य ही शुद्ध रत्न सिद्ध होंगे। मुकदमेकी कार्रवाई शुरू हुई।[1] मैं वकीलके रूपमें खड़ा हुआ। सोराबजीके समनमें कुछ दोष थे। मैंने उनके आधारपर उसको रद करनेकी माँग की। सरकारी वकीलने अपना तर्क

१. मुकदमेके विस्तृत विवरणके लिए देखिए खण्ड ८, पृष्ठ ३३७-४०।

दिया; किन्तु अदालतने मेरा तर्क स्वीकार करके समनको रद कर दिया।[1] इसके तत्काल बाद ही उन्हें निर्देश दिया गया कि वे अगले दिन अर्थात् शुक्रवार १० जुलाई, १९०८ को अदालतमें हाजिर हों।

मजिस्ट्रेटने १० जुलाईको सोराबजीको सात दिनके भीतर ट्रान्सवालसे चले जानेकी आज्ञा दी। अदालतकी[2] आज्ञा सुननेके बाद सोराबजीने पुलिस सुपरिन्टेन्डेन्ट जे० ए० जी० वरनॉनको सूचित किया कि मैं ट्रान्सवालसे जाना नहीं चाहता। इसलिए वे २० जुलाईको फिर अदालतमें पेश किये गये और उन्हें मजिस्ट्रेटकी आज्ञा न माननेका जुर्म लगाकर एक महीनेकी कड़ी कैदकी सजा दी गई।[3]

किन्तु सरकारने स्थानीय हिन्दुस्तानियोंको गिरफ्तार नहीं किया। उसने देखा कि वह जितनी ज्यादा गिरफ्तारियाँ करती है, हिन्दुस्तानियोंका उत्साह उतना ही ज्यादा बढ़ता है। फिर कुछ मामलोंमें कानूनी बारीकियोंके कारण हिन्दुस्तानियोंको छोड़ भी दिया जाता था। उनका उत्साह इससे भी बढ़ता। सरकारको जो कानून बनाने थे वे सब बनाये जा चुके थे। बहुत-से हिन्दुस्तानियोंने अपने परवाने जला अवश्य दिये थे, किन्तु वे परवाने लेकर अपना ट्रान्सवालमें रहनेका अधिकार तो सिद्ध कर ही चुके थे। इसलिए सरकारने केवल जेलमें भेजनेके खयालसे उनपर मुकदमे चलानेमें कोई फायदा नहीं देखा और यह सोचा कि यदि वह चुप रहेगी तो आन्दोलनकारी आन्दोलनका कोई द्वार खुला न रहनेपर अपने आप ठंडे पड़ जायेंगे। किन्तु सरकारका यह अनुमान ठीक नहीं था। कौमने सरकारकी खामोशीको तोड़नेके लिए ऐसा नया कदम उठाया कि वह उससे खामोश न रह सकी। आखिरकार सोराबजीपर पुनः मुकदमा दायर कर दिया गया।

अध्याय ३०

सेठ दाऊद मुहम्मद आदिका लड़ाईमें भाग लेना

जब कौमने देखा कि सरकार कोई कदम न उठाकर कौमको थका देना चाहती है तब उसके लिए दूसरा कदम उठाना जरूरी हो गया। जबतक सत्याग्रहीमें कष्ट सहनका सामर्थ्य रहता है तबतक वह हार नहीं मानता। इसलिए कौम सरकारके इस अनुमानको गलत सिद्ध करनेमें समर्थ हुई।

नेटालमें ऐसे बहुत-से हिन्दुस्तानी रहते थे जो ट्रान्सवालमें बहुत पहलेसे रहनेके अधिकारी थे। उन्हें ट्रान्सवालमें व्यापार करनेके लिए आनेकी जरूरत नहीं थी; किन्तु

१. इसके बादकी एक पंक्ति और एक अनुच्छेद अंग्रेजीसे अनूदित हैं। मूल गुजरातीमें यहाँ ये वाक्य भी हैं:

कौमकी खुशीका ठिकाना न रहा। खुशी मनानेका पर्याप्त कारण भी था, ऐसा कह सकते हैं। दूसरा समन जारी कर फिर सोराबजीपर मुकदमा चलानेकी हिम्मत सरकार कैसे करती? और उसने हिम्मत न की। तब सोराबजी सार्वजनिक कार्यमें जुट गये। पर सदाके लिए छुटकारा नहीं हुआ।

२. देखिए खण्ड ८, पृष्ठ ३४७-५१।

३. देखिए खण्ड ८, पृष्ठ ३७०-७१।

कौमकी मान्यता थी कि उन्हें वहाँ आनेका अधिकार है। फिर उनको थोड़ा-बहुत अंग्रेजी-का ज्ञान भी था। इसके अतिरिक्त सोराबजीके बराबर पढ़े हुए हिन्दुस्तानियोंके वहाँ आनेसे तो सत्याग्रहका नियमभंग होता ही नहीं था। इसलिए दो प्रकारके हिन्दुस्तानियों-को प्रविष्ट करानेका निश्चय किया गया, एक वे जो पहले ट्रान्सवालमें रह चुके थे और दूसरे वे जिन्होंने अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त की थी अर्थात् जो 'शिक्षित' माने जाते थे।

सेठ दाऊद मुहम्मद और पारसी रुस्तमजी ये दोनों बड़े-बड़े व्यापारियोंमें से और सुरेन्द्रराय मेढ़, प्रागजी खण्डूभाई देसाई, हरिलाल गांधी और रतनसी सोढा आदि शिक्षितोंमें से थे। सेठ दाऊद मुहम्मद अपनी पत्नीकी भारी बीमारीके बावजूद ट्रान्सवालमें प्रविष्ट हुए थे।[१]

मैं सेठ दाऊद मुहम्मदका यहाँ परिचय दे दूँ। वे नेटाल भारतीय कांग्रेसके अध्यक्ष थे। वे दक्षिण आफ्रिकामें आये हुए सबसे पुराने हिन्दुस्तानी व्यापारियोंमें से थे। वे सूरतकी सुन्नी जमातके बोहरा थे। मैंने दक्षिण आफ्रिकामें उनके समान चतुर हिन्दुस्तानी कम ही देखे हैं। उनकी समझनेकी शक्ति बहुत अच्छी थी। उनका अक्षर-ज्ञान कम था; किन्तु उन्होंने अनुभवसे अंग्रेजी और डच बोलना अच्छा सीख लिया था। वे अंग्रेज व्यापारियोंके साथ अपना काम-काज भली-भाँति चला लेते थे। उनकी उदारता प्रसिद्ध थी। उनके घर हर दिन लगभग ५० मेहमान तो खाना खाते ही थे। कौमके लिए किये गये चन्दोंमें उनका नाम अग्रणी लोगोंमें होता था। उनका एक अमूल्य पुत्र-रत्न था। वह चरित्रमें उनसे बहुत ऊँचा था। उसका हृदय स्फटिक मणिके समान था। सेठ दाऊदने अपने पुत्रके चारित्रिक विकासमें कभी विघ्न नहीं डाला। यदि यह कहें कि सेठ दाऊद अपने पुत्रकी पूजा करते थे तो अत्युक्ति न होगी। वे चाहते थे कि उनका कोई भी दोष उनके पुत्रमें न आये। उन्होंने उसे इंग्लैंड भेजकर अच्छी शिक्षा दिलाई थी। किन्तु उन्होंने उसे जब वह जवान ही था तभी खो दिया। हुसैनको क्षय-रोगने घेर लिया और उसका प्राणान्त उसीमें हो गया। उनका यह जख्म कभी नहीं भरा। हिन्दुस्तानी कौमको हुसैनसे बड़ी-बड़ी आशाएँ थीं। वे उसकी मृत्युके साथ समाप्त हो गईं। हुसैनके लिए हिन्दू और मुसलमान दाईं और बाईं आँख-जैसे थे। उसमें उत्कट सत्यनिष्ठा थी। आज तो दाऊद सेठ भी नहीं रहे। काल किसीको नहीं छोड़ता।

पारसी रुस्तमजीका परिचय मैं दे चुका हूँ। पाठक शिक्षित लोगोंमें से बहुतोंको जानते हैं। मैं जब यह प्रकरण लिख रहा हूँ, मेरे पास कोई सहायक साहित्य नहीं है। इस कारण कुछ नाम छूट गये होंगे। इसके लिए जिन भाइयोंके नाम छूटे हों वे मुझे क्षमा करें। ये प्रकरण नाम अमर करनेके लिए नहीं लिखे जा रहे हैं, बल्कि सत्याग्रहका मर्म समझाने और यह बतानेके लिए लिखे जा रहे हैं कि हमारी जीत कैसे हुई, सत्याग्रहमें कैसे-कैसे विघ्न आये और वे किस तरह दूर किये जा सके। मैंने जहाँ-कहीं भी नामोंका और नामधारियोंका परिचय दिया है वहाँ मेरा हेतु यही है कि पाठक यह जान जायें कि दक्षिण आफ्रिकामें निरक्षर समझे जानेवाले लोगोंने भी

१. यह वाक्य अंग्रेजी अनुवादसे लिया गया है।

कैसा पराक्रम किया था और वहाँ हिन्दू, मुसलमान, पारसी और ईसाई आदि किस प्रकार एक हो सके थे और व्यापारियों और शिक्षितोंने अपना कर्त्तव्य किस प्रकार पूरा किया था। मैंने जहाँ गुणीका परिचय दिया है, वहाँ वस्तुतः उस व्यक्तिकी स्तुति नहीं की है, बल्कि उसके गुणोंकी ही स्तुति की है।

इस प्रकार जब दाऊद सेठ अपनी सत्याग्रही सेना लेकर ट्रान्सवालकी सीमापर पहुँचे तब सरकार तैयार थी। वह इतने बड़े दलको ट्रान्सवालमें प्रवेश करने देती तो उसकी हँसी होती; इसलिए उसके सम्मुख एकमात्र मार्ग उनको गिरफ्तार करना ही था। अतः वे लोग गिरफ्तार कर लिये गये[१] और १८ अगस्त १९०८ को मजिस्ट्रेटके सामने पेश किये गये। उसने उन्हें सात दिन के भीतर ट्रान्सवालसे चले जानेकी आज्ञा दी। उन्होंने इस आज्ञाका उल्लंघन किया, अतः वे २८ अगस्तको प्रिटोरियामें फिर गिरफ्तार कर लिए गये और बिना मुकदमा चलाये निर्वासित कर दिये गये। ३१ अगस्तको वे फिर ट्रान्सवालमें आ गये और अन्ततः ८ सितम्बरको उन्हें फोक्सरस्टमें ५० पौंड जुर्मानेकी अथवा ३ महीनेकी कड़ी कैदकी सजा सुनाई गई। यह कहनेकी जरूरत नहीं कि उन्होंने खुशी-खुशी जेल जाना स्वीकार किया।[२]

इससे ट्रान्सवालके भारतीयोंका उत्साह बहुत बढ़ा। वे यह सोचकर जेल जानेका मार्ग ढूँढ़ने लगे कि ट्रान्सवालके हिन्दुस्तानी नेटालसे सहायतार्थ आये हुए हिन्दुस्तानियोंको छुड़ा नहीं सकते तो आखिर उनका साथ तो दें। उनके सम्मुख गिरफ्तार होनेके कई रास्ते थे। यदि कोई अधिवासी अपना परवाना न दिखाता तो उसे व्यापारका परवाना नहीं मिलता। यदि वह व्यापारके परवानेके बिना व्यापार करता तो वह अपराध माना जाता। नेटालसे ट्रान्सवालकी सीमामें आना होता तो परवाना दिखाना जरूरी था। उसे न दिखानेपर भी गिरफ्तारी होती। परवाने जलाये जा चुके थे। इसलिए रास्ता साफ था। उन्होंने इन दोनों रास्तोंको अख्तियार किया। कुछ बिना परवाने फेरी करके गिरफ्तार होने लगे और कुछ सरहद पार करनेपर परवाना दिखानेसे इनकार करके।

कहा जा सकता है कि लड़ाईका रंग अब जम गया। सभीकी परीक्षा हो रही थी। नेटालसे दूसरे लोग आये। जोहानिसबर्गमें भी धर-पकड़ शुरू हुई। स्थिति ऐसी हो गई थी कि जो चाहता वह गिरफ्तार हो सकता था। जेलें भरी जाने लगीं।

तब क्या सोराबजी आजाद रह सकते थे? वे भी गिरफ्तार कर लिए गये!

जो लोग नेटालसे आये उन सभीको तीन-तीन महीनेकी कैद मिली और जो ट्रान्सवालमें फेरी करके गिरफ्तार हुए उन्हें ४ दिनसे लेकर ३ महीनेतक की।

जो लोग इस तरह गिरफ्तार हुए उनमें इमाम साहब अब्दुल कादिर बावजीर भी थे। वे बिना परवाने फेरी करके गिरफ्तार हुए थे। और उन्हें २१ जुलाई १९०८ को चार दिनकी कड़ी कैदकी सजा दी गई थी। उनका शरीर इतना दुर्बल था कि लोग उनके गिरफ्तार होनेपर हँसे। कुछ लोगोंने मुझसे आकर कहा, 'भाई, इमाम

१. इसके बादका अनुच्छेद अंग्रेजीसे अनूदित है।

२. देखिए खण्ड ९, पृष्ठ १२-१३।

साहबको न लें तो अच्छा हो। वे कौमको लजायेंगे।' मैंने इस चेतावनीकी परवाह नहीं की। इमाम साहबकी शक्तिको आँकनेवाला मैं कौन था? इमाम साहब कभी नंगे पैर न चलते थे और शौकीन आदमी थे। उन्होंने एक मलायी स्त्रीसे ब्याह किया था। वे अपना घर बहुत सजा-बजा रखते थे और बग्घीके बिना कहीं नहीं जाते थे। यह सब सच था, किन्तु उनके मनकी बात कौन जानता था! यही इमाम साहब चार दिनकी कैद काटकर आये और फिर जेल गये। वे वहाँ आदर्श कैदीके रूपमें रहे। उन्होंने वहाँ सदा मशक्कत करके खाना खाया और जो मनुष्य नित्य नये-नये खानोंका आदी था उसने वह आदत छोड़कर मक्कीके आटेकी पतली लपसी पीकर ईश्वरका धन्यवाद माना। अवश्य ही उन्होंने हिम्मत नहीं हारी; बल्कि सादगी अख्तियार की। उन्होंने कैदीके रूपमें पत्थर तोड़े, झाड़ू लगाई और दूसरे कैदियोंके साथ कवायदकी कतारमें खड़े हुए। अन्तमें फीनिक्समें उन्होंने पानी भरा और छापेखानेमें अक्षर भी जोड़े। फीनिक्स आश्रममें रहनेवाले लोगोंके लिए कम्पोजकी कला सीखना जरूरी था। अतः इमाम साहबने अपना कर्त्तव्य-कर्म यथासम्भव सीख लिया था। इस समय वे हिन्दुस्तानमें अपना हिस्सा अदा कर रहे हैं।

किन्तु जो लोग जेलमें जाकर शुद्ध हुए ऐसे तो बहुतसे लोग हैं।

जोजेफ रायप्पन बैरिस्टर और केम्ब्रिज विश्वविद्यालयके स्नातक थे। वे नेटालमें गिरमिटिया माँ-बापके घर जन्म लेकर भी पूरे साहब बन गये थे। वे तो घरमें भी बिना बूट पहने नहीं चलते थे। इमाम साहबके लिए वजू करते वक्त पैर धोना और नमाज नंगे पैर पढ़ना लाजिमी था। बेचारे रायप्पन तो इतना भी नहीं करते थे। वे अपनी बैरिस्टरी छोड़कर और बगलमें साग-सब्जीकी छाबड़ी लेकर फेरी करके गिरफ्तार हुए। उन्होंने भी जेल काटी। रायप्पनने मुझसे पूछा कि क्या मैं तीसरे दर्जेमें यात्रा करूँ? मैंने उन्हें उत्तर दिया, "यदि आप पहले या दूसरे दर्जेमें यात्रा करेंगे तो फिर मैं तीसरे दर्जेमें यात्रा करनेके लिए किसे कहूँगा? जेलमें कौन जानेगा कि आप बैरिस्टर हैं?" जोजेफ रायप्पनके लिए इतना उत्तर पर्याप्त था। वे भी जेल गये।

जेलमें सोलह वर्षसे कम आयुके भी कई तरुण गये थे। मोहनलाल मानजी घेलानी नामका एक लड़का तो चौदह वर्षका ही था।[1]

अधिकारियोंने जेलमें हिन्दुस्तानियोंको कष्ट देनेमें कोई कमी नहीं रखी। उन्होंने उनसे टट्टियाँ साफ करवाईं; हिन्दुस्तानी कैदियोंने हँसी-खुशी वे भी साफ कीं। उन्होंने उनसे पत्थर तुड़वाये। इन कैदियोंने अल्लाह या रामका नाम लेकर पत्थर भी तोड़े। वहाँ उनसे तालाब खुदवाये गये और पथरीली मिट्टी खुदवाई गई। इससे उनके हाथोंमें घट्ठे पड़ गये और किसी-किसीको असह्य कष्टके कारण मूर्छा भी आ गई; किन्तु उन्होंने हिम्मत नहीं हारी।

कोई यह न समझे कि जेलमें आपसी झगड़े नहीं होते थे अथवा एक दूसरेसे ईर्ष्या-द्वेष नहीं था। ज्यादा झगड़े तो भोजनके सम्बन्धमें होते हैं; किन्तु हमने उनसे भी मुक्ति प्राप्त कर ली थी।

१. यह एक वाक्य अंग्रेजी अनुवादसे लिया गया है।

मैं भी दूसरी बार जेल गया था। फोक्सरस्टकी जेलमें एक बार हम लगभग ७५ कैदी इकट्ठे हो गये थे। हमने अपना भोजन बनानेका काम अपने हाथमें ले लिया। झगड़ोंका निपटारा तो मेरे हाथसे ही हो सकता था। इसलिए रसोइया मैं ही बना। लोग प्रेमके कारण मेरे हाथकी बनी कच्ची-पक्की, बिना खाँड डाली लपसी भी पी लेते।

सरकारने सोचा कि यदि मैं अलग कर दिया जाऊँ तो उससे मुझे भी कुछ कष्ट होगा और कैदी भी पस्त-हिम्मत होंगे। इससे अच्छा अवसर उसे नहीं मिलता। इसलिए वह मुझे प्रिटोरिया ले गई। वहाँ खतरनाक कैदियोंके लिए तनहाईकी कोठरियाँ थीं। मैं एक ऐसी ही कोठरीमें बन्द कर दिया गया। मैं उसमें से कसरत करनेके लिए केवल दो बार बाहर निकाला जाता। फोक्सरस्टमें घी दिया जाता था; पर यहाँ तो वह भी नहीं था। मैं इस जेलके सामान्य कष्टोंकी चर्चा करना नहीं चाहता। अतः जिन्हें इनको जाननेकी इच्छा हो वे मेरे दक्षिण आफ्रिकाके जेलके अनुभव पढ़ लें।

इतना होनेपर भी हिन्दुस्तानियोंने हिम्मत नहीं हारी। इससे सरकार बड़े असमंजसमें पड़ी। वह जेलमें कितने हिन्दुस्तानियोंको रख सकती थी? इससे खर्च बढ़ रहा था। अब वह क्या करती? उसने उस स्थितिका सामना करनेके लिए दूसरे उपाय ढूँढ़ना आरम्भ किया।[१]

अध्याय ३१

देशनिकाला

खूनी कानूनमें तीन प्रकारकी सजाएँ थीं; जुर्माना, कैद और देशनिकाला। अदालतको ये तीनों सजाएँ एक साथ देनेका अख्तियार था और यह अख्तियार छोटे मजिस्ट्रेटोंको भी दे दिया गया था। पहले देशनिकालेका[२] अर्थ था अपराधीको ट्रान्सवालकी हदसे बाहर नेटाल या ऑरेंज फ्री स्टेट या डेलागोआ-बे (पूर्वी आफ्रिका)की हदमें ले जाकर छोड़ आना। उदाहरणके लिए नेटालकी ओरसे आनेवाले हिन्दुस्तानी फोक्सरस्ट स्टेशनकी हदसे बाहर ले जाकर छोड़ दिये जाते थे। इस तरहके देशनिकालेमें कुछ कष्ट होनेके सिवा दूसरी कोई हानि नहीं थी। यह तो केवल एक खेल-तमाशा था और इससे हिन्दुस्तानियोंमें उत्साह ही अधिक बढ़ता था।

इसलिए स्थानीय सरकारको हिन्दुस्तानियोंको परेशान करनेकी नई युक्ति खोजनी पड़ी। जेलोंमें तो जगह रही नहीं थी। सरकारने सोचा कि यदि हिन्दुस्तानियोंको निर्वासित करके हिन्दुस्तान भेजा जा सके तो वे जरूर डरकर हमारे अधीन हो जायेंगे। उसका यह खयाल कुछ हदतक तो ठीक था ही। सरकारने एक बड़ा जत्था इस तरह हिन्दुस्तान भेजा। इन लोगोंको बहुत परेशानियोंका सामना करना पड़ा।

१. यह वाक्य अंग्रेजीसे अनूदित है।

२. नये प्रवासी कानूनके खण्ड ६ के अन्तगत; देखिए खण्ड ८, पृष्ठ १२०-२।

खानेके लिए जो सरकारने दिया वही मिला, अर्थात् उन्हें खानेकी बहुत तकलीफ रही। ये सभी लोग डेक-यात्रीके रूपमें भेजे गये थे। फिर इस तरह निर्वासित किये गये लोगोंकी अपनी जमीनें और दूसरी सम्पत्ति होती थी, अपना कोई धन्धा, अपने आश्रित-जन होते थे और कुछको तो कर्ज भी देना होता था। समर्थ होनेपर भी सब-कुछ गँवाने अर्थात् दिवालिया होनेके लिए अधिक लोग तैयार नहीं हो सकते थे।

इसके बावजूद बहुतसे हिन्दुस्तानी तो हर तरह मजबूत रहे। बहुतसे कमजोर भी पड़े और जानबूझकर गिरफ्तार होनेसे बचे। इनमें से ज्यादातर लोग इतने कमजोर तो नहीं पड़े कि जो परवाने जला दिये थे उन्हें वे फिर ले लेते, किन्तु कुछने परवाने भयके कारण फिरसे ले लिये।

जो लोग मजबूतीसे टिके रहे उनकी संख्या इतनी कम अवश्य नहीं थी कि उसकी उपेक्षा की जा सके। उनकी वीरता असीम थी। मैं मानता हूँ कि उनमें से कुछ लोग ऐसे थे जो हँसते-हँसते फाँसीके तख्तेपर भी चढ़ जाते। उन्होंने धन-सम्पत्तिकी चिन्ता तो छोड़ ही दी थी। किन्तु जो लोग हिन्दुस्तान भेज दिये गये थे, उनमें से बहुतसे तो गरीब और सीधे-सादे लोग ही थे और वे श्रद्धावश ही इस लड़ाईमें सम्मिलित हुए थे। उनपर इतना अत्याचार हमें असह्य लगा। यह समझना कठिन था कि इनको सहायता भी किस प्रकार दी जाये। हमारे पास पैसा तो थोड़ा ही था। यदि ऐसी लड़ाईमें पैसेकी सहायता देने लगें तो लड़ाई ही हार जायें; उसमें लालची आदमी न आ घुसे, इस भयसे पैसेका लोभ देकर तो उसमें एक भी आदमी दाखिल नहीं किया जाता था। परन्तु पीड़ितोंको सहानुभूतिके रूपमें सहायता देना तो धर्म था।

मैंने अनुभवसे देखा है कि सहानुभूति, मधुर व्यवहार और स्नेहपूर्ण दृष्टिसे जो काम बन सकता है वह पैसेसे नहीं बन सकता। यदि किसीको पैसा मिले, पर सहानुभति न मिले तो वह साथ छोड़ देगा। इसके विपरीत जो मनुष्य प्रेमके वश होकर साथ देगा वह अनेक कष्ट सहनेके लिए तैयार रहेगा।

इसलिए इन निर्वासितोंके लिए सहानुभूतिके रूपमें जो-कुछ किया जा सकता वह सब करनेका निश्चय किया गया। हमने उन्हें आश्वासन दिया कि हिन्दुस्तानमें उनकी समुचित व्यवस्था की जायेगी। पाठकोंको जानना चाहिए कि इनमें से बहुतसे लोग तो मुक्त गिरमिटिये थे। उन्हें हिन्दुस्तानमें अपना कोई सगा-सम्बन्धी नहीं मिल सकता था। फिर उनमें से कोई-कोई तो दक्षिण आफ्रिकामें ही पैदा हुए थे। उन सबके लिए हिन्दुस्तान विदेश-जैसा ही था। ऐसे लोगोंको हिन्दुस्तानमें किनारेपर उतारकर भटकता छोड़ देना बहुत बड़ी निर्दयता ही होती। इसलिए हमने उन्हें विश्वास दिलाया कि हिन्दुस्तानमें उनकी समुचित व्यवस्था हो जायेगी।

यह सब करनेपर भी जबतक उनके साथ कोई सहायक न होता तबतक उनको शान्ति नहीं मिल सकती थी। यह निर्वासितोंकी पहली टुकड़ी थी। जहाज छूटनेमें कुछ घंटेकी ही देर थी। चुनाव करनेके लिए वक्त नहीं था। मेरी निगाह अपने साथियोंमें भाई पी० के० नायडूपर पड़ी। मैंने उनसे पूछा :

"क्या आप इन गरीब भाइयोंको पहुँचाने हिन्दुस्तान जायेंगे?"

"क्यों नहीं?"

"किन्तु जहाज तो अभी छूट रहा है।"

"कोई चिन्ताकी बात नहीं।"

"आपके कपड़े-लत्तोंका क्या होगा? खानेकी क्या व्यवस्था होगी?"

"कपड़े तो जो पहने हूँ ये हैं ही; खाना जहाजमें मिल जायेगा।"

मेरे हर्ष और आश्चर्यका कोई ठिकाना न रहा। यह बातचीत पारसी रुस्तमजीके घरपर हुई थी। मैंने वहींसे उनके लिए कुछ कपड़े-लत्ते और कम्बल आदि लेकर उनको रवाना कर दिया।

"देखना, रास्तेमें इन भाइयोंकी पूरी सार-सम्भाल रखना; इनको सुलाकर तब सोना। मैं श्री नटेसनके नाम मद्रास तार दे रहा हूँ। वे जैसा कहें वैसा करना।"

"मैं सच्चा सिपाही सिद्ध होनेका प्रयत्न करूँगा"—इतना कहकर वे रवाना हो गये। मैंने सोचा कि जबतक ऐसे-ऐसे वीर लोग हैं तबतक हमारी हार नहीं हो सकती। भाई नायडूका जन्म दक्षिण आफ्रिकामें हुआ था। उन्होंने हिन्दुस्तान कभी नहीं देखा था। मैंने उनको श्री नटेसनके नाम सिफारिशी चिट्ठी दी थी और श्री नटेसनको तार भी दे दिया था।

कह सकते हैं कि उस समय हिन्दुस्तानमें विदेशोंमें बसे हुए हिन्दुस्तानियोंके कष्टोंको समझनेवाले, उनको सहायता देनेवाले और उनके सम्बन्धमें नियमित रूपसे और ज्ञानपूर्वक लिखनेवाले एक श्री नटेसन ही थे। उनसे मैं नियमपूर्वक पत्र-व्यवहार करता रहता था।[१] ये निर्वासित भाई जब मद्रास पहुँचे तब श्री नटेसनने इनकी पूरी-पूरी सहायता की। भाई नायडू-जैसा समझदार आदमी साथ होनेसे श्री नटेसनको भी पर्याप्त सहायता मिली। उन्होंने स्थानीय लोगोंसे चंदा किया और इन लोगोंको ऐसा नहीं लगने दिया कि वे निर्वासित हैं।

स्थानीय सरकारका यह काम जितना क्रूरतापूर्ण था उतना ही अवैध भी था। इस बातको सरकार भी जानती थी। सामान्यतः लोग यह नहीं जानते कि सरकारें प्रायः जानबूझकर अपने कानून-कायदोंको तोड़ती रहती हैं। संकटके समय कानून बनानेका अवकाश नहीं रहता, इसलिए वे कानूनोंको तोड़कर मनमानी कर लेती हैं और बादमें या तो नया कानून मंजूर करा लेती हैं या किसी तरह लोगोंके दिमागोंमें से अपनी कानून-भंगकी बातको निकाल देती हैं।

हिन्दुस्तानियोंने सरकारकी इस अवैध कार्रवाईके सम्बन्धमें बहुत आन्दोलन किया। हिन्दुस्तानमें भी शोर मचाया गया, इसलिए स्थानीय सरकारके लिए इस तरह गरीब हिन्दुस्तानियोंको निर्वासित करना मुश्किल हो गया। हिन्दुस्तानियोंने कानूनके मुताबिक करने योग्य सभी कार्रवाइयाँ कीं। उन्होंने इन आज्ञाओंके विरुद्ध अपीलें कीं और उनमें उनकी जीत हुई। आखिर निर्वासितोंको हिन्दुस्तान भेजनेकी प्रथा बन्द कर दी गई।

१. देखिए खण्ड १०, पृष्ठ ३१४-५ और ४०७-९।

किन्तु इसका प्रभाव सत्याग्रही 'सेना'पर पड़े बिना न रहा। अब जो बचे वे खास लड़नेवाले लोग ही थे। "हमें सरकार हिन्दुस्तान भेज दे तो" — इस भयको सभी लोग मनसे दूर नहीं कर सके।

सरकारने कौमके उत्साहको तोड़नेके लिए एक यही कदम नहीं उठाया था। मैं पिछले प्रकरणमें बता चुका हूँ कि सरकारने सत्याग्रही कैदियोंको कष्ट देनेमें कोई कमी नहीं रखी थी। वह उनसे गिट्टी तोड़नेका काम भी कराती थी। उसकी ज्यादतियाँ इतनी ही नहीं थीं। वह पहले सब सत्याग्रही कैदियोंको साथ-साथ रखती थी; किन्तु अब उसने उनको अलग-अलग रखनेकी नीति ग्रहण की और उन्हें सभी जेलोंमें बहुत कष्ट दिया। ट्रान्सवालमें जाड़ेका मौसम बहुत कठिन होता है। सर्दी इतनी ज्यादा होती है कि सुबहके काम करते वक्त हाथ ठिठुर कर रह जाते हैं। इसलिए कैदियोंके लिए जाड़ेका मौसम बहुत कठिन सिद्ध हुआ। ऐसी स्थितिमें कुछ कैदी एक छोटी जेलमें रखे गये जहाँ उनसे मिलनेके लिए कोई जा ही नहीं सकता था। इस टुकड़ीमें स्वामी नागप्पन नामका एक युवक सत्याग्रही था।[1] उसने जेलके नियमोंका पालन किया। उसे जो भी काम दिया गया उसने वह पूरा किया। वह सुबह बहुत जल्दी सड़कपर मिट्टी डालनेके लिए ले जाया जाता था। इससे उसे तेज डबल निमोनिया हो गया, और अन्तमें रिहा कर दिये जानेपर ७ जुलाई, १९०९को उसका प्राणान्त हो गया। नागप्पनके साथियोंका कहना है कि उसको अन्तिम क्षणतक आन्दोलनका ही खयाल रहा। उसको जेल जानेका पश्चात्ताप नहीं हुआ। उसे देशके लिए लड़ते हुए जो मृत्यु मिली उसका आलिंगन उसने मित्रकी भाँति किया। हमारे मानदण्डसे यह नागप्पन अशिक्षित था। उसने अंग्रेजी और जुलू आदि भाषाएँ बोलना अभ्याससे सीख लिया था। शायद वह टूटी-फूटी अंग्रेजी लिख भी लेता हो; किन्तु हम उसे अवश्य ही पढ़े-लिखोंकी पंक्तिमें नहीं रख सकते। फिर भी नागप्पनके धैर्य, शान्ति, देशभक्ति और प्राणान्ततक टिकनेवाली दृढ़ताका विचार करें तो क्या उसमें और कुछ चाहने योग्य गुण रह जाता है? ट्रान्सवालकी लड़ाई बड़े-बड़े विद्वानोंके सम्मिलित न होनेपर भी चलाई जा सकी; किन्तु यदि उसमें नागप्पन-जैसे सैनिक न मिले होते तो क्या वह चलाई जा सकती थी?

जैसे नागप्पनकी मृत्यु जेलके कष्टोंसे हुई वैसे ही नारायण स्वामीकी[2] मृत्यु (१६ अक्टूबर १९१०को) निर्वासनके कारण हुई। निर्वासनके कष्ट उसके लिए कालरूप सिद्ध हुए। कौम इन घटनाओंके कारण हारी नहीं; किन्तु कमजोर लोग उसमें से खिसक गये। कमजोर लोग भी इस लड़ाईमें अपना योग यथाशक्ति दे चुके थे; अतः उन्हें कमजोर जानकर उनका तिरस्कार नहीं करना चाहिए। ऐसी रीति हो गई है कि आगे बढ़नेवाले आदमी पीछे रहनेवाले आदमियोंका तिरस्कार करते हैं और यह समझते हैं कि हम वीर हैं। किन्तु वास्तविकता प्रायः इससे उलटी होती है। यदि पचास रुपयेवाला आदमी पच्चीस रुपया देकर बैठ जाये और पाँच रुपयेवाला

१. देखिए खण्ड ९, पृष्ठ २९८।
२. देखिए खण्ड १०, पृष्ठ ३६०।

आदमी अपने पाँचों रुपये दे दे तो हम यही मानेंगे कि पाँच रुपया देनेवाले आदमीने अधिक दिया। फिर भी पच्चीस रुपये देनेवाला बहुत बार पाँच रुपये देनेवालेके सामने घमंड करता है। किन्तु हम यह समझते हैं कि उसके घमंड करनेका कोई कारण नहीं है। इसी तरह जो आदमी कमजोरीके कारण आगे नहीं बढ़ सकता, किन्तु अपनी पूरी शक्तिका उपयोग कर चुकता है वह उस आदमीसे अधिक योग्य है जो परिमाणको देखते हुए अधिक शक्ति लगाता है, किन्तु वस्तुतः शक्ति लगानेसे मन चुराता है। इसलिए जो लोग लड़ाई कड़ी होनेपर उससे निकल गये, देशसेवा तो उन्होंने भी की है। अब ऐसा समय आया जब अधिक साहस और अधिक कष्ट-सहनकी जरूरत थी। किन्तु ट्रान्सवालके हिन्दुस्तानी इसमें भी पीछे नहीं रहे और लड़ाई चलानेके लिए कमसे-कम जितने लोग जरूरी थे उसमें उतने तो रहे ही।

किन्तु लोगोंकी परीक्षा इस तरह दिनपर-दिन कड़ी होने लगी। हिन्दुस्तानी ज्यों-ज्यों ज्यादा जोर लगाते त्यों-त्यों सरकार भी ज्यादा ताकतसे काम लेती। खतरनाक कैदियोंके लिए अथवा जिन कैदियोंको खास तौरसे दबाना होता है उनके लिए सभी मुल्कोंमें, कुछ खास कैदखाने रखे जाते हैं। ऐसी व्यवस्था ट्रान्सवालमें भी थी। ऐसा एक कैदखाना डॉपक्लूफमें था।[१] उसका जेलर भी कड़ा था और वहाँ मशक्कत भी कड़ी कराई जाती थी। किन्तु वैसी मशक्कतको करनेवाले लोग भी निकल आये। ये मशक्कत करनेके लिए तैयार थे; लेकिन अपमान सहनेके लिए तैयार न थे। जेलरने उनका अपमान किया, इसलिए उन्होंने अनशन आरम्भ कर दिया। उनकी शर्त यह थी: "जबतक यह जेलर न हटाया जायेगा अथवा हम दूसरी जेलमें नहीं भेजे जायेंगे तबतक हम खाना नहीं खायेंगे।" यह अनशन शुद्ध था। अनशन करनेवाले लोग ऐसे नहीं थे जो छुपे-छुपे कुछ खा-पी लेते। पाठकोंको जानना चाहिए कि ऐसे मामलोंमें जो आन्दोलन हिन्दुस्तानमें हो सकता है, उसके लिए ट्रान्सवालमें बहुत अवकाश न था। फिर वहाँ जेलोंके नियम भी कड़े थे। वहाँ ऐसे समयमें भी कैदियोंसे सद्व्यवहारकी प्रथा नहीं थी। सत्याग्रहीको जेलमें जानेपर प्रायः अपनी चिन्ता स्वयं ही करनी पड़ती। यह लड़ाई गरीबोंकी थी और गरीबोंके तरीकेसे ही चल रही थी, इसलिए ऐसी प्रतिज्ञाकी जोखिम बहुत बड़ी थी। फिर भी ये सत्याग्रही दृढ़ रहे। उनका उस समयका वह कार्य आजकी अपेक्षा अधिक स्तुत्य माना जायेगा, क्योंकि उस समय तक लोग अनशनके अभ्यस्त नहीं हुए थे। किन्तु वे सत्याग्रही अडिग रहे और उनको जीत मिली। सात दिन अनशन करनेके बाद उनको दूसरी जेलमें भेजनेकी आज्ञा दे दी गई।

१. विस्तृत विवरणके लिए देखिए खण्ड १०।

अध्याय ३२

फिर शिष्टमण्डल

इस तरह सत्याग्रहियोंको जेलमें भेजनेका और निर्वासित करनेका क्रम जारी था। इसमें कमोबेशी तो होती रहती थी। दोनों पक्ष शिथिल भी हो गये थे। सरकारने देखा कि जेलें भरनेसे संकल्पके धनी सत्याग्रही हारेंगे नहीं और उन्हें निर्वासित करनेसे सरकारकी निन्दा होती थी। फिर जो मामले अदालतोंमें जाते उनमें किसी-किसीमें सरकार हार भी जाती। हिन्दुस्तानी भी जोरदार मुकाबला करनेके लिए तैयार नहीं थे। उतने सत्याग्रही रहे भी नहीं थे। कुछ सत्याग्रहियोंने हार मान ली थी। कुछ तो हिम्मत खो बैठे थे और संकल्पवान् सत्याग्रहियोंको मूर्ख मानते थे। ये 'मूर्ख' अपने-आपको समझदार मानकर ईश्वरमें और लड़ाईकी तथा अपने साधनोंकी सत्यतामें पूरी आस्था रखते थे और मानते थे कि अन्तमें जीत तो सत्यकी ही होती है।

दक्षिण आफ्रिकाकी राजनीति तो एक क्षण भी स्थिर नहीं रहती थी। बोअर और अंग्रेज चाहते थे कि दक्षिण आफ्रिकाके सभी उपनिवेश संघ-बद्ध हो जायें और उनको अधिक स्वतन्त्रता प्राप्त हो जाये। जनरल हर्टजोगकी इच्छा यह थी कि अंग्रेजोंसे पूरी तरह सम्बन्ध तोड़ दिया जाये। कुछ लोग अंग्रेजोंसे नाम-मात्रका सम्बन्ध रखना पसन्द करते थे। अंग्रेज पूरी तरह सम्बन्ध तोड़ना सहन नहीं कर सकते थे। जो-कुछ मिलना था वह तो ब्रिटिश संसदकी मार्फत ही मिल सकता था। इसलिए बोअरों और अंग्रेजोंने यह निश्चय किया कि दक्षिण आफ्रिकाका एक शिष्टमण्डल इंग्लैंड जाये और दक्षिण आफ्रिकाके मामलेको ब्रिटिश मन्त्रिमण्डलके सम्मुख रखे।

हिन्दुस्तानियोंने देखा कि यदि इन उपनिवेशोंका एकीकरण हो जायेगा — उनका संघ बन जायेगा तो उनकी स्थिति जितनी बुरी तब थी उससे भी बुरी हो जायेगी। सभी उपनिवेश सदा हिन्दुस्तानियोंको अधिकाधिक दबाकर रखना चाहते थे। इसलिए यह स्पष्ट था कि ये सब विरोधी इकट्ठे हो जायेंगे तो हिन्दुस्तानियोंको और भी ज्यादा दबायेंगे। यद्यपि हिन्दुस्तानियोंकी आवाज नक्कारखानेमें तूतीकी आवाजकी तरह बहुत कम थी, फिर भी हिन्दुस्तानियोंके प्रयत्नोंमें कोई भी कमी न रहे, यह सोचकर इस समय फिर हिन्दुस्तानियोंका एक शिष्टमण्डल इंग्लैंड भेजनेका निश्चय किया गया। इस बार शिष्टमण्डलमें मेरे साथी पोरबन्दरके मेमन सेठ हाजी हबीब चुने गये थे। वे ट्रान्सवालमें बहुत दिनोंसे व्यापार करते थे। उनका अनुभव बहुत था। उन्होंने अंग्रेजी नहीं पढ़ी थी फिर भी वे अंग्रेजी, डच और जुलू आदि भाषाएँ आसानीसे समझ लेते थे। उनकी सहानुभूति सत्याग्रहियोंके साथ थी, किन्तु ये स्वयं पूरे सत्याग्रही नहीं कहे जा सकते थे। हम दोनों भाई केपटाउनसे 'केनिलवर्थ कैसिल' नामके जिस जहाजमें रवाना हुए थे उसीमें दक्षिण आफ्रिकाके प्रसिद्ध वयोवृद्ध राजनीतिज्ञ मेरीमैन भी बैठे थे। वे संघ-निर्माणके निमित्त बातचीत करने जा रहे थे। जनरल स्मट्स और कुछ अन्य मन्त्री पहले जा चुके थे। नेटालके हिन्दुस्तानियोंका एक अलग

शिष्टमण्डल उस समय इंग्लैंड गया हुआ था। उसका सम्बन्ध सत्याग्रहसे नहीं था, प्रत्युत नेटालके हिन्दुस्तानियोंकी कुछ कठिनाइयोंसे था।

उस समय लॉर्ड क्रू उपनिवेश मन्त्री थे और लॉर्ड मॉर्ले भारत मन्त्री। उनसे बहुत बातें हुईं। हम बहुतसे लोगोंसे मिले और जिन समाचारपत्र सम्पादकोंसे अथवा लोकसभा या सामन्त-सभाके सदस्योंसे मिल सकते थे उनमें से किसीसे मिले बिना नहीं रहे।[1] मैं कह सकता हूँ कि लॉर्ड एम्टहिलने हमें बहुत सहायता दी। वे श्री मेरीमैन, जनरल बोथा और अन्य आफ्रिकी नेताओंसे मिलते थे और अन्तमें हमारे लिए जनरल बोथाका एक सन्देश लाये। उन्होंने कहा: "जनरल बोथा आपकी भावनाओंको समझते हैं। वे आपकी छोटी-मोटी माँगें माननेके लिए तैयार हैं, किन्तु वे एशियाई कानूनको रद करनेके लिए और दक्षिण आफ्रिकामें आनेवाले नये प्रवासियोंके कानूनमें फेरफार करनेके लिए तैयार नहीं। वे कानूनमें रखे गये काले और गोरेके बीचके भेदको मिटानेकी आपकी माँग मंजूर करनेसे इन्कार करते हैं। जनरल बोथा इस भेदको सिद्धान्तके रूपमें मानते हैं और फिर वे यह माँग मंजूर भले ही कर लें, दक्षिण आफ्रिकाके गोरे उसे कभी सहन न करेंगे। जनरल स्मट्सकी राय भी यही है जो जनरल बोथाकी है। दोनोंका कहना है कि उनका यह निर्णय और प्रस्ताव अन्तिम है। यदि आप इससे अधिक माँगेंगे तो दुःखी होंगे और आपकी कौम भी दुखी होगी। इसलिए आप जो भी निर्णय करें सोच-विचार कर करें। जनरल बोथाने मुझे कहा है कि मैं आपको उनका यह सन्देश दे दूँ और इस सम्बन्धमें आपका दायित्व आपको स्पष्ट बता दूँ।"

लॉर्ड एम्टहिलने यह सन्देश देनेके बाद कहा: "आप देखें तो जनरल बोथा आपकी सब व्यावहारिक माँगें मंजूर कर रहे हैं और इस दुनियामें लेना-देना तो करना ही पड़ता है। हम जो-कुछ चाहते हैं वह सब तो हमें मिल नहीं सकता। इसलिए आपको मेरी निजी सलाह है कि आप इस प्रस्तावको स्वीकार कर लें। यदि आप सिद्धान्तको लेकर लड़ना चाहें तो बादमें लड़ सकेंगे। आप दोनों इस सम्बन्धमें विचार कर लें और उसके बाद जो भी उत्तर देना हो, वह दें।"

यह सुनकर मैंने सेठ हाजी हबीबकी ओर देखा। उन्होंने कहा: "आप मेरी ओरसे कहें कि मैं समझौतेका समर्थन करनेवाले पक्षकी ओरसे बोल रहा हूँ। मुझे जनरल बोथाका प्रस्ताव स्वीकार है। यदि वे हमें इतना दे देंगे तो हम फिलहाल सन्तोष मानेंगे और सिद्धान्तके लिए पीछे लड़ते रहेंगे। अब कौम ज्यादा बरबाद हो, यह मुझे पसन्द नहीं। मैं जिस पक्षकी ओरसे बोल रहा हूँ वह संख्यामें और पैसेमें भी बड़ा है।"

मैंने इन वाक्योंका शब्दशः अनुवाद कर दिया। फिर मैंने अपने सत्याग्रही पक्षकी ओरसे कहा: "आपने जो कष्ट किया है उसके लिए हम दोनों आपके आभारी हैं। मेरे साथीने जो कुछ कहा है, वह ठीक है। वे संख्यामें और धनमें अधिक बलवान् पक्षकी ओरसे बोलते हैं। मैं जिन लोगोंकी ओरसे बोलता हूँ वे इनकी अपेक्षाकृत

१. विस्तृत विवरणके लिए देखिए खण्ड ९।

गरीब और संख्यामें कम हैं। किन्तु वे सभी मरनेके लिए तैयार हैं। उनकी लड़ाई व्यवहार और सिद्धान्त दोनोंकी है। यदि दोनोंमें से कोई एक वस्तु छोड़नी पड़े तो वह व्यवहारको छोड़ देंगे और सिद्धान्तके लिए लड़ेंगे। हमें जनरल बोथाकी शक्तिका अन्दाज है। किन्तु हम अपनी प्रतिज्ञाको उससे अधिक बड़ी समझते हैं इसलिए प्रतिज्ञा-की खातिर बरबाद होनेके लिए तैयार हैं। हम धीरज रखेंगे। हमारा विश्वास है कि हम अपने निश्चयपर अटल रहेंगे तो हमने जिस ईश्वरको साक्षी करके प्रतिज्ञा की है, वह उसे पूरा करेगा।

मैं आपकी स्थितिको भलीभाँति समझता हूँ। आपने हमारे लिए बहुत-कुछ किया है। यदि आप अब हम मुट्ठीभर सत्याग्रहियोंका अधिक साथ न दे सकें तो हमें इससे गलतफहमी नहीं होगी। हम अपने प्रति किये गये आपके उपकारको भी नहीं भूलेंगे। पर हम आपकी सलाहको स्वीकार नहीं कर सकते; आशा है, आप भी हमें इसके लिए क्षमा करेंगे। आप जनरल बोथाको हम दोनोंने जो-कुछ कहा है वह खुशीसे बता दें और उन्हें यह कह दें कि हम जो थोड़ेसे लोग हैं वे अपनी प्रतिज्ञा का पालन अवश्य करेंगे और हमें "आशा है कि हमारी कष्ट-सहनकी शक्ति अन्तमें उनके हृदयको भी बेध देगी और वे एशियाई कानूनको रद कर देंगे।"

लॉर्ड एम्टहिलने उत्तर दिया:

"आप यह न समझें कि मैं आपका साथ देना छोड़ दूँगा। मुझे भी अपने सौजन्यकी रक्षा तो करनी ही है। अंग्रेज एक बार हाथमें लिये हुए कामको एकाएक छोड़ते नहीं हैं। आपकी लड़ाई न्यायसंगत है। आप शुद्ध साधनोंसे लड़ रहे हैं। मैं आपका साथ कैसे छोड़ सकता हूँ? किन्तु आप मेरी स्थिति समझ सकते हैं। कष्ट तो आपको ही सहने हैं। इसलिए यदि समझौतेकी कुछ भी गुंजाइश हो तो आपको समझौता करनेकी सलाह देना मेरा धर्म है; किन्तु जब कष्ट सहन करनेवाले आप लोग अपनी प्रतिज्ञाके लिए जितने भी कष्ट सहने पड़ें उतने सहनेके लिए तैयार हैं तो मैं आपको कैसे रोक सकता हूँ? मैं तो आपको बधाई ही दूँगा। अतः मैं आपकी समितिका अध्यक्ष तो बना ही रहूँगा और जितनी सहायता दे सकूँगा उतनी सहायता भी देता ही रहूँगा; किन्तु आपको यह ध्यान रखना चाहिए कि मैं लॉर्डसभाका एक सामान्य-सा सदस्य माना जाता हूँ। मेरा प्रभाव बहुत नहीं है। फिर भी जितना है, मैं उसका प्रयोग आपके निमित्त ही करता रहूँगा, आप इसमें कोई सन्देह न करें।"

उनके इन प्रोत्साहन-भरे शब्दोंको सुनकर हम दोनोंको बहुत प्रसन्नता हुई।

सम्भव है, यहाँ पाठकोंका ध्यान एक मीठी बातकी ओर न गया हो। मैंने ऊपर बताया कि सेठ हाजी हबीब और मेरे बीच मतभेद था। फिर भी हम दोनोंके बीच इतनी मिठास और परस्पर इतना विश्वास था कि सेठ हाजी हबीबको अपना विरोधी मत मेरी मार्फत ही व्यक्त करनेमें झिझक नहीं मालूम हुई। वे मुझपर विश्वास कर सकते थे कि मैं उनके विचार लॉर्ड एम्टहिलके सम्मुख ठीक-ठीक रखूँगा।

मैं यहाँ पाठकोंको एक अप्रस्तुत प्रसंग भी बताऊँ। इंग्लैंडमें रहते हुए उन दिनों मेरी बातचीत बहुतसे अराजकतावादियोंसे हुई। वहाँ मैंने उन सबके तर्कोंका खण्डन

किया था। दक्षिण आफ्रिकामें भी मैंने ऐसे कुछ लोगोंकी शंकाओंका समाधान किया था। मेरे 'हिन्द स्वराज्य' का जन्म इंग्लैंडमें हुई इस चर्चाके आधारपर ही हुआ। मैंने इसके मुख्य तत्त्वोंके सम्बन्धमें लॉर्ड एम्टहिलके साथ भी चर्चा की थी। इसमें मेरा हेतु यह था कि उनको यह खयाल न हो कि मैंने अपने विचारोंको छुपाकर उनके नाम और उनकी सहायताका अनुचित उपयोग अपने दक्षिण आफ्रिकाके कार्यके सम्बन्धमें किया है। इस सम्बन्धमें उनसे मेरी जो बातचीत हुई है उसे मैं कभी नहीं भूलूँगा। उनके परिवारमें कोई सख्त बीमार था। फिर भी उन्होंने मुझसे भेंट की थी और यद्यपि 'हिन्द स्वराज्य' के सम्बन्धमें मेरे विचार उनसे मेल नहीं खाते थे, फिर भी उन्होंने दक्षिण आफ्रिकाकी लड़ाईमें अन्ततक पूरा-पूरा योगदान किया और हमारे सम्बन्धोंकी मधुरता अन्तिम समयतक बनी रही।

अध्याय ३३

टॉल्स्टॉय फार्म – १

इस बार इंग्लैंडसे जो शिष्टमण्डल लौटा वह कोई अच्छा समाचार लेकर नहीं लौट सका। लोग लॉर्ड एम्टहिलकी बातोंका क्या निष्कर्ष निकालेंगे इसकी चिन्ता मुझे कम ही थी। मेरे साथ अन्ततक कौन टिकेगा यह मैं जानता था। सत्याग्रहके सम्बन्धमें मेरे विचार अब अधिक परिपक्व हो गये थे। मैं अबतक उसकी व्यापकता और अलौकिकता अधिक समझ गया था। इससे मेरा चित्त शान्त था। मैंने इंग्लैंडसे लौटते वक्त जहाजमें 'हिन्द स्वराज्य' पुस्तक लिखी।[1] इसका उद्देश्य केवल सत्याग्रहकी उत्कृष्टता बताना था। यह पुस्तक मेरी श्रद्धाका मापदण्ड है। इस कारण मेरे सामने लड़नेवाले सैनिकोंकी संख्याका प्रश्न ही नहीं था।

किन्तु मुझे पैसेकी चिन्ता रहती थी। लम्बे अरसेतक लड़ाई चलानी थी और पैसा पास नहीं था, यह मेरे लिए एक बहुत ही दुःखजनक बात थी। लड़ाई पैसेके बिना चल सकती है, पैसा बहुत बार सत्यकी लड़ाईको दूषित करता है, ईश्वर सत्याग्रहीको — मुमुक्षुको — आवश्यकतासे अधिक साधन कभी नहीं देता — यह बात जितने स्पष्ट रूपमें मैं आज समझता हूँ उतने स्पष्ट रूपमें मैं तब नहीं समझता था। किन्तु मैं आस्तिक हूँ। ईश्वरने मेरा साथ उस समय भी दिया। उसने मेरा कष्ट दूर किया। यदि मुझे एक ओर दक्षिण आफ्रिकामें जहाजसे उतरते ही कौमको अपनी असफलताका समाचार सुनाना पड़ा तो दूसरी ओर ईश्वरने मुझे पैसेकी तंगीसे मुक्त कर दिया। मैं केपटाउनमें ज्यों ही जहाजसे उतरा त्यों ही मुझे इंग्लैंडसे तार मिला कि सर रतनजी जमशेदजी टाटाने पच्चीस हजार रुपये दिये हैं।[2] इतना रुपया उस समय बहुत काफी था और उससे काम चलने लगा।

१. देखिए खण्ड १०, पृष्ठ ६-६९।
२. देखिए खण्ड १०, पृष्ठ ८५, ८६ और १०३।

किन्तु उतने पैसेसे अथवा चाहे जितने पैसेसे सत्याग्रहकी, सत्यकी, आत्मशुद्धिकी, आत्मबलकी लड़ाई नहीं चल सकती। इस लड़ाईको चलानेके लिए तो चरित्रका धन चाहिए। जैसे धनी निवासीके बिना विशाल भवन भी खण्डहर लगता है वैसे ही चरित्र-हीन मनुष्य और उसकी सम्पत्तिको समझना चाहिए। सत्याग्रहियोंने देखा कि यह लड़ाई कितने लम्बे अर्सेतक चलेगी, इसका अन्दाज कोई नहीं कर सकता। कहाँ जनरल बोथा और जनरल स्मट्सकी एक अँगुल भी पीछे न हटनेकी प्रतिज्ञा और कहाँ सत्याग्रहियोंकी आमरण जूझनेकी प्रतिज्ञा। यह तो 'कीरी-कुंजर' का युद्ध था। कुंजर अपने पैरके नीचे असंख्य कीड़ियोंको कुचल डाल सकता है। सत्याग्रही अपने सत्याग्रहको कालकी सीमामें नहीं बाँध सकता। एक वर्ष लगे या अनेक, उसके लिए दोनों एक-से हैं। उसके लिए तो लड़ना ही जीतना था। लड़नेका अर्थ था जेल जाना, निर्वासित होना। इस बीचमें कुटुम्बका क्या हो? लगातार जेल जानेवाले आदमीको कोई भी नौकर नहीं रख सकता। वह जेलसे छूटनेपर क्या स्वयं खाये और क्या परिवारको खिलाये? रहे कहाँ ? उसका किराया कौन दे? जीविकाके बिना तो सत्याग्रही भी चिन्तित होता है। स्वयं भूखा रहकर और अपने कुटुम्बियोंको भूखा रखकर लड़ाईमें भाग लेनेवाले लोग संसारमें बहुत नहीं मिल सकते।

आजतक तो जेल जानेवाले लोगोंके कुटुम्बोंका भरण-पोषण, उन्हें प्रतिमास कुछ पैसा देकर किया जाता था। सभीको उनकी आवश्यकताके अनुसार पैसा दिया जाता था। कीड़ीको कन और हाथीको मन। सभीको एक बराबर तो दिया नहीं जा सकता था। पाँच बच्चोंवाले सत्याग्रहीको और जिसका कोई आश्रित न हो ऐसे ब्रह्मचारीको एक कोटिमें नहीं रखा जा सकता था। केवल ब्रह्मचारी ही भरती किये जाते, यह भी सम्भव नहीं था। तब उन्हें किस सिद्धान्तके अनुसार धन दिया जाये? बहुत करके प्रत्येक परिवारको उसपर विश्वास रखकर खर्चके लिए उतना धन दिया जाता था जितना वह कमसे-कम आवश्यक बताता। इसमें छल-कपटकी बहुत गुंजाइश थी। छली लोगोंने इससे कुछ लाभ भी उठाया था। कुछ ऐसे निश्छल हृदयके लोग भी थे जिनके रहन-सहनका स्तर विशेष प्रकारका था और जो उसके अनुसार सहायताकी आशा करते थे। मैंने देखा कि इस तरह लड़ाई लम्बे अरसे तक चलाना असम्भव है। इसमें योग्यके साथ अन्याय हो जानेका और अनधिकारीके अपने पाखण्डमें सफल होनेका भय भी था। यह कठिनाई एक ही तरहसे दूर की जा सकती थी कि सब कुटुम्ब एक जगह साथ-साथ रहें और साथ-साथ काम करें। इसमें किसीके साथ अन्याय होनेका भय नहीं था। कह सकते हैं कि इसमें पाखण्डके लिए भी गुंजाइश नहीं थी। इससे सार्वजनिक पैसेकी बचत हो सकती थी और सत्याग्रहियों-के कुटुम्बोंको नये और सादे जीवनकी तथा बहुतोंके साथ हिलमिल कर रहनेकी शिक्षा मिल सकती थी। इस तरह अनेक प्रान्तोंके और अनेक धर्मोंके हिन्दुस्तानियोंको साथ-साथ रहनेका अवसर भी मिल सकता था।

किन्तु ऐसी जगह कहाँ मिलती? शहरमें रहने जाते तो भय था कि कहीं बकरी निकालकर ऊँटको जगह देने जैसी बात न हो जाये। शायद महीनेके खर्चके बरा-

बर मकान-किराया ही देना पड़ता और शहरमें सादगीसे रहनेमें दिक्कत होती। फिर शहरमें ऐसी जगह तो मिल ही नहीं सकती थी जहाँ बहुतसे कुटुम्ब घर बैठे कोई उपयोगी धन्धा कर सकें। अतः यह बात समझमें आई कि हमें ऐसी जगह चुननी चाहिए जो शहरसे न बहुत दूर हो और न बहुत पास। ऐसी जगह हमारे पास थी फीनिक्स। वहाँ 'इंडियन ओपिनियन' छपता था, थोड़ी खेती भी की जाती थी और अन्य बहुत-सी सुविधाएँ भी मौजूद थीं। किन्तु वह जोहानिसबर्गसे ३०० मील दूर था और वहाँ रेलसे जानेमें तीस घंटे लगते थे। कुटुम्बोंको इतनी दूर लाना कठिन और खर्चीला काम होता। फिर कुटुम्ब अपना घरबार छोड़कर इतनी दूर आनेके लिए तैयार न होते। तैयार भी होते तो उनको और जेलसे छूटे हुए लोगोंको इतनी दूर भेजना लगभग अशक्य लगा।

इसलिए यह जरूरी था कि ऐसी जगह ट्रान्सवालमें ही हो और वह भी जोहानिसबर्गके पास ही। मैं श्री कैलनबैकका परिचय दे चुका हूँ। उन्होंने ११०० एकड़ जमीन खरीदी और (३० मई, १९१० को) सत्याग्रहियोंको उसके उपयोगका अधिकार मुफ्त दे दिया।[1] उस जमीनमें लगभग एक हजार फलदार पेड़ लगे थे और एक टेकरीके नीचे पाँच-सात लोगोंके रहने लायक छोटा-सा मकान भी बना था। वहाँ पानीका एक झरना और दो कुएँ भी थे। वहाँसे रेलका स्टेशन लॉली लगभग एक मील और जोहानिसबर्ग २१ मील था। इसी जमीनमें मकान बनाने और सत्याग्रहियोंके कुटुम्बोंको बसानेका निश्चय किया गया।

अध्याय ३४

टॉल्स्टॉय फार्म — २

यह जमीन कोई ११०० एकड़ थी और उसके ऊँचे भागपर एक छोटीसी पहाड़ी थी जिसपर एक छोटासा मकान था। फार्ममें काफी फलदार पेड़ थे। इनपर नारंगी, खूबानी और बड़ी किस्मके बेर बहुतायतसे लगते थे — इतने कि फसलके दिनोंमें सत्याग्रही इन्हींपर रहें तो भी बाकी बच जायें।

पानी एक छोटेसे झरनेसे मिल जाता था। वह झरना हमारे रहनेकी जगहसे लगभग ५०० गज दूर था, इसलिए पानी काँवरोंसे लानेकी जो मेहनत होती सो तो करनी ही पड़ती थी।

हमारा आग्रह था कि इस स्थानमें घरका काम और जहाँतक सम्भव हो वहाँतक खेतीका काम और मकान बनानेका काम भी नौकरोंसे न कराया जाये। इसलिए टट्टियाँ साफ करनेसे लेकर खाना पकाने तकका सब काम हमें अपने हाथोंसे ही करना था। हमें वहाँ कुटुम्ब रखने थे, किन्तु हमने यह निश्चय पहलेसे ही कर लिया था कि स्त्रियाँ और पुरुष अलग-अलग रखे जायेंगे। अतः यह तय हुआ कि दोनों-

१. देखिए खण्ड १०, पृष्ठ २९१-२।

के लिए मकान अलग-अलग और कुछ फासलेसे बनाये जायें। दस स्त्रियों और सात पुरुषोंके रहने लायक मकान तत्काल बनानेका निश्चय किया गया। हमें एक मकान श्री कैलनबैकके रहनेके लिए बनाना था और उसके साथ ही एक शालाके लिए भी। इनके अतिरिक्त बढ़ईगिरी, मोचीगिरी और ऐसे ही अन्य कामोंके लिए एक कारखाना भी बनाना था।

जो लोग इस स्थानमें रहनेके लिए आनेवाले थे, वे गुजरात, मद्रास, आन्ध्र देश और उत्तरी हिन्दुस्तानके रहनेवाले थे। धर्मके विचारसे वे हिन्दू, मुसलमान, पारसी और ईसाई थे। उनमें लगभग चालीस युवक, दो-तीन वृद्धजन, पाँच स्त्रियाँ और बीससे लेकर तीसतक बच्चे थे। बच्चोंमें चार या पाँच लड़कियाँ थीं।

स्त्रियोंमें जो ईसाई थीं उनको और कुछ दूसरी स्त्रियोंको मांस खानेकी आदत थी। श्री कैलनबैककी और मेरी राय थी कि यहाँ भोजनमें मांस न रखा जाये तो अच्छा हो। किन्तु ये प्रश्न उठते थे, जिन्हें मांस खानेमें कोई नैतिक आपत्ति नहीं है, जो इसी स्थानमें संकटके समय आ रहे हैं और जिन्हें जन्मसे उसकी आदत है उनसे एक खास अरसेके लिए भी उसे छोड़नेकी बात कैसे कही जा सकती है? यदि न कही जाये तो उसमें खर्च कितना होगा? फिर जिनको गोमांस खानेकी आदत है क्या उन्हें गोमांस भी देना चाहिए? रसोईघर कितने रखे जायें, इस सम्बन्धमें मेरा धर्म क्या है? ऐसे कुटुम्बोंको पैसा देनेका निमित्त होनेसे भी मैं मांस-भक्षण और गोमांस-भक्षणमें सहायक तो होता ही हूँ। यदि मैं यह नियम बना दूँ कि मांसाहारीको सहायता दी ही न जाये तो मुझे सत्याग्रह केवल निरामिषभोजियोंसे ही चलाना होगा। यह भी कैसे हो सकता है, क्योंकि वह लड़ाई तो सभी हिन्दुस्तानियोंकी है? इस सम्बन्धमें मुझे अपना कर्त्तव्य साफ दिखाई दिया। यदि ईसाई या मुसलमान भाई गोमांस भी माँगें तो मुझे उनके लिए वह जुटाना ही होगा। मैं उनका यहाँ आना कदापि वर्जित नहीं कर सकता।

किन्तु जहाँ प्रेम हो वहाँ ईश्वर सहायक होता ही है। मैंने अपना संकट सरल-भावसे ईसाई बहनोंके सामने रखा। मुसलमान माँ-बापने मुझे शुद्ध निरामिष भोजनालय चलानेकी अनुमति दे दी थी। मुझे इन बहनोंसे यह बात करनी बच रही थी। उनके पति अथवा पुत्र तो जेलमें थे। उनकी सहमति मुझे प्राप्त थी। उनके साथ ऐसा अवसर मुझे बहुत बार मिल चुका था। केवल बहनोंके साथ ऐसा अवसर यह पहला ही आया था। मैंने उनसे मकानोंकी असुविधाकी, पैसेकी तंगीकी और अपनी भावनाकी बात कही। किन्तु साथ ही मैंने उन्हें इस बारेमें आश्वस्त भी कर दिया कि यदि वे माँगेंगी तो मैं गोमांस भी मँगा दूँगा। इन बहनोंने प्रेमपूर्वक कहा कि वे मांस नहीं माँगेंगी। हमने भोजन बनानेका काम उनके ही हाथोंमें रखा और उनकी सहायताके लिए दो-एक पुरुष साथ दिये। इनमें एक तो मैं ही था। मेरे वहाँ रहनेसे छोटे-मोटे झगड़े दूर रह सकते थे। खाना सादासे-सादा बनानेका निश्चय किया गया। खानेका समय बाँध दिया गया। भोजनालय एक ही रखना तय किया गया। सभी लोग एक ही पंक्तिमें बैठकर भोजन करते। सबको अपने-अपने खानेके बरतन स्वयं ही माँज-धोकर

साफ करने होते। हमने सामूहिक बरतन बारी-बारीसे माँजनेका निश्चय किया। मुझे कहना चाहिए कि टॉल्स्टॉय फार्म लम्बे अर्सेतक चलनेके बावजूद इन बहनों या भाइयोंमें से किसीने मांसकी माँग कभी नहीं की। शराब, तम्बाकू और अन्य नशीली चीजोंका निषेध तो वहाँ था ही।[1]

मैं लिख चुका हूँ कि मकान बनानेमें भी हमारा आग्रह जितना काम अपने हाथोंसे किया जा सके उतना स्वयं करनेका था। वास्तुकार श्री कैलनबैक थे ही। उन्होंने एक गोरे राजको बुला दिया। एग गुजराती खाती नारायणदास दमानियाने हमें अपनी सेवाएँ बिना कुछ लिये दीं और कुछ दूसरे लोग कम मजदूरी पर बुला दिये। केवल शरीर-श्रमका काम हमने अपने हाथोंसे किया। हममेंसे जो लोग शरीरसे फुर्तीले थे उन्होंने बेहद काम किया। खातीगीरीका आधा काम विहारी नामके एक भले सत्या-ग्रहीने अपने हाथमें लिया। सफाई करने, शहर जाने और वहाँसे सब सामान लाने आदिका काम सिंह जैसे साहसी थम्बी नायडूने अपने जिम्मे रखा।

इस टुकड़ीमें एक भाई प्रागजी खण्डूभाई देसाई थे। उन्होंने अपने जीवनमें जाड़ा और गरमी कभी नहीं सहे थे। किन्तु वहाँ तो कड़ी ठंड और गरमी पड़ती थी और तेज वर्षा होती थी। हमने पहले तम्बुओंमें रहना शुरू किया था। जबतक मकान न बने तबतक हम उन्हींमें सोये। मकान कोई दो महीनेमें बने होंगे। चूँकि वे चद्दरोंके बनाये जाते थे इसलिए उनको बनानेमें बहुत वक्त नहीं लगता था। लकड़ियाँ जिस आकार की जरूरत होतीं, तैयार चिरी मिल सकती थीं, अतः केवल उनके ठीक नापके टुकड़े काटने रह जाते थे। खिड़कियाँ और किवाड़ भी कम बनाने थे। इसलिए कम समयमें इतने ज्यादा मकान तैयार हो सके। किन्तु शरीर-श्रमके इन कामोंमें भाई प्रागजीकी कड़ी कसौटी हुई। जेलके कामसे फार्मका काम बड़ा कड़ा ही था। इसलिए वे एक दिन तो थकान और गरमीसे बेहोश हो गये; किन्तु वे ऐसे न थे जो जल्दी ही हार बैठते। उन्होंने यहाँ अपने शरीरको श्रमका पूरी तरह अभ्यस्त बना लिया और इतनी शक्ति प्राप्त कर ली कि अन्तमें तो वे सबके बराबर ही मेहनत कर लेते थे।

ऐसे ही एक दूसरे व्यक्ति जोसेफ रायप्पन थे। बैरिस्टर तो थे किन्तु उनमें बैरिस्टर होनेका गर्व नहीं था। वे बहुत कड़ी मेहनत नहीं कर सकते थे। रेलके डिब्बेमें से सामानके गट्ठर उतारना और उन्हें गाड़ीमें लादना उनके लिए कड़ा काम था, किन्तु उन्होंने यथाशक्ति वह भी किया।

टॉल्स्टॉय फार्ममें कमजोर लोग मजबूत बन गये और शरीर-श्रमसे सबको लाभ हुआ।

सभीको किसी न किसी कामसे जोहानिसबर्ग जाना होता। बच्चोंको घूमनेके लिए वहाँ जानेकी इच्छा होती। मुझे भी कार्यवश जाना होता। हमने निश्चय किया कि जिन्हें सामाजिक कामसे जानेकी जरूरत हो उन्हींको रेलसे जानेकी अनुमति दी जाये। कोई भी तीसरे दर्जेके सिवा अन्य किसी दर्जेमें नहीं जा सकता था। जो घूमनेके लिए जाये वह पैदल जाये और अपना नाश्ता साथ बाँधकर ले जाये। कोई

१. *आत्मकथा*, भाग ४, अध्याय ३१ भी देखिए।

भी शहरमें जाकर खानेके लिए पैसा खर्च न करे। यदि हम ऐसे कड़े नियम न रखते तो जिस पैसेको बचानेके लिए हमने जंगलमें रहना पसन्द किया था वह पैसा रेल-भाड़ेमें और बाजारके नाश्तेमें ही उड़ जाता। घरका नाश्ता भी सादा ही होता था। अर्थात् घरमें पिसे हुए बिना छने आटेकी घरकी बनी रोटी, उसपर घरमें बना मूँगफलीका मक्खन और घरमें बना नारंगीके छिलकेका मुरब्बा। आटा पीसनेके लिए लोहेकी बनी हाथ-चक्की ले ली थी। मूँगफलीको भूनकर पीसनेसे मक्खन बन जाता था और वह दूधके बने मक्खनसे चार गुना सस्ता पड़ता था। नारंगियाँ तो फार्ममें ही बहुत होती थीं। हम फार्ममें गायका दूध तो शायद ही कभी लेते थे और प्रायः डिब्बेका दूध काममें लाते थे।

अब हम फिर यात्राकी बातपर आते हैं। जिसे जोहानिसबर्ग जानेका चाव होता वह सप्ताहमें एक या दो बार पैदल जाता और उसी दिन वापस आ जाता। मैं पहले बता चुका हूँ कि यह यात्रा २१ मीलकी थी। पैदल जाने-आनेके इस एक नियमसे ही सैकड़ों रुपयोंकी बचत हुई और पैदल आने जानेवालोंका भी बहुत लाभ हुआ। कुछ लोगोंको पैदल चलनेका नया अभ्यास हो गया। नियम यह था कि इस तरह जानेवाला रातमें दो बजे जग जाये और ढाई बजे रवाना हो जाये। सभी लोग छः से लेकर सात घंटेके भीतर जोहानिसबर्ग पहुँच सकते थे। तेजसे-तेज चलनेवालोंको इसमें चार घंटे अठारह मिनिट लगते थे।

पाठक यह न मानें कि ये नियम आश्रमके सदस्योंके लिए भार-रूप थे। सभी उनका पालन प्रेमपूर्वक करते थे। मैं जबर्दस्ती तो वहाँ एक भी आदमीको नहीं रख सकता था। युवक आश्रमका सब काम हँसते-हँसते और खेलते-कूदते करते। शहर भेजे जाते तो वह काम भी इसी तरह करते। शरीर-श्रमका काम करते हुए उनको ऊधम मचानेसे रोकना मुश्किल होता। हमने यह नियम रखा था कि उन सबसे उतना ही काम लिया जाये जितना उन्हें खुश रखकर लिया जा सके। मुझे ऐसा नहीं लगा कि इससे काममें कुछ भी कमी हुई हो।

मैलेकी व्यवस्थाकी बात समझने योग्य है। फार्ममें इतने लोग रहते थे फिर भी कहीं कूड़ा-करकट, गन्दगी या जूठन दिखाई नहीं देती थी। जमीनमें खाइयाँ खोद रखी थीं; सारा कूड़ा उन्हींमें दबाया जाता था। कोई भी रास्तेमें पानी नहीं फैलाता था। सारा पानी एक बरतनमें इकट्ठा कर लिया जाता और पेड़ोंमें दे दिया जाता था। जूठनकी और साग-सब्जियोंके कतरेकी खाद बन जाती थी। रहनेके मकानोंके पास ही जमीनके चौरस टुकड़ेपर एक डेढ़ फुट गहरा खड्डा खोद लिया गया था। सब मैला उसीमें डाला जाता था और उसके ऊपर खुदी मिट्टी फैला दी जाती थी जिससे तनिक भी दुर्गन्ध न उठे। इससे उसपर मक्खियाँ नहीं भिन-भिनाती थीं और नीचे मैला दबा है, किसीको इसका खयाल भी नहीं होता था। साथ ही उससे फार्मके लिए अमूल्य खाद भी मिल जाती थी। यदि हम मैलेका सदुपयोग करें तो लाखों रुपयेकी खाद बन जाये और हम बहुत-से रोगोंसे मुक्त रहें। हम अपनी मल-मूत्र विसर्जन सम्बन्धी बुरी आदतोंके कारण पवित्र नदियोंके किनारोंको गन्दा कर देते हैं, मक्खियाँ पैदा करते

हैं और इसका नतीजा यह होता है कि हम अपनी लापरवाहीसे जिस मैलेको छोड़ देते हैं उसीपर मक्खियाँ बैठकर हमारे नहाये-धोये शरीरोंपर स्पर्श करती हैं। एक छोटी-सी कुदाली हमें बहुत-सी गन्दगीसे बचा सकती है। चलनेके रास्तेमें मैला डालना, थूकना और नाक साफ करना ईश्वर और मनुष्यके प्रति पाप है। इसमें दयाका अभाव होता है। यदि कोई मनुष्य जंगलमें रहे और वहाँ भी अपने मैलेको न ढके तो वह भी दण्डनीय है।

हमारा काम सत्याग्रही कुटुम्बोंको उद्योगरत रखना, उनका खर्च कम करना और अन्तमें उन्हें स्वावलम्बी बनाना था। यदि हम ऐसा कर पाते तो ट्रान्सवाल सरकारसे चाहे जबतक लड़ सकते थे। जूतोंका खर्च तो था ही। बन्द जूते गर्म जलवायुमें नुकसान ही पहुँचाते हैं, क्योंकि उनसे सारा पसीना पैरोंमें समा जाता है और उन्हें कमजोर बना देता है। हमारे देशकी तरह ट्रान्सवालकी जलवायुमें भी मोजोंकी जरूरत तो थी ही नहीं। हाँ, पैरोंको काँटों और कंकड़-पत्थरों आदिसे बचानेके लिए किसी चीजकी जरूरत है, यह हम जरूर मानते थे। इसलिए हमने 'कंटक-रखनी' अथवा चप्पल बनानेका धन्धा सीखनेका निश्चय किया। दक्षिण आफ्रिकामें पाइन टाउनके पास मेरियन हिलमें ट्रेपिस्ट कहे जानेवाले रोमन कैथोलिक पादरियोंका मठ है।[1] उसमें ऐसे उद्योग चलते हैं। ये पादरी जर्मन हैं। श्री कैलनबैक उस मठमें जाकर चप्पलें बनाना सीख आये। फिर उन्होंने यह काम मुझे सिखाया और मैंने दूसरे साथियोंको। इस तरह कुछ युवक चप्पलें बनाना सीख गये और हम इन चप्पलोंको मित्रजनोंमें बेचने भी लगे। मुझे यह कहनेकी जरूरत न होनी चाहिए कि इस कलामें मेरे कुछ शिष्य मुझसे भी आगे बढ़ गये। हमने दूसरा काम खातिगीरीका शुरू किया था। चूँकि हम एक गाँव-सा बनाकर रहते थे, अतः उसमें हमें पट्टेसे लेकर पेटीतक छोटी-बड़ी बहुत-सी चीजोंकी जरूरत होती थी। उन्हें हम अपने हाथसे ही बनाते थे। ऊपर बताये गये परोपकारी मिस्त्रियोंने कुछ महीनोंतक हमें मदद दी ही थी। श्री कैलनबैकने इस कार्यकी व्यवस्था अपने हाथमें रखी थी। उनकी सुघड़ता और सावधानीका अनुभव मुझे प्रतिक्षण होता था।

जवानों, लड़कों और लड़कियोंके लिए शालाकी[2] आवश्यकता तो थी ही। हमें यह काम सबसे कठिन लगा और वह अन्ततक पूर्णताको प्राप्त नहीं हुआ। शिक्षणका भार मुख्यतः श्री कैलनबैकके और मेरे ऊपर था।[3] शाला दोपहरको ही चलाई जा सकती थी। उस समय हम दोनों सुबहकी मेहनतसे बहुत थके होते थे। विद्यार्थी भी थके होते, इसलिए बहुधा वे नींदमें झोंके खाते और हम भी। हम अपनी आँखोंपर पानी छिड़कर और बच्चोंके साथ खेल-कूदकर आलस भगाते; किन्तु हमारे ये प्रयत्न कई बार व्यर्थ जाते। शरीरको जितना आराम चाहिए उतना वह जरूर लेता है। मैंने यह तो केवल एक छोटेसे-छोटा विघ्न बताया, क्योंकि इस तरह

१. देखिए खण्ड १, पृष्ठ १८२-९।

२. इसकी स्थापना जून १९१० में की गई। देखिए खण्ड १०, पृष्ठ ३००-१।

३. खण्ड ११, पृष्ठ २४७ तथा **आत्मकथा**, भाग ४, अध्याय ३२ और ३३ भी देखिए।

नींदमें झोंके खानेपर भी वर्ग तो चलते ही थे। किन्तु तमिल, तेलुगु और गुजराती इन तीन भाषाओंको बोलनेवाले छात्रोंको हम क्या सिखाते और कैसे सिखाते? मुझे उन्हें मातृभाषाके माध्यमसे शिक्षा देनेका लोभ तो था ही। मैं थोड़ी-बहुत तमिल जानता था, किन्तु मुझे तेलुगुका तो एक अक्षर भी नहीं आता था। इस स्थितिमें एक शिक्षक क्या कर सकता था? हमारे यहाँ जो युवक थे मैंने उनमें से कुछका उपयोग शिक्षकके रूपमें किया। किन्तु मेरा यह प्रयोग सफल नहीं माना जा सकता। भाई प्रागजीका उपयोग तो किया ही जाता था। कुछ युवक बहुत उत्पाती और आलसी थे। उनकी अपनी किताबोंसे सदा लड़ाई रहती। ऐसे विद्यार्थी शिक्षकको क्या गिनते? फिर मेरा काम अनियमित था। जब जरूरत होती, मुझे जोहानिसबर्ग जाना ही पड़ता। यही बात कैलनबैकके बारेमें भी थी।

दूसरी कठिनाई धर्म-शिक्षाकी थी। मुसलमानोंको 'कुरान' पढ़ाई जाये, मुझे यह लोभ था ही। पारसियोंको 'जेन्द अवेस्ता' पढ़ानेकी इच्छा होती थी। एक खोजा बालक भी था। उसकी खोजापन्थकी एक छोटी-सी विशेष पुस्तक थी[1]। उसके पिताने अपने बच्चेको यह पुस्तक पढ़ानेका भार मुझपर डाला था। मैंने मुसलमानों और पारसियोंकी धर्म-पुस्तकें इकट्ठी कीं। मुझे हिन्दू धर्मके जो मूल तत्त्व जान पड़े मैंने वे लेखबद्ध किये —— अपने बच्चोंके लिए किये या फार्मके बच्चोंके लिए, यह मैं इस समय भूल गया हूँ। यदि वह चीज मेरे पास होती तो मैं अपनी प्रगति या गतिका माप बतानेके लिए उसे यहाँ देता। किन्तु मैंने अपने जीवनमें ऐसी बहुत-सी चीजें फेंक अथवा जला दी हैं। ज्यों-ज्यों मुझे यह अनुभव होता गया कि ऐसी चीजें इकट्ठी करनेकी जरूरत कम ही है और ज्यों-ज्यों मेरा कामकाज बढ़ता गया त्यों-त्यों मैं ऐसी चीजोंको नष्ट करता गया। मुझे इसका पश्चात्ताप भी नहीं है। मेरे लिए ऐसी चीजोंका इकट्ठा करना बोझीला और बहुत खर्चीला होता। मुझे उनको सम्भालकर रखनेके साधन जुटाने पड़ते और यह मेरी अपरिग्रही आत्माको असह्य होता।

किन्तु मेरा यह शिक्षाका प्रयोग व्यर्थ नहीं गया। इससे बच्चोंमें कभी असहिष्णुता नहीं आई। उन्होंने एक-दूसरेके धर्म और रीति-रिवाजोंके प्रति उदार होना सीखा। वे सब आपसमें सगे भाइयोंकी तरह रहना सीखे। उन्होंने एक-दूसरेकी सेवा करना सीखा और सभ्यता सीखी। वे उद्योगी बने और आज भी उनमें से जिन बालकोंकी प्रवृत्तिकी मुझे कुछ भी जानकारी है उससे मैं जानता हूँ कि उन्होंने टॉल्स्टॉय फार्ममें जो-कुछ अर्जित किया वह निरर्थक नहीं गया। मेरा यह प्रयोग अधूरा होनेपर भी विचारपूर्ण और धर्ममय प्रयोग था और इसके संस्मरण टॉल्स्टॉय फार्मके मधुरतम संस्मरणोंमें से हैं।

किन्तु इन संस्मरणोंको बतानेके लिए तो मुझे एक नया प्रकरण लिखना आवश्यक है।

१. देखिए **आत्मकथा**, भाग ४, अध्याय ३४।

अध्याय ३५

टॉल्स्टॉय फार्म — ३

मैं इस प्रकरणमें टॉल्स्टॉय फार्मके कुछ संस्मरण दूंगा; और इसलिए वे असम्बद्ध लगेंगे। पाठक मुझे इसके लिए क्षमा करें।

मुझे पढ़ानेके लिए जैसा छात्र वर्ग मिला था वैसा किसी दूसरे शिक्षकको शायद ही कभी मिला हो। इस वर्गमें सात वर्षके लड़कों और लड़कियोंसे लेकर २० वर्षके लड़कों और १२–१३ वर्षकी लड़कियोंतक का समावेश था। कुछ लड़के तो ऐसे थे कि जो जंगली कहे जा सकते थे। वे ऊधम भी बहुत करते थे।

मैं इस समुदायको क्या सिखाता? वह उन सबके स्वभावके अनुकूल कैसे होता? फिर उन सबसे किस भाषामें बातचीत करता? तमिल और तेलुगु बच्चे या तो अपनी मातृभाषा समझते थे या अंग्रेजी। वे थोड़ी डच भाषा भी जानते थे। मुझे तो अंग्रेजी-से ही काम लेना होता था। मैंने इनके दो विभाग कर दिये थे, गुजरातियोंसे गुजरातीमें बोलता और दूसरोंसे अंग्रेजीमें। शिक्षण-क्रम यह रखा था कि मुख्यतः कोई मनोरंजक कथा-वार्ता मौखिक या पढ़कर सुनाता। उद्देश्य इतना ही था कि वे साथ-साथ बैठना सीख जायें और उनमें मित्र-भाव या सेवा-भाव आ जाये। मैं उन्हें इतिहास, भूगोलका सामान्य ज्ञान देता, कुछ लिखनेका अभ्यास कराता और कुछको अंकगणित भी सिखाता। मैं इस तरह गाड़ी चलाता था। प्रार्थनामें गानेके लिए कुछ भजन सिखाता था; मैं उसमें सम्मिलित होनेके लिए तमिल बच्चोंको भी फुसलाता।

लड़के और लड़कियाँ स्वतन्त्रतासे साथ-साथ उठते बैठते थे। टॉल्स्टॉय फार्ममें मेरा यह सहशिक्षाका प्रयोग अधिकसे-अधिक भयरहित था। मैं बच्चोंको जितनी स्वत-न्त्रता वहाँ दे सका या सिखा सका उन्हें उतनी स्वतन्त्रता देने या सिखानेका साहस मुझे आज नहीं होता। मुझे प्रायः ऐसा लगता है कि उस समय मेरा मन आजकी अपेक्षा अधिक निर्दोष था। इसका कारण मेरा अज्ञान हो सकता है। इसके बाद तो मुझे धोखा हुआ है और कटु अनुभव हुए हैं। जिन्हें मैं निर्दोष समझता था वे दोषयुक्त निकले हैं। गहराईसे देखनेपर मुझे अपने भीतर भी विकार दिखाई दिये हैं। इससे मेरा मन भीरु हो गया है।

मुझे अपने इस प्रयोगपर कोई पश्चात्ताप नहीं है। मेरी आत्मा यह साक्षी देती है कि इस प्रयोगके कारण कोई भी खराबी नहीं हुई। किन्तु जैसे दूधका जला छाछ-को भी फूँक-फूँककर पीता है, ऐसा ही मेरे सम्बन्धमें भी माना जा सकता है।

मनुष्य श्रद्धा अथवा साहस किसी दूसरेसे उधार नहीं ले सकता। 'संशयात्मा विनश्यति'। टॉल्स्टॉय फार्ममें मेरी श्रद्धा और साहस पराकाष्ठाको पहुँच गये थे। मैं ईश्वरसे प्रार्थना कर रहा हूँ कि वह मुझमें ऐसी श्रद्धा और साहस फिर दे। किन्तु वह सुने तब न! उसके सामने तो मेरे जैसे असंख्य भिखारी हैं। मुझे इतना विश्वास अवश्य है कि उसके सम्मुख जैसे भिखारी असंख्य हैं वैसे ही उसके कान भी असंख्य हैं। अतः उसपर मेरी पूर्ण श्रद्धा है। मैं यह भी जानता हूँ कि जब मैं इस योग्य हो जाऊँगा तब वह मेरी प्रार्थना सुनेगा।

मेरा प्रयोग यह था। मैं लुच्चे माने जानेवाले लड़कोंको और निर्दोष सयानी लड़कियोंको नहानेके लिए साथ-साथ भेजता था। मैंने लड़कों और लड़कियोंको संयम धर्म भली-भाँति समझा दिया था। वे सभी मेरे सत्याग्रहसे परिचित थे। उन सबके प्रति मेरा प्रेम एक माताके बराबर ही था, यह मैं तो जानता ही था, परन्तु स्वयं उन वच्चोंका विश्वास भी यही था। पाठकोंको याद होगा कि वहाँ पानीका एक झरना था। वह भोजनालयसे कुछ दूरीपर था। उस जगह उनको मिलने देना और उनसे निर्दोष रहनेकी आशा रखना अनुचित था क्या? जैसे माँकी आँख अपनी बेटीपर रहती है वैसे ही मेरी आँख भी इन लड़कियोंपर रहती थी। नहानेका एक वक्त तय था। उसके लिए वक्तपर सब लड़के और लड़कियाँ साथ-साथ जाते। समुदायमें जो एक प्रकारकी सुरक्षितता होती है वह वहाँ भी थी। उन्हें कोई एकान्त तो मिलता न था। फिर प्रायः उसी समय वहाँ मैं भी पहुँच जाता।

सब लोग एक खुले बरामदेमें सोते थे। लड़के और लड़कियाँ मेरे आसपास लेटे होते। उनके बिस्तरोंमें मुश्किलसे तीन फुटका अन्तर होता। हाँ, बिस्तरोंके क्रममें सावधानी अवश्य रखी जाती, किन्तु दूषित मनके लिए यह सावधानी क्या कर सकती थी? मैं अब देखता हूँ कि इन लड़के और लड़कियोंके सम्बन्धमें तो ईश्वरने ही लाज रखी थी। लड़के और लड़कियाँ इस तरह निर्दोष भावसे मिलजुल सकते हैं, इस विश्वासको लेकर मैंने यह प्रयोग किया था और माँ-बापने मुझपर असीम विश्वास रखकर मुझे यह प्रयोग करने दिया था।

एक दिन इन लड़कियोंने अथवा किसी लड़केने मुझे बताया कि एक युवकने दो लड़कियोंसे मजाक किया है। मैं इससे काँप उठा। मैंने पूछताछ की। बात सच्ची थी। मैंने युवकोंको समझाया किन्तु इतना काफी न था। मैं चाहता था कि दोनों लड़कियोंके शरीरपर कोई ऐसा चिह्न हो जिससे प्रत्येक युवक यह समझ ले और जान ले कि इन लड़कियोंपर कुदृष्टि की ही नहीं जा सकती और लड़कियाँ भी समझ लें कि कोई उनकी पवित्रतापर हाथ नहीं लगा सकता। विकारी रावण सीताको छू भी नहीं सका था। राम तो दूर थे। मैंने रात-भर जगकर सोचा, "इन लड़कियोंको क्या चिह्न दूँ जिससे ये अपने आपको सुरक्षित समझें। दूसरे उन्हें देखकर निर्विकार रहें।" मैंने सुबह उठकर लड़कियोंसे प्रार्थना की। उन्हें सहज भावसे समझाकर उनसे कहा कि वे मुझे अपने सुन्दर लम्बे बाल काटनेकी अनुमति दे दें। हम फार्ममें दाढ़ी बनाने और बाल काटनेका काम आपसमें कर लेते थे। इसलिए मेरे पास कैंची रहती थी। मेरी बात पहले उन लड़कियोंकी समझमें नहीं आई। मैंने बड़ी स्त्रियोंको सब कुछ समझा दिया था। उन्हें मेरी बात सहन तो नहीं हुई; किन्तु उन्हें मेरा उद्देश्य पसन्द आया। अतः उनकी सहायता मुझे प्राप्त थी। दोनों लड़कियोंका रूप भव्य था। शोक! उनमें से एक आज मौजूद नहीं है। वह तेजस्विनी थी। दूसरी लड़की अभी जीवित है और अपना घरबार सँभालती है। अन्तमें बात दोनोंकी समझमें आ गई। मैं जिस हाथसे इस प्रसंगको लिख रहा हूँ उसी हाथसे मैंने उन लड़कियोंके बालोंपर कैंची चला दी। मैंने उसके बाद वर्गमें सबको इस कार्यका विश्लेषण करके

समझाया। इसका परिणाम अच्छा हुआ। उसके बाद मैंने कभी मजाक किये जानेकी बात नहीं सुनी। इससे इन लड़कियोंकी हानि बिलकुल नहीं हुई; किन्तु उनको लाभ कितना हुआ, यह ईश्वर जाने। मुझे आशा है कि युवकोंको यह घटना आज भी याद होगी और वे अपनी दृष्टिको शुद्ध रखते होंगे।

मैं ये प्रयोग अनुकरणके लिए नहीं लिख रहा हूँ। यदि कोई भी शिक्षक ऐसे प्रयोगोंका अनुकरण करेगा तो बहुत बड़ी जोखिम मोल लेगा। मैंने इस प्रयोगका उल्लेख यह बतानेके लिए किया है कि मनुष्य किसी स्थिति-विशेषमें किस हदतक जा सकता है और सत्याग्रहकी लड़ाई कितनी शुद्ध थी। उसकी शुद्धिमें ही उसकी विजयका मूल था। यह प्रयोग करनेके लिए यह आवश्यक है कि शिक्षक विद्यार्थियोंका माँ और बाप बन जाये। वह ऐसा प्रयोग अपना सिर हथेलीपर रखकर ही कर सकता है। फिर उसके पीछे कठिन तपस्या भी होनी चाहिए।

इस कार्यका प्रभाव फार्म निवासियोंके तमाम रहन-सहन और व्यवहारपर पड़े बिना न रहा, कमसे-कम खर्चमें गुजारा करना हमारा उद्देश्य था, इसलिए हमने अपनी पोशाकमें भी फेरफार किया। दक्षिण आफ्रिकाके शहरोंमें हमारा पुरुषवर्ग सामान्यतः यूरोपीय ढंगकी पोशाक ही पहनता था, सत्याग्रहियोंकी पोशाक भी वैसी ही थी। फार्ममें इतने कपड़ोंकी जरूरत नहीं थी। हम सब मजदूर बन गये थे, इसलिए हमने पोशाक भी मजदूरोंकी अख्तियार की, किन्तु वह थी यूरोपीय ढंगकी अर्थात् उसमें मजदूरोंकी जैसी पतलून-कमीज होती। हमने इसमें जेलका अनुकरण किया था। सभी लोग मोटे नीले कपड़ेकी बनी सस्ती पतलूनें और कमीजें काममें लेते। स्त्रियोंमें से ज्यादातर सिलाईका काम बहुत अच्छा कर सकती थीं, अतः उन्होंने सिलाईका पूरा काम अपने हाथमें ले लिया।

खानेमें चावल, दाल, शाक और रोटी होती और कभी-कभी खीर बनाई जाती। यह खानेका सामान्य नियम था। यह सब चीजें एक ही बर्तनमें परोस दी जाती थीं। बरतन थालीकी जगह जेलके तसले-जैसा रखा गया था और खानेके लिए लकड़ीके चम्मच हाथसे बना लिये थे। खाना इस तरह तीन वक्त दिया जाता, सुबह ६ बजे रोटी और गेहूँकी काफी, ११ बजे दाल, भात और साग और शामको ५॥ बजे गेहूँका दलिया और दूध अथवा रोटी और गेहूँकी काफी।[1] रातके ९ बजे सबको सो जाना होता था। खानेके बाद ७॥ बजे प्रार्थनाकी जाती। प्रार्थनामें भजन गाये जाते और कभी 'रामायण' पढ़ी जाती, कभी कोई इस्लामी धर्मपुस्तक। भजन अंग्रेजी, हिन्दी और गुजरातीके होते। कभी किसी एक ही भाषाके भजन गाये जाते और कभी तीनों भाषाओंके।

फार्ममें बहुतसे सदस्य एकादशीका व्रत रखते थे। वहाँ भाई पी० के० कोतवाल आ गये थे। उन्हें उपवास आदिकी समुचित विधि आती थी। उनका अनुकरण करके बहुतोंने चातुर्मास किया। उन्हीं दिनोंमें रोजे भी पड़ते थे। हमारे साथ मुसलमान युवक भी थे। हमें लगा कि उन्हें रोजे रखनेके लिए प्रेरित करना हमारा धर्म

१. देखिए खण्ड ११, पृष्ठ ४८०।

है। हमने उनके लिए दिन छुपे बाद और दिन निकलनेसे पहले खानेका इन्तजाम कर दिया। हम उनके लिए रातको खीर आदि भी पकाते थे। खानेमें मांस तो होता ही न था। किसीने मांस माँगा भी न था। हम उनकी भावनाका सम्मान करनेके लिए एकाहार और प्रदोष करते। हम सूर्यास्तसे पहले खाना खा लेते। यह हमारा सामान्य नियम था। मुसलमान लड़के थोड़े ही थे, इसलिए दूसरे लोग सूर्य छुपनेसे पहले खाना खाकर तैयार हो जाते, बस इतना ही अन्तर रहता था। मुसलमान युवकोंने भी रोजे रखते हुए इतना सौजन्य दिखाया था कि उन्होंने किसीको भी विशेष कष्ट नहीं होने दिया। किन्तु इस तरह गैर-मुस्लिम लड़कोंने खानेमें संयम रखकर उनका साथ दिया इसका प्रभाव उन सभीपर बहुत अच्छा हुआ। मुझे स्मरण नहीं आता कि हिन्दू और मुसलमान लड़कोंमें कभी धर्मके कारण झगड़ा या मतभेद हुआ हो प्रत्युत, मेरा अनुभव तो इससे उलटा ही हुआ और वह यह कि सब अपने-अपने धर्ममें दृढ़ रहकर भी दूसरोंके धर्मका पूरा खयाल रखते और एक-दूसरेको अपने-अपने धर्मके आचरणमें सहायता देते।[1]

शहरसे इतनी दूर रहनेपर भी बीमारी होनेपर उसके इलाजकी जो सामान्य व्यवस्था रखी जाती है वह बिलकुल नहीं रखी गई थी। उस समय मेरी जैसी श्रद्धा लड़कों और लड़कियोंकी निर्दोषताके सम्बन्धमें थी वैसी ही श्रद्धा बीमारीमें केवल प्राकृतिक चिकित्सा करनेके सम्बन्धमें भी थी। मैं सोचता था कि सादे जीवनमें बीमारी हो ही कैसे सकती है, किन्तु यदि हो तो उसका इलाज किया जा सकता है। मेरी आरोग्य-सम्बन्धी पुस्तक[2] मेरे प्रयोगोंकी और उन दिनोंकी मेरी श्रद्धाकी स्मृति-पंजिका है। मैं गर्व करता था कि मुझे तो बीमारी हो ही नहीं सकती। मैं मानता था कि केवल पानी, मिट्टीके प्रयोग, उपवास और भोजनमें परिवर्तन करके हर प्रकारके रोग दूर किये जा सकते हैं। हमने फार्ममें किसी भी बीमारीमें दवाका या डाक्टरका उपयोग नहीं किया था। उत्तर हिन्दुस्तानके एक सत्तर सालके बूढ़ेको दमेकी बीमारी और खाँसी थी। उसकी बीमारी भी खानेमें फेरफार और पानीके प्रयोग करनेसे दूर हो गई थी। किन्तु मैं अब ऐसे प्रयोग करनेका साहस खो बैठा हूँ और मैं मानता हूँ कि दो बार स्वयं बीमार होनेके बाद मैंने अपना यह अधिकार भी खो दिया है।

जब यह फार्म चलता था तभी स्वर्गीय गोखले दक्षिण आफ्रिकामें आये थे।[3] उनकी यात्राका वर्णन करनेके लिए तो एक अलग प्रकरण लिखना आवश्यक है; किन्तु उसका एक कड़वा-मीठा संस्मरण है; उसे मैं यहाँ दे दूँ। हमारा रहन-सहन कैसा था यह तो पाठकोंको मालूम हो ही गया है। फार्ममें पलंग-जैसी कोई चीज नहीं थी, किन्तु हमने गोखलेजीके लिए एक खाट कहींसे माँग ली थी। हमारे यहाँ ऐसा कोई कमरा न था जिसमें उन्हें बिलकुल एकान्त मिल सकता। बैठनेके लिए

१. देखिए **आत्मकथा,** भाग ४, अध्याय ३१।

२. यह "आरोग्यके सम्बन्धमें सामान्य ज्ञान" शीर्षकसे लेखमालाके रूपमें **इंडियन ओपिनियन**में प्रकाशित हुई थी। देखिए खण्ड ११।

३. अक्तूबर १९१२ में।

शालाकी बैंचें थीं। इन स्थितियोंमें भी कमजोर शरीरके गोखलेजीको हम फार्म पर न लाते, यह कैसे हो सकता था? उसी तरह वे भी फार्मको देखे बिना कैसे रह सकते थे? मैंने अपने मनमें सोचा कि उनका शरीर एक रातका कष्ट-सहन करने योग्य होगा और वे स्टेशनसे फार्मतक लगभग डेढ़ मील पैदल आ सकेंगे। मैंने उनसे पूछ भी लिया था और उन्होंने सरलतावश बिना विचारे मुझपर विश्वास रखकर वह सब व्यवस्था स्वीकार भी कर ली थी। संयोगसे उसी दिन पानी भी बरस गया। मेरी व्यवस्थामें भी तत्काल कोई फेरफार नहीं किया जा सकता था। इस तरह मैंने उस दिन अपने अज्ञानमय प्रेमके कारण उन्हें जो कष्ट दिया उसे मैं कभी नहीं भूला। उनकी प्रकृति इतना बड़ा परिवर्तन सहन नहीं कर सकती थी; अतः उन्हें सर्दी लग गई। हम उन्हें खाना खानेके लिए रसोईघरमें नहीं ले जा सकते थे। हमने उनको श्री कैलनबैकके कमरेमें ठहराया था। वहाँ खाना भेजते तो वह ठण्डा हो ही जाता। उनके लिए मैं विशेष रसा बनाता और भाई कोतवाल विशेष रोटियाँ; किन्तु उनको गरम कैसे रखा जा सकता था? खैर, किसी तरह हमने उन्हें निबटाया। उन्होंने मुझे कहा तो कुछ भी नहीं, किन्तु मुझे उनके चेहरेसे सब मालूम हो गया और मैं अपनी मूर्खता भी समझ गया। जब उन्हें यह मालूम हुआ कि हम सब जमीनपर ही सोते हैं तब उन्होंने अपने लिए बिछाई गई खाट उठवा दी और अपना बिस्तर भी जमीनपर ही करा लिया। मैंने यह रात पश्चात्ताप करते हुए काटी। गोखलेकी एक टेव थी जिसे मैं कुटेव कहता हूँ। वे सेवाका काम नौकरसे ही लेते थे। वे ऐसे सफरमें नौकर साथ नहीं रखते थे। श्री कैलनबैकने और मैंने उनसे बहुत प्रार्थना की, हमें अपने पैर दबाने दीजिये; किन्तु वे टससे-मस नहीं हुए और हमें अपने पैर छूनेतक नहीं दिये। उन्होंने कुछ खीजते हुए और कुछ हँसते हुए कहा: "आप सब यही समझते जान पड़ते हैं कि कष्ट और असुविधाएँ सहनेके लिए तो एक आप ही जन्मे हैं और हमारे जैसे लोग तो आपसे सेवा चाकरी करानेके लिए ही पैदा हुए हैं। आप अपनी अतिका दण्ड आज पूरी तरह भोगें। मैं तो आपको अपना स्पर्श भी नहीं करने दूँगा। आप सब नित्यकर्म करनेके लिए दूर जायेंगे और मेरे शौच या पेशाब जानेके लिए कमोड रखेंगे, यह क्यों? मुझे कितना ही कष्ट हो मैं उसे सह लूँगा, किन्तु आपका गर्व दूर करूँगा।" उनके ये शब्द तो वज्र-जैसे थे। इनसे कैलनबैक और मैं खिन्न हुए, किन्तु हमारे लिए तसल्लीकी बात इतनी ही थी कि उनके मुखपर हँसी थी। अर्जुनने कृष्णको अनजाने बहुत दुःख दिये होंगे, किन्तु क्या कृष्णने उन्हें याद रखा? गोखलेने तो हमारा सेवाभाव ही याद रखा, हमें सेवा तो करने ही नहीं दी। उन्होंने मोम्बासासे जो प्रेम-भरा पत्र भेजा था वह मेरे हृदयमें गहरा अंकित हो गया। उन्होंने कष्ट सहा, किन्तु हम जो सेवा कर सकते थे वह सेवा हमें अन्ततक नहीं करने दी। खाना आदि तो हमारे हाथसे न लेते तो करते क्या?

दूसरे दिन प्रातः उन्होंने आराम न स्वयं किया और न हमें करने दिया। हम उनके भाषणोंको पुस्तक रूपमें छाप रहे थे, उन्होंने इन सबको सुधारा। उनको ऐसी

आदत थी कि उन्हें कुछ भी लिखना होता तो इधर-उधर टहलकर उसपर विचार करते। उन्हें एक छोटा-सा पत्र लिखना था। मेरा खयाल था कि वे उसे जल्दी ही लिख लेंगे। किन्तु नहीं। मैंने इसपर कुछ कहा तो उन्होंने मुझे उपदेश दिया: "आप मेरे जीवनको क्या जानें? मैं छोटेसे-छोटे काममें भी उतावली नहीं करता; मैं उसपर विचार करता हूँ, उसका मध्यबिन्दु सोचता हूँ; तब उस विषयके अनुरूप भाषा बनाकर लिखता हूँ। यदि सब लोग ऐसा करें तो समयकी कितनी बचत हो? लोग भी, उन्हें आज जो अधकचरे विचार मिल रहे हैं, उसके भारसे बच जायें।"

टॉल्स्टॉय फार्मके ये संस्मरण जैसे गोखलेके यहाँ आनेके वर्णनके बिना अधूरे माने जाते वैसे ही श्री कैलनबैकके रहन-सहनके सम्बन्धमें कुछ कहे बिना अधूरे माने जा सकते हैं। इस निर्मल मनुष्यका परिचय मैं पहले दे चुका हूँ। श्री कैलनबैक टॉल्स्टॉय फार्ममें हम लोगोंके समाजमें और हमारी ही भाँति रहे, यही आश्चर्यकी बात थी। गोखले सामान्य बातोंसे आर्कषित होनेवाले मनुष्य न थे। किन्तु कैलनबैकके जीवनके महान् परिवर्तनसे वे भी बहुत आर्कषित हुए थे। कैलनबैकने न कभी जाड़ा और गरमी सहन किये थे और न किसी प्रकारका कष्ट ही उठाया था — तात्पर्य यह है कि असंयम उनका धर्म बन गया था। उन्होंने सांसारिक सुखोंका उपभोग खुलकर किया था और जो वस्तु धर्मसे प्राप्त की जा सकती थी उसे अपने सुखके लिए प्राप्त करनेमें कभी संकोच न किया था।

ऐसे मनुष्यका टॉल्स्टॉय फार्ममें रहना, सोना-बैठना, खाना-पीना और फार्मवासियोंमें घुलमिल जाना कोई सामान्य बात नहीं थी। हम लोगोंको इससे आनन्द और आश्चर्य हुआ। कुछ गोरोंने कैलनबैकको मूर्ख या पागल माना; किन्तु कुछमें उनकी इस त्यागकी क्षमताके कारण उनके प्रति सम्मानभाव बढ़ा। कैलनबैकने अपना त्याग कभी दुःखरूप नहीं माना। उन्हें जितना आनन्द अपने वैभवसे मिला था उससे अधिक अपने इस त्यागसे मिला था। वे अपने सादा जीवनके सुखोंका वर्णन करनेमें तन्मय हो जाते थे और क्षणभरके लिए सुननेवाला भी इस सुखको भोगनेके लिए लालायित हो जाता था। वे छोटे और बड़े सबसे इतने प्रेमसे मिलजुल कर रहते कि उनसे अल्प समयके लिए भी अलग होना साले बिना न रहता। उन्हें फलदार पेड़ लगानेका बेहद चाव था। अतः उन्होंने बागवानीका काम अपने ही हाथमें रखा था और वे नित्य प्रातः बालकोंसे और बड़ोंसे फलदार पेड़ोंकी सार-सँभाल करवाते थे। वे उन सबसे पूरी मेहनत लेते, फिर भी वे ऐसे हँसमुख और आनन्दी स्वभावके थे कि सभीको उनके साथ काम करना अच्छा लगता था। रातको दो बजे जगकर कोई टुकड़ी टॉल्स्टॉय फार्मसे जोहानिसबर्गको पैदल रवाना होती तो उसमें श्री कैलनबैक जरूर होते।

धार्मिक मामलोंपर उनसे मेरी रोज बात होती। मेरे पास अहिंसा, सत्य आदि यमोंके अतिरिक्त दूसरी बात हो ही क्या सकती थी? सर्प आदि हिंसक जीव-जन्तुओंको मारनेमें पाप है, मेरी इस बातसे पहले तो अन्य अनेक यूरोपीय मित्रोंकी भाँति श्री कैलनबैकको भी धक्का लगा; किन्तु अन्तमें उन्होंने तात्त्विक दृष्टिसे यह सिद्धान्त स्वीकार कर लिया। उन्होंने मुझसे सम्बन्ध स्थापित करते ही यह बात मान ली थी

कि जिस बातको बुद्धि स्वीकार करे उसे व्यवहारमें लाना उनके लिए उचित और धर्म होगा। वे इसीलिए अपने जीवनमें एक क्षणमें बिना संकोच महत्त्वपूर्ण परिवर्तन कर सके थे। अतः उन्होंने सोचा कि यदि सर्प आदि जीवोंको मारना अनुचित है तो मुझे उनके प्रति मैत्री सम्बन्ध स्थापित करना चाहिए। इसके लिए उन्होंने पहले विभिन्न जातिके साँपोंकी पहचान करनेके लिए साँपोंके सम्बन्धमें पुस्तकें इकट्ठी कीं। उन्होंने उनमें देखा कि सभी साँप विषैले नहीं होते और कुछ साँप तो खेतोंमें फसलोंके रक्षकका काम करते हैं। हम सबने साँपोंकी पहचान करना सीखा और अन्तमें एक बड़ा अजगर पाला जो हमें फार्ममें ही मिल गया था। श्री कैलनबैक उसे नित्य अपने हाथसे खाना देते। मैंने बड़ी नरमीसे कैलनबैकको यह तर्क दिया, यद्यपि आपका भाव शुद्ध है, फिर भी अजगर तो उसे जान नहीं सकता, क्योंकि आपके प्रेममें भय मिला है। इसे खुला रखकर इससे खेलनेका साहस न आपमें है और न मुझमें। अतः हमें अपने भीतर जिस चीजको लाना है वह है इस तरहका साहस। इसलिए मैं इस अजगरको पालनेमें सद्‌भाव तो देखता हूँ, किन्तु इसमें अहिंसा नहीं है। हमारा व्यवहार तो ऐसा होना चाहिए कि उसे यह अजगर पहचान सके। सभी प्राणी भय और प्रेमको पहचानते हैं, यह हमारा नित्यका अनुभव है। फिर आप इस साँपको विषैला तो मानते ही नहीं हैं; आपने तो इसे इसका स्वभाव आदि जाननेके लिए बन्धनमें रखा है। यह एक प्रकारकी विलासिता हुई। सच्ची मैत्रीमें तो इसके लिए भी स्थान नहीं है।

श्री कैलनबैक इस तर्कको समझ गये। किन्तु उनकी इच्छा इस अजगरको तुरन्त छोड़ देनेकी नहीं हुई। मैंने उनपर किसी तरहका दबाव नहीं डाला। इस साँपके व्यवहारमें मैं भी रस लेता था और बच्चोंको भी उससे बहुत आनन्द मिलता था। सबको कह दिया गया था कि उसे कोई भी दुःख न दे, किन्तु यह कैदी स्वयं ही बाहर निकलनेका रास्ता ढूँढ़ रहा था। दो-चार दिन ही हुए होंगे कि एक दिन प्रातःकाल श्री कैलनबैक अपने इस मित्रको देखने गये। या तो पिंजरेका द्वार खुला रह गया होगा या उसने उसे युक्तिसे खोल लिया होगा, कारण कुछ भी हो किन्तु श्री कैलनबैकको उसका पिंजरा खाली मिला। उनको इससे प्रसन्नता हुई और मुझे भी। किन्तु इस प्रयोगके कारण साँप मेरी और उनकी नित्यकी बातचीतका विषय बन गया था। श्री कैलनबैक एक गरीब जर्मनको फार्ममें लाये थे। वह गरीब होनेके साथ-साथ अपंग भी था। उसका कूबड़ इतना निकल आया था कि वह लाठीका सहारा लिये बिना चल ही नहीं सकता था। किन्तु उसमें साहस असीम था। वह शिक्षित होनेके कारण सूक्ष्म विषयोंमें बहुत रस लेता था। फार्ममें वह भी हिन्दुस्तानी-जैसा ही बन गया था और सबसे हिलमिल कर रहता था। उसने निर्भय होकर साँपोंसे खेलना शुरू किया। वह छोटे-छोटे साँपोंको अपने हाथोंमें पकड़ लाता और उन्हें अपनी हथेलीपर रखकर खिलाता भी। यदि फार्म अधिक समयतक चला होता तो उस जर्मनके इस प्रयोगका क्या परिणाम होता, यह तो ईश्वर ही जाने। उस जर्मनका नाम आल्बर्ट था।

इन प्रयोगोंके परिणामस्वरूप हमारा साँपोंका भय कुछ कम हो गया, किन्तु फिर भी कोई यह न समझे कि फार्ममें किसीको भी साँपोंका भय नहीं रहा था अथवा साँपोंको मारनेकी पूरी मनाही थी। किसी काममें हिंसा है या पाप है यह मानना एक बात है और उसके अनुसार आचरण करनेका सामर्थ्य होना दूसरी बात। जिसमें साँपोंका भय मौजूद है और जो स्वयं मरनेके लिए तैयार नहीं है वह संकट आनेपर साँपको जीवित न छोड़ेगा। फार्ममें एक ऐसी घटना होनेका मुझे स्मरण है। फार्ममें बहुत साँप निकलते थे, इसकी कल्पना तो पाठकोंने कर ही ली होगी। हम जब उस जगह पहुँचे थे तब वहाँ मनुष्य कोई भी नहीं रहता था और वह कुछ समय पहलेसे निर्जन थी। एक दिन श्री कैलनबैकके कमरेमें ही एक साँप दिखाई दिया। वह ऐसी जगह बैठा था जहाँसे उसे निकालना अथवा पकड़ना प्रायः असम्भव था। फार्मके एक विद्यार्थीने उसे देखा। उसने मुझे बुलाया और पूछा, "अब क्या किया जाये?" उसने मुझसे उसे मारनेकी अनुमति माँगी। वह मेरी अनुमतिके बिना उस साँपको मार सकता था, किन्तु सामान्यतः विद्यार्थी या दूसरे लोग ऐसा कोई काम मुझसे पूछे बिना नहीं करते थे। मैंने उसे मारनेकी अनुमति देना धर्म समझा और वैसी अनुमति दे दी। यह प्रकरण लिखते समय भी मुझे नहीं लगता कि मैंने यह अनुमति देकर कुछ भी अनुचित किया था। मुझमें इतनी शक्ति नहीं थी कि मैं स्वयं उस साँपको पकड़ लेता अथवा किसी अन्य उपायसे फार्मके लोगोंको अभय कर देता। मैं अपने भीतर वैसी शक्ति आज भी नहीं ला सका हूँ।

पाठक यह तो समझ ही सकते हैं कि फार्ममें सत्याग्रहियोंका ज्वार-भाटा आता रहता होगा। वहाँ कोई-न-कोई जेल जानेवाले और जेलसे छूटकर आनेवाले सत्याग्रही भी सदा होते थे। एक बार दो ऐसे सत्याग्रही आ गये जिन्हें मजिस्ट्रेटने निजी मुचलकेपर छोड़ा था और जिन्हें दूसरे दिन सजा सुननेके लिए अदालत जाना था। वे बैठे बातें कर रहे थे। तभी उनकी अन्तिम गाड़ी आनेका समय हो गया और गाड़ी पकड़ना सन्दिग्ध हो गया। दोनों ही सत्याग्रही जवान और कसरती थे। वे और हममें से उनको पहुँचानेवाले कुछ लोग भागे। मैंने रास्तेमें गाड़ीके आनेकी सीटी सुनी। जब गाड़ीने रवाना होनेकी सीटी दी तब हम स्टेशनकी हदके पास पहुँच चुके थे। उन दोनों भाइयोंने अपनी चाल और भी तेज कर दी। मैं कुछ पीछे रह गया। तभी गाड़ी चल दी। स्टेशन मास्टरने उन दोनोंको भागता देखकर चलती गाड़ी रोक दी और उनको उसमें बिठा दिया। मैंने स्टेशनपर पहुँचकर स्टेशन मास्टरका आभार माना। मैंने इस वर्णनको देकर दो बातें बताई हैं, एक सत्याग्रही जेल जाने और अपनी प्रतिज्ञा पूरी करनेके लिए कितने उत्सुक रहते थे और दूसरी उन्होंने स्थानीय अधिकारियोंसे अपने सम्बन्ध कैसे मधुर बना लिये थे। यदि ये युवक गाड़ी न पकड़ सके होते तो दूसरे दिन अदालतमें हाजिर न हो सकते। उनका कोई दूसरा जामिन नहीं था। स्वयं उनसे भी कोई पैसा जमा नहीं कराया गया था। वे केवल अपनी भलमनसीके भरोसेपर छोड़े गये थे। सत्याग्रहियोंकी इतनी साख बन गई थी कि मजिस्ट्रेट उनकी जेल जानेकी आतुरताके कारण उनसे जमानत लेना जरूरी न

समझते थे। इसीलिए इन युवक सत्याग्रहियोंको गाड़ी निकल जानेके भयसे बहुत दुःख हुआ था और वे हवाकी तरह तेज भागे थे। कहा जा सकता है कि सत्याग्रहके आरम्भमें अधिकारियोंने सत्याग्रहियोंको कुछ दुःख दिये थे। यह भी कहा जा सकता है कि कहीं-कहीं जेल अधिकारी बहुत कठोर थे। किन्तु लड़ाई आगे बढ़नेके साथ-साथ हमने देखा कि कुल मिलाकर अधिकारियोंकी कटुता कम हुई; उनमें से कुछमें मिठास आई और जहाँ उनसे अधिक समयतक सम्पर्क रहा वहाँ वे इस स्टेशन मास्टरकी तरह सहायता भी करने लगे। पाठक यह न मान लें कि सत्याग्रही किसी तरह की रिश्वत देकर अधिकारियोंसे सुविधाएँ प्राप्त कर लेते थे। इस तरह अनुचित रीतिसे सुविधाएँ लेनेका उन्होंने कभी खयाल भी नहीं किया था। किन्तु सभ्यतासे सुविधाएँ दी जायें तो उन्हें प्राप्त करना कौन नहीं चाहेगा? सत्याग्रही ऐसी सुविधाएँ बहुत जगहोंपर प्राप्त कर सके थे। यदि स्टेशन मास्टर प्रतिकूल हो तो वह नियमोंकी हदमें रहकर भी बहुत-सी कठिनाइयाँ पैदा कर सकता है। ऐसी कठिनाइयोंके विरुद्ध शिकायत भी नहीं की जा सकती। इसके विपरीत यदि वह अनुकूल हो तो नियमोंके भीतर रहता हुआ भी बहुत-सी सुविधाएँ दे सकता है। हम इस तरहकी सुविधाएँ इस फार्मके पासके स्टेशन लॉलीके अधिकारीसे प्राप्त कर पाते थे और इसका कारण सत्याग्रहियोंका सौजन्य, धैर्य और कष्टसहनका सामर्थ्य था।

यहाँ एक अप्रासंगिक घटनाका उल्लेख करना अनुचित न होगा। मुझे धार्मिक, आर्थिक और स्वास्थ्यकी दृष्टिसे भोजन सम्बन्धी सुधार और प्रयोग करनेका शौक लगभग ३५ सालसे है। मेरा यह शौक अभी कम नहीं हुआ है। इन प्रयोगोंका प्रभाव मेरे आसपासके लोगोंपर तो पड़ता ही है। इन प्रयोगोंके साथ-साथ मैं दवाओंकी मदद लिए बिना प्राकृतिक उपायोंसे, जैसे पानी और मिट्टीसे, रोग दूर करनेके प्रयोग भी करता था। जब मैं वकालत करता था तब मुवक्किलोंसे मेरा सम्बन्ध कौटुम्बिक जैसा हो जाता था। इसलिए वे मुझे अपने सुख-दुःखमें भागी बनाते थे। कुछ मेरे आरोग्य-सम्बन्धी प्रयोगोंका परिचय मिलनेपर इस सम्बन्धमें मेरी सहायता भी लेते थे। ऐसी सहायता लेनेवाले लोग कभी-कभी टॉल्स्टॉय फार्मपर चढ़ाई कर देते। इन्हीं लोगोंमें एक लुटावन नामका उत्तर भारतका बूढ़ा मुवक्किल था। वह पहले गिरमिटमें यहाँ आया था। उसकी उमर ७० सालसे ज्यादा होगी। उसे बहुत सालसे दमे और खाँसीका रोग था। उसने वैद्योंकी पुड़ियाँ और डाक्टरोंकी शीशियाँ बहुत आजमाई थीं। उस समय मुझे अपने उपचारोंमें असीम विश्वास था। मैंने इस शर्तपर उसपर अपने प्रयोग करना स्वीकार कर लिया कि वह मेरी सारी शर्तें मानेगा और फार्ममें रहेगा। यह तो कैसे कहा जा सकता है कि मैंने उसका इलाज करना स्वीकार कर लिया। उसने मेरी शर्तें स्वीकार कर लीं। उसे तम्बाकू पीनेका बहुत व्यसन था। वह तम्बाकू पीना छोड़ देगा, मेरी शर्तोंमें एक शर्त यह भी थी। मैंने लुटावनको एक दिनका उपवास कराया। फिर हर रोज बारह बजे धूपमें कूनेका बाथ देना शुरू किया। उन दिनों वहाँ ऐसा मौसम था कि धूपमें बैठा जा सकता था। उसके खानेमें ये चीजें होतीं, थोड़ा भात, कुछ जैतूनका तेल, शहद और शहदके साथ कभी-कभी खीर, मीठी

नारंगी अथवा अंगूर और भुने हुए गेहूँकी काफी। उसके लिए नमक और सभी मसाले निषिद्ध थे। जिस मकानमें मैं सोता उसीके भीतरी भागमें लुटावनका बिस्तर भी होता। बिस्तरमें सभीको दो कम्बल दिये जाते थे; एक बिछानेके लिए और दूसरा ओढ़नेके लिए। लकड़ीका एक तकिया भी दिया जाता था। इस तरह उसे एक सप्ताह बीत गया। लुटावनके शरीरमें तेज आ गया। दमा कम हो गया और खाँसी भी कम हो गई। किन्तु रातको दमा और खाँसी दोनों उखड़ते। मुझे उसपर तमाखू पीनेका शक हुआ। मैंने उससे पूछताछ की। उसने उत्तर दिया, "मैं तम्बाकू नहीं पीता।" एक-दो दिन और निकल गये। फिर भी कोई अन्तर नहीं पड़ा, इसलिए मैंने लुटावनको छुपकर देखनेका निश्चय किया। सभी लोग जमीनपर सोते थे? साँप आदिका भय तो रहता ही था; इसलिए श्री कैलनबैकने मुझे एक टार्च दी थी और एक टार्च अपने पास भी रखी थी। मैं रातको टार्च अपने पास रखकर सोता था। मैंने एक रात बिस्तरमें लेटे-लेटे जगनेका निश्चय किया। मेरा बिस्तर दरवाजेके पास बाहर बरामदेमें था और लुटावनका बगलमें ही दरवाजेके भीतर। आधी रातके वक्त लुटावनको खाँसी आई। वह दियासलाई जलाकर बीड़ी पीने लगा। इसलिए मैं चुपकेसे जाकर उसके बिस्तरके पास खड़ा हुआ और मैंने टार्चका बटन दबा दिया। लुटावन घबरा गया, सब समझ गया, बीड़ी बुझाकर बैठ गया और मेरे पैर पकड़कर रुँधे गलेसे बोला, "मैंने बड़ा गुनाह किया है। अब मैं कभी तम्बाकू नहीं पीऊँगा। मैंने आपको धोखा दिया। आप मुझे माफ कर दें।" मैंने उसे आश्वासन दिया और कहा कि बीड़ी न पीनेमें उसीका हित है। मेरे अन्दाजसे अबतक खाँसी चली जानी थी। वह नहीं गई, इससे मुझे सन्देह हुआ। लुटावनने बीड़ी छोड़ दी तो दो-तीन दिनमें उसका दमा और खाँसी कम हो गई और एक महीनेमें दोनों बिलकुल चले गये। लुटावनमें पूरी शक्ति आ गई और उसने हमसे विदा ली।

स्टेशन मास्टरके लड़केको, जो दो सालका होगा, मोतीझिरा (टाइफाइड) हो गया। मेरे उपचारोंकी बात उन्हें भी मालूम थी ही। उन्होंने मेरी सलाह माँगी। मैंने उस बच्चेको पहले दिन खानेके लिए कुछ नहीं दिया। दूसरे दिनसे भली-भाँति मसला हुआ आधा केला एक चम्मच जैतूनका तेल और कुछ बूँदे नींबू मिलाकर दिया। इसके अतिरिक्त खानेकी कोई दूसरी चीज देना बन्द कर दिया। मैंने रातको उसके पेटपर मिट्टीकी पट्टी बाँधी। यह बच्चा भी नीरोग हो गया। हो सकता है कि डाक्टरने उसका निदान ठीक न किया हो और उसे मोतीझिरा (टाइफाइड) न रहा हो।

मैंने फार्ममें इस तरहके प्रयोग बहुत किये। इनमें से किसीमें भी विफल होनेका मुझे स्मरण नहीं। किन्तु आज वैसा ही उपचार करनेका मेरा साहस नहीं होता। अब मेरी हिम्मत मियादी बुखार (टाइफाइड)के रोगीको जैतूनका तेल और केला देनेकी नहीं पड़ती है। मुझे १९१८ में हिन्दुस्तानमें पेचिश हो गई थी। मैं उसका भी इलाज नहीं कर सका। मैं अभीतक यह नहीं समझ पाया हूँ कि जो उपचार दक्षिण आफ्रिकामें जैसे सफल होते थे वे यहाँ वैसे सफल क्यों नहीं होते? इसका कारण मुझमें आत्मविश्वासकी न्यूनता है या फिर यहाँकी जलवायुमें वे उपचार पूरी तरह लागू नहीं पड़ते? मैं इतना ही जानता हूँ कि ऐसे घरेलू उपचारोंसे और टॉल्स्टॉय

फार्मके सादा रहन-सहनसे कौमको ज्यादा नहीं तो दो-तीन लाख रुपयेकी बचत हुई, वहाँ रहनेवालोंमें कौटुम्बिक भावना आई, सत्याग्रहियोंको शुद्ध आश्रय-स्थान मिला, उनमें अप्रामाणिकता और दम्भका अवकाश न रहा; मूँग और कंकड़ अलग-अलग छाँटे जा सके। ऊपरकी घटनाओंमें जो भोजन-सम्बन्धी प्रयोग आये हैं वे आरोग्यकी दृष्टिसे किये गये थे, किन्तु मैंने इस फार्ममें ही अपने ऊपर एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण प्रयोग किया और उसके मूलमें पूर्णतः आध्यात्मिक दृष्टि थी।

हमें निरामिष-भोजीके रूपमें दूध पीनेका अधिकार है या नहीं, मैंने इस सम्बन्धमें बहुत विचार किया और बहुत साहित्य भी पढ़ा। किन्तु फार्ममें रहते हुए मुझे एक ऐसी पुस्तक अथवा पत्र-पत्रिका मिली जिसमें मैंने यह पढ़ा कि कलकत्तेमें गायों और भैंसोंका दूध बूँद-बूँद निकाल लिया जाता है। उसीमें फूँकेकी निर्दयतापूर्ण और भयंकर क्रियाका विवरण भी था। एक बार मैं श्री कैलनबैकसे यह चर्चा कर रहा था कि दूध पीनेकी आवश्यकता है या नहीं। मैंने इसी प्रसंगमें उनसे इस क्रियाकी बात भी कही। मैंने दूध छोड़नेके कुछ अन्य आध्यात्मिक लाभ बताये और यह भी कहा कि यदि दूधका त्याग किया जा सके तो अच्छा हो। श्री कैलनबैक बहुत साहसी थे, अतः वे दूध छोड़नेका प्रयोग करनेके लिए तुरन्त तैयार हो गये। उन्हें मेरी बात बहुत पसन्द आई। हम दोनोंने उसी दिनसे दूध पीना छोड़ दिया,[1] केवल मेवे और ताजे फल लेना आरम्भ किया और पकाई हुई चीजें खाना बन्द कर दिया। इस प्रयोगका परिणाम क्या हुआ यह इतिहास यहाँ देनेकी जगह नहीं, किन्तु इतना कह दूँ कि मैंने पाँच वर्षतक केवल फल खाकर निर्वाह किया। उससे मुझे न तो कमजोरी मालम हुई और न किसी तरहका रोग हुआ। प्रत्युत इस बीच मुझमें शरीर-श्रम करनेकी शक्ति इतनी अधिक रही कि मैं एक बार दिनमें पैदल ५५ मील जा सका था। उन दिनों ४० मील पैदल चलना तो मेरे लिए सहज बात थी। मेरा यह दृढ़ विश्वास है कि इस प्रयोगके आध्यात्मिक परिणाम बहुत सुन्दर हुए थे। मुझे यह प्रयोग अंशतः छोड़ना पड़ा, इसका मुझे सदा दुःख रहा और यदि मैं राजनैतिक कार्योंकी अपनी वर्तमान झंझटोंसे मुक्त हो सकूँ तो मेरी आकांक्षा है कि मैं इस आयुमें शरीरके लिए जोखिम लेकर भी आध्यात्मिक परिणामोंकी खोजके लिए आज यह प्रयोग फिर करके देखूँ। डाक्टरों और वैद्योंमें आध्यात्मिक दृष्टिका अभाव भी मेरे मार्गमें विघ्नकारी हुआ है।

किन्तु अब ये मधुर और महत्त्वपूर्ण संस्मरण समाप्त किये जाने चाहिए। ऐसे कठिन प्रयोग आत्मशुद्धिकी लड़ाईमें ही किये जा सकते ह। टॉल्स्टॉय फार्म अन्तिम युद्धके लिए आध्यात्मिक शुद्धि और तपस्याका स्थान सिद्ध हुआ। मुझे इसमें पूरा सन्देह है कि यदि ऐसा स्थान हमें न मिलता अथवा हम न ढूँढ़ते तो हमारी यह लड़ाई आठ सालतक चल सकती या नहीं, अधिक पैसा मिल सकता या नहीं, और अन्तमें उसमें जिन हजारों लोगोंने हिस्सा लिया वे हिस्सा लेते या नहीं। हमने टॉल्स्टॉय फार्मका ढिंढोरा पीटनेका नियम नहीं रखा था। फिर भी जो चीज लोगोंकी सहानु-

१. देखिए **आत्मकथा**, भाग ४, अध्याय ३०।

भूतिकी पात्र थी उसने लोगोंमें सहानुभूति प्राप्त की और लोगोंने माना कि जिस कामको करनेके लिए वे स्वयं तैयार नहीं हैं और जिसे स्वयं कष्टकर मानते हैं उस कामको फार्मवासी कर रहे हैं। उन लोगोंका यह विश्वास १९१३ में, जब यह लड़ाई बड़े पैमानेपर फिर शुरू हुई, उसके लिए बहुत बड़ी पूँजी जैसा बन गया। ऐसी पूँजीके प्रतिफलका हिसाब नहीं किया जा सकता। इसका प्रतिफल कब मिलता है कोई यह भी नहीं कह सकता। किन्तु वह मिलता अवश्य है, इसमें मुझे तो सन्देह नहीं है और आशा है, कोई दूसरा भी सन्देह नहीं करेगा।

अध्याय ३६

गोखलेका प्रवास — १

सत्याग्रही इस तरह टॉल्स्टॉय फार्ममें अपना जीवन बिता रहे थे और उनके भाग्यमें जो-कुछ लिखा था उसे भोगनेकी तैयारी कर रहे थे। यह लड़ाई कब खत्म होगी इसका उन्हें कुछ पता न था। उन्हें इसकी चिन्ता भी नहीं थी। उनकी प्रतिज्ञा एक ही थी कि वे काले कानूनके आगे न झुकेंगे और ऐसा करते हुए जो भी कष्ट उठाने पड़ेंगे, उठायेंगे। सैनिकके लिए तो लड़ना ही जीतना है, क्योंकि वह उसीमें सुख मानता है और चूँकि लड़ना उसके अपने हाथकी बात होती है, इसलिए उसकी हार-जीत और उसका सुख-दुःख उसीपर निर्भर होते हैं। यह भी कह सकते हैं कि दुःख और पराजय-जैसे शब्द उसके कोषमें नहीं होते। 'गीता'के शब्दोंमें कहें तो उसके लिए सुख-दुःख और हार-जीत समान होते हैं।

इक्के-दुक्के सत्याग्रही जेलमें जाते रहते थे। अन्य किसी अवसरपर फार्मकी बाह्य प्रवृत्तियोंको देखकर कोई भी यह खयाल नहीं कर सकता था कि वहाँ सत्याग्रही रहते होंगे अथवा वहाँ किसी लड़ाईकी तैयारी चल रही होगी। वहाँ प्रायः कोई-न-कोई नास्तिक आ जाता था। वह हमारा मित्र होता तो हमपर दया दिखाता और यदि हमारा आलोचक होता तो हमारी निन्दा करता। "आप आलसके वशमें होकर इस जंगलमें पड़े-पड़े रोटियाँ खा रहे हैं, जेल जाते-जाते थक गये हैं, इसलिए इस सुन्दर फलोंके बगीचेमें रहकर नियमित जीवन बिता रहे हैं और शहरकी झंझटोंसे मुक्त होकर सुख भोग रहे हैं।" ऐसी आलोचना करनेवालेको कैसे समझाया जाता कि सत्याग्रही अनुचित रूपसे नीति भंग करके जेल नहीं जा सकता। उसे कौन समझाता कि सत्याग्रहीकी दैनंदिनकी शान्ति और संयममें उसकी लड़ाईकी तैयारी अन्तर्हित होती है। उसे कौन समझाता कि सत्याग्रही मनुष्यकी सहायताका विचारतक छोड़ देता है और केवल ईश्वरका ही आश्रय लेता है। अन्तमें ऐसा हुआ कि ऐसी स्थितियाँ उत्पन्न हो गईं जिनकी किसीने कल्पनातक न की थी, अथवा कहना चाहिए कि ऐसी स्थितियाँ ईश्वरने उत्पन्न कर दीं। जिसकी आशा भी नहीं थी वैसी सहायता भी मिल गई। हमारी परीक्षा तब हुई जब हम उसकी कल्पना भी नहीं कर रहे थे; और अन्तमें हमें ऐसी प्रत्यक्ष जीत भी मिली जिसको दुनिया समझ सके।

मैं गोखलेसे और दूसरे नेताओंसे प्रार्थना करता आ रहा था कि वे दक्षिण आफ्रिकामें आकर हिन्दुस्तानियोंकी स्थितिका अध्ययन करें। किन्तु कोई आयेगा या नहीं, इसमें मुझे पूरा सन्देह था। श्री रिच किसी नेताको भेजनेका प्रयत्न कर रहे थे। किन्तु जब लड़ाई बिलकुल ठंडी पड़ गई हो तब आनेका साहस भी कौन करता? गोखले सन् १९११ में इंग्लैंड में थे। उन्होंने दक्षिण आफ्रिकाकी लड़ाईका अध्ययन किया ही था। उन्होंने हिन्दुस्तानकी केन्द्रीय विधानसभामें उसकी चर्चा की थी और २५ फरवरी १९१० को नेटालमें गिरमिटियोंको भेजना बन्द करनेका प्रस्ताव भी पेश किया था।[१] उनका यह प्रस्ताव वहाँ स्वीकृत भी किया गया था। उनसे मेरा पत्र-व्यवहार चल ही रहा था।[२] वे भारत मन्त्रीसे इस सम्बन्धमें बातचीत कर रहे थे। और उन्होंने उनको दक्षिण आफ्रिका जाकर इस प्रश्नको समझनेका अपना निश्चय बता दिया था। भारत मन्त्रीको उनका यह विचार पसन्द आया। गोखलेने मुझे दक्षिण आफ्रिकाके छः सप्ताहके दौरेका कार्यक्रम बनानेकी बात लिखी और दक्षिण आफ्रिकासे अपनी रवानगीकी अन्तिम तारीख भी दी। इस खबरसे हमारी खुशीका ठिकाना न रहा। अभीतक किसी भी नेताने दक्षिण आफ्रिकाका दौरा कभी नहीं किया था। दक्षिण आफ्रिका तो क्या, हिन्दुस्तानसे बाहरके किसी भी उपनिवेशमें कोई भी हिन्दुस्तानियोंकी स्थिति देखनेके लिए कभी नहीं गया था। इसलिए हम सभी गोखले-जैसे महान् नेताके इस दौरेका महत्त्व समझ गये। हमने निश्चय किया कि गोखलेका ऐसा सम्मान किया जाये जैसा कभी किसी सम्राट्का भी नहीं किया गया हो। उनको दक्षिण आफ्रिकाके मुख्य-मुख्य नगरोंमें भी ले जानेका निश्चय किया गया। सत्याग्रही और गैर-सत्याग्रही सभी हिन्दुस्तानी खुशीसे उनके स्वागतकी तैयारियोंमें सम्मिलित हुए। इस स्वागतमें सम्मिलित होनेके लिए गोरोंको भी निमन्त्रित किया गया और वे लगभग सभी जगह उसमें सम्मिलित हुए। हमने यह भी निश्चय किया कि जहाँ-जहाँ सार्वजनिक सभाएँ की जायें वहाँ यथासम्भव उनकी अध्यक्षता वहाँके मेयर स्वीकार करें तो उन्हींसे कराई जाये और वहाँके टाउन हॉलके उपयोगकी अनुमति मिल सके तो सभाएँ उन टाउन हॉलोंमें ही की जायें। हमने रेल विभागसे अनुमति लेकर मुख्य-मुख्य स्टेशनोंको सजानेकी अनुमति ले ली और यह कार्य अपने जिम्मे लिया। हमें बहुतसे स्टेशनोंको सजानेकी अनुमति मिल भी गई। ऐसी अनुमति सामान्यतः दी नहीं जाती थी। हमारी स्वागतकी भारी तैयारियोंका प्रभाव अधिकारियोंपर हुआ और उन्होंने जितनी सहानुभूति वे दिखा सकते थे उतनी सहानुभूति दिखाई। उदाहरणके लिए हमने जोहानिसबर्गमें रेलवे स्टेशनको सजानेमें लगभग पन्द्रह दिन लगाये होंगे, क्योंकि हमने वहाँ एक सुन्दर चित्रकारी किया हुआ दरवाजा बनाया था, जिसका नक्शा श्री कैलनबैकने बनाया था।[३]

१. प्रस्ताव सम्बन्धी गांधीजीकी टिप्पणीके लिए देखिए खण्ड १०, पृष्ठ १८२-३ और पृष्ठ १८५-६।
२. देखिए खण्ड ११।
३. अन्तिम वाक्यांश अंग्रेजोसे अनूदित है।

दक्षिण आफ्रिका कैसा है इसका अनुभव गोखलेको इंग्लैंडमें ही हो गया था। भारतमन्त्रीने दक्षिण आफ्रिकाकी सरकारको गोखलेकी स्थिति और साम्राज्यमें उनके स्थान आदिकी सूचना दे दी थी। किन्तु जहाजी कम्पनीसे उनका टिकट लेने अथवा कैबिन सुरक्षित करवानेकी बात किसे सूझ सकती थी? गोखले अस्वस्थ तो रहते ही थे, इसलिए उन्हें जहाजमें अच्छे केबिनकी और एकान्तकी जरूरत थी। उन्हें ऐसा टका-सा जवाब मिला, "हमारे पास ऐसा कैबिन कोई नहीं है।"[1] मुझे ठीक याद नहीं कि इसकी सूचना श्री गोखलेने या किसी दूसरे मित्रने इंडिया ऑफिसको दी। भारत कार्यालयने कम्पनीके निर्देशकको पत्र लिखा और जहाँ कैबिन था ही नहीं वहाँ श्री गोखलेको अच्छेसे-अच्छा कैबिन मिल गया! इस प्रारम्भिक कटुताका परिणाम मीठा हुआ। जहाजके कप्तानको निर्देश दे दिया गया कि वे गोखलेका पूरा ख्याल रखें। इसलिए गोखलेकी यात्राके दिन सुख और शान्तिमें बीते। गोखले जितने गम्भीर थे उतने ही आनन्दी और विनोदी भी थे। वे जहाजके खेलकूदोंमें पूरा भाग लेते थे और इससे जहाजके यात्रियोंमें बहुत लोकप्रिय हो गये थे। दक्षिण आफ्रिकाकी सरकारने गोखलेसे अनुरोध किया था कि वे उसका आतिथ्य ग्रहण करें और उसकी ओरसे रेलका राजकीय सैलून स्वीकार करें। उन्होंने प्रिटोरियामें सरकारका आतिथ्य ग्रहण करने और सैलून स्वीकार करनेका निश्चय मुझसे सलाह करके किया था।

उन्हें जहाजसे केपटाउन बन्दरगाहमें उतरना था। वे २२ अक्तूबर १९१२ को वहाँ उतरे। उनकी तन्दुरुस्ती जितनी नाजुक मैं समझता था उससे ज्यादा नाजुक थी। वे एक विशेष आहार ही ग्रहण कर सकते थे और उनका शरीर अधिक श्रमका भार उठाने योग्य न था। मेरा बनाया हुआ कार्यक्रम उनके लिए असह्य था। मैंने उसमें जितना हो सका उतना फेरफार तो किया ही। वैसे उन्होंने फेरफार न हो सके तो स्वास्थ्यके लिए जोखिम मोल लेकर भी उसपर चलनेकी तैयारी दिखाई थी। मैंने उनसे सलाह किये बिना यह कठिन कार्यक्रम बना दिया था। मुझे अपनी इस मूर्खतापर बहुत पश्चात्ताप हुआ। मैंने उसमें कुछ फेरफार तो किये किन्तु उसका अधिकांश तो जैसा था वैसा ही रखना पड़ा। गोखलेको पूरा एकान्त देनेकी आवश्यकता है, मैं यह नहीं समझ सका था। मुझे इस एकान्तकी व्यवस्था करनेमें सबसे अधिक कठिनाई हुई; किन्तु मुझे नम्रतापूर्वक सत्यकी खातिर इतना तो कहना ही पड़ेगा कि चूँकि मुझे बीमारोंकी और बड़ोंकी सेवा-शुश्रूषा करनेका अभ्यास और चाव था, इसलिए अपनी मूर्खता जान लेनेके बाद इतनी व्यवस्था करना सम्भव हो गया जिससे उन्हें पर्याप्त एकान्त और शान्ति मिल जाये। इस पूरी यात्रामें उनके मन्त्रीका काम स्वयं मैंने ही किया था। स्वयंसेवक ऐसे थे जो अंधेरी रातमें भी उत्तर लाकर उन्हें दें इसलिए सेवकोंके अभावमें उन्हें कोई तकलीफ या दिक्कत उठानी पड़ी हो उसका मुझे खयाल नहीं आता। इन स्वयंसेवकोंमें श्री कैलनबैक भी एक थे।

सबसे अच्छी सभा केपटाउनमें ही होगी यह तो स्पष्ट ही था। श्राइनर परिवारकी बात मैं प्रारम्भिक प्रकरणोंमें लिख चुका हूँ। मैंने इस परिवारके मुख्य व्यक्ति श्री

१. देखिए खण्ड ११, पृष्ठ ३२९ तथा परिशिष्ट २०।

डब्ल्यू० पी० श्राइनरसे इस सभाकी अध्यक्षता करनेकी प्रार्थना की और उन्होंने वह स्वीकार कर ली।[1] बहुत बड़ी सभा हुई। इसमें बड़ी संख्यामें हिन्दुस्तानी और गोरे आये। श्री श्राइनरने मधुर शब्दोंमें गोखलेका स्वागत किया और दक्षिण आफ्रिकाके हिन्दुस्तानियोंके प्रति सहानुभूति प्रकट की। गोखलेका भाषण संक्षिप्त, परिपक्व, विचार-पूर्ण, दृढ़ताका द्योतक और विनययुक्त था। उससे हिन्दुस्तानियोंको बहुत प्रसन्नता हुई और गोखलेने गोरोंका मन मुग्ध कर लिया, अतः कहा जा सकता है कि गोखलेने जिस दिन दक्षिण आफ्रिकाकी भूमिपर पाँव रखा, उसी दिन वहाँ विविध जातियोंके लोगोंके हृदयमें प्रवेश पा लिया।

उन्हें केपटाउनसे जोहानिसबर्ग जाना था। यह रेलसे दो दिनकी यात्रा थी। ट्रान्सवाल लड़ाईका कुरुक्षेत्र था। केपटाउनसे जोहानिसबर्ग जाते हुए पहले ट्रान्सवालका बड़ा सरहदी स्टेशन क्लार्क्सडॉर्प आता है और फिर पोचेफ्स्ट्रूम और क्रूगर्सडॉर्प पड़ते हैं। इनमें हिन्दुस्तानियोंकी आबादी खासी थी, इसलिए क्लार्क्सडॉर्प, पोचेफ्स्ट्रूम और क्रूगर्सडॉर्पमें उनको रुकना और वहाँकी सभाओंमें जाना था, इसे ध्यानमें रखते हुए क्लार्क्सडॉर्पसे ही स्टेशन ट्रेनकी व्यवस्था कर ली गई थी। इन शहरोंमें सभाओंकी अध्यक्षता उनके मेयरोंने की थी। प्रत्येक स्थानमें एक घंटेसे अधिक समय नहीं लगाया गया था। गाड़ी जोहानिसबर्गमें नियत समयपर पहुँच गई।[2] एक मिनिटका भी अन्तर नहीं पड़ा। स्टेशनपर विशेष गलीचे आदि बिछाये गये थे। वहाँ एक मंच भी बनाया गया था। सभामें जोहानिसबर्गके मेयर श्री एलिस और अन्य गोरे आये थे। उन्होंने गोखलेको जबतक वे जोहानिसबर्गमें रहें तबतक काममें लेनेके लिए अपनी मोटर दी थी। गोखलेको मानपत्र स्टेशनपर ही दिया गया था। उन्हें मानपत्र तो सर्वत्र ही दिये जाते। जोहानिसबर्गमें जो मानपत्र दिया गया, वह रोडेशियाकी साग-वानकी तख्तीपर जड़ी जोहानिसबर्गकी खानसे निकले सोनेकी हृदयके आकारकी पट्टी पर खोदा गया था। सोनेकी पट्टीपर हिन्दुस्तान और श्रीलंकाका नक्शा था। उसकी बाजुओंमें दो सोनेकी पट्टियाँ और थीं जिनमें से एकपर ताजमहलका दृश्य था और दूसरीपर कोई अन्य विशिष्ट दृश्य। सब लोगोंसे गोखलेका परिचय कराना, मानपत्र पढ़ना, उसका उत्तर देना और अन्य मानपत्र स्वीकार करना, ये सभी काम २० मिनटके भीतर निपटा दिये गये थे। मानपत्र इतना छोटा था कि उसे पढ़नेमें पाँच मिनटसे ज्यादा न लगे होंगे। उसका गोखलेने जो उत्तर दिया., उसमें भी ५ मिनटसे ज्यादा वक्त न लगा होगा। स्वयंसेवकोंकी व्यवस्था इतनी सुन्दर थी कि प्लेटफार्मपर जितने आदमियोंको बिठानेकी बात सोची गई उससे अधिक नहीं आये थे। कोलाहल बिलकुल नहीं था। बाहर लोगोंकी बेहद भीड़ थी, फिर भी किसीको वहाँ आनेमें या बाहर जानेमें कोई दिक्कत नहीं हुई।

१. देखिए खण्ड ११, पृष्ठ ३३२-४; इसके अनुसार सभाकी अध्यक्षता मेयर हैरी हैंड्सने की थी। श्राइनर सभाके एक प्रमुख वक्ता थे।

२. अक्तूबर २८, १९१२ को। इससे पूर्व अक्तूबर २५ और २६ को किम्बर्लेमें गोखलेके सम्मानार्थ एक सभा और सम्मान-भोजका आयोजन किया गया था। देखिए खण्ड ११, पृष्ठ ३३४-३७।

उनके रहनेकी व्यवस्था जोहानिसबर्गसे पाँच मील दूर एक पहाड़ीपर बने हुए श्री कैलनबैकके छोटे-से सुन्दर बंगलेमें की गई थी। वहाँका दृश्य ऐसा सुन्दर था, उसकी शान्ति ऐसी सुखद थी और बंगला इतना सादा था, फिर भी इतना कलापूर्ण बना हुआ था कि वह श्री गोखलेको बहुत ही अच्छा लगा। सब लोगोंसे मिलनेकी व्यवस्था शहरमें की गई थी और उसके लिए एक खास दफ्तर किरायेपर लिया गया था। इसमें एक कमरा विशेष रूपसे उनके आराम करनेके लिए था, दूसरा लोगोंसे मिलने-जुलनेके लिए और तीसरा आगन्तुकोंके बैठनेके लिए। श्री गोखले जोहानिसबर्गके कुछ प्रसिद्ध सज्जनोंसे निजी रूपसे भेंट करनेके लिए भी ले जाये गये थे। प्रमुख गोरोंकी एक निजी सभा भी की गई जिससे श्री गोखले उनका दृष्टिकोण भलीभाँति समझ सकें। इसके अतिरिक्त जोहानिसबर्गमें उनके सम्मानमें एक बड़ा भोज भी दिया गया था। उसमें ४०० लोग निमन्त्रित किये गये थे जिनमें लगभग १५० गोरे थे। भोजमें हिन्दुस्तानियोंका प्रवेश टिकटसे था; इसका शुल्क एक गिन्नी रखा गया था। इस टिकटसे भोजका खर्च निकल आया था। भोज बिलकुल निरामिष और मद्य-रहित था। भोजन स्वयंसेवकोंने ही बनाया था। इस सबका वर्णन यहाँ कठिन है। दक्षिण आफ्रिकामें हमारे हिन्दू और मुसलमान भाई छुआछूत जानते ही नहीं हैं और एक साथ बैठकर खाते-पीते हैं। निरामिष-भोजी हिन्दुस्तानी अपना निरामिष भोजनका नियम पालते हैं। हिन्दुस्तानियोंमें कुछ ईसाई भी थे। मेरा उनसे भी दूसरोंके बराबर ही प्रगाढ़ परिचय था। वे ज्यादातर गिरमिटिया माँ-बापोंकी सन्तान हैं और उनमें से बहुत-से होटलोंमें खाना बनाने और परोसनेका काम करते हैं। इन लोगोंकी सहायतासे ही इतने आदमियोंके खानेका इन्तजाम हो सका था। खानेमें कोई पन्द्रह चीजें होंगी। दक्षिण आफ्रिकाके गोरोंके लिए यह बिलकुल नया और अनोखा अनुभव था। इतने हिन्दुस्तानियोंके साथ एक पंक्तिमें खानेके लिए बैठना, निरामिष भोजन करना और बिना मद्यके काम चलाना — ये तीनों अनुभव उनमें से बहुत-सोंके लिए नये थे और इनमें से दो तो सभीके लिए नये थे।

इस समारोहमें गोखलेका वह भाषण हुआ जो दक्षिण आफ्रिकामें उनका सबसे बड़ा और महत्त्वपूर्ण भाषण था। गोखलेने पूरे ४५ मिनटतक भाषण दिया। उन्होंने इस भाषणको तैयार करनेमें मुझसे पर्याप्त सहायता ली थी। उन्होंने अपने जीवनका यह नियम बताया कि लोगोंके दृष्टिकोणकी अवहेलना न की जानी चाहिए और उसका जितना ध्यान रखा जा सके उतना रखा जाना चाहिए। उन्होंने इसीलिए मुझसे कहा कि मैं अपने दृष्टिकोणसे उनसे अपने भाषणमें क्या कहलाना चाहता हूँ, यह उन्हें बता दूँ। वह भाषण मुझे तैयार करके दे देना था और उसके साथ ही यह शर्त भी थी कि यदि वे उसके एक भी वाक्य या विचारका उपयोग न करें तो मैं कुछ दुःख न मानूँ। वह न लम्बा हो और न छोटा, फिर भी उसमें कोई भी महत्त्वकी बात न छूटे। इन सब शर्तोंको पूरा करते हुए मुझे उनके भाषणके नोट तैयार करने पड़े। मैं यह कह दूँ कि उन्होंने मेरी भाषाका बिलकुल उपयोग नहीं किया। मैं यह आशा रखता भी कैसे कि अंग्रेजी भाषाके धुरन्धर विद्वान्

होकर श्री गोखले मेरी भाषाका थोड़ा भी उपयोग करेंगे? उन्होंने मेरे विचारोंका उपयोग किया, मैं यह भी नहीं कह सकता। किन्तु उन्होंने मेरे विचारोंकी उपयोगिता स्वीकार की, इससे मैंने अपने मनमें यह मान लिया कि उन्होंने मेरे विचारोंका कुछ-न-कुछ उपयोग किया होगा। किन्तु उनकी विचार-सरणी ऐसी थी कि उन्होंने कहीं मेरे विचारको स्थान दिया है या नहीं दिया है इसका पता मुझे नहीं लग सका। मैं गोखलेके सभी भाषणोंमें मौजूद रहा था, किन्तु मुझे कोई ऐसा प्रसंग याद नहीं आता जब मेरी इच्छा यह हुई हो कि यदि वे अमुक विचार या अमुक विशेषणका प्रयोग न करते तो अच्छा होता। उनकी विचारकी स्पष्टता, दृढ़ता, विनम्रता आदि उनके आत्यन्तिक परिश्रम और सत्यपरायणताका परिणाम थे।

जोहानिसबर्गमें केवल हिन्दुस्तानियोंकी विराट् सभा भी करनी जरूरी थी। मेरा यह आग्रह पहलेसे ही था कि हमें या तो मातृभाषामें बोलना चाहिए या राष्ट्रभाषा हिन्दुस्तानीमें। दक्षिण आफ्रिकामें इस आग्रहके कारण हिन्दुस्तानियोंसे मेरा सम्बन्ध सरल और निकट बन सका था। इसलिए मैं चाहता था कि श्री गोखले भी हिन्दुस्तानियोंके सामने हिन्दुस्तानी भाषामें बोलें तो अच्छा हो। मैं इस सम्बन्धमें गोखलेके विचारोंको जानता था। वे टूटी-फूटी हिन्दीमें अपना काम नहीं चला सकते थे इसलिए वे या तो मराठीमें बोलते या अंग्रेजीमें। उन्हें मराठीमें बोलना कृत्रिम लगा और यदि वे उसमें बोलते तो गुजरातियों और उत्तर भारतीय श्रोताओंके लिए उसका हिन्दुस्तानीमें तो अनुवाद करना ही होता। तब वे अंग्रेजीमें क्यों न बोलते? सौभाग्यसे मेरे पास एक ऐसा तर्क था जिससे वे मराठीमें बोलना स्वीकार कर सकते थे। जोहानिसबर्गमें कोंकणी मुसलमान बहुत रहते थे। कुछ महाराष्ट्रीय हिन्दू भी वहाँ थे ही। इन सबकी बहुत इच्छा थी कि गोखलेका मराठीमें भाषण सुनें। उन्होंने मुझसे कह रखा था कि मैं उनसे मराठीमें बोलनेकी प्रार्थना करूँ। मैंने उनसे कहा, आप मराठीमें बोलेंगे तो इन लोगोंको खुशी होगी और आप मराठीमें बोलें तो मैं उसका हिन्दुस्तानीमें अनुवाद करूँगा। इससे वे बड़े जोरसे हँस पड़े। आपका हिन्दुस्तानीका ज्ञान तो मुझे अच्छी तरह मालूम है। वह हिन्दुस्तानी आपको मुबारक रहे। किन्तु अब आप मराठीसे अनुवाद करेंगे? मुझे आप यह तो बतायें कि आपने इतनी मराठी कहाँसे सीख ली? मैंने कहा, जो बात आपने मेरी हिन्दुस्तानीके बारेमें कही वही मेरी मराठीके सम्बन्धमें भी समझें। मैं मराठीका एक शब्द भी नहीं बोल सकता। किन्तु मुझे जिस विषयका ज्ञान है यदि आप उस विषयमें मराठीमें बोलेंगे तो उसका आशय मैं अवश्य समझ जाऊँगा। आप देखेंगे कि मैं लोगोंके सम्मुख उसका अनर्थ तो कदापि ही नहीं करूँगा। मैं आपको अच्छी मराठी जाननेवाला अनुवादक अवश्य दे सकता हूँ, किन्तु आप उसे पसन्द नहीं करेंगे। इसलिए आप मुझे निभा लें, किन्तु बोलें मराठीमें ही। इन कोंकणी भाइयोंकी तरह मैं भी आपका मराठी भाषण सुननेके लिए लालायित हूँ। उन्होंने मुझे यह कहकर खुश कर दिया कि आप अपनी जिद जरूर पूरी करेंगे। यहाँ तो मैं आपके पल्ले पड़ा हूँ, इसलिए छूट नहीं सकता। इसके बाद उन्होंने ठेठ जंजीबारतक मराठीमें

ही भाषण दिये और मैं उनका विशेष रूपसे नियुक्त भाषान्तरकार रहा। हमें यथा-सम्भव मातृभाषामें और व्याकरणशुद्ध अंग्रेजीकी अपेक्षा व्याकरणकी भूलोंसे भरी टूटी-फूटी हिन्दीमें ही बोलना चाहिए, मैं यह बात उनके मनमें बैठा सका या नहीं, यह मैं नहीं जानता। किन्तु इतना जानता हूँ कि उन्होंने दक्षिण आफ्रिकामें मुझे खुश रखनेके लिए ही मराठीमें भाषण दिये। मैंने यह देखा कि भाषण देनेके बाद उनका जो परिणाम हुआ वह उनको पसन्द आया था और जहाँ सिद्धान्तका प्रश्न न हो वहाँ सेवकोंको खुश रखना एक अच्छी बात है, इसे श्री गोखलेने दक्षिण आफ्रिका-में अपने अनेक अवसरोंपर किये गये व्यवहारसे स्पष्ट कर दिया था।

अध्याय ३७

गोखलेका प्रवास — २

हमें जोहानिसबर्गसे[१] प्रिटोरिया जाना था। प्रिटोरियामें गोखलेको संघ सरकारका निमन्त्रण था। उसके अनुसार उन्हें ट्रान्सवाल होटलमें तय की हुई जगहमें ठहरना था। श्री गोखलेको यहाँ संघ सरकारके जिन मन्त्रियोंसे मिलना था उनमें जनरल बोथा और जनरल स्मट्स भी थे। जैसा ऊपर बताया, मेरा नियम यह था कि मैं उन्हें हर रोज सुबह दिनका कार्यक्रम बता देता अथवा वे पूछते तो रातको ही सूचित कर देता। मन्त्रियोंसे मिलना बहुत जिम्मेदारीका काम था। हम दोनोंने निश्चय किया था कि मुझे उनके साथ नहीं जाना चाहिए और इस तरहकी माँग भी नहीं करनी चाहिए। मेरी मौजूदगीसे मन्त्रियों और गोखलेके बीच कुछ-न-कुछ व्यवधान पड़ता और वे जी खोलकर स्थानीय हिन्दुस्तानियोंकी, और चाहें तो मेरी, जो भी भूलें मानते हों, न बता सकते। यदि वे कुछ और कहना चाहते हों तो उसे भी खुलकर न कह सकते। किन्तु इससे गोखलेकी जिम्मेदारी दूनी होती थी। समस्या यह थी कि यदि उनसे कोई तथ्यकी भूल हो अथवा उनके सामने कोई नया तथ्य प्रस्तुत किया जाये और उसका उत्तर उनसे न बन पड़े अथवा हिन्दुस्तानियोंकी ओरसे कोई बात मेरी अथवा दक्षिण आफ्रिकाके किसी जिम्मेदार हिन्दुस्तानी नेताकी अनुपस्थितिमें मंजूर करनी हो तो क्या होगा। किन्तु इसका हल श्री गोखलेने ही तत्काल निकाल लिया। मुझे उनके लिए अथसे लेकर इतितक हिन्दुस्तानियोंकी स्थितिका संक्षिप्त विवरण तैयार करना और हिन्दुस्तानी लोग कहाँतक झुकनेके लिए तैयार हैं यह लिखकर देना था। उसके अलावा यदि कोई प्रश्न उठे तो गोखले उसके सम्बन्धमें अपना अज्ञान स्वीकार कर लें, यह बात तय हुई और इसके साथ ही हम निश्चिन्त हो गये। अब काम केवल इतना करना रहा कि ऐसा विवरण तैयार कर दिया जाये और वे उसे पढ़ लें। किन्तु वह सब पढ़ने लायक वक्तकी गुंजाइश तो थी नहीं। मैं उसे कितना ही छोटा लिखता, फिर भी चारों उप-निवेशोंके हिन्दुस्तानियोंकी स्थितिका अठारह वर्षका इतिहास दस-बीस सफे लिखे

१. अंग्रेजीमें यहाँ वाक्य इस प्रकार है: "जोहानिसबर्गसे गोखले नेटाल गये और वहाँसे प्रिटोरिया।"

बिना कैसे दे सकता था? फिर विवरणको पढ़नेके बाद उन्हें कुछ प्रश्न भी सूझते ही। किन्तु उनकी स्मृति जितनी तीव्र थी उनकी श्रम करनेकी शक्ति भी उतनी ही प्रबल थी। उन्होंने रात-भर जागरण किया तथा पोलक और मुझसे[1] भी कराया। उन्होंने एक-एक बातकी पूरी जानकारी प्राप्त की और स्वयं सब बातें भलीभाँति समझी हैं या नहीं इसकी जाँच भी करा ली। वे अपने विचार मुझे बताते जाते थे। अन्तमें उन्हें सन्तोष हो गया। मैं तो निश्चिन्त था ही।

उन्होंने लगभग दो घंटे या उससे कुछ ज्यादा मन्त्रियोंसे बात की और वहाँसे आकर मुझसे कहा: "आपको एक वर्षके भीतर हिन्दुस्तान लौटना है। सब बातोंका फैसला हो गया है। काला कानून रद कर दिया जायेगा। प्रवासी कानूनमें से रंगभेद निकाल दिया जायेगा। तीन पौंडका व्यक्ति कर भी रद कर दिया जायेगा।" मैंने कहा: "मुझे इसमें बड़ा सन्देह है। इन मन्त्रियोंको जितना मैं समझता हूँ उतना आप नहीं समझते। आपकी आशावादिता मुझे प्रिय है, क्योंकि मैं स्वयं आशावादी हूँ, किन्तु मैं अनेक बार धोखा खा चुका हूँ, इस कारण इस सम्बन्धमें ऐसी आशा नहीं रख सकता। फिर भी भयकी कोई बात नहीं है। आप उनसे वचन ले आये, मेरे लिए इतना पर्याप्त है। मेरा धर्म केवल इतना ही है कि आवश्यकता हो, तब लड़ लूँ और यह लड़ाई न्यायकी है यह सिद्ध कर दूँ। यह सिद्ध करनेमें आपको मिला हुआ वचन मेरे लिए बहुत लाभदायक होगा और लड़ना आवश्यक हो जानेपर उसके कारण लड़नेमें हमारी शक्ति दुगुनी हो जायेगी। किन्तु बहुत-से हिन्दुस्तानियोंको जेल जाना पड़ेगा और ऐसा नहीं लगता कि एक वर्षके भीतर मैं हिन्दुस्तान लौट सकूँगा।"

इसपर गोखलेने कहा: "मैं जो कुछ कह रहा हूँ, इसमें अन्तर नहीं पड़ेगा। मुझे जनरल बोथाने वचन दिया है कि काला कानून रद कर दिया जायेगा और तीन पौंडी कर भी उठा दिया जायेगा। आपको बारह महीनेमें हिन्दुस्तान आना ही पड़ेगा। मैं आपका एक भी बहाना सुननेवाला नहीं हूँ।"

उन्होंने जोहानिसबर्गमें जो भाषण दिया वह प्रिटोरियाका दौरा करनेके बाद दिया था।

गोखले फिर डर्बन, पीटरमैरित्सबर्ग और अन्य स्थानोंमें गये। वे इन जगहोंमें भी बहुतसे गोरोंके सम्पर्कमें आये। उन्होंने किम्बर्लेकी हीरेकी खानें देखी। स्वागत समितिने किम्बर्ले और डर्बनमें भी जोहानिसबर्ग-जैसे भोज दिये थे और उनमें बहुतसे अंग्रेजोंने भाग लिया था। इस प्रकार गोखले हिन्दुस्तानियों और गोरों——दोनोंका मन जीतकर १७ नवम्बर, १९१२ को दक्षिण आफ्रिकाके तटसे रवाना हुए। मैं और कैलनबैक उनकी इच्छासे उन्हें जंजीबारतक पहुँचाने गये थे। हमने उनके लिए जहाजमें अनुकूल भोजनकी व्यवस्था की थी। मार्गमें डेलागोआबे, इनहामबेन और जंजीबार आदि बन्दरगाहोंमें उनका बहुत सम्मान किया गया था।

जहाजमें हमारी बातें केवल हिन्दुस्तानके सम्बन्धमें अथवा उसके प्रति हमारे कर्त्तव्यके सम्बन्धमें हुईं। उनकी सभी बातोंमें उनकी कोमल भावना, सत्यपरायणता

१. अंग्रेजीमें यहाँ है: "दूसरोंको भी. . .।"

और देशभक्तिकी झलक मिलती थी। मैंने देखा कि वे जहाजमें जो खेल खेलते थे उनमें भी उनकी भावना देश-सेवाकी अधिक रहती थी और उनमें पूर्णता तो होती ही थी।

हमें जहाजमें निश्चिन्ततासे बात करनेकी फुर्सत मिलती थी। इसमें उन्होंने मुझे हिन्दुस्तान आनेके लिए तैयार कर लिया था। उन्होंने हिन्दुस्तानके सभी नेताओंके चरित्रका विश्लेषण किया था। उनका यह वर्णन इतना यथार्थ था कि जब मुझे उन नेताओंके सम्बन्धमें निजी अनुभव हुआ तब मुझे उसमें और उनके इस विश्लेषणमें शायद ही कहीं अन्तरकी कोई बात मिली।

गोखलेके दक्षिण आफ्रिकाके प्रवासमें उनके साथ मेरे सहवासके ऐसे बहुतसे पवित्र संस्मरण हैं जिन्हें मैं यहाँ दे सकता हूँ; किन्तु सत्याग्रहके इतिहाससे उनका सम्बन्ध न होनेके कारण मुझे अपनी कलम अनिच्छापूर्वक रोकनी पड़ती है। जंजीबारमें उनसे अलग होना हम दोनोंके लिए बहुत दुःखजनक था; किन्तु देहधारियोंका निकटसे-निकट सहवास भी अन्ततोगत्वा टूटता ही है, यह समझकर कैलनबैकने और मैंने सन्तोष किया और यह आशा की कि गोखलेकी भविष्यवाणी फलेगी और हम दोनों एक वर्षमें हिन्दुस्तान जा सकेंगे। किन्तु यह असम्भव हो गया।

ऐसा होनेपर भी गोखलेकी दक्षिण आफ्रिकाकी यात्रासे हम अधिक दृढ़ हुए और जब लड़ाई फिर तीव्र रूपमें आरम्भ हुई तब हम उसका मर्म और उसकी आवश्यकता अधिक समझे। यदि गोखलेने दक्षिण आफ्रिकाकी यात्रा न की होती और वहाँके मन्त्रियोंसे उनकी भेंट न हुई होती तो हम तीन पौंडके व्यक्ति करको लड़ाईका विषय नहीं बना सकते थे। यदि काला कानून रद होनेके बाद सत्याग्रह-की लड़ाई बन्द हो जाती तो हमें तीन पौंडके करके सम्बन्धमें नया सत्याग्रह करना पड़ता और उसमें असीम कष्ट सहना पड़ता। इतना ही नहीं, बल्कि उसके लिए लोग तुरन्त तैयार हैं भी या नहीं इस सम्बन्धमें भी शंका तो थी ही। इस करको रद कराना स्वतन्त्र हिन्दुस्तानियोंका कर्त्तव्य था। हम इसे रद करवानेके लिए आवेदन-निवेदनके सब उपाय काममें ला चुके थे। हमपर यह कर सन् १८९५से लागू था, किन्तु घोरसे-घोर कष्ट भी लम्बे अर्सेतक कायम रहें तो लोग उसके अभ्यस्त हो जाते हैं और उसका विरोध करना धर्म है, उन्हें यह समझाना मुश्किल हो जाता है और जगतको भी उसकी जघन्यता समझाना उतना ही मुश्किल होता है। गोखलेके प्राप्त किये हुए वचनसे सत्याग्रहियोंका मार्ग सरल हो गया। सरकारका अपने वचनके अनुसार इस करको रद न करना वचन-भंग था और उससे लड़ाईका प्रबल कारण मिलता था। यही हुआ भी। सरकारने एक सालके भीतर इस करको रद नहीं किया। इतना ही नहीं, बल्कि यह स्पष्ट घोषणा की कि यह कर रद किया ही नहीं जा सकता।

इसलिए गोखलेकी यात्रासे तीन पौंडी करको सत्याग्रहियोंके द्वारा रद करानेमें सहायता मिली, इतना ही नहीं, बल्कि इस यात्रासे गोखले दक्षिण आफ्रिकाके प्रश्नके विशेषज्ञ माने गये। दक्षिण आफ्रिकाके सम्बन्धमें उनकी रायका महत्त्व बढ़ा और दक्षिण

आफ्रिकाके हिन्दुस्तानियोंके सम्बन्धमें अपने निजी ज्ञानके कारण वे इस सम्बन्धमें हिन्दुस्तानका कर्त्तव्य भी अधिक समझ सके और हिन्दुस्तानको समझानेमें भी समर्थ हुए। जब यह लड़ाई फिर आरम्भ हुई तब हिन्दुस्तानसे धनकी वर्षा हुई। लॉर्ड हार्डिंगने भी सत्याग्रहियोंके प्रति सहानुभूति बताई और उन्हें प्रेरणा दी।[1] श्री एन्ड्रयूज और श्री पियर्सन हिन्दुस्तानसे दक्षिण आफ्रिका आये। गोखलेकी यात्रा न होती तो यह सब होना सम्भव नहीं था। वचनभंग किस तरह किया गया और उसके बाद क्या हुआ, यह सब नये प्रकरणका विषय है।

अध्याय ३८

वचन-भंग

दक्षिण आफ्रिकाकी लड़ाईमें, सत्याग्रहमें सिद्धान्तोंका बहुत ही विचार रखा गया था और उसमें सरकारकी प्रचलित नीतिके विरुद्ध कुछ भी नहीं था। इतना ही नहीं, बल्कि इस बातका भी ध्यान रखा गया था कि सरकारको अनुचित रूपसे कष्ट न दिया जाये। उदाहरणके लिए, चूँकि काला कानून केवल ट्रान्सवालके हिन्दुस्तानियोंपर ही लागू था, इसलिए सत्याग्रहकी यह नीति थी कि उसमें केवल ट्रान्सवालके हिन्दुस्तानी ही भाग लें। नेटाल, केप कालोनी आदि उपनिवेशोंसे सत्याग्रही भरती करनेका कोई भी प्रयत्न नहीं किया गया; वहाँसे लोगोंने इस बारेमें प्रस्ताव भेजे, तब भी उन्हें स्वीकार नहीं किया गया। लड़ाई भी इस कानूनको रद करानेतक ही मर्यादित रखी गई। इस बातको न तो गोरे समझ सकते थे और न हिन्दुस्तानी। आरम्भमें हिन्दुस्तानियोंकी ओरसे यह माँग भी की जाती थी कि यदि लड़ाई शुरू करनेके बाद काले कानूनके अतिरिक्त अन्य कष्ट भी लड़ाईके उद्देश्योंमें सम्मिलित किये जा सकें तो क्यों न किये जायें? मैंने इन लोगोंको धीरजसे समझाया कि इससे सत्यका भंग होता है और जहाँ सत्यका ही आग्रह हो वहाँ सत्यके भंगकी बात भी कैसे सोची जा सकती है? शुद्ध लड़ाईमें लड़ाईके दरम्यान सैनिकोंका बल बढ़ता दिखाई दे तो भी आरम्भमें रखे हुए उद्देश्यसे आगे नहीं बढ़ा जा सकता। इसके विपरीत जिस उद्देश्यको लेकर लड़ाई लड़ी गई हो वह उद्देश्य समय बीतनेके साथ-साथ सैनिकोंका बल क्षीण होनेपर भी त्यागा नहीं जा सकता। दक्षिण आफ्रिकाकी लड़ाईमें इन दोनों सिद्धान्तोंपर पूरा आचरण किया गया था। लड़ाईके आरम्भमें जिस बलको ध्यानमें रखकर उद्देश्य स्थिर किया गया था वह बल पीछे झूठा निकला, यह हम देख चुके हैं; और यह भी देख चुके हैं कि शेष बचे हुए मुट्ठीभर सत्याग्रहियोंने फिर भी लड़ाई कायम रखी। इस प्रकार जूझना अपेक्षाकृत आसान होता है। किन्तु बलमें वृद्धि होनेपर भी उद्देश्यमें वृद्धि न करना

१. २४ नवम्बर १९१३ को वाइसराय लॉर्ड हार्डिंगने मद्रासमें दिये गये अपने भाषणमें दक्षिण आफ्रिकाके सत्याग्रहियोंके प्रति गहरी सहानुभूति व्यक्त की थी। देखिए खण्ड १२, परिशिष्ट १६।

अधिक कठिन होता है और उसमें अधिक संयमकी आवश्यकता होती है। ऐसे प्रलो-भन दक्षिण आफ्रिकामें हमारे सामने अनेक स्थानोंपर आये थे; किन्तु मैं निश्चयपूर्वक कह सकता हूँ कि उनका लाभ एक बार भी नहीं उठाया गया। इसीलिए मैंने बहुत बार कहा है कि सत्याग्रहीके लिए तो एक ही निश्चित उद्देश्य हो सकता है। वह न उसमें कमी कर सकता है और न उसको बढ़ा सकता है। उसमें न क्षयके लिए अवकाश होता है और न वृद्धिके लिए। मनुष्य अपने लिए जो मापदण्ड स्थिर करता है उसे संसार भी उसी मापदण्डसे नापने लगता है। सत्याग्रही ऐसी सूक्ष्म नीतिका दावा करते हैं, जब सरकारको यह बात मालूम हो गई तो उसने सत्याग्रहियोंको उनके बनाये मापदण्डसे नापना शुरू किया, यद्यपि वह उस नीतिका एक भी सिद्धान्त स्वयं अपने ऊपर लागू नहीं करती थी। उसने उनपर दो-चार बार नीतिभंग करनेका आरोप लगाया। यह बात एक बालक भी समझ सकता है कि काले कानूनके बाद हिन्दुस्तानियोंके विरुद्ध नये कानून बनाये जायें तो उनका समावेश लड़ाईमें किया जा सकता है। फिर भी जब नये आनेवाले हिन्दुस्तानियोंपर नये प्रतिबन्ध लगाये गये और वे लड़ाईके उद्देश्योंमें सम्मिलित किये गये तब सरकारने हिन्दुस्तानियोंपर नये प्रश्न उठानेका आरोप लगाया। उसका यह आरोप बिलकुल अनुचित था। नये आनेवाले हिन्दुस्तानियोंपर ऐसे नियन्त्रण लगनेपर, जो उनपर पहले नहीं लगे थे, हमारा उन्हें लड़ाईमें सम्मिलित करनेका अधिकार होना उचित ही था और हम देख चुके हैं कि इसी कारण सोराबजी आदि ट्रान्सवालमें प्रविष्ट हुए। सरकारसे यह बात सहन नहीं हो सकती थी; किन्तु निष्पक्ष लोगोंको इस कदमका औचित्य समझानेमें तनिक भी कठिनाई नहीं हुई थी। ऐसा अवसर गोखलेके जानेके बाद फिर सम्मुख आया। गोखलेने तो खयाल किया था कि तीन पौंडी कर एक वर्षमें रद कर ही दिया जायेगा[1] और उनके जानेके बाद दक्षिण आफ्रिकी संसदका जो अधिवेशन होगा उसमें उसे रद करनेका कानून पेश कर दिया जायेगा। इसके बजाय जनरल स्मट्सने संसदके उस अधिवेशनमें यह घोषणा की कि चूँकि नेटालके गोरे इस कानूनको रद करनेके लिए तैयार नहीं हैं, इसलिए दक्षिण आफ्रिकी सरकार उसे रद करनेका कानून पास करनेमें असमर्थ है। वास्तवमें कोई ऐसी बात नहीं थी। संघ संसदमें चार उपनिवेश हैं जिनमें से एक नेटाल है। उसमें नेटालके सदस्योंकी बात नहीं चल सकती थी। फिर मन्त्रि-मण्डलका कर्तव्य था कि वह कानूनको रद करनेकी बात संसदमें नामंजूर होनेतक तो चलाता ही; किन्तु जनरल स्मट्सने ऐसा नहीं किया। इसमें हमें इस क्रूर करको भी लड़ाईके कारणोंमें सम्मिलित करनेका सुअवसर सहज ही मिल गया। इसके दो कारण थे। यदि सरकार लड़ाईके बीचमें कोई वचन दे और फिर उस वचनको भंग करे तो वह वचनभंग चालू सत्याग्रहमें सम्मिलित किया जा सकता है, यह एक कारण था। दूसरा कारण यह था कि इस वचनभंगसे हिन्दुस्तानके गोखले-जैसे प्रतिष्ठित प्रतिनिधिका अपमान होता था और उनका अपमान सारे हिन्दुस्तानका अपमान था; अतः यह अपमान सहन नहीं किया जा सकता था। यदि केवल पहला ही कारण

१. देखिए खण्ड ११, परिशिष्ट २२।

होता और सत्याग्रहियोंमें शक्ति न होती तो वे इस करकी मंसूखीके लिए सत्याग्रहके शस्त्रका उपयोग करनेसे विरत हो सकते थे; किन्तु हिन्दुस्तानका अपमान होनेपर उसे सहन करना तो सम्भव नहीं था। इस कारण सत्याग्रहियोंने तीन पौंडी करको लड़ाईमें सम्मिलित करना अपना धर्म समझा, और जब तीन पौंडी करको लड़ाईमें स्थान मिला तब गिरमिटिया हिन्दुस्तानियोंको भी सत्याग्रहमें भाग लेनेका अवसर मिला। पाठकोंको यह बात ध्यानमें रखनी चाहिए कि लोग अभीतक लड़ाईसे बाहर रखे गये थे; इससे एक ओर लड़ाईका बोझा और दूसरी और सैनिकोंकी संख्या बढ़नेकी सम्भावना भी हो गई।

गिरमिटियोंमें अबतक सत्याग्रहकी कोई भी चर्चा नहीं की गई थी; तब उन्हें उसका शिक्षण कैसे दिया जाता? वे निरक्षर होनेसे 'इंडियन ओपिनियन' अथवा कोई दूसरा अखबार कैसे पढ़ते? ऐसा होते हुए भी मैंने देखा कि ये गरीब लोग सत्याग्रहको ध्यानसे देख रहे थे और जो-कुछ हो रहा था उसे समझते थे। उनमें से कुछको लड़ाईमें सम्मिलित न होनेका दुःख भी होता था। जब वचन-भंग हुआ और तीन पौंडी करको लड़ाईके कारणोंमें सम्मिलित करनेका नोटिस दे दिया गया तब मुझे इस बातका बिलकुल पता नहीं था कि उनमें से कौन-कौन लोग लड़ाईमें सम्मिलित होंगे।

मैंने वचन-भंगकी बात गोखलेको लिखी। उन्हें इससे अत्यन्त दुःख हुआ। मैंने उन्हें लिखा कि आप निश्चिन्त रहें; हम शरीरमें प्राण रहते जूझेंगे और इस करको रद करायेंगे। केवल इतना ही हुआ कि मेरा एक वर्षमें हिन्दुस्तान जाना स्थगित हो गया और कब जाना होगा यह कहना असम्भव हो गया।[1] गोखले तो अंक-शास्त्री थे। उन्होंने मुझसे उन लोगोंके ज्यादासे-ज्यादा और कमसे-कम नाम भेजनेको कहा जो लड़ाईमें भाग ले सकते थे। जहाँतक मुझे याद है, मैंने इसपर उन्हें ज्यादासे-ज्यादा पैंसठ या छियासठ और कमसे कम सोलह नाम भेजे थे। मैंने उन्हें यह भी लिखा था कि इतनी छोटीसी संख्याके लिए मैं हिन्दुस्तानसे आर्थिक सहायताकी अपेक्षा नहीं रखता। मैंने उनसे प्रार्थना की कि वे हमारे सम्बन्धमें चिन्ता न करें और अपने शरीरको अनुचित कष्ट न दें। दक्षिण आफ्रिकासे लौटकर जब वे बम्बई पहुँचे तब उनपर कमजोरी दिखानेके और अन्य कई तरहके आक्षेप किये गये थे। इसकी जानकारी मुझे समाचारपत्रोंसे और अन्य प्रकारसे मिल चुकी थी। इसलिए मैं चाहता था कि वे हमें हिन्दुस्तानसे धन भिजवानेके लिए कोई भी आन्दोलन न करें।[2] किन्तु गोखलेने मुझे यह कड़ा उत्तर दिया, "जैसे आप दक्षिण आफ्रिकामें अपना धर्म समझते हैं, वैसे हिन्दुस्तानमें हम भी अपना कुछ धर्म समझते हैं। हमें क्या करना उचित है, मैं आपको यह नहीं कहने दूँगा। मैंने तो केवल वहाँकी स्थिति जाननी चाही थी; हमारी ओरसे क्या किया जाना चाहिए, इस सम्बन्धमें सलाह नहीं माँगी थी।" इन शब्दोंका मर्म मैं समझ गया। मैंने इस सम्बन्धमें इसके बाद न कोई शब्द कहा और न लिखा।

१. देखिए खण्ड ११, पृष्ठ ४५७-८।
२. देखिए खण्ड १२, पृष्ठ ३९-४० और पृष्ठ १०९-११।

उन्होंने उस पत्रमें मुझे आश्वासन दिया था और चेतावनी भी दी थी। उन्हें भय था कि जब इस तरह वचन-भंग हुआ है तब लड़ाई बहुत लम्बी चलेगी। हम मुट्ठी-भर लोग कबतक टक्कर ले सकेंगे, उन्हें यह शंका भी थी। हमने वहाँ तैयारियाँ कीं। इस बारकी लड़ाईमें धीरजसे बैठनेकी तो गुंजाइश ही न थी। कैद काटनी पड़ेगी, हमने यह बात भी समझ ली थी। हमने टॉल्स्टॉय फार्मको बन्द करनेका निश्चय किया। कुछ कुटुम्ब अपने पुरुषोंके जेलसे छूट जानेपर अपने-अपने घर चले गये। बाकी जो बचे वे मुख्यतः फीनिक्सवासी थे, इसलिए अबसे सत्याग्रहियोंका केन्द्र फीनिक्समें रखनेका निश्चय किया गया। यह निश्चय इसलिए भी किया गया था कि यदि तीन पौंडकी लड़ाईमें गिरमिटियोंको भी लेना है तो उनसे मिलते-जुलते रहनेके लिए नेटालमें रहना अधिक सुविधाजनक हो सकेगा।

अभी लड़ाई शुरू करनेकी तैयारियाँ चल ही रही थीं कि इतनेमें एक नया विघ्न उपस्थित हुआ और उससे स्त्रियोंको भी लड़ाईमें सम्मिलित होनेका अवसर मिला। कुछ वीर स्त्रियाँ सम्मिलित होनेकी माँग कर रही थीं और जब फेरीका परवाना दिखाये बिना, फेरी लगानेपर जेल जाना शुरू किया गया था तब फेरी करनेवालोंकी स्त्रियोंने जेल जानेकी इच्छा प्रकट की थी। किन्तु उस समय विदेशमें स्त्रियोंको जेल भेजना हम सबको अनुचित लगता था। हमें उन्हें जेलमें भेजनेका कारण भी दिखाई नहीं देता था और उस समय मुझमें तो उन्हें जेलमें ले जानेकी हिम्मत भी नहीं थी। फिर हमें ऐसा भी लगता था कि जो कानून मुख्यतः पुरुषोंपर ही लागू होता है, उसे रद करवानेके लिए स्त्रियोंकी आहुति देना पुरुषोंके लिए अशोभनीय है। किन्तु अब एक ऐसी घटना हो गई जिससे स्त्रियोंका विशेष रूपसे अपमान होता था। हमें यह प्रतीत हुआ कि यदि उस अपमानको दूर करनेके लिए स्त्रियाँ भी अपनी आहुति दें तो वह अनुचित न होगा।

अध्याय ३९

विवाह विवाह नहीं रहा

एक ऐसी घटना हुई जिसकी कल्पना किसीने भी नहीं की थी, मानो इस रूपमें ईश्वर अदृश्य रूपसे हिन्दुस्तानियोंकी जीतकी सामग्री सँजो रहा था और दक्षिण आफ्रिकाके गोरोंके अन्यायको और भी स्पष्ट करना चाहता था। हिन्दुस्तानसे बहुतसे विवाहित मनुष्य दक्षिण आफ्रिका आये थे और कुछ देशमें विवाह करके वापिस लौटे थे। हिन्दुस्तानमें सामान्यतः विवाह दर्ज करानेका नियम नहीं है। यहाँ तो धार्मिक विधि पर्याप्त मानी जाती है। दक्षिण आफ्रिकामें भी हिन्दुस्तानियोंके सम्बन्धमें इसी प्रथाको कायम रखना उचित था। चालीस वर्षसे हिन्दुस्तानी दक्षिण आफ्रिकामें जाकर बस रहे थे और वहाँ उनके विभिन्न धर्मोंके अनुसार किये गये विवाह कभी अवैध नहीं माने गये थे। किन्तु इस समय एक मुकदमेमें केपके सर्वोच्च न्यायालयके न्यायाधीश सर्लने १४ मार्च, १९१३ को यह निर्णय दिया कि दक्षिण आफ्रिकामें ईसाईधर्मके अनुसार

किया गया विवाह — अर्थात् विवाह-अधिकारीके यहाँ दर्ज किया गया विवाह — ही वैध है और उसके अतिरिक्त अन्य विवाहके लिए वहाँ स्थान नहीं है।[1] इस प्रकार हिन्दुओं, मुसलमानों और पारसियों आदिके धर्मविधिसे किये गये विवाह उक्त भयंकर निर्णयके कारण दक्षिण आफ्रिकामें अवैध हो गये और इससे उस कानूनके अनुसार दक्षिण आफ्रिकामें बहुत-सी विवाहित स्त्रियोंका दर्जा अपने पतियोंकी पत्नीका न रहकर उनकी रखैलका हो गया और उनकी सन्तान भी पैतृक सम्पत्ति पानेके अधिकारसे वंचित हो गई। इस स्थितिको न स्त्रियाँ सहन कर सकती थीं और न पुरुष। इससे दक्षिण आफ्रिकामें रहनेवाले हिन्दुस्तानियोंमें बहुत उत्तेजना फैली। मैंने अपने दस्तूरके मुताबिक सरकारसे पूछा[2] कि वह न्यायाधीश सर्लके इस निर्णयको स्वीकार करेगी; अथवा कानूनके उनके द्वारा किये हुए अर्थको वह अनर्थ मानती हो तो नया कानून बनाकर हिन्दुओं और मुसलमानों आदिके धर्मविधिसे किये गये विवाहोंको हिन्दुस्तानकी तरह वैध मान लेगी? इस समय सरकारका रुख ऐसा था कि वह सुनवाई कर ही नहीं सकती थी; अतः उसका उत्तर नकारात्मक आया।

न्यायमूर्ति सर्लके उक्त निर्णयके विरुद्ध अपील की जाये या नहीं, इसपर विचार करनेके लिए सत्याग्रह समितिकी बैठक हुई। अन्तमें समितिने निश्चय किया कि इस मामलेमें अपील की ही नहीं जा सकती। यदि अपील करनी हो तो सरकार करे; या वह चाहे तो हिन्दुस्तानी भी अपील कर सकते हैं, किन्तु यह तभी होगा जब उसका वकील (अटर्नी जनरल) खुले तौरपर हिन्दुस्तानियोंका पक्ष ले। इससे भिन्न स्थितियोंमें अपील करना एक प्रकारसे हिन्दुओं और मुसलमानोंके विवाहोंकी अवैधताको सहन करनेके समान होगा। फिर यदि अपील की जाये और वह अस्वीकृत हो तो सत्याग्रह ही करना होगा। अतः ऐसे अपमानके सम्बन्धमें अपीलका सवाल ही नहीं उठता।

इसके लिए शुभ मुहूर्त अथवा शुभ दिनकी प्रतीक्षा नहीं की जा सकती थी। स्त्रियोंका अपमान होनेपर धैर्य कैसे रखा जाता? अतः यह निश्चय किया गया कि थोड़े बहुत जो भी सत्याग्रही मिलें उनको लेकर उग्र रूपमें सत्याग्रह आरम्भ कर दिया जाये। अब स्त्रियोंको लड़ाईमें सम्मिलित होनेसे नहीं रोका जा सकता था। यहाँतक कि उन्हें लड़ाईमें भाग लेनेके लिए निमन्त्रित करनेका निश्चय किया गया। सबसे पहले जो बहनें टॉल्स्टॉय फार्ममें रह चुकी थीं वे आमन्त्रित की गईं। वे तो लड़ाईमें सम्मिलित होनेके लिए तड़प रही थीं। मैंने उन्हें लड़ाईकी सब जोखिमोंका आभास दे दिया और यह समझा दिया कि खाने-पीने, कपड़ा पहनने और सोने-बैठने पर भी प्रतिबन्ध रहेगा। मैंने उन्हें यह चेतावनी भी दे दी कि जेलोंमें उन्हें सख्त काम दिया जा सकता है, उनसे कपड़े धुलाये जा सकते हैं और जेल अधिकारी उनका अपमान कर सकते हैं, आदि। किन्तु ये बहनें किसी भी बातसे नहीं डरीं। वे सभी वीर थीं। उनमें से एकको कुछ महीनेका गर्भ भी था और कुछके बच्चे भी थे।

१. देखिए खण्ड ११, पृष्ठ ४९४-५। सर्ल-निर्णयके पाठके लिए देखिए खण्ड १२, परिशिष्ट १।
२. सरकारके साथ किये गये तत्सम्बन्धी पत्र-व्यवहारके लिए देखिए खण्ड १२।

ऐसी बहनोंने भी लड़ाईमें भाग लेनेका आग्रह किया। मैं उनमें से किसीको रोकनेमें असमर्थ था। वे सब बहनें तमिल थीं। उनके नाम निम्न लिखित हैं:

१. श्रीमती थम्बी नायडू, २. श्रीमती एन० पिल्ले, ३. श्रीमती के० मुरुगेसा पिल्ले, ४. श्रीमती ए० पेरुमल नायडू, ५. श्रीमती पी० के० नायडू, ६. श्रीमती के० चिन्नास्वामी पिल्ले, ७. श्रीमती एन० एस० पिल्ले, ८. श्रीमती आर० ए० मुदलिंगम्,[1] ९. श्रीमती भवानीदयाल १०, कुमारी मीनाक्षी पिल्ले और ११. कुमारी बैंकुम मुरुगेसा पिल्ले।

इनमें से छः बहनोंकी गोदमें दूध-पीते बच्चे थे।

अपराध करके जेल जाना आसान है; किन्तु निर्दोष होते हुए गिरफ्तार होना एक मुश्किल चीज है। अपराधी गिरफ्तार होना नहीं चाहता, इसलिए पुलिस उसका पीछा करती है और उसे गिरफ्तार करती है। स्वेच्छासे और निर्दोष रहते हुए जेल जानेवालेको पुलिस मजबूर होनेपर ही गिरफ्तार करती है। इन बहनोंका पहला प्रयत्न व्यर्थ गया। उन्होंने वेरीनिगिगसे ऑरेंज फ्री स्टेटकी सीमामें बिना परवाना प्रवेश किया; किन्तु उन्हें किसीने गिरफ्तार नहीं किया। उन्होंने बिना परवाना लिये फेरीकी, किन्तु पुलिसने फिर भी उन्हें गिरफ्तार नहीं किया। अब उनके सामने यह समस्या आई कि वे गिरफ्तार कैसे हों। गिरफ्तार होनेके लिए तैयार लोगोंकी संख्या बहुत नहीं थी और जो तैयार थे उनकी गिरफ्तारी आसान न थी।

अन्तमें हमने जिस रास्तेको अपनानेका विचार किया था उसे काममें लेनेका निश्चय किया और हमारा यह कदम बहुत कारगर निकला। मैंने सोचा था कि मैं अपने फीनिक्समें रहे हुए सब साथियोंकी अन्तिम समयमें आहुति दूँगा। मेरी दृष्टिमें यह अन्तिम त्याग था। फीनिक्समें रहनेवाले मेरे अन्तरंग साथी और सगे-सम्बन्धी थे। मैंने यह खयाल किया था कि अखबार चलानेके लिए आवश्यक लोगोंको और सोलह वर्षसे कम आयुके लड़कों और लड़कियोंको छोड़कर बाकी सबको जेल भेज दूँगा। मेरे पास इससे अधिक त्याग करनेके साधन नहीं थे। मैंने गोखलेको जिन आखिरी सोलह लोगोंके नाम भेजे थे वे इन्हीं लोगोंमें से थे। इस टुकड़ीको ट्रान्सवालमें भेजकर बिना परवाने प्रवेश करनेके अपराधमें गिरफ्तार कराना था। हमें भय था कि यदि इस कार्रवाईकी बात जाहिर की जायेगी तो सरकार इन लोगोंको गिरफ्तार न करेगी। इसलिए मैंने यह बात दो-चार मित्रोंके अतिरिक्त अन्य किसीको भी नहीं बताई थी। पुलिस अधिकारी सीमा पार करते समय सदा नाम और पता पूछता था। इस बार यह योजना भी की गई थी कि उसे नाम और पता न बताया जाये। अधिकारीको नाम और पता न बताना भी अपराध था। भय था कि नाम और पता बतानेपर पुलिस यह जान लेगी कि वे मेरे सगे-सम्बन्धी हैं तो उन्हें गिरफ्तार नहीं करेगी। इसलिए नाम और पता न बतानेका विचार किया गया था। इस कदमके साथ-साथ जो बहनें ट्रान्सवालमें गिरफ्तार होनेका प्रयत्न कर रही थीं उन्हें नेटालमें प्रवेश करना था। जैसे नेटालसे ट्रान्सवालमें बिना परवाना प्रवेश करना अपराध था, वसे ही ट्रान्स-

१. खण्ड १२, पृष्ठ २३७की पादटिप्पणीमें इन महिलाओंमें श्रीमती रामलिंगम्का नाम दिया गया है।

वालसे नेटालमें बिना परवाना प्रवेश करना अपराध था। इसलिए यह तय किया गया कि इन बहनोंको यदि पुलिस गिरफ्तार करे तो वे नेटालमें गिरफ्तार हो जायें और यदि गिरफ्तार न करे तो वे नेटालमें कोयला खानोंके केन्द्र न्यू कैसिलमें जाकर मजदूरोंसे हड़ताल करनेका आग्रह करें। इन बहनोंकी मातृभाषा तमिल थी और उन्हें थोड़ी-बहुत हिन्दुस्तानी भी आती थी। मजदूरोंमें बहुत बड़ा हिस्सा मद्रास अहातेके तमिल और तेलुगू भाषी प्रदेशका था और उत्तर भारतके लोगोंकी संख्या भी खासी थी। मैंने अपने मनमें व्यूह-रचना की थी कि यदि मजदूर इन बहनोंकी प्रार्थना मानकर काम छोड़ देंगे तो सरकार मजदूरोंके साथ-साथ उनको भी गिरफ्तार किये बिना न रहेगी और इससे मजदूरोंमें उत्साह बढ़ना भी बहुत सम्भव है। मैंने यह व्यूह-रचना ट्रान्सवालकी उन बहनोंको पूरी तरह समझा भी दी थी।

फिर मैं फीनिक्समें गया। मैंने फीनिक्समें सबके साथ बैठकर बात की। मुझे पहले तो फीनिक्समें रहनेवाली बहनोंसे सलाह करनी थी। बहनोंको जेलमें भेजनेका कदम बहुत खतरनाक है, यह मैं जानता था। फीनिक्समें रहनेवाली बहुत-सी बहनें गुजराती थीं; इसलिए वे ट्रान्सवालकी उन बहनोंकी तरह जिनका जिक्र मैं ऊपर कर चुका हूँ, कसी हुई और अनुभवी नहीं मानी जा सकती थीं। फिर एक बात यह भी थी कि इनमें से बहुत-सी मेरी रिश्तेदार थीं, इसलिए यह हो सकता था कि वे केवल मेरा लिहाज करके जेल जानेका विचार कर लेतीं और पीछे संकटके समय डरकर अथवा जेलमें घबराकर माफी माँगतीं। यदि वे ऐसा करतीं तो उससे मुझे आघात पहुँचता और लड़ाई बिलकुल कमजोर पड़ जाती। मैंने निश्चय किया था कि मैं अपनी पत्नीको इसके लिए न कहूँगा, क्योंकि वह 'न' तो कर ही नहीं सकती थी और यदि 'हाँ' करती तो वह किस हदतक आन्तरिक है यह कहना मुश्किल होता। ऐसे जोखिमके काममें पत्नी अपने-आप कदम उठाये तो ही उसे पतिको स्वीकार करना चाहिए। और यदि वह कोई कदम न उठाये तो पतिको उससे तनिक भी दुःखी नहीं होना चाहिए। मैं इस बातको समझता था इसलिए मैंने उससे इस बारेमें कोई बात न करनेका निश्चय किया था। मैंने दूसरी बहनोंसे बातचीत की। वे ट्रान्सवालकी बहनोंकी तरह तत्काल तैयार हो गईं। उन्होंने मुझे विश्वास दिलाया कि उन्हें चाहे जितने कष्ट सहने पड़ें फिर भी वे अपनी कैदकी अवधि पूरी करेंगी। इस पूरी बातचीतका सार मेरी पत्नीको भी मालूम हो गया, अतः उसने मुझसे कहा : "आप इस बारेमें मुझसे बात नहीं कर रहे हैं, इससे मुझे दुःख होता है। मुझमें ऐसी क्या त्रुटि है जिससे मैं जेल नहीं जा सकती? आपने इन बहनोंको जो रास्ता अपनानेकी सलाह दी है मुझे भी वही रास्ता अपनाना है।" मैंने कहा : "मेरा विचार तुम्हें दुःखी करनेका हो ही नहीं सकता। इसमें अविश्वास करनेकी बात भी नहीं है। मैं तो तुम्हारे जेल जानेसे प्रसन्न ही होऊँगा। किन्तु तुम मेरे कहनेसे जेल गई हो, इसकी कल्पना भी मुझे सह्य नहीं होती। यह कार्य सबको अपने अन्तर-बलसे ही करना चाहिए। यदि तुम मेरे कहनेके कारण स्वभावसे मेरी बात रखनेके लिए गिरफ्तार हो जाओ, फिर अदालतमें खड़ी होते ही काँप जाओ और हिम्मत हार बैठो

अथवा जेलके कष्टोंसे त्रस्त हो जाओ तो मैं इसमें तुम्हें तो दोषी नहीं मानूँगा; किन्तु मेरा क्या हाल होगा? तब मैं तुमको किस तरह अपना सकूँगा और संसारके सामने किस तरह खड़ा रह सकूँगा? मैंने तुम्हें इस भयसे ही जेल जानेके लिए नहीं कहा है।" इसका उत्तर मुझे यह मिला: "मैं हिम्मत हारकर जेलसे छूटूँ तो आप मुझे न अपनायें। मेरे बेटे यह कष्ट सहन कर सकते हैं, आप सब सहन कर सकते हैं, अकेली मैं ही इसे सहन न कर सकूँगी, आप यह बात कैसे सोच सकें? मुझे तो इस लड़ाईमें अवश्य जाना है।" मैंने उत्तर दिया: "तब मैं भी तुमको इसमें अवश्य ही सम्मिलित करूँगा। तुम मेरी शर्तें तो जानती ही हो। तुम्हें मेरा स्वभाव भी मालूम है। तुम्हें अब भी विचार करना हो तो फिर विचार कर लो और पूरा विचार करनेपर इसमें सम्मिलित न होना चाहो तो तुम उसके लिए स्वतन्त्र हो। यह भी समझ लो कि निश्चय बदलनेमें कोई लज्जाकी बात नहीं है।" मुझे इसका उत्तर मिला, "विचार तो कुछ करना है ही नहीं; यह मेरा निश्चय ही है।"

फीनिक्समें जो दूसरे लोग रहते थे मैंने उनसे भी कह दिया कि वे भी स्वतन्त्र निश्चय करें। लड़ाई थोड़े दिन चले, चाहे बहुत दिन, फीनिक्स रहे या बरबाद हो, जेल जानेवाले तन्दुरुस्त रहें अथवा बीमार पड़ें; किन्तु कोई भी फिर कदम वापस नहीं ले सकेगा। मैंने यह शर्त बार-बार और बहुत तरहसे सबको समझा दी। सब तैयार हो गये। फीनिक्ससे बाहरके केवल एक रुस्तमजी जीवनजी घोरखोदू थे (वे काकाजी कहे जाते थे)। मैं उनसे इस बातचीतको छुपाकर नहीं रख सकता था। काकाजी पीछे रहते, यह कैसे हो सकता था। वे जेलमें हो आये थे; किन्तु उनका आग्रह फिर जेल जानेका था। इस टुकड़ीके लोगोंके नाम ये थे:

१. सौ० कस्तूरबाई मोहनदास गांधी, २. सौ० जयकुँवर मणिलाल डाक्टर, ३. सौ० काशी छगनलाल गांधी, ४. सौ० सन्तोक मगनलाल गांधी, ५. श्री पारसी रुस्तमजी जीवनजी घोरखोदू, ६. श्री छगनलाल खुशालचन्द गांधी, ७. श्री रावजीभाई मणिभाई पटेल, ८. श्री मगनभाई हरिभाई पटेल, ९. श्री सॉलोमन रायप्पन, १०. भाई राजू गोविन्द, ११. भाई रामदास मोहनदास गांधी, १२. भाई शिवपूजन बद्री, १३. भाई गोविन्द राजुलू, १४. श्री कुप्पुस्वामी मूनलाइट मुदलियार, १५. भाई गोकुलदास हंसराज और १६. रेवाशंकर रतनसी सोढा

इसके बाद क्या हुआ यह अगले प्रकरणमें देखें।

अध्याय ४०

स्त्रियाँ कैदमें

यह टुकड़ी सीमा लाँघकर बिना परवाने ट्रान्सवालमें प्रवेश करके जेलमें जानेवाली थी। पाठक नामोंसे देखेंगे कि इनमें से कुछ ऐसे हैं कि यदि वे प्रकट हो जाते तो पुलिस कदाचित् उन लोगोंको गिरफ्तार न करती। मेरे सम्बन्धमें ऐसा ही हुआ था। मुझे दो एक बार गिरफ्तार करनेके बाद सीमा पार करनेपर पुलिसने गिरफ्तार

करना बन्द कर दिया था। इस टुकड़ीके कूचकी खबर किसीको भी नहीं दी गई थी। अखबारोंमें तो वह दी ही कैसे जा सकती थी? इसके अतिरिक्त उसमें शामिल लोगोंको यह बात समझा दी गई थी कि उन्हें अपना नाम और पता पुलिसको भी नहीं बताना है और यह कह देना है कि वे अपने नाम अदालतमें बतायेंगे।

पुलिसके सम्मुख ऐसे मामले बहुत बार आते रहते थे। हिन्दुस्तानी, गिरफ्तार होनेकी आदत पड़ जानेके बाद, बहुत बार केवल पुलिससे मीठी छेड़छाड़ करनेके लिए अपने नाम नहीं बताते थे। इसलिए पुलिसको इस बार भी इसमें कोई विचित्रता नहीं जान पड़ी। पुलिसने इस टुकड़ीको गिरफ्तार कर लिया। उसके सदस्योंपर मुकदमे चलाये गये और उन सबको (२३ सितम्बर, १९१३ को) तीन-तीन महीनेकी कड़ी कैदकी सजा दी गई।

जो बहनें ट्रान्सवालमें गिरफ्तार होनेका प्रयत्न करती हुई निराश हो गई थीं, वे नेटालमें प्रविष्ट हुईं। उन्हें पुलिसने बिना परवाने प्रविष्ट होनेपर गिरफ्तार नहीं किया। अतः यह तय हुआ था कि यदि वे गिरफ्तार न की जायें तो वे न्यूकैसिलको केन्द्र बनायें और वहाँकी कोयलेकी खानोंके हिन्दुस्तानी मजदूरोंसे हड़ताल करनेका अनुरोध करें। न्यूकैसिल नेटालमें कोयलेकी खानोंका केन्द्र है। इन खानोंमें मुख्यतः हिन्दुस्तानी मजदूर थे। अतः इन बहनोंने उनमें अपना काम शुरू किया। उसका असर बिजलीकी तरह तेजीसे हुआ। मजदूरोंपर तीन पौंडी करकी बातने गहरा असर डाला और उन्होंने अपना काम छोड़ दिया। यह खबर मुझे तारसे मिली। मैं इससे प्रसन्न हुआ; किन्तु उतना ही घबराया भी। मैं सोचने लगा, अब मुझे क्या करना चाहिए? मैं इस अद्भुत जागरणके लिए तैयार न था। मेरे पास पैसा नहीं था; न इतने आदमी ही थे जो हड़तालके कामको सँभाल सकें। मैं अपना कर्त्तव्य समझ रहा था। मुझे न्यूकैसिल जाना था और जो-कुछ हो सके वह करना था। मैं रवाना हो गया।[1]

अब सरकार इन बहनोंको कैसे छोड़ती? वे गिरफ्तार कर ली गईं। उनको भी (२१ अक्तूबर, १९१३ को) गिरफ्तार की गई फीनिक्सकी बहनोंके बराबर तीन-तीन महीनेकी कैदकी सजाएँ दी गईं और वे रखी भी गईं उसी जेलमें।

इससे दक्षिण आफ्रिकाके हिन्दुस्तानी जाग गये। उनकी नींद टूट गई। उनमें नई चेतना आई जान पड़ी। किन्तु स्त्रियोंके बलिदानने हिन्दुस्तानको भी जगा दिया। सर फीरोजशाह मेहता अबतक उदासीन थे। सन् १९०१ में उन्होंने मुझे कड़ी चेतावनी देते हुए दक्षिण आफ्रिका न जानेकी सलाह दी थी। उनका मत था कि जबतक हिन्दुस्तान स्वतन्त्र नहीं होता तबतक वह प्रवासियोंके लिए कुछ नहीं कर सकता। उनपर सत्याग्रहकी लड़ाईका असर भी कम ही हुआ था। किन्तु स्त्रियोंके जेल जानेका उनपर जादूका-सा असर हुआ। उन्होंने स्वयं ही टाउन हॉलमें भाषण देते हुए कहा था, "स्त्रियोंके जेल जानेसे मेरी शान्ति भी भंग हो गई है। अब हिन्दुस्तान चुप बैठा नहीं रह सकता।"

१. गांधीजी १७ अक्तूबरको न्यूकैसिल गये थे।

स्त्रियोंकी वीरताकी बात क्या करूँ। वे सभी नेटालकी राजधानी मैरित्सबर्गकी जेलमें रखी गई थीं। यहाँ उन्हें खासी तकलीफें दी गईं। उनके खाने-पीनेकी तनिक भी परवाह नहीं की गई। मशक्कतमें उन्हें कपड़े धोनेका काम दिया गया। बाहरसे खाने-पीनेकी चीजें मँगानेपर लगभग अन्ततक रोक रही। एक बहनका खानेमें कुछ विशेष वस्तुएँ लेनेका ही नियम था। उन्हें उन चीजोंको देनेका फैसला बहुत मुश्किलसे किया गया और वे खराब भी इतनी थीं कि उन्हें खाया नहीं जा सकता था। उन्हें जैतूनके तेलकी खास तौरसे जरूरत थी। वह पहले तो दिया ही नहीं गया। बादमें दिया गया; किन्तु वह पुराना और दुर्गन्धयुक्त था। जब उसे अपने खर्चसे मँगानेकी प्रार्थना की गई तो उसके उत्तरमें कहा गया, "यह कोई होटल नहीं है। जो दिया जाये, वही खाना होगा।" यह बहन जब जेलसे निकली तब अस्थिपंजर-मात्र रह गई थी। बहुत प्रयत्न करनेपर ही उसकी जान बची।

एक दूसरी बहन जेलसे जानलेवा ज्वर लेकर आई। वह २२ फरवरी, १९१४ को जेलसे निकली और उसके कुछ दिन बाद ही इस ज्वरके कारण ईश्वरके घर पहुँच गई। मैं उसे कैसे भूल सकता हूँ? वलिअम्मा आर० मूनसामी मुदलियार[1], जोहानिसबर्गकी सोलह वर्षकी लड़की थी। मैं जब उसे देखने गया तब वह बिस्तरपर पड़ी थी। कद लम्बा होनेसे उसकी छरहरी देह सूखकर किसी लम्बी लकड़ी-जैसी दिखती थी और डरावनी लग रही थी।

मैंने पूछा, "वलिअम्मा जेल जानेका पछतावा तो नहीं होता?"

वह बोली, "पछतावा क्यों होगा! मुझे फिर गिरफ्तार करें तो इसी समय जेल जानेको तैयार हूँ।"

मैंने फिर पूछा, "किन्तु इसका परिणाम मौत हो तो?"

उसका उत्तर था, "भले ही हो, देशके लिए मरना किसे अच्छा न लगेगा?"

वलिअम्मा इस बातचीतके कुछ दिन बाद ही चल बसी। इस लड़कीका शरीर तो गया, किन्तु नाम अमर हो गया। उसकी मृत्युके बाद जगह-जगह शोक-सभाएँ की गईं और कौमने इस पुण्यशीला बहनकी स्मृतिमें "वलिअम्मा भवन" बनानेका निश्चय किया। कौमने इस भवनको बनानेका कर्त्तव्य अभीतक पूरा नहीं किया है। उसमें विघ्न आ गये। कौममें फूट पड़ गई। प्रमुख कार्यकर्त्ता एकके बाद एक चले गये। किन्तु यह पत्थर और चूनेका भवन बने या न बने, वलिअम्माकी सेवाएँ नष्ट न होंगी। इन सेवाओंका भवन तो वह स्वयं अपने हाथसे ही बना गई थी। उसकी मूर्ति बहुतोंके हृदयरूपी मन्दिरोंमें इस समय भी आसीन है और जबतक हिन्दुस्तानका नाम कायम है तबतक दक्षिण आफ्रिकाके इतिहासमें वलिअम्मा अवश्य अमर रहेगी।

उन बहनोंका बलिदान शुद्ध था। वे बेचारी कानूनकी बारीकियाँ नहीं जानती थीं। उनमें से बहुतोंको देशका कोई ज्ञान नहीं था। उनका देश-प्रेम विशुद्ध श्रद्धापर आधारित था। उनमें से कुछ निरक्षर थीं, इसलिए वे अखबार पढ़ना भी क्या जानतीं? किन्तु वे यह जानती थीं कि जातिके सम्मानरूपी चीरका हरण किया जा रहा है।

१. देखिए खण्ड १२, पृष्ठ ३५२, ४६५, ४७८ और ५१५।

उनका जेल जाना उनका आर्तनाद था। वह उनका शुद्ध यज्ञ था। प्रभु इस तरह अन्तरसे निकली प्रार्थनाको सुनते हैं। वे भक्तिपूर्वक अर्थात् निःस्वार्थ भावसे अर्पित पत्र, पुष्प या जल प्रेमसे स्वीकार करते हैं और उसका करोड़ गुना फल देते हैं। सुदामाके मुट्ठीभर चावलोंकी भेंटसे उनकी बरसोंकी भूख मिट गई। बहुतोंके जेल जानेका फल चाहे न भी मिले, किन्तु एक भी शुद्ध आत्माका भक्तिभावसे किया गया समर्पण कभी व्यर्थ नहीं जाता। कौन जानता है कि दक्षिण आफ्रिकामें किस-किसका यज्ञ फला था? किन्तु इतना तो हम जानते हैं कि वलिअम्माका यज्ञ तो फला ही; और उन अन्य बहनोंका यज्ञ भी अवश्य फला।

स्वदेशी-यज्ञमें और जगत्-यज्ञमें असंख्य लोगोंने आहुतियाँ दी हैं, इस समय दे रहे हैं और आगे देंगे। यही उचित भी है, क्योंकि कोई नहीं जानता कि कौन शुद्ध है। किन्तु सत्याग्रहियोंको इतना तो समझ ही लेना चाहिए कि उनमें से एक भी शुद्ध होगा तो उनका यज्ञ फल देनेके लिए पर्याप्त होगा। पृथ्वी सत्यके बलपर टिकी हुई है। असत् — असत्य — का अर्थ है "नहीं है"; सत् — सत्य — का अर्थ है "है!" जब असत्का अस्तित्व ही नहीं है तब वह सफल कैसे हो सकता है? और जो सत् है उसका नाश कौन कर सकता है?[१] इसीमें सत्याग्रहका समूचा शास्त्र आ जाता है।

अध्याय ४१

मजदूरोंकी धारा

बहनोंके इस त्यागका मजदूरोंपर अद्भुत असर हुआ। न्यूकैसिलके पासकी खानोंके मजदूरोंने अपने औजार डाल दिये और वे धाराकी तरह नगरकी ओर उमड़ चले। ज्यों ही मुझे खबर मिली त्यों ही मैं फीनिक्ससे चल पड़ा और न्यूकैसिल पहुँच गया।

इन मजदूरोंके अपने घर नहीं होते। उनके रहनेके लिए मालिक ही घर बनाते हैं, वे ही उनकी गलियोंमें रोशनीका इन्तजाम करते हैं और वे ही उन्हें पानी भी देते हैं, इसलिए मजदूर हर तरहसे पराधीन होते हैं और तुलसीदासजीने कहा है:

"पराधीन सपनेहुँ सुख नाहीं।"

हड़तालियोंने मेरे पास अनेक प्रकारकी शिकायतें पेश कीं। कोई कहता, "मालिकोंने हमारी गलियोंकी बत्तियाँ बन्द कर दी हैं", कोई कहता, "उन्होंने पानी बन्द कर दिया है", कोई कहता, "वे हड़तालियोंका सामान उनकी कोठरियोंसे बाहर फेंके दे रहे ह।" एक पठानने आकर मुझे अपनी पीठ दिखाई और कहा, "यह देखो। मुझे कैसा मारा है, उन्होंने। मैंने इन बदमाशोंको आपकी खातिर छोड़ दिया है। आपका यही हुक्म है। मैं पठान हूँ और पठान कभी मार खाता नहीं, मार मारता है।"

१. खण्ड २३ में १९२२ की डायरी भी देखिए।

मैंने उत्तर दिया: "भाई, तुमने बहुत ही अच्छा काम किया; इसीको मैं सच्ची बहादुरी कहता हूँ। तुम्हारे-जैसे लोगोंसे ही हम जीतेंगे।"

मैंने उसे इस तरह बधाई तो दी, किन्तु अपने मनमें सोचा कि यदि ऐसा व्यवहार बहुतोंके साथ किया जाये तो हड़ताल नहीं चलेगी। यदि लोग मारपीटकी शिकायत भी न करें तो मालिकोंके खिलाफ और क्या शिकायत हो सकती है? वे हड़तालियोंकी रोशनी, पानी आदिकी सुविधाएँ बन्द कर दें तो इसमें शिकायतकी ज्यादा गुंजाइश नहीं; पर गुंजाइश हो या न हो, किन्तु लोग ऐसी स्थितिमें टिक कैसे सकते हैं? मुझे इसका कोई उपाय तो सोच ही लेना चाहिए, अन्यथा लोग बिलकुल हारकर कामपर वापिस जायें, इससे तो यही अच्छा है कि वे अपनी हार स्वीकार कर लें और कामपर लौट जायें। किन्तु ऐसी सलाह लोग मेरे मुँहसे सुन ही नहीं सकते थे। रास्ता एक ही था कि ये लोग मालिकोंकी कोठरियोंको छोड़ दें यानी हिजरत करें।

ये मजदूर दस-बीस तो थे नहीं, सैकड़ों थे। उनको हजारों होनेमें भी देर न लगती। प्रश्न था, मैं उनके लिए मकान कहाँसे लाऊँ? खानेके लिए कहाँसे लाऊँ? मुझे हिन्दुस्तानसे तो पैसा मँगाना नहीं था। वहाँसे बादमें धनकी जो वर्षा हुई वह अभी आरम्भ नहीं हुई थी। हिन्दुस्तानी व्यापारी इतने डर गये थे कि वे मुझे खुल्लम-खुल्ला कोई मदद देनेके लिए तैयार नहीं थे। उनका व्यापार खान-मालिकों और दूसरे गोरोंके साथ था; इसलिए वे खुल्लम-खुल्ला मेरा साथ कैसे देते? मैं जब-जब न्यूकैसिल जाता तब उन्हींके यहाँ ठहरता। मैंने इस बार स्वयं ही उनका रास्ता आसान कर दिया और दूसरी जगह ठहरनेका निश्चय किया।

मैं बता चुका हूँ कि जो बहनें ट्रान्सवालसे आई थीं, वे द्रविड़ प्रान्तकी थीं। वे एक द्रविड़ परिवारमें, जो ईसाई था, ठहरी थीं। उस परिवारकी स्थिति सामान्य थी। उसके पास जमीनका एक टुकड़ा और दो या तीन कमरेका घर था। घरके मालिकका नाम लाजरस था। मैंने उन्हींके घर ठहरनेका निश्चय किया। और उन्होंने मेरा सहर्ष स्वागत किया। गरीबोंको किसका डर हो सकता है? मूलतः गिरमिटिया कुटुम्बके होनेसे उन्हें अथवा उनके सगे-सम्बन्धियोंको तीन पौंडी कर देना होता था; अतः वे स्वभावतः गिरमिटियोंके कष्टोंको भली-भाँति जानते थे और उनके प्रति पूरी सहानुभूति रखते थे। मेरा स्वागत करना मेरे मित्रोंके लिए कभी आसान तो रहा नहीं; किन्तु इस समय मेरा स्वागत करनेका अर्थ था आर्थिक विनाश और शायद जेलका भी स्वागत करना। ऐसी स्थितिमें पड़नेके लिए कम ही धनी व्यापारी तैयार हो सकते थे; अतः मैंने सोचा कि मुझे अपनी और उनकी मर्यादा समझकर उन्हें इस विषम स्थितिमें न डालना चाहिए। बेचारे लाजरस मजूरी जानेसे थोड़ा नुकसान उठाना पड़ता तो उठा लेते। गिरफ्तारी होती तो जेल भी वह चला जाता, किन्तु अपनेसे भी गरीब गिरमिटियोंका कष्ट बिना बेचैनी अनुभव किये वह कैसे सह सकता था? लाजरसने इन गिरमिटियोंकी मददके लिए आई हुई अपने यहाँ ठहरनेवाली बहनोंको अपनी आँखोंसे जेल जाते देखा था। उस भाईने सोचा कि गिरमिटियोंके

प्रति मेरा भी कुछ कर्त्तव्य है, इसलिए उसने मुझे ठहरा लिया। उसने मुझे ठहराया ही नहीं, बल्कि अपना सब-कुछ दे दिया। वह घर मेरे आनेके बाद धर्मशाला बन गया। सैकड़ों लोग और चाहे जैसे लोग आते और जाते; घरके आसपासकी जमीन लोगोंसे ठसाठस भर गई। चौका चौबीसों घंटे चलता रहता। इसमें लाजरसकी पत्नीने तन-तोड़ मेहनत की। फिर भी उन दोनोंके चेहरोंपर सदा प्रसन्नता रही। मैंने उनकी मुखाकृतिपर कभी म्लानता नहीं देखी।

किन्तु लाजरस क्या सैकड़ों मजदूरोंको खाना खिला सकता था?[1] मैंने मजदूरोंको सुझाव दिया कि वे अपनी हड़तालको स्थायी समझकर अपनी मालिकोंकी कोठरियोंको छोड़ आयें, जो सामान बेचने लायक हो उसे बेच डालें और बाकी सामान अपनी कोठरियोंमें पड़ा रहने दें। मालिक उस सामानको हाथ नहीं लगायेंगे। किन्तु यदि मालिक उनसे ज्यादा बदला लेनेके लिए उसे फेंक भी दें तो वे इस जोखिमको भी उठायें। वे मेरे पास अपने पहननेके कपड़ों और ओढ़नेके कम्बलोंके सिवा दूसरी कोई चीज न लायें। जबतक हड़ताल चलेगी और वे जेलसे बाहर रहेंगे तबतक मैं उन्हींके साथ रहूँगा, खाऊँगा-पीऊँगा, इन शर्तोंपर खानोंको छोड़कर आनेपर ही हड़ताल चल सकती है और कौम जीत सकती है। जिन लोगोंमें ऐसा करनेकी हिम्मत न हो वे वापस अपने कामपर चले जायें। जो कामपर जायें, कोई भी उनका तिरस्कार न करे और उन्हें परेशान न करे। इन शर्तोंको माननेसे किसीने भी इनकार किया हो, ऐसा मुझे याद नहीं आता। जिस दिन मैंने यह बात कही उसी दिनसे हिजरत करनेवालों — गृह-त्यागियोंकी कतारें लग गईं। सभी अपने स्त्री-बच्चोंको साथ ले-लेकर और अपने सिरोंपर अपनी कपड़ोंकी पोटलियाँ रखकर आने लगे।

मेरे पास उनके रहनेके लिए तो केवल खुली जगह थी। सौभाग्यकी बात इतनी ही थी कि उन दिनों पानी नहीं गिर रहा था और ठण्ड भी नहीं पड़ रही थी। मेरा विश्वास था कि व्यापारी वर्ग उनको खाना देनेमें पीछे नहीं रहेगा। न्यूकैसिलके व्यापारियोंने खाना पकानेके बरतन दिये और चावल और दालके बोरे भेजे। दूसरे शहरोंसे दाल, चावल, शाक-सब्जी और मसालों आदिकी वर्षा हुई। मेरे पास ये चीजें जितना मेरा खयाल था उससे ज्यादा आने लगीं। सभी जेल जानेके लिए तैयार नहीं हो सकते थे; किन्तु सबकी सहानुभूति तो थी ही। सभी यथाशक्ति सहायता देकर अपना हिस्सा अदा करनेके लिए तैयार थे। जिनमें कुछ भी देनेका सामर्थ्य नहीं था उन्होंने अपनी सहायता सेवाके रूपमें दी। इन अज्ञानी और अशिक्षित लोगोंको सम्भालनेके लिए जानकार और समझदार स्वयंसेवकोंकी जरूरत तो थी ही; वे मिल गये और उन्होंने अमूल्य सहायता की। उनमें बहुतसे तो जेल भी गये। इस तरह सभीने यथाशक्ति सहायता दी और हमारा मार्ग सरल बनाया।

असंख्य लोग इकट्ठे हो गये। इतने और निरन्तर बढ़ते हुए मजदूरोंको एक जगह बिना किसी कामकाजके सँभाले रखना अशक्य नहीं तो अत्यन्त दुष्कर काम अवश्य था। उनकी शौचादिकी आदतें तो अच्छी होती ही नहीं हैं। इस समुदायमें

१. देखिए खण्ड १२, पृष्ठ ५०४-५।

कुछ लोग ऐसे भी थे जो अपराध करके जेल काट आये थे। कोई हत्याका अपराधी था, कोई चोरीके जुर्ममें कैद काटकर छूटा था और कोई व्यभिचारके अपराधमें कैद भुगत आया था। हड़ताली मजदूरोंमें नीतिका भेद करना मेरे लिए सम्भव नहीं था। मैं भेद करता भी तो मुझे अपना रहस्य कौन बताता? मैं उनका काजी बनने बैठता तो अविवेकी सिद्ध होता। मेरा कर्त्तव्य केवल हड़ताल चलाना था। इसमें दूसरे सुधारोंको बीचमें लानेकी गुंजाइश नहीं थी। इस छावनीमें नीतिकी रक्षा करना मेरा कर्त्तव्य था। इसमें आनेवाले लोग पहले कैसे थे, इसका पता लगाना मेरा कर्त्तव्य नहीं था। ऐसी शिवजीकी बरात स्थिर होकर निठल्ली बैठती तो अपराध किये बिना न रहती। जितने दिन मैंने वहाँ बिताये उतने शान्तिसे बीते, यह चमत्कार ही था। सभी इतने दिन इस तरह शान्तिसे रहे, मानो अपना-अपना आपद्-धर्म समझ गये हों।

मुझे उपाय यह सूझा कि मुझे इस टुकड़ीको ट्रान्सवालमें ले जाना चाहिए और फीनिक्सके पूर्वोक्त सोलह आदमियोंकी तरह इनको भी जेलमें बिठा देना चाहिए। मनमें आया कि इन लोगोंको थोड़ी-थोड़ी संख्यामें बाँटकर सरहद पार करा दूँ; किन्तु मैंने यह विचार तुरन्त ही रद कर दिया। उसमें बहुत समय लगता और थोड़े-थोड़े लोगोंके जेल जानेका उतना असर न पड़ता जितना सामूहिक रूपसे जेल जानेका।

मेरे पास लगभग पाँच हजार आदमी इकट्ठे होंगे। उन सबको रेलगाड़ीसे नहीं ले जाया जा सकता था। इतना पैसा कहाँसे आता? और इससे लोगोंकी परीक्षा नहीं हो सकती थी। न्यूकैसिलसे ट्रान्सवालकी सीमा ३६ मील थी। नेटालका सरहदी शहर चार्ल्सटाउन और ट्रान्सवालका फोक्सरस्ट था। अन्तमें मैंने पैदल यात्रा करनेका निश्चय किया। मैंने मजदूरोंसे सलाह की। उनमें स्त्रियाँ और बच्चे भी थे; अतः कुछने आनाकानी की। मेरे सम्मुख दिल कड़ा करनेके सिवा कोई दूसरा उपाय नहीं था। मैंने उनसे कहा, "जिसे खानोंमें वापिस जाना हो वह जा सकता है," किन्तु कोई भी वापिस जानेके लिए तैयार न हुआ। उनमें जो अपंग थे हमने उन्हें रेलसे भेजनेका निश्चय किया। बाकी लोगोंने पैदल चार्ल्सटाउन जानेकी तैयारी बताई। यह मंजिल हमें दो दिनमें पूरी करनी थी। इस निश्चयसे अन्तमें सभी प्रसन्न हुए। लोगोंने यह भी सोचा कि बेचारे लाजरस परिवारको इससे कुछ राहत मिलेगी। न्यूकैसिलके गोरोंको प्लेग फैलनेका डर लग रहा था और वह कई तरहके कदम उठानेकी बात सोच रहे थे। वे लोग भयमुक्त हो गये और उनकी कारंवाइयोंके डरसे हम भी मुक्त हो गये।[1]

हम कूचकी तैयारी कर रहे थे तभी मुझे खान-मालिकोंका मिलनेके लिए निमन्त्रण मिला। मैं डर्बन गया किन्तु इसका विवरण मैं नये प्रकरणमें दूँगा।

१. विस्तृत विवरणके लिए देखिए खण्ड १२, पृष्ठ ५००-१०।

अध्याय ४२

खान-मालिकोंके पास और उसके बाद

खान-मालिकोंके निमन्त्रणपर मैं उनसे मिलने डर्बन गया। मैंने समझा कि मालिकों-पर कुछ असर हुआ है। फिर भी मेरा खयाल यह नहीं था कि इससे हमें कुछ मिलेगा किन्तु सत्याग्रहीकी नम्रताकी सीमा नहीं होती। वह समझौतेका कोई भी अवसर हाथसे नहीं जाने देता। इस कारण कोई उसे डरपोक समझे तो वह उसकी परवाह नहीं करता। जिसके हृदयमें विश्वास है और उस विश्वाससे उत्पन्न बल है, उसे दूसरोंकी की हुई अवहेलनासे दुःख नहीं होता। वह अपने अन्तर्बलका भरोसा रखता है। इसलिए वह सबके प्रति नम्र रहता हुआ जगतका लोकमत बनाता है और उसे अपने कार्यकी ओर आकर्षित करता है।

इसलिए मुझे मालिकोंका यह निमन्त्रण स्वागत करने योग्य लगा। मैं उनके पास गया। मैंने देखा कि हवामें गरमी है। मुझसे स्थिति समझनेके बजाय उनके प्रतिनिधिने मुझसे जिरह करना शुरू किया। मैंने उसे उचित उत्तर दिया।

मैंने उससे कहा, "यह हड़ताल खतम कराना आपके हाथमें है।"

उनकी ओरसे कहा गया, "हम अधिकारी नहीं हैं।"

मैंने कहा, "आप अधिकारी न होनेपर भी बहुत-कुछ कर सकते हैं। आप मजदूरोंकी ओरसे मुकदमा लड़ सकते हैं। आप सरकारसे तीन पौंडी कर रद करनेकी माँग करें तो मैं नहीं मानता कि वह उसे अस्वीकार करेगी। आप दूसरोंकी राय भी इसके पक्षमें बना सकते हैं।"

"किन्तु सरकारके लगाये हुए करसे हड़तालका क्या सम्बन्ध है?

"मालिक मजदूरोंको दुःख दें तो आप उससे नियमानुसार प्रार्थना करें।"

"मजदूरोंके पास हड़ताल करनेके सिवा कोई दूसरा उपाय मुझे नहीं दिखाई देता। तीन पौंडका कर भी मालिकोंकी खातिर ही लगाया गया है। मालिक मजदूरों-से मजदूरी कराना चाहते हैं, किन्तु उन्हें स्वतन्त्रता देना नहीं चाहते। इसलिए मैं इस करको रद करानेके लिए मजदूरोंका हड़ताल करना अनीति पूर्ण या मालिकोंके प्रति अन्याय नहीं मानता।

"तब आप मजदूरोंसे कामपर वापिस जानेके लिए नहीं कहेंगे?"

"मैं लाचार हूँ।"

"आप इसका परिणाम जानते हैं?"

"मैं होशमें हूँ; मुझे अपनी जिम्मेदारीका पूरा खयाल है।"

"बेशक, इसमें आपका जाता ही क्या है? किन्तु इससे इन गुमराह मजदूरोंका जो नुकसान होगा क्या आप उसे पूरा करेंगे?"

"मजदूरोंने सोच-समझकर और नुकसानको खयालमें रखकर यह हड़ताल की है। आत्मसम्मानकी हानिकी अपेक्षा दूसरी बड़ी हानि मेरे खयालमें नहीं आ सकती। मजदूरोंने यह बात समझ ली है, इसका मुझे सन्तोष है।"

कुछ इस प्रकारकी बातें हुईं। पूरी बातचीत तो मुझे इस समय याद नहीं आ सकती। मुझे जो मुद्दे याद रह गये हैं वे मैंने यहाँ संक्षेपमें दे दिये हैं।[1] मुझे यह दिखाई दे गया कि मालिकोंको अपना मामला लंगड़ा लगा है और वे सरकारसे सलाह कर रहे थे।

डर्बन जाते हुए और वहाँसे आते हुए मैंने देखा कि रेलके गार्डों वगैरापर इस हड़तालका और लोगोंकी शान्तिका बहुत अच्छा असर पड़ा है। मैं तो तीसरे दर्जेमें यात्रा कर रहा था। किन्तु वहाँ भी गार्ड और अन्य कर्मचारी मुझे घेर लेते, बड़ी उत्सुकतासे सारी बातें पूछते और सभी हमारी जीतकी कामना करते। वे मुझे अनेक प्रकारकी छोटी-मोटी सुविधाएँ देते। मैं उनसे अपना सम्बन्ध निर्मल रखता था। मैं उन्हें किसी भी सुविधाके लिए कोई लालच नहीं देता था। यदि वे अपनी इच्छासे ही भलमनसाहत दिखाते तो वह मुझे अच्छी लगती थी, किन्तु मैं उनकी भलमनसाहत खरीदनेका प्रयत्न बिलकुल नहीं करता था। गरीब, अपढ़ और नासमझ मजदूर इतनी दृढ़ता दिखा सकते हैं, इससे उनको आश्चर्य होता था। किन्तु दृढ़ता और वीरता ऐसे गुण हैं जिनकी छाप विरोधीपर पड़े बिना नहीं रहती।

मैं न्यूकैसिल लौट आया। लोगोंकी धारा तो बहती ही आ रही थी। मैंने उनको सब बातें बारीकीसे समझाईं। मैंने उनसे यह कहा कि यदि कोई वापस जाना चाहे तो जा सकता है। यह भी कह दिया कि मालिकोंने धमकी दी है; भविष्यमें जो जोखिमें आ सकती थीं उनका वर्णन भी कर दिया। मैंने कहा कि यह लड़ाई कब खत्म होगी; मैं नहीं कह सकता। मैंने उन्हें जेलके कष्ट बताये, किन्तु लोग फिर भी अडिग रहे। उन्होंने निर्भयतासे उत्तर दिया, "जबतक आप लड़नेके लिए तैयार रहेंगे तबतक हम हार न मानेंगे। हम दुःखोंको समझते हैं। आप हमारी चिन्ता न करें।"

अब तो हमें कूच करना ही बाकी रहा था। मैंने एक दिन शामके वक्त उन लोगोंसे कह दिया कि कल (२८ अक्तूबर, १९१३ को) सुबह उठते ही कूच करना है। कूचमें जिन नियमोंका पालन करना था वे मैंने समझा दिये। पाँच-छः हजार लोगोंकी भीड़को सँभालना कोई मामूली बात नहीं थी। मैंने उनकी गिनती तो की ही नहीं थी। मैंने उनके नाम और पते भी नहीं पूछे थे। जो रह गये सो रह गये, बस यही हिसाब था। हरएक आदमीको तीन पाव डबल रोटी और आधी छटाँक चीनी से ज्यादा खाना देनेकी शक्ति नहीं थी। मैंने उन्हें कह दिया था कि रास्तेमें हिन्दुस्तानी व्यापारी इससे ज्यादा कुछ दे देंगे तो ले लेंगे। किन्तु उन्हें सामान्यतः रोटी और चीनीसे ही सन्तोष करना होगा। मेरा बोअर युद्ध और हब्शियोंके विद्रोहका अनुभव बहुत काम आया। यह शर्त तो थी ही कि लोग अपने पास जरूरतसे ज्यादा कपड़ा हरगिज न रखें। वे रास्तेमें किसीका माल-असबाब न उठायें, अधिकारी अथवा कोई अंग्रेज मिले और उनसे गालीगलौच या मारपीट करे तो वे उसे सहन

१. हड़तालके सम्बन्धमें **नेटाल मर्क्युरी**के प्रतिनिधिसे हुई बातचीतके लिए देखिए खण्ड १२, पृष्ठ २४५-६।

कर लें, यदि वे गिरफ्तार किये जायें तो गिरफ्तार हो जायें, मेरे गिरफ्तार हो जाने-पर भी कूच जारी रखें आदि ऐसी ही दूसरी बातें मैंने उनको समझा दीं। मैंने यह भी बता दिया कि मेरी जगह एकके बाद एक दूसरे कौन लोग नियुक्त किये जायेंगे।

लोग सब बातें समझ गये। काफिला सही-सलामत चार्ल्सटाउन पहुँच गया। वहाँके व्यापारियोंने हमें बहुत सहायता दी। उन्होंने हमें उपयोगके लिए अपने मकान दे दिये और मस्जिदकी जमीनमें खाना पकानेकी छूट दे दी। कूच करते वक्त जो खाना दिया जाता वह मंजिलतक पहुँचते-पहुँचते साफ हो जाता, इसलिए खाना पकानेके बरतनोंकी जरूरत थी। उन्होंने ये बर्तन भी खुशीसे दे दिये। हमारे पास चावल-दाल तो बहुत जमा हो गया। व्यापारियोंने इस दानमें भी अपना हाथ बँटाया था।

चार्ल्सटाउन एक छोटा कस्बा है। उसमें उस वक्त करीब चार-पाँच हजार आदमी होंगे; उसमें इतने ही और आदमियोंका समाना मुश्किल था। स्त्रियाँ और बच्चे तो मकानोंमें रख दिये गये; किन्तु बाकी बहुतसे लोग मैदानमें ही ठहराये गये।

यहाँके मीठे संस्मरण बहुतसे हैं। किन्तु कुछ कड़वे संस्मरण भी हैं। मीठे संस्मरणोंमें मुख्यत: चार्ल्सटाउनके स्वास्थ्य विभागका और उस विभागके अधिकारी डा० ब्रिस्कोका है। वे आबादी इतनी बढ़ी देखकर डर गये; किन्तु कोई कड़ा कदम उठानेके बजाय मुझसे मिले और कुछ सुझाव देनेके बाद सहायता देनेकी बात भी कही। यूरोपके लोग इन तीन बातोंकी सावधानी रखते हैं; किन्तु हम नहीं रखते, पानीकी सफाई, रास्तोंकी सफाई और पाखानोंकी सफाई। उन्होंने शिकायत की कि मैं लोगोंको पानी न फैलाने दूँ, चाहे जहाँ लघु शंका न करने दूँ और कहीं भी कूड़ा करकट न डालने दूँ; वे जो जगह बतायें उसी जगहमें उन लोगोंको रखूँ और उसे साफ सुथरी रखनेकी जिम्मेदारी लूँ। मैंने उनकी ये बातें कृतज्ञतापूर्वक स्वीकार कीं। इसके बाद मुझे बेफिक्री हो गई।

अपने देशके लोगोंसे इन नियमोंका पालन कराना बहुत कठिन काम है। किन्तु लोगोंने और साथियोंने यह आसान बना दिया। यह मेरा सदाका अनुभव है कि सेवक सेवा करें और हुक्म न चलायें तो बहुत-कुछ काम हो जा सकता है। सेवक स्वयं अपने शरीरसे मेहनत करे तो दूसरे भी मेहनत करेंगे। मुझे इसका खासा तजुरबा इस छावनीमें हुआ। मेरे साथी और मैं झाड़ू लगाने और मैला उठाने आदि कामोंको करनेमें तनिक भी नहीं झिझकते थे। इससे लोग उन कामोंको उत्साहसे करने लगते। हम ऐसा न करते तो किसे हुक्म देते? यदि सब सरदार बनकर दूसरोंपर हुक्म चलायें तो अन्तमें काम हो ही नहीं, किन्तु जहाँ सरदार स्वयं सेवक बन जाये, वहाँ दूसरे सरदारीका दावा कर ही कैसे सकते हैं?

साथियोंमें से कैलनबैक आ गये थे। कुमारी श्लेसिन भी पहुँच गई थी। इस बहनकी श्रमशीलता, लगन और ईमानदारीकी प्रशंसा जितनी करूँ उतनी कम है। हिन्दुस्तानियोंमें स्वर्गीय श्री पी० के० नायडू और श्री अल्बर्ट क्रिस्टोफरके नाम मुझे

याद आते हैं; इनके सिवा दूसरे लोग भी थे। उन सभीने बहुत मेहनत की और सहायता दी।

खानेमें दाल-चावल दिये जाते थे। साग-सब्जियाँ खूब आ गई थीं, किन्तु उनको अलग पकानेकी स्थिति नहीं थी। इसलिए वे दालमें ही डाल दी जाती थीं। उन्हें अलग पकानेके लिए न समय था और न उतने बरतन। चौका चौबीसों घंटे चलता; क्योंकि भूखे-प्यासे लोग कभी भी आ जाते थे। न्यूकैसिलमें किसीको रहना था ही नहीं। रास्ता सबको मालूम था, इसलिए सब खानोंसे निकलकर सीधे चार्ल्सटाउन पहुँचते।

मैं जब लोगोंकी धीरता और सहनशीलताकी बात सोचता हूँ तब मुझे ईश्वर-की महिमाकी प्रत्यक्ष अनुभूति होती है। खाना बनानेवालोंका मुखिया मैं ही था। कभी दालमें ज्यादा पानी पड़ जाता तो कभी वह कच्ची रह जाती। कभी शाक न गल पाता तो कभी भात ही कच्चा रह जाता। ऐसे खानेको हँसते-हँसते खानेवाले लोग मैंने संसारमें बहुत नहीं देखे। इसके विपरीत दक्षिण आफ्रिकाकी जेलोंमें मुझे यह भी अनुभव हुआ कि जब कभी खाना कम मिलता, कम पका मिलता या देरसे मिलता तब अच्छे पढ़े-लिखे माने जानेवाले लोगोंका पारा भी गरम हो जाता।

खाना पकानेसे खाना परोसनेका काम ज्यादा मुश्किल था; और वह तो मेरे ही हाथमें था। उसके कच्चे-पक्केका जवाब तो मुझे ही देना होता था। खाना कम होता और लोग ज्यादा हो जाते तब खाना कम देकर लोगोंको सन्तोष देनेका काम भी मेरे ही जिम्मे था। बहनें कम खाना मिलनेपर एक पल मुझे कड़ी निगाहसे देखतीं और फिर कारण समझकर हँसती चली जातीं। वह दृश्य मैं जीवनभर नहीं भूल सकता। मैं उन्हें कह देता, "मैं मजबूर हो गया हूँ। मेरे पास पका हुआ खाना कम है और खानेवाले लोग ज्यादा हैं; इसलिए मुझे हिसाबसे ही देना है।" वे यह बात समझ जातीं तो 'सन्तोषम्' कहकर हँसती हुई चल पड़तीं।

ये सब तो रहे मीठे संस्मरण। कड़वे संस्मरण ये थे, लोग घड़ीभर फुरसत मिलती तो आपसमें लड़ते-झगड़ते। इससे भी बुरी बात थी व्यभिचारकी घटनाएँ होना। स्त्रियों और पुरुषोंको साथ-साथ रखना पड़ता था और भीड़ भी बहुत ज्यादा थी। व्यभिचारको लाज-शर्म तो हो ही कैसे सकती है? मैं ऐसी घटना होते ही वहाँ जा पहुँचता। अपराधी लज्जित होते। मैं उन्हें अलग-अलग कर देता। कौन कह सकता है, कुछ ऐसी घटनाएँ भी हुई होंगी जिनका मुझे पता नहीं चला। इस सम्ब-न्धमें अधिक कुछ कहना व्यर्थ है। ये उदाहरण यह बतानेके लिए दिये हैं कि सब बातें बिलकुल सीधी ही नहीं थीं और ऐसी घटनाएँ होनेपर भी किसीने मेरे प्रति उद्धतता नहीं दिखाई। मैंने यह बात बहुत अवसरोंपर अनुभव की है कि जंगली जैसे लोग भी जिन्हें नीति-अनीतिका अधिक ज्ञान नहीं होता, अच्छे वातावरणमें किस तरह सीधे चलते हैं और यही जानना अधिक आवश्यक और लाभदायक है।

अध्याय ४३

ट्रान्सवालमें प्रवेश — १

अब हम नवम्बर १९१३ के शुरूमें पहुँच गये हैं। कूचकी बात कहनेसे पहले मैं दो घटनाओंका उल्लेख कर दूँ। न्यूकैसिलमें द्रविड़ बहनोंके जेल जानेसे बाई फातिमा मेहताबसे न रहा गया, इसलिए वे भी अपनी माँ हनीफाबाई और सात सालके बच्चेके साथ जेल जानेके लिए चल पड़ी। माँ और बेटी तो गिरफ्तार कर ली गईं; किन्तु सरकारने बच्चेको गिरफ्तार करनेसे साफ इनकार कर दिया। पुलिसने बाई फातिमाकी अँगुलियोंकी छाप लेनेकी भी कोशिश की। किन्तु वे निडर रहीं और उन्होंने अपनी अँगुलियोंकी छाप नहीं दी।[1]

उस समय हड़ताल पूरे जोरसे चल रही थी। उसमें पुरुषोंकी तरह स्त्रियाँ भी[2] कूच कर रही थीं। इनमें से दो स्त्रियोंकी गोदमें बच्चे थे। एक बच्चेको कूचमें सर्दी लग गई और वह जाता रहा। दूसरा बच्चा एक नालेको लाँघते समय अपनी माँकी गोदमेंसे गिर गया और धारामें डूबकर मर गया। किन्तु बच्चोंकी माँ इससे भी निराश नहीं हुईं। दोनोंने अपना कूच जारी रखा। एकने कहा: "हम मरे हुओं-का शोक करके क्या करेंगी? वे क्या वापिस आयेंगे? जीवितोंकी सेवा करना हमारा धर्म है।" ऐसी शान्तिपूर्ण वीरता, ईश्वरके प्रति आस्था और ज्ञान-गरिमाके उदाहरण मैंने गरीबोंमें बहुत बार देखे हैं।

चार्ल्सटाउनमें स्त्री और पुरुष ऐसी ही दृढ़तासे अपने कठिन धर्मका पालन कर रहे थे। किन्तु हम चार्ल्सटाउनमें शान्तिकी खोजमें थोड़े ही गये थे। जिसे शान्ति चाहिए वह उसे अपने अन्तरमें प्राप्त करे। बाहर तो जहाँ देखिए वहीं ऐसी ही पट्टियाँ लगी होती हैं, "यहाँ शान्ति नहीं मिल सकती।" किन्तु इस अशान्तिमें मीराबाई-जैसी भक्त नारी हँसती हुई विषका प्याला मुँहसे लगाती है और सुकरात अपनी अँधेरी कोठरीमें अकेला बैठा विषका पात्र अपने हाथमें लेकर अपने मित्रको गूढ़ ज्ञान सिखाता है और हमें उपदेश देता है: "जिसे शान्ति चाहिए वह उसे अपने हृदयमें खोजे।"

हृदयकी ऐसी शान्तिमें सत्याग्रहियोंकी टुकड़ीका सुबह क्या होगा, यह चिन्ता छोड़कर छावनी डाले पड़ी थी।

मैंने सरकारको पत्र[3] लिखा था कि हम ट्रान्सवालमें बस जानेके उद्देश्यसे प्रवेश नहीं करना चाहते। हमारा प्रवेश सरकारके वचनभंगके विरोधमें की गई अमली पुकार है; वह हमारे आत्मसम्मानके भंगसे उत्पन्न दु:खका शुद्ध लक्षण है। यदि वह हमें यहाँ चार्ल्सटाउनमें गिरफ्तार कर ले तो हम निश्चिन्त हो जायेंगे। यदि गिरफ्तार

१. अंग्रेजी अनुवादमें यहाँ यह वाक्य भी है: अन्तमें (१३ अक्तूबर १९१३ को) माँ-बेटीको तीन-तीन महीनेकी कैदकी सजा दे दी गई।

२. अंग्रेजीमें यहाँ ये शब्द भी हैं: . . . स्त्रियाँ भी न्यूकैसिल और चार्ल्सटाउनके बीच।

३. पत्र उपलब्ध नहीं है।

नहीं करेगी और हममें से कोई छुपे तौरपर ट्रान्सवालमें प्रवेश करेगा तो उसके लिए हम जिम्मेदार न होंगे। हमारी लड़ाईमें कोई छुपी बात नहीं है। किसीको भी अपना व्यक्तिगत स्वार्थ नहीं साधना है। किसीका छुपे तौरपर प्रवेश करना हमें पसन्द नहीं। किन्तु जहाँ हजारों भोले-भाले लोगोंसे काम लेना हो और प्रेमके अतिरिक्त कोई दूसरा बन्धन न हो, वहाँ हम किसीके कार्यके सम्बन्धमें उत्तरदायी नहीं हो सकते। फिर सरकार यह भी जान ले कि यदि वह तीन पौंडी करको रद कर दे तो गिरमिटिये अपने कामपर वापिस पहुँच जायेंगे और हड़ताल समाप्त हो जायेगी। हम उन्हें सत्याग्रहमें अपनी दूसरी शिकायतें दूर करवानेके लिए सम्मिलित न करेंगे।

इसलिए ऐसी अनिश्चित स्थिति थी कि सरकार कब गिरफ्तार करेगी यह नहीं कहा जा सकता था। किन्तु ऐसी स्थितिमें सरकारके उत्तरकी प्रतीक्षा बहुत दिनों तो नहीं की जा सकती थी। एक-दो डाकें आनेतक ही राह देखी जा सकती थी। इसलिए हमने यह निश्चय किया कि यदि सरकार हमें गिरफ्तार न करे तो हम तुरन्त चार्ल्सटाउनसे चलकर ट्रान्सवालमें प्रविष्ट हो जायें। यदि वह हमें मार्गमें न पकड़े तो हमारा काफिला बीस या चौबीस मीलकी रफ्तारसे आठ दिनतक कूच जारी रखे। हमारा विचार यह था कि हम आठ दिनमें टॉल्स्टॉय फार्म पहुँच जायें। हमने लड़ाई समाप्त होनेतक फार्ममें ही रहने और काम करके अपना गुजारा करनेकी बात सोची थी। श्री कैलेनबैकने तमाम इन्तजाम कर रखा था। हमें वहाँ मिट्टीके मकान बनाने थे और उनको बनानेका काम इस काफिलेसे लेना था। हमारा विचार था कि तबतक हम छोलदारियाँ लगाकर बूढ़े और कमजोर लोगोंको उनमें रखेंगे और मजबूत लोगोंको बाहर पड़ा रहने देंगे। इसमें दिक्कत एक ही आती थी कि अब वर्षा ऋतु आरम्भ होनेवाली थी। इसलिए वर्षाकालमें सबको आश्रयकी आवश्यकता थी। किन्तु उसकी व्यवस्था करनेका साहस श्री कैलनबैकमें था।

हमने इस काफिलेके कूचकी दूसरी तैयारियाँ भी कर ली थीं।[1] चार्ल्सटाउनके सज्जन अंग्रेज डाक्टर ब्रिस्कोने हमारे लिए दवाओंकी पेटी तैयार कर दी थी और उसमें कुछ ऐसे औजार रख दिये थे जिन्हें मेरा-जैसा नौसिखिया भी काममें ले सकता था। यह पेटी हमें खुद उठाकर ले जानी थी क्योंकि हमें काफिलेके साथ कोई सवारी नहीं रखनी थी। पाठक इससे समझ सकेंगे कि उसमें दवाएँ कमसे-कम थीं और इतनी भी नहीं थीं कि एक बारमें सौ आदमियोंको भी दी जा सकें। इसका कारण यह था कि हमें रोज ही किसी न किसी कस्बेके पास ही पड़ाव डालना था, खतम होने-वाली दवाएँ वहाँ मिल जा सकती थीं। फिर हमें अपने साथ कोई रोगी या अपंग तो रखना नहीं था। हमने ऐसे लोगोंको रास्तेमें ही छोड़ देनेका निश्चय किया था।

खानेके लिए तो रोटी और चीनीके सिवाय कुछ था ही नहीं, किन्तु यह रोटी आठ दिनतक किस तरह जुटाई जाये, यह प्रश्न था। वह रोज लोगोंमें बाँटनी थी। इसका उपाय एक ही था कि हमें हर पड़ावपर कोई रोटी पहुँचाता। इस कामको कौन करता? वहाँ रोटी बनानेवाले हिन्दुस्तानी तो होते नहीं थे। फिर हर कस्बे या

१. देखिए खण्ड १२, पृष्ठ २५१।

गाँवमें भी रोटी बनानेवाले नहीं मिलते थे; इनमें रोटी शहरोंमें से ही आती थी। हमें यह रोटी तभी मिल सकती थी जब कोई रोटीवाला उसे जुटाता और रेलवे उसे हमारे पास पहुँचाती। फोक्सरस्ट चार्ल्संटाउनसे बड़ा शहर था। यह चार्ल्संटाउनके सामने ट्रान्सवालका सरहदी नाका था। वहाँ एक गोरे रोटीवालेकी बड़ी दुकान थी। उसने हमें हर जगह खुशीसे रोटी देनेका करार किया। उसने हमें संकटमें जानकर हमसे बाजार भावसे ज्यादा दाम लेनेकी कोई कोशिश नहीं की और रोटी भी बहुत अच्छे आटेकी बनाकर दी। उसने रोटी समयपर स्टेशनपर पहुँचाई और रेलवे कर्मचारियोंने (जो गोरे ही थे) ईमानदारीसे वह हमारे पास पहुँचाई; इतना ही नहीं बल्कि पहुँचानेमें पूरी सावधानी रखी और हमें कुछ विशेष सुविधाएँ भी दीं। वे जानते थे कि हमारी किसीसे दुश्मनी नहीं है और हमें किसीको नुकसान नहीं पहुँचाना है; हमें तो स्वयं कष्ट सहकर न्याय प्राप्त करना है। मनुष्य जातिका प्रेमभाव व्यवहार रूपमें प्रकट हुआ और सबने यह अनुभव किया कि ईसाई, यहूदी, हिन्दू और मुसलमान आदि सब भाई-भाई हैं।

इस प्रकार कूचकी सब तैयारियाँ हो चुकनेपर मैंने समझौतेका फिर प्रयत्न किया। मैंने पत्र और तार तो भेजे ही थे। मैंने अब निश्चय किया कि चाहे मेरा अपमान भी हो, किन्तु टेलीफोन भी कर लूँ। चार्ल्संटाउन और प्रिटोरियाका टेलीफोन सम्बन्ध था। मैंने जनरल स्मट्सको टेलीफोन किया। मैंने उनके मन्त्रीसे कहा, "जनरल स्मट्ससे कहें, मैंने कूचकी सब तैयारियाँ कर ली हैं। फोक्सरस्टके लोग भड़के हुए हैं। वे हमारी प्राणहानि कर सकते हैं। उन्होंने इस तरहकी धमकियाँ दी हैं। यह बात तो जनरल स्मट्स भी नहीं चाहेंगे। यदि वे तीन पौंडका कर रद करनेका वचन दें तो मैं कूच नहीं करूँगा। मुझे कानून तोड़नकी खातिर कानून नहीं तोड़ना है। मैं लाचार हो गया हूँ। क्या वे मेरी इतनी बात नहीं सुनेंगे?"

आधे मिनटके बाद उत्तर मिला, "जनरल स्मट्स आपके साथ कोई सम्बन्ध नहीं रखना चाहते; आप जो चाहें सो करें।" इसके बाद टेलीफोन खटाकसे बन्द हो गया।

मैंने भी इसी परिणामकी अपेक्षा की थी। केवल मुझे उनसे ऐसी रुखाईकी आशा नहीं थी, क्योंकि सत्याग्रह आरम्भ होनेके बाद छः सालसे मेरा और उनका राजनैतिक सम्बन्ध था; अतः मैंने उनसे सौजन्य-भरे उत्तरकी आशा की थी। किन्तु उनके सौजन्यसे मेरे फूल जानेकी तो कोई बात थी ही नहीं। इसी तरह मैं उनके इस असौजन्यसे ढीला भी नहीं पड़ सकता था। मुझे अपने कर्तव्यकी पगडण्डी अपने सामने सीधी और साफ दिखाई देती थी। दूसरे दिन (६ नवम्बर, १९१३को) सुबह (साढ़े छः बजे) घंटा बजते ही हमने प्रार्थना की और प्रभुका नाम लेकर कूच आरम्भ किया। इस काफिलेमें २,०२७ पुरुष, १२७ स्त्रियाँ और ५७ बालक थे।[1]

१. खण्ड १२, पृष्ठ ५०८ पर दिये गये विवरणके अनुसार दलमें कोई ३,००० व्यक्ति थे।

अध्याय ४४

ट्रान्सवालमें प्रवेश – २

इस तरह संघ कहो, काफिला कहो, यात्रीदल कहो, ठीक निश्चित समयपर रवाना हो गया। चार्ल्सटाउनसे एक मीलकी दूरीपर फोक्सरस्टका नाला आता है। इस नालेको पार करते ही फोक्सरस्ट या ट्रान्सवालमें प्रवेश हो जाता। इस नालेके पास ही घुड़सवार पुलिस खड़ी थी। मैं पहले इस पुलिसके पास गया और लोगोंसे कहा गया कि जब मैं संकेत दूँ तब वे ट्रान्सवालमें प्रवेश करें। किन्तु मैं पुलिससे बात कर ही रहा था कि इतनेमें लोगोंने तो हल्ला बोल दिया और नालेको पार कर आये। सवारोंने उन्हें घेर लिया, किन्तु यह काफिला तो ऐसे रोका नहीं जा सकता था। पुलिसका विचार हमें गिरफ्तार करनेका था ही नहीं। मैंने लोगोंको शान्त किया और समझाया कि वे पंक्ति बनाकर चलें। पाँच-छः मिनटमें ही पूर्ण शान्ति हो गई और ट्रान्सवालमें कूच आरम्भ हो गया।

फोक्सरस्टके गोरे लोगोंने दो दिन पहले ही सभा की थी और उसमें तरह-तरहकी धमकियाँ दी थीं। कहा गया था कि यदि हिन्दुस्तानी ट्रान्सवालमें प्रवेश करेंगे तो हम उन्हें बन्दूकोंसे भून देंगे। इस सभामें गोरोंको समझानेके लिए श्री कैलनबैक गये थे; किन्तु उनकी बात सुननेके लिए कोई तैयार नहीं था। कुछ लोग तो उन्हें मारने के लिए भी खड़े हो गये थे। श्री कैलनबैक पहलवान हैं और उन्होंने सैंडोसे व्यायामकी शिक्षा ली है। उनको डराना मुश्किल था। एक गोरेने उन्हें द्वन्द्व युद्धके लिए चुनौती दी। श्री कैलनबैकने कहा, "मैंने शान्ति-धर्म स्वीकार कर लिया है, इसलिए यह तो मुझसे हो नहीं सकता। मेरे ऊपर जो भी चोट करना चाहे, खुशीसे कर सकता है; किन्तु मैं तो इस सभामें बोलकर ही जाऊँगा। आपने इस सभामें आनेके लिए सभी गोरोंको निमन्त्रित किया है। मैं आपको यह बतानेके लिए आया हूँ कि निर्दोष लोगोंको मारनेके लिए सभी गोरे आपकी तरह तैयार नहीं हैं। एक गोरा ऐसा भी है जो आपको यह बताना चाहता है कि आपने हिन्दुस्तानियोंपर जो आरोप लगाये हैं वे झूठे हैं और जैसा आप समझते हैं, हिन्दुस्तानी वैसा नहीं चाहते। उन्हें आपका राज्य नहीं चाहिए; वे आपसे लड़ना नहीं चाहते और बेतादाद आपके देशमें आकर बस जाना भी नहीं चाहते। वे तो शुद्ध न्याय चाहते हैं। जो लोग ट्रान्सवालमें आना चाहते हैं वे यहाँ बसनेके लिए नहीं, बल्कि अपने प्रति किये गये अन्यायपूर्ण करके विरुद्ध अमली पुकार करनेके लिए जाना चाहते हैं। वे वीर हैं, उत्पात नहीं करेंगे, आपसे लड़ाई नहीं करेंगे और आपकी गोलियाँ सहकर भी यहाँ अवश्य आयेंगे। वे आपकी गोलियों अथवा भालोंके डरसे वापिस न लौटेंगे। वे स्वयं कष्ट सहकर आपके हृदयको द्रवित करना चाहते हैं और उसे अवश्य द्रवित करेंगे। मैं आपसे इतना ही कहने आया हूँ कि मैंने इतना कहकर आपकी सेवा ही की है। आप चेत जायें और अन्यायसे बचें।" इतना कहकर श्री कैलनबैक चुप हो गये। लोग कुछ लज्जित हुए और उक्त चुनौती देनेवाला पहलवान तो उनका मित्र ही बन गया।

किन्तु हमें उक्त सभाकी बात मालूम हो गई थी; इसलिए फोक्सरस्टके गोरे कुछ झगड़ा करते तो हम इसके लिए तैयार थे। वहाँ इतनी पुलिस इकट्ठी की गई थी, उसका अर्थ भी इन गोरोंको मर्यादा-भंग करनेसे रोकना हो सकता था। कुछ भी हो। हमारा काफिला तो वहाँसे शान्तिसे गुजर गया। किन्तु किसी गोरेने कोई छेड़खानी भी की हो, यह मुझे तो याद नहीं आता। इस नये आश्चर्यको देखनेके लिए जनता वहाँ उमड़ आई थी। हमें उनमें से कुछकी आँखोंमें मैत्रीभावकी झलक भी दिखाई दी।

हमें पहले दिन वहाँसे आठ मील दूर पामफोर्ड स्टेशनपर पड़ाव डालना था। हम वहाँ सायंकाल पाँच या छः बजे पहुँच गये। लोग रोटी और चीनी खाकर मैदान-की खुली हवामें लेट गये। कोई भजन गाता तो कोई बातें करता। कुछ स्त्रियाँ रास्तेमें थक गई थीं। उन्होंने अपने बच्चोंको गोदमें लेकर चलनेकी हिम्मत तो की थी; किन्तु यहाँसे आगे बढ़ना उनकी शक्तिसे बाहर था। इसलिए मैंने उन्हें साव-धानीके विचारसे एक सज्जन हिन्दुस्तानीकी दूकानमें ठहरा दिया और उसे ताकीद कर दी कि यदि हम टॉल्स्टॉय फार्म पहुँच जायें तो वह उन्हें वहाँ भेज दे। किन्तु यदि हम गिरफ्तार कर लिये जायें तो वह उन्हें उनके घर पहुँचा दे। हिन्दुस्तानी व्यापारीने मेरी यह प्रार्थना स्वीकार कर ली।

ज्यों-ज्यों रात अधिक हुई त्यों-त्यों कोलाहल कम हुआ। मैं भी सोनेकी तैयारी कर रहा था। इतनेमें ही मुझे खड़खड़ाहट सुनाई दी और मैंने एक गोरेको हाथमें लालटेन लिये आते देखा। मैं सचेत हो गया। मुझे कुछ तैयारी तो करनी ही नहीं थी। पुलिस अधिकारीने मुझसे कहा,

"मेरे पास आपके नाम वारंट है; मुझे आपको गिरफ्तार करना है।"

मैंने पूछा, "कब?"

उत्तर मिला, "अभी।"

"आप मुझे कहाँ ले जायेंगे?"

"अभी तो पासके स्टेशनपर ले जाऊँगा, और जब गाड़ी आयेगी तब उसमें बिठाकर फोक्सरस्ट ले जाऊँगा।"

मैंने कहा, "तब मैं किसीको जगाये बिना आपके साथ चलता हूँ, किन्तु अपने साथीको कुछ निर्देश दे दूँ?"

"खुशीसे दें।"

मैंने बगलमें सोते हुए पी० के० नायडूको जगाया। मैंने उनसे कहा, "मैं गिर-फ्तार कर लिया गया हूँ आप सुबह होनेसे पहले लोगोंको न जगायें। सुबह होनेपर नियमानुसार कूच कर दें। कूच तो सूर्य निकलनेसे पहले ही करनी है। जहाँ विश्राम करें और लोगोंको रोटी बाँटें वहाँ उन्हें मेरी गिरफ्तारीकी बात बतायें। कोई बीचमें पूछे तो उसे भी बता दें। काफिलेको गिरफ्तार किया जाये तो सब गिरफ्तार हो जायें। यदि उसे कोई गिरफ्तार न करे तो निश्चित विधिसे कूच जारी रखा जाये।" नायडूको कोई भय तो था नहीं। मैंने उन्हें यह भी बता दिया कि यदि वे गिरफ्तार कर लिये जायें तो क्या किया जाये। फोक्सरस्टमें श्री कैलनबैक तो मौजूद थे ही।

मैं पुलिस अधिकारीके साथ चला गया। सुबह हुई तो फोक्सरस्टकी गाड़ीमें बैठा। फोक्सरस्टमें मुझपर मुकदमा चलाया गया। सरकारी वकीलने मुकदमेको ४ तारीखतक मुल्तवी करनेकी मुहलत माँगी, क्योंकि उसके पास पूरा सबूत नहीं था। मुकदमा मुल्तवी कर दिया गया। मैंने दरखास्त दी कि मुझे जमानतपर छोड़ दिया जाये। मैंने कारण यह बताया कि मेरे साथ २,००० पुरुष, १२२ स्त्रियाँ और ५० बच्चे हैं। मैं मुकदमेकी तारीखतक इन लोगोंको ठीक जगहपर पहुँचाकर वापस आ सकता हूँ। सरकारी वकीलने मुझे जमानतपर छोड़नेका विरोध किया किन्तु मजिस्ट्रेट मजबूर था; मुझपर जो आरोप लगाया गया था वह ऐसा नहीं था जिसमें जमानतपर न छोड़ना उसके अधिकारकी बात होती। इसलिए उसने मुझे ५० पौंडकी जमानत लेकर छोड़ दिया। श्री कैलनबैकने मेरे लिए मोटर तैयार कर रखी थी। उन्होंने मुझे उसीमें बैठाकर जल्दी ही काफिलेके पास पहुँचा दिया। 'ट्रान्सवाल लीडर' का विशेष प्रतिनिधि हमारे साथ जाना चाहता था। हमने उसे अपने साथ चलनेकी अनुमति दे दी और मोटरमें साथ बिठा लिया। उसने इस यात्राका, मुकदमेका और काफिलेके लोगोंसे मिलने-जुलनेका विस्तृत वर्णन अपने पत्रमें प्रकाशित किया। लोगोंने खुश होकर मेरा स्वागत किया और उनके उत्साहका पार न रहा। श्री कैलनबैक तुरन्त वापस फोक्सरस्ट चले गये, क्योंकि उनको चार्ल्सटाउनमें बचे हुए और नये आनेवाले हिन्दुस्तानियोंको सँभालना था।

हम लोग फिर रवाना हुए; किन्तु मुझे मुक्त रहने देना सरकारको अनुकूल नहीं आ सकता था; इसलिए मैं दूसरे ही दिन फिर स्टैन्डर्टनमें गिरफ्तार कर लिया गया।[1] स्टैन्डर्टन अपेक्षाकृत बड़ा कस्बा था। वहाँ मैं विचित्र ढंगसे गिरफ्तार किया गया। मैं उस समय लोगोंको रोटी बाँट रहा था। स्थानीय दूकानदारोंने हमें डिब्बोंमें बन्द मुरब्बा भेंट किया था। इसलिए खाना बाँटनेके काममें कुछ ज्यादा वक्त लगता था। तभी मजिस्ट्रेट मेरे पास आकर खड़ा हो गया, और वितरण समाप्त होनेतक चुप रहा। उसने उसके बाद मुझे एक ओर बुलाया। मैं उसे पहचानता था, इसलिए मैंने सोचा कि वह मुझसे कुछ बात करना चाहता है। किन्तु उसने मुझसे हँसकर कहा :

"आप अब मेरे कैदी हैं।"

मैंने कहा, "मेरा दर्जा ऊँचा हो गया है, क्योंकि मुझे पुलिसके बजाय मजिस्ट्रेट गिरफ्तार करने आये; किन्तु क्या आप मुझपर अभी मुकदमा चलायेंगे?"

उन्होंने उत्तर दिया, "आप मेरे साथ ही चलें। अदालत तो बैठी ही है।"

मैं लोगोंको कूच जारी रखनेका निर्देश देकर वहाँसे चल पड़ा। मैंने अदालतमें पहुँचनेपर अपने ये पाँच साथी हिरासतमें देखे : पी० के० नायडू, बिहारीलाल महाराज, रामनारायण सिंह, रघु नारसू और रहीमखाँ।

मुझे अदालतमें तुरन्त पेश किया गया। मैंने प्रार्थना की कि मुझे जमानतपर छोड़ दिया जाये और उसका कारण वही दिया जो फोक्सरस्टमें दिया था। सरकारी

१. विवरणके लिए देखिए खण्ड १२, परिशिष्ट ११।

वकीलने यहाँ भी विरोध किया; किन्तु मजिस्ट्रेटने यहाँ भी मेरी जमानत मंजूर कर ली और मुझे ५० पौंडके मुचलकेपर छोड़ दिया। मेरा मुकदमा २१ नवम्बर तक मुल्तवी कर दिया गया। हिन्दुस्तानी व्यापारियोंने मेरे लिए एक ताँगा तैयार कर रखा था। मैं उसमें विठाकर काफिलेसे मिला दिया गया जो उस समयतक तीन मील भी दूर नहीं गया होगा। अब तो लोगोंने और मैंने भी यह मान लिया कि हम शायद टॉल्स्टॉय फार्ममें पहुँच जायेंगे; किन्तु हमारा यह खयाल ठीक नहीं था। फिर भी लोग मेरी गिरफ्तारीके अभ्यस्त हो गये, यह बात भी मामूली नहीं थी। मेरे पाँचों साथी तो जेलमें ही रहे।

अध्याय ४५

सभी जेलमें

हम जोहानिसबर्गके आसपास पहुँच चुके थे। पाठकोंको याद होगा कि हमने सारा रास्ता आठ दिनमें तय करनेका फैसला किया था। हम अबतक अपने निश्चयके अनुसार मंजिलें पूरी करते आये थे, इसलिए अब सिर्फ चार मंजिलें बाकी थीं। किन्तु जैसे-जैसे हमारा उत्साह बढ़ता था वैसे-वैसे सरकारकी जागृति भी बढ़ती थी। वह हमें अपनी यात्रा पूरी करने देती और फिर गिरफ्तार करती इसमें उसकी दुर्बलता और अकुशलता मानी जाती। इसलिए यदि उसे इन लोगोंको गिरफ्तार करना था तो यात्रा पूरी होनेसे पहले गिरफ्तार करना था।

सरकारने देखा कि यह काफिला मेरी गिरफ्तारीसे न निराश हुआ है और न डरा है। उसने कोई उत्पात भी नहीं किया। यदि वह उत्पात करता तो सरकारको गोलियाँ चलानेका मौका मिल जाता। जनरल स्मट्सके लिए तो हमारी दृढ़ता और शान्ति भी दुःखका कारण बन गई थी और उन्हें कहना पड़ा कि शान्त मनुष्योंको कोई कबतक सताये? मरे हुएको कैसे मारा जा सकता है? मरे हुएको मारनेमें कोई रस होता ही नहीं। इसीलिए शत्रुको जीता पकड़नेमें गौरव माना जाता है। यदि चूहा बिल्लीसे डरकर न भागे तो बिल्लीको कोई दूसरा शिकार ढूँढ़ना पड़ेगा। यदि सब मैमने सिंहके पास जा बैठें तो सिंहको उन्हें खाना छोड़ना पड़ेगा। यदि सिंह सामना न करे तो क्या वह पुरुष-सिंह उसका शिकार करेगा? हमारी शान्ति और हमारे निश्चयमें हमारी जीतका रहस्य छुपा था।

गोखलेने तारसे अपनी यह इच्छा व्यक्त की थी कि पोलक हिन्दुस्तान आकर उनको भारत सरकार और साम्राज्य सरकारके सम्मुख दक्षिण आफ्रिकाकी स्थिति रखनेमें सहायता दें।[1] श्री पोलक जहाँ होते वहाँ उपयोगी सिद्ध होते। यह उनकी खूबी ही थी। वे जो काम हाथमें लेते उसमें तन्मय हो जाते। इसलिए उन्हें हिन्दुस्तान भेजनेकी तैयारी की जा रही थी। मैंने तो उन्हें लिख दिया था[2] कि वे चले जायें। परन्तु

१. देखिए खण्ड १२, पृष्ठ १११, ११३-१४ तथा १३२।

२. पत्र उपलब्ध नहीं है।

वे मुझसे मिलकर मेरे पूरे निर्देश लिए बिना जाना नहीं चाहते थे। इसलिए उन्होंने कूचके बीचमें मुझसे मिलनेके लिए आनेकी अनुमति माँगी। मैंने उन्हें तारसे[1] उत्तर दिया कि यदि वे गिरफ्तारीका जोखिम उठाकर आना चाहें तो आ जायें। लड़नेवाले सैनिक आवश्यक जोखिम उठानेके लिए सदा तैयार ही रहते हैं। यदि सरकार सबको गिरफ्तार करे तो गिरफ्तार हो जायें। लड़ाई ही यह थी। जबतक वह गिरफ्तार न करे तबतक सबको गिरफ्तार होनेके सीधे और नीतिमय प्रयत्न करने थे। इसलिए पोलकने गिरफ्तारीकी जोखिम लेकर आना पसन्द किया।

श्री पोलक ९ तारीखको स्टैन्डर्टन और ग्रेलिंगस्टाडके बीच टीकवर्थमें हमसे आ मिले।[2] हम बातचीत कर रहे थे; किन्तु हमारी बातचीत लगभग पूरी होनेवाली थी। उस समय शामके तीन बजे थे। हम दोनों इस जत्थेके आगे-आगे चल रहे थे। दूसरे साथी भी हमारी बातें सुन रहे थे। श्री पोलकको शामकी डर्बन जानेवाली गाड़ी पकड़नी थी। किन्तु जब रामचन्द्रजी-जैसे महापुरुषको तिलक मिलते-मिलते बनवास मिला तब बेचारे पोलक किस गिनतीमें थे? हम बातें कर ही रहे थे कि इतनेमें एक घोड़ागाड़ी हमारे सामने आकर खड़ी हो गई। उसमें ट्रान्सवालके मुख्य प्रवासी अधिकारी श्री चैमने और एक पुलिस अधिकारी बैठे थे। वे दोनों नीचे उतरे। उनमें से एकने मुझे कुछ दूर ले जाकर कहा, "मैं आपको गिरफ्तार करता हूँ।"

इस तरह मैं चार दिनमें तीसरी बार गिरफ्तार किया गया।

मैंने पूछा, "काफिलेका क्या होगा?"

उत्तर मिला, "जो होगा सो होता रहेगा।"

मैंने आगे कुछ नहीं कहा। मैंने पोलकसे कहा कि वे काफिलेके साथ जाएँ। पुलिस अधिकारीने मुझे तो केवल लोगोंको अपनी गिरफ्तारीकी खबर देनेकी इजाजत दी। मैं लोगोंसे शान्ति कायम रखनेकी बात कहने जा रहा था, तब उसने कहा:

"अब आप मेरे कैदी हैं, अतः भाषण नहीं दे सकते।"

मैं अपनी मर्यादा समझ गया, किन्तु समझनेकी जरूरत भी नहीं थी, क्योंकि अधिकारीने मेरा बोलना बन्द करनेके साथ ही गाड़ीवानको जोरसे गाड़ी चलानेकी आज्ञा दी और काफिला एक क्षणमें हमारी निगाहसे ओझल हो गया।

उक्त अधिकारी जानता था कि यहाँ फिलहाल मेरा ही राज्य है। वहाँ इस वीरान मैदानमें हमपर विश्वास रखकर ही वह दो हजार लोगोंके सामने अकेला खड़ा था। वह जानता था कि यदि उसने मुझे चिट्ठी भेजकर भी गिरफ्तार किया होता तो मैं अपने आपको सुपुर्द कर देता। इस स्थितिमें 'मैं कैदी हूँ', मुझे यह याद दिलानेकी जरूरत नहीं थी। मैं लोगोंसे जो कुछ कहता वह अधिकारियोंके लिए भी उपयोगी ही होता। किन्तु उसे तो मुझे अपना रूप दिखाना था। मुझे इसके साथ यह भी कहना चाहिए कि बहुतसे अधिकारी मेरी गिरफ्तारीका अर्थ जानते

१. तार उपलब्ध नहीं है।

२. यह वाक्य अंग्रेजीसे अनूदित है। गुजरातीमें यहाँ ये वाक्य हैं: "हम हीडेलबर्गके पास पहुँच गये थे। वह उसके पासके स्टेशनपर उतरकर हमारे पास पैदल चल कर आये।"

थे। वे जानते थे कि हम इस कैदको अंकुश अथवा कष्ट नहीं मानते और वह हमारे लिए तो मुक्तिका द्वार ही है। इसीलिए वे हमें सब तरहकी छूट देते थे। इतना ही नहीं, बल्कि गिरफ्तारीमें सुविधा करने और समयकी बचत करनेमें हमारी सहायता लेते तथा उसके लिए हमारा उपकार मानते। पाठकोंको इन प्रकरणोंमें दोनों तरहके उदाहरण मिलेंगे।

मैं पहले ग्रेलिंगस्टाड ले जाया गया और फिर वहाँसे बाल्फोर होकर हीडेल-बर्ग। मैंने रात यहीं बिताई।

हमारा यात्रीदल श्री पोलकके नेतृत्वमें बढ़ता चला गया और रातको ग्रेलिंग-स्टाडमें ठहरा। यहाँ सेठ अहमद मुहम्मद काछलिया और सेठ अहमद भायात आ गये। जो-कुछ होनेवाला था उन्हें उसकी खबर मिल गई थी। मेरे साथ ही काफिलेको भी गिरफ्तार करनेका इन्तजाम कर लिया गया था। इसलिए श्री पोलकने खयाल किया कि वे काफिलेको ठिकाने लगाकर एक दिन देरसे जाकर भी डर्बनसे हिन्दुस्तानके लिए जहाज पकड़ लेंगे। किन्तु ईश्वरने तो दूसरी ही बात सोच रखी थी।

१० तारीखको ९ बजेके करीब यात्री-दल बाल्फोर पहुँचा। वहाँ उसको ले जानेके लिए तीन विशेष गाड़ियाँ खड़ी हुई थीं।[1] दलके लोगोंने यहाँ कुछ हठ किया। उन्होंने कहा, 'गांधीको बुलायें। वे कहेंगे तो हम गिरफ्तार होकर गाड़ीमें बैठ जायेंगे।' उनका यह हठ अनुचित था। यदि वे हठ न छोड़ते तो सारी बाजी ही बिगड़ जाती और सत्याग्रहियोंकी शक्ति घटती। उन्हें जेल जानेमें गांधीकी क्या जरूरत थी? सैनिक क्या कहीं सेनापतिका चुनाव करता है? वह क्या किसी एक ही आदमीका हुक्म माननेका हठ कर सकता है? श्री चैमनेने इन लोगोंको समझानेमें श्री पोलक और सेठ काछलियाकी सहायता ली। वे बड़ी मुश्किलसे यह बात समझा सके कि यात्रियोंका उद्देश्य तो जेल जाना ही है और जब सरकार उनको गिरफ्तार करनेके लिए तैयार हो तो उन्हें उसके कदमका स्वागत करना चाहिए। हमारी सज्जनता इसीमें है और लड़ाईका अन्त भी यही है। मेरी इच्छा इससे भिन्न हो ही नहीं सकती, लोगोंको यह बात समझ लेनी थी। अन्तमें वे इस बातको समझ गये और गाड़ियोंमें जाकर बैठ गये।

उधर मैं अदालतमें पेश किया गया। मुझे ऊपर बताई गई घटनाओंकी कोई खबर नहीं थी। मैंने अदालतसे फिर मोहलत माँगी। मैंने बताया कि मुझे दो अदालतोंसे मोहलत मिल चुकी है। अब यात्रा थोड़ी ही बाकी रही है, मैंने यह भी बताया और प्रार्थना की कि या तो सरकार उन लोगोंको गिरफ्तार कर ले या मुझे उन्हें टॉल्स्टॉय फार्ममें सुरक्षित पहुँचानेकी अनुमति दे दे। अदालतने मेरी प्रार्थना तो स्वीकार नहीं की, किन्तु सरकारके पास तुरन्त भेज देनेकी बात स्वीकार कर ली। मैं इस बार डंडी ले जाया जानेवाला था। मुझपर मजदूरोंको नेटाल छोड़नेके लिए बहकानेके सम्बन्धमें खास मुकदमा नहीं चलना था; इसलिए मैं उसी दिनकी गाड़ीमें डंडी ले जाया गया।

१. मूलमें यहाँ यह वाक्य है: "गिरफ्तार किये गये लोगोंको ले जानेके लिए हीडेलबर्गमें दो विशेष गाड़ियाँ खड़ी थीं।"

श्री पोलक हीडेलबर्गमें[1] गिरफ्तार नहीं किए गये, इतना ही नहीं बल्कि काफिलेकी गिरफ्तारीमें उनसे जो सहायता मिली उसके लिए उन्हें धन्यवाद भी दिया गया। श्री चैमनेने तो यह भी कहा कि सरकारका विचार उनको गिरफ्तार करनेका है ही नहीं। किन्तु यह तो श्री चैमनेका विचार था और जहाँतक उन्हें पता था वहींतक यह सरकारका भी विचार था। किन्तु सरकारका विचार तो पल-पलपर बदलता था। सरकारने अन्तमें निर्णय किया कि श्री पोलकको हिन्दुस्तान न जाने दिया जाये और उन्हें और श्री कैलनबैकको जो पूरी शक्तिसे काम कर रहे थे गिरफ्तार कर लिया जाये। इसलिए श्री पोलक चार्ल्सटाउनमें गिरफ्तार कर लिए गये। वे उस समय गाड़ीका इन्तजार कर रहे थे। श्री कैलनबैक भी गिरफ्तार कर लिए गये। दोनों सज्जन फोक्सरस्टकी जेलमें रखे गये।[2]

मुझपर ११ तारीखको डंडीमें मुकदमा चलाया गया। इसमें मुझे नौ महीनेकी कैदकी सजा दी गई।[3] अभी मुझपर ट्रान्सवालमें वर्जित लोगोंको प्रवेशके लिए उकसानेके जुर्ममें फोक्सरस्टमें दूसरा मुकदमा चलाया जाना बाकी था, अतः मैं १३ नवम्बरको फोक्सरस्ट ले जाया गया। वहाँ मैंने कैलनबैक और श्री पोलकको देखा। इस तरह हम तीनों आदमी फोक्सरस्टकी जेलमें इकट्ठे हो गये और हमारे हर्षकी सीमा न रही।

१४ तारीखको मुझपर फोक्सरस्टकी अदालतमें मुकदमा चलाया गया।[4] इसमें खास बात यह थी कि मुझे अपने विरुद्ध स्वयं ही साक्षी देनी थी। पुलिसको साक्षी मिल सकती थी, किन्तु कठिनतासे, इसलिए उसने इस मामलेमें मेरी सहायता ली थी। यहाँकी अदालतें केवल अभियुक्तके अपराध स्वीकार कर लेनेपर दण्ड नहीं देती थीं।

मेरा मामला तो ठीक हो गया, किन्तु प्रश्न था कि श्री कैलनबैक और श्री पोलकके विरुद्ध गवाही कौन दे? यदि उनके विरुद्ध गवाही न मिलती तो उन्हें दण्ड देना असम्भव था। उनके विरुद्ध उसी समय गवाही मिलना मुश्किल था। श्री कैलनबैक तो अपना अपराध स्वीकार करनेवाले थे ही, क्योंकि उनका विचार काफिलेके साथ रहनेका था। किन्तु श्री पोलकका विचार तो हिन्दुस्तान जानेका था। उन्हें इस समय जानबूझकर जेल नहीं जाना था; इसलिए हम तीनोंने मिलकर यह निश्चय किया कि श्री पोलकने अपराध किया है कि नहीं, इस प्रश्नके उत्तरमें हम 'हाँ' या 'ना' कुछ न कहें।

इन दोनोंके विरुद्ध गवाह मैं बना। हम नहीं चाहते थे कि मुकदमे लम्बे खींचे जायें। इसलिए तीनों मुकदमोंको एक-एक दिनमें ही खत्म करानेके विचारसे हमने पूरी सहायता दी और हमारे मुकदमे क्रमशः १४, १५ और १७ नवम्बरको खत्म हो गये। हम तीनोंको तीन-तीन महीनेकी कैदकी सजायें दी गईं। हमें अब लगा कि

१. अंग्रेजी अनुवादमें यहाँ "बाल्फोर" है।
२. विस्तृत विवरणके लिए देखिए खण्ड १२, परिशिष्ट १३।
३. देखिए खण्ड १२, पृष्ठ २५५-७।
४. देखिए खण्ड १२, पृष्ठ २५९-६०।

हम कमसे-कम इन तीन महीनोंमें तो साथ-साथ रह सकेंगे; किन्तु सरकारको यह अनुकूल नहीं पड़ता था।

इस बीच कुछ दिनतक तो हम फोक्सरस्टकी जेलमें प्रसन्न रहे। यहाँ नित्य नये कैदी आते और हमारे पास बाहरकी खबरें लाते। इन सत्याग्रही कैदियोंमें एक हरबतसिंह नामका बूढ़ा था। उसकी उम्र ७५ वर्षसे अधिक थी। वह खानोंमें नौकर नहीं था। उसने अपनी गिरमिटकी मियाद कई साल पहले पूरी कर ली थी, इसलिए वह हड़ताली नहीं था। मेरी गिरफ्तारीके बाद हिन्दुस्तानी लोगोंमें उत्साह बहुत बढ़ गया था, इसलिए वे नेटालसे ट्रान्सवालमें आकर गिरफ्तार हो जाते थे। हरबतसिंह भी ट्रान्सवालमें प्रवेश करके गिरफ्तार हुआ था।

मैंने हरबतसिंहसे पूछा, "आप क्यों जेलमें आये? आप-जैसे बुड्ढोंको मैंने जेलमें आनेका निमन्त्रण नहीं दिया है।"

हरबतसिंहने उत्तर दिया, "मैं कैसे रह सकता था — जब आप, आपकी धर्मपत्नी और आपके बच्चे भी हम लोगोंके लिए जेल चले गये?"

"लेकिन आपसे जेलके दुःख बर्दाश्त नहीं हो सकेंगे, आप जेलसे चले जायें। क्या मैं आपके छुड़वानेकी तजवीज करूँ?"

"मैं हरगिज जेल नहीं छोड़ूँगा। मुझे एक दिन तो मरना है, पर मेरी ऐसी किस्मत कहाँ जो मेरी मौत जेलमें हो।"

मैं ऐसी दृढ़ताको क्यों डिगाता? मैं प्रयत्न करता तो भी वह न डिगता। मेरा सिर इस निरक्षर ज्ञानीके सामने झुक गया। हरबतसिंह जैसा चाहते थे, वैसा ही हुआ। उनकी मृत्यु ५ जनवरी १९१४ को जेलमें ही हुई। उनका शव फोक्सरस्टसे डर्बन मँगाया गया था और उनके अग्नि-संस्कारमें सैकड़ों हिन्दुस्तानी सम्मिलित हुए थे। हरबतसिंह-जैसे आदमी इस लड़ाईमें एक-दो नहीं, अनेक थे। किन्तु जेलमें मरण पानेका गौरव केवल हरबतसिंहको ही मिला था;[१] इसीलिए दक्षिण आफ्रिकाके सत्याग्रहके इतिहासके पन्नोंमें उनका उल्लेख किया गया है।

सरकार यह पसन्द नहीं कर सकती थी कि लोग इस प्रकार आकर्षित होकर जेलमें आयें। लोग जेलसे छूटकर मेरा सन्देश बाहर ले जायें, उसे यह बात भी सह्य नहीं थी। इसलिए उसने यह निश्चय किया कि हम तीनों अलग-अलग कर दिए जायें, हममें से एकको भी फोक्सरस्टमें न रहने दिया जाये और मुझे किसी ऐसी जेलमें ले जाकर रखा जाये जहाँ कोई भी हिन्दुस्तानी न जा सके। इसलिए मैं ऑरेंजियाकी राजधानी ब्लूमफॉन्टीनकी जेलमें भेज दिया गया। ऑरेंजियामें हिन्दुस्तानियोंकी आबादी शायद ५० से ज्यादा न थी। वे सब होटलोंमें नौकरी करते थे। ऐसे प्रदेशकी जेलमें कोई दूसरे हिन्दुस्तानी कैदीके होनेकी सम्भावना नहीं हो सकती थी। अतः इस जेलमें एक मैं ही हिन्दुस्तानी था। बाकी सब गोरे या हब्शी थे। मुझे इस बातका दुःख नहीं था; बल्कि मैंने इसमें सुख माना था। मुझे कुछ सुनना या देखना नहीं था। मुझे नया अनुभव मिलता, यह भी मेरी मनपसन्द बात थी। फिर मुझे पढ़नेका समय

१. खण्ड १२, पृष्ठ ३१६ भी देखिए।

तो सालोंसे —— कहना चाहिए १८९३ से —— नहीं मिला था। अब एक वर्ष पढ़नेका समय मिलेगा, यह जानकर मुझे तो प्रसन्नता ही हुई थी।

मैं ब्लूमफॉन्टीन भेज दिया गया। वहाँ मुझे एकान्त तो बेहद मिला। दिक्कतें भी बहुत थीं, किन्तु वे सब सही जा सकती थीं। मैं इनका वर्णन करके पाठकोंका समय नहीं लूँगा। किन्तु इतना कह देना आवश्यक है कि उस जेलका डाक्टर मेरा मित्र बन गया था। जेलर तो अपना अधिकार-भर समझता था, किन्तु डाक्टर कैदियोंके अधिकारोंकी रक्षाका प्रयत्न करता था। मैं उन दिनों केवल फलाहार करता था और दूध, घी या अन्न नहीं लेता था। मेरे भोजनमें केला, टमाटर, कच्ची मूँगफलियाँ, नींबू और जैतूनका तेल होता था। यदि इनमें कोई भी चीज खराब आती तो भूखों ही मरना पड़ता; इसलिए डाक्टर विशेष ध्यान रखता था और उसने मेरे आहारमें बादाम, अखरोट या ब्राजील नट बढ़ा दिए थे। वह मेरे लिए लाए हुए सब फलोंको खुद देखता था। मुझे जो कोठरी दी गई थी उसमें हवाकी बहुत ही कमी थी। डाक्टरने बहुत जोर दिया कि मेरी कोठरीका दरवाजा खुला रहे, किन्तु उसकी बात चली नहीं। जे़लरने यह धमकी दी कि दरवाजा खुला रहेगा तो मैं इस्तीफा दे दूँगा। जेलर बुरा आदमी नहीं था, किन्तु उसका स्वभाव एक खास तरहका बन गया था। वह कैसे बदलता? उसे काम पड़ता था खतरनाक कैदियोंसे। उसे भय था —— और सच्चा भय था —— कि यदि वह मुझ-जैसे भले कैदीसे व्यवहार-भेद करेगा तो दूसरे कैदी उसके सिर हो जायेंगे। मैं जेलरका दृष्टिकोण भली-भाँति समझ सकता था, इसलिए डाक्टर और जेलरके बीच मेरे सम्बन्धमें जो झगड़ा होता, उसमें मेरी सहानुभूति सदा जेलरके साथ ही रहती। जेलर अनुभवी था, सीधा-सादा आदमी था और अपना मार्ग साफ-साफ देखता था।

श्री कैलनबैक प्रिटोरियाकी जेलमें भेजे गये और श्री पोलक जर्मिस्टनकी जेलमें।

किन्तु सरकारकी ये सब योजनाएँ व्यर्थ थीं। आसमान फटे तब पैबन्द क्या काम दे सकता है? नेटालके गिरमिटिए हिन्दुस्तानी पूरी तरह जग गये थे और उन्हें कोई भी शक्ति रोक नहीं सकती थी।

अध्याय ४६

कसौटी

सोनेकी परख करनेवाला सोनेको कसौटीपर कसता है। इससे भी अधिक परीक्षा जरूरी हो तो उसे भट्टीमें डालता है, उसे पीटता है और उसमें कुछ मिलावट हो तो उसे अलग करके उसका कुन्दन बना देता है। ऐसी ही कसौटी हिन्दुस्तानियोंकी भी हुई; वे कसे गये, भट्टीमें डाले गये, और पीटे गये। और जब वे कसौटीपर खरे उतरे तब उनकी ठीक कीमत समझमें आई।

यात्री दलके लोग विशेष गाड़ीमें बिठाकर ले जाये गये तो किसी बन-भोजनके लिए नहीं, बल्कि निहाईपर रखकर पीटे जानेके लिए। रास्तेमें उनके खाने-पीनेका कोई

इन्तजाम नहीं किया गया। उनपर नेटालमें पहुँचते ही मुकदमा चलाया गया और उनको कैदकी सजायें दे दी गईं। ऐसा होगा, यह खयाल तो था ही। सभी यह चाहते भी थे। किन्तु हजारों लोगोंको जेलमें रखनेका अर्थ था खर्च बढ़ाना और हिन्दुस्तानियों-का मनचाहा करना। इससे कोयलेकी खानें आदि भी बन्द रहतीं। यदि ऐसी स्थिति लम्बे अरसेतक चलती तो उक्त तीन पौंडी कर रद करना ही पड़ता। इसलिए संघ सरकारने एक नई युक्ति सोची। उसने गिरमिटियोंको, वे जिस-जिस जगहसे आये थे, उन्हीं जगहोंमें वापस भेज दिया और एक नया कानून बनाकर उन जगहोंको ही जेलोंका रूप दे दिया और खानोंके गोरे नौकरोंको जेलोंका वार्डर नियुक्त कर दिया। उसने ऐसा करके मजदूरोंने जो काम छोड़ा था उनसे जबरदस्ती वही काम कराया और खानोंमें काम फिर चालू हो गया। गुलामी और नौकरीमें यह अन्तर होता है कि यदि नौकर नौकरी छोड़े तो उसपर दीवानी अदालतमें दावा दायर किया जा सकता है, किन्तु यदि गुलाम काम छोड़े तो उसे जबरदस्ती कामपर वापस लाया जा सकता है। इस तरह अब मजदूर पूरी तरह गुलाम बन गये।

किन्तु इतना ही नहीं हुआ। मजदूर तो वीर थे। उन्होंने खानोंमें काम करनेसे साफ इनकार कर दिया। फलस्वरूप उन्हें बेंतोंकी मार खानी पड़ी। जो उद्धत मनुष्य एक क्षणमें अधिकारी बन बैठे थे, उन्होंने उन्हें ठोकरें लगाईं, उनको गालियाँ दीं और उनपर दूसरे अत्याचार किये। इन सबका कोई लेखा-जोखा नहीं रखा जा सका। किन्तु इन गरीब मजदूरोंने ये सब कष्ट धीरजसे सहन किये। इन अत्याचारोंकी खबरें हिन्दु-स्तानमें तारोंसे भेजी गईं। ये सब तार गोखलेको भेजे जाते थे; यदि उनको एक दिन भी ब्यौरेवार तार न मिलता तो वे स्वयं सीधी पूछताछ करते। वे उस समय बहुत बीमार थे; उन्होंने उसी हालतमें इन तारोंसे मिली खबरोंका प्रचार किया। किन्तु उन्होंने दक्षिण आफ्रिकाके मामलोंकी देखभाल स्वयं करनेका आग्रह रखा और उसमें रात और दिनका कोई खयाल नहीं रखा। परिणामतः सारा हिन्दुस्तान भड़क उठा और दक्षिण आफ्रिकाका प्रश्न हिन्दुस्तानमें एक मुख्य प्रश्न बन गया।

इसी समय लॉर्ड हार्डिंगके प्रसिद्ध भाषणसे दक्षिण आफ्रिका और इंग्लैंडमें बड़ी खलबली मची।[1] वाइसराय अन्य उपनिवेशोंकी खुली आलोचना नहीं कर सकता, किन्तु लॉर्ड हार्डिंगने तीव्र आलोचना की; इतना ही नहीं उन्होंने सत्याग्रहियोंका पूरा पक्ष लिया और सविनय कानून भंगका समर्थन किया। इंग्लैंडमें लॉर्ड हार्डिंगके इस साहसकी तीव्र आलोचना की गई; किन्तु फिर भी लॉर्ड हार्डिंगने इसपर पश्चात्ताप प्रकट नहीं किया, बल्कि अपने कार्यको उचित ही बताया। उनकी इस दृढ़ताका प्रभाव बहुत अच्छा हुआ।

अब हम इन खानोंमें कैद किये हुए दुःखी और साहसी मजदूरोंको छोड़कर एक क्षणके लिए बाहर नेटालके अन्य भागोंकी स्थितिपर दृष्टिपात करें।

१. अंग्रेजीमें यहाँ यह वाक्य इस प्रकार है: "उन्हीं दिनों (दिसम्बर १९१३ में) लॉर्ड हार्डिंगने मद्रासमें अपना प्रसिद्ध भाषण दिया जिससे दक्षिण आफ्रिका . . .।" वस्तुतः यह भाषण २४ नवम्बर, १९१३को दिया गया था।

खानें नेटालके उत्तर-पश्चिम भागमें पड़ती हैं। किन्तु सबसे अधिक हिन्दुस्तानी मजदूर नेटालके उत्तरी और दक्षिणी तटोंपर काम करते थे। उत्तरी तटपर फीनिक्स, वेरूलम और टोंगाट आदि स्थित हैं। इनमें काम करनेवाले मजदूरोंसे मेरा बहुत अच्छा सम्पर्क हुआ था और उनमें से बहुतसे मेरे साथ बोअर युद्धमें थे। किन्तु डर्बनसे लेकर इसीपिंगो और अमजिन्टोतक दक्षिणी तटपर काम करनेवाले मजदूरोंसे मेरा सम्पर्क उतना अधिक नहीं हुआ था और इधर मेरे साथी भी बहुत कम थे। फिर भी वहाँ जेल जाने और हड़ताल करनेकी बात बिजलीकी तरह तेजीसे फैली। दोनों ही जगहसे हजारों मजदूर अपने-आप काम छोड़कर निकल चले। कुछने यह सोचकर कि लड़ाई लम्बी चलेगी और उन्हें कोई खाना नहीं देगा, अपना सामान भी बेच डाला था। मैंने जेल जाते समय साथियोंको चेता दिया था कि वे और ज्यादा मजदूरोंको हड़ताल करनेसे रोकें। मैंने आशा की थी कि केवल खान-मजदूरोंकी सहायतासे लड़ाई जीती जा सकेगी। यदि सब मजदूर यानी लगभग साठ हजार लोग हड़ताल कर देते तो उनका गुजारा मुश्किल होता। इतने लोगोंको कूचमें ले जानेकी सामग्री नहीं थी। न इतने कार्यकर्त्ता थे और न पर्याप्ति धन। फिर इतने लोगोंको इकट्ठा करके उपद्रव करनेसे रोकना अशक्य होता।

किन्तु जब बाढ़ आती है तब क्या किसीके रोके रुकती है? मजदूर सभी जगह अपने-आप निकल पड़े और ऐसी जगहोंमें स्वयंसेवक भी अपने-आप संगठित हो गये।

अब सरकारने बन्दूक चलानेकी नीति अख्तियार की। उसने लोगोंको हड़ताल करनेसे जबरदस्ती रोका। घुड़सवारोंने उनका पीछा किया और उनको खदेड़कर उनकी जगहोंमें पहुँचा दिया। हुक्म था कि लोग जरा भी उपद्रव करें तो उनपर गोली चला दी जाये। उन लोगोंने वापस जानेका विरोध किया। कुछ लोगोंने पत्थर भी फेंके। फलतः गोलियाँ चलाई गईं। बहुत लोग घायल हुए और दो-चार आदमी मरे भी। किन्तु इससे लोगोंका उत्साह कम नहीं हुआ। वेरूलमके पास स्वयंसेवकोंने लोगोंको मुश्किलसे हड़ताल करनेसे रोका। अवश्य ही सब लोग काम करने नहीं गये। कुछ भयके कारण छुप गये और कामपर नहीं लौटे।

यहाँ एक घटनाका उल्लेख करने योग्य है। वेरूलममें बहुतसे मजदूर काम छोड़कर निकल आये थे। वे किसी भी तरह कामपर वापस नहीं जाते थे। जनरल ल्यूकिन अपने सैनिकोंके साथ वहाँ मौजूद थे और गोली चलानेका हुक्म देनेके लिए तैयार थे। स्वर्गीय पारसी रुस्तमजीका छोटा बहादुर बेटा सोराबजी, जिसकी उम्र मुश्किलसे अठारह वर्षकी होगी, डर्बनसे वहाँ पहुँच गया था। उसने जनरल ल्यूकिनके घोड़ेकी लगाम पकड़कर कहा, "आप गोली चलानेका हुक्म नहीं दे सकते; मैं अपने लोगोंको शान्तिसे कामपर जानेका जिम्मा लेता हूँ।" जनरल ल्यूकिन उस नवयुवककी वीरतापर मुग्ध हो गया और उसने उसे प्रेमबलका प्रयोग करनेकी अनुमति दे दी। सोराबजीने लोगोंको समझाया। उसकी बात लोगोंकी समझमें आ गई और वे कामपर वापस चले गये। इस तरह एक नवयुवककी सूझबूझ, निर्भयता और प्रेमसे रक्तपात होते-होते रुक गया।

पाठकोंको जानना चाहिए कि ये गोलियाँ चलाने-जैसे काम गैरकानूनी ही थे। सरकारका खान-मजदूरोंसे व्यवहार देखनेमें कानूनी था। उन लोगोंको हड़ताल करनेके जुर्ममें गिरफ्तार नहीं किया गया था; बल्कि ट्रान्सवालकी सीमामें अवैध रूपसे प्रवेश करनेके जुर्ममें गिरफ्तार किया गया था। किन्तु उत्तर तटपर और दक्षिण तटपर हड़ताल करना ही गुनाह माना गया था; किन्तु कानूनकी रूसे नहीं, बल्कि सत्ताके बलसे। अन्तमें तो सत्ता ही कानून बन जाती है। अंग्रेजीमें एक कानूनी कहावत है, "राजा कभी कोई काम अनुचित नहीं करता।" जो बात सत्ताधारियोंके अनुकूल हो, अन्ततः वही कानून होती है। यह दोष सार्वभौम है। असलमें तो इस तरह कानूनकी उपेक्षा करना सदा दोष नहीं होता। कभी-कभी तो सामान्य कानूनपर कायम रहना ही दोष बन जाता है। यदि सत्ता लोकहित करती हो, और उसपर लगा हुआ अंकुश उसके नाशका कारण बनता हो, तो उस अंकुशका अनादर करना धर्म्य और विवेक-संगत होता है। किन्तु ऐसे अवसर कदाचित् ही आ सकते हैं। जहाँ सत्ता ज्यादातर निरंकुशताका व्यवहार करती है वहाँ वह लोकोपकारी हो ही नहीं सकती। दक्षिण आफ्रिकामें इस मामलेमें सत्ताके निरंकुश होनेका कोई कारण नहीं था। लोगोंका तो हड़ताल करनेका अधिकार अनादि है। हड़तालियोंको उपद्रव तो नहीं करना था और सरकारके पास यह माननेके पर्याप्त कारण थे। हड़तालका उग्रसे-उग्र परिणाम केवल यही होता कि तीन पौंडी कर रद हो जाता। शान्तिप्रिय लोगोंके विरुद्ध शान्तिपूर्ण उपाय काममें लेना ही उचित हो सकता है। फिर वहाँ सत्ता लोकोपकारी नहीं थी। वहाँ उसका अस्तित्व ही गोरोंके उपकारके लिए था। वह सामान्यतः हिन्दुस्तानियोंके विरुद्ध थी। इसलिए ऐसी एकांगी सत्ताकी निरंकुशता किसी भी तरह उचित और क्षन्तव्य नहीं मानी जा सकती थी।

इसलिए मेरी बुद्धिसे तो वहाँ सत्ताका विशुद्ध दुरुपयोग ही हुआ था। जिस कार्यकी सिद्धिके लिए सत्ताका ऐसा दुरुपयोग किया जाता हो वह कार्य कभी सिद्ध नहीं होता। कभी-कभी उसमें क्षणिक सिद्धि मिलती अवश्य दिखाई देती है, किन्तु वह स्थायी कभी नहीं होती। दक्षिण आफ्रिकामें तो गोलियाँ चलनेके बाद छः महीनेके भीतर ही जिस तीन पौंडी करकी रक्षाके लिए यह अत्याचार किया गया था वह रद कर दिया गया था। इस तरह कई बार दुःख सुखका निमित्त हो जाता है। हिन्दुस्तानियोंके इस दुःखकी पुकार सर्वत्र सुनी गई। मैं तो यह मानता हूँ कि जैसे एक यन्त्रमें प्रत्येक वस्तुका अपना स्थान होता है वैसे ही हरएक लड़ाईमें प्रत्येक घटनाका स्थान होता है; और जैसे जंग और धूल आदि यन्त्रकी गतिको रोकते हैं वैसे ही कुछ बातें लड़ाईकी गतिको रोकती हैं। उसमें हम तो निमित्त मात्र ही होते हैं, इसलिए हम हमेशा यह नहीं जान पाते कि क्या चीज हमारे अनुकूल है और क्या हमारे प्रतिकूल। इसलिए हमें तो केवल अपने साधनको जाननेका ही अधिकार है। यदि साधन पवित्र हो तो हम परिणामके सम्बन्धमें निर्भय और निश्चिन्त रह सकते हैं।

मैंने इस लड़ाईमें यह देखा कि सैनिकोंके कष्ट ज्यों-ज्यों बढ़ते गये त्यों-त्यों कष्टोंका अन्त निकट आता गया। उसमें ज्यों-ज्यों दुःखी लोगोंकी निर्दोषता स्पष्ट

होती गई त्यों-त्यों उस संघर्षका अन्त निकट आता गया। फिर इस युद्धमें मैंने यह भी देखा कि ऐसे निर्दोष, निःशस्त्र और अहिंसक युद्धमें ऐन मौकेपर अनायास ही आवश्यक साधन जुट जाते हैं। इसमें बहुतसे स्वयंसेवकोंने, जिन्हें मैं तबतक जानता भी नहीं था, अपने-आप सहायता दी। ऐसे सेवक प्रायः निःस्वार्थ होते हैं। वे इच्छा न होनेपर भी अप्रकट रूपसे अपनी सेवाएँ दे देते हैं। उनकी ओर कोई ध्यान भी नहीं देता और न उन्हें कोई प्रमाणपत्र देता है। कुछ सेवक तो यह भी नहीं जानते कि ईश्वर उनके ऐसे अमूल्य कार्यको अपनी पुस्तकमें दर्जकर लेता है।

दक्षिण आफ्रिकाके हिन्दुस्तानी उस परीक्षामें उत्तीर्ण हुए। उन्होंने अग्निमें प्रवेश किया और उसमें से पूर्ण शुद्ध होकर निकले। इस लड़ाईके अन्तका आरम्भ किस तरह हुआ इसपर हम एक अलग प्रकरणमें विचार करेंगे।

अध्याय ४७

अन्तका आरम्भ

पाठकोंने देखा होगा कि कौमने जितना बल लगाया जा सकता था और जितनेकी अपेक्षा रखी जा सकती थी उससे अधिक अहिंसात्मक बल लगाया। पाठकोंने यह भी देखा होगा कि इस बलको लगानेवाले लोगोंमें अधिकतर लोग ऐसे गरीब और दलित थे जिनसे कोई आशा नहीं रखी जा सकती थी। पाठकोंको यह भी याद होगा कि फीनिक्सके लोगोंमें से दो या तीनके सिवा दूसरे सब जिम्मेदारीका काम करनेवाले लोग जेलमें थे। फीनिक्सके बाहरके लोगोंमें स्वर्गीय सेठ अहमद मुहम्मद काछलिया थे। फीनिक्समें श्री वेस्ट, उनकी पुत्री और मगनलाल गांधी थे। सेठ काछलिया सामान्य देखभालका काम करते थे। कुमारी श्लेसिन ट्रान्सवालका सारा हिसाब-किताब और सीमाका उल्लंघन करनेवालोंकी देखरेख रखती थीं। श्री वेस्टपर 'इंडियन ओपिनियन'के अंग्रेजी विभागको चलानेकी और श्री गोखलेसे तारोंके आदान-प्रदानकी जिम्मेदारी थी। ऐसे समयमें जब स्थितियाँ क्षण-क्षण बदलती थीं, पत्र-व्यवहारकी जरूरत तो हो ही क्या सकती है? तार ही पत्रोंके समान लम्बे भेजने पड़ते थे और उनको भेजना बड़ी जिम्मेदारीका काम था।

अब जैसे न्यूकैसिलके उत्तरी तटपर खानोंके क्षेत्रमें हड़तालियोंका केन्द्र था वैसे ही फीनिक्स भी हड़तालियोंका केन्द्र बन गया। वहाँ सैकड़ों लोग सलाह करने और आश्रय लेनेके लिए आने लगे। इस कारण सरकारकी दृष्टि फीनिक्सकी ओर जाये बिना कैसे रहती? आसपास रहनेवाले गोरोंकी आँखें भी लाल हुईं। कुछ हदतक फीनिक्समें रहना खतरनाक हो गया था। फिर भी छोटे-छोटे बालकतक हिम्मत करके खतरेके कामोंको करते रहते थे। इसी बीच श्री वेस्ट गिरफ्तार कर लिये गये। वास्तवमें देखें तो उन्हें गिरफ्तार करनेका कोई कारण नहीं था। हमने तय यह किया था कि श्री वेस्ट और मगनलाल गांधीको गिरफ्तार होनेका कोई प्रयत्न नहीं करना चाहिए। बल्कि सम्भव हो तो गिरफ्तार होनेके अवसरोंसे दूर रहना चाहिए। इसलिए श्री वेस्टने

अपने गिरफ्तार किये जाने योग्य होनेका कोई कारण दिया ही नहीं था। किन्तु सरकारको सत्याग्रहियोंकी सुविधा तो देखनी नहीं थी, न उन्हें गिरफ्तार करनेका उचित अवसर ढूँढ़ना था। अधिकारियोंके लिए तो किसी कार्यकी इच्छा होना ही उसका अवसर होता है। श्री गोखलेने श्री वेस्टकी गिरफ्तारीका तार मिलते ही हिन्दुस्तानसे किसी समझदार आदमीको भेजनेका प्रयत्न आरम्भ कर दिया। लाहौरमें जब दक्षिण आफ्रिकाके सत्याग्रहियोंकी सहायताके लिए धन संग्रह करनेके निमित्त सभा की गई तब श्री एन्ड्रयूजने उसमें अपना सब संचित धन दे दिया था। श्री गोखलेकी नजर उनपर तभीसे थी। इसलिए उन्होंने श्री वेस्टकी गिरफ्तारीकी खबर मिलते ही श्री एन्ड्रयूजसे तार देकर पूछा, "क्या आप इसी समय दक्षिण आफ्रिका जानेके लिए तैयार हैं?" श्री एन्ड्रयूजने तत्काल इसका उत्तर 'हाँ' में दिया। साथ ही उनके अत्यन्त प्रिय मित्र श्री पियर्सन भी जानेके लिए तैयार हो गये और वे दोनों पहले जहाजसे दक्षिण आफ्रिकाके लिए चल पड़े।

किन्तु अब तो यह लड़ाई समाप्तिके समीप थी। दक्षिण आफ्रिकाकी सरकारमें इतनी शक्ति नहीं थी कि वह हजारों निर्दोष लोगोंको जेलमें बन्द रखती। इसे वाइसराय भी बरदाश्त नहीं कर सकते थे; सारी दुनिया जनरल स्मट्स क्या करते हैं, यह देख रही थी। ऐसे समयमें सामान्य सरकारें जो-कुछ करती हैं वही दक्षिण आफ्रिकाकी सरकारने भी किया। उसे जाँच तो कुछ करनी नहीं थी। जो अन्याय किया गया था वह सर्वविदित था। सभी यह अनुभव कर सकते थे कि यह अन्याय दूर किया जाना चाहिए। जनरल स्मट्स भी देख सकते थे कि अन्याय हुआ है और उसका निराकरण किया जाना चाहिए; किन्तु उनकी हालत साँप-छछून्दर-जैसी हो गई थी। उनके लिए न्याय करना तो आवश्यक था; किन्तु न्याय करनेकी उनकी शक्ति चली गई थी, क्योंकि उन्होंने दक्षिण आफ्रिकाके गोरोंको यह वचन दे दिया था कि वे स्वयं तीन पौंडके करको रद न करेंगे और कोई अन्य सुधार भी नहीं करेंगे। किन्तु अब करको रद करने और दूसरे सुधारोंके सिवा कोई दूसरा चारा ही न था। ऐसी कठिन स्थितियोंमें से निकलनेके लिए लोकमतसे डरनेवाली सरकारें सदा आयोग नियुक्त किया करती हैं। वे उनकी मारफत नाममात्रकी जाँच करवाती हैं, क्योंकि ऐसे आयोगोंका परिणाम पहलेसे ही मालूम होता है और आयोगकी सिफारिशोंपर अमल किया ही जाना चाहिए, यह सामान्य प्रथा है। इसका अर्थ यह है कि आयोगकी सिफारिशका सहारा लेकर सरकारें जिसके सम्बन्धमें न्याय करनेसे इनकार कर देती हैं उसीके सम्बन्धमें फिर न्याय करती हैं। जनरल स्मट्सके आयोगमें[1] तीन सदस्य नियुक्त किए गये। हिन्दुस्तानी कौमने प्रतिज्ञा की कि जबतक आयोगके सम्बन्धमें कुछ शर्तोंका पालन नहीं किया जायेगा तबतक वह उसका बहिष्कार करेगी।[2]

१. आयोग ११ दिसम्बरको नियुक्त किया गया था। सर विलियम सॉलोमन इसके अध्यक्ष थे। दूसरे दो सदस्य थे ई० एसेलेन और जे० एस० वाइली।

२. भारतीयोंने जोहानिसबर्ग, केपटाउन, डर्बन, मैरित्सबर्ग, किम्बर्ले, और पॉचेफस्ट्रूममें विरोध सभाएँ भी कीं; देखिए खण्ड १२।

उनमें से एक शर्त यह थी कि सत्याग्रही रिहा कर दिए जायें और दूसरी यह थी कि आयोगमें एक सदस्य तो हिन्दुस्तानियोंकी ओरसे नियुक्त किया ही जाये। पहली शर्त कुछ हदतक आयोगने स्वयं मान ली थी और सरकारने सिफारिश की थी कि वह आयोगके कामको सरल बनानेके लिए श्री कैलनबैक, श्री पोलक और मुझे बिना शर्त छोड़ दे। सरकारने उसकी यह सिफारिश स्वीकार कर ली और (१८ दिसम्बर १९१३को) हम तीनों एक साथ जेलसे छोड़ दिये गये। हमने मुश्किलसे डेढ़ महीनेकी कैद पूरी की होगी। दूसरी ओर सरकारने श्री वेस्टको गिरफ्तार तो कर लिया था, किन्तु वह अभी उनपर कोई फर्द-जुर्म नहीं लगा सकी थी; इसलिए उसने उनको भी छोड़ दिया था।

ये घटनाएँ श्री एन्ड्रूज और पियर्सनके वहाँ पहुँचनेके पहले ही घट चुकी थीं; इसलिए उन दोनों मित्रोंको जहाजपरसे लेनेके लिए मैं ही गया था।[1] दोनोंको इन घटनाओंकी कोई खबर नहीं थी। इसलिए उन्हें इससे हर्ष और आश्चर्य हुआ। उन दोनोंसे यह मेरी पहली ही भेंट थी।

हम तीनोंको अपनी रिहाईसे निराशा ही हुई। हमें बाहरकी हालतका कुछ पता न था। अतः हमें आयोगकी नियुक्तिकी खबरसे आश्चर्य हुआ; किन्तु हमने यह देख लिया कि हम आयोगकी कोई सहायता करनेमें असमर्थ हैं। हमें आयोगमें हिन्दुस्तानियों-की ओरसे किसी भी एक आदमीका होना जरूरी जान पड़ा। इसलिए हम तीनों डर्बन गये और हमने वहाँसे जनरल स्मट्सको पत्र लिखा।[2] इस पत्रका सार यह था:

"हम आयोगका स्वागत करते हैं, किन्तु हम उसमें सर्वश्री एसेलेन और वाइली-को नियुक्त करनेके तरीकेपर तीव्र आपत्ति करते हैं। हमारा उनसे व्यक्तिशः कोई विरोध नहीं है। वे प्रसिद्ध और योग्य नागरिक हैं। किन्तु उन दोनोंने कई बार हिन्दु-स्तानियोंके प्रति घृणा व्यक्त की है, इसलिए उनसे अनजाने हिन्दुस्तानियोंके प्रति अन्याय होनेकी सम्भावना है। मनुष्यका स्वभाव एकाएक नहीं बदल सकता इसलिए ये दोनों सज्जन भी अपना स्वभाव बदल सकेंगे ऐसा मानना प्रकृतिके नियमके विरुद्ध है। फिर भी हम नहीं चाहते कि वे हटा दिए जायें। हमारा सुझाव तो इतना ही है कि इस आयोगमें कोई तटस्थ आदमी और रख दिया जाये इसके लिए हम सर जेम्स रोज-इन्स और माननीय श्री डब्ल्यू० पी० श्राइनरका नाम सुझाते हैं। ये दोनों प्रख्यात मनुष्य हैं और उनकी न्यायवृत्ति प्रसिद्ध है। हमारी दूसरी प्रार्थना यह है कि सब सत्याग्रही कैदी छोड़ दिये जाने चाहिए। यदि ऐसा न किया जायेगा तो हमारा जेलसे बाहर रहना मुश्किल हो जायेगा। अब उन्हें जेलमें रखनेका कोई कारण नहीं रहता। फिर यदि हमें आयोगके सम्मुख गवाही देनी हो तो हमें खानोंमें और जहाँ-जहाँ गिरमिटिये काम करते हैं, वहाँ जानेकी छूट मिलनी चाहिए। यदि हमारी यह प्रार्थना स्वीकार न की जायेगी तो हमें खेदके साथ फिर जेल जानेका उपाय खोजना पड़ेगा।"

१. २ जनवरी, १९१४को।

२. २१ दिसम्बर, १९१३ को; देखिए खण्ड १२।

जनरल स्मट्सने आयोगके सदस्योंमें वृद्धि करनेसे इनकार कर दिया और हमें सूचित किया कि आयोग किसी पक्षको ध्यानमें रखकर नियुक्त नहीं किया गया। सरकारने उसकी नियुक्ति केवल अपने सन्तोषके लिए की है। इस उत्तरके अनुरूप हमारे पास एक ही उपाय था; हमने जेल जानेकी तैयारी करके यह घोषणा की कि १ जनवरी १९१४को डर्बनसे जेल-यात्री कूच करेंगे। हम १८ दिसम्बर १९१३को जेलसे छोड़े गये थे। हमने २१ तारीखको यह पत्र लिखा और हमें २४ तारीखको इसपर जनरल स्मट्सका उत्तर मिला।

किन्तु जनरल स्मट्सके उत्तरमें एक वाक्य इस तरहका था:[1]

"आयोग निष्पक्ष और अदालती है और इसकी नियुक्तिमें मैंने न हिन्दुस्तानियोंकी राय ली है और न खान-मालिकों या गन्ना-उत्पादकोंकी।" मैंने जनरल स्मट्सको इसके आधारपर पत्र[2] लिखा और उन्हें सूचित किया कि यदि सरकार न्याय करना चाहती हो तो मुझे आपसे भेंट करनी है और आपके सम्मुख कुछ तथ्य रखने हैं। जनरल स्मट्सने इसका उत्तर देते हुए मुझसे भेंट करना स्वीकार कर लिया। इसपर हमारा कूच थोड़े दिनके लिए स्थगित हो गया।

इस ओर जब गोखलेको यह मालूम हुआ[3] कि हमें नया कूच करना है तब उन्होंने एक लम्बा तार भेजा। उन्होंने लिखा कि इससे लॉर्ड हार्डिंगकी और मेरी स्थिति कठिन हो जायेगी। उन्होंने हमें सलाह दी कि हम कूच करना स्थगित कर दें और आयोगके सम्मुख गवाही देकर उसकी सहायता करें।

हमारे ऊपर धर्मसंकट आ गया। कौमने यह प्रतिज्ञा की थी कि यदि आयोगके सदस्य न बढ़ाये जायेंगे तो वह उसका बहिष्कार करेगी। लॉर्ड हार्डिंग नाराज हों और गोखले दुःखी हों तो यह प्रतिज्ञा कैसे भंग की जा सकती थी? श्री एन्ड्रूयूजने हमें सलाह दी कि हमें श्री गोखलेकी भावनाका और उनके बिगड़े हुए स्वास्थ्यका और उसपर हमारे निश्चयके सम्भावित आघातकारी प्रभावका खयाल करना चाहिए। मैं तो यह बात जानता ही था। नेताओंने आपसमें सलाह की और अन्तमें यह निर्णय किया कि यदि आयोगके सदस्योंमें वृद्धि न हो तो जोखिम मोल लेकर भी हमें इसके बहिष्कारपर दृढ़ रहना चाहिए। इसलिए हमने गोखलेको लगभग १०० पौंड खर्च करके एक लम्बा तार[4] दिया। इस तारसे श्री एन्ड्रूयूज भी सहमत थे। उसका आशय यह था:

"आपको कितना दुःख हुआ है यह हम समझते हैं। चाहे कुछ भी त्याग करना पड़े फिर भी आपकी सलाहपर अमल करनेकी मेरी इच्छा रहती ही है। लॉर्ड हार्डिंगने

१. देखिए खण्ड १२, परिशिष्ट १५।

२. उपलब्ध नहीं है। भेंटकी अनुमतिके लिए गांधीजीने २५ दिसम्बरको जो तार भेजा था इसके लिए देखिए खण्ड १२, पृष्ठ २८८-९।

३. गांधीजीने २२ और २३ दिसम्बरको तार द्वारा गोखलेको पूरी जानकारी भेजी थी।

४. देखिए खण्ड १२, पृष्ठ २९९-३०२। यहाँ जिस तारका सारांश दिया गया है वह वस्तुतः २४ दिसम्बरको भेजा गया था। देखिए पृष्ठ २८६ तथा पृष्ठ २९०-१।

जो सहायता दी है वह अमूल्य है। उनकी सहायता अन्ततक मिलती रहे, मैं यह भी चाहता हूँ। किन्तु मेरी प्रार्थना यह है कि आप हमारी स्थितिको समझें। इसमें हजारों लोगोंकी प्रतिज्ञाका प्रश्न आता है। यह प्रतिज्ञा शुद्ध है। यह पूरी लड़ाई ही प्रतिज्ञाओंकी नींवपर खड़ी की गई है। यदि इन प्रतिज्ञाओंका बन्धन न होता तो हममें से बहुतसे लोग आज बैठ रहे होते। यदि हजारों लोगोंकी प्रतिज्ञापर एक बार पानी फिर जाये तो फिर नीतिबन्धन जैसी बात ही नहीं रहेगी। इस प्रतिज्ञाको करते वक्त लोगोंने भली-भाँति विचार कर लिया था। उसमें कोई अनैतिक बात तो है नहीं। कौमको आयोगके बहिष्कार करनेकी प्रतिज्ञा करनेका अधिकार अवश्य ही है। मैं चाहता हूँ कि आप भी यही सलाह दें कि यह प्रतिज्ञा किसी भी कारणसे भंग न हो और कितनी ही जोखिम उठाकर पाली जाये। आप यह तार लॉर्ड हार्डिंगको दिखा दें। मैं चाहता हूँ कि आपकी स्थिति विषम न हो। हमने यह लड़ाई ईश्वरको साक्षी रखकर उसकी सहायताके आधारपर ही आरम्भ की है। हम बुजुर्गों और वयोवृद्धोंकी सहायताके आकांक्षी हैं; उनकी सहायता मिलेगी तो उससे हमें प्रसन्नता होगी; किन्तु वह मिले या न मिले, प्रतिज्ञाका बन्धन तो नहीं टूटना चाहिए। यह मेरा विनम्र मत है। मैं इसके पालनमें आपका समर्थन और आशीर्वाद चाहता हूँ।"

यह तार गोखलेको मिला। इसका प्रभाव उनके स्वास्थ्यपर तो पड़ा; किन्तु उनकी सहायतापर नहीं पड़ा, या यह कहना चाहिए कि पड़ा भी तो उससे उनकी सहायताकी गति ही बढ़ी। उन्होंने यह तार लॉर्ड हार्डिंगको भेज दिया, किन्तु हमारा त्याग नहीं किया। उन्होंने इसके विपरीत हमारे दृष्टिकोणका समर्थन ही किया। लॉर्ड हार्डिंग भी अपनी बातपर कायम रहे।

मैं एन्ड्रयूजको साथ लेकर प्रिटोरिया गया। उन्हीं दिनों संघीय रेलवेके गोरे कर्मचारियोंकी व्यापक हड़ताल हुई थी। उस हड़तालके कारण सरकारकी स्थिति नाजुक हो गई। हड़तालियोंने हमें पत्र भेजा कि मैं हिन्दुस्तानियोंको लेकर कूच आरम्भ कर दूँ। मैंने घोषणा की कि मेरे लिए हड़तालियोंको इस तरहकी सहायता देना सम्भव नहीं है। हमारा उद्देश्य सरकारको परेशान करना नहीं है। हमारी लड़ाई भिन्न प्रकारकी है। हमें कूच करना ही होगा तो जब रेलवेकी गड़बड़ी मिट जायेगी तब करेंगे।[1] हमारे इस निश्चयका प्रभाव गम्भीर हुआ। रायटरने, इसकी खबर तारसे इंग्लैंड भेजी। इसपर लॉर्ड एम्टहिलने हमें इंग्लैंडसे तार भेजकर धन्यवाद दिया। दक्षिण आफ्रिकाके अंग्रेज मित्रोंने भी हमें धन्यवाद दिया। जनरल स्मट्सके मन्त्रीने विनोदमें कहा: "मुझे तो आपके लोग तनिक भी पसन्द नहीं हैं। मैं उनकी सहायता बिलकुल नहीं करना चाहता। किन्तु करें क्या? आप लोग हमारी ऐसी खराब हालतमें मदद करते हैं। हम आपको बरबाद कैसे कर सकते हैं? मैं तो कई बार चाहता हूँ कि आप भी इन अंग्रेज हड़तालियोंकी तरह उत्पात करें तो हम आपको तुरन्त सीधा कर दें। किन्तु आप तो शत्रुको भी दुःख देना नहीं चाहते। आप स्वयं ही कष्ट सहन

१. देखिए खण्ड १२, पृष्ठ ३१६-१७।

करके जीतना चाहते हैं। आप सौजन्यकी मर्यादा नहीं छोड़ते — तब हम लाचार हो जाते हैं।" इसी तरहके विचार जनरल स्मट्सने भी व्यक्त किये थे।

पाठकोंको जानना चाहिए कि सत्याग्रहियोंके विवेक और विनयका यह पहला ही उदाहरण न था। जब उत्तरी भागमें हड़ताल हुई थी तब ऐसी स्थिति आ गई थी कि यदि कटा हुआ गन्ना ठीक जगह (चीनीके कारखानोंतक) न पहुँचाया जाता तो मालिकोंका बहुत नुकसान होता। इसलिए पन्द्रह सौ[1] हिन्दुस्तानी मजदूर उतना काम पूरा करनेके लिए फिर कामपर लग गये और जब वह काम पूरा हो गया तब फिर हड़तालमें अपने साथियोंके साथ आ मिले। फिर डर्बन नगरपालिकामें गिरमिटियोंकी हड़ताल हुई तब जो लोग भंगीका काम और अस्पतालोंमें सेवाका काम करते थे उनको वापस भेजा गया और वे खुश होकर अपने कामपर वापस गए। यदि भंगी काम न करते और अस्पतालोंमें सेवक सेवा न करते तो बीमारियाँ फैलतीं और बीमारोंकी सार-सँभालमें भी बाधा आती। सत्याग्रही यह नहीं चाहते थे। इसलिए ऐसे नौकरोंको हड़तालसे मुक्त कर दिया गया था। सत्याग्रहियोंको अपने प्रत्येक कदममें विरोधीकी स्थितिका खयाल रखना ही चाहिए।

मैंने देखा, इस तरहके अनेक विवेकपूर्ण उदाहरणोंका अदृश्य प्रभाव चारों ओर हुआ। उससे हिन्दुस्तानियोंकी प्रतिष्ठा बढ़ती थी और समझौतेके लिए अनुकूल वातावरण तैयार होता था।

अध्याय ४८

प्राथमिक समझौता

इस तरह समझौतेके लिए अनुकूल वातावरण बन रहा था।[2] श्री एन्ड्रयूज और मैं जब प्रिटोरिया पहुँचे तभी सर बेंजामिन रॉबर्टसन, जिन्हें लॉर्ड हार्डिंगने एक खास जहाजमें भेजा था, वहाँ पहुँचे।[3] किन्तु हमें तो जनरल स्मट्सके नियत किये हुए दिन उनसे मिलने पहुँचना था, इसलिए हम सर बेंजामिनकी राह देखे बिना ही रवाना हो गये थे। उनकी राह देखनेका कोई कारण भी नहीं था। लड़ाईका परिणाम तो हमारी शक्तिके अनुसार ही होना था।

यद्यपि प्रिटोरिया हम दोनों ही गये थे, किन्तु जनरल स्मट्ससे मुझे अकेले ही मिलना था। वे रेलके गोरे कर्मचारियोंकी हड़तालके कारण बहुत कार्यव्यस्त थे। यह हड़ताल इतनी भयंकर थी कि संघ सरकारने उसके कारण फौजी कानून जारी कर दिया था। इन कर्मचारियोंका उद्देश्य केवल वेतनवृद्धि कराना नहीं था,

१. अंग्रेजी अनुवादमें यहाँ "बारह सौ" है।

२. २९ दिसम्बरको गांधीजीने गोखलेको जो तार भेजा उसमें स्थितिका सही चित्रण है। देखिए खण्ड १२, पृष्ठ २९९-३०२।

३. रॉबर्टसन २१ जनवरी १९१४ को डर्बन पहुँचे। गोखलेके आग्रहपर गांधीजीने रॉबर्टसनके दक्षिण आफ्रिका पहुँचनेतक कूचको स्थगित करना स्वीकार किया था। देखिए खण्ड १२, पृष्ठ २९५।

बल्कि राज्यसत्ता अपने हाथमें लेना था। जनरल स्मट्ससे मेरी पहली भेंट बहुत ही थोड़ी देरतक हुई[1]; किन्तु मैंने देखा कि जनरल स्मट्सकी जैसी स्थिति पहले अर्थात् हमारा कूच आरम्भ होनेके समय थी वैसी आज न थी। पाठकोंको याद होगा कि उस समय उन्होंने मुझसे बात करनेसे भी इनकार कर दिया था। सत्याग्रहकी धमकी तो जैसी उस समय थी वैसी इस समय भी थी; फिर भी उस समय उन्होंने समझौतेकी बात करनेसे इनकार किया था। किन्तु वे इस समय मुझसे सलाह करनेके लिए तैयार थे।

हिन्दुस्तानी कौमकी माँग तो यह थी कि आयोगमें हिन्दुस्तानियोंकी ओरसे भी कोई प्रतिनिधि नियुक्त किया जाना चाहिए; किन्तु जनरल स्मट्स इस सम्बन्धमें अपनी बातपर दृढ़ थे। उन्होंने कहा, "सदस्योंकी संख्यामें वृद्धि नहीं की जा सकती, उससे सरकारकी प्रतिष्ठा घटेगी और मैं जो सुधार करना चाहता हूँ वे नहीं कर सकूँगा। आपको जानना चाहिए कि श्री एसेलेन हमारे आदमी हैं और सुधार करनेके सम्बन्धमें वे सरकारके विरुद्ध नहीं जायेंगे, बल्कि अनुकूल रहेंगे। कर्नल वाइली नेटालके प्रतिष्ठित पुरुष हैं और आप लोगोंके विरुद्ध भी माने जा सकते हैं। अतः यदि वे भी तीन पौंडी करको रद करनेके सम्बन्धमें सहमत हो जायेंगे तो उससे हमारा काम सरल हो जायेगा। हमारी अपनी झंझटें इतनी हैं कि हमें एक घड़ीकी भी फुरसत नहीं, इसलिए हम चाहते हैं कि आपका सवाल तय हो जाये। आप जो-कुछ माँगते हैं वह दे देनेका हमने निश्चय कर लिया है, किन्तु आयोगकी सिफारिशके बिना वह नहीं दिया जा सकता। मैं आपकी स्थिति भी समझ सकता हूँ। आपने प्रतिज्ञा की है कि जबतक आयोगमें कोई आदमी आपकी ओरसे नियुक्त न किया जायेगा तबतक आप उसके सामने गवाही नहीं देंगे। आप गवाही भले ही न दें, किन्तु जो गवाही देने आये उसे रोकनेका आन्दोलन न करें और सत्याग्रह स्थगित रखें। मेरा विश्वास है कि इससे आपको लाभ ही होगा और मुझे शान्ति मिलेगी। आप लोगोंकी शिकायत है कि हड़तालियोंपर अत्याचार किया गया है; किन्तु आप इस बातको सिद्ध न कर सकेंगे, क्योंकि आप तो गवाही नहीं देंगे। इस सम्बन्धमें आपको स्वयं सोचना-विचारना है।"

जनरल स्मट्सने इस प्रकारके विचार प्रकट किये। मुझे तो वे कुल मिलाकर अनुकूल ही लगे। हमने सिपाहियों और जेलके दारोगाओंके जुल्मोंकी बहुत शिकायतें की थीं; किन्तु अब हमारे सामने यह धर्म-संकट था कि आयोगका बहिष्कार करनेसे हमें उन्हें सच साबित करनेका मौका नहीं मिलेगा। हम लोगोंमें इस सम्बन्धमें मतभेद था। एक दलका विचार था कि हिन्दुस्तानियोंने सिपाहियोंके विरुद्ध जो आरोप लगाये हैं उन्हें जरूर साबित किया जाये, इसलिए उसने सुझाव दिया था कि यदि आयोगके सम्मुख गवाही न दी जा सके तो कौम जिन्हें अपराधी मानती है उनके विरुद्ध जो शिकायतें हैं उन्हें वह इस रूपमें प्रकाशित कर दे कि जिनपर वे आरोप लगाये गये हैं वे चाहें तो मानहानिका दावा कर सकें। मैं उसके इस

[1] देखिए खण्ड १२, पृष्ठ ३१८-२१।

विचारके विरुद्ध था। आयोगका निर्णय सरकारके विरुद्ध होनेकी सम्भावना बहुत कम थी। मानहानिके दावेके योग्य तथ्य प्रकाशित करनेसे कौम अवश्य ही बहुत बड़ी झंझटमें पड़ती और उसका फल इतना ही होता कि हमें अपनी शिकायतें सिद्ध करनेका सन्तोष मिल जाता। मैं वकील होनेके कारण यह जानता था कि मानहानिकी बातोंको सिद्ध करना कितना कठिन होता है। किन्तु मेरे पास सबसे ज्यादा वजनी दलील तो यह थी कि सत्याग्रहियोंको तो कष्ट झेलने ही थे। वे सत्याग्रह आरम्भ करनेसे पहले जानते थे कि उन्हें मृत्यु-पर्यंत कष्ट सहन करने पड़ेंगे, और वे उन्हें सहनेके लिए तैयार भी थे। इसलिए उन्हें कष्ट सहने पड़े हैं, यह सिद्ध करना कोई जरूरी नहीं था। बदला लेनेकी वृत्ति सत्याग्रहियोंमें होनी ही नहीं चाहिए। इसीलिए जहाँ अपने कष्ट सिद्ध करनेमें उन्हें असामान्य कठिनाई हो वहाँ उनके लिए ठीक मार्ग यही माना जायेगा कि वे शान्त रहें। सत्याग्रहीको तो मूल वस्तुके लिए ही लड़ना पड़ता है। यह मूल वस्तु थी ऊपर बताये गये कानून। जब उन कानूनोंके रद किये जाने अथवा उनमें उचित परिवर्तन किये जानेकी पूरी सम्भावना हो तब वह दूसरी झंझटोंमें न पड़े। फिर सत्याग्रहीका मौन उसकी कानूनके विरुद्ध की गई लड़ाईमें समझौता होनेके समय सहायक ही होगा। मैं इस तरहके तर्कोंसे विरोधी पक्षके बहुत बड़े भागको समझा सका। अन्तमें कष्टोंकी शिकायतोंको कानूनी तौरपर साबित करनेकी बातको छोड़ देनेका फैसला किया गया।

अध्याय ४९

पत्रोंका आदान-प्रदान

जनरल स्मट्स और मेरे बीच प्राथमिक समझौतेके सम्बन्धमें पत्र-व्यवहार[1] हुआ। मेरे पत्रका आशय यह था:[2]

> "मैंने आपको बताया कि हमने जो प्रतिज्ञा ली है उसके कारण हमारे लिए आयोगके कार्यमें सहायता देना सम्भव नहीं। आप इस प्रतिज्ञाको समझ सकते हैं और उसकी कद्र भी करते हैं। आप कौमके साथ सलाह करनेके सिद्धान्तको स्वीकार करते हैं, इसलिए मैं अपने देशभाइयोंको यह सलाह दे सकता हूँ कि वे गवाहियाँ देनेके अतिरिक्त आयोगके अन्य सब कार्योंमें सहायता दें और अन्ततः उसके किसी काममें बाधा न डालें। इसके अतिरिक्त मैं यह सलाह भी दे सकूँगा कि जबतक आयोगकी कार्रवाई चालू है तबतक और जबतक नया कानून नहीं बनता तबतक सत्याग्रह भी स्थगित रखा जाये जिससे

१. पत्र-व्यवहारके लिए देखिए खण्ड १२, पृष्ठ ३२१-२३।

२. अंग्रेजीमें यह इस प्रकार है:

जनरल स्मट्स और मैंने एक दूसरेको पत्र लिखे जिससे आपसी भेंटोंके फलस्वरूप हम जिस समझौते तक पहुँचे थे उसे लिखित रूप दे दिया गया। २१ जनवरी १९१४ को लिखे गये पत्रका सारांश इस प्रकार दिया जा सकता है।

सरकारकी स्थिति विषम न हो। मैं अपने देशबन्धुओंको यह सलाह भी दूँगा कि वे वाइसरायके प्रतिनिधि सर बेंजामिन रॉबर्ट्सनको सहायता दें।

"हम लोगोंको जेलमें और हड़तालमें जो कष्ट सहने पड़े उनके सम्बन्धमें मुझे कहना चाहिए कि हम इन कष्टोंका प्रमाण अपनी प्रतिज्ञाके कारण नहीं दे सकेंगे। हम सत्याग्रही होनेके कारण यथासम्भव अपने कष्टोंकी शिकायत न करेंगे और उनका हर्जाना भी न माँगेंगे। किन्तु हमारे इस समयके मौनका अर्थ यह न किया जाना चाहिए कि हमारे पास कष्टोंसे सम्बन्धित शिकायतोंको साबित करनेकी सामग्री नहीं है। मैं चाहता हूँ कि आप हमारी स्थिति भी समझ सकें। इसके अतिरिक्त जब हम सत्याग्रह मुलतवी रख रहे हैं तब जो लोग इस मौजूदा लड़ाईके सम्बन्धमें जेलोंमें हैं वे रिहा किये जाने चाहिए। हमारी माँगें क्या हैं, मुझे यहाँ यह बता देना भी जरूरी मालूम होता है।

१. तीन पौंडका कर रद कर दिया जाये।

२. हिन्दुओं और मुसलमानों आदिके धर्मोंकी विधिसे किए गये विवाह कानूनी माने जायें।

३. इस देशमें शिक्षित हिन्दुस्तानी प्रवेश कर सकें।

४. ऑरेंज फ्री स्टेटके सम्बन्धमें जो करार किया गया है उसमें सुधार किया जाये।

५. मौजूदा कानूनोंपर इस तरहसे अमल किया जाये जिससे हिन्दुस्तानियोंके मौजूदा हकोंको नुकसान न पहुँचे।

यदि इन विषयोंमें सन्तोषजनक उत्तर मिलेगा तो मैं सत्याग्रह स्थगित करनेकी सलाह दे दूँगा।"

मैंने यह पत्र २१ जनवरी १९१४को लिखा था। मुझे इसका उत्तर उसी दिन मिल गया और उसका आशय यह था:

"सरकारको खेद है कि आप आयोगके सम्मुख गवाही नहीं दे सकेंगे। किन्तु वह आपकी स्थिति समझ सकती है। आप कष्टोंकी शिकायत नहीं करना चाहते, सरकार इसका कारण भी समझती है। सरकार तो इन कष्टोंसे इनकार ही करती है। किन्तु जब आप गवाही नहीं देंगे तो सरकारको इस सम्बन्धमें कुछ करना नहीं रहता। सत्याग्रही कैदियोंकी रिहाईके सम्बन्धमें तो आपका पत्र मिलनेसे पहले ही निर्देश दिया जा चुका है। कौमके कष्टोंका जो उल्लेख आपने किया है उनके सम्बन्धमें जबतक आयोगकी रिपोर्ट नहीं मिलती तबतक सरकार अपनी कार्रवाई स्थगित रखेगी।"

हम दोनों[1] इन पत्रोंके आदान-प्रदानसे पहले जनरल स्मट्ससे बहुत बार मिल चुके थे। किन्तु इस बीच सर बेंजामिन रॉबर्ट्सन भी प्रिटोरियामें पहुँच गये थे। यद्यपि सर बेंजामिन लोकप्रिय माने जाते थे और गोखलेकी सिफारिशी चिट्ठी भी लाये थे, किन्तु फिर भी मैंने देखा कि वे सामान्य अंग्रेज अधिकारीकी दुर्बलतासे

१. अंग्रेजीमें यहाँ है, 'हम दोनों—एन्ड्रूज और मैं—इन पत्रों . . .।

सर्वथा मुक्त न थे। उन्होंने आते ही कौममें फूट डालना और सत्याग्रहियोंको भय दिखाना आरम्भ कर दिया। उनसे प्रिटोरियामें मेरी जो पहली भेंट हुई, मुझपर उसका प्रभाव अच्छा नहीं पड़ा। उन्होंने मुझे भयभीत करनेके लिए जो तार दिए थे मैंने उनसे उनकी चर्चा भी की। मुझे तो सबके साथ एक ही प्रकारसे अर्थात् स्पष्टता और सचाईसे ही व्यवहार करना था, इसलिए हम दोनों मित्र हो गये। किन्तु मैंने बहुत बार अनुभव किया है कि जो डरता है उसे अधिकारी डराते ही हैं, किन्तु जो सीधा है और डरता नहीं उससे वे सीधा व्यवहार करते हैं।

इस तरहसे प्राथमिक समझौता[1] हो गया और सत्याग्रह अन्तिम रूपसे स्थगित कर दिया गया। इससे बहुतसे अंग्रेज मित्रोंको प्रसन्नता हुई और उन्होंने मुझे अन्तिम समझौतेमें सहायता देनेका आश्वासन भी दिया। कौमसे इस समझौतेको स्वीकार करानेका काम स्वभावतः ही कठिन था। जो उत्साह उत्पन्न हुआ था वह समाप्त हो जाये यह कोई नहीं चाहता था। फिर जनरल स्मट्सका विश्वास कोई कैसे करता? कुछ लोगोंने १९०८ के समझौतेकी याद दिलाई और कहा, "जनरल स्मट्सने एक बार कौमको धोखा दिया है। उसने आपपर बहुत बार नये-नये मुद्दे उठानेका आरोप किया है और कौमको गम्भीर संकटोंमें से निकलना पड़ा है, किन्तु आप फिर भी नहीं समझे, यह कैसी दुःखजनक बात है? यह आदमी आपको फिर धोखा देगा और आप फिर सत्याग्रहकी बात करेंगे। उस समय आपका विश्वास कौन करेगा? लोग इस तरह बार-बार जेलमें जायें और बार-बार धोखा खायें, यह कैसे हो सकता है? जनरल स्मट्स-जैसे आदमीके साथ तो एक ही समझौता हो सकता है। जो कुछ माँगा है वह उससे ले लिया जाये; उससे वचन नहीं लेना चाहिए। जो आदमी वचन देकर मुकर जाये उसे उधार कैसे दिया जा सकता है?"

मैं जानता था कि ऐसी ही बातें बहुत लोग कहेंगे। इसलिए मुझे इससे आश्चर्य नहीं हुआ। सत्याग्रहीको चाहे कितनी ही बार धोखा खाना पड़े फिर भी जबतक अविश्वास करनेका कोई स्पष्ट कारण न हो तबतक तो वह विश्वास करता ही है। जिसने दुःखको सुख बना लिया हो, वह अविश्वासका कोई कारण न होनेपर केवल कष्टोंके भयसे त्रस्त होकर अविश्वास नहीं करता; बल्कि अपनी शक्तिपर विश्वास रखकर विरोधी पक्ष धोखा दे तो उसके सम्बन्धमें निश्चिन्त रहता है और चाहे कितनी ही बार धोखा दिया जाये फिर भी अपना विश्वास बनाये रखता है और यह मानता है कि इससे सत्यका बल बढ़ेगा और विजय निकट आयेगी। इसलिए मैं जगह-जगह सभाएँ करके लोगोंको समझौतेको स्वीकार करनेके लिए तैयार कर सका और लोग भी सत्याग्रहका मर्म अधिक समझने लगे। इस बारके समझौतेमें श्री एन्ड्रयूज मध्यस्थ और साक्षी थे। इसी तरह वाइसरायके प्रतिनिधिरूप सर बेंजामिन रॉबर्ट्सन भी मध्यस्थ और साक्षी थे। इसलिए इस समझौतेके मिथ्या होनेकी आशंका बहुत ही कम थी। यदि मैं समझौता न करनेका हठ करता तो उलटा कौमका दोष माना जाता और छः महीनेके संघर्षके बाद जो विजय मिली थी उसे प्राप्त करनेमें अनेक विघ्न

१. देखिए खण्ड १२, पृष्ठ ३२७-३०।

आते। सत्याग्रही किसीको कभी अँगुली उठानेका कारण नहीं देता, इसी अनुभवके आधारपर कहा गया है, 'क्षमा वीरस्य भूषणम्।' अविश्वास भी डरपोकपनकी निशानी है। सत्याग्रहमें अभय मौजूद रहता ही है। जो निर्भय है उसे डर कैसा और जहाँ उद्देश्य ही विरोधीका विरोध दूर करना हो, विरोधीको नष्ट करना नहीं, वहाँ अविश्वास कैसा?

इसलिए समझौता कर लेनेके बाद कौमको केवल संघ-संसदके अधिवेशनकी प्रतीक्षा करनी रह गई। इस बीच उक्त आयोग अपना काम करता रहा। उसके सम्मुख बहुत कम हिन्दुस्तानी गवाही देनेके लिये गये। इससे यह पक्का सबूत मिला कि उस समय सत्याग्रहियोंका कौमपर कितना अधिक प्रभाव था। सर बेंजामिन रॉबर्ट्सनने बहुतसे हिन्दुस्तानियोंको समझाया कि वे आयोगके सम्मुख गवाही दें; किन्तु जो लोग लड़ाईका बहुत विरोध करते थे उनके अतिरिक्त बाकी सब अडिग रहे। इस बहिष्कार-का प्रभाव व्यर्थ नहीं गया। इससे आयोगका काम बहुत संक्षिप्त हो गया और उसने अपनी रिपोर्ट तुरत-फुरत प्रकाशित कर दी।[1] आयोगने अपनी रिपोर्टमें हिन्दुस्तानी कौमके सहायता न देनेकी अवश्य ही कड़ी आलोचना की और सिपाहियोंके दुर्व्यवहारके आरोपका उल्लेखतक नहीं किया। किन्तु कौमने जो-जो माँगें रखी थीं आयोगने उन सबको स्वीकार करनेकी सिफारिश की। उसकी सिफारिशें ये थीं: तीन पौंडी कर रद कर दिया जाना चाहिए, और विवाहके सम्बन्धमें हिन्दुस्तानियोंकी माँग स्वीकार की जानी चाहिए। उसने दूसरी भी छोटी-मोटी रियायतें देनेकी सिफारिशें की और उनपर शीघ्रतासे अमल करनेका अनुरोध किया। इस तरह आयोगकी रिपोर्ट, जैसा जनरल स्मट्सने कहा था, अनुकूल निकली। श्री एन्ड्रयूज इंग्लैंडको रवाना हो गये; सर बेंजामिन रॉबर्ट्सन भी वहाँसे चल पड़े। मुझे विश्वास दिलाया गया था कि आयोगकी रिपोर्टके अनुसार कानून बनाया जायेगा। यह कानून कैसा था और किस तरह बनाया गया इस सम्बन्धमें हम अगले प्रकरणमें विचार करेंगे।

अध्याय ५०

लड़ाईका अन्त

आयोगकी रिपोर्टके बाद कुछ समयमें ही जिस कानूनके द्वारा समझौतेको कार्य-रूप दिया जाना था, उसका मसविदा दक्षिण आफ्रिकी संघके गजटमें प्रकाशित किया[2] गया। इस मसविदेके प्रकाशित होते ही मुझे केपटाउन जाना पड़ा। संघकी विधान-सभाकी बैठक वहीं हो रही थी और अब भी वहीं होती है। भारतीय राहत विधेयकमें ९ धाराएँ थीं। वे 'नवजीवन'के दो कालमोंमें आ सकती हैं। इसका एक भाग हिन्दुस्तानियोंके विवाहोंके सम्बन्धमें था। इसका अर्थ यह था कि जो विवाह हिन्दुस्तानमें वैध माना जाता है वह दक्षिण आफ्रिकामें भी वैध माना जायेगा; किन्तु

१. ७ मार्चको।

२. भारतीय राहत-अधिनियम, १९१४के लिए देखिए खण्ड १२, परिशिष्ट २५।

एकसे अधिक पत्नियाँ एक साथ वैध पत्नियाँ नहीं मानी जा सकतीं। दूसरे भागके द्वारा तीन पौंडका कर रद किया गया था जो हर गिरमिटियेको स्वतन्त्र हिन्दुस्तानीके रूपमें रहनेपर हर साल देना पड़ता था। इसके तीसरे भागके द्वारा उन प्रमाणपत्रोंका मूल्य बताया गया था जो दक्षिण आफ्रिकामें अधिवासका अधिकार पानेवाले हिन्दुस्तानियोंको दिया जाता था। इसमें यह बताया गया था कि यह प्रमाणपत्र जिसके पास होगा उसे दक्षिण आफ्रिकामें अपने अधिवासका उसके अतिरिक्त कोई अन्य प्रमाण नहीं देना होगा। इस विधेयकके सम्बन्धमें संघकी संसदमें लम्बी और मीठी बहस हुई।

जिन अन्य बातोंके सम्बन्धमें कानून बनानेकी जरूरत नहीं थी, उनके सम्बन्धमें जनरल स्मट्स और मेरे बीच हुए पत्र-व्यवहारसे स्पष्टीकरण किया गया था। यह स्पष्टीकरण इन बातोंके बारेमें था, केप कालोनीमें शिक्षित हिन्दुस्तानियोंके प्रवेशके अधिकारकी रक्षा, दक्षिण आफ्रिकामें प्रवेशकी विशेष अनुमति प्राप्त किये हुए हिन्दुस्तानियोंके अधिकारोंकी रक्षा, १९१४ से पहले प्रविष्ट शिक्षित हिन्दुस्तानियोंका मामला और एकसे अधिक स्त्रियोंसे विवाह करनेवाले पुरुषको दूसरी स्त्रीको लानेकी रियायत। जनरल स्मट्सने मुझे ३० जून, १९१४ को एक पत्र लिखा था जिसमें उन्होंने यह बात भी लिखी थी, "संघ सरकारकी सदा यह इच्छा रही है और उसकी इस समय भी यही इच्छा है कि मौजूदा कानूनोंपर न्यायपूर्वक अमल किया जाये और हिन्दुस्तानियोंको जो अधिकार प्राप्त हैं उनकी रक्षा की जाये।" मैंने उसी दिन जनरल स्मट्सको इस आशयका पत्र लिखा था।[1]

> आपका आजका लिखा पत्र मुझे मिल गया। आपने धीरजसे और शिष्टतासे मेरी बात सुनी, इसके लिए मैं आपका कृतज्ञ हूँ। हिन्दुस्तानियोंको राहत देनेवाले कानूनसे और हमारे बीचके इस पत्र-व्यवहारसे सत्याग्रहकी लड़ाईका अन्त हो गया है। यह लड़ाई सितम्बर १९०६ में शुरू हुई थी। इससे हिन्दुस्तानी कौमको बहुत कष्ट सहने पड़े और आर्थिक हानि उठानी पड़ी तथा सरकारको भी चिन्तित रहना पड़ा। आप जानते हैं कि मेरे कुछ भाइयोंकी माँग बहुत अधिक थी, जैसे विभिन्न प्रान्तोंमें व्यापारिक परवानोंका कानून, ट्रान्सवालका स्वर्ण-कानून, ट्रान्सवाल शहरी कानून और सन् १८८५ का ट्रान्सवालका कानून संख्या ३। इनमें कोई ऐसा फेरफार नहीं किया गया है जिससे हिन्दुस्तानियोंको अधिवास-सम्बन्धी पूरे अधिकार मिल जाते, व्यापारकी स्वतन्त्रता मिलती और जमीन खरीदनेका और रखनेका हक मिलता। इसलिए उन्हें इससे असन्तोष है। कुछ लोगोंको इस कारणसे असन्तोष है कि उन्हें एक प्रान्तसे दूसरे प्रान्तमें जानेकी पूरी स्वतन्त्रता नहीं दी गई। कुछ अन्य लोगोंको इसलिए असन्तोष है कि उनके खयालसे हिन्दुस्तानियोंको राहत देनेवाले कानूनमें विवाह-सम्बन्धी प्रश्नपर अधिक रियायत देनेकी जरूरत थी। उन्होंने मुझसे अनुरोध किया था कि ऊपरकी सब बातें सत्याग्रहकी लड़ाईमें शामिल कर ली जायें;

१. देखिए खण्ड १२, पृष्ठ ४२९-३०।

किन्तु मैंने उनकी माँग स्वीकार नहीं की, इसलिए सत्याग्रहकी लड़ाईमें ये बातें एक मुद्देके रूपमें शामिल नहीं की गईं। फिर भी इस बातसे इनकार नहीं किया जा सकता कि सरकारको इन विषयोंमें कभी विचार करके राहत देनी होगी। जबतक यहाँ बसे हुए हिन्दुस्तानियोंको नागरिकताके पूरे अधिकार नहीं दिये जाते तबतक उन्हें इससे पूरा सन्तोष होनेकी आशा नहीं की जा सकती। मैंने अपने भाइयोंसे कहा है कि उन्हें धीरज रखना चाहिए और प्रत्येक उचित साधन काममें लेकर लोकमत इस तरहका बनाना चाहिए कि सरकार इस पत्र-व्यवहारमें बताई गई शर्तोंसे भी आगे जा सके। मैं आशा करता हूँ कि दक्षिण आफ्रिकाके गोरे जब यह समझ जायेंगे कि हिन्दुस्तानसे गिरमिटियोंका आना बन्द हो गया है और दक्षिण आफ्रिकामें नये प्रवासी कानूनके कारण स्वतन्त्र हिन्दुस्तानियोंका आना भी लगभग रुक गया है और यह देख लेंगे कि हिन्दुस्तानियोंकी आकांक्षा यहाँके राजकाजमें किसी तरहका दखल देनेकी नहीं है तब वे हिन्दुस्तानियोंको मेरे बताये अधिकार अवश्य दे देंगे और तब उनको यह स्पष्ट अनुभव होगा कि मैंने जिन अधिकारोंका उल्लेख किया है वे हिन्दुस्तानियोंको अवश्य दिये जाने चाहिए और यह न्यायसंगत है। इस बीच इस प्रश्नको तय करनेमें पिछले कुछ महीनोंसे सरकारने जो उदार नीति अपनाई है यदि वही नीति जैसा कि आपने अपने पत्रमें बताया है, मौजूदा कानूनोंको अमलमें लानेमें चालू रखी तो मुझे विश्वास है कि हिन्दुस्तानी कौम समस्त संघमें कुछ शान्तिपूर्वक रह सकेगी और सरकारके लिए परेशानीका कोई कारण उत्पन्न नहीं करेगी।

उपसंहार

इस प्रकार आठ वर्षके अन्तमें सत्याग्रहकी यह महान् लड़ाई समाप्त हुई और ऐसा लगा कि अब समस्त दक्षिण आफ्रिकामें रहनेवाले हिन्दुस्तानियोंको शान्ति मिल गई। मैं खेद और हर्षके साथ दक्षिण आफ्रिकासे इंग्लैंडको रवाना हुआ[1] जहाँ मुझे गोखलेसे मिलकर हिन्दुस्तान आना था। मैं जिस दक्षिण आफ्रिकामें इक्कीस वर्षतक रहा और जिसमें मैंने असंख्य कड़वे-मीठे अनुभव प्राप्त किये और जहाँ रहकर मैं अपने जीवनका लक्ष्य देख सका उस देशको छोड़ते हुए मुझे बहुत दुःख और खेद हुआ। साथ ही मुझे यह विचार करके हर्ष हुआ कि मुझे अब हिन्दुस्तानमें जाकर गोखलेकी अधीनतामें बहुत वर्षतक सेवा करनेका सौभाग्य मिलेगा।

इस लड़ाईका ऐसा सुन्दर अन्त होनेके साथ-साथ दक्षिण आफ्रिकाके हिन्दुस्तानियोंकी आजकी स्थितिपर दृष्टिपात करते हुए एक क्षणके लिए ऐसा लगता है कि हिन्दुस्तानियोंने इतने कष्ट सहन किये, वे आखिर किसलिए थे? इससे सत्याग्रहके शस्त्रकी उत्तमता कहाँ सिद्ध हुई? हमें इन प्रश्नोंका उत्तर पानेके लिए यहाँ विचार

१. अपनी इस यात्राके दौरान गांधीजीने दक्षिण आफ्रिकाके संघर्षके अनुभवोंके सम्बन्धमें जो लेख लिखे वे **इंडियन ओपिनियन**के स्वर्ण-जयन्ती अंक, १९१४ में प्रकाशित हुए।

करनेकी जरूरत है। संसारका नियम है कि जो वस्तु जिस साधनसे प्राप्त की जाती है उसकी रक्षा भी उसी साधनसे की जा सकती है, अर्थात् दण्डसे प्राप्त वस्तुकी रक्षा दण्डसे ही की जा सकती है; सत्यसे प्राप्त वस्तुकी रक्षा सत्यसे ही की जा सकती है। इसलिए दक्षिण आफ्रिकाके हिन्दुस्तानी आज भी सत्याग्रहके शस्त्रका उपयोग कर सकें तो सुरक्षित रह सकते हैं। सत्याग्रहमें ऐसी विशेषता तो है नहीं कि सत्यसे प्राप्त वस्तुकी रक्षा सत्यका त्याग करके भी की जा सके। यदि ऐसा परिणाम सम्भव भी हो तो वह इष्ट नहीं माना जा सकता। इसलिए यदि दक्षिण आफ्रिकाके हिन्दुस्तानियोंकी स्थिति आज कमजोर हो गई है तो हमें समझ लेना चाहिए कि उसका कारण सत्याग्रहियोंका अभाव है। मेरे इस कथनसे वहाँ इस समय जो हिन्दुस्तानी रह रहे हैं उनका दोष प्रकट नहीं होता, बल्कि इससे वहाँकी वास्तविक स्थिति प्रकट होती है। जो चीज किसी व्यक्ति अथवा समुदायमें नहीं है वह उसमें कैसे आ सकती है? सत्याग्रही सेवक एकके बाद एक चल बसे। सोराबजी, काछलिया, नायडू और पारसी रुस्तमजी आदिके स्वर्गवासके पश्चात् वहाँ बहुत कम अनुभवी लोग जीवित बचे हैं। जो जीवित बचे हैं वे अब भी जूझ रहे हैं और मुझे इस विषयमें कोई शंका नहीं है कि यदि उनमें सत्याग्रहकी भावना है तो समय आनेपर वे कौमकी रक्षा कर लेंगे।

अन्तमें इस प्रकरणको पढ़नेवाले लोग यह बात भी समझ ही गये होंगे कि यदि यह लड़ाई न चलती और बहुतसे हिन्दुस्तानियोंने जो कष्ट सहे वे न सहे होते तो आज दक्षिण आफ्रिकासे हिन्दुस्तानियोंके पैर उखड़ गये होते; इतना ही नहीं, बल्कि दक्षिण आफ्रिकामें हिन्दुस्तानियोंकी विजयसे अन्य उपनिवेशोंमें भी हिन्दुस्तानी प्रवासियोंकी न्यूनाधिक रक्षा ही हुई। जिन लोगोंकी रक्षा नहीं हो सकी उनमें दोष सत्याग्रहका नहीं था, बल्कि सत्याग्रहके अभावका था और उससे हिन्दुस्तानमें उनकी रक्षा करनेकी अशक्ति ही सिद्ध होगी। सत्याग्रह अमूल्य शस्त्र है, उसमें निराशा अथवा हारके लिए अवकाश ही नहीं। यदि इस इतिहाससे यह बात थोड़े बहुत अंशमें भी सिद्ध हो सकी हो तो मैं अपना प्रयत्न सफल समझूँगा।

२. पत्र : नरगिस डी० कैप्टेनको[1]

२४ नवम्बर, [१९२५][2]

घबराना मत। कई लड़कों द्वारा [आश्रमके] नियमोंका भंग होनेके कारण मुझे कमसे-कम अर्थात् सात दिनोंका उपवास करना जरूरी हो गया है। यदि मुझे यह इतमीनान होता कि उपवास समाप्त होनेसे पहले तुम्हें इसका पता नहीं चलेगा, तो मैं उपवास समाप्त होनेतक इसकी सूचना तुम्हें देता ही नहीं। लेकिन यहाँके बहुतसे लोग इसके बारेमें जानते हों, इसलिए तुमतक खबर न पहुँचना प्रायः असम्भव है। मैं यह भी नहीं चाहता कि तुम भागकर साबरमती आ पहुँचो। तुम्हें सीधा

१. दादाभाई नौरोजीकी पोती।

२. गांधीजीके उपवासके उल्लेखसे।

कच्छ जाना चाहिए और अपनी तबीयत पूरी तरह सुधार लेनी चाहिए। मेरी इस बातपर भरोसा रखना कि मैंने यह उपवास बिना अच्छी तरह सोचे शुरू नहीं किया है। मैंने इसपर दो रात विचार किया। उपवास करनेका खयाल सबसे पहले इतवारकी रातको[1] आया था। आज सुबह शालाकी प्रार्थना सभामें मैंने अन्तिम रूपसे उपवासका निर्णय किया। मुझे उपवासोंका इतना अभ्यास हो गया है कि सात दिन कुछ नहीं हैं। मेरी समझमें मैं उपवासके अन्तमें शारीरिक रूपसे पहलेसे ज्यादा अच्छा महसूस करूँगा; २१ दिनके उपवासके बाद भी तो मैंने ऐसा ही महसूस किया था। यह पत्र केवल तुम दोनों बहनोंके लिए नहीं वरन् मीठूबहन और जईबहनके लिए भी है। मैं उन्हें अलगसे नहीं लिख रहा हूँ। जो लोग झूठी भावुकतामें पड़कर व्याकुल हों, उन्हें समझानेके लिए मैं तुम्हें अपना एजेंट नियुक्त करता हूँ।

मो० क० गांधी

अंग्रेजी पत्र (एस० एन० १०६६२) की फोटो-नकलसे।

३. पत्र : मु० रा० जयकरको

अहमदाबाद
२४ नवम्बर, १९२५

प्रिय श्री जयकर,

आपका पत्र मिला। किसी पदको स्वीकार करनेके विषयमें आपके विचार कुछ भी क्यों न हों, मुझे तो आपके दक्षिण आफ्रिकाके लिए प्रस्तावित शिष्टमण्डलमें[2] शामिल होनेकी बातको स्वीकार कर लेनेमें कुछ नुकसान नहीं दिखाई देता। मुझे पूरा भरोसा है कि आपसे उसे जबरदस्त ताकत मिलेगी। आप शिष्टमण्डलमें जाते हैं या कोई और, नियुक्तिकी शर्तें निश्चित रूपसे जान लेनी चाहिए। मैंने इस विषयपर 'यंग इंडिया'के आगामी अंकमें थोड़ी चर्चा[3] की है। यदि नियुक्तिकी शर्तें सदस्योंपर अवांछनीय ढंगसे प्रतिबन्ध लगाती हों, या राष्ट्रवादीकी हैसियतसे हम जो स्थिति स्वीकार नहीं कर सकते, उसे स्वीकार करनेकी अपेक्षा रखती हों, तो किसी भी स्वाभिमानी भारतीयका शिष्टमण्डलमें शामिल होनेकी स्वीकृति न देना स्वाभाविक ही है। शिष्टमण्डलको दक्षिण आफ्रिकामें क्या करना चाहिए सो तो आप जानते ही हैं। मैंने इसपर भी 'यंग इंडिया' के अपने लेखमें कुछ कहा है। आपने अपने और पण्डितजीके[4] मतभेदोंका उल्लेख किया है। मुझे एक मित्रका पत्र मिला, जिसमें उन्होंने मुझसे बीचमें पड़कर मतभेद

१. २२ नवम्बर।
२. जयकरने शिष्टमण्डलमें काम करनेके सरकारी आमन्त्रणको अस्वीकार कर दिया था।
३. देखिए "दक्षिण आफ्रिकाके भारतीय", २६-११-१९२५।
४. मोतीलाल नेहरू।

दूर करानेके लिए लिखा था। लेकिन उस समय मैंने आपसे या पण्डितजीसे कुछ कहना ठीक नहीं समझा। परन्तु अब चूँकि आपने इत्तफाकसे उन मतभेदोंका उल्लेख किया है, मैं सोचता हूँ कि आप हो सके तो पण्डितजीसे मिल लें, और बन सके तो मतभेदोंको बातचीत करके हल कर लें। मैं समाचारपत्रोंमें इसके बारेमें बराबर पढ़ता तो नहीं रह पाया हूँ फिर भी लोग जो-कुछ बताते रहे हैं उससे तो यही लगता है कि किस बातपर आप दोनोंमें मतभेद हैं, इसीकी सही जानकारी सबको नहीं है।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

श्री मु० रा० जयकर
३९१, ठाकुरद्वार
बम्बई

अंग्रेजी पत्र (एस० एन० १०६६३) की फोटो-नकलसे।

४. पत्र : मोतीलाल नेहरूको

अहमदाबाद
२४ नवम्बर, १९२५

प्रिय मोतीलालजी,

आपका पत्र मिला। मैं तीन दिनसे आपको पत्र लिखनेकी बात सोच रहा था।

इलाजके लिए कमलाका जवाहरलालके साथ स्विटजरलैंड जानेका विचार बहुत ही अच्छा है। यहाँकी बनिस्बत वहाँके इलाजसे निश्चय ही अधिक स्थायी लाभ होगा, लेकिन सोचता हूँ कि उसे वहाँ जाड़ोंमें न भेजा जाये; बल्कि अप्रैलमें ही वह वहाँ जाये। इसलिए मेरा ऐसा विचार है कि इस समय बिना आगा-पीछा किये उसे लखनऊ भेजना ठीक रहेगा; और जवाहरलालको चाहिए कि वह जहाँतक बने ज्यादासे-ज्यादा उसीके पास रहे। मेरा मन आपकी इन पारिवारिक परेशानियोंके बारेमें सोचता रहता है। मैं आशा करता हूँ कि कमला फिरसे जल्दी ही स्वस्थ हो जायेगी।

पर पारिवारिक परेशानियोंके कारण ही सही आपको कामसे थोड़ी फुरसत मिल जाना ठीक ही है। लगातार परिश्रम करते हुए आपको बीच-बीचमें आराम लेना ही चाहिए। राजनीतिक परेशानियाँ और मतभेद तो हमेशा बने रहेंगे। इसलिए थोड़े समय विश्राम कर लेनेमें कुछ खास हानि नहीं है। मैंने बैठकोंकी पूरी-पूरी रिपोर्टें नहीं देखी हैं; लेकिन मैं सम्बन्धित मोटी-मोटी सुर्खियों और विवरणोंकी दो-चार लकीरें जरूर देखता रहा हूँ। इस तरह सरसरी निगाह डालते रहनेसे मुझे इतना अन्दाज तो हो ही गया है कि आपको काफी सफलता मिल रही है; इसमें मुझे जरा भी सन्देह नहीं है।

आपने मेरा ध्यान मेरे द्वारा दी गई किसी भेंटकी तरफ दिलाया है। लेकिन मैंने ऐसी कोई भी भयंकर भूल करनेका अपराध नहीं किया है। हमारे मित्र सदानन्दने[1] मेरे पास भेंटके लिए कहलवाया था; लेकिन मैंने उन्हें खबर भेज दी थी कि मुझे कुछ भी नहीं कहना है। एसोसिएटेड प्रेसका संवाददाता मेरे पास अनेक बार आ चुका है और मैंने उसे भी वही जवाब दिया है। मैंने देवदाससे कहा है कि समाचारपत्रोंमें क्या छपा है, मुझे बताये। उसने भी किसी संवाददाताकी ओरसे एक अंशके सिवाय कुछ और नहीं देखा। मेरा खयाल है कि वह अंश 'यंग इंडिया' से लिया गया है।

श्रीमती नायडू एक दिन अहमदाबाद रहीं। उन्होंने कहा तो यह कि यात्राके दौरान यहाँ केवल यह देखनेके लिए उतर गई हूँ कि कच्छमें कुछ पौंड वजन खोकर अब मैं कैसा लग रहा हूँ। उन्होंने मुझे बताया कि भाषणमें क्या-कुछ कहा जाये इसकी चर्चा करने वे महीनेके अन्तमें यहाँ आयेंगी। इस समय वे बम्बईमें हैं। सात दिसम्बरको मैं बम्बईके सत्याग्रह आश्रमके लिए रवाना होकर आठको बम्बई पहुँच रहा हूँ। मैं ९को बम्बईसे वर्धाके लिए रवाना होकर १० को वहाँ पहुँच जाऊँगा। यदि आप समझते हैं कि तबतक रुकनेमें हर्ज नहीं है तो हम वर्धामें मिल सकते हैं। लेकिन शायद श्रीमती नायडू खुद तबतक न रुक सकें। यों आप कभी भी यहाँ आयें मुझे तो अवकाश रहेगा और बेशक वर्धामें भी। यदि आप सुनें कि मैं फिर उपवास कर रहा हूँ तो चिन्तित न हों। यह केवल एक सप्ताहका उपवास है; यह मैंने आश्रमसे सम्बद्ध शालामें पढ़नेवाले कुछ-एक बच्चोंके गलत बर्तावके सिलसिलेमें आत्मशुद्धिके निमित्त किया है। ऐसे उपवास करना मेरी जरूरतोंका अंग बन गया है। उससे मुझे लाभ होता है और कमसे-कम कुछ समयके लिए आसपासका वातावरण शुद्ध हो जाता है। उपवास मंगलवारकी सुबह समाप्त होगा और जल्दी ही ताकत वापस पा लेनेमें कोई कठिनाई नहीं होगी। मैं दास्तानेको पहले ही लिख चुका हूँ। गंगाधर राव चूँकि यहाँ थे, इसलिए उनसे मैंने खुद ही कह दिया था।

मैं आशा करता हूँ कि इस संकटसे आपको जो मानसिक चिन्ता और परेशानी इन दिनों है उसके बोझके बावजूद आप अपने स्वास्थ्यका पूरा ध्यान रखेंगे।

हृदयसे आपका,

मो० क० गांधी

अंग्रेजी पत्र (एस० एन० १०६६४) की फोटो-नकलसे।

१. बम्बईके अंग्रेजी दैनिक **फ्री प्रेस जर्नलके** सम्पादक।

५. पत्र : वसुमती पण्डितको

मंगलवार [२४ नवम्बर, १९२५][1]

चि० वसुमती,

तुम्हारे पत्र मिलते हैं, लेकिन मुझे उनसे सन्तोष नहीं होता। मुझे अक्षर ऐसे सुन्दर चाहिए, मानो छपे हुए हों। जबतक तुम जमाकर लिखनेकी आदत नहीं डालती तबतक अक्षर सुधरनेवाले नहीं हैं। जितनी सावधानीसे अन्तिम वाक्य लिखा है सभी कुछ उतनी सावधानीसे लिखना चाहिए। मुझे तुम्हारी मनोदशाका चित्र भी चाहिए। कोई पत्र पढ़ लेगा, इस भयसे कुछ भी न लिखना ठीक नहीं है। किसी बातमें जो सुधार उचित जान पड़े सो तो कहना ही चाहिए। यदि वहाँ पाखानेके लिए रेत नहीं मिलती तो आसपाससे मँगवा लेनी चाहिए। यदि यह भी न कर सको तो ईंधन जल जानेपर जो राख बचे वह सारीकी-सारी इकट्ठी कर लेनी चाहिए और उसे छानकर नियमसे इस्तेमाल करना चाहिए। पेशाबका प्रबन्ध तो अलग होना ही चाहिए। मैं अन्य अनेक सुझाव अवश्य दे सकता हूँ; लेकिन बहुत-कुछ उपाय तो स्थिति देखकर स्वयं तुम्हें ही ढूँढ लेने चाहिए।

मेरे उपवासके बारेमें किसी-न-किसीने तो अवश्य लिखा होगा, इसलिए इस सम्बन्धमें तथा आश्रममें और जो-कुछ होता है उसके विषयमें मैं कुछ नहीं लिख रहा हूँ।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती पत्र (सी० डब्ल्यू० ५५१) से।
सौजन्य : वसुमती पण्डित

६. मथुरादास त्रिकमजीको लिखे पत्रका अंश

२४ नवम्बर, १९२५

ईश्वर अच्छा ही करेगा। तुम्हें चिन्तित नहीं होना चाहिए। पूरी सावधानी रखनी चाहिए और 'गीता' का मनन करना चाहिए।

[गुजरातीसे]
बापुनी प्रसादी

१. उपवासकी चर्चासे निश्चित।

७. टिप्पणियाँ

एक मूक सेवक

किसी भी देशके पास अपने महानतम सपूतोंके नामोंका लेखा नहीं रहता। अनमोल प्राचीन कृतियोंके लेखकोंके समान लोग केवल उनके कामको ही जानते हैं। ऐसे बहुतसे नवयुवक हैं जो अपने देशकी सेवामें प्राण दे देते हैं और उन्हें कोई नहीं जानता। मुझे ऐसे ही एक मूक सेवककी मृत्युका समाचार मिला है। वे आरामबाग, हुगलीमें खादीका काम करते थे। बहुत पहले बंगालके सबसे अधिक मलेरियावाले जिलेमें, महामारीके दिनोंमें वे और उनके मित्र बीमारोंकी सेवाके लिए गये थे। वे गरीब लोगोंके बीच उन्हींके द्वारा खादी-प्रचारका कार्य आगे बढ़ानेके लिए वहीं ठहर गये थे। उनके एक मित्र और साथी कार्यकर्त्ता उनके बारेमें लिखते हैं :[1]

> **मैं हार्दिक दुःखके साथ अपने . . . मित्र . . . हाजराकी मृत्युका समाचार भेज रहा हूँ . . . वे केन्द्रके सर्वश्रेष्ठ कार्यकर्त्ता थे। . . . वे केन्द्रके सर्वश्रेष्ठ 'परिचारक' (नर्स) थे। . . . वे अच्छी तरह कात सकते थे; वे बुनाई भी कर लेते थे। अब ईश्वरने उन्हें श्रेष्ठतर सेवाके लिए हमसे छीन लिया है और जैसा कि आपने सुन्दर ढंगसे व्यक्त किया है वहाँ वे और 'श्रेष्ठतर निर्देशन' में सेवा कर सकेंगे। वे अपने पीछे माता-पिता और दो छोटे भाई छोड़ गये हैं।**

ईश्वर उन महान् आत्माको मोक्ष प्रदान करे; तथा उनके माता-पिता और भाई उनके कार्यको जारी रखते हुए उनकी स्मृतिको बनाये रखें। हाजराके बारेमें मेरा निश्चित विश्वास है कि इस नश्वर शरीरका उनके लिए कोई उपयोग नहीं रह गया था, अतः वे इसको त्यागकर श्रेष्ठतर अवस्थाको प्राप्त कर चुके हैं।

किशोर-शाखा

कुछ छोटे बच्चोंने पत्र लिखकर पूछा है कि वे पक्के खादी पहननेवाले हैं और बहुत ही नियमपूर्वक कातते हैं, फिर वे खादीमण्डलके सदस्य क्यों नहीं बन सकते। उनमें एक नौ सालकी लड़की भी है। हम मण्डलकी एक किशोर-शाखा खोलनेके प्रस्तावपर गम्भीरतापूर्वक विचार कर रहे हैं। मैं एक छोटी बिटियाको इसका नेतृत्व करनेके लिए राजी करनेका प्रयत्न कर रहा हूँ। यदि इसके लिए पर्याप्त संख्यामें बच्चे सामने न आये तो शाखाका कोई उपयोग न होगा; और लाभ इससे तभी होगा जब बहुतेरे माता-पिता इसे सफल बनानेके लिए सहयोग करेंगे। प्रत्येक शाला, चाहे वह सरकारी हो या राष्ट्रीय, इस आन्दोलनमें मदद कर सकती है। इसी दृष्टिसे इसे राजनीतिसे दूर रखा गया है। जो लोग उसके राजनीतिक परिणामसे अर्थात्

१. अंशतः उद्धृत।

विदेशी कपड़ेके बहिष्कारसे नहीं डरते, उन्हें तो इससे दूर रहनेकी कोई आवश्यकता ही नहीं है। यदि इस प्रकारकी किशोर-शाखा बन सकी तो वह किशोरोंका सचमुच एक ममता-मण्डल (लीग ऑफ मर्सी) ही बन जायेगा और वह बच्चोंको करोड़ों अर्धभूखे लोगोंकी खातिर त्याग करना सिखायेगा।

युद्धके कारण

कुछ समय हुआ एक अमेरिकी मित्रने मेरे पास श्री पेज द्वारा लिखित एक पुस्तिका भेजी थी। इसकी भूमिका श्री हैरी एमर्सन फॉस्डिकने लिखी है। इस निबन्धमें पिछले महायुद्धके कारणोंके बारेमें काफी ताजीसे-ताजी जानकारी जुटाई गई है। इस महान् उथल-पुथलके कारणोंकी जाँच करना एक ऐसा विषय है जो कभी पुराना नहीं पड़ सकता। ये कारण इस अठवरका आकारकी पुस्तिकाके ८९ पृष्ठोंमें बड़े ही सुचिन्तित और सुव्यवस्थित तर्कोंके साथ संक्षेपमें पेश किये गये हैं। यहाँ इस पुस्तिकामें से कुछ बड़े मार्केके उद्धरण देनेकी कोई सफाई देना जरूरी नहीं है। लेखक एक सच्चा ईसाई जिज्ञासु मालूम होता है। उसने युद्धके कारणोंको पाँच शीर्षकोंके अन्तर्गत विभक्त किया है,—आर्थिक साम्राज्यवाद, सैन्यवाद, गठबन्धन, गुप्त कूटनीति और भय। प्रथम शीर्षकके अन्तर्गत वह लिखता है:[1]

दूसरे चार कारणोंसे सम्बन्धित उद्धरण बादमें स्थान उपलब्ध होते ही प्रकाशित किये जायेंगे।[2]

श्री पेजकी पुस्तिकासे ली गई महायुद्धके कारणोंकी दूसरी किस्त नीचे दी जाती है। मेरा मन पाद-टिप्पणियोंके अलावा और कुछ निकालनेके लिए नहीं हुआ।[3]

मैं श्री पेजकी ज्ञानवर्द्धक पुस्तिकाके उद्धरणोंकी अगली किस्त नीचे दे रहा हूँ। उसमेंसे पाद-टिप्पणियोंके अलावा मैंने एक भी शब्द नहीं निकाला है।[4]

श्री पेज युद्धसे होनेवाली क्षतिके बारेमें अपने अध्यायको इस प्रकार समाप्त करते हैं।[5]

श्री पेजने पुस्तिकाके अन्तिम अध्यायोंमें युद्ध रोकनेके उपायोंपर विचार किया। पाठक देखेंगे कि लेखक इन उपायोंको इतने विश्वासोत्पादक ढंगसे पेश नहीं कर पाया है। किन्तु इसका कारण लेखकके अपने विश्वासमें किसी कमीका होना नहीं है, बल्कि इसका कारण यह है कि यह हम सबके लिए एक नया विषय है। कोई भी नहीं चाहता कि युद्ध हो। किन्तु युगों पुरानी इस प्रथाको सहजमें कैसे नष्ट किया जा सकता है? क्या इससे बिलकुल छुटकारा पाना सम्भव है? आइए हम देखें कि

१. उद्धरण यहाँ नहीं दिये जा रहे हैं।

२. पुस्तिकासे उद्धरण **यंग इंडिया**में २१ किस्तोंमें प्रकाशित किये गये थे। अन्तिम किस्त ६-५-१९२६ के अंकमें प्रकाशित की गई थी। यहाँपर उद्धरण नहीं, केवल किस्तोंके साथ दी गई गांधीजीकी परिचयात्मक टिप्पणियोंको एक साथ दे दिया गया है। पुस्तिकाकी किस्तोंकी तारीखोंके लिए देखिए परिशिष्ट १।

३ से ५. श्रीपेजकी पुस्तिकाके इन उद्धरणोंके लिए देखिए **यंग इंडिया,** २६-११-१९२५; १०-१२-१९२५; १७-१२-१९२५ तथा १८-२-१९२६।

लेखक क्या कहता है। उसने पाँच उपाय सुझाये हैं। उनमें से पहला उपाय[1] मैं पाठकोंके लिए 'यंग इंडिया' के इस अंकमें प्रकाशित करता हूँ।

श्री पेजने अपने अन्तिम अध्यायका शीर्षक दिया है: "युद्धके बारेमें विभिन्न धर्म और सम्प्रदाय क्या करेंगे?" मैंने उसे दूसरा नाम दे दिया है जो 'यंग इंडिया' के पाठकोंको अधिक उपयुक्त लगेगा। वे देखेंगे कि श्री पेजके अधिकांश तर्क[2] सभी धर्मोंपर लागू होते हैं।

चौथा अध्याय जिन खण्डोंमें विभक्त किया गया है, उनमें श्री पेजने योग्यतापूर्ण ढंगसे विभिन्न कारणोंकी जाँच की है और उन्हें संक्षेपमें गिनाया है। इनमें पहला है — "जिस प्रकारका जीवन व्यतीत करनेकी ईसाने हमें शिक्षा दी है, युद्ध उसका मूलतः और स्वभावतः घोर उल्लंघन करता है।" यद्यपि कट्टर ईसाइयोंके लिए इस खण्डमें पढ़नेको काफी सामग्री है, किन्तु साधारण पाठक उन सन्दर्भोंको नहीं समझेगा जिन्हें कि लेखकने संक्षिप्त रूपमें दिया है। किन्तु लेखक यह बताता है कि आधुनिक युद्ध एक ऐसी विपत्ति है जिसे कोई भी नैतिक विवेक रखनेवाला व्यक्ति विचलित हुए बिना देखता नहीं रह सकता। लेखकने विन्स्टन एस० चर्चिलके लेखोंसे यह उद्धृत किया है:

> **यह युद्ध सभी प्राचीन युद्धोंसे इस बातमें भिन्न था कि युद्धरत पक्षोंकी शक्ति अतुलनीय और विनाशके साधन भयावह थे। . . . सभ्यता तथा विज्ञानके हामी ईसाई देशोंने युद्धमें केवल दो ही बातें नहीं की हैं — मानव-भक्षण और यन्त्रणा देना। . . .**

धर्मपरायण व्यक्तियों द्वारा युद्धका विरोध होना ही चाहिए, इसका दूसरा कारण यह है कि यह "ईसाके साम्राज्यके विस्तारका कारगर साधन नहीं है और सम्भवतः अपने उद्देश्यको भी विफल बना देता है।" वे आगे कहते हैं:[3]

हम अब श्री पेजकी बहुमूल्य पुस्तिकाकी समाप्तिपर पहुँच रहे हैं। मैं अन्तिम तीन खण्डोंको नहीं ले रहा हूँ, क्योंकि वे 'यंग इंडिया' के पाठकोंको अधिक दिलचस्प नहीं लगेंगे। अन्तिम अध्यायके तीसरे खण्डमें यह दिखानेका प्रयत्न किया गया है कि "सरकारोंको युद्धकी-प्रणालीको त्यागने और सुरक्षा तथा न्याय हासिल करनेके अधिक कारगर साधन खोजनेके लिए मजबूर करनेका सबसे सीधा रास्ता यही है कि सभी व्यक्ति, समुदाय और संघ-बद्ध संस्थाएँ युद्धमें पड़नेसे बिलकुल इनकार कर दें।" निम्नलिखित अनुच्छेद सभी धार्मिक प्रवृत्तिके लोगों तथा सब प्रकारके सुधार प्रेमियोंके लिए उपयोगी हैं।[4]

[अंग्रेजीसे]
यंग इंडिया, २६-११-१९२५

१. २५-२-१९२६ के **यंग इंडिया**में "क्या यह रोका जा सकता है?" शीर्षकसे प्रकाशित।
२. २२-४-१९२६ के **यंग इंडिया**में, "धर्म कैसे सहायक हो सकता है?" शीर्षकसे प्रकाशित।
३. देखिए **यंग इंडिया**, २९-४-१९२६।
४. देखिए **यंग इंडिया**, ६-५-१९२६।

८. दक्षिण आफ्रिकाके भारतीय

श्री एन्ड्रयूजके दक्षिण आफ्रिकाके लिए रवाना हो जाने तथा निकट भविष्यमें भारत सरकारकी तरफसे एक शिष्टमण्डलके दक्षिण आफ्रिका जाने और डॉ० अब्दुर्रह-मानके नेतृत्वमें एक शिष्टमण्डलके दक्षिण आफ्रिकासे आनेकी सम्भावनासे स्पष्ट है कि इस समय दक्षिण आफ्रिकाका प्रश्न बहुत महत्त्वपूर्ण हो गया है। दक्षिण आफ्रिकाके भारतवासियोंके लिए तो यह प्रश्न जीवन और मरणका प्रश्न है। लगता है कि संघ सरकारने दक्षिण आफ्रिकासे भारतवासियोंके अस्तित्वको मिटा देनेका निश्चय कर लिया है और वह भी सीधा और खुला मार्ग अपनाकर नहीं, बल्कि उन्हें हर तरहसे परेशान करके। प्रस्तावित कानूनके द्वारा प्रामाणिक ढंगसे रोजी कमानेके सभी मार्ग बन्द हो जायेंगे। यह कानून बनानेमें संघ सरकारका मन्शा भारतीयोंमें स्वाभिमानकी भावनाको बिलकुल ही कुचल डालना है। जब वहाँ स्वतन्त्र विचारवाले और स्वाभिमानी भारतवासी ही न रह जायेंगे और सरकारका वास्ता केवल मजदूरों, रसोई बनानेवालों, चपरासियों और ऐसे ही दूसरे लोगोंसे रह जायेगा तब संघ सरकार भारतीयोंके प्रश्नकी झंझटसे बरी हो जायेगी। उन्हें तो चन्द नौकरोंकी ही जरूरत है, वे अपने साथ समानताका दावा करनेवाले व्यापारियों तथा काश्तकारोंको नहीं रखना चाहते।

इसलिए संघ सरकारने हिन्दुस्तानसे वहाँ गये हुए शिष्टमण्डलको जो उत्तर दिया है, वह आश्चर्यजनक नहीं है। उन्होंने प्रस्तावित विधेयकको कानून बना डालना ठान ही लिया है। वे केवल तफसीलके बारेमें 'रचनात्मक सुझाव' दिये जानेपर उनपर विचार कर सकते हैं; इससे अधिक कुछ नहीं। गोलमेज परिषद् बुलानेके बारेमें उन्होंने अभी कोई निश्चय नहीं किया है।

यदि दक्षिण आफ्रिकाके भारतवासी दृढ़ता दिखायें और आपसमें ऐक्य बनाये रखें तो आशा है वहाँ श्री एन्ड्रयूजकी उपस्थितिसे बहुत-कुछ काम बन सकेगा। यदि भारत सरकार द्वारा भेजे गये शिष्टमण्डलको सिद्धान्तके विषयोंमें दृढ़ रहनेको कह दिया गया हो तो वह भी बहुत-कुछ कर सकेगा। भारतीयोंको १९१४ के समझौतेके अनुसार जो हक दिये गये थे उसमें तो कोई भी कमी होनी ही नहीं चाहिए और न किसी गिर-मिटियेको भारत वापस भेजनेकी बात उठाई जानी चाहिए। यह प्रस्तावित कानून तो उन्हीं प्राप्त हकोंको छीन रहा है।

जो लोग दक्षिण आफ्रिकाके बारेमें कुछ भी जानते हैं उन्हें मालूम है कि यूरोपीय जनताका वहाँके हिन्दुस्तानी बाशिन्दोंके प्रति सचमुच कोई विरोध नहीं है। यदि वहाँकी यूरोपीय जनताका उनसे कोई सक्रिय विरोध होता तो वहाँ बसे हुए यूरोपीय लोग उनका वहाँ रहना असम्भव बना सकते थे, क्योंकि वहाँ उन्हींकी आबादी सबसे ज्यादा है। दक्षिण आफ्रिकाके मूल निवासी भी भारतीयोंका विरोध नहीं कर रहे हैं। दक्षिण आफ्रिकाके मूल निवासी या यूरोपीय बाशिन्दे उनका विरोध नहीं करते, इतना ही नहीं, वे उनके साथ निस्संकोच और प्रसन्नतापूर्वक व्यवहार रखते हैं, तभी

तो वे वहाँ रह पा रहे हैं। प्रस्तावित कानूनके जरिये, भारतवासियों तथा यूरोपीय बाशिन्दों और वहाँके मूल निवासियोंके बीच मौजूदा स्वतन्त्र व्यापारिक सम्बन्ध खललमें डालनेका प्रयत्न किया जा रहा है। इसलिए यदि भारत सरकार दृढ़ बनी रहेगी तो संघ सरकारके किये कुछ न होगा। उन लोगोंके दिलोंमें भारतवर्षसे लाखों लोगोंके वहाँ जा बसनेका जो डर समाया हुआ था, वह १९१४ में दूर हो गया था, इसलिए संघ सरकारका कर्त्तव्य था कि वह वहाँके भारतवासियोंको व्यापार, जमीनकी मिल्कियत और अन्तरप्रवासके लिए इजाजत देती और उनके इन हकोंकी हिफाजत करती। लेकिन आज तो उस समझौतेको ही बदल डालनेका प्रयत्न किया जा रहा है। मैं पाठकोंके सुभीतेके लिए १९१४ के समझौतेसे सम्बन्ध रखनेवाला पत्र-व्यवहार[1] अन्यत्र फिर प्रकाशित कर रहा हूँ।[2]

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २६-११-१९२५

९. मौलाना आजादकी अपील

मौलाना अबुल कलाम आजादने हिन्दू-मुस्लिम प्रश्नपर समाचारपत्रोंमें जो सन्देश प्रकाशित कराया है, उन्होंने उसकी एक नकल मेरे पास भी भेजनेकी कृपा की है। वे उन चन्द लोगोंमें से हैं जो हृदयसे हिन्दुओं और मुसलमानोंके बीच ऐक्य चाहते हैं। उन्होंने मुझसे इस प्रश्नपर विचार करनेके लिए कार्य समितिकी बैठक बुलानेको कहा है। लेकिन कानपुरमें कांग्रेस सप्ताहके शुरू होनेके पहले मैं कार्य समितिकी बैठक नहीं बुलाना चाहता। कांग्रेसका यह वार्षिक अधिवेशन अब बहुत दूर नहीं है; इसलिए कार्य समितिको फिलहाल बुलानेकी आवश्यकता प्रतीत नहीं होती। मैं चाहता तो हूँ कि समिति इस समस्याका कोई हल सोच निकाले; लेकिन मुझे यह बात स्पष्ट रूपसे स्वीकार कर लेनी चाहिए कि मुझे अब ऐसी कोई आशा नहीं रह गई है। लेकिन इससे मेरे कहनेका मतलब यह भी नहीं है कि मैं इस प्रश्नके हल किये जानेके बारेमें निराश ही हो गया हूँ। कांग्रेस इस प्रश्नका हल खोज सके और दोनों कौमोंको अपने निर्णयको कबूल करनेपर राजी कर सके, मुझे उससे ऐसी कोई आशा नहीं रह गई है। हम इस तथ्यको क्यों छिपायें कि कांग्रेस दोनों जातियोंमें जो लड़नेवाले लोग हैं, उनका प्रतिनिधित्व नहीं कर पा रही है? जबतक कांग्रेसका प्रभाव उन लोगोंपर नहीं पड़ता जो इन झगड़ोंमें भाग लेनेवाले लोगोंके पीछे रहकर काम कर रहे हैं और जबतक समाचारपत्रोंके वे सम्पादक जो झगड़ोंको बढ़ावा दे रहे हैं, ऐक्यकी आवश्यकतामें विश्वास नहीं करने लगते या फिर स्थिति ही ऐसी नहीं हो

१. यहाँ नहीं दिया जा रहा है; देखिए खण्ड १२, परिशिष्ट २६ तथा पृष्ठ ४२९-३०।

२. देखिए "दक्षिण आफ्रिकाके भारतीय", २९-११-१९२५ भी।

जाती कि उनका जनतापर कुछ भी प्रभाव न रह जाये, तबतक कांग्रेस ऐक्यके सम्बन्धमे कुछ भी उपयोगी कार्य नही कर सकेगी। मेरा कटु अनुभव तो यही है कि जो लोग ऐक्यका नाम लेते है, काम अनैक्यके ही करते है। यूरोपमे गत महायुद्धके समय असत्यका जैसा वातावरण फैला हुआ था, असत्यका वैसा ही वातावरण आज हमारे चारों ओर फैला हुआ है। यूरोपके समाचारपत्र उस समय कभी सच्ची बात लिखते ही न थे। विभिन्न राष्ट्रोंके प्रतिनिधियोंने झूठ बोलनेको एक उत्तम कलाका रूप दे रखा था। कहा जाता था कि युद्धकालमे अनुचित कुछ है ही नही। यह पुराना वचन कि जेहोवा बच्चोंके भी खूनका प्यासा है, अपनी पूर्ण वर्बरताके साथ दोहराया जाने लगा था। आज हमारा भी यही हाल हो गया है। हिन्दुओं और मुसलमानोंमे — एक छोटे पैमानेपर ही सही, जंग-सी छिड़ी हुई है। अपने धर्मको बचानेके लिए हम झूठ बोल सकते है और दगा भी कर सकते है, यह मुझसे किसी एक शख्सने नहीं कहा; मै सैकड़ों मनुष्योंकी जबानी यही बात सुन चुका हूँ।

लेकिन इसे लेकर निराश जरा भी होना नहीं चाहिए। मै जानता हूँ, फूटका राक्षस अब आखिरी साँस ले रहा है। असत्यका कोई आधार नहीं हुआ करता। ऐक्यका अभाव एक असत्य वस्तु है। यदि लोग केवल अपने स्वार्थका ही विचार करें तो भी ऐक्य स्थापित हो सकेगा। मैने आशा तो निःस्वार्थ ऐक्यकी कर रखी थी; लेकिन परस्पर स्वार्थके आधारपर भी यदि ऐक्य होता है तो मै उसका स्वागत करूँगा। मौलाना साहव जिस रास्तेको अख्तियार करनेका सकेत करते है, ऐक्य उससे न होगा। ऐक्यको जब आना ही होगा, तब वह शायद ऐसे रास्तोंसे आयेगा जिनसे आनेकी हमे कोई आशा नहीं है। ईश्वरकी लीला अपार है। वह हमारी बुद्धि हर लेना, हमें हतबुद्धि कर देना तथा हमारे 'क्षुद्र छलों' को प्रकट करना जानता है। मृत्युका कोई लक्षण नजर नहीं आता तब भी वह व्यक्तिको कालके गालमे पहुँचा देता है। जब जी सकनेका कोई आसार दिखाई नहीं देता उस समय वह जीवन प्रदान करता है। हमें केवल अपनी नितान्त असहायावस्थाको स्वीकार कर लेना चाहिए। हमें अपनी पूरी हार कबूल कर लेनी चाहिए। मुझे यकीन है कि हम लोग अपनी नम्रताकी धूलिमें से ही ऐक्यका अभेद्य दुर्ग खड़ा कर सकेंगे।

मुझे अफसोस है कि मैं मौलाना साहबकी प्रार्थनाका इससे अधिक उत्साहप्रद उत्तर देनेमें असमर्थ हूँ। उन्हें यह जानकर ही सन्तोष मान लेना चाहिए कि ऐक्यके लिए वे स्वयं जितने आतुर है उसके लिए उतना ही आतुर मै भी हूँ। ऐक्य हासिल करनेके उनके सुझाये हुए उपायोंमें यदि मुझे श्रद्धा नहीं है तो इसमें हानि ही क्या है? मैं उनके कार्यमें किसी प्रकारकी बाधा न डालूँगा। मै ऐक्यके लिए प्रत्येक हार्दिक चेष्टाकी सफलताके लिए ईश्वरसे प्रार्थना करूँगा। मैं इस दिशामे विकलता प्रकट नहीं कर रहा हूँ, इसका यह अर्थ नहीं है कि हिन्दू-मुस्लिम ऐक्य मेरे जीवनका सिद्धान्त नहीं रहा। मैं यह पुनः घोषित करता हूँ कि मुझे उसमें अटल श्रद्धा है। भविष्यमें आनेवाले ऐक्यके खातिर मुझे स्वयं उसका निर्माता बननेके सौभाग्यका भी त्याग कर देना चाहिए। जब मेरे बीचमें पड़नेसे घाव भरता नहीं है, बल्कि उससे तकलीफ

ही बढ़ती है तो मुझमे इतनी अक्ल अवश्य है कि मैं दूर खड़ा रहूँ और घावके भर जानेतक राह ही देखूँ।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २६-११-१९२५

१०. उल्लेखनीय सफलता

एक पत्र-लेखक लिखते है:[1]

इससे स्पष्ट हो जाता है कि खादी किस तरह चुपचाप फैल रही है। पत्र-लेखक महाशयने जैसे कातनेवाले लोगोंका जिक्र किया है वैसे कातनेवाले मैंने हर जगह पाये है। लेकिन यह ब्यौरा विशेषरूपसे उल्लेखनीय है। जिनका किसी मण्डलसे कोई सम्बन्ध नहीं है और जो बिना किसी मण्डलकी सहायताके ही स्वेच्छासे कात रहे है, उनके कातनेका परिणाम कदाचित् ही ज्ञात हो पात है। इसलिए मेरी समझमे तो खादीको सार्वत्रिक बनाना केवल समय सापेक्ष है; और वह समय अब दूर भी नहीं है। यदि स्वेच्छासे किये गये प्रयत्नों द्वारा वह लोकप्रिय बन जायेगी, तो फिर यन्त्रचालित मशीनका काम उसके साथ स्पर्धा नहीं कर सकेगा।

उत्साहवर्धक आँकड़े

३० सितम्बर, १९२५ को पूरे होनेवाले वर्षके तमिलनाडमे खादी-सम्बन्धी आँकड़े ध्यान देने योग्य है:-

		१९२४–२५	१९२३–२४
खादी बोर्डका उत्पादन	रु०	३,०८,८२६	२,९०,१४८
अन्य सहायता प्राप्त या गैर-सहायता प्राप्त उत्पादकों द्वारा उत्पादन	रु०	३,९६,९६२	१,८२,२१६
	कुल	७,०५,७८८	४,७२,३६४

१९२४–२५में सिर्फ थोक बिक्री ४,४५,३२४ रु०की हुई जो लगभग पिछले वर्षके कुल उत्पादन जितनी ही है।

वर्षमे कुल बिक्री, जिसमें दूसरे प्रान्तोंमें की गई बिक्री भी शामिल है, ८,३२,८४६ रु० है, जबकि १९२३–२४के आँकड़े ३,६५,८५८ रु० रहे थे।

उत्पादन तथा बिक्री दोनों ही में इस साल वृद्धि हुई है। उत्पादन ५० प्रतिशत बढ़ा और बिक्री दूनीसे भी ज्यादा हुई।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २६-११-१९२५

१. पत्र यहाँ नहीं दिया जा रहा है। पत्रमें तिरुपतिके १५२ कातनेवाले लोगोंका ब्यौरा था, जिनमें विधान सभाओंके सदस्य, वकील, डाक्टर, शिक्षक, क्लर्क, व्यापारी, विद्यार्थी, स्त्रियाँ और बच्चे भी शामिल थे।

११. अहमदाबादमें तकलीकी कताई[1]

श्रीमती अनसूयाबहनने मजदूर संघकी शालाओंके लड़कोंमें तकलीपर सूत कातनेकी स्पर्द्धा करानेकी व्यवस्था की थी। २०२. . .लड़के शामिल हुए थे। . . .

इन लड़कोंने तकलीपर कातकर इतना सूत इकट्ठा किया है कि अनसूयाबहन आगामी वर्ष इन लड़कोंको इसी सूतके कपड़े पहना पानेकी आशा कर रही हैं। . . .

श्री राजगोपालाचारीको यह देखकर बड़ा ही आश्चर्य हुआ था; यह ठीक ही है। उन्होंने यह आशा भी की थी कि सभी राष्ट्रीय संस्थाओं और नगरपालिकाओं द्वारा संचालित शालाएँ इसका अनुकरण करेंगी। . .

नगरपालिकाके सदस्यगण इसपर विचार करें।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २६-११-१९२५

१२. समयकी धरोहर[2]

उन्होंने [गांधीजीने] अपनी नाराजी छिपाकर मुस्कराते हुए पूछा:

तुमने फ्रेंच सीखना शुरू किया है?

मैंने [महादेव देसाईने] भी उत्तरमें हँसते हुए 'हाँ' कह दिया।

कल जब वह तुम्हारे साथ समय तय कर रही थी तब मेरे मनमें यह खयाल आया कि तुम उसके पास नियत समयपर हिन्दी पढ़ानेके लिए जाओगे। लेकिन जब आज सुबह मैंने उससे पूछा कि तुमने अपना समय किस प्रकार बिताया तो उसने मुझे बताया कि उसने तुम्हें एक घंटा फ्रेंच सिखाई। तुम जानते हो कि मैंने उससे तब क्या कहा था?

हाँ, उन्होंने मुझसे कहा था कि आपको उससे कौतूहल और आश्चर्य हुआ है।

ठीक है। तो अब मैं बताता हूँ कि मैंने उससे क्या कहा था। मैंने कहा था कि सीजरका ध्येय ताज था और उसे पानेमें वह असफल रहा।

इसके बाद तो प्रश्नोंकी झड़ी लग गई।

१. महादेव देसाईके विवरणसे उद्धृत।

२. महादेव देसाईने कुमारी स्लेडसे अपने फ्रेंच सीखनेके सम्बन्धमें जो विवरण गांधीजीके सामने प्रस्तुत किया था उसे स्वयं गांधीजीने काट-छाँटकर **यंग इंडियामें** प्रकाशित किया था। यहाँ उसका प्रारम्भिक अंश छोड़ दिया गया है।

तुमने फ्रेंच किसलिए सीखना शुरू किया है? फ्रेंच विदुषी कुमारी स्लेड यहाँ आई हुई है इसलिए? या तुम रोमां रोलांके ग्रन्थोंको फ्रेंच भाषामें पढ़ना चाहते हो? अथवा हमारे पास फ्रेंचमें आये पत्र पढ़नेके लिए?

नहीं, मुझे फ्रेंच सीखनेकी बहुत दिनोंसे इच्छा थी और मेरे फ्रेंच जाननेवाले मित्रोंने मुझसे कहा था कि यह भाषा सीखना आसान है और उपयोगी भी है।

अच्छा, क्या तुम्हें यह मालूम है कि सभी अंग्रेज फ्रेंच भाषा नहीं जानते और उनके बीच जो अच्छेसे-अच्छे पण्डित विद्वान् हैं, वे भी फ्रेंच लेखकोंकी कृतियोंके अंग्रेजी अनुवादोंको पढ़कर ही सन्तोष मान लेते हैं। और अधिकांश उत्तम फ्रेंच साहित्यके प्रकाशित होते ही उसका अंग्रेजीमें अनुवाद हो जाता है।

गांधीजी एक या दो मिनटतक खामोश रहे, फिर पूछा:

तुम्हारे खयालके मुताबिक इसे सीखनेमें कितने दिन लगेंगे?

लोग कहते हैं, छः महीने लगेंगे।

कितने घंटे?

रोजाना एक घंटा।

बिना नागा।

जी हाँ।

लेकिन जब हम लोग दौरेपर होंगे तब?

तब मुश्किल है। लेकिन मेरा खयाल है कि हम सचमुच सफर कर रहे होंगे तब मैं कुछ-न-कुछ समय निकाल ही लूँगा।

क्या सचमुच, तुमको यकीन है?

मैं कुछ हिचकिचाया।

और अब चूँकि तुम फ्रेंच सीखना चाहते हो, तो मुझे तुमको रोजाना एक घंटे की छुट्टी देनी ही चाहिए — कि नहीं?

इसे मैं सहन न कर सका। मैंने कुछ जोरसे कहा, "जी नहीं; इसकी कोई आवश्यकता नहीं होगी। मैं किसी-न-किसी प्रकार समय निकाल लूँगा।"

तुम समय निकाल नहीं पाओगे, समय चुराओगे।

मैं चुप हो गया।

क्या तुम ऐसा नहीं मानते?

वे मुझसे स्वीकृतिकी आशा कर रहे थे। मैंने कहा, "मैं भी यही समझता हूँ। फ्रेंच सीखनेमें जितना समय लगता है, उतना मैं कातनेमें दे सकता हूँ।"

ठीक है; मगर और भी बहुत-सी बातें हैं। जब हम जीवन-मरणके संघर्षमें लगे हुए हैं उस समय तुम्हें फ्रेंच सीखनेका खयाल सूझा ही कैसे? स्वराज्य मिल जानेके बाद तुम जितनी चाहो उतनी फ्रेंच पढ़ लेना; लेकिन तबतक तो — ।

मैंने क्षमा पाने और जानेके लिए अनुमतिकी आशासे कहा, "मैं आजसे फ्रेंच सीखना बन्द किये देता हूँ।"

लेकिन इतना ही काफी नहीं है। आरोप अभी अधूरा है। क्या तुम जानते हो कि कुमारी स्लेड अपना सब-कुछ छोड़कर यहाँ आई हुई हैं? क्या तुम जानते हो कि हमारे उद्देश्यकी सिद्धिके लिए किया गया उस महिलाका त्याग हममें से किसीके भी त्यागसे बढ़-चढ़कर है? क्या तुम जानते हो कि वह यहाँ सीखनेके लिए, अध्ययन करनेके लिए और सेवा करनेके लिए आई है और उसने इस देशके लोगोंकी सेवामें और इस प्रकार अपने देशकी सेवामें अपना समय लगा देनेका निश्चय किया है और उसके देशमें कुछ भी क्यों न हो, उससे वह यहाँ अपने कर्त्तव्य-पालनसे जरा भी नहीं डिगेगी? इसलिए उसका प्रत्येक क्षण दूना महत्त्व रखता है और यह हमारा फर्ज है कि हमसे जितना भी बन सके, उसे दें। वह हमारे सम्बन्धमें सब-कुछ जानना चाहती है और इसलिए उसे हिन्दुस्तानी पूरी तौरपर सीख लेनी चाहिए। जबतक हम लोग अपने समयका अच्छेसे-अच्छा उपयोग करनेमें उसके सहायक न होंगे तबतक वह यह सब कैसे कर सकेगी? वह पूरे तौरपर हमारी मदद करनेको तैयार हो सकती है, परन्तु हमारा कर्त्तव्य तो यही है कि हम उसे जितना दे सकें दें। हमारा समय धार्मिक धरोहर जरूर है, लेकिन उसका समय तो उससे भी कहीं अधिक पवित्र धरोहर है। इसलिए उससे फ्रेंच सीखनेके शौकको पूरा करनेके बजाय तुम उसे संस्कृत, हिन्दी या ऐसी ही दूसरी चीज सिखानेमें रोजाना एक घंटा लगाया करो।

इसका मैं कुछ भी उत्तर न दे सका। मेरा सिर लज्जासे नीचा हो गया। मैंने चुप रहकर ही अपने दोषको पूरे तौरपर स्वीकार कर लिया। इसके लिए क्या कोई प्रायश्चित भी मुझे करना चाहिए? उनसे यह पूछना तो उचित न था। मुझे लगा कि मुझे ही उसका निश्चय करना चाहिए। लेकिन उनकी कभी न चूकने-वाली अनुकम्पाने मुझे क्षमा कर दिया और उन्होंने स्वयं मुझे प्रायश्चित्त बता दिया, वे बोले:

कल फिर उसी समय उसके पास जाना और अपनी गलती उसपर प्रकट करनेके अनन्तर फ्रेंच पढ़नेके बजाय उसके साथ हिन्दीके भजन ही पढ़ना।

(जाँचा और सुधारा। प्रकाशनके लिए मंजूरी देता हूँ पर बहुत संकोचके साथ — मो० क० गांधी)

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २६-११-१९२५

१३. जूते और पशुहत्या

बंगाल और मध्यप्रान्तमें भारतीय उद्योग आयोग (इंडियन इन्डस्ट्रियल कमिशन) के सामने जो बयान दर्ज हुए थे हम उनमें से कुछ अवतरणोंको[1] प्रस्तुत कर रहे हैं। उनसे इस विषयपर काफी प्रकाश पड़ता है। यद्यपि इसके प्रति हम लोग अज्ञानवश इन बातोंपर नजर डालनेकी परवाह नहीं करते फिर भी उक्त विवरणसे यह बात निस्सन्देह स्पष्ट हो जाती है कि जो बढ़िया जूते हम लोग पहनते हैं, या हाथमें लटकानेवाले खूबसूरत सूटकेस जिन्हें हम लोग अभिमानके साथ लिये फिरते हैं या वस्त्र रखनेके चमड़ेके बड़े-बड़े सन्दूक जिनमे हम लोग अपने कीमती कपड़े, फिर चाहे वे खादीके हों, विदेशी हों, या मिलके बने हुए हों, शौकसे रखते हैं, उन सबपर निर्दोष जानवरोंकी हत्याके दाग पड़े हुए हैं। यदि संसारकी नीतिकी कोई संरक्षक शक्ति है तो हमें इसके लिए किसी-न-किसी दिन उसके सामने जवाब भी देना होगा।

उपरोक्त आयोगके समक्ष दिये गये लम्बे-चौड़े बयानोंमे से उक्त अवतरणोंको श्री देसाईने[2] अक्षरशः उद्धृत किया था। यदि यहाँ दिये गये उन उद्धरणोंको पढ़कर पाठकोंका दिल दहलता हो तो उन्हें अवश्य ही अ० भा० गोरक्षा मण्डल (साबरमती)के सदस्य बन जाना चाहिये और यदि वे सदस्यताके शुल्कसे कुछ ज्यादा दे सकनेमे समर्थ हों तो उन्हें दान या भेंटके रूपमें कुछ रकम भी भेजनी चाहिए, ताकि इन पृष्ठोंमे पहले बताई गई चमड़ेके उन कारखानोंकी योजनापर अमल किया जा सके, जिनमे केवल मृत ढोरोंकी खालको कमाकर चमड़ा तैयार किया जायेगा।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २६-११-१९२५

१४. तार: लाजपतरायको

२६ नवम्बर, १९२५

जिस दिन चाहें जरूर आइये। आश्रम ही में ठहरें।

गांधी

अंग्रेजी तार (एस० एन० १०६६१) की फोटो-नकलसे।

१. नहीं दिये जा रहे हैं।

२. वालजी गोविन्दजी देसाई।

१५. पत्र : मु० अ० अन्सारीको

सत्याग्रह आश्रम
साबरमती
२६ नवम्बर, १९२५

प्रिय श्री अन्सारी,

आपका पत्र मिला। क्या आप कौंसिलके काम और 'लीग ऑफ नेशन्स' के अध्यक्षको तार भेजनेमें कोई अन्तर नहीं मानते। व्यक्तिगत रूपसे मैं कौंसिल प्रवेशका इतना ही विरोधी आज भी हूँ, जितना कि पहले था। आप इतमीनान रखें कि पटनाके प्रस्तावमें लगभग अनिवार्य हो जानेपर ही मैंने हिस्सा लिया था; उसमें पसन्द करने न करनेका प्रश्न ही नहीं था। लगभग अनिवार्य कहनेमें अर्थ यह है कि मैं कांग्रेसके प्रजातन्त्रवादी स्वरूपको मानता हूँ। जब मैंने देखा कि मैं स्वराज्यवादियोंको यह नहीं समझा सकता कि कौंसिल प्रवेश एक गलती करना ही होगा, और जब मैंने यह भी देखा कि मेरे अच्छेसे-अच्छे मित्र और सहयोगी स्वराज्यवादी बन गये हैं तब मैंने सोचा कि मैं अन्य राजनैतिक दलोंकी ओर झुकनेके बजाय अपनी राय उन्हींके पक्षमें दूँ। इस तरह, यद्यपि व्यक्तिगत रूपसे मैं 'लीग ऑफ नेशन्स' से कोई अपील करना तबतक नापसन्द करूँगा जबतक हम स्वयं समर्थ नहीं हो जाते; किन्तु फिर भी कांग्रेसमें यदि दो दल होते जिनमें से एक फ्रांसीसियोंके अत्याचारका समर्थन करता और दूसरा पीड़ितोंकी सहायता करना चाहता तो मैं दूसरे दलको ही अपना सहयोग देता।

आपको पता नहीं है कि लोग सही रास्तेसे कितना भटक गए हैं। मैं जानता हूँ कि अपीलके जवाबमें मुझे १०० रु० से अधिक नहीं मिलेंगे, तो फिर अपना मजाक उड़वानेसे क्या लाभ? इस समय जो आडम्बर और असत्य हमें घेरे है, उससे मैं बेहद त्रस्त हूँ। इसलिए खादी और अस्पृश्यताके छोटेसे काम तथा जो ढंग लोगोंको नापसन्द है उस ढंगसे गोरक्षाके कामके अलावा किसी भी अन्य कामके लिए मुझे भूल ही जायें। मैं स्वीकार करता हूँ कि किसी भी अन्य समस्याको सफलतापूर्वक सुलझानेमें मैं सर्वथा असमर्थ हूँ।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १०६६८) की फोटो-नकलसे।

१६. पत्र : शार्दूलसिंह कवीसरको

सत्याग्रह आश्रम
साबरमती
२६ नवम्बर, १९२५

प्रिय मित्र,

आपका छपा हुआ पत्र मिला। मेरा तो यह मत है कि कैदियोंसे जो वचन माँगा जा रहा है, वे यदि वह वचन दे दे तो उनसे उनका कोई नुकसान नहीं होगा। मेरी रायमें आगे बढनेकी दिशामें गुरुद्वारा कानून एक बहुत बड़ा कदम है, और सिखोंके दृढ़ निश्चयसे किये गये सत्याग्रहका परिणाम है। जब मुख्य चीज हासिल हो गई, तो उक्त वचन, जिसे मैं नुकसानदेह नहीं मानता, कोई खास मसला नहीं है। लेकिन यदि कैदी हठ करें और किसी भी तरहका कोई वचन न दे तो उन्हें ऐसा करनेका अधिकार तो है ही। लेकिन उस हालतमें हमें उन कष्टोंकी शिकायत नहीं करनी चाहिए जो उन्हें झेलने पड़ सकते हैं। मैं यह भी मानता हूँ कि उन्होंने सरकारी शर्तोंको स्वीकार न किया और फलस्वरूप लम्बी अवधितक अत्याचार सह लिये तो वे रिहा कर दिये जायेंगे। लेकिन जो काम मैं स्वयं नहीं करूँगा, उसे करनेके लिए जनतासे भी नहीं कहूँगा। मैं यदि सार्वजनिक रूपसे कुछ लिखूँगा, तो शर्तें हटा लेनेकी सलाह ही माननेकी बात लिखूँगा। परन्तु यदि कैदी वचन देनेसे इनकार करते हैं, तो मैं मन ही मन कष्ट सहनके लिए उनकी प्रशंसा करूँगा।

हृदयसे आपका,

सरदार शार्दूलसिंह कवीसर
निदेशक नेशनल पब्लिसिटी ब्यूरो
रामगली
लाहौर

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १०६६९) की फोटो-नकलसे।

१७. पत्र : रसिकको

सत्याग्रह आश्रम
साबरमती
गुरुवार, मा [र्गशीर्ष] सुदी ११ [२६ नवम्बर, १९२५][१]

भाई श्री रसिक,

तुम्हारे प्रश्नोंके उत्तर ये हैं :

१. मृत्युके बाद श्राद्धकी जो क्रिया की जाती है वह निर्दोष है; और जो इसे मानते हैं उनके लिए आवश्यक हो सकती है। मृत्युके बाद जातिको भोज न देनेका तुम्हारा निर्णय उचित ही है। मैं जाति भोज देना अनावश्यक और अनुचित मानता हूँ। उसमें श्राद्ध-जैसी धर्म भावना नही है। यदि तुम्हारी माँ अपनी मृत्युके बाद जातिको भोज देनेके लिए कहे, तो तुम उसे नम्रतापूर्वक बताओ कि तुमसे ऐसी आशा न रखी जाये। यदि वह इसपर भी आग्रह करे तो जाति भोजमें खर्च होनेवाला पैसा लाचार व्यक्तियोंको अन्न देनेमें खर्च कर दो अथवा उतना पैसा जातिके ही किसी गरीब विद्यार्थीकी शिक्षाके लिए जातिको दे दो।

२. तुम यदि सचमुच विवाह नही करना चाहते और तुम्हारी माता इसका आग्रह करती है तो तुम्हें विनयपूर्वक इसे अमान्य कर देना चाहिए। मेरे मतानुसार माता-पिताओंको बच्चोंका विवाह जबर्दस्ती करनेका अधिकार नहीं है।

३. तुम खानपानमें सादगी बरतते हो तो तुम्हें इससे ब्रह्मचर्य पालनमें मदद मिलेगी। लेकिन मनमें मलिन विचारोंको उठनेसे रोकनेके लिए तो सतत प्रयत्नपूर्वक ईश्वरकी अनन्य भक्ति, जैसे रामनामका जप आदि करना चाहिए और मन तथा शरीरको किसी परोपकारके कार्यमें अथवा निर्दोष व्यावसायिक कार्यमें लगाये रखना चाहिये।

४. कुटुम्ब नष्ट हो जाये अथवा भूखों मर जाये तो भी तुम वहाँ कदापि नौकरी नहीं कर सकते जहाँ झूठ बोलना पड़े और छल करना पड़े। इन्हीं कारणोंसे मैंने अनेक बार कहा है कि स्वतन्त्र रहनेके इच्छुक स्त्री अथवा पुरुषको बुनाई आदिका स्वतन्त्र धन्धा सीखकर उससे अपना पोषण करना चाहिए। मेरी मान्यता है कि कुटुम्बियोंमें जो व्यक्ति शरीरसे काम कर सकनेमें समर्थ हो उसका पोषण करना बिलकुल धर्म ही नहीं है।

५. शारीरिक बलका आत्मिक बलसे एक निश्चित सीमातक अवश्य सम्बन्ध है। शरीर अति क्षीण होनेपर भी आत्मा अत्यन्त तेजस्वी होनेके अनेक दृष्टान्त

१. साधन-सूत्रमें तारीख गुरुवार फरवरी ४, १९२५ दी गई है, लेकिन दिन और तारीख, आपसमें नहीं मिलते। अतः साधन-सूत्रमें दिये गये संक्षिप्त हिन्दी महीने 'मा' से 'माघ' नहीं, 'मार्गशीर्ष' ही समझा जा सकता है।

मिलते हैं। लेकिन जहाँ किसी रोगके कारण शरीर क्षीण होता है वहाँ तो अधिकांशतः आत्मा भी क्षीण ही होती है।

६. मर्यादित शारीरिक बलकी प्राप्तिके लिए दूध-घीका सेवन करनेमें कोई हानि नहीं।

मोहनदास करमचन्द गांधीके वंदेमातरम्

गुजराती पत्र (एस० एन० १०६२३) की फोटो-नकलसे।

१८. तारामती मथुरादास त्रिकमजीको लिखे पत्रका अंश

२७ नवम्बर, १९२५

जच्चा-बच्चाको आशीर्वाद। आनन्दकी[1] आत्मा इससे[2] अवश्य प्रसन्न होती होगी क्योंकि उसकी दृष्टिमें इसका बहुत महत्त्व था।

[गुजरातीसे]

बापुनी प्रसादी

१९. ओडका विनयमन्दिर

ऊपरकी टिप्पणी[3] पढ़कर किसे दुःख नहीं होगा? इससे मुझे तो बहुत दुःख हुआ है; क्योंकि ओडकी बहुत-सी मीठी स्मृतियाँ मेरे मनमें हैं। वहाँके लोगोंने जिस उत्साहका परिचय दिया था, मैं उसे भूल नहीं सकता। कहाँ वह ओड और कहाँ महादेव देसाई द्वारा चित्रित यह ओड? ओडके विनयमन्दिरकी गिनती अच्छी राष्ट्रीय शालाओंमें की गई है। उसमें विद्यार्थियोंकी संख्या खासी है। उसमें अच्छे शिक्षक काम कर रहे हैं। ओड निवासियोंके पास पैसा भी है, लेकिन वे फिर भी इस शालाके निमित इकट्ठे किये गये पैसेका उपयोग नहीं करते और जिन्होंने इसकी स्थापना की है, वे इससे अलग हो गये हैं। यह सब कैसे दुःखकी बात है? लेकिन जिनके मनमें स्वार्थ समा गया है, उन्हें कौन समझा सकता है? मेरी समझमें जहाँ-जहाँ ऐसी शालाएँ बन्द की जा रही हैं वहाँके लोग पश्चात्ताप करेंगे। राष्ट्रीय शाला कैसी भी क्यों न हो लेकिन उसमें विद्यार्थियोंको जिस स्वतन्त्र वातावरणमें रहनेकी तालीम मिलती है, वह अन्यत्र कहाँ मिल सकती है? क्या ओडके नेता अब भी नहीं चेतेंगे और

१. तारामतीकी सास।

२. तारामतीके पुत्र-जन्मसे।

३. ओडकी राष्ट्रीय शालाकी दुरवस्थाके सम्बन्धमें महादेव भाईकी टिप्पणी; यह यहाँ नहीं दी गई है।

जिस शालाकी रक्षा बिना किसी प्रयत्नके ही की जा सकती है, क्या उसकी रक्षा नहीं करेंगे ?

[गुजरातीसे]

नवजीवन, २९-११-१९२५

२० दक्षिण आफ्रिकाके भारतीय

दक्षिण आफ्रिकाकें भारतीयोंके प्रश्नपर लोगोंका दिन-प्रतिदिन ज्यादासे-ज्यादा ध्यान आकर्षित हो रहा है; क्योंकि एक ओर तो श्री एन्ड्रचूज वहाँ पहुँच रहे हैं और दूसरी ओर इस लेखके प्रकाशित होनेके पहले यहाँसे दक्षिण आफ्रिका जानेवाले सरकारी प्रतिनिधि रवाना हो चुकेंगे और तीसरी ओर थोड़े दिनोंमें दक्षिण आफ्रिकाके भारतीयोंके प्रतिनिधि यहाँ आ जायेंगे। इसलिए सामान्य रूपसे जनताका ध्यान इस प्रश्नकी ओर आकर्षित होना ही चाहिए।

दक्षिण आफ्रिकावासी भारतीयोंके सिरपर तलवार लटक रही है। सीधे और प्रामाणिक ढंगसे भारतीयोंको जबर्दस्ती दक्षिण आफ्रिकासे निर्वासित करनेकी हिम्मत वहाँकी सरकारमें नहीं है; वह उन्हें अप्रत्यक्ष रूपसे परेशान करके दक्षिण आफ्रिकासे चले जानेके लिए मजबूर करनेकी युक्तियाँ रच रही है। जो बाकी रहेंगे वे नौकरी-पेशा मुट्ठीभर ऐसे ही भारतीय होंगे जिनको वहाँके गोरे लोग रखना चाहते हैं; जैसे खेतोंमें मजदूरी करनेवाले और घरोंमें रसोई करने तथा परोसनेवाले। व्यापारी और वे अन्य स्वतन्त्र भारतीय लोग जिनमें आत्मसम्मान है और जो उसका मूल्य समझते हैं, सरकार जैसी स्थिति उत्पन्न करना चाहती है, उसमें पलभर भी नहीं टिक सकते, क्योंकि वहाँके नये कानूनकी रूसे सरकार भारतीयोंके भूस्वामित्व, व्यापार और दक्षिण आफ्रिकामें एक प्रान्तसे दूसरे प्रान्तमें आने-जानेके अधिकारोंको लगभग छीन ही लेना चाहती है। यदि इन प्रश्नोंका निर्णय न्यायपूर्ण ढंगसे किया जाये तो भारतीयोंके लिए डरनेका कोई भी कारण नहीं है। उस हालतमें किसी प्रतिनिधिके यहाँसे दक्षिण आफ्रिका जाने और दक्षिण आफ्रिकासे यहाँ आनेकी जरूरत नहीं है। कोई भी निष्पक्ष न्यायाधीश भारतीयोंके ही पक्षमें अपना निर्णय देगा तथा उन्हें मुकदमेका खर्च भी दिलायेगा।

लेकिन यहाँ तो न्याय तलवारका है, पशुबलका है। यहाँ समान हैसियतके लोगों-को समान भाग देनेकी नहीं, अपितु बलवानको निर्बलसे दो गुना देनेकी बात है। ब्रिटिश सरकार दक्षिण आफ्रिकी सरकारके अन्यायको भी सहन करेगी; बहुत हुआ तो अन्याय कम करनेकी प्रार्थना करेगी और यदि दक्षिण आफ्रिकी सरकार उसे स्वीकार नहीं करेगी तो चुप होकर बैठ रहेगी। दक्षिण आफ्रिका गोरोंकी मर्जीसे ब्रिटिश साम्रा-ज्यके अन्तर्गत है। इसके विपरीत भारत ब्रिटिश साम्राज्यके अन्तर्गत साम्राज्यवादी तल-वारके बलपर है। यह बात अनुभवी अंग्रेज भी मानते हैं; और यह अधिकांशतः सच भी है। यदि दक्षिण आफ्रिकाके गोरे चाहें तो वे आज ही अपनेको साम्राज्यसे अलग कर

ले सकते हैं। लेकिन भारतके पराधीन लोग कितना भी क्यों न चाहें तो भी ब्रिटिश सरकारकी सम्मतिके विना अपनेको साम्राज्यसे कदापि अलग नहीं कर सकते। जब वस्तुस्थिति ऐसी है तब दक्षिण आफ्रिकाके भारतीयोंका वहाँ रहना भी दक्षिण आफ्रिकी सरकारकी कृपापर ही सम्भव है। बन्दीगृहमें पड़ा हुआ भारत दक्षिण आफ्रिकाके वन्दी भारतीयोंकी केवल इतनी ही मदद कर सकता है जितनी एक बन्दी दूसरे वन्दीकी। ऐसी दयनीय स्थितिमें इन सभी बन्दियोंका पुरुषार्थ ही उनकी मुक्तिका साधन हो सकता है। दक्षिण आफ्रिकाके भारतीयोंका छुटकारा तभी सम्भव है जब वे पुरुपार्थ कर सके और स्वय पराधीन होनेपर भी स्वतन्त्र व्यक्तिके समान आचरण कर सकें। मनुष्य दूसरोंकी कृपापर कितने दिनतक टिक सकता है? कोई कृपा करते रहनेका दस्तावेज लिखकर नहीं देता। कृपा करनेवालेकी कृपा न रहे और तत्सम्बन्धी कोई दस्तावेज हो तो भी वह उसे रद्दी कागजकी टोकरीमें फेंक दे सकता है। फिर भी भारत जितना कर सकता है, उतना तो अवश्य करेगा। दक्षिण आफ्रिकासे आनेवाले प्रतिनिधियोंका स्वागत करना और उन्हें यथाशक्ति सहायता देना हमारा धर्म है। हमारा कमसे-कम कर्त्तव्य यह है कि हम इस धर्मका पालन करें।

आनेवाले अतिथियोंमें केपटाऊनके प्रख्यात मलायी डाक्टर अब्दुर्रहमान हैं। उनमें भारतीय रक्त भी है। दूसरे जेम्स गॉडफ्रे हैं। ये बैरिस्टर हैं और एक भारतीय ईसाई शिक्षकके पुत्र हैं। तीसरे स्वर्गीय पारसी रुस्तमजीके वीर पुत्र सोराबजी हैं। ये कसे हुए सिपाही हैं, और जेल जा चुके हैं। 'दक्षिण आफ्रिकाके सत्याग्रहका इतिहास' पढ़नेवाले लोगोंको इनका परिचय होगा ही। इनका प्रवास और प्रयास सफल हो।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, २९-११-१९२५

२१. मेरा यह उपवास

३० नवम्बर, १९२५

हालका मेरा यह उपवास (सात दिनका) कल सुबह समाप्त होगा। मैंने चाहा था कि मेरे उपवास करनेकी बात लोगोंपर प्रकट न हो; मेरे प्रयत्नोंके बावजूद वह सम्भव नहीं हो सका। लोगोंने उसके सम्बन्धमें मुझसे कितने ही प्रश्न पूछे हैं और कुछ लोगोंने तो उसके प्रति अपना आवेशपूर्ण विरोध भी प्रकट किया है।

जनता मेरे स्वास्थ्यके सम्बन्धमें बिलकुल निश्चिन्त रहे। मैं आज उपवासके सातवें दिन लिख पा रहा हूँ, यह अपने आपमें कुछ कम नहीं है। लेकिन जबतक यह 'यंग इंडिया' के पाठकोंके हाथमें पहुँचेगा तबतक तो मैं अपने कामकाजमें लगनेकी आशा करता हूँ।

चौथे दिन कुछ आशंका हुई थी; उस दिन काम करते हुए बहुत थकावट मालूम पड़ी थी। मैं अभिमानमें यह सोच रहा था कि इस अपेक्षाकृत छोटे उपवासके सातों दिन मैं बराबर काम कर सकूँगा। मुझे अपने प्रति न्यायदृष्टि रखते हुए यह भी

कह देना चाहिए कि साढ़े तीन दिनोंतक जो काम मैंने किया उसमें से बहुत-सा काम तो अनिवार्य था; उसका सम्बन्ध मेरे उपवासके कारणके साथ ही था। लेकिन ज्यों ही मुझे इस बातका अनुभव हुआ कि श्रम अत्यधिक सिद्ध हो रहा है, मैंने सब काम छोड़ दिया और आज सातवें दिन मैं चौथे दिनकी अपेक्षा अधिक स्वस्थ हूँ।

लेकिन जनताको मेरे उपवासोंको लेकर कोई चिन्ता नहीं करनी चाहिए। उन्हें उनपर कोई ध्यान ही नहीं देना चाहिए। उपवास तो मेरे जीवनके अंग हो गये हैं। उदाहरणार्थ यदि मैं उपवासोंके बिना काम चला सकूँ तो फिर अपनी आँखोंके बिना भी चला सकता हूँ। बाह्य जगतके लिए जैसे आँख है अन्तर्जगतके लिए उपवास भी वैसे ही हैं। मैं कितना भी क्यों न चाहूँ कि मेरा यह उपवास मेरे जीवनका अन्तिम उपवास हो, लेकिन मेरे अन्तरसे यह आवाज आ रही है कि तुझे अभी ऐसी अनेक तपश्चर्याओंसे होकर गुजरना होगा; और कौन कह सकता है कि आगे आनेवाले उपवास इससे अधिक कष्टप्रद न होंगे? मैं सर्वथा गलतीपर भी हो सकता हूँ; तब संसार मेरी मृत्युके बाद मेरी समाधि-शिलापर यह लिख सकेगा "मूर्ख, तूने अपनी करनीका उचित फल पाया!" लेकिन फिलहाल, यह सचमुच मेरी गलती हो, तो भी यही मेरा जीवन है। पूर्ण शुद्ध न होनेके कारण यदि मेरी अन्तरात्मा गुमराह हो तो भी दूसरे लोगोंकी सलाहपर — कितने ही मित्रभावसे दिये जानेपर भी सलाह गलत हो सकती है — चलनेकी अपेक्षा अपनी अन्तरात्माकी आवाज सुनना ही क्या अधिक अच्छा नहीं है? यदि मेरे कोई गुरु होते, मैं गुरुकी खोजमें भी हूँ, तो मैं अपना शरीर और आत्मा सब-कुछ उन्हींके चरणोंमें रखकर निश्चिन्त हो जाता। लेकिन अश्रद्धाके इस जमानेमें सच्चे गुरुका मिलना कठिन है। सच्चे गुरुके अभावमें किसीको भी गुरु मान लेना तो और भी बुरा होगा; इससे प्रायः नुकसान ही होता है। इसलिए मुझे लोगोंको यह चेतावनी दे देनी चाहिए कि कोई व्यक्ति कच्चे-पक्के व्यक्तिको अपना गुरु न बनाये। उस शख्सको, जो यह नहीं जानता है कि वह कुछ भी नहीं जानता, आत्मसमर्पण कर देनेकी अपेक्षा अन्धेरेमें भटकते रहना और लाखों गलतियाँ करके भी सत्यकी राहपर चलना कहीं अच्छा है। क्या कोई गलेसे पत्थर बाँधकर तैरना सीख सकता है।

फिर गलत तौरपर किये गये किसी उपवाससे नुकसान भी किसका होगा? अवश्य मुझ अकेलेका ही। लेकिन लोग कहते हैं कि मुझपर तो वर्चस्व जनताका ही है। ऐसा हो तो भी जनताको मुझे मेरे तमाम दोषोंके साथ ही ग्रहण करना चाहिए। मैं सत्यका शोधक हूँ। मैं अपने प्रयोगोंको सर्वोत्तम तैयारीके साथ किये गये हिमालय आरोहण-अभियानसे भी कहीं अधिक महत्त्व देता हूँ। और परिणाम? यदि मेरी शोध वैज्ञानिक है तो प्रयत्न और परिणाम इन दोनोंकी कोई तुलना करना निरर्थक ही है। इसलिए, मुझे अपने ही मार्गपर चलने दीजिए। जिस दिन मैं अपने सूक्ष्म अन्तर्नादको सुनना बन्द कर दूँगा, उसी दिन मेरी उपयोगिता समाप्त हो जायेगी।

इस उपवासका जनताके साथ कोई सम्बन्ध नहीं है। मैं सत्याग्रहाश्रम नामकी एक बड़ी संस्था चला रहा हूँ। जिन मित्रोंको मुझपर विश्वास है उन्होंने मुझे केवल

उसके मकानोंके लिए ही दो लाखसे अधिक रुपये दिये हैं। वे उसके सालाना खर्चके लिए प्रतिवर्ष कमसे-कम १८,००० रुपये देते है। वे यह रकम इस आशासे देते हैं कि मै व्यक्तियोंका चरित्र निर्माण कर रहा हूँ। आश्रममे सयाने स्त्री और पुरुष रहते है। लड़के-लड़कियाँ भी हैं। लड़कियोंको यथासम्भव अविवाहित रहनेका प्रशिक्षण दिया जाता है। आश्रममे स्त्रियों और लड़कियोंको जितनी स्वतन्त्रता प्राप्त है, जहाँतक मेरा खयाल है, उतनी स्वतन्त्रता अन्यत्र नहीं होती। आश्रम मेरी एकमात्र और सर्वश्रेष्ठ कृति है। उसमे निष्पन्न परिणामोंसे दुनिया मेरी कीमत आँकेगी। मेरी मर्जीके खिलाफ आश्रममे कोई भी स्त्री या पुरुष, लड़की या लड़का नहीं रह सकता। मेरा विश्वास है कि वहाँ भारतवर्षके कुछ उत्तमसे-उत्तम चरित्रके लोग रहते है। जो मित्र इस सस्थाका पोषण कर रहे हैं यदि मुझे उनके पूरे विश्वासके योग्य बनना है तो मुझे बहुत चौकन्ना रहना चाहिए, क्योंकि वे आश्रमका न तो हिसाब देखते है और न उसकी हलचलोंपर ही नजर रखते है। मैंने लड़कोंमें दोष देखे, और थोड़े-बहुत लड़कियोंमे भी। मै यह जानता हूँ कि जिस प्रकारके दोषोंका मै जिक्र कर रहा हूँ वैसे दोषोसे कोई शाला या संस्था शायद ही बरी होगी। मैं इस बातके लिए आतुर हूँ कि आश्रम उन दोषोंसे जो राष्ट्रके पुसत्वका नाश कर रहे है और युवकोंके चारित्र्यबलको क्षीण कर रहे है, बरी रहे। आश्रममे छात्रोंको सजा नहीं दी जाती। मेरी देखरेखमे चलनेवाली दो शालाओंके अनुभवसे मैने यह सीखा है कि सजा देनेसे कोई दोषमुक्त नहीं बन पाता। उससे यदि कुछ होता है तो इतना ही कि बच्चे अपने दोषोंके प्रति और भी आग्रही बन जाते हैं। इस प्रकारके अवसरोंपर मैंने दक्षिण आफ्रिकामे उपवास ही किये थे और मेरी रायमें उनका परिणाम भी अच्छा निकला था। यहाँ भी मैंने उसी मार्गका अनुसरण किया है और मुझे यह भी कहना चाहिए कि मेरे तथा आश्रमवासियोंके बीच पारस्परिक प्रेम ही इसका आधार है। मै जानता हूँ कि लड़के और लड़कियोंको मेरे प्रति प्रेम है। और मैं यह भी जानता हूँ कि यदि मै अपने प्राण देकर भी उन्हे पवित्र बना सकता हूँ तो इस प्रकार प्राण त्याग करनेमे मुझे आनन्द मिलेगा।

इसलिए इन युवकोंको उनकी भूल समझानेके लिए मेरा इससे कम और कुछ भी कर सकना सम्भव न था। अभीतक तो परिणाम भी आशाजनक ही जान पड़ रहा है।

यदि इसका कोई सुफल न निकले तो भी क्या होता है? ईश्वरकी इच्छा, वह जैसी कुछ मुझे प्रतीत होती है, के अनुसार ही काम कर सकना-भर मेरे हाथमे है। फल देना तो उसीके हाथकी बात है। छोटी या बड़ी कोई भी बात हो, उसके लिए स्वयं कष्ट उठाना ही सत्याग्रहकी कुंजी है।

प्रश्न उठ सकता है, प्रायश्चित्त शिक्षकगण क्यों न करें? जबतक मैं प्रधान हूँ तबतक वे ऐसा नहीं कर सकते। यदि उन्होंने भी मेरे साथ उपवास किये होते तो सारा ही काम रुक जाता। जो बात बड़ी संस्थाओंके सम्बन्धमें है वही छोटी संस्थाओंके सम्बन्धमें भी है। जिस प्रकार एक राजा अपनी प्रजाके गुणोंके कारण गर्वका अनुभव करता है और उसका कारण अपनेको ही मानता है, उसी प्रकार उसे प्रजाके पापोंमें

भी हिस्सा बँटाना पड़ता है। इसलिए जहाँ मैं आश्रमके बारेमें यह बात गर्वके साथ कहता हूँ कि उसमें कुछ बहुत ऊँचे चरित्रके लोग रहते हैं वहाँ मेरा यह भी कर्त्तव्य है कि मैं अपने आश्रममें सबके द्वारा पसन्द किये गये इस छोटेसे राजाके रूपमें लड़कोंके पापोंका प्रायश्चित्त भी करूँ। यदि मुझे भारतमें छोटे और गरीब लोगोंके दुःखोंको अपना दुःख समझना है और यदि मुझमें शक्ति है तो मुझे उन बच्चोंकी भूलोंको अपनी भूल समझना चाहिए, जिन बच्चोंकी देखरेखका भार मुझपर है। यह काम पूर्ण नम्रताके साथ करनेसे ही मैं ईश्वरका — सत्यका — साक्षात्कार कर सकूँगा।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ३-१२-१९२५

२२. अस्पृश्यताका अभिशाप

[१ दिसम्बर, १९२५ से पूर्व]

१ दिसम्बर, १९२५ के 'सर्वे' (अमेरिकी) में महात्मा गांधी लिखते हैं :

भारतमें अस्पृश्यता-निवारण आन्दोलन हिन्दूधर्मकी शुद्धिका आन्दोलन है, हिन्दू धर्मके लगभग २४ करोड़ लोग अनुयायी हैं। अनुमान लगाया गया है कि इनमें ४ करोड़से ऊपर लोग अस्पृश्य माने जाते हैं। यह अस्पृश्यता दक्षिण भारतमें अपने उग्रतम रूपमें है, यहाँतक कि वहाँ उनका समीप पहुँचना या दिख जाना भी वर्जित है। अस्पृश्यताकी प्रथामें तथाकथित ऊँचे वर्गोंके लोगोंका अस्पृश्य कहलानेवाले लोगोंके स्पर्शसे बचना ही आता है। अनुपगम्य वे लोग हैं जिनके एक निश्चित हदकी दूरीसे अधिक पास आ जानेपर ऊँचे वर्गके लोग अपवित्र हो जाते हैं। जिनके देखने-मात्रसे वे अपवित्र होते हैं ऐसे लोग अदर्शनीय हैं।

हिन्दू समाजकी ये बहिष्कृत जातियाँ जिन जगहोंमें सीमित रहती है, उन्हें 'गेटो'[1] कहना ठीक होगा। भली-भाँति सुसम्बद्ध किसी भी समाजमें जिन सामान्य सुविधाओंको हर प्राणीका अधिकार समझा जाता है, जैसे कि डाक्टरी सहायता, नाई, धोबी आदिकी सुविधा, वे भी इन्हें नहीं दी जातीं। बहुत बड़ी संख्यामें प्राणियोंके इस तरह उत्पीड़नसे स्वयं उत्पीड़कोंपर एक अमिट कलंक लग गया है और अस्पृश्यता-का नासूर हिन्दू धर्मकी शक्तिको क्षीण करता जा रहा है; यहाँतक कि इसने किसी समयकी एक महान् संस्थाको विकृत कर दिया है। मेरा अभिप्राय है वर्णाश्रम व्यव-स्थासे, जो समाजकी गलती या कमजोरियोंके कारण जाति व्यवस्थामें परिणत हो गई है। वर्णाश्रमका प्रयोजन तो था श्रम और पेशोंका वैज्ञानिक ढंगसे बँटवारा। किन्तु अब यह बँटवारा सहभोज और विवाह सम्बन्धोंको संचालित करनेकी एक विस्तृत प्रणाली-भर बनकर रह गया है। संसारके एक श्रेष्ठ धर्मको खानपान और विवाह-सम्बन्धी हास्यास्पद नियमोंकी संहिता-मात्र बना दिया है।

१. यहूदी टोला।

प्रश्न किया जा सकता है कि ऐसी अवस्थामें मैं ऐसे अभिशापको सहन करने-वाले धर्मसे क्यों चिपका हूँ? इसका कारण यही है कि मैं अस्पृश्यताको उस हिन्दू-धर्मका अनिवार्य अंग नहीं मानता, जो सत्य, अहिंसा और प्रेमका महान् धर्म है। मैंने हिन्दू शास्त्रोंको, कुछको मूलमें और बाकीको अनुवादोंकी सहायतासे, समझनेका प्रयत्न किया है। मैंने अपने नम्र तरीकेसे इस धर्मकी शिक्षाओंके अनुरूप जीवन बिताने-का प्रयत्न किया है। संसारके ईसाई, इस्लाम आदि अन्य महान् धर्मोका अध्ययन करनेके बाद मैंने हिन्दूधर्मको ही अपना सबसे सुखद आश्रय-स्थान पाया है। मैंने देखा कि कोई भी धर्म सर्वांग सम्पूर्ण नहीं है। सभी धर्मोमें मैंने अन्धविश्वास और त्रुटियाँ पाई हैं। इसलिए मेरे लिए इतना ही काफी है कि मैं अस्पृश्यतामें विश्वास नहीं करता। किसी परिवार या जातिमें जन्म लेने मात्रसे ही कोई सीधा-सादा व्यक्ति अस्पृश्य हो जाता है, इस विश्वासका हिन्दू शास्त्रोंमें कोई प्रमाण मुझे नहीं मिल सका है। लेकिन यदि अपनेको हिन्दू कहते रहनेका मेरा आग्रह हो, जैसा कि है, तो जिस तरह मेरे देशके प्रति मेरा कर्त्तव्य है, उसी तरह अपने धर्मके प्रति भी मेरा यह कर्त्तव्य है कि मैं अपने मन-प्राणसे अस्पृश्यताकी इस विकृतिका विरोध करूँ और उसमें सुधार करनेके लिए चाहे बड़ीसे-बड़ी कीमत चुकानी पड़े तो उसे भी अधिक न गिनूँ।

पाठक यह न समझ बैठें कि इस दिशामें मैं ही एक सुधारक हूँ। ऐसे सैकड़ों शिक्षित भारतीय हैं, जो अपनेको हिन्दू कहनेमें गौरव मानते हैं, और जो अपनी पूरी शक्तिके साथ इस बुराईसे जूझ रहे हैं। सभी समझदार हिन्दुओंका यह एक मान्य सिद्धान्त है कि अस्पृश्यताका अभिशाप मिटाये बिना स्वराज्य नहीं मिल सकता।

इस बुराईका मुकाबला करनेका हमारा ढंग यह है कि हम तथाकथित उच्च वर्गोको इस दोषकी गम्भीरता समझाते हैं और आम सभाओंमें इस प्रथाकी निन्दामें प्रस्ताव पास करते हैं। कांग्रेसने इस सुधारको अपने कार्यक्रमका अनिवार्य अंग बना लिया है। दलित वर्गोंके बच्चोंके लिए स्कूल खोलकर, कुएँ खोदकर, उनको अपनी वे बुरी आदतें जो उनमें उच्च वर्गकी अतिशय उपेक्षाके कारण रूढ़ हो गई हैं, बताकर और इसी तरहके अन्य काम करके दलित जातियोंकी दशा भी सुधारनेका प्रयत्न किया जा रहा है। जब कभी जरूरी लगता है, जैसे कि वाइकोममें, तो सत्याग्रहकी सीधी कार्रवाई भी काममें ली जाती है। इस अन्धी रूढ़िवादिताके विरोधमें हिंसाका प्रयोग कदापि नहीं किया जाता। धैर्यपूर्वक समझाकर और प्रेमपूर्वक सेवा करके लोगोंके हृदय परिवर्तनकी कोशिश की जा रही है। सुधारक अपने विरोधियोंको कष्ट देनेके बजाय स्वयं अपने उद्देश्यके लिए कष्ट सहते हैं।

मेरा विश्वास है कि यह प्रयत्न सफल हो रहा है और शीघ्र ही हिन्दूधर्म अस्पृश्यताके दोषसे मुक्त हो जायेगा।

[अंग्रेजीसे]

हिन्दू, १९-१-१९२६

२३. भाषण: विद्यार्थियोंके समक्ष

१ दिसम्बर, १९२५

पहली दिसम्बरकी सुबह अपना उपवास समाप्त करनेसे पूर्व गांधीजीने बच्चोंको अपनी शैय्याके आसपास इकट्ठा करके धीरे-धीरे मन्द स्वरमें निम्नलिखित सन्देश दिया:

पिछले मंगलवारकी, जब मैंने अपना उपवास शुरू किया था, बात सोचो। मैंने वह कदम क्यों उठाया? मेरे सामने तीन रास्ते थे:

(१) दण्ड — मैं शारीरिक दण्ड देनेका सुगम रास्ता अपना सकता था। सामान्य तौरपर एक शिक्षक विद्यार्थियोंकी गलती पकड़नेपर उन्हें दण्ड देकर ऐसा गर्व कर सकता था मानो उसने कोई अच्छा काम किया हो। मैं स्वयं भी एक शिक्षक रहा हूँ, यद्यपि अपनी व्यस्तताओंके कारण आजकल मैं तुम्हे शिक्षा नही दे पाता। एक शिक्षककी हैसियतसे दण्डके इस स्वीकृत तरीकेको अमान्य करनेके सिवाय मेरे सामने दूसरा विकल्प नहीं था, क्योंकि अपने अनुभवसे मैंने उस तरीकेको निष्फल और हानिकर भी पाया है।

(२) उपेक्षा — मैं तुम्हें अपने भाग्यपर छोड़ सकता था। शिक्षक बहुधा ऐसा करता है। वह सोचता है कि यदि बच्चे अपना पाठ काफी ठीकसे याद करते हैं और उन्हें जो-कुछ पढ़ाया जाता है उसे वैसा ही सुना देते हैं, तो यह काफी है। उनके व्यक्तिगत व्यवहारसे मुझे क्या लेना-देना है और यदि ऐसा हो भी तो मैं उनपर निगाह कैसे रख सकता हूँ? उपेक्षा करना भी मुझे ठीक नहीं जान पड़ा।

(३) प्रेम — तीसरा तरीका प्रेमका था। तुम लोगोंका चरित्र और व्यवहार मेरे लिए एक पवित्र थाती है। इसलिए मुझे तुम्हारे जीवनमे, तुम्हारे अन्तर्तम विचारों, तुम्हारी इच्छाओं और वासनाओंमें पैठना ही चाहिए और यदि उनमे कहीं कोई गन्दगी हो तो उसे दूर करनेमें मुझे तुम्हारी मदद करनी चाहिए। चूँकि आन्तरिक स्वच्छता ही सीखनेकी पहली चीज है, अन्य चीजें तो जब यह प्रथम और सबसे महत्त्वपूर्ण पाठ सिखाया जा चुका हो, तब बादमें सिखानी चाहिए। तो फिर ऐसेमे मैं क्या करता? तुम्हें दण्ड देनेका प्रश्न ही नहीं था। मुख्य शिक्षक होनेके नाते इस उपवासके रूपमें मुझे स्वयं अपने ऊपर दण्ड लेना था। आज यह समाप्त हुआ।

इन दिनों चुपचाप पड़े-पड़े मैंने चिन्तन किया है और उससे काफी कुछ सीखा है। आपने क्या सीखा? क्या तुम लोग मुझे आश्वासन दे सकते हो कि अपनी गलती फिर कभी नहीं दुहराओगे? भूल तो फिर भी हो सकती है, लेकिन यदि भूलसे बचनेका रास्ता तुम लोग न निकालो तो यह उपवास तुम्हारे लिये तो व्यर्थ ही हो जायेगा। सच्चाई हर बातकी कुंजी है। किसी भी परिस्थितिमें झूठ कभी मत बोलो। कुछ भी गुप्त मत रखो। अपने शिक्षकों और गुरुजनोंपर पूरी तरह विश्वास रखो और खुले मनसे हर बात उन्हें बताओ। किसीके प्रति द्वेषभाव न रखो, किसीकी

पीठ पीछे निन्दा मत करो और सबसे मुख्य बात है कि अपने आपके प्रति सच्चे रहो ताकि किसी अन्यके प्रति तुम झूठे न बनो। जीवनकी छोटी-छोटी बातोंमें भी सच्चाईका बर्ताव ही शुद्ध सात्विक जीवनका रहस्य है।

तुम लोगोंने यह तो देखा ही होगा कि ऐसे अवसरोंपर मैं, 'वैष्णवजन तो तेने कहिये,' इस पदसे प्रेरणा पाता हूँ। यदि मैं 'भगवद्गीता' भूल भी जाऊँ तो यह पद मुझे बल देने भरको काफी है। सच तो यह है कि इससे भी एक और आसान चीज है; लेकिन शायद तुम उसे आसानीसे न समझ सको; परन्तु उसने मुझे अपनी जीवन-यात्रामें निरन्तर ध्रुव तारेकी तरह दिशा-दर्शन किया है। वह चीज है मेरा दृढ़ विश्वास कि सत्य ही परमेश्वर है और असत्य ईश्वरकी अवहेलना है।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १०-१२-१९२५

२४. वक्तव्य : समाचारपत्रोंको

१ दिसम्बर, १९२५

महात्माजी यद्यपि कमजोर थे, उन्होंने उपवासके कारणोंके सम्बन्धमें निम्नलिखित वक्तव्य दिया :

'यंग इंडिया' के पृष्ठोंमें मैंने इस विषयपर विस्तारसे पूरी-पूरी बातें कही हैं।[1] इसलिए मैं यहाँ उनकी चर्चा करना ठीक नहीं समझता। मुझे केवल इतना ही कहना है कि उपवासके कारण सर्वथा व्यक्तिगत और निजी थे, तथा वह आश्रमकी शुद्धिके लिए किया गया था। मैं पूरे सप्ताह पूर्ण स्वस्थ और काफी सशक्त रहा। किसी भी प्रकारकी किसी चिन्ताका जरा-भी कारण कभी उपस्थित नहीं हुआ। उपवास तोड़नेके बाद मैं बिलकुल ठीक-ठाक अनुभव कर रहा हूँ। उपवास समाप्त करनेके बाद आम तौरपर उसके जो असर हुआ करते हैं, उनमें से कोई अभीतक दिखाई नहीं देता।

जो वजन और शक्ति कम हुई है, उसे मैं शीघ्र फिर पा लेनेकी उम्मीद करता हूँ। मैं यह भी आशा करता हूँ कि लोग मेहरबान बने रहकर इस उपवाससे पहले जो कार्यक्रम मैंने बनाया था उसे पूरा करनेका अतिरिक्त भार मुझपर नहीं डालेंगे। मैं समझता हूँ कि सुविधापूर्ण यात्रा और थोड़ी-बहुत बातचीतसे मुझे अधिक थकान नहीं आयेगी। मित्रोंको मेरे स्वास्थ्यकी चिन्ता करनेकी जरूरत नहीं है। मेरे उपवाससे उनको जो दुःख हुआ उसके लिए मुझे खेद है। मेरा जीवन ही ऐसा है। यदि मैं उनका यह दुःख बचा सकता तो निश्चय ही वैसा करता; लेकिन मुझे दूसरा रास्ता ही दिखाई नहीं दिया।

१. देखिए "मेरा यह उपवास", ३०-११-१९२५।

वक्तव्यके दिये जा चुकनेके बाद महात्माजीसे पूछा गया कि क्या "जैसा कि तय हुआ था, आप धोलका जायेंगे?" उन्होंने जवाब दिया:

निश्चय ही जाऊँगा। मैं उसे मुल्तवी नहीं कर सकता।

[अंग्रेजीसे]

हिन्दू, १-१२-१९२५

२५. तार: जमनालाल बजाजको

साबरमती
१ दिसम्बर, १९२५

जमनालाल बजाज
वर्धा

उपवास छोड़ा। हालत बहुत ठीक। चिन्ताका कारण जरा भी नहीं।

बापू

[अंग्रेजीसे]

पाँचवें पुत्रको बापूके आशीर्वाद

२६. तार: जवाहरलाल नेहरूको

अहमदाबाद
१ दिसम्बर, १९२५

जवाहरलाल नेहरू
आनन्द भवन
इलाहाबाद

उपवास तोड़ा। हालत बिलकुल ठीक। कमला बराबर प्रगति कर रही होगी। सरूप यहाँ है।

गांधी

[अंग्रेजीसे]

ए बंच ऑफ ओल्ड लेटर्स

२७. टिप्पणियाँ

कातनेवालोंकी कठिनाइयाँ

एक कातनेवाले सज्जनने पूछा है, 'अखिल भारतीय चरखा सघके नियमोंके अनुसार उसके सदस्योंसे किस बातकी आशा की जाती है ?' उनका कर्त्तव्य हाथ-कताई और खादीका प्रचार करना होगा। मेरे जैसा लोभी अध्यक्ष संघके सदस्यसे यह भी आशा रखेगा कि वह लोगोंमे जाकर उनसे खादी पहननेके लिए, नियमित रूपसे कातने तथा चरखा संघके सदस्य बननेके लिए कहे। मै उससे यह भी कहूँगा कि सदस्य लोगोंमें फेरी लगाकर खादी बेचे, लोगोंको कातना सिखाये और मित्रोंसे संघके लिए दानके रूपमे धन माँगे। लेकिन आशा रखना एक बात है और आशाको पूरा करवा लेना दूसरी। इसलिए जब कोई शख्स संघका सदस्य बनता है और सदा निष्ठापूर्वक और परिश्रमके साथ कातता है और जहाँ कहीं कपड़ेकी आवश्यकता होती है वहाँ खादीका ही इस्तेमाल करता है तो यही कहा जायेगा कि कमसे-कम जितनी बातें उसे करनी चाहिए उतनी उसने कर ली है। अधिकांश सदस्य निस्सन्देह इन दो छोरोंके कहीं-न-कहीं मध्यमें रहेंगे।

दूसरे एक महाशय पूछते हैं, 'यद्यपि मेरी आदत खादी पहननेकी है, फिर भी कुछ मौकोंपर मैं विदेशी कपड़े भी पहन लेता हूँ। कातता तो नियमित रूपसे हूँ; ऐसी अवस्थामें क्या मैं अखिल भारतीय चरखा संघका सदस्य बन सकता हूँ ?' मेरी समझमे ऐसे लोग चरखा संघके सदस्य नहीं बन सकते। आदतन खादी पहननेका अर्थ ही यही है कि असाधारण परिस्थिति और अनिवार्य कारणोंके सिवा दूसरे कपड़े कदापि न पहने जायें। संघके संस्थापक अपने सदस्योंकी संख्या बढ़ानेके लिए बहुत उत्सुक हैं; लेकिन वे उससे भी अधिक इच्छुक हैं उसके नियमोंका पूर्ण रूपसे पालन करनेवाले व्यक्तियोंको सदस्य बनानेके लिए। संघको उपयोगी बनानेके खयालसे यह आवश्यक है कि उसके सदस्य और कार्यकर्त्ता खादीमे अटल विश्वास रखनेवाले व्यक्ति हों। हमें इसके प्रति करोड़ों लोगोंमें श्रद्धा उत्पन्न करनी है। यदि हम इसमे पूरे दिलके साथ नहीं लगते तो हमें सफलता नहीं मिल सकेगी। जो लोग आदतन खादी नहीं पहन सकते वे अपना हाथ-कता सूत, रुपये, रुई इत्यादि भेज सकते हैं। वे और भी कई प्रकारसे इस आन्दोलनकी सहायता कर सकते हैं।

नकली खादी

एक महाशयने नागपुरसे किसी कपड़ेके थानपर का लेबिल निकाल कर भेजा है। वे लिखते हैं कि भोले-भाले लोगोंको यह कपड़ा शुद्ध खादीके नामसे दिया जाता है और लोग उसे बहुधा अच्छी खादी मानकर खरीद भी लेते हैं। इस लेबिलपर मेरे चेहरे-से कुछ-कुछ मिलती-जुलती एक बहुत भोंडी तस्वीर और चरखेका चित्र बने हुए हैं इन्हें देखकर कपड़ेके खादी होनेमें लोगोंका विश्वास और भी दृढ़ हो जाता होगा। ऐसी

हरकतें न निर्दोष कही जा सकती हैं और न देशभक्तिमय। इससे मिलोंके खिलाफ व्यर्थ ही दुर्भाव उत्पन्न होता है। क्या मिल मालिक मण्डल इस प्रकारकी हरकतोंके सम्बन्धमें जिसका कि मुझे कई बार जिक्र करना पड़ा है कोई इन्तजाम न करेगा?

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ३-१२-१९२५

२८. गोरक्षापर निबन्ध

गोरक्षापर निबन्ध माँगे गये थे और उनमें से सर्वोत्तम निबन्धके लेखकको पुरस्कार देनेकी घोषणा की गई थी। कुछ निबन्ध आ भी गये हैं। उनमें से अधिकांश बड़ी लापरवाहीसे लिखे गये हैं। कुछ तो कागजके दोनों तरफ लिखे हुए हैं। कुछ ऐसे हैं कि पढ़े ही नहीं जा सकते। भविष्यमें जो इस स्पर्धामें भाग लेना चाहें उनसे प्रार्थना की जाती है कि वे अपना निबन्ध

(१) कागजके एक ही ओर लिखें।

(२) स्याहीसे आसानीसे पढ़े जा सकने योग्य बड़े हरफोंमें लिखें।

(३) मजबूत कागजपर लिखें, पन्नोंकी जिल्द बांध दें तथा अपना पूरा नाम और पता भी लिखें।

इसमें भाग लेनेवालोंको इस बातसे भी आगाह किया जाता है कि अस्वीकृत किये गये निबन्ध वापस नहीं लौटाये जायेंगे। इसलिए उन्हें अपना निबन्ध भेजनेके पहले उसकी प्रतिलिपि अपने पास रख लेनी चाहिए।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ३-१२-१९२५

२९. तार: जमनालाल बजाजको

अहमदाबाद
४ दिसम्बर, १९२५

जमनालाल बजाज
वर्धा

पूरा आराम वर्धामें ही सम्भव।

बापू

[अंग्रेजीसे]

पाँचवें पुत्रको बापूके आशीर्वाद

३०. पत्र : मीरा बहनको

४ दिसम्बर, १९२५

प्रिय मीरा,[1]

तुम्हारी स्नेहपूर्ण भेंट मिली। शंकरलाल बैंकरने मुझे इसका अन्दाज दे रखा था। उन्होंने मुझसे यह कहा था कि तुम मुझे चकित करने जा रही हो। मैं समझ गया था। हिन्दी और उर्दू दोनोंकी लिखावट अच्छी है; मेरी लिखावटसे तो निश्चय ही बेहतर। यही होना भी चाहिए। जिस विरासतका अपने बारेमें तुमने दावा किया है, उसे लापरवाहीसे खर्च करके जाया मत कर देना, बल्कि हजार गुना बढ़ाना।

तुम्हारी याद बराबर बनी रहती है। तीन दिन न मिलनेकी यह बात अनुशासनकी दृष्टिसे अच्छी रही। तुमने उसका बहुत ठीक उपयोग किया है।

देवदासने कहा है कि तुम्हारी आवाज अब फिर पहले जैसी हो गई है।

तुम मुझे कल अपने गरम कपड़ोंके बारेमें बताना।

ईश्वर तुम्हारा मंगल करे और अकल्याणसे बचाये।

सस्नेह,

बापू

अंग्रेजी पत्र (सी० डब्ल्यू० ५१८३) से।
सौजन्य : मीरा बहन

३१. पत्र : घनश्यामदास बिड़लाको[2]

शुक्रवार [४ दिसम्बर, १९२५][3]

भाई श्री ५ घनश्यामदासजी,

आपके पत्रका उत्तर मैंने जमनालालजीके मार्फत भेजा था वह मीला होगा। आपका लंबा पत्र जब मुझे मीला था तब मैंने उसका सविस्तारसे उत्तर भेज दीया था और उसकी निजकी रजिस्ट्री भी है। वह उत्तर सोलनमें भेजा गया था। कैसे गुम हो गया मैं नहिं समझ सकता हुं।

१. गांधीजीने मिस स्लेडके साबरमती आश्रममें पहुँचनेके थोड़े दिन बाद उनका यह भारतीय नाम रख दिया था।

२. यही पत्र **गांधीजीकी छत्रछायामें,** ७-८-१९२५ के अन्तर्गत प्रकाशित होनेके कारण खण्ड २८ (देखिए पृष्ठ ४७) में भी सम्मलित हो चुका है। वैसे इसकी सही तिथि ४ दिसम्बर, १९२५ ही है।

३. उपवासके उल्लेखसे।

उसमें मैंने जो लीखा था उसकी तपसील यहां देता हुं।

आपने एक लाखका दान अ० देशबंधु स्मारकमें कीया उसकी स्तुति की और उसको यथाशक्ति शीघ्रतासे देनेकी चेष्टा करनेकी प्रार्थना की।

पू० मालवीजी और पू० लालाजीको मैं साथ नहिं दे सकता हुं उसका कारण बताया और मेरे उनके लीये पूज्य भावकी प्रतिज्ञा की।

पं० मोतीलालजी और स्वराजदलको सहाय देता हुं क्योंकी उनके आदर्श कुछ न कुछ तो मेरेसे मिलते हैं। उसमें व्यक्तिगत सहायकी बात नहिं है।

और बातें तो बहोत सी लीखी थी परंतु इस समय वे सब मुझे याद भी नहिं हैं।

आप दोनोंका स्वास्थ्य अच्छा होगा।

मेरे उपवासकी कथा आपने सुन ली होगी। मेरे इस खत लिखनेसे हि आप समझ सकते हैं कि मेरी शक्ति बढ़ रही है। उमीद है कि थोड़े दीनोंमें मैं थोड़ा शारीरिक श्रम उठा सकुंगा।

मैं ता० १० को वर्धा पहोंचुंगा। वहां कुछ दस दिन रहनेका मीलेगा।

आपका,

मोहनदास गांधी

मूल पत्र (सी० डब्ल्यू० ६११४) से।
सौजन्य: घनश्यामदास बिड़ला

३२. भाषण: गुजरात विद्यापीठके दीक्षान्त समारोहमें[1]

५ दिसम्बर, १९२५

जिन विद्यार्थियोंको आज उपाधियाँ और पुरस्कार मिले हैं उन्हें मैं बधाई देता हूँ। मैं उनके दीर्घायु होनेकी कामना करता हूँ। ईश्वर करे उनकी उपाधि और उनका ज्ञान उन्हें और उनके देशको गौरवान्वित करे। हमें अपने आसपास फैले हुए निराशाके अन्धकारमें अपना मार्ग भूल नहीं जाना चाहिए। हमें आशाकी किरण बाहरके वायु-मण्डलमें नहीं, बल्कि अपने हृदयके अन्दर ही ढूँढ़नी चाहिए। जिस विद्यार्थीमें श्रद्धा है, जो भयसे मुक्त हो गया है, जो अपने काममें जुटा है और जो अपने कर्त्तव्यके पालनको ही अधिकार मानता है, आसपासकी निराशाजनक स्थितिको देखकर वह हिम्मत नहीं हारेगा। वह यह समझेगा कि अन्धकार क्षणिक है और प्रकाश निकट ही है। असहयोग असफल नहीं हुआ है। जबसे सृष्टिकी उत्पत्ति हुई है तभीसे सहयोग और असहयोग चले आ रहे हैं। सत् और असत्, शान्ति और अशान्ति, जीवन और मरण आदि द्वन्द्व तो हैं ही। यदि हमें सत्यके साथ सहयोग करना है तो असत्यके

१. महादेव देसाईके विवरणसे उद्धृत।

साथ असहयोग भी करना चाहिए। यदि मातृभूमिके प्रति निष्ठावान् रहना प्रशंसनीय है तो उसके प्रति अप्रीति रखना अवश्य ही घृणित है। यदि हमें स्वतन्त्रताके साथ सहयोग करना है तो हमें गुलामीके साथ असहयोग करना ही होगा। इसलिए राष्ट्रीय शालाएँ चाहे एक हो या अनेक, चाहे उनमें पर्याप्त विद्यार्थी हों या एक-दो ही, भविष्यके इतिहासकारोंको स्वतन्त्रता प्राप्त करनेके साधनोंमें राष्ट्रीय शालाओंको महत्त्वका स्थान देना ही होगा। हमारा साहस नया है। आलोचकोंको उसमें दोष दिखानेके लिए बहुत-कुछ मिलेगा। इन शालाओंके कुछ दोष तो हम खुद भी देख पाते हैं। हमें उनके निवारणके प्रयत्न करते रहने चाहिए। मैं जानता हूँ कि हमारे प्रशासनमें बहुत-सी बातोंकी कमी है। हमारे व्यवस्थापक और आचार्यगण अपूर्ण हैं। हम लोग इन बातोंपर बराबर ध्यान दे रहे हैं और दोषोंको दूर करनेमें कोई बात उठा न रखेंगे।

विद्यार्थियो! धीरज रखो और विश्वास रखो कि तुम लोग स्वराज्यकी सेनाके सिपाही हो। जो ऐसे सिपाहीके योग्य न हो ऐसा कुछ भी न करो, न कहो और न विचारो। ईश्वर तुम्हारा कल्याण करे।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १०-१२-१९२५

३३. सन्देश : स्नेह सम्मेलन, अहमदाबादको[1]

५ दिसम्बर, १९२६

स्नेह सम्मेलन विद्यार्थी जीवनका एक अंग है। उसके सदुपयोग बहुत हैं। किन्तु उसके कुछ दुरुपयोग भी मेरे देखनेमें आये हैं। फिर भी मैं उसका एक उपयोग यहाँ बताना चाहता हूँ। विद्यार्थियोंका पारस्परिक सम्बन्धोंको विकसित करना जितना वांछनीय है, उतना ही भारतके गरीबोंके प्रति अपना स्नेह-सम्बन्ध बढ़ाना भी आवश्यक है। सूतका धागा ही यह स्नेह-बन्धन है, मैं यह बात विद्यार्थियोंको कैसे समझाऊँ? इस धागेमें कुछ-न-कुछ अलौकिक शक्ति होगी तभी तो ईश्वरको "सूत्रधार" का विशेषण दिया गया है। यदि हम इस महान् "सूत्रधार" की सेवाके लिए छोटे-मोटे सूत्रधार बन जायें तो कितना अच्छा हो।

[गुजरातीसे]

साबरमती, खण्ड ४, अंक ४ (शिशिर १९१२)।

१. गुजरात महाविद्यालयके पांचवें स्नेह सम्मेलनके अवसरपर यह सन्देश मृदुला बहनने गांधीजीकी उपस्थितिमें उनके अस्वस्थ होनेके कारण पढ़ा था।

३४. पत्र : वसुमती पण्डितको

रविवार [६ दिसम्बर, १९२५][1]

चि० वसुमती,

यह पत्र मैं धोलकासे लिख रहा हूँ। इससे तुम्हें मेरी तबीयतका कुछ अन्दाज हो जायेगा। मेरा वजन ९ पौंड घट गया था; उसमें से ५ पौंड पिछले पाँच दिनोंमें वापस मिल गया है। अब थोड़ा चलता भी हूँ। इसलिए तुम मेरी चिन्ता बिलकुल न करना। मैं कल सबेरे यहाँसे अहमदाबाद जाऊँगा और वहाँसे उसी दिन बम्बई। वहाँसे ९ तारीखको वर्धा जाना है। वर्धामें ११ दिन रहूँगा और उसके बाद कानपुर जाऊँगा। आशा है तुम बहन-भाइयोंकी तबीयत अच्छी होगी।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती पत्र (सी० डब्ल्यू० ६१७) से।
सौजन्य : वसुमती पण्डित

३५. सन्देश : धोलकाकी सार्वजनिक सभाको[2]

६ दिसम्बर, १९२५

ईश्वरका बहुत धन्यवाद है कि शारीरिक रूपसे असमर्थ होनेके बावजूद उसने मुझे आप लोगोंसे आकर मिलनेके अपने वचनको निभानेका बल दिया। मैंने सुना है कि यहाँ बहुतसे ताल्लुकेदार हैं। मैं आशा करता हूँ कि वे अपने आसामियोंसे अच्छे मीठे सम्बन्ध स्थापित करेंगे और उन्हें कायम रखेंगे और वे सम्बन्ध आज जितने सौहार्दपूर्ण हैं आगे उससे भी अधिक अच्छे बनेंगे। मैं किस तरह आपको विश्वास दिलाऊँ कि कातना और सिर्फ खद्दरका प्रयोग करना ही स्वराज्य प्राप्तिका सबसे छोटा रास्ता है। आपके एक गज खद्दरके प्रयोगका अर्थ है आपके गरीब देशभाइयोंकी जेबमें चार-पाँच आना पहुँचना। कितना अच्छा होता कि मैं आपको यह भी समझा सकता कि किसी मानवको 'अस्पृश्य' मानना अपनी और अपने धर्मकी बेइज्जती करना है। हममें जो बुरी वासनाएँ हैं, वे ही अस्पृश्य हैं; हमें उनसे छुटकारा पाना चाहिए। अपने आपको शुद्ध बनाइये और यदि आप समझते हैं कि कातकर अपनी आय बढ़ानेकी जरूरत नहीं है तो त्यागके रूपमें प्रतिदिन आधा घंटा कातिए। ईश्वरके नामपर अपने देशके गरीबोंकी खातिर कातिए। . . .

१. ६ दिसम्बर १९२५ को गांधीजी धोलकामें थे।
२. महादेव देसाईके विवरणसे उद्धृत। गांधीजी इस सभामें उपस्थित थे।

मैं अपना सन्देश दे चुका हूँ। मैं आपको अन्य कोई नया और ताजा सन्देश नहीं दे सकता। उसी सन्देशपर आप अमल करें और मुझे उसके परिणाम सूचित करें. . .

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १७-१२-१९२५

३६. पत्र : मणिबहन पटेलको

सोमवार [७ दिसम्बर, १९२५][1]

चि० मणि,

तुम्हारे पत्र मिलते रहते हैं। तुम्हारा सारा कार्यक्रम मालूम हो गया है। तुम्हें वहाँ सेवासदन [पूना] में सब-कुछ नया लगेगा, यह तो मैं जानता ही था। फिर भी वहाँका अनुशासन, कार्यपद्धति, उत्साहमय वातावरण और प्रामाणिकता वगैरा आकर्षित करनेवाली बातें हैं। फिर, इसके बराबर जीवन्त संस्था शायद ही अन्य कोई हो। हमें उसकी जो पद्धति आदि अच्छी लगे वह अपने कार्यक्रममें दाखिल करनी है। हमे गुणग्राही बनना चाहिए। जितना पसन्द हो उतना ले लें। हमसे भिन्न विचार रखनेवाले समाजमें भी सहिष्णुतापूर्वक रहना तो हमे आना ही चाहिए न?

आशा है, तुम्हारी तबीयत अच्छी रहती होगी। तुम मेरी चिन्ता न करना। मुझमें शक्ति आती जा रही है। आज बम्बई जा रहा हूँ। बम्बई एक दिन रहकर वहाँसे वर्धा जाऊँगा। वर्धा नियमित रूपसे पत्र देना। वहाँके अपने अनुभवोंकी डायरी रखो तो अच्छा हो।

डाह्याभाई अभी तो विट्ठलभाईके आग्रहसे उनके पास जायेगा। वह वहाँ दो चार दिनमें चला जायेगा। फिर उनके साथ कांग्रेसमें जायेगा।

जबतक अच्छा लगे तबतक तुम्हारा तो वहीं रहना ठीक है। मनमें जो विचार उठें सब मुझे लिखती रहना।

बापूके आशीर्वाद

[गुजरातीसे]

बापुना पत्रो – ४ : मणिबहेन पटेलने

१. साधन-सूत्रके अनुसार।

३७. पत्र : वसुमती पण्डितको

[७ दिसम्बर, १९२५][1]

चि० वसुमती,

धोलकासे आनेपर तुम्हारा पत्र मिला। गलेका लटकन डाह्यालालकी मार्फत बेचा जा सकता है। लेकिन रेवाशंकरभाई सीधा डाह्यालालसे सम्पर्क करें और डाह्यालाल उनकी सलाहसे उसे बेचकर पैसा उनके पास जमा करवा दे।

इस समय मुझे जल्दी है; इसलिए अन्य कुछ नहीं लिखता।

रामदासको होशियार हो जाना चाहिए।

बापूके आशीर्वाद

[पुनश्च :]

शान्तिसे कहना कि मुझे उसका पत्र पाकर बहुत खुशी हुई है। और भी लिखे।

गुजराती पत्र (सी० डब्ल्यू० ६०१) से।

सौजन्य : वसुमती पण्डित

३८. भाषण : गुजराती राष्ट्रीय शाला, बम्बईमें

८ दिसम्बर, १९२५

ईश्वरने मुझे इस अवसरपर उपस्थित होनेकी जो शक्ति प्रदान की है इसके लिए मैं उसका अनुग्रह मानता हूँ। जो थोड़ी-सी राष्ट्रीय शालाएँ बच रही हैं यह शाला उनमें से एक है। इसमें शिक्षक त्यागवृत्तिसे काम कर रहे हैं, इसके लिए मैं उन्हें बधाई देता हूँ। मैंने अभी-अभी सुना है कि शिक्षकोंने अपने वेतन स्वेच्छासे पन्द्रह प्रतिशत कम कर दिये हैं। प्रधानाध्यापक तो वेतन लेते ही नहीं, यह सब सन्तोषप्रद और अति उत्तम है। मुझे उम्मीद है कि लोग इस शालाके कार्यमें दिलचस्पी लेंगे और उसे प्रोत्साहन देंगे।

बालको यह बात समझ लो कि तुम इस स्कूलमें देशसेवाका शिक्षण लेने आते हो; इससे तुम जो-कुछ यहाँ सीखोगे, उसका अधिकांश भाग तुम्हें देशको अर्पण करना है। चरखा शिक्षाका सार है। तुम सूत कातनेवाले बच्चे देशके अर्थ, देशके गरीबोंके अर्थ सूत कातते हो और इस तरह बचपनसे ही परमार्थका पदार्थपाठ सीखते हो। चरखेको तुम कभी न छोड़ना।

१. गांधीजी धोलकासे ७ दिसम्बर, १९२५ को अहमदाबाद लौटे थे।

मुझे एक विषयपर टीका करनेकी इच्छा होती है। ऐसी शालामें नाट्यप्रयोग तो किये जा सकते हैं, लेकिन उनमें पोशाक खादीकी होनी चाहिए। जरीकी सजावटी पोशाककी तनिक भी आवश्यकता नहीं है। तिलक राष्ट्रीय विद्यालयमें सब पात्रोंकी पोशाक खादीकी थी। यहाँ भी शिक्षक वैसा ही कर सकते थे। हम जिस राष्ट्रीय प्रवृत्तिमें रत हैं उसका विश्वास खादीपर है, अतः हमें ऐसे प्रसंगोंपर भी खादीका त्याग नहीं करना चाहिए। कला पोशाकमें नहीं; वरन् पात्रोंकी भाव प्रदर्शनकी शक्तिमें निहित है। लोग उनके अभिनयमें ऐसे लीन हो जाते हैं कि पोशाककी ओर कदाचित् ही देखते हैं। मुझे उम्मीद है कि आप भविष्यमें ऐसे अवसरोंपर शुद्ध खादीका ही उपयोग करेंगे। ऐसी छोटी-छोटी बातोंपर आग्रह रखनेसे ही हम बड़ी-बड़ी बातोंपर आग्रह रखना सीखेंगे। मेरी कामना है कि सब बालक दीर्घायु हों और देशके सच्चे सेवक बनें। मैं इस शालाकी उन्नति चाहता हूँ।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, १३-१२-१९२५

३९. पत्र : देवदास गांधीको

वर्धा जाते हुए
बुधवार [९ सितम्बर, १९२५][1]

चि० देवदास,

तुम्हारी सेहतको देखकर मुझे चिन्ता होती है। इसके कारण महादेवके न आनेकी बात भी मैं समझता हूँ। तुम्हारे वहाँ रहते हुए 'नवजीवन' के लिए महादेवके रुकनेकी जरूरत क्यों होनी चाहिए? मैं यह अनुभव करता हूँ कि तुम अपने शरीरकी अच्छी तरहसे देखभाल नहीं करते और अव्यवस्थित रहते हो, क्या मैं इस ओरसे निश्चिन्त नहीं किया जा सकता? तुम्हारा कुछ दिनों विश्राम कर लेना अच्छा रहेगा। अवन्तिकाबाई तुम्हें पत्र लिखेगी। तुम उसके साथ रहो अथवा जैसा ठीक लगे वैसा करो। मुझे पत्र लिखते रहना। मैंने स्वामीसे बात तो की है।

मैं मथुरादासके साथ बहुत समयतक बैठा। मैं उससे दो बार मिला। कल रात तो तीन घंटे बैठा। मीरा बहन ठीक है। जमना बहन साथ है। लालाजी मिले, कोई खास बात नहीं थी। सर देवप्रसाद अधिकारी भी मिले।

मैं तो ठीक ही हूँ। [अब] सीढ़ियाँ चढ़नेमें भी मुझे कोई तकलीफ नहीं होती। सुन्दरलाल भी मिला।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती पत्र (जी० एन० २०४४) की फोटो-नकलसे।

१. देखिए "पत्र : वसुमती पण्डितको", ६-१२-१९२५।

४०. दक्षिण आफ्रिकाका शिष्टमण्डल

दक्षिण आफ्रिकासे जो शिष्टमण्डल भारत आ रहा है वह १२ ता० को यहाँ पहुँचनेवाला है; उसके सदस्योंकी नामावलि इस प्रकार है: डा० अब्दुर्रहमान, श्री सोराबजी रुस्तमजी, श्री बी० एस० पाथेर, सेठ जी० मिर्जा, सेठ अमोद भायात, श्री गॉडफ्रे, सेठ हाजी इस्माइल, श्री भवानी दयाल।

यह शिष्टमण्डल दक्षिण आफ्रिकाके प्रख्यात व्यक्तियोंका है और इसमे सभी दलों, सभी समाजों और सभी वर्गोंके प्रतिनिधि मौजूद है। वे दक्षिण आफ्रिकामें रहनेवाले प्रवासी भारतवासियोंके जुदा-जुदा वर्गों और हितोंकी तरफसे बोल सकते है। इसके अध्यक्ष डा० अब्दुर्रहमानका जन्म दक्षिण आफ्रिकामे ही हुआ था। मण्डलके कुछ अन्य सदस्य भी वहाँ पैदा हुए थे। डाक्टर महोदय मलाया-डाक्टरके नामसे प्रसिद्ध है, लेकिन उनमे हिन्दुस्तानी खून है। मलायी लोग दक्षिण आफ्रिकी समाजके एक अंग है, वे सभी मुसलमान है। मलायी स्त्रियाँ बिना सकोचके हिन्दुस्तानी मुसलमानोंके साथ शादी करती है। ये विवाह-सम्बन्ध सुखी सिद्ध हुए है और उनकी सन्ततिमे से कुछ तो बड़ी उच्च शिक्षा पाये हुए लोग है। डा० अब्दुर्रहमान इसी विशिष्ट श्रेणीमे आते है। उन्होंने स्कॉटलैंडमे चिकित्साशास्त्रका अध्ययन किया था और वे केपटाउनमे सफलतापूर्वक अपना काम कर रहे है। केपकी पुरानी विधानसभाके वे सदस्य थे और वहाँकी नगरपालिकाके एक प्रमुख सदस्य भी रह चुके है। वहाँकी रंगभेद नीतिकी चपेटसे वे भी नहीं बच पाये।

निस्सन्देह इस शिष्टमण्डलका यहाँ हार्दिक स्वागत होगा और उसकी बातें धैर्यसे सुनी जायेंगी। हर्षकी बात है कि प्रवासी भारतवासियोंका प्रश्न किसी एक दलका प्रश्न नहीं है। यह एक ऐसा प्रश्न है कि इसमे हिन्दुस्तानमे बसे हुए अंग्रेजोंकी भी हिन्दुस्तानियोंके प्रति सहानुभूति है। उनका पक्ष है भी बड़ा ही न्यायपूर्ण। इसलिए अब प्रश्न केवल यही है कि भारतवासियोंमें न्याय प्राप्त करनेकी शक्ति है या नहीं। यदि भारत सरकार दृढ़ रहे और उसे साम्राज्यीय सरकारकी मदद मिले तो केन्द्रकी तरफसे डाले गये किसी दबावके सामने संघ सरकारको झुकना ही पड़ेगा। लेकिन इससे दक्षिण आफ्रिका द्वारा साम्राज्यसे अलग हो जानेका भय है। जो जरासे धक्केसे ही टूटकर अलग हो जा सकते हैं, ऐसे साम्राज्यके ऐसे अनिच्छुक हिस्सेदारोंको एक सूत्रमें बाँध रखनेका मूल्य तो केवल साम्राज्यवादी ही समझ सकते है। परस्पर विरोधी शक्तियोंको एकत्र रखनेकी अत्यधिक चिन्ताके कारण ही तो साम्राज्यकी राजनीतिका इतना पतन हो गया है कि केवल आफ्रिकावासियों और एशियावासियोंको चूसना ही उसका ध्येय बन गया है। जहाँतक सम्भव होता है अपनी इस लूटमे साम्राज्यकी नीति अन्य यूरोपीय राज्योंको शामिल नहीं होने देती। प्रवासी भारतवासियोंके प्रश्नके सम्बन्धमें ग्रेटब्रिटेन जो नीति बरतेगा वही उसकी और उसके इरादोंकी खरी कसौटी होगी।

क्या संघ सरकारकी तरफसे दबाव आनेपर भी वह न्याय करनेका साहस करेगी? दक्षिण आफ्रिकाका शिष्टमण्डल उसी प्रश्नका उत्तर पानेके लिए यहाँ आ रहा है।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १०-१२-१९२५

४१. राष्ट्रीय शिक्षा

गुजरात विद्यापीठका वार्षिक दीक्षान्त और पारितोषिक वितरण समारोह सम्पन्न हो गया।[1] उस समय साल-भरका लेखा-जोखा प्रस्तुत किया गया था। उसमे बिना किसी प्रकारके दुराव-छिपावके यह तथ्य रूपमे प्रकट किया गया कि विद्यापीठकी व्यवस्थाके अन्तर्गत काम करनेवाले उससे सम्बद्ध विद्यामन्दिरोंमे पढ़नेवाले लड़कों और लड़कियोंकी संख्या घट गई है। गुजरातकी राष्ट्रीय शालाओंकी व्यवस्था बहुत अच्छी भले न हो, पर उनकी आर्थिक स्थिति तो कदाचित् बहुत अच्छी ही है। इन शालाओंके बारेमे कमसे-कम इतना अवश्य कहा जा सकता है कि उनमे विद्यार्थियोंकी सख्याके ह्रासका कारण धनका अभाव नहीं है।

इसमे सन्देह नहीं कि इस समय राष्ट्रीय शालाएँ लोकप्रिय नहीं है। उनके पास न शानदार बड़ी-बड़ी इमारते है और न बेशकीमती कुर्सी-मेजे आदि अन्य साधन ही। वे बड़ी-बड़ी तनख्वाह पानेवाले प्राध्यापक या शिक्षक रखनेकी शान भी नहीं दिखा सकती है; और वे यह बात भी गर्वके साथ नहीं कह सकतीं कि उनकी कार्यप्राणाली या परम्परा जैसी शुरूमे थी लगातार वैसी ही बनी रही है। वे विद्यार्थियोंके दिलोंमे उज्ज्वल भविष्यकी आशाओंका भरोसा ही पैदा नहीं कर सकतीं।

वे जिस बातका दावा करती है, ज्यादातर लोग उससे किसी प्रकार आकृष्ट नहीं होते। उनका दावा है कि उनके पास आत्मत्यागी देशभक्त शिक्षक है। वे हमेशा गरीबी और तंगीसे कालक्षेप कर रहे है और यह इसलिए कि राष्ट्रके युवक उनसे शिक्षा प्राप्त करके लाभान्वित हों। इन शालाओंमे हाथकताई और उसके साथ सम्वन्ध रखनेवाली सब बातें सिखाई जाती है। वे सेवा करनेकी कला सिखाती है। वे देशी भाषाओंके माध्यमसे शिक्षा देनेका प्रयत्न करती है। वे राष्ट्रीय खेल-कूदका पुनरुद्धार करनेका प्रयास करती हैं और राष्ट्रीय संगीत सिखाती है। वे लड़कोंको गाँवोंमें जाकर सेवा करनेके लिए तैयार करती हैं। और इस उद्देश्यसे हिन्दुस्तानके गरीबोंके प्रति उनमें भ्रातृभाव उत्पन्न करती हैं। लेकिन ये सारे आकर्पण काफी नहीं है; संख्या इसीलिए तो घट रही है।

इन शालाओंके लोकप्रिय न होनेका कारण केवल उनका कथित आकर्षणहीन होना ही नहीं है। जोश, नशे और उम्मीदोंसे भरे उस १९२१ के सालमे बहुत-कुछ कहा गया था। अब जोश-खरोश उतर गया है और उसका स्वभाविक परिणाम उत्साह-हीनताके रूपमें दिखाई दे रहा है। लड़कोंने अब नफा-नुकसान सोचना शुरू

१. देखिए "भाषण: गुजरात विद्यापीठके दीक्षान्त समारोहमें", १०-१२-१९२५।

किया है। वे यह नहीं जानते कि देशभक्ति नफा-नुकसानका हिसाब बैठाना नही है। इसलिए उन्होंने गलत निष्कर्ष निकाले हैं और इसीलिए उन्होंने सरकारी स्कूलों और कालेजोंको अधिक पसन्द किया है। इसमे उनका कुछ भी दोष नहीं है। हमारे आसपास आज जो-कुछ भी है वह व्यापार और नफेकी दृष्टिसे ही देखा जा रहा है। तब लड़के और लड़कियोंसे आसपासके वायुमण्डलसे ऊपर उठ जानेकी आशा रखना एक बहुत बड़ी बात है।

इतना ही नहीं। राष्ट्रीय शालाओंके शिक्षकगण भी त्रुटिसे अछूते नहीं हैं। उनमें से सबके सब आत्मत्यागी नहीं हैं। वे क्षुद्र दलबन्दी या प्रपंचोंकी भावनासे मुक्त नहीं हैं। उनमें से सबके-सब देशभक्त हों, सो भी नहीं है। जैसा ऊपर कहा जा चुका है इसमे उनका कोई दोष नहीं है। हम सब परिस्थितिके दास हैं। हमें अनवरत दबावमें रहकर नौकरोंकी तरह काम करनेकी शिक्षा मिली है; हमारी सूझ-बूझका नाश हो चुका है; और इसलिए हम आत्मत्याग करनेके आह्वानका समुचित उत्तर नही दे पाते; न अपने खुदके या अपने कुटुम्बके हितोंसे देशके हितको ऊँचा मानने और उनके प्रति प्रेम करनेकी आह्वानकी कद्र कर पाते हैं और न बिना पुरस्कारकी आशाके सेवाभाव अपनानेको ही तैयार हैं।

इसलिए यह बहुत आसानीसे समझा जा सकता है कि वर्तमान शिथिलता किस कारण है, लेकिन जिस प्रकार मूल कार्यक्रमके दूसरे विषयोंमे मेरी श्रद्धा अटल है उसी प्रकार राष्ट्रीय शालाओंमे भी मेरी श्रद्धा अटल है। मैं राष्ट्रके वातावरणमें शिथिलताका आ जाना स्वीकार करता हूँ और इस स्थितिको स्वीकार करनेवाले कांग्रेसके प्रस्तावोंका अनुमोदन भी करता हूँ। लेकिन इससे मैं निराश नहीं होता और दूसरोंको भी निराश न होनेके लिए कहता हूँ। इन राष्ट्रीय शालाओंमें छात्रोंकी संख्या घटती जा रही है; फिर भी वे मेरे लिए तो मरुस्थलमे यत्र-तत्र बिखरे हुए हरित उद्यानोंके समान ही ह। जिस प्रकार ये संस्थाएँ आज हमें अवैतनिक या थोड़ा वेतन लेकर चुपचाप काम करनवाले सेवक तैयार करके देती हैं उसी प्रकार भविष्यका राष्ट्र भी इन्हींमें से ही तैयार होगा। आप कहीं भी जायें आपको ऐसे असहयोगी युवक और युवतियाँ मिलेंगे जो मातृभूमिकी सेवामें अपनी तमाम शक्ति लगा रहे हैं और बदलेमें कुछ भी आशा नहीं रखते।

इसलिए मुझे उन आलोचक सज्जनोंकी सलाहपर कोई ध्यान नहीं देना चाहिए जो गुजरात महाविद्यालयको लड़कोंकी संख्या घट जानेके कारण बन्द करनेकी बात सुझाते हैं। यदि लोग उसकी मदद करें, अथवा लोग मदद करें या न करें, लेकिन यदि उसके शिक्षकगण दृढ़ बने रहें तो महाविद्यालयमे जबतक एक भी सच्चा लड़का या लड़की उसके आदर्शके अनुसार अपनी पढ़ाई खतम करना चाहे तबतक तो विद्यालय चलाया ही जाना चाहिए। उस संस्थाके चलानेकी शर्त अनुकूल परिस्थितियोंका रहना नहीं था। जो बात राष्ट्रीय सेवकोंके बारेमें है वही राष्ट्रीय संस्थाओंके बारेमें भी है। वायुमण्डल अनुकूल हो या प्रतिकूल, कार्यक्रमको चलाना ही चाहिए।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १०-१२-१९२५

४२. टिप्पणियाँ

उपवासकी समाप्ति

उन मित्रोंको जो मेरे स्वास्थ्यके लिए बड़े चिन्तातुर रहते हैं यह जानकर खुशी होगी कि यद्यपि सात दिनोंके उपवासमें मेरा वजन ९ पौंड घट गया था, तो भी उपवास खतम होनेके बाद सात दिनोंमें मैंने उसमें से ६ पौंड वजन तो फिर प्राप्त कर लिया है। अब मैं थोड़ा व्यायाम भी कर लेता हूँ और अपना रोजका काम भी काफी कर डालता हूँ। इसके प्रकाशित होनेतक मैं वर्धा पहुँच चुकूँगा। वहाँ कांग्रेसके अधिवेशनतक यथासम्भव आराम करनेका विचार है। इसलिए मध्य प्रान्तवालोंसे तथा अन्य मित्रोंसे मेरी प्रार्थना है कि वे यह न समझें कि मैं वर्धामें काम करने आया हूँ। 'साप्ताहिकों'का सम्पादन करनेमें और रोजका पत्र-व्यवहार करनेमें ही मेरी सारी शक्ति लग जायेगी। मेरा जितना वजन घटा है, मैं कानपुर पहुँचनेके पहले ही उसे पूरा कर लेनेकी आशा करता हूँ।

पत्र-प्रेषकोंको

मुझे खेदके साथ अपने पत्र-प्रेषक सज्जनोंसे कहना पड़ता है कि उपवासके कारण मेरे पास आये हुए पत्रोंका अभीतक जो ढेर लगा था मैं उसे निबटा नहीं पाया हूँ। यद्यपि मेरे सहायकोंने उसमें से बहुतेरे पत्रोंका उत्तर दे दिया है, फिर भी मेरे सामने ऐसे बहुत-से पत्र बच रहे हैं जिनका उत्तर मुझे ही देना है। पत्र लिखनेवाले सज्जन मुझे इस विलम्बके कारण क्षमा करेंगे। मैं इस कार्यको यथाशीघ्र निबटा डालनेकी आशा करता हूँ।

चमड़ेका व्यापार

हिन्दुस्तानके उत्पादन क्षेत्रमें चमड़ेके उद्योगका उसके महत्वके हिसाबसे पाँचवाँ नम्बर आता है। बाहर विदेशोंमें प्रति वर्ष जो चमड़ा भेजा जाता है उसकी कीमत साधारण तौरपर आँकी जाये तो सालमें ११७० लाख रुपये होती है। उसमें से सालाना ८४४ लाख रुपयेसे भी अधिक मूल्यका चमड़ा तो कलकत्तेसे ही भेजा जाता है। यह व्यापार लड़ाईसे पहले मुख्यतः जर्मनोंके हाथमें था और अब भी उन्हींके हाथमें है। इसलिए यदि चमड़ेके कारखाने राष्ट्रीय दृष्टिसे चलाये जाये तो चमड़ेके लिए जिन हजारों जानवरोंका वध किया जा रहा है उनकी प्राणरक्षा होगी। इतना ही नहीं, चमड़ा देशमें ही रह जानेसे देशके बाहुनर कारीगरोंकी शक्तिका उपयोग भी होगा और धन भी अधिक प्राप्त होगा।

अखिल भारतीय देशबन्धु स्मारक

इस कोषका ब्यौरा अब इस प्रकार है:[1]

१. यहाँ नहीं दिया जा रहा है। पहली ८२,६९३ रु० ६ आने ६ पाईकी रकम और इस ब्यौरेकी रकम कुल मिलाकर ९१,४३२ रु० ७ आने ३ पाई थी।

प्रगति यद्यपि धीरे-धीरे हो रही है लेकिन दृढ़तापूर्वक हो रही है। सूचीसे मालूम होता है कि दानके कारणको समझकर नहीं, बल्कि किसी-न-किसी व्यक्तिके प्रभावमें आकर दान देनेकी आदत अब भी वैसी ही चली आ रही है। मैं भविष्यमें सदस्य बननेवालोंसे जोर देकर कहना चाहता हूँ कि वे सही पद्धतिको ही अपनायें, विपरीत पद्धतिको नहीं।

शुद्ध खादी

चन्द्रनगरका प्रवर्तक संघ एक बड़ी संस्था है। अबतक उसमें मिली-जुली खादी तैयार होती थी और उसीको वे बेचते थे। मेरी चेतगजकी यात्राके अवसरपर संघके अधिष्ठाता श्री मोतीलाल रायने अपने कारखानेको शुद्ध खादीके कारखानेके रूपमें बदल लिया है। अब वे लिखते हैं:

> **हमने चन्द्रनगरके मृणालिनी वस्त्र-कार्यालयको और कलकत्ता प्रवर्तक भण्डारको ता० ३० अक्तूबरसे शुद्ध खादीके केन्द्रोंमें परिणत कर दिया है। इस महत्वपूर्ण परिवर्तनकी सूचना आपको उसी दिन दे दी गई थी।**
>
> **अब सारी संस्था शुद्ध खादीका ही काम करेगी; लेकिन आप यह तो जानते ही हैं कि यह साहस करके हमने अपने सिरपर कितनी बड़ी जोखिम उठाई है।**

मुझे खेद है कि वे परिवर्तन-सम्बन्धी जिस सूचनाका जिक्र करते हैं वह मुझे नहीं मिली है। मैं मोती बाबूको इस परिवर्तनके लिए बधाई देता हूँ और आशा करता हूँ कि यदि आरम्भमें इस संस्थाको कठिनाइयोंका सामना करना पड़े तो भी वह खादीका कार्य ही करती रहेगी।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १०-१२-१९२५

४३. पत्र : वि० ल० फड़केको

सत्याग्रह आश्रम
वर्धा
[१० दिसम्बर, १९२५][1]

भाई मामा,

मैंने आज वर्धा आते ही तुम्हारा पत्र पढ़ा। आश्रममें तो मुझमें जितनी शक्ति थी वह सब मैंने आश्रम कार्यमें और 'यंग इंडिया' तथा 'नवजीवन'के कार्यमें खर्च की। मैं आज यहाँ आया हूँ और यहाँ आकर सारा समय केवल पत्र-व्यवहारमें

१. साधन-सूत्रमें तारीख १५ दिसम्बर १९२५ दी गई है, पर यहाँ तिथि गांधीजीके वर्धा पहुँचनेके उल्लेखसे निश्चित की गई है।

लगाया है। मेरी तबीयत अच्छी है। यहाँ २१ तारीखतक हूँ। यहाँसे २२ की सुबह रवाना होऊँगा और २३ को कानपुर पहुँचूँगा।

आश्रममें रहनेके सम्बन्धमें तुम जो लिखते हो वह सच ही है। मैं उसके बारेमें अन्तिम निर्णय कानपुरमें करूँगा। मेरी वृत्ति आश्रममें रहनेकी ही है। लेकिन "मुझे हरिजीने कच्चे धागेसे बाँध लिया है और वे मुझे जिस ओर खींचते हैं मैं उस ओर ही खिंचता हूँ।"[1] ऐसी है मेरी स्थिति और हमेशा रहेगी भी ऐसी ही।

गोधराके बारेमें जब मैं आश्रममें आऊँगा, तब विचार करेंगे। तुम अन्त्यज बालक माँगते हो सो मुफ्त शिक्षा देनेके विचारसे ही न? उनका सारा खर्च हम ही उठायेंगे। लक्ष्मीका मामला कठिन है। क्या तुम उसकी देखभाल रखनेका बीड़ा उठाओगे? क्या तुम मुझे एक अन्त्यज बालक देनेके लिए तैयार हो? फिलहाल तुम्हारे पास कितने विद्यार्थी हैं, तुमने यह नहीं लिखा। मैं तुम्हारा प्रचारक तो हूँ ही।

तुमने बालकोंको लेकर प्रदर्शन करनेका जो विचार किया है वह फिर कभी मत करना। उससे तो आश्रमका नाश ही हो जायेगा। आश्रममें रहनेवाले बालकोंके विकासको छोड़कर उन्हें अन्य बालकोंको आकर्षित करनेका साधन बनाना अनुचित होगा। तुम्हारा कार्य बालक जुटाते रहना कदापि नहीं हो सकता। तुम्हें तो एक बालक भी आये तो उसीको पढ़ाना है। तुम स्थानीय अन्त्यजोंसे सम्बन्ध रखो और उनकी यथाशक्ति सेवा करो, यह अलहदा बात है; लेकिन यह कार्य भी शिक्षाका हर्ज करके नहीं किया जाना चाहिए। बहुत पढ़ानेके लोभमें मत पड़ो। शिक्षाको निखारो, परिमाण तो आप ही निखर जायेगा। परिमाणपर ही आग्रह रखोगे तो उससे गुणका विकास तो होगा ही नहीं, परिमाण भी नहीं सधेगा।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती पत्र (जी० एन० ३८१२) की फोटो-नकलसे।

४४. पत्र: फूलचन्द शाहको

सत्याग्रह आश्रम
वर्धा
मार्गशीर्ष बदी १०, [१९]८१ [१० दिसम्बर, १९२५]

भाईश्री ५ फूलचन्द,

मैं वर्धा आज ही पहुँचा हूँ। यहाँ ११ दिन रहूँगा।

छगनलालसे परिषद्‌का ११,००० रुपया जमा करवा देनेके लिए कह दिया है।

१. "काचेरे तांतणे मने हरिजीए बांधी,
जेम ताणे तेम तेमनी रे।"
—मीराबाई।

इसके साथ बलवन्तरायका पत्र भेज रहा हूँ। देवचन्द भाई और तुम इसपर विचार कर लेना तथा उचित व्यवस्था करना। जहाँ-जहाँ चिह्न लगा हुआ है उस मामलेके सम्बन्धमें मैंने उत्तर दे दिया है।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती पत्र (सी० डब्ल्यू० २८२९) से।
सौजन्य: शारदाबहन शाह

४५. पत्र : भगवानजी अ० मेहताको

[१० दिसम्बर, १९२५][1]

भाईश्री भगवानजी,

तुमने पत्र लिखा, यह तो अच्छा किया। लेकिन हमेशाकी तरह तुम्हारे पत्रोंमें धैर्य और विचारका अभाव तो अवश्य ही है। तुम क्या जानो कि अब मैं विवाह करवानेवाला अमलदार ही बन गया हूँ। क्या तुम्हें मालूम है कि आश्रममें कितने विवाह हुए? मैं ब्रह्मचर्यका पालन करानेका प्रयत्न अवश्य करता हूँ; लेकिन इस बारेमें किसीपर जोर तो कैसे डाला जा सकता है? आश्रममें जो दोष नजर आये वे होते तो सभी लड़के-लड़कियोंमें हैं; लेकिन इससे तुम यह तो नहीं चाहते कि मैं १०–१२ वर्षके बच्चोंको विवाह करने दूँ? यह सब कहकर मैं तुम्हें आलोचना करनेसे रोकना नहीं चाहता, बल्कि यह मैं तुम्हारी विचारशक्तिको तीव्र करने तथा तुम्हें तथ्य जाने बिना टीका करनेसे रोकनेके लिए मित्रभावसे लिखता हूँ।

मोहनदास गांधीके वन्देमातरम्

भाई भगवानजी अनूपचन्द वकील
राजकोट
काठियावाड़

गुजराती पत्र (सी० डब्ल्यू० ३०३२) से।
सौजन्य: नारणदास गांधी

१. डाकको मुहरसे।

४६. पत्र : पूँजाभाईको

सत्याग्रह आश्रम
वर्धा
मार्गशीर्ष बदी १० [१० दिसम्बर, १९२५]

भाई पूंजाभाई,[१]

तुम्हारा पत्र मुझे बम्बईमें मिला था; लेकिन पढ़ा उसे मैंने वर्धामें। तुम्हें स्वप्न हो जानेपर बिलकुल दुःखी न होना चाहिए। तुम्हें रातको रामनाम अथवा नवकार मन्त्रका जप करते-करते सोना चाहिए। इससे तुम धीरे-धीरे प्रकृतिस्थ हो जाओगे। साँझको केवल दूध ही लो तो कदाचित् अधिक अनुकूल रहे। जिन भजनोंको गाओ उनपर मनन करो। रसका स्वामी ईश्वर ही तो है; अतः सारे रस उसके ध्यानमें ही ग्रहण करो।

बापूके आशीर्वाद

भाई पूंजाभाई नाना
सत्याग्रह आश्रम, साबरमती
बी० बी० ऐंड सी० आई० रेलवे

गुजराती पत्र (सी० डब्ल्यू० १८५) से।
सौजन्य : नारणदास गांधी

४७. पत्र : नाजुकलाल एन० चौकसीको

सत्याग्रह आश्रम
वर्धा
मार्गशीर्ष बदी १० [१० दिसम्बर, १९२५]

भाई नाजुकलाल,

मुझे महादेवका पत्र मिला है; जिसमें उसने लिखा है कि ४ जनवरी तुम्हारी माताको अनुकूल नहीं पड़ती; इसलिए हम अब तारीख १९ जनवरी ही रखेंगे।[२] हमें बिना कारण उनका मन नहीं दुखाना चाहिए। मैं १९ जनवरीको जैसे बने आश्रममें रहनेकी ही व्यवस्था कर लूँगा।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती पत्र (एस० एन० १२१०६)की फोटो-नकल से।

१. उर्फ विनुभाई शाह।
२. नाजुकलालके विवाहके लिए; विवाह असलमें १८ जनवरी, १९२६ को हुआ।

४८. पत्र : एस्थर मैननको

वर्धा
११, दिसम्बर १९२५

प्रिय एस्थर,

बहुत दिनोंसे तुम्हारे पत्रकी प्रतीक्षा कर रहा था। इसलिए तुम्हारा पत्र पाकर प्रसन्नता हुई। मुझे खुशी है कि तुम अब बेहतर हो।

मेरे उपवासके विषयमें तुमने सब-कुछ सुन लिया होगा? उससे स्वास्थ्यको कोई नुकसान नहीं हुआ। मेरा जो भी वजन दस दिनमें कम हुआ था, लगभग फिर वापस आ गया है, और अब मैं वर्धामें ज० के[1] घर आराम ले रहा हूँ।

मिस स्लेड, जिसे हम मीरा कहते हैं, मेरे साथ है और कांग्रेसमें आ रही है। तुम्हारा पत्र पाकर उसे खुशी हुई। यदि तुम्हें अबतक लिख नहीं चुकी है, तो मैं समझता हूँ कि अब लिखेगी।

मैं नववर्षके दिनतक आश्रम लौटनेकी उम्मीद करता हूँ।

सेवाकार्यके सम्बन्धमें एम० के विचार ऊँचे हैं। ईश्वर करे वे सब कार्यरूपमें परिणत हों।

क्या स्कूल प्रगति कर रहा है? कितने बच्चे — लड़के और लड़कियाँ — तुम्हारे यहाँ हैं? तुम्हारा पाठ्यक्रम क्या है?

सबको स्नेह,

तुम्हारा,
बापू

[पुनश्च :]

मैं २१ तारीखतक यहाँ हूँ।

[अंग्रेजीसे]

माई डियर चाइल्ड

१. सम्भवतः जमनालाल बजाज।

४९. पत्र : डब्ल्यू० एच० पिटको

स्थायी पता : साबरमती[1]
११ दिसम्बर, १९२५

प्रिय श्री पिट,[2]

आपके ३० नवम्बरके पत्रके लिए धन्यवाद। स्थानीय समितिने अभीतक मुझसे पत्र-व्यवहार नहीं किया है, लेकिन आप इतना भरोसा करें कि जहाँतक मेरा सवाल है, मैं आजकी दशामें मन्दिर प्रवेशके लिए सत्याग्रहका तरीका अपनानेसे रोकनेका शक्ति-भर पूरा प्रयत्न करूँगा। मैंने सड़कके इस्तेमाल और मन्दिरोंमें प्रवेशके बीच हमेशा फर्क किया है। मन्दिरोंमें प्रवेशके लिए जनमत तैयार करना है; उसके बाद ही सत्याग्रहका तरीका अपनाया जा सकता है। मैं इसपर 'यंग इंडियाके' पृष्ठोंमें चर्चा[3] करनेकी आशा करता हूँ। श्री राजगोपालाचारी द्वारा आपके विवाहके बारेमें मालूम हुआ। आपके लिए और आपकी सहधर्मिणीके लिए मैं सुखी और दीर्घ जीवनकी कामना करता हूँ।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

अंग्रेजी पत्र (एस० एन० १११०८) की फोटो-नकलसे।

५०. पत्र : घनश्यामदास बिड़लाको

वर्धा
मार्गशीर्ष कृष्ण ११ [११ दिसम्बर, १९२५]

भाई घनश्यामदासजी,

आपका पत्र मुझे मीला है। उसके पहले मैंने उपवासके बाद एक पत्र आपको दिल्लीके शीरनामेसे भेजा मीला होगा। मेरे उपवासका रहस्य आप खूब समझ गये हैं।

मैं कल वर्धा आ गया हुं। यहां मुझको बड़ी शांति मीलती है। आजकल तो हवा भी बहोत हि अच्छी है।

१. यह पत्र वास्तवमें वर्धासे लिखा गया था।
२. वाइकोम सत्याग्रहके दौरान त्रिवेन्द्रमके पुलिस कमिश्नर। देखिए खण्ड २६।
३. देखिए "टिप्पणियाँ", १४-१-१९२६ का उपशीर्षक "वाइकोम सत्याग्रह"।

आपकी धर्मपत्नी शांत चित्त रहती है जानकर मुझको आनन्द होता है। मृत्युकी भेट जब आवे तब हम क्यों खुशीसे न करे?

आपका,
मोहनदास गांधी

श्रीयुत घनश्यामदास बिड़ला
महेश विला
सोलन
शिमला हिल्स

मूल पत्र (सी० डब्ल्यू० ६११५) से।
सौजन्य: घनश्यामदास बिड़ला

५१. पत्र: मणिबहन पटेलको

वर्धा
शुक्रवार, [११][1] दिसम्बर, १९२५

चि० मणि,

तुम्हारा पत्र मिल गया है। वहाँका काम पूरा करनेके बाद बम्बईमें रुकना चाहो तो रुकना। नहीं तो तुरन्त यहाँ आ जाना। ज्यादातर तो यहाँ छुट्टियाँ लम्बी नहीं होती हैं। इसलिए तुम्हें कन्याशालामें तुरन्त काम मिल जायेगा। यह भी निश्चय किया गया है कि जमनालालजी की लड़की कमला और मदालसाको भी तुम्हीं पढ़ाओगी। अभी तो रहनेकी व्यवस्था जानकीबहनके[2] साथ ही रखना। जब आओगी तभीसे तुम्हें ५० रुपये वेतन प्रतिमास मिलना शुरू हो जायगा। इसलिए जब आना हो आ जाना। कांग्रेस अधिवेशनमें जानेकी इच्छा हो तो यहींसे मेरे साथ चलना, अथवा सीधी कानपुर चली आना। मुझे कानपुर २३ को पहुँचना है। तुम्हें यहाँ पहली जनवरीतक पहुँच जाना चाहिए।

मेरा वजन जितना घटा था उसमें से ९ पौंड फिर बढ़ गया है, अब ६ पौंड वजन और बढ़ाना है।

बापूके आशीर्वाद

[गुजरातीसे]
बापुना पत्रो – ४: मणिबहेन पटेलने

१. साधन-सूत्रमें १२ दिसम्बर है; किन्तु शुक्रवार ११ दिसम्बरको था।
२. जमनालाल बजाजकी पत्नी।

५२. पत्र : एक मित्रको

१२ दिसम्बर, १९२५

प्रिय मित्र,

'कवि' के लिए 'सर' का प्रयोग जानबूझ कर किया गया था। उद्देश्य था सही और जैसा चाहिए वैसा शब्दप्रयोग। कविने इस खिताबका परित्याग कभी नहीं किया। उन्होंने तो उससे बरी किये जानेकी माँग की थी और सरकारने उन्हें उससे बरी नहीं किया था।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

महादेव देसाईकी हस्तलिखित डायरीसे।
सौजन्य: नारायण देसाई

५३. शरीरपर उपवासका असर

[१३ दिसम्बर, १९२५][1]

एक डाक्टर सज्जन हैं। वे कुछ परिस्थितियोंमें उपवासको उपयोगी मानते हैं। उन्होंने मुझे अपने उपवासके दिनोंमें जिन-जिन परिणामोंकी अनुभूति हुई है, उन्हें प्रकाशित कर देनेके लिए पत्र लिखा है। मैं डाक्टर महोदयके प्रस्तावको स्वीकार करता हुआ अपने अनुभवको सहर्ष प्रकाशित कर रहा हूँ क्योंकि वे पर्याप्त महत्त्वके हैं; और मैं यह भी जानता हूँ कि अनेक व्यक्तियोंने तो उपवास करके अपना नुकसान ही किया है। मैंने जितने भी उपवास किये हैं, करीब-करीब वे सभी नैतिक दृष्टिसे किये हैं, फिर भी भोजनके सम्बन्धमें एक अत्यन्त दृढ़ सुधारक होनेके नाते और उन्हें कुछ असाध्य रोगोंके निवारणमें उपयोगी होनेका निमित्त माननेके कारण उससे शरीरपर होनेवाले परिणामोंको मैंने नजर अन्दाज नहीं किया है। फिर भी मुझे यह बात स्वीकार कर लेनी चाहिए कि इसके सम्बन्धमें मेरा अवलोकन एकदम नीरन्ध्र नहीं है। इसका कारण सिर्फ यही है कि उन दोनों बातोंको एक साथ पूरा-पूरा देखना मेरे लिए असम्भव था। मैं उसके नैतिक मूल्यके विचारमें ही इतना व्यस्त था कि उसके शरीर-सम्बन्धी परिणामोंपर ध्यान देना सम्भव नहीं था। इसलिए मैं केवल मेरे मनपर उनकी जो सामान्य छाप पड़ी है केवल उसे ही दे पा रहा हूँ। उसके

१. यह लेख उपवास समाप्तिके बारहवें दिन लिखा गया था।

ठीक ठीक परिणामोंको जाननेके लिए मैं पत्रप्रेषकसे कहना चाहता हूँ कि डा० अन्सारी और डा० अब्दुर्रहमानसे पूछताछ करें। उन्होंने गत वर्ष मेरे उपवासकी सम्पूर्ण अवधिमें मेरी पूरी सार-सभाल रखी थी। उन्होंने बहुत परिश्रमसे काम किया था। वे हर समय मेरे पास रहते थे और उन्होंने दिलोजानसे मेरी सेवा-सुश्रूषा की थी।

सबसे पहले तो मैं अपने दूसरे अधिक लम्बे उपवासकी समाप्तिपर होनेवाले कष्टोंका उल्लेख कर देना चाहता हूँ। मैंने १९१४ में दक्षिण आफ्रिकामें १४ दिनका उपवास किया था। उपवासकी समाप्तिके बाद दूसरे ही दिनसे यह समझकर कि उससे मेरी कुछ भी हानि न होगी मैंने तेज रफ्तारसे पैदल घूमना शुरू कर दिया। दूसरे या तीसरे दिन लगभग तीन मील पैदल चला और टाँगोंकी माँसहीन पिंडलियोंमें बहुत जोरका दर्द होने लगा। मैं उस दर्दका कारण न समझ सका; परन्तु ज्यों ही यह दर्द बन्द हुआ मैंने फिर घूमना शुरू कर दिया। मैं इसी हालतमें दक्षिण आफ्रिकासे इंग्लैंड गया। वहाँ मुझे डा० जीवराज मेहताने देखा। उन्होंने मुझे सचेत करते हुए कहा कि यदि इसी प्रकार घूमना कायम रखा गया तो जिन्दगी-भरके लिए पंगु बन जानेका खतरा है। उन्होंने मुझे कमसे-कम १५ दिन लेटे रहने और आराम लेनेकी सलाह दी। लेकिन यह चेतावनी मुझे देरसे मिली और मेरी तन्दुरुस्ती बिगड़ गई। इसके पहले मेरा स्वास्थ्य बड़ा अच्छा था। मैं ४० मील बिना बहुत थकावट महसूस किये पैदल चल लिया करता था। २० मील चलना तो मेरे लिए कुछ बात ही नहीं थी। अपने अज्ञानके कारण मैंने जो बहुत ज्यादा परिश्रम किया उसके कारण मेरी नसोंमें सख्त दर्द होने लगा। और मैंने अपने अच्छे भले स्वास्थ्यको सदाके लिए बिगाड़ लिया। मेरे जीवनमें किसी भारी रोगसे ग्रसित होनेका यह पहला ही मौका था। इतना मूल्य चुकाकर मुझे जो अनुभव हुआ उससे मैंने यह सीखा कि उपवासके दिनोंमें शरीरको सम्पूर्ण आराम देना चाहिए और उपवासके बाद भी उपवासके दिनोंके प्रमाणमें कुछ दिन आराम लेना अत्यन्त आवश्यक है। यदि इतने सादेसे नियमका यथाविधि पालन किया जाये तो फिर उपवासजनित किसी दूसरे बुरे परिणामकी आशंका करनेकी कोई जरूरत नहीं रहती। निस्सन्देह मेरा यह विश्वास है कि सुव्यवस्थित ढंगसे किया गया उपवास शरीरको लाभ पहुँचाता है। उपवासके दिनोंमें शरीर अनेक अशुद्धियोंसे मुक्त हो जाता है। गत वर्ष उपवासके दिनोंमें और इस उपवासके अवसरपर भी, शुरूके उपवासोंके विपरीत मैं नमक और सोडा डालकर पानी पी लेता था। कारण कुछ भी हो उपवासके दिनोंमें पानीके प्रति मुझे अरुचि हो जाया करती है। नमक और सोडा मिला लेनेपर ही मैं पानी पी सकता हूँ। मुझे यह अनुभव हुआ कि पर्याप्तसे अधिक पानी पीते रहनेसे आमाशय स्वच्छ रहता है और मुँह नहीं सूखता। तीन छटाँक या पाव-भर पानीमें पाँच ग्रेन नमक और उतना ही सोडा डाला जाता था और मैं ६–८ दफेमें सवा सेर या डेढ़ सेरके करीब पानी पी लेता था। मैं नित्य बिना नागा 'एनिमा' भी लेता था। करीब पौन पिन्ट पानीमें लगभग ४० ग्रेन नमक और उतना ही सोडा घोल दिया जाता था। एनिमामें गुनगुना पानी ही काममें लाया जाता था। नित्य बिस्तरेमें ही गीले कपड़ेसे मेरा बदन पोंछ दिया

जाता था। गत वर्षके और इस वर्षके उपवासके दिनोंमे भी मुझे रात्रिमें अच्छी नींद आ जाती थी और मैं दिनमे भी आधा घंटा सो लेता था। पिछले उपवासके समय तो प्रथम तीन दिनतक मैं करीब-करीब सुबह चार बजेसे लेकर रातके आठ बजेतक काम कर लेता था। जिस बातको लेकर उपवास करना पड़ा था, उस बातपर चर्चा भी करता रहता था और अपना पत्र-व्यवहार और सम्पादन कार्य भी मैंने जारी ही रखा था। चौथे दिन मेरे सिरमे जोरका दर्द हुआ; काम करना असम्भव हो गया और उसी दिन दोपहरसे मैंने सारे काम बन्द कर दिये। दूसरे ही दिन मुझे अच्छा मालूम होने लगा। थकावट दूर हो गई और सिरका दर्द भी करीब-करीब जाता रहा। छठे दिन और भी ताजगी मालूम होने लगी और सातवें दिन, जो मेरे मौनका दिन था, मैं ऐसा ताजा और शक्तिवान् हो गया कि मैं उस दिन उपवास-सम्बन्धी अपना लेख भी लिख सका था और लिखते समय हाथ भी नहीं कॉपा था।

मुझे यह याद नहीं कि उपवासके दिनोंमे मुझे भूखकी पीड़ा होती थी या नही। उपवास खोलनेके समय तो मुझे कोई उतावली न थी। मुझे जिस समय उपवास खोलना चाहिए था उससे आध घंटा विलम्ब करके ही मैंने उपवास खोला था। उपवासके दिनोंमें कातनेके सम्बन्धमें भी कोई कठिनाई मालूम नहीं होती थी। मैं तकियेके सहारे बैठकर रोजाना लगभग आधा घंटासे भी ज्यादा देरतक अपनी मामूली गतिके साथ चरखा चला लेता था। रोजकी तीनों समयकी आश्रम-प्रार्थनामें शरीक होना बन्द करनेकी जरूरत भी नहीं पड़ी थी। अन्तिम चार दिन तो मुझे चारपाईमे लिटाकर प्रार्थना स्थलमे ले जाया गया था। चाहता तो मैं वहाँ बैठ भी सकता था, लेकिन मैंने उस समय अपनी शक्तिको बचाये रखना ही ठीक समझा। मुझे कुछ अधिक शारीरिक कष्ट भोगना पड़ा हो, सो याद नहीं है। हाँ, एक बात जरूर याद है; बीच-बीचमें जी मिचलाता था। लेकिन पानीका घूँट लेनेपर अक्सर आराम हो जाता था।

मैंने लगभग ६ औंस सन्तरे और अंगूरका रस लेकर उपवास खोला था। एक नारंगी भी चूसी थी। दो घंटे बाद फिर मैंने यही किया। इस बार १० अंगूर ज्यादा लेकर अंगूरोंका रस धीरे-धीरे चूस लिया था फिर कुछ घटे बाद तीसरे पहर एनिमा लिया। तत्पश्चात् उस दिन मैंने पौन पाव बकरीका दूध, एक छटाँक पानी मिलाकर पिया और उसके बाद एक नारंगी और दस अंगूर खाये थे। दूसरे दिन दूध बढ़ाकर ९ छटाँक कर दिया था। पानी तो उसमें हमेशा ही मिलाया जाता था। इस प्रकार डेढ़ सेर दूधतक रोजाना तीन-तीन छटाँक दूध बढ़ाता चला गया। पानी तो अब भी उसमें मिलाया जाता है लेकिन अब दूधकी हरएक खुराकमें केवल आधी छटाँक पानी ही मिलाया जाता है। कोई डेढ़ दिनतक मैंने खालिस दूध पीकर देखा था; लेकिन उससे कुछ भारीपन महसूस हुआ और खालिस दूधको ही इसका कारण समझकर फिर दूधमें पानी मिलाना आरम्भ कर दिया है।

उपवास खोलनेके बाद यह लिखते समय आज बारहवाँ दिन है।[1] अबतक मैंने कोई भी ठोस खुराक नहीं ली है। अब भी फलोंका कुछ हिस्सा तो मैं रसके रूपमें

१. उपवास १ दिसम्बरको समाप्त हुआ था।

ही लेता हूँ और पिछले तीन दिनोंसे मैंने अंगूर और सन्तरोंके अलावा पपीता, ककड़ी या चीकू और अनार लेना भी शुरू कर दिया है। अधिकसे-अधिक दूध एक दिनमें मैंने अबतक २ सेरके करीब लिया है। औसतन १।। सेर दूध रोज पीता हूँ और कभी-कभी मैं उसके साथ थोड़ी-सी डबल रोटी या पतली-सी एक चपाती भी खा लेता हूँ। मैं महीनोंतक दूध और फल खाकर रहा हूँ और मैंने उस हालतमें भी अपनेको हमेशा स्वस्थ पाया है।

मेरा वजन जेलसे छूटनेके बाद अधिकसे-अधिक ११२ पौंडतक पहुँच गया था। इन सात दिनोंके उपवासमें कोई ९ पौंड वजन कम हो गया था। मैंने खोया हुआ तमाम वजन फिर प्राप्त कर लिया है और अब मेरा वजन १०३ पौंडसे भी कुछ अधिक है। पिछले तीन दिनोंसे तो मैं सुबह-शाम नियमित रूपसे व्यायाम भी कर लेता हूँ और उसमें मुझे कुछ भी थकावट नहीं मालूम होती है। समतल जमीनपर चलनेमें मुझे कोई कठिनाई नहीं होती। हाँ, सीढ़ियाँ चढ़ने या उतरनेमें कुछ श्रम अब भी मालूम होता है। दस्त भी नियमित रूपसे साफ होता है और रातको नींद अच्छी तरह आती है।

मेरी रायमें तो उन इक्कीस दिनोंके या सात दिनोंके इस उपवासके कारण मेरे शरीरको कुछ भी हानि नहीं पहुँची। इन सात दिनोंमें वजनका बहुत घट जाना कुछ चिन्ताजनक अवश्य था। लेकिन आरम्भमें साढ़े तीन दिनोंमें मैंने जो कठिन परिश्रम किया था स्पष्टत: वही इसका कारण था। थोड़ा और आराम कर लेनेपर मैं अपनी पहले जैसी वही शक्ति, जो उपवासके आरम्भमें थी, फिर प्राप्त कर लूँगा; और शायद कच्छमें मैंने जो शक्ति और वजन गँवाया था वह भी बिना कठिनाईके प्राप्त कर सकूँगा।

जो लोग किसी भी कारणवश उपवास करना चाहें उनके लिए मैं एक औसत दर्जेके आदमीकी नजरसे और केवल शरीरकी दृष्टिसे कुछ नियम नीचे दे रहा हूँ:

१. अपनी मानसिक और शारीरिक शक्तिकी संरक्षा आरम्भसे ही करनी चाहिए।

२. जब उपवास किया जाये तब उपवासके दौरान भोजनकी बात नहीं सोचनी चाहिए।

३. ठंडा पानी, नमक और सोडा डालकर या बिना सोडेके या नमकके ही, जितना बने, उतना, मगर प्रति बार थोड़ा-थोड़ा पिया जाये। (पानी खौलाया हुआ, ठंडा किया हुआ और छाना हुआ होना चाहिए) नमक और सोडेसे नहीं डरना चाहिए। क्योंकि ज्यादातर तो पानीमें स्वतन्त्र रूपमें ये चीजें रहती ही हैं।

४. रोजाना गरम पानीमें निचोड़े हुए कपड़ेसे शरीर साफ करवा लेना चाहिए।

५. उपवासके दिनोंमें नियमित रूपसे नित्य एनिमा लेना चाहिए। एनिमा लेनेपर जितना मल निकलता है, उसे देखकर आश्चर्य होगा।

६. यथासम्भव खुली हवामें सोया जाये।

७. सुबह धूपमें बैठें। धूप और हवामें बैठना भी उतना ही शुद्धिकारक है जितना कि स्नान करना।

८. उपवासको छोड़कर अन्य किसी भी बातके बारेमें विचार किया जा सकता है।

९. किसी भी उद्देश्यसे उपवास क्यों न किया गया हो, उन अमूल्य दिनोंमें अपने सिरजनहारका, उसके साथके अपने सम्बन्धका और उसकी अन्य सृष्टिका विचार करना चाहिए। इससे ऐसी-ऐसी बातें मालूम होंगी जिसका पहले खयालतक न हुआ होगा।

डाक्टर मित्रोंसे क्षमा माँगते हुए, लेकिन अपने अनुभवोंका और अपने-जैसे दूसरे सनकी लोगोंके अनुभवोंका पूरा खयाल करके मैं बिना किसी सकोचके यह कहूँगा कि यदि निम्नलिखित शिकायतें हों तो उपवास अवश्य ही किया जाये।

(१) कब्जियत, (२) शरीरमें रक्त की कमी, (३) बुखारकी हरारत मालूम होना, (४) बदहजमी, (५) सिरमें दर्द, (६) गठिया, (७) जोड़ोंमें दर्द, (८) बेचैनी और चिढ़, (९) उदासी, (१०) अतिशय आनन्दका अनुभव।

यदि इन रोगोंके होनेपर उपवास किया गया हो तो डाक्टर बुलानेकी या पेटेंट दवाइयाँ खानेकी कोई जरूरत न रहेगी।

खाना तभी चाहिए जब भूख लगे और भोजनके योग्य पूरी मेहनत कर ली गई हो।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १७-१२-१९२५

५४. टिप्पणियाँ

बम्बईकी गुजराती राष्ट्रीय शाला

जो राष्ट्रीय शालाएँ अपने ऊपर तलवार लटकती रहनेपर भी जीवित हैं उनमें एक बम्बईकी गुजराती शाला भी है। कहा जा सकता है कि यह अबतक केवल शिक्षकोंके उद्यमके बलपर ही टिकी हुई है। मुझे उम्मीद है कि बम्बईकी प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी इस शालाको चलायेगी अथवा इसके चलानेमें खासी अच्छी आर्थिक सहायता देगी।

८ तारीखको इस शालाका वार्षिक उत्सव मनाया गया था। इसमें विद्यार्थियोंने कुछ नाटक खेले, संगीतकी निपुणताका परिचय दिया तथा हिन्दी, संस्कृत, अंग्रेजी और गुजरातीमें संवाद किये। इस सबसे कुछ विद्यार्थियोंकी कलाका अच्छा परिचय मिला। संगीत पहले एक बार और सुना था; इस बार उसकी अपेक्षा वह अधिक सरस था। संस्कृत शब्दोंका उच्चारण स्पष्ट था। विद्यार्थियोंने, कुल मिलाकर कमसे-कम मुझपर तो अपनी कलाकी अच्छी छाप छोड़ी।

शालाके विवरणसे मालूम होता है कि उसमें सारी शिक्षा मातृभाषाके माध्यमसे ही दी जाती है। शिक्षक इतिहास और भूगोल नयी पद्धतिसे पढ़ानेका दावा करते

हैं। ज्यामिति आदि विषयोंका गुजरातीके माध्यमसे पढ़ाया जाना भी विद्यार्थियोंके लिए कोई सामान्य लाभ नहीं। संस्कृत और हिन्दीपर भी जोर दिया जाता है। मुनीमीका विषय भी शिक्षाक्रममें है। औद्योगिक शिक्षामें तकली और चरखा तो है ही; इसके अलावा मिट्टीका काम, बढ़ईगिरी, चित्रकला आदि विषय भी सिखाये जाते हैं।

शिक्षकोंमें त्यागवृत्ति है। उन्होंने अपना वेतन स्वेच्छासे पन्द्रह प्रतिशत कम कर दिया है। प्रधान आचार्य तो अवैतनिक ही हैं। एक शिक्षा समिति भी है। श्री रेवा-शंकर जगजीवन झवेरी उसके प्रमुख हैं। समितिका हिसाब साफ रखा गया जान पडता है। जिस शालामें शिक्षा उदार है, शिक्षक देशभक्त हैं और पैसोंका हिसाब-किताब ठीक है, वांछनीय है कि जनता उस शालाकी मदद पैसोंसे और अपने बच्चोंको भेजकर करे।

वहाँ सिर्फ एक बात ही टीका करने योग्य थी। नाटकोंमें अभिनयके समय पोशाक विदेशी कपड़ेकी थी; यह स्कूलकी प्रतिष्ठामें असगत और दुःखजनक बात है। ऐसा करनेकी कोई जरूरत न थी। लोग नाटक देखने नहीं आये थे बच्चोंकी कुशलता-को समझने आये थे। नाटकोंमें जरी आदिके चमकते हुए परन्तु पारखी मनुष्यकी आँखोंको न सुहानेवाले कपड़े पहननेका रिवाज है। लेकिन जहाँ बच्चोंमें ऊँची भावना-का विकास करना उद्दिष्ट हो वहाँ इसका अनुकरण कतई नहीं होना चाहिए। उनके सम्मुख तो शुद्ध आदर्शोंके अलावा और कुछ नहीं रखा जाना चाहिए। हैमलेटको विलायती पोशाक पहनानेकी जरूरत नहीं। हैमलेटकी पोशाक उसके समयकी अथवा हमारी अपनी कल्पनाकी होनी चाहिए। हम हैमलेटको अपनी देशी कल्पनाके अनुसार सजा सकते हैं। उसके भाव तो सार्वभौम हैं। वह मुगलोंकी पोशाक जैसी थी वैसी अथवा हमारी कल्पनाके अनुरूप हो सकती है। हमें खादी प्रिय है; यदि हम नाटक करते हैं तो उन सबमें भी खादीका ही प्रयोग होना चाहिए। मुझे तो किसी नाट्य-शालासे लाये गये पर्दे भी अखरे थे। मेरा वश चले तो मैं नाट्यशालाके पर्दोंका भी उपयोग न करूँ; प्रत्युत खादीके कपड़ोंकी कोई कलापूर्ण योजना करूँ। लेकिन यह तो वहीं सम्भव है जहाँ कार्यकर्त्ताओंमें खादीके प्रति बहुत ज्यादा प्रेम हो और वे इन बातोंपर विचार करें। ये दोनों बातें राष्ट्रीय शालाके नेताओंमें न हों तो कहाँ होंगी? मेरी कामना है कि राष्ट्रीय शालाएँ भविष्यके भारतका आदर्श बतायें। वे गंगोत्री और जमनोत्री बनें तथा उनमें शुद्ध विचार और शुद्ध आचारकी धाराएँ प्रवाहित हों।

अकाल सहायता और चरखा

अवश्य ही अकाल पीड़ितोंके सहायतार्थ चरखेको उपयोगमें लानेका इतिहासमें यह पहला ही अवसर होगा। आतराई और बंगालके कुछ अन्य भागोंमें इस दिशामें पहल की गई है। उड़ीसामें जिन क्षेत्रोंमें बाढ़से भारी हानि हुई है, उनमें चरखेका सफल प्रयोग किया जा रहा है। वहाँ जो कार्य छोटे रूपमें आरम्भ किया गया है वह बादमें और भी बड़े पैमानेपर चलाया जा सकता है। ऐसा ही प्रयोग दक्षिण

भारतके कोयम्बटूर जिलेके उतुकुली ताल्लुकेमें किया जा रहा है। एक कार्यकर्त्ताने इस कार्यका निम्न सुन्दर विवरण भेजा है।[1]

[गुजरातीसे]
नवजीवन, १३-१२-१९२५

५५. पत्र : ए० हनुमन्तरावको

१३ दिसम्बर, १९२५

प्रिय मित्र,

आपके पत्रके लिए धन्यवाद। हम बहुधा बुद्धिसे कुछ चीजें समझ जाते हैं लेकिन उन्हें आचरणमें उतारनेकी हमारी हिम्मत नहीं पड़ती।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

अंग्रेजी पत्र (जी० एन० १५७) की फोटो-नकलसे।

५६. पत्र : रामेश्वरदास बिड़लाको

वर्धा
मार्गशीर्ष कृष्ण १३ [१३ दिसम्बर, १९२५][2]

भाई रामेश्वरदासजी,

भाई जगजीवनदास मेहता मुझे कहते हैं कि यदि मैं उनका अन्त्यजोंके लिये मंदीर बनानेका साहस को पसंद करूँ तो आप उनको धन देनेके लिए तैयार हैं। भाई जगजीवनदासको मैं जानता हूँ, वे सज्जन हैं और परोपकारी कामोंमें हिस्सा लेते हैं, अंत्यज मंदिरकी उनकी योजना मैंने देख ली है, दूसरे अंत्यज सेवकोंसे अभिप्राय लेनेका भी मैंने उनको कहा था वह भी उन्होंने लीया है। जिस प्रकारका मंदीर बनाना चाहते हैं उसमें रु० २,५००का खर्च बताते हैं, मैं भी मानता हुं कि ऐसा मकान और बादमें कितना खर्च होगा यदि आप इतना दान देना चाहें तो यह कार्य अच्छा है ऐसा मेरा विश्वास है।

आपका,
मोहनदास करमचन्द गांधी

मूल पत्र (सी० डब्ल्यू० ६११६) से।
सौजन्य : घनश्यामदास बिड़ला

१. यहाँ नहीं दिया गया है।

२. १९२५ की काठियावाड़ यात्राके दौरान गांधीजीसे अन्त्यजोंके लिये एक मन्दिर बनवानेका अनुरोध किया गया था। यह मन्दिर बादमें 'लाठी अन्त्यज मन्दिर' के नामसे प्रसिद्ध हुआ।

५७. पत्र : पूँजाभाईको

मार्गशीर्ष बदी १३ [१३ दिसम्बर, १९२५][1]

भाई पूँजाभाई,

तुम्हारे पत्र सुन्दर होते हैं और मुझे नियमित रूपसे मिलते हैं। मैंने तुम्हें एक पत्र तो यहाँ पहुँचकर लिखा था। वह तुम्हें मिला होगा।[2] तुम प्रयत्न करके अपनी दृष्टिको विकारहीन बना ले सकोगे। प्रतिक्षण सावधान रहो। वाणीकी हिंसासे बचनेका मार्ग यह है कि कमसे-कम बोलो और बिना विचारे तो बिलकुल ही कुछ न कहो।

बापूके आशीर्वाद

भाई पूँजाभाई नाना
सत्याग्रह आश्रम
साबरमती, बी० बी० ऐंड सी० आई० रेलवे।

गुजराती पत्र (सी० डब्ल्यू० १८६) तथा जी० एन० ४०१४ से भी।
सौजन्य : नारणदास गांधी

५८. पत्र : वसुमती पण्डितको

वर्धा
सोमवारकी रात [१४ दिसम्बर, १९२५]

चि० वसुमती,

तुम्हारा पत्र मिला। तुम्हारे वहाँ होनेसे मुझे बहुत सान्त्वना मिली है, क्योंकि इससे रामदासको कुछ आश्वासन तो मिल ही सकता है।

नीमू संस्कृत पढ़ती है और रामदासको संस्कृत नहीं आती तो इसमें बुराई क्या है? अपने पतिसे अधिक ज्ञान प्राप्त कर लेना भी क्या स्त्रीका दोष कहा जायेगा? क्या पत्नीका पतिसे अधिक ज्ञान प्राप्त करना अनुचित है? रामदास क्या ऐसा निकम्मा विचार करनेवाला पति सिद्ध होगा? रामदास तो स्वयं चाहता है कि नीमू संस्कृत पढ़े और सितार-वादन भी सीखे। अंग्रेजोंमें तो ऐसी अनेक स्त्रियाँ हैं जो अपने पतिकी अपेक्षा अधिक ज्ञान-सम्पन्न हैं किन्तु इससे उनमें घमण्ड नहीं उत्पन्न होता और न उनके पतिको भी लज्जा अनुभव होती है। सीतामें अधिक ज्ञान था या राममें, इसका

१. डाककी मुहरसे।
२. देखिए "पत्र : पूँजाभाईको", १०-१२-१९२५।

निर्णय कौन कर सकता है? मंदोदरीमें तो रावणकी अपेक्षा अधिक ज्ञान था ही। कौशल्या दशरथसे कितनी ऊँची उठ गई? द्रौपदीने पाँच पतियोंपर प्रभुत्व किया। वे पाँचों उससे डरते थे और उस कारण अपनी श्रीवृद्धि हुई मानते थे। नीमूसे रामदासकी प्रतिष्ठा भले ही बढ़ती हो; लेकिन मुझे नहीं लगता कि वह रामदाससे आगे जा सकती है। रामदास अभी घबराता रहता है, लेकिन उसमें गुण बहुत हैं, इसलिए उसका कल्याण ही होगा। नीमू अवश्य ही समझदार तो दीख पड़ती है। इसलिए वह रामदासको सुखी रखेगी और रामदास भी उसे सुख देगा।

जमनाबहनको भी साथ ही पत्र लिखा है, मुझे उसकी दृढ़तापूर्ण परन्तु विनय-युक्त भाषा बहुत पसन्द आई है।

तुम दोनों भाई-बहन अपने स्वास्थ्यको सँभालना। मेरा स्वास्थ्य ठीक है।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती पत्र (सी० डब्ल्यू० ५५५) तथा एस० एन० ९३०९ पी० से भी।
सौजन्य: वसुमती पण्डित

५९. पत्र : न० चि० केलकरको

वर्धा
१५ दिसम्बर, १९२५

प्रिय श्री केलकर,

अपने पत्रोंको उलटते हुए मैंने वी० गोदरेजके सम्बन्धमें लिखा आपका पत्र देखा। मैं तो यही आशा रखता हूँ कि जब आप तैयार हो जायेंगे आप मुझे भी जगा देंगे।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

अंग्रेजी पत्र (सी० डब्ल्यू० ३११७) की फोटो-नकलसे।

६०. पत्र : मणिबहन पटेलको

वर्धा

मार्गशीर्ष बदी अमावस्या [१५ दिसम्बर, १९२५][1]

चि० मणि,

आशा है, तुम्हें मेरे पत्र मिल गये होंगे। यदि अहमदाबाद जाना जरूरी ही लगे तो चली जाना। सिर्फ इतना याद रखना कि वहाँ पहली जनवरीसे तो कामपर लग ही जाना चाहिए। अब मिलने-जुलनेका मोह कम रखा जाये; समझदारी इसीमें जान पड़ती है।

मेरा स्वास्थ्य अच्छा है।

बापूके आशीर्वाद

[गुजरातीसे]

बापुना पत्रो – ४ : मणिबहेन पटेलने

६१. पत्र : द्विजेन्द्रनाथ ठाकुरको

[१५ दिसम्बर, १९२५ या उसके बाद]

आपने सचमुच ही मुझे बड़े हर्षका समाचार दिया। ईश्वर करे आपको जो प्राप्त हुआ है, वह आपकी स्थायी सम्पदा बने।

आपका,

मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

महादेव देसाईकी हस्तलिखित डायरीसे।

सौजन्य : नारायण देसाई

१. साधन-सूत्रमें तारीख १६ है; किन्तु तिथिके अनुसार १५ पड़ती है।

६२. पत्र : घनश्यामदास बिड़लाको

वर्धा

पौष शुक्ल १ [१६ दिसम्बर, १९२५]

भाई घनश्यामदासजी,

आपका खत मीला है। स्वराज्य दलके बारेमे मीलुंगा तब बाते करूंगा। आपके ख्यालोंका मै परिवर्तन नहि चाहता हुं। क्योंकि उन ख्यालोंका समर्थन करता हुआ मै मेरी स्थितिका समर्थन करना चाहता हुं। मेरी हालतमें मै दूसरा कुछ नहि कर सकता — केवल धर्मलाभ यानि देशलाभके लीये।

आप जो कुछ भेजना चाहते हैं जमनालालजीके वहां अथवा अहमदाबादमे बरोड़ा बैंकमे भरवा दे। कलकत्ते या तो दिल्लीमे मुझको कुछ कष्ट होगा। परंतु यदि आप कलकत्ते या दिल्लीमें किसी बैंकमें रखना पसंद करें तो मेरे नाम से रखवाकर उस बैंककी क्रेडिट नोट भेज दें। जैसा आपको सुभीता हो ऐसा करें।

स्वामी आनन्द लीखते हैं कि न० जी० यं० इ० इ०की जो प्रति आपके कहनेसे मुफत भेजी जाती है उसका हिसाब अबतक नहिं मीला है। रु० २९९–१५–० है। आप भेज देंगे? इस वर्ष समाप्त होनेके पहले चाहता है।

आपका,

मोहनदास गांधी

मूल पत्र (सी० डब्ल्यू० ६११७) से।

सौजन्य: घनश्यामदास बिड़ला

६३. एक विद्यार्थीके प्रश्न

अमेरिकासे स्नातकोत्तर श्रेणीका एक विद्यार्थी लिखता है:

मैं उनमें से हूँ जो इस बातमें बहुत दिलचस्पी रखते हैं। हिन्दुस्तानकी गरीबीको दूर करनेके लिए अन्य उपायोंके अतिरिक्त हिन्दुस्तानमें उपलब्ध साधनोंका योग्य उपयोग किया जाये। इस देशमें रहते हुए मुझे यह छठा साल है। मेरा खास विषय लकड़ियोंसे सम्बन्धित रसायन शास्त्र है। यदि मुझे हिन्दुस्तानके औद्योगिक विकासके महत्वके सम्बन्धमें अतिशय श्रद्धा न होती तो मैं डाक्टरी पढ़ने लगता या मैंने सरकारी नौकरी कर ली होती। . . . क्या आप मेरा, कागज बनानेका या ऐसा ही कोई अन्य उद्योग प्रारम्भ करनेकी कोशिश करना पसन्द करेंगे? यदि हिन्दुस्तानके लिए विवेकमूलक, दया भावपर

आधारित औद्योगिक नीति अख्तियार की जाये तो उसके सम्बन्धमें सामान्यतया आपका क्या विचार है? क्या आप विज्ञानकी प्रगतिके हिमायती हैं? ऐसी प्रगतिसे मेरा मतलब यह है कि वह प्रगति मानवसमाजके लिए आशीर्वाद रूप हो। उदाहरणके तौरपर फ्रांसके पैस्च्योरका और टोरन्टोके डा० बैंटिगका वैज्ञानिक कार्य।

मैं इस प्रश्नका उत्तर सार्वजनिक रूपसे इसलिए दे रहा हूँ कि जगह-जगहसे विद्यार्थीगण मुझसे बहुतसे प्रश्न पूछा करते हैं। इसका एक कारण यह भी है कि मेरे विज्ञान सम्बन्धी विचारोंके बारेमें बड़ी गलतफहमी फैली हुई है। यह विद्यार्थी जिस ढंगके उद्योगको प्रारंभ करनेकी कल्पना कर रहा है वैसे किसी भी प्रकारके प्रयत्नके बारेमें मुझे कोई भी एतराज नहीं है। बात इतनी ही है कि मैं उसे अनिवार्य रूपसे दयाधर्म मूलक कहनेको तैयार नहीं हूँ। मेरे नजदीक दया धर्ममूलक एक ही व्यवसाय है और वह है हाथ-कताईका शानदार और सजीव पुनरुद्धार। क्योंकि दरिद्रता उसीके जरिये दूर की जा सकती है —— दरिद्रता जो इस देशमें करोड़ों मनुष्योंका जीवन उन्हींके घरोंमें दीन और कान्तिहीन बना रही है। इस देशकी उत्पादन शक्तिको बढ़ा सकनेवाली और दूसरी बातें भी इसमें शामिल की जा सकती हैं। इसलिए, विज्ञानकी शिक्षा पाये हुए सब नवयुवकोंसे मैं तो यही चाहूँगा कि वे अपनी योग्यता इस देशके झोंपड़ोंमें चलनेवाले चरखोंमें ऐसा फेरफार करनेमें खर्च करें जिससे यदि सम्भव हो तो वह अधिक सूत उत्पादन करनेका एक अधिक कुशल साधन बन जाये। मैं विज्ञानकी विज्ञानके रूपमें प्रगतिके विरुद्ध नहीं हूँ। प्रत्युत मैं विज्ञान-सम्बन्धी पश्चिमकी मनोवृत्ति और उत्साहका प्रशंसक हूँ। यदि मैं पूर्ण उत्साहसे प्रशंसा नहीं करता तो वह इसीलिए कि पश्चिमके वैज्ञानिक ईश्वरकी सृष्टिके निम्न श्रेणीवाले प्राणियोंका कुछ भी खयाल नहीं रखते हैं। प्राणियोंकी चीर-फाड़के प्रति मुझे हार्दिक घृणा है। विज्ञान और मनुष्यत्वके नामपर निर्दोष प्राणियोंकी जो अक्षम्य हत्या की जाती है उसे मैं नफरतकी नजरसे देखता हूँ। वे सभी वैज्ञानिक शोधें जो निर्दोष प्राणियोंके खूनसे रंगी हुई हैं मेरी दृष्टिमें श्रेयस्कर नहीं है। रक्त संचालनके सिद्धान्तका प्राणि-व्यवच्छेदनके बिना अन्वेषण न हो पाता तो भी संसारका कार्य अच्छी तरह चल सकता था। मैं उस दिनके आनेकी आशा कर रहा हूँ, जब पश्चिमके प्रामाणिक वैज्ञानिक ज्ञानकी शोधके वर्तमान तरीकोंकी मर्यादा निश्चित कर देंगे। भविष्यके मापदण्डमें केवल मानवजातिका ही नहीं, समस्त प्राणि जगतका ख्याल रखा जायेगा। और जिस प्रकार अब हम धीरे-धीरे, लेकिन निश्चित रूपसे इस बातको महसूस करते जा रहे हैं कि यदि हिन्दू समाज सोचता है कि वह अपने पाँचवें हिस्सेके लोगोंको गिरी हुई हालतमें रखकर खुशहाल रह सकता है तो यह उसकी सरासर भूल है अथवा पश्चिमके लोगोंका पूर्वके देशों या आफ्रिकामें रहनेवाले राष्ट्रोंका शोषण करके और उन्हें हीनावस्थामें पहुँचाकर अपनी उन्नतिकी इच्छा करना गलत खयाल है; उसी प्रकार समय आनेपर हम लोग यह भी समझ सकेंगे कि मानवको अन्य सृष्टिसे जो अधिक बलशाली बनाया है सो इसलिए नहीं कि मनुष्य उनका वध करें

बल्कि इसलिए कि वह अपने साथ-साथ उनका भी कल्याण चाहे। मुझे इस बातका पूर्ण विश्वास है कि उनमे भी वैसे ही आत्मा है जैसे मुझमें है।

यह प्रश्न भी उसी विद्यार्थीका है: वे कहते ह:

> **हिन्दुस्तानमें ईसाई मिशनरियोंके कार्योंके मूल्यके सम्बन्धमें आपकी स्पष्ट सम्मति क्या है। क्या आपका खयाल है कि इस देशके जीवनको बनानेमे ईसाई मतावलम्बी कुछ सहायक हो सकते हैं? क्या ईसाई मजहबके बिना आप अपना काम चला सकते है?**

मेरी रायमे ईसाई मिशनरियोंने प्रकारान्तरसे हमें लाभ पहुँचाया है। सीधे तौर पर तो उनसे लाभके वदले हानि ही हुई है। मै धर्मान्तिर करनेके वर्तमान तरीकेके खिलाफ हूँ। दक्षिण आफ्रिका और हिन्दुस्तानमे धर्मान्तर करनेके जो तरीके काममे लाये जाते रहे हैं, अनेक वर्षोतक उनका अनुभव करनेके बाद मुझे विश्वास हो गया है कि अपना धर्म छोड़कर ईसाई बन जानेवाले उन लोगोंकी जिन्होंने यूरोपीय सभ्यताको ऊपर-ऊपरसे ही देखा होता है, और जो ईसा मसीहके उपदेशका तत्त्व नहीं समझ पाये हैं, कोई नैतिक उन्नति नहीं हुई है। मेरे इस कथनका सम्बन्ध सामान्य लोगोंकी मनोवृत्तिसे ही है, उज्ज्वल अपवादोंसे नहीं। अवश्य ही, परोक्षरूपसे ईसाई मिशनरियोंके प्रयत्नसे हिन्तुस्तानको बहुत-कुछ लाभ हुआ है। उसने हिन्दू और मुसलमानोंके मनमें अपने-अपने धर्मकी गहराईमे जानेकी इच्छा जगाई और उसने हमे अपने घरको व्यवस्थित रखनेके लिए विवश किया। चूँकि मिशनरियोंके शिक्षालयों और अस्पतालों इत्यादिकी स्थापना भी शिक्षा देनेके लिए या चिकित्सालय खोलनेके उद्देश्यसे नहीं, बल्कि धर्मान्तरके उद्देश्यसे ही की गई है इसलिए मै उन्हें भी परोक्ष रूपसे होनेवाले लाभोंमे ही गिनता हूँ।

यदि संसारका काम और इसलिए हमारा काम भी, मुहम्मद या उपनिषदोंके उपदेशोंके बिना नहीं चल सकता तो ईसामसीहके उपदेशोंके बिना भी नहीं चल सकता। मै तो इन सबकी शिक्षाको एक दूसरेकी पूरक शिक्षा ही मानता हूँ—एक-दूसरेसे अलग कदापि नहीं। इन उपदेशोंका सच्चा अर्थ परस्परावलम्बन और परस्पर स्नेह-सम्बन्ध ही है; किन्तु अभी हमें यह चीज समझनी बाकी है। हम लोग अपने-अपने धर्मके मानो उदासीन प्रतिनिधि है और प्रायः हम लोग उसका उपहास ही करते हैं।

इस विद्यार्थीका तीसरा प्रश्न इस प्रकार है:

> **क्या आज भी हम भारतवर्षके राज्योंके संघमें देशी राज्योंको जैसाका तैसा रहने देंगे या वहाँ भी प्रजातन्त्र स्थापित करना चाहेंगे? राजनैतिक ऐक्यको कायम करनेके लिए हमारी सामान्य राष्ट्रभाषा क्या होगी? अंग्रेजीको ही हम क्यों न राष्ट्रभाषा बनायें?**

देशी राज्योंका, चाहे दिखाई न दे, स्वरूप बदलता चला जा रहा है। जब हिन्दुस्तानका बहुत बड़ा हिस्सा प्रजातन्त्र हो जायेगा उस समय देशी राज्योंमें [एककी]

सत्ता न चल सकेगी। परन्तु यह कोई नहीं कह सकता है कि हिन्दुस्तानके प्रजातन्त्रका रूप कैसा होगा। अंग्रेजीके ही देश-भरकी भाषा बने रहनेपर देशका भविष्य क्या होगा, इसे समझ लेना बहुत आसान है। उस समय वह प्रजातन्त्र कुछ थोड़े ही लोगोंका शासनतन्त्र होगा। परन्तु यदि हम हिन्दुस्तानकी पूरी जनताको राजनीतिक दृष्टिसे एक देखना चाहते हैं और यही होना भी चाहिए, तो उसके भावी स्वरूपके बारेमें कहना साधारण व्यक्तिका काम नहीं है। हिन्दुस्तानकी जनताकी सामान्य भाषा अंग्रेजी तो कभी भी नहीं हो सकती। वह तो जिसे मैं हिन्दुस्तानी कहता हूँ और जो हिन्दी और उर्दूका मिला-जुला रूप है, वही हो सकेगी। हमारे अंग्रेजीके व्याख्यानोंने हमें हमारे करोड़ों देशवासी भाइयोंसे जुदा कर दिया है। अतः हम लोग अपने देशमें ही विदेशी बन गये हैं। अंग्रेजीमें व्याख्यान देनेकी आदतने हिन्दुस्तानके राजनीतिज्ञोंके मनमें जो घर कर लिया है उसे मैं अपने देश और मनुष्यत्वके प्रति अपराध मानता हूँ, क्योंकि हम लोग अपने ही देशकी उन्नतिमें रोड़ा अटकानेवाले बन गये हैं। और यदि इस देशकी, जो आखिर एक महान देश है, उन्नति होती है तो वह पूरे मानव समाजकी उन्नति मानी जायेगी। इसी प्रकार मानव-समाजकी उन्नतिमें भारतकी उन्नति निहित है। जो अंग्रेजी पढ़े-लिखे लोग गाँवोंमें जा बसे हैं, उनमें से प्रत्येककी समझमें यह ध्रुव सत्य बैठ गया है। मेरे हृदयमें अंग्रेजी भाषाके प्रति और अंग्रेज लोगोंके अनेक अच्छे गुणोंके प्रति मान है और मैं उनकी प्रशंसा करता हूँ। लेकिन मुझे इसमें कोई सन्देह नहीं है कि अंग्रेजी भाषा और अंग्रेज लोग हमारे जीवनमें वह स्थान प्राप्त किये हुए हैं जिससे हमारी प्रगति रुक रही है; और उनकी भी।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १७-१२-१९२५

६४. गत वर्षका खादी-कार्य

अखिल भारतीय खादीमण्डलके जो अब अखिल भारतीय चरखा संघके रूपमें परिणत हो गया है, गत वर्षके कार्यके विवरणसे कुछ जानने योग्य बातें मालूम हो सकेंगी। मैं उसे पढ़ जानेकी सिफारिश केवल खादी प्रेमियोंसे ही नहीं, उसके आलोचकों और शंकालु सज्जनोंसे भी करता हूँ। विवरण अ० भा० चरखा संघके मन्त्री, साबरमतीको लिखनेसे मिल सकता है। उसमें खादी सम्बन्धी एक भी त्रुटिका उल्लेख नहीं छोड़ा गया है। उसमें प्रान्तीय संस्थाओंकी ढिलाई और उनकी उदासीनताके सम्बन्धमें काफी लिखा गया है; और चरखेके प्रचारमें जो महान् कठिनाइयाँ उपस्थित हो रही हैं, उनका भी जिक्र है। लेकिन यह सब कहनेके बाद भी संघ द्वारा किये गये ठोस कार्यके इस विवरणसे मालूम होगा कि खादीने कितनी प्रगति की है। वह प्रगति जबर्दस्त कही जाने योग्य नहीं है; ऐसी भी नहीं है कि गाँवोंमें रहनेवालोंके जीवनपर उसका असर पड़े, और न इतनी व्यापक ही है कि उसके बलपर विदेशी कपड़ेका बहिष्कार, जिसके लिए हम लोग बहुत उत्सुक रहते हैं, किया जा सके।

फिर भी वह प्रगति सराहनीय अवश्य है। ऊपर-ऊपरसे देखनेवाले व्यक्ति मुझसे कहते हैं कि खादीकी प्रवृत्ति मन्द पड़ गई है; क्योंकि शहरोंमें अब उन्हें पहलेकी अपेक्षा सफेद टोपियाँ कम नजर आती हैं। मैं 'सफेद टोपियाँ' इसलिए लिख रहा हूँ कि अब वे खादीकी नहीं होतीं। अबतक मैं जान गया हूँ कि इन टोपियोंमें बहुत पाखण्ड था। इन टोपियोंको पहननेवाले लोग उन सच्चे प्रामाणिक मनुष्योंसे कुछ अधिक खादीप्रेमी न थे, जो विदेशी कपड़ोंका त्याग नहीं कर सकते थे और इसलिए महज दिखावेके लिए या उससे भी किसी हीन उद्देश्यसे, खादीकी टोपी पहनना ठीक नहीं मानते थे। आँकड़ोंसे तो आज दूसरी ही बात स्पष्ट होती है। १९२१में जितनी खादी बनती थी, उससे अब अधिक बनने लगी है, चरखे भी अधिक चल रहे हैं, उनसे सूत भी अधिक निकलता है और जो खादी तैयार होती है वह चार वर्ष पहले-की खादीसे कहीं अधिक अच्छी होती है। कार्य अब अधिक व्यवस्थित और नियमित हो गया है और इसलिए अब शीघ्रतासे प्रगति की जा सकती है। मजदूरी लेकर कातनेवाले लोग भी पहलेकी बनिस्बत अधिक हैं। और स्वेच्छासे कातनेवालोंकी संख्या भी मंद गतिसे सही, किन्तु बढ़ रही है। इस समय खादीके संगठन कार्यमें लगे हुए जितने स्त्री-पुरुषोंको रोजी मिल रही है वह अन्य किसी राष्ट्रीय कार्यकी अपेक्षा बहुत अधिक है। खादी उत्पादनका व्यवसाय एक ऐसा व्यवसाय है जो निरन्तर बढ़ेगा। प्रामाणिक, बुद्धिमान और मेहनत करनेवाले कार्यकर्त्ताओंको अच्छा वेतन देनेकी उसकी शक्ति लगभग असीम है। खादी कार्यमें अवैतनिक राष्ट्रीय कार्यकर्त्ताओंकी संख्या भी सर्वाधिक है। और इस सबसे बढ़कर तो यह बात साबित हो जाती है कि योग्य और व्यवस्थित किसी इस प्रकारके संगठनके बिना, जो खादीका ही कार्य करता हो और जिसमें वैतनिक या अवैतनिक बहुतसे योग्य कार्यकर्त्ता काम करते हों, खादीका कार्य नहीं चल सकता। उसके तकनीकी विभागने कुछ महत्वकी शोधें भी की हैं जैसे थोड़े सूतको भी दबाकर उसकी गाँठें बनानेके लिए दाब-यन्त्रको सुधारा गया है। इस विभागमें खादी और सूतके नमूनोंकी परीक्षा की जाती है और नकली खादी फौरन ही पहचानी जा सकती है। अपने-अपने घरोंमें रहते हुए काम या संगठन करनेके लिए विद्यार्थी भी तैयार किये जाते हैं। रँगाईके प्रयोग किये जाते हैं और ऐसी खादी तैयार करनेका प्रयोग भी हो रहा है जिसमें से पानी न बह सके। इन दोनों प्रयोगोंमें ठीक-ठीक सफलता मिली है। जो लोग खादीके कार्यके सम्बन्धमें शंकित रहते हैं उन्हें यह रिपोर्ट मँगाकर तथ्योंकी जाँच द्वारा अपना मन भर लेना चाहिए। यदि उसे पढ़नेपर उन्हें सन्तोष हो जाता है तो उन्हें संघके सभासद बनना चाहिए और जो लोग उसकी शर्तोंको अब भी पूरा नहीं कर सकते हैं उन्हें चाहिए कि वे किसी-न-किसी प्रकारका काम करके उसकी मदद करें, या अपनी सामर्थ्यानुसार धनसे ही संघको सहायता दें।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १७-१२-१९२५

६५. टिप्पणियाँ

कौन्सिल प्रवेश

एक अमेरिकी पत्रकार लिखते हैं :

> **आपके द्वारा विधानसभा प्रवेशका किसी भी प्रकारका समर्थन देखकर मुझे अफसोस होता है। यदि आजकी स्थितिपर पहुँचनेसे पहले आप सही थे तो अब गलतीपर है। मैंने विधानसभाकी हमेशा उस टीनके टुकड़ेके साथ उपमा दी है जो बच्चेको फुसलानेके लिए यह कहकर दिया जाता है कि मुन्ने यह लो चन्दा; इससे जी-भरकर खेलो — तुम यही चाहते थे न।**

मेरे लेखोंमें से कुछ इधरसे और कुछ उधरसे पढ़कर लेखकने स्पष्टतः मेरी स्थिति-को गलत समझ लिया है। विधानसभा प्रवेशके सम्बन्धमें मेरे अब भी वे ही विचार बने हुए हैं जो १९२०–२१मे थे। मै कौसिल प्रवेशका समर्थक नहीं हूँ; लेकिन मैं व्यावहारिक आदमी होनेका दावा करता हूँ। जो बाते मेरे सामने स्पष्ट हैं उनकी ओरसे मैं अपनी आँखें नहीं मूँदता और उनसे इनकार नहीं करता। मैंने इस बातको देख-समझ लिया है कि मेरे कुछ सर्वोत्तम मित्र और सहयोगी जो १९२०–२१मे मेरे साथ थे अब दूसरी नावपर जा बैठे हैं और उन्होंने अपना मार्ग बदल दिया है। वे भी राष्ट्रके उतने ही अच्छे प्रतिनिधि हैं जितना कि मैं खुदको माननेका दावा करता हूँ। अतएव मेरे लिए यह निर्णय करना कि मैं अपने मार्गको उनके मार्गके साथ कहाँतक जोड़े रहूँ, जरूरी हो गया है। चूँकि विधानसभा प्रवेशकी बात एक अनिवार्य तथ्य बन चुका था, इसलिए मुझे अपने सहयोगियों अर्थात् स्वराज्यवादियोंको इसमें जितनी भी मदद मुझसे हो सके, देनेमे कोई हिचकिचाहट नहीं मालूम हुई, ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार कि मैं खुद शान्ति चाहनेवाला हूँ, फिर भी सत्ता हथिया लेनेवाले यूरोपीयोंके खिलाफ बहादुर रिफोंके[1] प्रति सहानुभूति प्रदर्शित किये बिना नहीं रह सकता।

मालवीयजी और लालाजी

हिन्दू महासभाके एक उत्साही सदस्यने मेरे पास 'यंग इंडिया' और 'नवजीवन' में उत्तर दिये जानेके विचारसे १५ प्रश्न भेजे हैं। एक दूसरे महाशयने इन्हीं प्रश्नोंमें निहित ढंगके तर्क देते हुए कई विषयोंपर अपने विचार व्यक्त किये हैं। मैं उन सब प्रश्नोंके उत्तर तो नही देना चाहता, लेकिन उनमें कुछ ऐसे हैं जिन्हें छोड़ा नहीं जा सकता; क्योंकि उन प्रश्नोंमे पण्डित मदनमोहन मालवीयजी और लालाजीपर वर्तमान-पत्रोंमे जो आक्रमण हो रहा है, उस ओर मेरा ध्यान खींचा गया है। सम्बन्धित प्रश्न इस प्रकार हैं:

१. मोरक्कोकी एक जाति।

क्या आपके मनमें उनके नेक उद्देश्योंके बारेमें कोई शंका है? क्या आपका यह खयाल है कि वे प्रत्यक्ष या परोक्ष रूपसे हिन्दू-मुस्लिम ऐक्यके विरोधी हैं? क्या आप मानते हैं कि वे देशको जानबूझकर किसी भी प्रकारकी हानि पहुँचा सकते हैं?

मैंने देखा है कि देशके इन भक्तोंपर ऐसे आरोप लगाये जाते रहते हैं। मैं यह भी जानता हूँ कि इन दोनों प्रसिद्ध सार्वजनिक कार्यकर्त्ताओंके प्रति मेरे बहुतसे मुसलमान मित्रोंके दिलोंमे पूरा-पूरा अविश्वास है। लेकिन, मैं बहुतेरी बातोंके बारेमें उनसे कितना ही मतभेद क्यों न रखूँ, इन दोनोंमे से किसी एकके लिए भी मेरे मनमे अविश्वासकी भावना कभी नहीं आई। हाँ, यह जरूर है कि मैंने मुसलमानी क्षेत्रोंमे मालवीयजी और लालाजीपर आक्षेप होते हुए देखे हैं और उसी प्रकार हिन्दू क्षेत्रोंमें कुछ प्रमुख मुसलमानोंपर भी ऐसे आक्षेप होते हुए देखे हैं। मैं उनमे से किसी भी पक्षके आक्षेपोंको सच नहीं मान पाया हूँ। लेकिन मैं किसी भी पक्षको अपना मन्तव्य समझा सकनेमे सफल नहीं हो पाया हूँ। मालवीयजी और लालाजी दोनों ही देशके कसे हुए सेवक हैं। ये दोनों महानुभाव बहुत दिनोंसे लगातार देशकी प्रशंसनीय सेवा करते आये हैं। उनके और मेरे बीच किसी प्रकारका दुराव-छिपाव नहीं रहा है, और मुझे एक भी ऐसा अवसर याद नहीं आता कि जब मैंने उन्हें मुसलमानोंके विरोधीके रूपमे पाया हो। मेरा आशय यह नहीं है कि उन्होंने मुसलमान नेताओंका अविश्वास नहीं किया; और न यह कि इस बड़ी कठिन और नाजुक समस्याके समाधानके सम्बन्धमे हम लोग एकमत हैं। उन्हें ऐक्यकी आवश्यकताके बारेमें कुछ भी सन्देह नहीं रहा है और उन्होंने अपने-अपने विचारोंके अनुसार ऐक्यके लिए प्रयत्न भी किया है। मेरी रायमें तो इन नेताओंके उद्देश्यके सम्बन्धमें शंका करना ऐक्यके ही घटित होनेके सम्बन्धमे शंका करना है। जब हम लोग समझौता करेंगे — और किसी-न-किसी दिन हमे यह करना ही होगा — उस समय उनकी बातोंका हिन्दू समाजमें उतना ही महत्व माना जायेगा जितना कि मुसलमानोंमें, उदाहरणार्थ मौलाना अबुल कलाम आजाद और हकीम साहबकी बातोंका माना जायेगा। निस्सन्देह प्रत्येक सार्वजनिक कार्यकर्त्ताको मैं यही सलाह देता हूँ कि जबतक किसी कार्यकर्त्ताके विरुद्ध कोई निश्चित प्रमाण न मिले तबतक उसके द्वारा कहे गये शब्दोंको ही विश्वासका आधार मानना चाहिए। विश्वास रखनेवालेका इससे कुछ भी नहीं बिगड़ता है। शंका और अविश्वासके वातावरणमें सार्वजनिक जीवन यदि असम्भव नहीं तो असह्य अवश्य हो जाता है।

खादी प्रदर्शनी

एक महाशयने पत्र लिखकर पूछा है कि कांग्रेस अधिवेशन सप्ताहके दरम्यान कानपुरमें जो खादी प्रदर्शनी होनेवाली है उसमे चरखेके सूत तथा विदेशी या देशी मिलोंमें बने सूतके मिश्रणसे तैयार की गई खादी या दरियाँ भी रखी जा सकेंगी या नहीं? बेलगाँवमें भी इसी प्रकारका प्रश्न उठा था और उस समय यह निर्णय

किया गया था कि केवल शुद्ध खादी ही प्रदर्शनीमें रखी जा सकेगी और यह भी निर्णय हुआ था कि ऐसी कोई भी वस्तु जिसमें विदेशी या देशी मिलका सूत मिला होगा उसे वहाँ न रखा जा सकेगा। आज भी यही ठीक है। इस स्थितिमें कोई फर्क नहीं पडा है; और मैं यह पूर्ण विश्वासके साथ कह सकता हूँ कि खादी प्रदर्शनीमें शुद्ध खादीके सिवा और कुछ भी रखना एक प्रकारसे धोखा देना है।

चरखेकी शक्ति

आचार्य रामदेवने मुझे जो अनेक बातें लिख भेजी हैं, उनमें से एक यह भी है:

> **मुझे निश्चय हो गया है कि जबतक ब्रिटेनके लोगोंका उद्देश्य वही बना है तबतक भारतपर वे अपना आधिपत्य नहीं छोड़ेंगे — और उनका उद्देश्य है आर्थिक शोषण। देशकी दौलतका बाहर जाने देना कारगर ढंगसे बन्द करना केवल एक ही उपायसे सम्भव है, और वह है खद्दर। हमारे गुरुकुलमें माध्यमिक विभागके सभी तथा उच्च श्रेणियोंके बहुतेरे विद्यार्थी कताई जानते हैं। माध्यमिक श्रेणीके अधिकांश तथा उच्च श्रेणीके काफी विद्यार्थी नित्य सूत कातते हैं। हमारे वेद महाविद्यालयके प्रधानाचार्य श्री पण्डित देवशर्मा विद्यालंकार प्रतिदिन सूत कातनेवालोंमें से हैं और निष्ठाके साथ नित्य चरखा चलाते हैं। हमारी संस्थाके दो या तीन प्राध्यापक भी ऐसा ही करनेका प्रयत्न करते हैं। आपके तथा मेरे भावी मिलनके अवसरपर शायद मैं भी आपको एक कर्तैयेके रूपमें दीख पड़ूँ। प्राचार्य विद्यावती कन्या गुरुकुल दिल्लीमें कताई शिक्षामें सुधार करनेके लिए उत्सुक हैं। वे वहाँ बुनाई भी चालू करनेकी इच्छुक हैं।**

आशा है कि आचार्य रामदेव अपना वचन पूरा करेंगे और अगली बार जब मेरी उनसे मुलाकात होगी तब मैं देखूँगा कि वे जितने बड़े विद्वान् हैं उतने ही कुशल कर्तैये भी हैं। मैं उन विद्यार्थियों और प्राध्यापकोंको, जो यज्ञके रूपमें नित्य कातते हैं, बधाई देता हूँ।

केनियाके हिन्दुस्तानी सावधान हों

गुरुकुल काँगड़ीके आचार्य श्री रामदेव पूर्वीय आफ्रिकामें कोई छः महीने रहकर अभी लौटे हैं। वे वहाँ रहनेवाले हिन्दुस्तानियोंके दैनिक जीवनका बड़ा दुःखमय चित्र खींचते हैं। उन्होंने मुझे बताया है कि वहाँ बहुतसे हिन्दू-मुसलमानोंने शराब पीना शुरू किया है और वे उन बहुतेरी विदेशी चीजोंका इस्तेमाल करने लगे हैं जिनका कि उपयोग किये बिना उनका काम चल सकता है। स्थानीय कांग्रेसकी आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं है। उनका यह भी कथन है कि नेतागण नेतृत्व नहीं कर रहे हैं। उन्होंने अन्य आक्षेप भी किये हैं और उन्हें प्रकाशित करनेका मुझे अधिकार भी दिया है लेकिन अभी मैं उन्हें प्रकाशित नहीं कर रहा हूँ। मैं चाहता हूँ कि मैं उनके सुझावके अनुसार किसीको पूर्वीय आफ्रिका भेजकर उनके आक्षेपोंके बारेमें जाँच-पड़ताल कराऊँ। लेकिन मुझे अफसोस है कि कमसे-कम फिलहाल तो यह करना मेरे लिए सम्भव नहीं है। फिर भी मैं केनियाके हिन्दुस्तानियोंसे यह प्रार्थना अवश्य करूँगा कि वे अपने

बीचके दोषोंको दूर करे। जो बातें इस टिप्पणीमें नहीं लिखी गई हैं उन्हें भी समझ लें और अपनेको व्यवस्थित करें। जिन लोगोंने शराब पीना आरम्भ कर दिया है उन्हें इस आदतको छोड़ देना चाहिए और जो इस आदतसे बचे हुए हैं उनको चाहिए कि वे वहाँके मद्यपान करनेवाले बन्धुओंको इस बुराईसे दूर रहनेके लिए कहें।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १७-१२-१९२५

६६. पत्र : वालजी गो० देसाईको

वर्धा

गुरुवार [१७ दिसम्बर, १९२५][1]

भाईश्री ५ वालजी,

आशा है, आपने चौंडे बाबाको पत्र लिख दिया होगा। दिन नियत होनेकी सूचना मुझे भी दें। आप जब आयें तब हिसाबकी बहियाँ, सदस्योंके नाम-धाम आदि लायें। मैंने संविधान पढ़ लिया है। हमें अब वार्षिक बैठक बुलानी चाहिए।

हमें एक अच्छी कार्यकारिणी समिति नियुक्त करनेकी जरूरत है, इसपर भी विचार कर लेंगे।

मोहनदासके वन्देमातरम्

गुजराती पत्र (सी० डब्ल्यू० ७७४२) से।
सौजन्य : वालजी देसाई

६७. पत्र : मूलचन्द अग्रवालको

वर्धा

पोष शुक्ल २ [१७ दिसम्बर, १९२५][2]

भाई मूलचन्दजी,

आपका पत्र मीला है। खद्दर पहननेमे सरकारका कोई विरोध नहिं होता है। नमकहराम उसीको कहा जाय जो जिस कार्यके लीये तनखा पाता उसीको न करे जैसे की डाकवाला खतोंको नियमसर न दे या तो उसका नाश करे। परंतु डाकवाला राष्ट्रीय कामोंमें हिस्सा लेवे उसमे कुछ अधर्म नहि करता है।

१. १० दिसम्बरसे २१ दिसम्बरतक गांधीजी वर्धामें थे। देखिए "पत्र : घनश्यामदास बिड़लाको", ४-१२-१९२५।

२. यह तिथि मूल पत्रपर नीचे लिखी हुई है।

भीष्मादिने कौरवोका साथ दीया वह तो ऐसा कहकर की वे पेटके लीये करते थे। उसमे कोई नीति नहीं थी। विदुरजीने हिस्सा न लीया वह पापकी बात न थी। विभीषणने दुष्ट भाईका साथ छोड़ दीया वह पुण्य कर्म था।

आपका,
मोहनदास गांधी

मूल पत्र (जी० एन० ७६६) की फोटो-नकलसे।

६८. पत्र : केशवदेव नेवटियाको

वर्धा
पौष शुक्ल ३ [१८ दिसम्बर, १९२५][१]

भाई केशवदेवजी,

चि० कमला और चि० रामेश्वरकी शादी साबरमतीमे करना मुझको ज्यादा अच्छा प्रतीत होता है। दूसरोंपर असर डालनेके प्रलोभनसे मैंने बम्बईमे शादी करनेमे संमति चार मास पूर्व दी थी। परन्तु विचारनेके बाद मुझे ऐसा लगता है कि हमारे केवल वर कन्याके भले की दृष्टिसे ही ऐसी बातोंका निर्णय करना चाहिये। विवाह धार्मिक विधि है। वर-कन्याके लिये एक नया जन्म है। उसको जितनी शांतिसे और जितने धार्मिक वायुमें किया जाये इतना उनके लिये बेहतर है। ऐसा वायु तो जब हम आडंबरको छोड़ें और शांतिमय रहें तब ही पैदा हो सकता है। संभव है कि स्त्री वर्गको कुछ क्लेश होगा। इस क्लेशको क्षणिक समझ कर जो उचित है उसीको करना हमारा कर्त्तव्य है ऐसी मेरी मति है। इसलिये मैं चाहता हूँ कि आप भी साबरमतीमें विवाह करनेम सम्मति दें। मुझको वहाँ विवाह होनेमें न कोई उपाधि है न कष्ट है।

आपका,
मोहनदास गांधी

पांचवें पुत्रको बापूके आशीर्वाद

१. पुस्तकमें प्राप्य जमनालाल बजाजकी डायरीके अनुसार वे ३०-१-१९२६ से पहले केशवदेव नेवटियासे मिल चुके थे और आश्रममें ही कमला तथा रामेश्वरका विवाह करना निश्चित कर चुके थे।

६९. पत्र : पूँजाभाईको

वर्धा
पौष बदी ३ [१८ दिसम्बर, १९२५][1]

भाई पूँजाभाई,

तुम बहुत नियमपूर्वक पत्र लिख रहे हो। यह बात तुम्हारा कल्याण करेगी। मुझे आशा है कि तुमने बालकृष्णके प्रवचनका जो व्यवस्थित विवरण रखा है, उसे मैं पढ़ सकूँगा। यदि अन्य लोग तुम्हारे काममें अव्यवस्था पैदा करें तो तुम उन्हें विनयपूर्वक ऐसा न करनेके लिए कहना। यदि तुम्हारे कहनेके बावजूद अव्यवस्था रहे तो उसे अनिवार्य समझकर उसके प्रति सहिष्णुताका भाव रखना लेकिन उनपर कभी क्रोध न करना। भजनोंपर पूरी तरह विचार करना।

बापूके आशीर्वाद

[पुनश्च :]

न पचनेके कारण तुम्हारा आहार कम हो जाये तो चिन्ताकी कोई बात नहीं। शरीरकी शक्ति कम मत होने देना।

गुजराती पत्र (सी० डब्ल्यू० १८७) से।
सौजन्य : नारणदास गांधी

७० मेरा धर्म

'मेरा धर्म' क्या है मेरे बहुतसे मित्र मुझे यह बताते रहते हैं। मुझे उनका ऐसा करना अच्छा लगता है। वे मुझे निस्संकोच लिखते हैं, इससे उनका मेरे प्रति प्रेम और मुझपर उनका यह विश्वास व्यक्त होता है कि उनके कहनेका मुझे दुख नहीं होगा। ऐसा एक पत्र मुझे अभी मिला है। पत्र लिखनेवाले हैं प्रसिद्ध गुजराती कार्यकर्त्तागण जो अपने-अपने जिलेके नेता हैं। पाठक यह तो सहज ही समझ सकते हैं कि उन्होंने यह पत्र सद्भावसे प्रेरित होकर ही लिखा है।

इसलिए मैं इस पत्रको यहाँ कुछ छोटा करके प्रकाशित कर रहा हूँ :[2]

१ डाकखानेकी मुहरमें साबरमती, २१ दिसम्बर, १९२५ तारीख है, १९२५ में पौष बदी ३, १३ जनवरी को थी; इसलिए तिथिमें बदी सुदीके बजाय लिख दी गई जान पड़ती है।

२. यहाँ नहीं दिया गया है। पत्र लिखनेवाले सज्जनोंने सुझाव दिया था कि गांधीजी अमेरिका, यूरोप और आफ्रिकामें एक वर्ष भ्रमण करें।

यद्यपि यह पत्र सद्भावसे लिखा गया है और प्रथम बार पढ़नेपर यह तथ्य-पूर्ण मालूम होता है; फिर भी मैं इन भाइयोंकी सलाहके मुताबिक काम नहीं कर सकता।

धर्मशास्त्र डंकेकी चोट कहते हैं कि विगुण होनेपर भी स्वधर्म अच्छा होता है। परधर्म भले ही उससे बढ़कर हो, लेकिन स्वधर्मपर चलते हुए मरना भी उचित है। परधर्मपर चलना तो भयावह है।[1] यदि आज लोगोंको मेरी बात ठीक न लगे तो क्या मैं इससे मैदान छोड़कर भाग सकता हूँ? 'असहयोग' की कल्पना तो मेरी अकेले ही की थी। मैं यह भी नहीं जानता था कि लोग उसको कितना स्वीकार करेंगे। मैंने जिसे धर्म समझा उसीके अनुसार कार्य किया और दूसरोंको भी वैसा ही करनेको कहा। उसकी ओर बहुतसे लोग आकर्षित हुए। यदि आज उनका उसके प्रति आकर्षण नहीं रहा तो इससे क्या होता है? क्या इस कारण मुझे अपना धर्म छोड़ देना चाहिए? यदि मैं अपना धर्म छोड़ दूँ तो उससे मेरी सेवा-भावनामें बट्टा लगेगा। असहयोगमें मेरा विश्वास तो आज भी वैसा ही है जैसा उसके जन्मके समय था।

चढ़ाव और उतार तो संसारमें आते ही रहते हैं। चढ़ावसे फूल जाना और उतारसे घबड़ाना क्यों चाहिए? जिसके हाथमें पतवार न हो वह अपनी नौकाकी दिशा भले ही बदले। मेरी नौकाकी पतवार मेरे वशमें है, इसलिए मैं तो निर्भय हूँ।

जनतामें खादीका प्रेम कम नहीं हुआ है, बल्कि बढ़ा है। लोगोंमें खादीके प्रति जो मोह था वह खत्म हो गया है। और अब उनका खादी प्रेम ज्ञानमें परिणत हो गया है। देशमें इस समय खादीकी किस्म कुल मिलाकर सुधर रही है और उसकी खपत बढ़ रही है। मुझे यह प्रतीत होता है कि सरकारसे जिसका कोई सम्बन्ध नहीं है, ऐसी सार्वजनिक प्रवृत्तियोंमें इतनी जीवन्त प्रवृत्ति दूसरी कोई नहीं है। यह बात आँकड़ोंसे सिद्ध की जा सकती है। यह सच है कि कुछ जगहोंमें 'कातने और धुननेका कार्य' बन्द हो गया है, फिर भी जितना सुसंगठित वह आज है उतना सुसंगठित गत चार वर्षोंमें कभी नहीं था।

हिन्दुओं और मुसलमानोंका प्रश्न कुम्हारके चाकपर रखे मिट्टीके लौदेंकी तरह है। यह ईश्वर ही जानता है कि उसका गोल बनेगा या गागर। लेकिन जनतामें जो असीम जागृति आई है उसे देखते हुए आजका परिणाम दुःखद होनेपर भी अजब नहीं है। सारा मैल सतहपर तैर आया है; इसलिए वही हम सब लोगोंको दिखाई दे रहा है। हिन्दू और मुसलमान आज जो बात समझानेपर भी नहीं कर रहे हैं, वे उसीको मजबूर होकर करेंगे। उनके लिए ऐक्यके सिवा दूसरा कोई मार्ग है ही नहीं और मैं इसीलिए इस सम्बन्धमें निश्चिन्त होकर बैठ गया हूँ। हमारे भाग्यमें और चार छः लड़ाइयाँ लड़नी बदी होंगी तो हम लड़ लेंगे। संसारके इतिहासमें यह कोई नई बात न होगी। भाई-भाई लड़ते भी हैं और मिल भी जाते हैं। जब शान्तिका युग आयेगा, तब लड़ना जंगलीपन मालूम होगा, लेकिन आज तो लड़नेकी गिनती सभ्यतामें होती है।

१. श्रेयान्स्वधर्मो विगुणः परधर्मात्स्वनुष्ठितात्। स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः ॥

अस्पृश्यता दिन-प्रतिदिन कम होती जा रही है। उसका प्राण चला गया है। अब केवल निर्जीव शरीर ही दिखाई दे रहा है।

आज स्वराज्य प्राप्तिके प्रयत्नोंमे भी जो मतभेद होता जा रहा है, उससे हमे निराश होनेका कोई कारण नहीं है। स्वतन्त्रता प्राप्त करनेवाले सभी राष्ट्रोंमें ऐसी स्थिति आती है। उसपर विचार करना और उसके निराकरणके लिए प्रयत्न करना हमारा कर्त्तव्य है; लेकिन उससे हार मान बैठना तो हमारी कायरताका ही सूचक होगा।

यहाँसे हारकर अमेरिका जानेवाला मनुष्य अमेरिकाको क्या देगा अथवा वहाँसे क्या लायेगा? अमेरिका अथवा यूरोपका मेरे प्रति जो मोह है, उससे मैं भुलावेमे नहीं पड़ सकता। पश्चिमसे सहायताकी भीख माँगनेसे हमे कुछ भी लाभ नही होगा। मैं पश्चिमका प्रमाणपत्र लेकर यहाँ वापस आऊँ, तो यह मेरे लिए और भारतके लिए भी लज्जाकी बात होगी। अभी फिलहाल तो मुझे अमेरिका या यूरोप जानेका कोई भी कारण दिखाई नहीं दे रहा। कोई भी यह खयाल न कर ले कि अमेरिका या यूरोपके नेता मुझसे मिलनेके लिए या मेरी बाते सुननेके लिए बेचैन हैं। वहाँ मेरी जो-कुछ प्रतिष्ठा है वह ऐसे लोगोंम है जिनकी आवाज नक्कारखानेमे तूतीकी आवाजके समान है। जान पड़ता है उन बेचारोंको भी मेरे ही समान कोई काम नहीं है; इसलिए वे हवाई किले बनाते और संसारको सुधारनेकी योजनाएँ गढ़ते रहते हैं। जबतक मुझमे सत्य और अहिंसा होगी तबतक मैं उनका प्रेमपात्र बना रहूँगा। लेकिन पाठक यह समझ लें कि पश्चिमी देशोंकी सत्ताकी बागडोर उनके हाथमे नहीं है। मेरा जो-कुछ भी बल है वह यहीं कामका साबित हो सकेगा। 'दूरके ढोल सुहा-वने' मालूम होते हैं। मैं यहाँसे हटते ही स्थानभ्रष्ट हो जाऊँगा; और स्थानभ्रष्ट व्यक्तिका संसारमे कोई स्थान नहीं होता।

इस समय आफ्रिकामें भी मेरा कुछ वश न चलेगा। 'काबे अर्जुन लूटियो, वही धनुष वही बाण,' ऐसी ही मेरी स्थिति समझे। वहाँ आज मेरा कृष्ण मेरे साथ न होगा। सहज प्राप्त युद्धमें ही सैनिक प्रतिष्ठा पाता है। जो युद्धकी खोजमें फिरता है, वह जुआरी है। मैं यह कह सकता हूँ कि मैंने आजतक जुआ कभी नहीं खेला। एक बार जुएका खेल खेला भी था; किन्तु मैं उसमे सद्भाग्यसे हारा ही था।

यदि भारत और भारतके नेता मुझसे थक गये हैं तो मेरे लिए केवल हिमालयका ही मार्ग बचा है। हिमालय अर्थात् धवलगिरी नहीं। मेरा अभिप्राय अपने हृदयके हिमालयसे है। उसकी किसी गुफामे बैठ जाना मेरे लिए बहुत ही आसान है। लेकिन मैं उसे भी ढूँढ़ने नहीं जाऊँगा; बल्कि वही मुझे ढूँढ़ लेगी। जो भक्त है वे ईश्वरके पास नहीं जाते। यदि जायें तो वे उसका तेज सहन नहीं कर सकते। इसीलिए ईश्वर ही भक्तोंके पास आता है। और वे जिस भावसे उसे भजते हैं, वह उन्हें उसी रूपमें दर्शन देता है। मेरा ईश्वर जानता है कि मैं उसीकी प्रतीक्षामें बैठा हूँ। मेरे लिए तो उसका इशारा ही काफी होगा।

'काचे रे तांतणे मने हरिजीये बांधी—जेम ताणे तेम तेमनी रे।'

"मुझे हरिने कच्चे धागेसे बाँध लिया है। वे जिस प्रकार चाहें मुझे नचायें। मैं उन्हींकी हूँ।" मीराबाईने यह गाया है। मैं मीराबाईका शिष्य हूँ; इसलिए किंचित परिवर्तनके साथ मुझे भी इसे गानेका अधिकार है। इस धागेके इशारेपर नाचनेके लिए मैं सदा तत्पर रहता हूँ और इसलिए सदा ही सूतका धागा कातता रहा हूँ और 'मनके मुसाफिर'को यह याद दिलाता रहता हूँ कि उसे अपने देशकी ओर रवाना होनेके लिए सदा तैयार रहना है, फिर वह देश चाहे हृदयकी गुफा हो, चाहे कोई अन्य अनजान देश। जहाँ जाऊँगा वहाँ मेरा प्रभु तो होगा ही; इसलिए मैं निर्भय हूँ।

मैं हर जिलेमें खादीकी दूकानें तत्काल खोल दे सकता हूँ। किन्तु इसके लिए प्रत्येक जिलेके कार्यकर्त्ताओंको यह यकीन दिलाना चाहिए कि वे एक निश्चित मात्रामें खादीकी बिक्री तो अवश्य ही कराते रहेंगे। इस सम्बन्धमें विशेष जानकारी प्राप्त करनेके लिए तो खादी मण्डलको लिखा जाना चाहिए।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, २०-१२-१९२५

७१. टिप्पणियाँ

कालीपरज सम्मेलन

कालीपरज और भील, इन दोनों जातियोंके दो सम्मेलन हाल ही में हुए थे। भील सम्मेलनकी रिपोर्ट तो मैंने नहीं देखी है, कालीपरज सम्मेलनकी रिपोर्ट देखी है; क्योंकि भाई जुगतरामने वह 'नवजीवन'में प्रकाशनके लिए भेजी है। मैं उसे नीचे देता हूँ।[1] दोनों कौमोंमें अच्छा काम हो रहा है। दोनोंमें कुछ साम्य है। दोनोंमें अच्छा काम करनेवाले लोग हैं। इन दोनोंकी सेवाके द्वारा हम स्वयं अपनी सेवा करेंगे। भगवान करे, दोनों कौमें जागृत हों और देशकी सेवा करनेमें भाग लें। स्वयं मनुष्य बनना, मानव जातिकी कम सेवा नहीं है। आशा है कि ये जातियाँ मद्यपान आदि त्याग देंगी, समाजमें अपना योग्य स्थान ग्रहण करेंगी और कर्त्तव्यपरायण बनेंगी। कार्यकर्त्तागण उन्हें इस कार्यमें सहायता देंगे।

भंगी भोज

श्री मोहनलाल पण्ड्या लिखते हैं:[2]

मैं उम्मीद करता हूँ कि भंगी भाई अपनी ली हुई प्रतिज्ञाका पालन करेंगे।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, २०-१२-१९२५

१. यहाँ नहीं दी गई है।

२. यहाँ नहीं दिया गया है। इसमें अन्य बातोंके अलावा यह बताया गया था कि भंगियोंने कुछ बुरी आदतोंको छोड़नेका निश्चय किया है।

७२. पत्र : सरोजिनी नायडूको

२० दिसम्बर, १९२५

हम कानपुरमें एक नारी द्वारा पुरुषके पदच्युत किये जानेके समय मिलेंगे! उससे पहले यह मेरा अंतिम पत्र होगा। तुम्हारे शब्द, भगवान करे, बिलकुल खरे साबित हों और तुम भारतीय नारीत्व और हिन्दुत्वकी शोभा बनो। तुम्हारे शब्द, हिन्दू, मुसलमानोंके जख्मपर मरहमका काम करें। तुम इतनी महान् हो कि कायरता-पूर्ण कार्योंके प्रदर्शनपर ध्यान ही नहीं दोगी।

[अंग्रेजीसे]

महादेव देसाईकी हस्तलिखित डायरीसे।
सौजन्य: नारायण देसाई

७३. मथुरादास त्रिकमजीको लिखे पत्रका अंश

२० दिसम्बर, १९२५

तुम्हें कितने दिनतक आराम करना है, उसकी गिनती आज ही क्यों लगाये? जबतक तुम्हारा शरीर नीरोग नहीं होता तबतक तो तुम्हें आराम करना ही है। हम पहले आवश्यक उपाय करें; फिर अधीर होनेका कोई कारण ही न रहेगा।

[गुजरातीसे]

बापुनी प्रसादी

७४. भाषण: वर्धामें[1]

२१ दिसम्बर, १९२५

मुझे दक्षिण आफ्रिकासे आये दस वर्ष हो चुके हैं। इस बीच यहाँ मुझे लोगोंके सैकड़ों पत्र मिले और मैंने उनके उत्तर भी दिये, 'यंग इंडिया' तथा 'नवजीवन' में भी अनेक बार स्पष्टीकरण किया। तथापि अब वर्धा आश्रममें आ जानेपर भी मुझसे केवल वे ही सब बातें पूछी जा रही हैं। इससे मुझे पुरानी बातें याद आ गईं और मन बहुत दुःखी हुआ। मैं यह नहीं कहता कि सवाल मनमें नहीं आने चाहिए। सवाल उठें तो लोगोंको यहाँ आकर विनोबासे उन्हें पूछ लेना चाहिए। लेकिन मुझे दुःख इस बातका होता है कि सवाल पूछनेका रोग व्यापक हो गया है। ऐसे सवाल

१. यह भाषण वर्धासे रवाना होनेसे पहले आश्रमकी प्रातःकालीन प्रार्थना-सभामें दिया गया था।

पूछनेका अवसर ही उपस्थित नहीं होना चाहिए। आप मेरे कहनेके अभिप्रायको ठीक-ठीक समझें। मैं यह कहना चाहता हूँ कि ऐसे सवाल मनमें तो अवश्य हैं, लेकिन हमें उन्हें अपने मनमें ही दबाना चाहिए। हजारों वर्ष पहले जब कुरुक्षेत्रमें युद्ध हुआ था तब अर्जुनको जो शंका हुई थी भगवानने उसका निराकरण 'गीता' द्वारा किया था। लेकिन यह कुरुक्षेत्रका युद्ध हमारे मनमें सदैव चलता रहता है और चलता रहेगा और हमारी अन्तरात्मा अर्थात् योगेश्वर कृष्ण जीवरूपी अर्जुनको दिशाका भान करानेके लिए सदा मिलते ही रहेंगे, तथा सदा ही आसुरी सम्पत्तिरूपी कौरवोंकी हार और दैवी सम्पत्तिरूपी पाण्डवोंकी विजय होगी। लेकिन जबतक यह विजय नहीं मिल जाती तबतक हृदयमें श्रद्धापूर्वक इस युद्धको चलने देना चाहिए और मनको शान्त रखना चाहिए। यह ठीक है कि किसीके भयसे अन्तःप्रेरणाको दबाये नहीं रखना चाहिए; लेकिन यदि अन्तःप्रेरणा यह पूछे कि ईश्वरको किसने पैदा किया तो शान्त रहना चाहिए, क्योंकि यह पूछना नास्तिकता है, ऐसा समझना चाहिए; हृदयसे ही उसका उत्तर मिल जायेगा, ऐसी श्रद्धा रखनी चाहिए।

ईश्वरने जो यह शरीर दिया है वह बन्दीघर भी है और मुक्तिका द्वार भी; और यदि हमें इसका उपयोग मुक्तिके द्वारके रूपमें ही करना हो तो हमें इसकी मर्यादा समझनी चाहिए। हमारी इच्छा आकाशके तारोंको अपनी बाहोंमें समेट लेनेकी भले ही हो; लेकिन हमें समझना चाहिए कि हममें वैसी शक्ति नहीं है; क्योंकि हमारी आत्मा पिंजरेमें बन्द है, उसके पंख कटे हुए हैं और वह जितना ऊँचा उड़ना चाहती है उतना ऊँचा उड़ नहीं सकती। इसमें अनेक सिद्धियोंको प्राप्त करनेकी शक्ति है; लेकिन वह सिद्धियाँ प्राप्त करनेके प्रयत्नमें मुक्तिको खो बैठती है। इसलिए मुझसे उस दिन जैसे अन्तिम प्रश्न पूछे गये थे वैसे अमूर्त प्रश्नोंका पूछना बन्द कर दिया जाना चाहिए। यह निश्चय रखना चाहिए कि धीरे-धीरे अन्तरात्माको अपनी शक्तिसे ही इन प्रश्नोंका उत्तर मिल जायेगा। ऐसे अति प्रश्नोंकी चर्चा करनेके बजाय तो इस वचनके अनुसार आचरण करना चाहिए कि 'आजका लाभ लो; कल किसने देखा है।' यह वचन चार्वाकके वचन-जैसा लगेगा। चार्वाकने कहा था। 'यावज्जीवेत् सुखं जीवेत्, ऋणं कृत्वा घृतं पिबेत्, भस्मीभूतस्य देहस्य पुनरागमनम् कुतः;' लेकिन पहलेका वचन चार्वाकका वचन नहीं है। वह तो भक्तोंका वचन है। 'आजका लाभ लो' कहनेसे उसका मतलब है, हमारे सामने आज जो कर्त्तव्य है, हम उसे पूरा करें; क्योंकि हम कल रहेंगे अथवा नहीं यह कौन जानता है; हालाँकि वहीं आगे यह कहा गया है कि पुनर्जन्म होगा। उस दिन विनोबाने समझाया था कि यह कर्त्तव्य है, 'दुःखतप्तानाम् प्राणिनामार्तिनाशनम्', समस्त पीड़ित प्राणियोंकी पीड़ाका — जन्म-मरणके बन्धनोंका — नाश। इसका एक ही साधन है — भक्ति। इंग्लैंडके एक भक्त पुरुष न्यूमैन कह गये हैं, 'मेरे लिए एक पग आगे बढ़ना ही पर्याप्त है।' लगता है, मानो इस छोटी-सी पंक्तिमें सारा दर्शन भरा हो। यह एक पग है धैर्ययुक्त निश्चयात्मक भक्ति। यदि बीमार आदमी एकदम उठकर सीढ़ियोंसे उतरने लगे तो चक्कर खा कर नीचे गिर पड़ेगा। यदि हम अपनी मर्यादा न समझें और मर्यादाके बाहर ज्ञान प्राप्त करें तो वह हमें पचेगा नहीं; हमें ज्ञानका अजीर्ण ही हो जायेगा।

इसलिए हम जिस अनि प्रश्न पूछनेके रोगसे पीड़ित हैं, हम अपनेको उससे मुक्त कर लें, आजका कर्त्तव्य करें और प्रश्नोंका पूछना मुल्तवी रखें। आज जिस भजनके एक दो चरण गाये गये हैं उनमें भी यही बात कही गई है। हम मुक्ति-मुक्ति न करें, भक्ति ही करें। भक्ति बिना मुक्ति नहीं मिल सकती। इसलिए जो कर्त्तव्यपरायण रहता है, जो मनमें भक्ति रखता है उसीको मुक्ति मिलती है — मुक्ति उसीको मिलती है जो उसका खयाल भी नहीं करता।

भक्तिका अर्थ व्यवहार-मूढ़ता नहीं। जिस भक्तिसे व्यवहार-मूढ़ता आए, वह भक्ति नहीं। हाँ, यदि हमारे व्यवहारको देखकर जगत हमें मूढ़ कहे तो यह अलग बात है। भक्त तो व्यवहारमें सजग रहता हुआ भी उसमें भक्ति भर देता है। भक्तका आचार धर्मानुकूल होगा। ऐसे आचारको कृष्णने साध लिया था, इसीलिए वे पूर्णावतार माने गये। भक्तको व्यवहारमें कोई मुश्किल नहीं होती।

ऐसे धर्मानुकूल आचारका प्रचार हो इसीके लिए आश्रमोंकी स्थापनाकी जाती है। इस आश्रमकी मार्फत हम देश और धर्म, दोनोंकी उन्नतिको साधेंगे; मैंने तो यह आशा बाँध रखी है। यह आशा आज ही पूरी हो अथवा अनेक जन्मोंमें पूरी हो, इसकी परवाह नहीं। हम तो अपने निश्चित मार्गपर चलते हुए अपने कर्त्तव्यका पालन करते जायें, हमारे लिए यही पर्याप्त है। इसके लिए हमारी साधना ब्राह्मणत्व — सत्य और श्रद्धा तथा क्षत्रियत्व — शक्ति और अहिंसा, इन दोकी होनी चाहिए। मुझे विश्वास है कि इस आश्रमकी मार्फत इन दोनोंकी साधना होगी; अन्य आश्रमोंमें नहीं होगी, मैं यह नहीं कहता। इस आश्रमसे तो श्रेय होगा ही, ऐसी मेरी मान्यता है। सत्य और अहिंसाका स्वरूप हमारे लिए आज क्या है उसे समझकर उनका आचरण करें और जगतमें किसी भी सिद्धान्तमें अपवादकी गुंजाइश नहीं होती, ऐसी श्रद्धा रखें तो हम अन्तिम सत्य और अन्तिम अहिंसाको खुद-बखुद समझ जायेंगे।

मैंने ऊपर जिस कर्त्तव्यकी चर्चा की है उसका यहाँ पालन होता देखकर दस दिनोंमें मैंने जैसी शान्तिका अनुभव किया है वैसी शान्ति मुझे कहीं नहीं मिली है और इस शान्तिको छोड़कर अब फिर अशान्तिमें प्रवेश करते हुए मेरे मनमें क्या भाव उदित होता होगा, आप इसकी कल्पना कर सकेंगे। लेकिन जैसा मैंने एक मित्रसे कहा था, यदि हम बाहरकी अशान्तिसे घबरा जायें तो हमारा गीताभ्यास व्यर्थ है, — हमें शान्ति बाह्य वातावरणमें नहीं, बल्कि अपने अन्तरसे प्राप्त करनी चाहिए और इसीलिए मुझे इसकी तनिक भी चिन्ता नहीं है।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, २७-१२-१९२५

७५. पत्र : शास्त्री महाशयको

२१ दिसम्बर, १९२५

प्रिय शास्त्री महाशय,

मेरे सामने सवाल यह था कि मैं सीधे गुरुदेवको लिखूँ कि रामानन्द बाबूको या आपको। अन्तमें मैंने आपको लिखनेका फैसला किया। अब मैं इस पत्रको गुरुदेव तथा रामानन्द बाबूको दिखा देनेका काम आपपर छोड़ता हूँ।

'मॉडर्न रिव्यू' में प्रकाशित चरखेपर लिखा रामानन्द बाबूका लेख मैंने पढ़वा कर सुना। मुझे कहना पड़ेगा कि उससे मुझे गहरा दुःख हुआ। मैं जानता हूँ कि उन जैसा सज्जन व्यक्ति जानबूझकर किसीको गलत नहीं समझेगा। यह मेरा दुर्भाग्य है कि जो-कुछ मैंने अपने विचारमें शुद्धतम भावनासे लिखा है उसे उन जैसे व्यक्तिने भी किसी अन्य भावनासे लिखा गया समझा। यदि गुरुदेवने भी मेरे लेखको[1] वैसा ही समझा हो तो मैं अपनेको कभी क्षमा नहीं कर पाऊँगा।

अपनी ही स्थिति स्पष्ट करके शान्तिनिकेतनके प्रत्येक मित्रसे उस स्पष्टीकरण-को स्वीकार करनेका आग्रह कर सकना-भर मेरे हाथकी बात है। गुरुदेवकी उपाधि 'सर' का उपयोग अनजानेमें नहीं किया गया था। मैं जानता था कि गुरुदेवने उपाधिका परित्याग नहीं किया, बल्कि केवल यह कहा था कि उन्हें उससे मुक्त कर दिया जाये। उन्हें मुक्त नहीं किया गया था। इस सम्बन्धमें एन्ड्रयूजकी और मेरी बातचीत हुई भी; और हम दोनों इस परिणामपर पहुँचे थे कि उपाधिको वापस नहीं लिया गया है, इसलिए गुरुदेवके हम मित्रोंको इसे महत्व नहीं देना चाहिए; साथ ही हमने यह भी अनुभव किया था कि शिष्टाचारके ध्यानसे कभी-कभी उपाधिका उपयोग भी किया जाये। मैं जानता हूँ कि इन बहिष्कारोंको लेकर काफी जहर उगला गया है। इसलिए यह दिखानेके लिए कि उपाधिका उपयोग कोई अपराध नहीं है, मैंने सभी उपाधिधारियोंके नामके साथ उनकी उपाधियोंका उल्लेख जानबूझकर किया था। इस प्रकार मैंने गुरुदेवकी उपाधिका उल्लेख उनके प्रति सम्मानके कारण ही किया था। यों उपाधियोंका उल्लेख मैं इतने सहजभावसे करता चला गया कि इसका भान मुझे तब हुआ जब रामचन्द्रका पत्र मिलनेपर, महादेवने मेरा ध्यान इस ओर आकर्षित किया।

अब रही ईर्ष्याकी बात। रा० बाबू तथा अन्य मित्रोंको जानना चाहिए कि एक नहीं बल्कि बहुतसे बंगाली तथा कुछ गुजराती मित्रों और अन्य लोगोंने भी इस बातका उल्लेख इसी खयालसे किया है। मैं इतना और भी बता दूँ कि मैंने उनके इस पूर्वग्रहको दूर करनेकी कोशिश की थी। जब मुझे मालूम हुआ कि कुछ

१. देखिए खण्ड २८, पृष्ठ ४४१-४७।

लोगोंमें यह विश्वास साधारणतः काफी हदतक घर कर गया है, तब मैंने सोचा कि मुझे इसका उल्लेख 'यंग इंडिया'के स्तम्भोंमें करना ही चाहिए।

मुझे यह देखकर आश्चर्य हुआ कि रा० बाबूने कविकी अन्य योग्यताओंका भी उल्लेख किया है। मैं यह कहनेकी अनुमति चाहता हूँ कि उनकी अन्य योग्यताओंकी तुलना उनके अनुपम काव्यसे नहीं की जा सकती। सुधारकके रूपमें मेरा उनके साथ मतभेद रहेगा ही। किन्तु कविके रूपमें उनकी समानता कौन कर सकता है? आज दुनियामें सुधारक तो बहुतसे है, किन्तु कविताके क्षेत्रमें वे एक ही हैं; और वे इसमें उनमें कोसों आगे हैं। वे एक महान् अध्यापक भी हैं, किन्तु उन्होंने स्वयं मुझसे कहा कि उनका शिक्षा शास्त्र उनके लिए विनोद-मात्र है। उनमें चाहे और कितनी ही बड़ी-बड़ी योग्यताएँ क्यों न हों, पर उनके काव्यके साथ उन सबका उल्लेख करना उनके काव्यकी अन्यतम उत्कृष्टताकी उपेक्षा करना होगा। कमसे-कम मैं तो ऐसा ही सोचता हूँ।

अन्तमें जब मैं यह विश्वास दिलाता हूँ कि मैंने यह लेख अप्रेमपूर्ण, अमैत्रीपूर्ण अथवा आलोचनाकी भावनासे नहीं लिखा था, मैंने उसे आलोचनाको निरस्त्र करने तथा इस बातको सिद्ध करनेके लिए ही लिखा था कि मेरे साथ उनके मतभेद होनेसे उनके प्रति मेरे सम्मान और प्रेममें कोई कमी नहीं आ सकती, इसलिए कृपया आप सब लोग भी मुझे अपनेमें से एक समझें और मानें कि मैं भी कविको या उनके उद्देश्य-को कभी गलत नहीं समझ सकता। आप मेरा साथ न छोड़ें अथवा मुझे गलत न समझें। कृपया रा० बाबूसे कहें कि वे मुझे एक पंक्तिमें इतना-भर लिखकर भेज दें कि वे मेरे स्पष्टीकरणसे सन्तुष्ट हो गये हैं। कृपया आप कविसे यह आश्वासन प्राप्त करें कि कमसे-कम उन्होंने तो मुझे गलत नहीं समझा है?

आप इस पत्रको जिसे चाहे दिखा सकते हैं।

सस्नेह,

आपका,

मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

महादेव देसाईकी हस्तलिखित डायरीसे।

सौजन्य : नारायण देसाई

७६. टिप्पणियाँ

पूर्ण नशाबन्दी

श्रीयुत च० राजगोपालाचारीने एक अत्यन्त ही संक्षिप्त किन्तु प्रभावकारी घोषणा-पत्र प्रकाशित किया है। उसमें उन्होंने सिफारिश की है कि यदि पटनाके प्रस्तावकी ताईद की जाये तो वैसा करते समय पूर्ण मद्यनिषेधको कांग्रेसके कार्यक्रममें एक अलग रचनात्मक कार्यका दर्जा दिया जाये। उन्होंने एक निजी पत्रमें लिखा है कि "जनताको एकताके सूत्रमें बाँधनेवाली एकमात्र राजनीतिक शक्ति पूर्ण निषेध ही बन सकती है, बननी चाहिए, और बनी हुई है।" इसीके द्वारा ब्राह्मणों और अब्राह्मणोंको एक किया जा सकता है; सभी राजनीतिक दलोंको मिलाया जा सकता है। पूर्ण मद्यनिषेधका सम्बन्ध सीधे जनतासे ही है और इसका प्रभाव भी उसीपर पड़ेगा इसलिए वह जनताको भी पसन्द आयेगा। इसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि पूर्ण मद्यनिषेधकी बड़ी आवश्यकता है और इसके बिना शराबखोरीके अभिशापसे हजारों सुखी घरोंमें जो भयंकर बरबादी आई है वह दिनोंदिन बढ़ती ही जायेगी। इसलिए आशा है कि घोषणा-पत्रमें दिया सुझाव सम्बन्धित लोग स्वीकार करेंगे।

अमेरिकीको सन्तोष

जहाँ बहुतसे भारतीय मित्र अमेरिका जानेके निमन्त्रणको अस्वीकार करनेके लिए मुझसे नाराज हो रहे हैं; वहाँ एक आदरणीय अमेरिकी मित्र, जो भारतको अच्छी तरह जानते हैं, लिखते हैं:

> **इस देशमें आनेके लिए कुछ अमेरिकी मित्रोंकी प्रार्थनाका आपने जो उत्तर दिया है उससे मुझे बड़ा सन्तोष हुआ है। आशा है कि आप अपने इस रुखको बदलेंगे नहीं, क्योंकि आप भारतमें रहकर हमारा कहीं ज्यादा भला कर सकते हैं। हमारे यहाँके अच्छेसे-अच्छे लोगोंमें भी निरर्थक कौतूहलकी प्रवृत्ति है। मैं यह बिलकुल नहीं चाहता कि आप उसके शिकार बनें।**

मैं लेखकको विश्वास दिलाता हूँ कि निरर्थक कौतूहलको सन्तुष्ट करनेके लिए मैं कभी अमेरिका नहीं पहुँचूँगा। मैं यह बात बहुत अच्छी तरह जानता हूँ कि कुछ भी क्यों न हो, जबतक मैं भारतमें अपनी स्थिति सुदृढ़ नहीं बना लेता तबतक अमेरिका या यूरोप जानेसे पश्चिम या पूर्व किसीको कुछ लाभ नहीं होगा।

कहाँतक गिर गये!

विचित्र बात है कि जब कोई आदमी या संस्था अपनी एक स्थितिसे पीछे हटने लगता या लगती है तो फिर कभी-कभी ऐसा भी होता है कि लौटनेकी कोशिशके बावजूद भी वह अपनी मूल स्थिति प्राप्त नहीं कर पाता। इस सम्बन्धमें एक पत्र-लेखक इस प्रकार लिखता है:

हम असहयोगकी स्थितिसे फिसलकर बड़ी तेजीके साथ सहयोगकी ओर गिरते जा रहे हैं। वह समय जल्दी ही आयेगा जब हम अपना सिर ही काट फेकेंगे और धड़ ही धड़ रह जायेगा। यहाँ उन शर्तोंमें से कुछ शर्तें दी जा रही हैं जो किसी समयकी एक सुव्यवस्थित राष्ट्रीय पाठशालापर लगाई गई हैं। यदि यह पाठशाला सरकारी स्वीकृति प्राप्त करना चाहती है तो वर्तमान मुख्याध्यापकको अपने पदसे त्यागपत्र देनेके साथ ही पाठशालाकी समितिकी सदस्यतासे हट जाना चाहिए। पाठशालाके प्रबन्धमें भी वह किसी प्रकारका भाग नहीं ले सकता। वह पाठशालाके अहातेमें भी नहीं रह सकेगा। लड़कों और अध्यापकोंको राजनीतिक सभाओंमें या सरकार-विरोधी प्रदर्शनोंमें भाग नहीं लेना होगा। पाठशालाके प्रबन्ध-सम्बन्धी नियमोंको इस प्रकार परिवर्तित कर देना पड़ेगा कि भविष्यमें असहयोग किया ही न जा सके। दूसरी एक पाठशालाके लिए जो कि सरकारी स्वीकृतिकी राह देख रही है, तुरन्त आदेश जारी किये गये हैं कि उसको तबतक स्वीकृति नहीं मिल सकती जबतक कि पाठशालाके पुस्तकालयसे प्रसिद्ध भारतीय लेखकोंकी कुछ पुस्तकें न हटा ली जायें। इसी प्रकारकी अन्य कुछ अपमानजनक शर्तोंको पूरा करना भी आवश्यक है।

यह पत्र पंजाबमें मार्शल लॉके दिनोंमें निकाले गये छात्रोंपर पुनः प्रविष्ट होनेके लिए लगाई गई शर्तोंमें से एककी याद दिलाता है। ऐसा लगता है कि पाठशालाओंके अध्यापकों तथा छात्रोंने पंजाबके अनुभवसे कुछ भी नहीं सीखा है। मैं असहयोगके विरुद्ध हुई प्रतिक्रिया समझ सकता हूँ, क्योंकि यह एक ऐसा नया विचार था जिसकी सफलताको सिद्ध नहीं किया जा सका, किन्तु गुलामों-जैसे सहयोगकी बात, जैसा कि इन शर्तोंसे स्पष्ट है, समझमें ही नहीं आ सकती। हमें तो यही लगता है कि राष्ट्रीय शालाएँ चाहे अव्यवस्थित ही क्यों न हों, चाहे कच्चे टूटे-फूटे मकानमें ही क्यों न चलाई जा रही हों, वे हर हालतमें सुव्यवस्थित और शानदार इमारतोंमें चलाई जा रही ऐसी सरकारी शालाओंसे श्रेष्ठ हैं जहाँ अध्यापक और छात्र किसीका आत्मसम्मान बाकी नहीं है।

"अपने सद्गुणोंको छिपाइए"

एक पत्र-लेखक लिखते हैं :

मुझे लगता है कि आपके उपवास और प्रायश्चित्त तथा साथ ही आपकी प्रार्थनामें कुछ कमी है, इसीलिए उनका उपयुक्त प्रभाव नहीं पड़ता। त्यागको प्रभावशाली बनानेके लिए उसका विज्ञापन नहीं करना चाहिए, बल्कि उसे सर्वथा मौन रहकर गुप्त रूपसे करना चाहिए। शास्त्र कहते हैं कि सद्गुणोंको छिपाना चाहिए और पापोंको प्रकट करना चाहिए।

पत्र-लेखकके इस कथनमें बहुत-कुछ सचाई है। मेरे कुछ उपवासों, प्रायश्चित्तों और प्रार्थनाओंका उद्देश्य जनताको प्रभावित करना था, इसलिए उनकी घोषणा करनी पड़ी। किन्तु मेरे सामने एक बहुत बड़ी कठिनाई है। जब मैं जनतासे कुछ छिपाना

भी चाहता हूँ तो भी मैं उसे छिपा नहीं पाता। इसलिए ऐसी परिस्थितिमें विनम्र भावसे प्रायश्चित्त करके जितनी सान्त्वना मिलनी सम्भव है उतनी ही प्राप्त कर लेनेके सिवा कोई चारा नहीं है। यदि मैं अपने निकट आश्वस्त हूँ कि मैं अपने निजी प्रायश्चित्तों-का प्रकाशन जनतामें नहीं करना चाहता, तो मेरे लिए यही काफी है। सार्वजनिक प्रायश्चित्तोंकी वास्तविक क्षमताके बारेमें मुझे जरा भी सन्देह नहीं है, इसलिए यदि हर समय उनका तात्कालिक परिणाम नजर नहीं आता तो उससे मेरी हदतक कोई अन्तर नहीं पड़ता। यदि प्रत्येक कार्यका, चाहे वह भला हो या बुरा, मूर्त परि-णाम तत्काल ही उपलब्ध हो जाये तो आस्थाका कोई महत्व नहीं रहेगा। परिणामकी अनिश्चिततासे ही मनुष्य कसौटीपर कसा जाता है, उसीसे वह नम्र बनता है और उसीसे उसकी आस्था और ईमानदारीकी परीक्षा होती है।

अनुकरणीय

पाठक जानते हैं कि श्री शुएब कुरैशी इस समय हेजाजके प्रतिनिधि मण्डलके साथ अरब गये हुए हैं। उन्होंने मुझे चरखा मण्डलके लिए इस महीनेका सूत वहाँसे भेजा है। यदि संघके सभी सदस्य उनका अनुकरण करें और वे चाहे कहीं हों, कैसी भी स्थितिमें क्यों न हों, अपना सूत भेजते रहें, तो मण्डलका उस उद्देश्यके लिए बड़ा कल्याणकारी प्रभाव पड़ेगा जिसके लिए वह आरम्भ किया गया है। एक साथ या अपने हिस्सेका द्रव्यरूप चन्दा एक ही बारमें स्वयं या किसीके मार्फत भेजना आसान है। लेकिन अपनी मेहनतसे तैयार की हुई चीज नियमित समयपर देते रहनेके लिए संयत बुद्धि और बड़ी सावधानीकी जरूरत है। मैं आशा करता हूँ कि श्री शुएब कुरैशीकी तरह दूसरे सदस्य भी अपनी जिम्मेदारी समझेंगे।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २४-१२-१९२५

७७. दक्षिण आफ्रिकाकी समस्या

दक्षिण आफ्रिकाका शिष्टमण्डल जो कागज-पत्र अपने साथ लाया है उसे जितना अधिक पढ़ो समस्या उतनी ही अधिक मुश्किल मालूम होती है। डा० मलानका खयाल है कि प्रस्तावित कानूनसे[1] १९१४ के गांधी-स्मट्स समझौतेका कहीं भी भंग नहीं होता। उनसे मिलने जो शिष्टमण्डल गया था, उसके नेता श्री जेम्स गॉडफ्रेने, जो आज शिष्टमण्डलके सदस्यकी हैसियतसे हिन्दुस्तान आये हुए हैं, डा० मलानके इस कथनका सफलताके साथ विरोध किया था। उस समझौतेमें सत्याग्रहसे या उस संघर्षसे, जो उन दिनों पैसिव रेजिस्टेन्सके नामसे प्रसिद्ध था, सम्बन्धित विषयोंके बारेमें अन्तिम निर्णय ले लिया गया था। रंगभेद या जातिभेदके आधारपर बनाये जानेवाले कानूनोंका बनना सदाके लिए रोक देनेकी दृष्टिसे ही वह संघर्ष किया गया था। यह मुख्य

१. क्षेत्र संरक्षण तथा प्रवास पंजीयन (अतिरिक्त उपबन्ध) विधेयक।

बात उस संघर्षकी छः वर्षीय अवधिमें एक नहीं, अनेक बार प्रकट कर दी गई थी। संघर्षके दौरान ऐसा समय भी आया था कि जब स्व० जनरल बोथा और जनरल स्मट्स केवल इस शर्तपर महत्वकी हमारी तमाम बातोंको स्वीकार करनेके लिए तैयार हो गये थे कि भारतीय समाज जातिभेदके उस विरोधको छोड़ दे; इसे वे (जनरल बोथा और जनरल स्मट्स) केवल भावुकताके कारण किया गया विरोध ही मानते थे। उसके बाद अर्थात् १९०८से संघर्ष मुख्यतः इसी एक विरोधको केन्द्र मानकर चलाया जाता रहा। जनरल बोथाने उस समय यह जाहिर भी किया कि इस मुद्देपर दक्षिण आफ्रिकाकी कोई भी सरकार थोड़ी भी नहीं झुकेगी। उन्होंने यह भी कहा था कि भारतीयोंका संघर्षकी ओर आगे बढ़ना "सर्वथा अनावश्यक" कदम होगा। इसलिए यह बात तो स्पष्ट हो जाती है कि समझौतेका सार ही यह था कि भारतीयोंसे सम्बन्ध रखनेवाले किसी भी कानूनमें जातिभेदके तत्त्वको किसी भी प्रकारसे स्थान नहीं दिया जा सकता। लेकिन आज तो डा० मलानके विधेयकके प्रत्येक वाक्यसे जातिभेदकी भावना झलक रही है।

इसलिए मेरी नम्र सम्मतिके अनुसार इस विषयमें यह विधेयक उस समझौतेको स्पष्ट रूपसे भंग करता है। इसके अलावा उक्त संघर्ष भारतीयोंके सम्बन्धमें कानून बनाकर नई रुकावटें खड़ी करनेके विरुद्ध भी तो किया गया था। वह समझौता भारतीयोंके अधिक अच्छे भविष्यके मंगलाचरणके रूपमें था। तत्सम्बन्धी पत्र-व्यवहारमें तो यही बात कही गई थी। समझौतेका अर्थ क्या हो सकता है? आज यदि तत्कालीन सरकारकी मर्जीके अनुसार भारतीयोंपर नये प्रतिबन्ध लगाये जा सकते हैं तो भारतीयोंकी स्थितिपर फिर आगे कभी आक्रमण न होगा, इसका क्या भरोसा है? सरकारने यह समझौता खुशीसे नहीं किया था। आठ सालके लम्बे और डटकर किये गये उस संघर्षके बाद जिसमें हजारों भारतीयोंने बड़ी-बड़ी तकलीफें उठाई थीं, और जिसमें बहुतेरोंने अपनी जानें भी गँवाई थी, सरकारको इसे करनेपर मजबूर होना पड़ा था। उस समझौतेका अर्थ ही क्या हो सकता है, जो आज तो संघर्षके मुद्दोंके बारेमें सदाके लिए कोई निर्णय करता है लेकिन दूसरे ही दिन फिर वे ही सवाल फिरसे उठाये जाने लगते हैं? क्या वर्तमान कानूनोंपर वर्तमान हकोंके प्रति पूरा ध्यान देकर अमल इसीलिए किया जाता था कि नये कानून बनाकर उनपर फिरसे आक्रमण किया जाना है? डा० मलानकी दलील ऐसी ही मालूम होती है; और यही उनके अनुसार १९१४के समझौतेका अर्थ भी प्रतीत होता है। मन्त्री महोदयकी इस दुःखद दलीलमें सन्तोषके योग्य कुछ बात अवश्य है; वे समझौतेसे मुकरते नहीं हैं। लेकिन साथ ही वे यह भी तो कहते हैं कि उनके विधेयकसे वह भंग नहीं होता। इसलिए यह सोचना स्वाभाविक है कि यदि यह साबित हो सके कि विधेयकसे समझौता भंग होता है तो वह विधेयक वापस लिया जायेगा।

तो सवाल यह है कि जब किसी समझौतेके अर्थके सम्बन्धमें विभिन्न पक्षोंमें मतभेद हो, तो क्या किया जाना चाहिए? उसका साधारण उपाय तो सभी जानते

है। लेकिन मैं दक्षिण आफ्रिकामें घटित दो घटनाओंका उल्लेख करना चाहता हूँ। १८९३ के लगभग ट्रान्सवालमें प्रवासी भारतवासियोंके रुतबेके सम्बन्धमें दक्षिण आफ्रिका (ट्रान्सवाल)के गणतन्त्र राज्य तथा ब्रिटिश सरकारमें कुछ मतभेद था। इसमें एक प्रश्न १८८५के कानून ३ के अर्थके सम्बन्धमें था। दोनों पक्षोंकी रजामन्दीसे इसका निर्णय करनेका कार्य सरपंचको सौंप दिया गया था। तत्कालीन ऑरेंज फ्री स्टेटके मुख्य न्यायाधीश मेलॅं द वियेर एकमात्र सरपंच बनाये गये। सब-कुछ उन्हींके हाथमें था। मतभेदका दूसरा अवसर तब आया जब वेरीनिगिंगकी सन्धिके अर्थके सम्बन्धमें ट्रान्सवाल सरकारके प्रतिनिधि जनरल बोथा और ब्रिटिश सरकारमें मतभेद उत्पन्न हुआ था। मेरा खयाल है कि उस समय स्व० सर हेनरी कैम्बेल बेनरमैनने यह निर्णय दिया था कि कमजोर पक्ष अर्थात् ट्रान्सवाल सरकार उसका जो अर्थ करे वही स्वीकार किया जाना चाहिए और इसपर मामला पंचके पास भेजे बिना या कुछ और करनेकी कोशिश किये बिना ही ब्रिटिश सरकारने लार्ड किचनरके मतके खिलाफ जनरल बोथाके अर्थको स्वीकार कर लिया था। क्या डा० मलान इसमें से किसी भी एक उदाहरणका अनुसरण करेंगे? या फिर वे भी शेर और मेमनेकी कहानीके शेरकी तरह यही कहते रहेंगे कि हर हालतमें उन्हींकी बात सच्ची है? कुछ भी हो, यदि डा० मलान १९१४के समझौतेको स्वीकार करते हैं तो पंच निर्णय करानेके बारेमें दक्षिण आफ्रिकाके भारतीय शिष्टमण्डलका पक्ष काफी मजबूत है।

भारतीय शिष्टमण्डलने वाइसरायके समक्ष पेश करनेके लिए तैयार किये गये अपने तर्कसंगत बयानोंके द्वारा अपना पक्ष बड़ा मजबूत बना लिया है। स्वाभाविक है कि उन्होंने भारतीयोंकी निर्योग्यताओंकी पेश की गई सूचीके खिलाफ १९१४ के समझौतेको देखते हुए कोई तर्क उपस्थित नहीं किये हैं। डा० मलान केवल इतना ही कहते हैं कि उनके प्रस्तावित विधेयकसे समझौता भंग नहीं होता; लेकिन यह एक ऐसी बात है कि इसे आसानीसे छोड़ा भी नहीं जा सकता। इसलिए शिष्टमण्डलका काम निःसन्देह बड़ा ही मुश्किल हो जाता है। इस मामलेमें एक जिद्दी सरकार घोर जातिभेदके तत्वके आधारपर कानून बनवानेपर तुली हुई है। तमाम यूरोपीय लोग इस प्रश्नपर एकमत प्रतीत हो रहे हैं। श्री एन्ड्रयूज कहते हैं कि जनरल स्मट्स अपनी शक्ति-भर सरकारके पक्षका समर्थन कर रहे हैं। लेकिन मुझे इससे आश्चर्य नहीं होता; क्योंकि वे हमेशा ही "जैसी बहे बयार पीठ पुनि तैसी कीजे"की नीति बरतते रहे हैं। किये हुए वादों और घोषणाओंके प्रति जनरल स्मट्सने जितनी उपेक्षा दिखाई है, उतनी किसी अन्य राजनीतिज्ञने नहीं; और अपने इसी स्वभावके फलस्वरूप लोग उन्हें "स्लिम जैनी" कहने लगे हैं। लेकिन सत्य तो स्पष्ट ही भारतीयोंके पक्षमें है। यदि उन्होंने सिद्धान्तके मामलोंमें पीछे न हटनेका दृढ़ निश्चय कर लिया है तो उनकी जीत अवश्यम्भावी है।

डा० मलान चाहते थे कि ज़ेम्स गॉडफ्रे इस कानूनके सिद्धान्तको स्वीकार कर लें और उसके भिन्न-भिन्न अंगोंके सम्बन्धित तफसीलपर विचार करें ताकि वह चीज, जिसे वे रचनात्मक प्रस्तावके नामसे विभूषित करते हैं, तैयार हो जाये। खुशीकी बात है

कि श्री गॉडफ्रेने इस जालमें फँसनेसे दृढ़तापूर्वक इनकार कर दिया। भारतवर्ष कमजोर जरूर है फिर भी इसमें उससे जो-कुछ भी मदद देते बनेगी, देगा। शिष्ट-मण्डलको सभी दलोंका समर्थन प्राप्त होगा। वह हिम्मत न हारे और संघर्ष जारी रखे।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २४-१२-१९२५

७८. अधिवेशनके पहले

कांग्रेसका आगामी अधिवेशन उसके इतिहासमें निराला ही होगा। राष्ट्रके द्वारा अधिकसे-अधिक दिया जा सकनेवाला सम्मान और गौरव एक भारतीय स्त्रीको पहली बार मिलने जा रहा है। दुनिया हमें घृणाके पात्र, गुलाम और लाचार मानकर हमारी राष्ट्रीय सभाका चाहे कुछ भी खयाल न करे, किन्तु हमारे लिए तो हमारी इस सभाका सभापति ही सब-कुछ होना चाहिए। इस वर्ष श्रीमती सरोजिनी नायडूको यह अनुपम गौरव मिलने जा रहा है; इसे प्राप्त करनेका उन्हें हक है। श्रीमती सरोजिनी नायडू कवयित्री होनेके नाते संसार-भरमें प्रसिद्ध हैं। एक बार सार्वजनिक कार्यमें भाग लेना प्रारम्भ करनेके बाद उन्होंने उस क्षेत्रको फिर नहीं छोड़ा। सभी उनके पास निःसंकोच भावसे जा सकते हैं। राष्ट्रने उनसे जब जो-कुछ सेवा चाही है वे सदा ही उसके लिए तत्पर रही हैं। ऐक्य तो उनका मूल मन्त्र ही है। वीरता उनके चेहरेसे टपकती है। १९२१के बम्बईके दंगोंके समय वे निर्भय होकर बम्बईके गली-कूँचोंमें पहुँच जाती थीं और विवेकहीन लोगोंकी भीड़को उसके अन्धे जोशपर खरी-खोटी भी सुनाती थीं। यदि खबर मिलनेपर फौरन ही, आवश्यकता हो तो अपनी तन्दुरुस्तीको जोखिममें डालकर भी, किसी कामके लिए तैयार हो जाना त्याग है, तो वे प्रमाणित कर चुकी हैं कि उनका त्यागका माद्दा असामान्य है। जो लोग उनकी आफ्रिकाकी यात्रामें उनके साथ थे[1] उन्होंने मुझे बताया है कि वे बड़ी कठिन परिस्थितिमें भी अविश्रान्त परिश्रम करती थीं — वह इतना परिश्रम करती थीं कि बहुतेरे युवक भी उनके श्रमको देखकर शरमा जाते। दक्षिण आफ्रिकामें उन्होंने जो कार्य किया है उससे यह प्रमाणित हुआ है कि उनमें एक साहसी राजदूतके-से लक्षण विद्यमान हैं। अपरिचित वातावरणमें और राजनीतिके कुशल विशारदोंसे वास्ता पड़नेपर भी उन्होंने अपने उत्तरदायित्वको बड़ी खूबीसे निभाया। यदि उनकी यात्राके फलस्वरूप उनके कष्ट-पीड़ित देशवासियोंको कुछ राहत नहीं मिल पाई तो उसका कारण उनकी अयोग्यता नहीं; उससे समस्याकी जटिलता ही जाहिर होती है। उससे अधिक और कोई कुछ कर ही नहीं सकता था। मुझे इसमें कोई सन्देह नहीं है कि सरोजिनी नायडूको अध्यक्ष पदसे वंचित करना कर्तव्य भंगका दोष करना होता। गत वर्ष हम लोगोंका यह कर लेना काफी था।

१. १९२४ में; देखिए खण्ड २३ तथा २४।

इसलिए हमारा कर्तव्य है कि उनके कार्यको सुगम बनाने तथा उनके बोझको वहन करने योग्य बनानके लिए हमसे जितना भी बन पड़े उतना काम करें। उनके सामने बड़े नाजुक और कठिन प्रश्न खड़े हुए हैं। यहाँ उनको गिनानेकी जरूरत नहीं है। समस्याएँ भीतरी भी हैं और बाहरी भी। कदाचित् भीतरी समस्याएँ बाहरी समस्याओंसे अधिक हैं। यदि हम उन्हें पूरी तरह हल कर सके तो समझना चाहिए कि तीन चौथाई लड़ाई जीत गये। घरके मामलोंमें तो स्त्रीका अधिकार ही सबसे अधिक होता है। इसलिए क्या सरोजिनी देवी हमारे घरकी उन कठिनाइयोंको जिन्हें दूर करनेमें पुरुष असफल हुए हैं, सफल होंगी? वे स्त्री हैं; फिर भी यदि हम उनकी मदद न करेंगे तो वे सफल न हो सकेंगी। प्रत्येक कांग्रेसीको उनकी कठिनाइयोंको हल करनेमें पूरा योग देना अपना कर्त्तव्य समझना चाहिए। बाह्य कठिनाइयोंको तो कुशल और दक्षता प्राप्त लोग देख लेंगे, लेकिन घरेलू मामले हल करनेमें हम सभी कुशल हैं या होना चाहिए। हम सब शान्ति स्थापित करने तथा आपसी लड़ाई-झगड़े बन्द करनेके लिए प्रयत्न कर सकते हैं। हम लोग सब स्वदेश-प्रेमी बन सकते हैं और संकुचित भावोंको छोड़ सकते हैं। हम लोग स्वयं प्रस्ताव पास करके अपने ऊपर जो कर्तव्य आरोपित करें, उन्हें हम ईमानदारीके साथ पूरा कर सकते हैं। हमारे सहयोगके बिना श्रीमती सरोजिनी कुछ भी नहीं कर पायेंगी। हमारी सहायतासे वे उस कार्यको कर सकेंगी जिसके लिए वे स्त्री और कवयित्री होनेके नाते खास तौरसे योग्य हैं। ईश्वर उन्हें अपने कठिन कर्तव्यको निभानेके लिए शक्ति और बुद्धि प्रदान करे।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २४-१२-१९२५

७९. कुछ तथ्यपूर्ण आँकड़े

जो लोग भारतकी स्वतन्त्रताके लिए काम कर रहे हैं, उन्हें निम्न तालिका अवश्य ही दिलचस्प लगेगी और वे उससे कुछ सीख सकेंगे:

वर्ष	देशी राज्यों सहित आबादी (लाखोंमें)	ब्रिटिश भारतमें खेतीका रकबा (लाख एकड़ोंमें)	अन्नकी खेतीका रकबा (लाख एकड़ोंमें)	प्रति व्यक्ति अन्नकी खेतीका रकबा (एकड़)	कपासकी खेतीका रकबा (लाख एकड़ोंमें)
१९२१	३१,८०	२७,१०	२०,४०	०.६४ एकड़	१५०
१९११	३१,५०	२५,७०	१९,५०	०.६२ एकड़	१४०
१९०१	२९,४०	२३,१०	१७,७०	०.६० एकड़	९६

२० सालमें आबादी २९,४० लाखसे बढ़कर ३१,८० लाख हो गई है; अन्नकी खेतीका रकबा १७,७० लाखसे २०,४० लाख एकड़ हो गया है। इसलिए स्पष्ट है

कि प्रति व्यक्ति अन्नकी खेतीका रकबा ६० एकड़से बढकर ६४ एकड़ हो गया है, किन्तु रकबेमें यह बढ़ती भ्रमात्मक है। १९०१ मे लोगोंको भरपेट अन्न नहीं मिलता था। १९२१मे अन्नकी यह मात्रा और भी कम हो गई, क्योंकि यदि हमे आबादी बढ़नेके साथ-साथ पोषक तत्त्वोंकी मात्रा भी उसी अनुपातमे बढ़ानी हो तो यह लाजिमी है कि जितनी आबादी बढ़े, अन्नोत्पादक क्षेत्र उसकी अपेक्षा अधिक बढ़ाया जाये। ऊपर दिये गये आँकड़े मुझे यह बतानेके लिए तैयार किये गये हैं कि कपासकी खेती-का रकबा तुलनात्मक दृष्टिसे कितना बढ़ा है। इस रकबेका ९६ लाख एकड़से बढ़कर १५० लाख एकड़ हो जाना बहुत ही आश्चर्यजनक है। इसमें कोई शक नहीं कि इससे किसानोंको ज्यादा रुपया मिला है, किन्तु इससे अन्नके भाव भी बढ़ गये हैं। परिणामस्वरूप लोगोंकी भुखमरी बढ़ी है और समाजके निम्नवर्गके लोगोंको अपना पेट भरने लायक अनाज खरीदना भी दिनपर-दिन कठिन होता जा रहा है। क्योंकि यह याद रहे कि एक ओर कपासकी खेती करनेवाले लोगोंने अन्नके भाव बढ़ा दिये है, किन्तु लोग दूसरी ओर जो कपासकी खेती नहीं करते और जिनकी संख्या बहुत बड़ी है अपनी क्रय-शक्ति नहीं बढ़ा पाये हैं। यदि इन आँकड़ोंकी और अधिक छान-बीन की जाये तो यह पता चलेगा कि खेतीका क्षेत्र बढ़नेका अर्थ है चरागाहोंके क्षेत्रमे तदनुसार कमी। इसका फल यह होगा कि या तो पशु हमारे खाद्यान्नमे हिस्सा बँटाने लगेंगे या हमारी ही तरह उन्हें भी पोषक तत्त्व नहीं मिलेंगे और वे हमें कम दूध देंगे। वास्तवमें हुआ भी यही है। यही कारण है कि जिन लोगोंने पशु-समस्या पर विचार किया है उनका कहना है कि हमारे पशु हमारी जमीनपर भाररूप हो गये हैं। उनका भाररूप होना जरूरी नहीं है। इन आँकड़ोंको देखकर भू-राजस्व प्रणालीकी पूरी जाँच-पड़ताल करनेकी जरूरत मालूम होती है। यह जरूरी मालूम होता है कि कपासकी खेती और अन्नकी खेतीके सापेक्ष महत्त्वका वैज्ञानिक अध्ययन किया जाये और पशु-वशकी वृद्धि, पशु-पालन और पशुओंको खिलाने-पिलानेके तरीकोंको वैज्ञानिक रूप दिया जाये। इन आँकड़ोंसे यह भी विदित हो जाता है कि खेतीके साथ-साथ, सहायक धन्धेके रूपमे कुटीर उद्योगकी नितान्त आवश्यकता है। संसारका कोई भी कृषिप्रधान देश, यदि उसके लोग केवल खेतीपर ही या मुख्यत: खेतीपर ही निर्भर रहते हों, प्रतिव्यक्ति औसतन एक एकड़से कम खेतीकी जमीनसे सम्भवत: अपनी आबादीका पेट नहीं भर सकता है।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २४-१२-१९२५

८०. भाषण : कानपुरकी स्वदेशी प्रदर्शनीमें

२४ दिसम्बर, १९२५

प्रदर्शनीका उद्घाटन करते हुए गांधीजीने कहा कि मैं इसे एक पुण्य कार्य मानता हूँ। सरोजिनी देवीने मुझे बताया कि यहाँ इस सप्ताहमें ३० सम्मेलन होनेवाले हैं और इनमें से बहुतसे सम्मेलनोंमें मुझे सभापति पद गृहण करनेके लिए कहा गया है। मैंने अपनी विवशता प्रकट कर दी है; क्योंकि मैं अपनेको केवल इस स्वदेशी प्रदर्शनीका उद्घाटन करनेके योग्य मानता हूँ। मै हिन्दू-मुस्लिम एकताका पक्षपाती जरूर हूँ पर यदि उसमें खद्दरको स्थान नहीं दिया जायेगा तो मैं उसे भी स्वीकार न करूँगा।

मै केवल खद्दर ही का स्वप्न देखा करता हूँ। मैंने प्रदर्शनी खोलनेकी जिम्मेदारी उसी समय ली, जब जवाहरलालजीने मुझे इस बातका विश्वास दिला दिया कि इस प्रदर्शनीमें कोई भी विदेशी चीज नहीं रखी जायेगी। मै अपने ५ वर्षके खद्दर-सम्बन्धी अनुभवके आधारपर यह कह सकता हूँ कि हमने पर्याप्त प्रगति कर ली है। १९२० मे मैंने अपने हाथसे सत्रह आने गज खद्दर बेचा था और उसे लोग खुशीसे खरीदते और पहनते थे। आजकल अच्छा खद्दर नौ आने गज मिल सकता है। क्या यह उन्नति श्लाघनीय नहीं है? शुरू-शुरूमे जो लोग खद्दरकी टोपियाँ पहनते थे, लोग उन्हीको खद्दरधारी समझ लेते थे। पर अब यह बात नहीं है। ऐसे लोगोंकी संख्या जो पूरी तौरपर खद्दर पहनते हैं, और दूसरा कपड़ा पहनते ही नहीं हैं, काफी बढ़ गई है। बहुतसे लोगोंने खद्दरके प्रति सहानुभूति दिखलाई और प्रतिज्ञा भी की पर खद्दर पहना नहीं। इसके लिए मैं क्या कर सकता हूँ? कोई कारण नहीं था कि मैं इनकी बातोंपर अविश्वास करता। लोगोंने अपनी प्रतिज्ञा पूरी नहीं की, इसी कारण हम आशाके अनुरूप, १ वर्षके अन्दर स्वराज्य प्राप्त नहीं कर सके। आज भी मै आपको पूरे विश्वासके साथ यकीन दिलाता हूँ कि यदि आप सब विदेशी तथा देशी मिलोंके कपड़ोंका पूरा-पूरा बहिष्कार कर दे तो एक वर्षसे कम समयमें ही हमे स्वराज्य मिल सकता है। पर आपको मेरा यह कहना अक्षरशः मानना पड़ेगा।

इसके पश्चात् गांधीजीने कहा कि चरखोंकी संख्या और किस्म दोनोंमें उन्नति हुई है। उन्होंने यह भी कहा कि मैंने तो अपने हस्ताक्षरोंका भी मूल्य निर्धारित कर रखा है; जो व्यक्ति मेरे हस्ताक्षर चाहता है, जब खद्दर पहननेका संकल्प कर लेगा तभी वे उसे मिल सकते हैं। (हर्षध्वनि)

[अंग्रेजीसे]

लीडर, २६-१२-१९२५

८१. भाषण : अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीकी बैठकमें

[कानपुर]
२४ दिसम्बर, १९२५

महात्मा गांधीने अ० भा० कांग्रेस कमेटीके अध्यक्ष पदसे निवृत्त होते हुए और "कांग्रेस सरकारकी बागडोर" औपचारिक रूपसे श्रीमती सरोजिनी नायडूको सौंपते हुए कहा कि कमेटीके सभी सदस्योंने मेरा सदा समर्थन किया, इसके लिए मैं उनके प्रति कृतज्ञता प्रकट करता हूँ। कमेटीके सदस्योंने एक बार भी मेरे निर्णयोंके प्रति शंका प्रकट नहीं की और मेरे सभी आदेशोंका तुरन्त पालन किया। अगर वे यही नीति उन प्रस्तावोंके सम्बन्धमें भी रखते जिन्हें कि उन्होंने स्वयं पास किया था तो हमारी स्थिति अधिक अच्छी और दृढ़तर हो गई होती। अब कांग्रेसके नेतृत्वका भार श्रीमती सरोजिनी नायडूके कन्धोंपर आया है। मेरी यही कामना है कि उन्हें पूरी सफलता मिले। ईश्वरसे मेरी प्रार्थना है कि उनके कालमें हमारी स्थिति अधिक अच्छी बने और जो बादल मंडरा रहे है, छिन्न-भिन्न हो जायें। श्रीमती सरोजिनी नायडूने दक्षिण आफ्रिकामें जाकर भारतवासियोंकी अत्यन्त आश्चर्यजनक सेवा की है। अपनी काव्यशक्तिसे उन्होंने वहाँके यूरोपीयोंको मुग्ध तथा अपनी विवेकशक्ति और मधुर संभाषण-कलाके द्वारा विरोधियोंका मुँह बन्द कर दिया, अपनी राजनीतिज्ञता-पूर्ण कार्यशैलीसे उन्होंने सिंहका सामना उसकी मांदमें ही किया। फिलहाल तो एशिया विरोधी कानूनका पास होना स्थगित हो गया है। आज दक्षिण आफ्रिकाके यूरोपीय यह समझने लगे है कि अगर श्रीमती सरोजिनी नायडू जैसे व्यक्ति दक्षिण आफ्रिका आयें तो कोई झगड़ा होगा ही नहीं। दक्षिण आफ्रिका निवासी मेरे अंग्रेज दोस्तोंके पत्र मेरे पास बराबर आते हैं और वे कहते हैं कि श्रीमती सरोजिनी नायडूको या उन्हींकी तरहके अन्य व्यक्तियोंको फिर दक्षिण आफ्रिका भेजा जाये। इन सब बातोंसे प्रकट होता है कि वे बहुत-कुछ कर सकती है और कांग्रेसका नेतृत्व करनेके योग्य हैं; लेकिन मैं उन्हें कांग्रेस कोषके सम्बन्धमें सावधान करता हूँ कि वे अत्यन्त उदार न हो जाये जैसा कि स्त्रियाँ साधारणतः हुआ करती है। कांग्रेसका कोष इस समय सम्भवतः १½ लाखसे अधिक नहीं है।[1]

[अंग्रेजीसे]

हिन्दुस्तान टाइम्स, २७-१२-१९२५

१. इस चेतावनीका उत्तर देते हुए सरोजिनी नायडूने कहा कि रुपये-पैसेसे सम्बन्धित सारा काम मैं महात्मा गांधी-जैसे जाने-माने दक्ष व्यक्तिको सौंप रही हूँ।

८२. भाषण : कानपुर-कांग्रेस अधिवेशनमें[1]

२४ दिसम्बर, १९२५

बाबा साहब परांजपे और श्री साम्बमूर्तिने मुझसे यह प्रस्ताव लौटा लेनेके लिए कहा है। मैं ऐसा किस अधिकारसे करूँ? यह तो केवल एक इतफाककी ही बात है कि उसे पेश करनेका भार मुझपर आ पड़ा है। यह प्रस्ताव तो कार्यकारिणी समितिका है। फिर मुझसे 'अपील' क्यों की जा रही है? यह न मुझे शोभा देता है और न आपको। आखिर मैं कौन हूँ? मुझे भूल जाइए। यदि आप लोग लोकतन्त्र चाहते हैं तो प्रस्तावक किस श्रेणीका नेता है इसका खयाल छोड़ दें, प्रस्तावकी योग्यताका ही विचार करें। इसके अतिरिक्त आप मुझसे किस बातको वापस लेनेका आग्रह कर रहे हैं? मेरे अन्तस्तलमें बैठे हुए अत्यन्त प्रिय जीवन सिद्धान्तोंको?

श्री जयकर और केलकरने भी एतराज उठाये हैं। आप लोग यह भूल जाते हैं कि मताधिकारका आधार ध्येयपर निर्भर होता है। व्यवहारतः अमुक कार्य दुर्गम है, क्या महज इसलिए हम उससे विमुख हो जायेंगे? हम लोगोंके लिए स्वराज्य प्राप्त करना मुश्किल है तो फिर हम उसकी बात क्यों नहीं छोड़ देते? . . .[2]

यदि मुझे इस बातका यकीन हो जाये कि कांग्रेसके एक करोड़ सदस्य बन जानेपर ही स्वराज्य-प्राप्ति सम्भव हो जायेगी तो मैं चार आनेका चन्दा भी निकाल दूँ, उम्र सम्बन्धी प्रतिबन्ध भी हटा दूँ — कोई भी शर्त न रखूँ। अबतक जो कार्य किया जा चुका है उसपर यदि पानी फेरना है तो हम यही प्रस्ताव पास करें कि जो चाहे सो कांग्रेसका सदस्य हो सकता है। लेकिन भाई, कांग्रेसके लिए जो व्यक्ति तनिक भी शरीर-श्रम करनेके लिए तैयार न हो, क्या उसे कांग्रेसी कहलानेमें शर्म मालूम न होगी? यदि आप लोगोंको सचमुच विदेशी कपड़ेका बहिष्कार करना है तो मिलोंके कपड़ेका विचार त्याग दें। मैं मिलोंके प्रान्तका ही निवासी हूँ। और मिल-मालिकोंके साथ मेरा बहुत मीठा सम्बन्ध है; लेकिन मैं यह जानता हूँ कि देशके संकटकालमें उन्होंने देशका साथ कभी नहीं दिया है। वे साफ कहते हैं कि हम देशप्रेमी नहीं हैं, हमें तो धन-संचय करना है। यदि सरकार तय कर ले तो वह सभी मिलें बन्द करा सकती है; बाहरसे मशीनोंका हिन्दुस्तानमें आना रोक दे सकती है; लेकिन सरकारमें इतना सामर्थ्य नहीं कि वह हमारे चरखों और तकुओं-

१. विषय समितिमें मतदान-सम्बन्धी इस प्रस्ताव द्वारा यह सिफारिश की गई थी कि गत सितम्बरमें कांग्रेस विधानमें जो परिवर्तन स्वीकृत किये गये थे, वे अब पुनः स्वीकृत किये जायें। उनमें से एक सुझाव यह भी था कि अपरिवर्तनवादियों और स्वराज्यवादियोंके बीच समझौतेके रूपमें सूत-मताधिकार वैकल्पिक रखा जाये; अर्थात् वार्षिक चन्देके तौरपर या तो चार आने दिये जायें या खुदका काता २००० गज सूत (कांग्रेसको) दिया जाये। और जो व्यक्ति खद्दर न पहनता हो उसे मत देनेका अधिकार न हो।

२. मूलमें यहाँ कुछ छूट गया है।

को आगमें झोंक दे। उसने एक जर्मन इंजीनियरको इस देशमें आनेसे रोका था। मुझे अंग्रेज जातिके चरित्रके सम्बन्धमें ठीक उसी प्रकार विश्वास है जिस प्रकार मनुष्य-स्वभावमें। लेकिन अंग्रेज जातिके स्वभावका एक लक्षण यह भी है कि वह अपने देशका हित पहले देखेगी। और वह हित-रक्षा लंकाशायरको जीवित रखनेसे और हिन्दुस्तान जैसे देशोंमें उनकी इच्छाके विरुद्ध अपना घटिया माल भेजते रहनेसे ही हो सकती है। इन अंग्रेजोंके साथ लड़नेमें हमें अपना खून पानी करना होगा, पानी! स्वराज्य प्राप्ति कोई खेल नहीं है — वह कोई सस्ते दामों मिलनेवाली चीज भी नहीं है। उसे पानेके लिए भारतीयोंको अपनी गर्दन कटाने तकके लिए तैयार रहना ही चाहिए; वह मुफ्तमें मिलनेवाली जिन्स नहीं है। आप लोग आज मेरा विरोध कर सकते हैं; लेकिन अब ऐसा समय आने ही वाला है कि जब आप सभी लोग कहेंगे कि गांधी जो कहता था सो सच था। इसलिए जबतक इस मामलेमें बहुमत मेरे पक्षमें है, तबतक मैं विपक्षी लोगोंसे प्रार्थनापूर्वक कहता हूँ कि वे इस प्रस्तावका विरोध इसलिए न करें कि इसे माननेमें उन्हें थोड़ा-बहुत त्याग करना पड़ेगा।

हम लोग ऐसा विश्वास क्यों न रखें कि हम कांग्रेसके सभी सदस्य प्रामाणिकता-पूर्वक काम करेंगे? क्या हम इस बातकी आशा न रखें कि लोग अपने ही द्वारा पारित प्रस्तावोंको कार्यान्वित करेंगे? हाँ, यदि आपको खादी पहननेमें सिद्धान्ततः आपत्ति हो अथवा वह बात आपकी अन्तरात्माके विरुद्ध पड़ती हो तो आपको कांग्रेस छोड़ देनी चाहिए? लेकिन कांग्रेसमें रहते हुए आप उसके प्रस्तावका अनादर नहीं कर सकते। जबतक मैं कांग्रेसमें हूँ तबतक उसके द्वारा पास किये गये प्रस्तावके अनुसार काम करना मेरा कर्त्तव्य है, भले ही मेरे द्वारा प्रस्तुत किये गये प्रस्तावके पक्षमें बहुत ही कम सदस्योंने मत क्यों न दिया हो।

आप लोग यह भी कहते हैं कि बहुमत अत्याचार कर रहा है। जरा सोचिए कि मुट्ठीभर लोग इस विशाल देशपर मनमाने ढंगसे शासन चला रहे हैं और आपके कानोंपर जूँ तक नहीं रेंगती? परन्तु सचाईके विरोधमें निराधार आपत्तियाँ उठाना हमें जरूर आता है। मैं आपको सचेत कर रहा हूँ; याद रखें कि यदि आपने खादी-को त्याग दिया तो जनता भी आपका परित्याग कर देगी। यदि आपने खादी छोड़ दी तो आपके तथा उदार दलवाले लोगोंके बीच फर्क ही क्या रह जायेगा? हम लोग कैसे विचित्र हैं — हम स्वयं तो खादीका उपयोग नहीं करते और नेताओंसे उसके उपयोगकी आशा रखते हैं। मैंने जनताकी सेवा बाबा साहबके समान भले ही न की हो, परन्तु इन दस वर्षोंकी अवधिमें मैंने जनसाधारणकी जो सेवा की है उससे मैं उसको भलीभाँति जान गया हूँ। यही कारण है कि आप लोगोंको मैं सचेत कर रहा हूँ और कहता हूँ कि खद्दरको त्याग देनेसे आपके हाथ कुछ न लगेगा।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, ३-१-१९२६

८३. भाषण: दक्षिण आफ्रिकी भारतीयोंसे सम्बन्धित प्रस्तावपर[1]

२५ दिसम्बर, १९२५

श्री गांधीने प्रस्ताव पेश किया:

कांग्रेस दक्षिण आफ्रिकी भारतीय कांग्रेसके शिष्टमण्डलका हार्दिक स्वागत करती है और वह दक्षिण आफ्रिकावासी भारतीयोंको आश्वस्त करना चाहती है कि जिन एक-जुट शक्तियोंके कारण उस उप-महाद्वीपमें उनके अस्तित्वको ही खतरा है उनके विरुद्ध किये जानेवाले संघर्षमें कांग्रेस उनका पूर्ण समर्थन करेगी।

कांग्रेसका दृढ़ मत है कि प्रस्तावित विधान — जो कि क्षेत्र संरक्षण तथा प्रवासी पंजीकरण (अतिरिक्त उपबन्ध) विधेयक (एरियाज रिजर्वेशन ऐंड इमिग्रेशन रजिस्ट्रेशन) (फरदर प्रोविजन) के नामसे पुकारा जाता है — १९१४ मे स्मट्स-गांधी समझौतेका उल्लंघन है, क्योंकि एक तो इसका स्वरूप जातीय है और फिर इसका उद्देश्य न केवल भारतीय अधिवासियोंकी स्थितिको १९१४ से बदतर बनाना है, बल्कि इसका उद्देश्य किसी भी स्वाभिमानी भारतीयके लिए उस देशमें रहना असम्भव बना देना भी है। कांग्रेसके विचारमें उक्त समझौतेका जो अर्थ भारतीय प्रवासियों द्वारा लगाया जाता है, यदि संघ सरकार उसे स्वीकार नहीं करती तो इस मामलेका उसी प्रकार पंच-फैसलेसे निर्णय होना चाहिए जैसा कि १८९३ में ट्रान्सवालके भारतीय प्रवासियोंके मामलेका हुआ था और जैसा कि १८८५ के कानून ३ को कार्यान्वित करते समय किया गया था।

कांग्रेस इस सुझावका हार्दिक समर्थन करती है कि इस प्रश्नका निपटारा करनेके लिए गोलमेज परिषद् बुलाई जाये, जिसमें दूसरे लोगोंके साथ-साथ उपयुक्त भारतीय प्रतिनिधियोंको भी आमन्त्रित किया जाये और कांग्रेसका विश्वास है कि उपनिवेश सरकार इस सुझावको स्वीकार करेगी। यदि गोलमेज परिषद्का और पंच-निर्णयका प्रस्ताव न माने जायें, तो कांग्रेसका विचार है कि इस विधेयकके संघ संसदमें पास हो जानेपर साम्राज्य सरकारको इसपर अपनी स्वीकृति नहीं देनी चाहिए।

पण्डित बनारसीदास चतुर्वेदीका मत था कि कांग्रेसने विदेशोंमें बसे भारतीयोंकी दुर्दशाकी उपेक्षा करके निन्दनीय काम किया है, वे चाहते थे कि विभिन्न नेता उनके

१. कानपुरमें हुई विषय समितिकी बैठकमें।

समर्थन और सहायताके लिए विशाल आन्दोलन संगठित करें; अन्यथा प्रस्तावमें किया गया "पूर्ण समर्थन"का वादा निरर्थक हो जायेगा। उन्होंने जनतामें किये जानेवाले ऐसे प्रचारकी भी निन्दा की कि जबतक हमें स्वराज्य नहीं मिलता तबतक हम विदेशोंमें बसे भारतीयोंकी सहायता नहीं कर सकते।

इसका उत्तर देते हुए श्री गांधीने स्वीकार किया कि पण्डित बनारसीदास उन थोड़ेसे कार्यकर्त्ताओंमें से हैं जो विदेशोंमें बसे भारतीयोंके लिए कार्य कर रहे हैं। किन्तु वे भी अति उत्साहमें भटक गये हैं? कांग्रेस जो-कुछ कर सकती थी वह सब उसने किया है। उससे अधिक वह कर नहीं सकती। मेरे इस प्रस्तावका मसविदा[1] दक्षिण आफ्रिकी शिष्टमण्डलके साथ तीन घंटेकी बातचीतके बाद तैयार किया गया था। इस प्रस्ताव द्वारा कांग्रेसने घोषणा कर दी है कि वह अधिकसे-अधिक क्या कर सकती है। जहाँतक आर्थिक सहायताका सवाल है साम्राज्यीय नागरिक संघ (इम्पीरियल सिटिजनशिप एसोसिएशन)के पास इस कार्यके लिए पर्याप्त सार्वजनिक निधि है। मैंने स्वयं पण्डित बनारसीदासको धन मुहय्या करके दिया है। दूसरे वक्ताने यह आपत्ति उठाई है और इस बातपर जोर दिया है कि उस वाक्यको हटा दिया जाये जिसमें ब्रिटिश सरकारसे स्वीकृति न देनेके लिए कहा गया है। इसके बारेमें मेरा कहना है कि यदि इस वाक्यको भी हटा लिया गया तो इस प्रस्तावसे दक्षिण आफ्रिकी भारतीयोंको क्या सान्त्वना मिलेगी? फिर क्या आप लोग कौंसिलोंमें काम करने नहीं गये हैं? मैं तो चाहता हूँ कि मैं बिना कौंसिलोंके काम कर सकूँ, किन्तु आप लोग वैसा नहीं कर सकते। आप मुझपर विश्वास कीजिये, मैं दक्षिण आफ्रिकाका भीतर-बाहर, सब कुछ जानता हूँ। यदि मैं ऐसा अनुभव करता कि मेरे दक्षिण आफ्रिका जानेसे कुछ लाभ हो सकता है, तो मैं वहाँ अवश्य चला जाता।

अन्तमें प्रस्ताव हर्षध्वनिके साथ स्वीकृत हो गया।

[अंग्रेजीसे]

लीडर, २८-१२-१९२५

१. देखिए "भाषण : कानपुर अधिवेशनमें", २६-१२-१९२५।

८४. सन्देश : "कामना" को[1]

कानपुर

[२६ दिसम्बर, १९२५]

आप चाहे उदार दलवादी, नरम दलवादी या राष्ट्रवादी हों; हिन्दू हों या मुसलमान; पूरबके रहनेवाले हों या पश्चिमके; पर यदि आप भारतकी उस जनताके साथ अपना भाईचारा मानते हों जिसके साथ आपका भाग्य जुड़ा हुआ है, जिनके बीच आप पैदा हुए हैं, तो आप केवल हाथकती और हाथबुनी खादीके वस्त्रोंका उपयोग करें, इसके अतिरिक्त और कुछ नहीं।

[अंग्रेजीसे]

अमृतबाजार पत्रिका, २९-१२-१९२५

८५. पत्र : एक बहनको

[२६ दिसम्बर, १९२५][2]

चि०. . .

तुम दोनोंके पत्रोंसे मुझे सन्तोष नहीं हुआ। पूत कपूत हो जाये पर माता कुमाता नहीं हो सकती, इस कहावतको माननेसे काम नहीं चलेगा। यदि पुत्र ऐसा कहकर अपने दोषको कम करके आँकना चाहे तो वह उन्नति नहीं कर सकता। सन्तानका तो यही धर्म है कि वह माता-पितासे बढ़-चढ़ कर काम करे। [मैं] अपनी सन्तानसे यह कह सकता हूँ कि मुझमें अमुक-अमुक दोष हैं; उनके लिए तुम लोग मुझे क्षमा करो पर तुम स्वयं कभी इन दोषोंके दोषी मत बनना; नहीं तो मैं कहींका न रहूँगा। जब कोई दम्पति सन्तानकी इच्छा करता है तब उनके मनमें यही भावना रहती है कि सन्तान उनकी प्रतिष्ठा बढ़ायेगी, खूब उन्नति करेगी और उनकी कीर्तिको चिरजीवी बनायेगी। इसीलिए रामचन्द्रने कहा: "रघुकुल रीति सदा चलि आई, प्राण जाय बरु वचन न जाई"। उन्होंने यह नहीं कहा कि यह रामचन्द्रकी रीति है। रामचन्द्रने रघुवंशका उद्धार किया था। सो तुम भी. . .के वंशका और आश्रमका उद्धार करो। आश्रममें अनेक दोष हैं; पर वे तो हम गुरुजनोंके दोष हैं। उनका अनुकरण तुम्हें तो नहीं करना है न? तुम्हारा धर्म यही है कि आश्रममें जो-कुछ अच्छा है उसे अपनाओ। इसीलिए पत्र लिखनेके अपने वादेसे मुक्त होनेकी

१. कानपुरकी एक उर्दू पत्रिका।

२. साधन-सूत्रके अनुसार।

तुम्हारी इच्छा मुझे ठीक नहीं लगी। जवानीमें मनुष्य पुरुषार्थ कर सकता है। समझदार व्यक्तिके लिए जवानी उच्छृंखल और स्वच्छन्द आचरणका नहीं, संयम सीखनेका समय है।

सम्भव है, तुम पत्रकी बात न समझ सको। चि०. . . से समझना। फाड़कर फेंक मत देना। अत्यधिक कामके बोझसे दबे होनेपर भी मैंने तुम दोनोंको याद किया है। थोड़ेसे शब्द लिखनेकी इच्छा थी; पर पत्र लम्बा और गम्भीर हो गया। इसलिए सँभाल कर रखनेके लिए कहता हूँ।

[गुजरातीसे]

महादेव देसाईकी हस्तलिखित डायरीसे ।
सौजन्य: नारायण देसाई

८६. पत्र: एक भाईको

[२६ दिसम्बर, १९२५][1]

चि० . . . .

तुम्हारा पत्र पाकर अब मैं निश्चिन्त हो गया हूँ। मुझे डर था कि कहीं भाई. . . तुम्हें गलत रास्तेपर न ले जायें, सो डर नहीं रहा। हम अच्छे-बुरे व्यक्तियोंको जानते हुए भी उनपर स्नेह रखें, यही हमारा धर्म है। हम दूसरोंमें कोई बुराई देखें ही नहीं, कई बार तो प्रेम शब्दकी हम यही व्याख्या करते हैं। चि०. . .ने जो बात छुपाई सो ठीक तो नहीं थी, पर मुझे उसका दुःख नहीं है, केवल दया आई। उसे कबूल करते समय वह घबरा गई होगी। हम घोरसे-घोर पाप निडर होकर कर डालते हैं, पर उन्हें स्वीकार करते हुए घबराते हैं। पर इस पृथ्वीपर ऐसे लोग कितने होंगे जो अपने दोषोंको पहचानकर उन्हें सबके सामने प्रकट कर दें।. . . .क्या करती? अब ईश्वर उसकी रक्षा करे। तुमने भाई. . . से पिछली सारी बातें कह दीं, सो अच्छा ही किया।

बापूके आशीर्वाद

[गुजरातीसे]

महादेव देसाईकी हस्तलिखित डायरीसे।
सौजन्य: नारायण देसाई

१. साधन-सूत्रके अनुसार।

८७. भाषण: कानपुर-अधिवेशनमें

२६ दिसम्बर, १९२५

कांग्रेसके कानपुर-अधिवेशनमें दक्षिण आफ्रिकाके भारतीयोंकी स्थितिके विषयमें कांग्रेसकी ओरसे एक प्रस्ताव गांधीजीने पेश किया था। निम्नलिखित भाषण उसी अवसरका है। पहले वे हिन्दीमें[1] बोले:

यदि वर्गक्षेत्र विधेयकको कानूनका रूप मिल गया तो ऐसे प्रत्येक भारतीयको जिसके मनमें किंचित भी स्वाभिमान होगा दक्षिण आफ्रिका छोड़कर चले जानेके लिए विवश होना पड़ेगा। उसकी यह विवशता प्रत्यावर्तनसे भी बदतर होगी; प्रत्यावर्तित व्यक्तियोंको किसी प्रकारका मुआवजा नहीं दिया जायेगा और उन्हें कानूनके नाम-पर बाहर निकाल दिया जायेगा यह काम एशियाई लोगोंका दक्षिण आफ्रिकासे नामोनिशान मिटा देनेकी खातिर गोरी जातिवालोंके दृढ़ संकल्पका सूचक होगा। वहाँ बसे हुए भारतीय समाजके अत्यन्त प्रतिष्ठित व्यक्तियोंको —— डाक्टरों तथा गॉडफ्रे जैसे बैरिस्टरोंको भी, जो शिष्टमण्डलके एक सदस्य भी हैं, जिनका लालन-पालन शिक्षा-दीक्षा सब-कुछ दक्षिण आफ्रिकामें ही हुआ है और जो भारतमें प्रथम बार आ रहे हैं —— नहीं रहने दिया जायेगा। इस प्रस्ताव द्वारा समस्याके समाधानके रूपमें तीन बातें कही गई हैं। पंच फैसला कराया जाये, गोलमेज परिषद् बुलाई जाये और अगर इन दोनोंमें से एक भी सम्भव न हो तो भारत सरकार सम्राट्की सरकारसे निवेदन करे कि वह अपने विषधाधिकारका प्रयोग करके प्रस्तावपर स्वीकृति न दे। इस प्रस्तावमें भारतीयोंसे यह भी कहा गया है कि वे अपने देशवासियोंके संकट कालमें उनका साथ दें और उनकी पूरी मदद करें। यदि दक्षिण आफ्रिकाके भारतीय सत्याग्रह करनेकी ठानें तो यहाँके भारतीयोंका कर्त्तव्य है कि धनसे उनकी यथाशक्ति सहायता करें। इस महत्वपूर्ण समस्याके सम्बन्धमें सत्याग्रह शुरू करनेमें मुझे खुशी तो होगी; पर बात यह है कि वातावरण अनुकूल नहीं है। यदि भारतके हिन्दू और मुसलमान उन्हें इस बातका विश्वास दिला सकें कि वे शान्तिपूर्ण सत्याग्रह शुरू करनेके बारेमें एकमत हैं और इस बातका भी विश्वास दिला सकें कि दक्षिण आफ्रिकामें बसे हुए हिन्दुओं और मुसलमानोंके गाढ़े वक्तमें वे अपने आपसी झगड़े भूल गये हैं तो मैं संघर्ष प्रारम्भ करनेके लिए कटिबद्ध हो जाऊँगा। जबतक यह नहीं हो जाता तबतक संघर्ष वहाँके भारतीय ही चलायें और भारत यथाशक्ति सहायता देकर ही सन्तोष मान ले।

१. मूल हिन्दी भाषण उपलब्ध नहीं है।

बादमें इस खयालसे कि डा० रहमान इस मामलेमें गांधीजीकी भावनाओंको समझ सकें और इस उद्देश्यसे कि चेतावनीभरे उनके शब्द दक्षिण आफ्रिकाके राजनीतिज्ञोंके कानोंतक पहुँच जायें, गांधीजी काफी देरतक अंग्रेजीमें बोले :

श्रीमती सरोजिनी देवी तथा मित्रो!

मुझे मालूम नहीं कि जो प्रस्ताव मैं रख रहा हूँ, उसकी प्रतिलिपियाँ आप लोगोंतक पहुँच गई हैं या नहीं। आप लोगोंको प्रस्ताव सुननेका कष्ट न उठाना पड़े और राष्ट्रका थोड़ा-सा समय भी बच जाये इसलिए आप प्रस्ताव सुन ही लें। वह इस प्रकार है :[1]

आप लोगोंके सामने इस प्रस्तावको स्वीकृतिके लिए पेश करते हुए मुझे बड़ी खुशी होती है; यही नहीं, श्रीमती सरोजिनी देवीने इसे आपके सामने पेश करनेका कार्य मुझे सौंपा है, इसे मैं अपना परम सौभाग्य मानता हूँ। सरोजिनी देवीने मुझे 'दक्षिण आफ्रिकी' कहकर आप लोगोंसे मेरा परिचय कराया है; लेकिन यदि उन्होंने उसमें इतने शब्द 'जन्मसे हिन्दुस्तानी लेकिन दक्षिण आफ्रिकाका दत्तक पुत्र' और जोड़ दिये होते तो ज्यादा ठीक होता। दक्षिण आफ्रिकाने मुझे गोद जरूर लिया है। दक्षिण आफ्रिकासे आये हुए जिस शिष्टमण्डलका आप प्रेमपूर्वक स्वागत करनेवाले हैं उसके नेता जब मंचपर आयेंगे और डा० रहमान आप लोगोंसे यह कहेंगे कि दक्षिण आफ्रिकाके भारतवासियोंका यह दावा है कि हिन्दुस्तानको गांधी हम लोगोंने दिया है तब आपपर यह बात प्रकट हो जायेगी। उनका यह दावा मुझे स्वीकार है। यह बात बिलकुल सच है कि हिन्दुस्तानकी जो-कुछ भी सेवा मैं कर सका हूँ — वह असेवा भी हो सकती है — उसका कारण ही यह है कि मैंने उसकी क्षमता दक्षिण आफ्रिकामें प्राप्त की थी। मेरी यह सेवा, यदि असेवा है तो यह उनका दोष नहीं है; यह तो मेरी त्रुटिके कारण है। इसलिए, इस प्रस्तावमें जो-कुछ कहा गया है उसके समर्थनमें मैं आप लोगोंके सामने कुछ तथ्य रखूँगा। यह विधेयक दक्षिण आफ्रिकी भाइयोंके सिरोंपर नंगी तलवारकी तरह लटक रहा है; इसका उद्देश्य भारतवासियोंके प्रति केवल अधिक अन्याय करना ही नहीं, बल्कि दक्षिण आफ्रिकासे उन्हें निकाल बाहर करना है।

निःसन्देह इस विधेयकका यही अर्थ है। दक्षिण आफ्रिकाके गोरोंने इस अर्थको सही माना है। संघ सरकारने भी नहीं कहा है कि उसका यह अर्थ नहीं है। यदि विधेयकका परिणाम यही हो तो दक्षिण आफ्रिकाके भारतवासियोंको उससे कितना दुःख होगा, इसकी कल्पना आप स्वयं ही कर सकते हैं। थोड़ी देरके लिए यह मान लिया जाये कि विधानसभाकी बैठकमें देशनिकालेका कोई कानून पास होनेवाला है और उससे एक लाख भारतवासियोंको हिन्दुस्तानमें से निकाल दिया जायेगा। ऐसी आफतके समय हम लोग क्या करेंगे? ऐसे प्रसंगपर हमारा व्यवहार कैसा होगा?

१. यह अनुच्छेद भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसके ४० वें अधिवेशनकी रिपोर्टसे लिया गया है। प्रस्तावके लिये देखिए "भाषण : दक्षिण आफ्रिकी भारतीयोंसे सम्बन्धित प्रस्तावपर", २५-१२-१९२५।

ठीक, ऐसा ही प्रसंग वहाँ उपस्थित है। इसीलिए यह शिष्टमण्डल आप लोगोंके पास आया है। हिन्दुस्तानकी जनतासे, कांग्रेससे, वाइसरायसे, भारत सरकारसे और उसके जरिये साम्राज्यीय सरकारसे मदद प्राप्त करनेके लिए यह शिष्टमण्डल यहाँ आया हुआ है।

लॉर्ड रीडिंगने उन्हें एक लम्बा उत्तर दिया है, और कितना अच्छा होता कि मैं इसे सन्तोषजनक उत्तर भी कह सकता। किन्तु वाइसराय महोदयका उत्तर जितना लम्बा है उतना ही असन्तोषजनक भी है। और यदि लॉर्ड रीडिंगका इरादा शिष्ट-मण्डलके सदस्योंसे यही बात कहनेका था तो वह यह बात थोड़ेसे शब्दोंमें कह सकते थे, और इस प्रकार वह उन सदस्योंको और इस देशको यह करुण और दयनीय दृश्य देखनेसे बचा सकते थे जिसमें एक शक्तिशाली सरकार खुले तौरपर यह स्वीकार कर रही है कि वह दक्षिण आफ्रिकाके उन भारतीयोंकी समुचित मदद करनेमें असमर्थ है जो अपनी किसी गलतीके कारण नहीं बल्कि, जैसा कि दक्षिण आफ्रिकाके अनेक यूरोपीय स्वीकार करेंगे, अपने गुणोंके कारण अब दक्षिण आफ्रिकासे निष्कासित होनेके खतरेमें पड़ गये हैं। जिन लोगोंको वहाँसे निकाल देनेकी कोशिश की जा रही है उनमें से कितनोंकी तो दक्षिण आफ्रिका जन्मभूमि ही है। वाइसराय महोदयके इस कथनसे कि भारत सरकारने दक्षिण आफ्रिकाकी सरकारके पास अर्जियाँ भेजनेका अथवा न्यायकी भीख माँगनेका अधिकार हमेशासे अपने ही हाथमें रखा है, न तो उसके उन मित्रोंको सन्तोष मिला है और न हमें ही। दूसरे शब्दोंमें एक जबर्दस्त सरकार, जिस सरकारके बारेमें यह माना जाता है कि तीस करोड़ मनुष्योंकी किस्मत उसके अधीन है, अपनी लाचारी जाहिर कर रही है! ऐसा क्यों? कारण यह है कि दक्षिण आफ्रिका औपनिविशक स्वराज्य प्राप्त देश है और इसलिए भी कि वह यह धमकी दे रही है कि यदि भारत सरकार और सम्राट्की सरकारने उसके द्वारा की गई किसी भी कार्रवाईका विरोध या उसमें हस्तक्षेप करनेकी कोशिश की तो वह साम्राज्यसे सम्बन्ध विच्छेद कर लेगी।

गृहनीति

लॉर्ड रीडिंगने शिष्टमण्डलसे कहा है कि जो राज्य औपनिवेशिक स्वराज्य हासिल किये हुए हैं उनके घरेलू मामलोंमें दखल देनेका अधिकार न तो भारत सरकारको है और न साम्राज्यीय सरकारको। जिस नीतिका उद्देश्य दक्षिण आफ्रिकामें बसे हुए हजारों भारतवासियोंकी खानाखराबी हो और उन्हें मनुष्यत्वके सामान्य अधिकारसे भी वंचित रखना हो, उस नीतिको "घरेलू नीति" के नामसे पुकारनेका मतलब ही क्या है? भारतवासियोंके बजाय यदि यूरोपीय या अंग्रेज लोग ही ऐसी स्थितिमें होते तो क्या होता?

एक उदाहरण पेश करता हूँ। आप यह जानते हैं कि बोअर युद्ध किसलिए हुआ था? दक्षिण आफ्रिकामें जो यूरोपीय लोग स्थायी रूपसे बस गये थे और जिनको ट्रान्सवालकी रिपब्लिकन सरकारने 'उटलेंडर्स' नाम दे रखा था, उनका संरक्षण करनेके लिए यह युद्ध छेड़ा गया था। स्वर्गीय श्री जोजेफ चैम्बरलेनका ब्रिटिश सरकारकी

ओरसे यह कहना था कि यद्यपि ट्रान्सवालकी सरकार स्वतन्त्र है फिर भी इसे घरेलू प्रश्न नहीं माना जा सकता।

संस्कृतियोंका वैषम्य

लॉर्ड लैंसडाउनने कहा था कि जब मैं ट्रान्सवालके भारतीयोंकी तकलीफोंका विचार करता हूँ तब मेरा खून खौलने लगता है। वे मानते थे कि दक्षिण आफ्रिकाके भारतीयोंकी तकलीफें भी — अधिक ठीक तो यह कहना है कि ट्रान्सवालके भारतीयोंकी तकलीफें — बोअर युद्धके मुख्य कारणोंमें से एक थीं। अब वे घोषणाएँ कहाँ विलीन हो गईं? आज जब डेढ़ लाख भारतवासियोंकी जान, इज्जत और रोजी जोखिममें आ पड़ी है, ब्रिटिश सरकारको संघ सरकारके साथ युद्ध करनेकी बात क्यों नहीं सूझती?

इस कानूनको बनानेके परिणामोंके सम्बन्धमें मैंने जिस परिस्थितिका वर्णन ऊपर किया है उसके सम्बन्धमें किसीको कुछ भी सन्देह नहीं है। दक्षिण आफ्रिकामें ब्रिटिश भारतवासियोंकी तकलीफें बढ़ती जा रही हैं, इससे भी कोई इनकार नहीं कर सकता। बिशप फिशरने, जो-कुछ ही मास पूर्व दक्षिण आफ्रिका गये थे, एक छोटी-सी सुन्दर पुस्तिका लिखी है। यदि आप उसको देखेंगे तो आपको दक्षिण आफ्रिकामें बसे हुए भारतीयोंपर बरपा होने वाली मुसीबतोंका कुछ अन्दाज हो जायेगा। बिशप फिशर निष्पक्ष होकर इस रायपर पहुँचे हैं कि इसमें भारतीयोंका कोई कसूर नहीं है। इन अन्यायोंके लिए तो वहाँके गोरोंका द्वेषभाव और उद्दण्डता ही उत्तरदायी हैं। बिशप फिशरका दृढ़ मत है कि भारतीयोंकी भलमनसीको देखते हुए तो उनके प्रति दक्षिण आफ्रिकाके गोरोंका बर्ताव अधिक अच्छा ही होना चाहिए था। यदि संसारमें न्याय कोई चीज है और यदि अभीतक अधिकारोंके सिरपर राजछत्र है तो दक्षिण आफ्रिकाके गोरोंके लिए उस कानूनको पास करना सम्भव न होता। उस हालतमें दक्षिण आफ्रिकाके गोरोंके लिए उस विधेयकको कानूनका रूप दिलाना सम्भव नहीं होता और न यह जरूरी होता कि मैं आप लोगोंका मूल्यवान समय नष्ट करूँ और शिष्टमण्डल अपना धन व्यर्थ ही नष्ट करे।

लेकिन नहीं। अधिकारकी तूती बोलनेके बजाय "जिसकी लाठी उसकी भैंस", यही देखनेमें आ रहा है। दक्षिण आफ्रिकाके गोरे हमारे देशवासियोंके प्रति अन्याय करनेपर उतर आये हैं; सो किसलिए? दो संस्कृतियोंका परस्पर विरोधी होना इसका कारण है। ये शब्द मेरे नहीं हैं, जनरल स्मट्सके हैं। वे इस विरोधको सहन नहीं करते। दक्षिण आफ्रिकाके यूरोपीय यह मानते हैं कि यदि हिन्दुस्तानमें से आनेवाले इन दलोंको दक्षिण आफ्रिकामें आनेसे रोक न दिया जायेगा तो उन्हें भय है कि पूर्वके लोग उन्हें पीस डालेंगे। किन्तु समझमें नहीं आता कि हम लोग उनकी संस्कृतिको नष्ट कैसे कर सकते हैं? हमारे यहाँके सभी स्त्री-पुरुष मितव्ययी होते हैं; क्या इसी कारण उनकी संस्कृति नष्ट हो जायेगी? क्या वह इस कारण भ्रष्ट हो जायेगी कि हम लोगोंको शाकभाजी या फलोंकी फेरी लगाकर ये चीजे दक्षिण आफ्रिकाके किसानोंके सोलहों दरवाजे-दरवाजे पहुँचानेमें शर्म नहीं लगती? दक्षिण आफ्रिकाके किसानोंके पास

दो या तीन बीघेके नहीं सैकड़ों एकड़के खेत हुआ करते हैं और एक ही व्यक्ति उनका सोलहों आने मालिक होता है। आप जानते हैं कि भारतीय फेरीवाले दक्षिण आफ्रिकाके बोअर तथा यूरोपीय किसानोंकी कितनी बड़ी सेवा कर रहे हैं। झगड़ेका मूल कारण यही है।

इस्लामसे खतरा

किसीने कहा है, यह याद नहीं है कि किसने, लेकिन कहा अभी-अभी है कि दक्षिण आफ्रिकाके गोरोंको वहाँ इस्लामके फैल जानेका डर है। जिस इस्लामने स्पेनमें संस्कृतिको प्रविष्ट किया और भारत तथा मोरक्कोमें सभ्यता फैलाई और जिसने सारी दुनियाको भ्रातृभावका सिद्धान्त सिखाया उस इस्लामसे खतरा कैसा? उन्हें डर है कि अगर दक्षिण आफ्रिकाके मूल निवासी इस्लामको स्वीकार कर लेंगे तो वे बराबरीका दर्जा माँगेंगे। यदि वे इस बातसे डरते हैं तो डरें। भाईचारेकी भावना यदि पाप है और यदि वे काले लोगोंको बराबरीका दर्जा मिल जानेसे डरते हैं तब तो कहा जा सकता है कि उनका डर बेजा है। क्योंकि मैंने देखा है कि यदि कोई जुलु ईसाई धर्म अंगीकार कर लेता है तो ऐसा करते ही लाजिमी तौरपर वह अन्य सारे ईसाइयोंके बराबरका नहीं हो जाता। परन्तु यदि वही व्यक्ति इस्लाम धर्म ग्रहण कर लेता है तो वह उसी दिनसे सब मुसलमानोंके साथ बराबरीके दर्जेपर खानपान करने लगता है। उन्हें डर इसी बातका है। हकीकत यही है कि उन्हें आलमगीर बनना है, दुनियामें जितनी भी जमीन है, सब पचा लेनी है। कैसरकी सब शान मिट गई है; वह पददलित है; फिर भी उसे एशियाई संगठनका डर लगा हुआ है और देशनिकाला हो जानेपर भी एक कोनेमें बैठा हुआ वह यही आवाज लगाता रहता है कि यह ऐसा संकट है जिससे यूरोपीयोंको सावधान रहना चाहिए। यही तो संस्कृतिका झगड़ा है और इसीलिए लॉर्ड रीडिंगमें उनके घरेलू इन्तजाममें हस्तक्षेप करनेकी शक्ति नहीं है।

इस संघर्षके परिणाम भयंकर हो सकते हैं। प्रस्तावमें इस संघर्षको असमान प्रतिपक्षियोंका युद्ध कहा गया है और प्रस्ताव द्वारा इस असमान युद्धमें कांग्रेससे अपना कर्तव्य निबाहनेके लिए कहा गया है। यदि मेरी आवाज दक्षिण आफ्रिका जैसे सुदूर देशतक पहुँच सकती है तो मैं वहाँके राजनीतिज्ञोंसे जिनके हाथमें दक्षिण आफ्रिकाके भारतीयोंका भविष्य है [न्याय करनेकी] अपील करना चाहता हूँ।

उज्ज्वल पहलू

अबतक मैंने दक्षिण आफ्रिकाके भारतीयोंसे सम्बन्धित धूमिल पहलूको ही प्रस्तुत किया है। मुझे यहाँ यह भी कह देना चाहिए कि इन गोरोंमें कितने ऐसे भी हैं, जिन्हें मैं अपना अति मूल्यवान मित्र समझता हूँ। दक्षिण आफ्रिकाके गोरोंमें से कुछ व्यक्तियोंने मुझपर अपना प्रेम बरसाया है और मेरा बहुत आतिथ्य सत्कार किया है। मुझे इस बातका भी गर्व है कि दक्षिण आफ्रिकाकी उस त्यागकी मूर्ति, दानशीला महिला ऑलिव श्राइनरसे जो कि एक प्रख्यात कवयित्री हैं मेरी घनिष्ट मैत्री रही

है। वह दक्षिण आफ्रिकाके मूल निवासियोंकी तथा वहाँ बसे हुए भारतीयोंकी समान रूपसे हितैषिणी थीं; उनकी निगाहमें काले गोरे सभी समान थे। उनके हृदयमें भारतीयों, जुलु तथा बंटू जातिके लोगोंके प्रति इतना प्यार था मानो वे उन्हींकी सन्तान हों। उन्हें अन्य लोगोंकी अपेक्षा दक्षिण आफ्रिकाके वतनीकी झोंपड़ीमें ठहरना ज्यादा पसन्द था। वे दान करती थीं; परन्तु उसका ढिंढोरा नहीं पीटती थीं। दक्षिण आफ्रिकामें ऐसे नर-रत्नों और स्त्री-रत्नोंने जन्म लिया है और उनका वहीं लालन-पालन भी हुआ है।

चेतावनी

मैं आपको अन्य अनेक व्यक्तियोंके नाम गिना सकता हूँ — जनरल स्मट्सके साथ मेरा परिचय है, यद्यपि मैं उनका मित्र होनेका दावा नहीं कर सकता। संघ सरकारकी तरफसे मेरे साथ समझौता इन्हीं सज्जनने किया था। उन्होंने ही कहा था कि "दक्षिण आफ्रिकाके ब्रिटिश भारतीय स्वयं उस समझौतेके अधिकारी हैं। यह करार अपने अन्तिम रूपमें है; अब भारतीय सत्याग्रह करनेकी धमकी न दें और दक्षिण आफ्रिकाके गोरे यहाँ बसे हुए भारतीयोंको चैनसे बैठने दें", ये वचन भी जनरल स्मट्सके ही थे।

लेकिन दक्षिण आफ्रिकासे मैंने पीठ फेरी नहीं कि भारतीयोंपर एकके बाद एक अन्याय होने शुरू हो गये। जनरल स्मट्सका वह वादा अब कहाँ गया? एक दिन प्रत्येक मनुष्यको जिस मार्गसे जाना है, उसी मार्गसे एक दिन उन्हें भी तो जाना है। उनकी वाणी और करनी ही पीछे रह जायेगी। वे जनरल स्मट्सकी व्यक्तिगत हैसियतसे बोले हों, सो बात नहीं है। उन्होंने एक राष्ट्रके प्रतिनिधिकी हैसियतसे एक यथोचित बात कही थी। वे ईसाई होनेका दावा करते हैं; दक्षिण आफ्रिकाकी सरकारका हरएक सदस्य अपनेको ईसाई कहता है। संसदका काम शुरू करनेसे पहले वे 'बाइबिल' में से प्रार्थना पढ़ते हैं और द० आ० का एक पादरी प्रार्थनासे ही सदनका कार्य शुरू करता है। यह प्रार्थना जिस ईश्वरकी की जाती है वह ईश्वर न गोरोंका है, न हब्शियोंका, न मुसलमानोंका और न हिन्दुओंका। वह तो सभीका, सम्पूर्ण सृष्टिका ईश्वर है।

मैं इस गौरवपूर्ण पदपर बैठा हुआ और अपनी जवाबदेहीको पूरी तरह समझता हुआ यह कहता हूँ कि दक्षिण आफ्रिकाके भारतीयोंको जो आधारभूत न्याय प्राप्त करनेका हक है उस न्यायको देनेमें जरा भी संकोच किया गया और न्याय न किया गया तो वह आचरण 'बाइबिल' के विरुद्ध होगा और वे ईश्वरके प्रति भी अश्रद्धा रखनेके दोषी बनेंगे।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ७-१-१९२६

८८. एक प्रेमीका सन्ताप

एक सज्जनने अपने मनके भाव इस तरह व्यक्त किये हैं:[1]

इस पत्रको मैंने कुछ छोटा कर दिया है। उसके विषय असम्बद्ध मालूम होंगे लेकिन इस सबमें मनकी आग तो स्पष्ट ही है।

मैं किसानोंके सम्बन्धमें 'नवजीवन' में अधिक कुछ नहीं लिखता, क्योंकि मैं एक व्यावहारिक व्यक्ति हूँ और ऐसे विषयोंपर नहीं लिखता जिनके सम्बन्धमें मैं या पाठक इस समय कुछ भी नहीं कर सकते।

'नवजीवन' का सम्पादन ग्रहण करते समय आरम्भमें ही उसपर 'भारत माता' की जो तस्वीर दी गई थी उसमें किसानोंको ही प्रधान स्थान दिया गया था। किसानोंकी स्थिति सुधारनेकी आवश्यकता तो बहुत है, लेकिन जबतक राज्यकी बागडोर किसानोंके प्रतिनिधियोंके हाथमें नहीं आती अर्थात् जबतक स्वराज्य अथवा धर्म-राज्य नहीं हो जाता तबतक उनकी स्थिति सुधारना असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य है। किसानोंको पूरा 'चबेना' तक नहीं मिलता इसे मैं भली-भाँति जानता हूँ और इसीलिए तो मैंने चरखेके पुनरुद्धारका सुझाव रखा है।

सम्बन्धित कानूनोंको सुधारनेकी जितनी आवश्यकता है उतनी ही आवश्यकता है किसानोंकी आन्तरिक अवस्था सुधारनेकी भी। और वह तो कुछ अंशोंमें भी तभी सम्भव होगा जब ऐसे असंख्य सेवक निकल पड़ेंगे जो अन्य क्षेत्रोंसे मुँह मोड़कर फलेच्छा छोड़कर केवल गाँवोंमें ही आसन जमाकर बैठ जायेंगे। युग-युगकी बुरी आदतें एक या दो सालमें दूर नहीं हो सकतीं।

जमींदारों और ताल्लुकेदारोंके पाससे हजारों बीघा जमीन जबरन् नहीं छीनी जा सकती। जमीन उनसे लेकर दी भी किसे जाये? ताल्लुकेदारों और जमींदारोंकी जमीनें छीननेकी कोई आवश्यकता नहीं। उनका हृदय परिवर्तन करनेकी आवश्यकता है। जमींदारों और ताल्लुकेदारोंके हृदयमें रामका निवास हो — दयाभाव उत्पन्न हो — तो वे अपने किसानोंके रक्षक बनेंगे और अपनी जमीनको किसानोंकी ही जमीन मानकर मुख्य पैदावारका मुख्य हिस्सा उन्हींको देकर स्वयं केवल आजीविकाके लिए यत्किंचित ही लेंगे। यदि कोई कहे कि ऐसा युग तो जब चन्द्र और सूर्यका उदय होना बन्द होगा तभी आ सकेगा; तो मैं यह नहीं मानता। आज संसारकी प्रवृत्ति ही शान्ति और अहिंसाके मार्गकी ओर जा रही है। पशुबलका मार्ग तो युगोंसे अपनाया जा रहा था और उसका आश्रय आज भी लिया जा रहा है, किन्तु कोई यह न

१. यहाँ नहीं दिया गया है। इसमें लेखकने शिकायत की थी कि गांधीजी **नवजीवन** और **यंग इंडिया**में किसानोंके सम्बन्धमें कुछ नहीं लिखते। उसने जमींदारों और साहूकारों द्वारा किसानोंके शोषणका उल्लेख करते हुए गांधीजीसे विधवा-विवाह, दहेज-प्रथा, मृत्यु-भोज तथा अन्य सामाजिक कुरीतियोंके विषयमें जोर देकर लिखनेका अनुरोध किया था।

माने कि उसे अपनाकर रूस, इटली और अन्य यूरोपीय देशोंमें लोग सुखी या स्वतन्त्र हो गये हैं। उनके सिरपर तलवार तो लटकती ही रहती है। जो लोग हिन्दुस्तानके किसानोंकी सेवा करना चाहते हैं उन्हें तो अहिंसाके मार्गपर अचल श्रद्धा रखकर ही कार्य करना होगा। अन्य सब लोग तो केवल अपने अभिमानको ही तृप्त कर रहे हैं। उनकी कल्पनामें किसानोंका समावेश ही नहीं हो सकता अथवा कहना चाहिए कि वे उनकी हालत जानते ही नहीं हैं।

लेखकने जो-कुछ कहा है वह 'चौदशिया' बनिये हों या 'पाटीदार'—सभीपर लागू होता है। इसमें सन्देह नहीं कि वे सब गाँवके अनजान और भोले किसानोंको लूटते हैं। उन्हें स्वार्थके सिवा और किसी भी बातका खयाल नहीं होता। लेकिन वहाँ भी उपाय केवल उन्हें नीति सिखाना ही है। दुःखी मनुष्यके लिए सत्याग्रह और असहयोगकी शिक्षाकी आवश्यकता है। अपनी सहमतिके बिना गुलाम गुलाम बन ही नहीं सकता। यदि लोग शरीरबलसे विरोध करना सीख सकते हैं तो क्या वे आत्म-बलसे विरोध करना नहीं सीख सकते। हम आत्मारहित जड़-पदार्थ शरीरका उपयोग करना सीख सकते हैं; तो क्या शरीरके स्वामीको अर्थात् आत्माकी शक्तिको हम नहीं पहचान सकते?

किसानोंको मर्यादामें रहकर कपास बोना और तम्बाकू कम या बिलकुल ही न बोना कौन सिखा सकता है?

कन्याके बदले कन्या देना आदि विवाह सम्बन्धी कुप्रथाओंका सुधार कसे किया जा सकता है? व्याख्यानोंसे कितना कार्य हो सकेगा? इन सबका मूल उपाय भी नीतिकी शिक्षा देना ही है। नीतिकी शिक्षा देनेके माने हैं जिसे उसका ज्ञान है वह उसपर जाहिर तौरपर अमल करे और ऐसा करनेमें जो कष्ट हों उन सबको सहन कर ले।

छोटी-छोटी जातियोंको एक करनेके लिए सम्भवतः कुछ दिनोंमें प्रयत्न किया जायेगा।

जरा-सी बीड़ी। वह भी दुनियाका कैसा नाश कर रही है। बीड़ीका ठण्डा नशा कुछ अंशोंमें मद्यपानसे भी अधिक हानिकर है, क्योंकि मनुष्य उसका दोष आसानीसे नहीं देख पाता। इतना ही नहीं कि उसके उपयोगको असभ्यता नहीं गिना जाता; बल्कि सभ्य कहलानेवाले लोग ही उसका अधिक उपयोग कर रहे हैं। फिर भी जो लोग इससे बच सकते हैं, उन्हें अवश्य बचना चाहिए।

विधवा विवाह आवश्यक है। यह तो तभी होगा जब युवक शुद्ध बन जायेंगे। लेकिन युवक शुद्ध कहाँ हैं? वे अपनी शिक्षाका सदुपयोग कहाँ करते हैं? अथवा इसे सदोष शिक्षाका ही परिणाम क्यों न मानें? हमें बाल्यकालसे ही पराधीनताकी शिक्षा मिलती है? इस कारण हम स्वतन्त्र विचार करना कैसे सीख सकते हैं; और तब स्वतन्त्र आचारका सवाल ही कहाँ उठता है? जातिके गुलाम, शिक्षाके गुलाम और सरकारके गुलाम। हमारे लिए तो "सब साधन बन्धन भये" यही कहा जा सकता है। इतने पढ़े-लिखे लोग हैं, उनमें से कितनोंने अपने यहाँकी बाल विधवाओंका जीवन सुधारा है? कितने रुपयेके प्रलोभनसे बच सके हैं? कितनोंने स्त्री जातिकी

रक्षा उन्हें अपनी माँ-बहन समझ कर की है? जो अपनेको सत्य मालूम हुआ है उसका पालन कितनोंने जातिका भय छोड़कर किया है? विधवा किसके पास जाकर अपनी गुहार सुनाये? मैं विधवाओंकी तरफसे वकालत भी किसके आगे जाकर करूँ? मैं किसको प्रोत्साहन दूँ? कितनी बाल-विधवाएँ 'नवजीवन' पढ़ती हैं? जो पढ़ती भी हैं उनमें से कितनी अपने विचारोंपर अमल करती हैं। फिर भी प्रसंग आनेपर मैं 'नवजीवन' द्वारा विधवाओंकी दुःखगाथा सुनाया करता हूँ। आगे भी समय आनेपर सुनाता रहूँगा। लेकिन इस दरम्यान मैं यह दृढ़तापूर्वक कहना और समझाना चाहता हूँ कि जिसके यहाँ बाल-विधवा है उसका धर्म है कि वह उसका विवाह कर दे।

जातियोंकी दूसरी बुराइयोंका भी लेखकने यथोचित वर्णन किया है। लेकिन जहाँ आसमान ही फट पड़ा हो वहाँ उसमें पैबन्द क्या लगायें? इसमें सन्देह नहीं कि मृत्युके बाद भोज देना एक जंगली रिवाज है। विवाहके अवसरपर जो भोज दिया जाता है वह भी कुछ कम जंगलीपनकी बात नहीं है। विवाह एक धार्मिक संस्कार है। उसके पीछे इतना खर्च क्यों किया जाये, इतना आडम्बर क्यों करें? लेकिन दुनियाके दूसरे हिस्सोंमें भी विवाहमें कम-ज्यादा खर्च अब भी किया जाता है। इसलिए हम चाहें तो उसे कम असभ्यतापूर्ण कहें; लेकिन मृत्युके बाद भोज देना तो हिन्दुओंमें ही देखा जाता है। ऐसे बहुत-से सुधारोंकी आवश्यकता स्पष्ट है। लेकिन समाजका जीवन विचारमय, स्वतन्त्र और नीतिमय बन जानेपर सब सुधार एक साथ ही हो जायेंगे। जबतक हम लोग विचारशून्य और पराधीन रहेंगे, तबतक एक तार खींचनेसे तेरह टूटेंगे।

लेखकका आखिरी सन्ताप विदेशी कपड़े न जलाने और उसकी दुकानोंपर धरना न देनेके सम्बन्धमें है। यदि लोग मुझे इस बातका यकीन दिलायें कि वे अपने विदेशी कपड़ोंकी ही होली करेंगे, दूसरोंके कपड़ोंकी नहीं और दूसरोंकी टोपियाँ उतार-उतार कर 'होली' में न फेंकेंगे तो मैं आज ही विदेशी कपड़ेकी होलीका प्रचार आरम्भ कर दूँ। इस होलीके औचित्यके सम्बन्धमें मुझे तनिक भी सन्देह नहीं है; लेकिन मुझे लोगोंकी हिंसाका भय है। जिस वस्तुकी उत्पत्ति शुद्ध प्रेमसे होती है उसका भी जब खासा दुरुपयोग किया जाता है तब यह समझना चाहिए कि उसको सार्वजनिक बनानेका समय अभी आया नहीं है। और जब मैंने बम्बईमें यह देखा कि जो लोग स्वयं विदेशी कपड़े पहनते हैं वे भी दूसरोंके विदेशी कपड़े छीन-छीनकर उनकी होली करनेके लिए तैयार हैं, तब मैंने उस शस्त्रको वापस ले लिया। इस समय फूट, पाखण्ड और अन्य दूषित बातोंकी गन्दगी सतहपर आ गई है। ऐसे समयमें अहिंसाके प्रयोगोंको कुछ हलका कर देना ही आवश्यक है। इसीलिए खादी तैयार करने, चरखा चलाने और खादी बेचनेका महान् अहिंसात्मक प्रयोग, जो इस समय निःसंकोच किया जा सकता है, किया जा रहा है। जिन्हें अहिंसासे हिन्दुस्तानका स्वराज्य — धर्मराज्य — प्राप्त करना है वे तो उसे परम धर्म मान कर ही उसपर आचरण करेंगे; ऐसी आशा है।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, २७-१२-१९२५

८९. वफादारीका अतिरेक

एक सज्जन लिखते हैं:[1]

ऐसा तर्क केवल हिन्दुस्तानमें ही किया जा सकता है। हिन्दुस्तानमें स्वामी-भक्तिके गुणका बहुत विकास किया गया है और इससे देशने लाभ भी उठाया है; फिर भी आज तो हम लोग अच्छेसे-अच्छे गुणोंके अतिरिक्त अथवा फिर उसके विपरीत आचरणका ही अनुभव कर रहे हैं।

पहले तो हम 'महाभारत'से दिये गये दृष्टान्तको काटेंगे। धर्मराजने भीष्म आदिके पास जानेपर स्वामि-भक्तिको निमित्त न बताकर अपने उदरकी ओर संकेत करके कहा था कि हम इस पापी पेटके लिए ही ऐसा कर रहे हैं। विदुरजी किसीके भी साथ नहीं रहे थे। 'रामायण' देखेंगे तो मालूम होगा कि विभीषणने धर्मका विचार करते समय न स्वामि-भक्तिको देखा और न भ्रातृप्रेमको। उन्होंने रामचन्द्रकी पूर्ण सहायता की, लंकाके छिपे हुए भेदोंको बताया और वे प्रह्लाद तथा अन्य भक्तोंकी पंक्तिमें गिने गये।

सम्भव है विपरीत दृष्टान्त भी मिल जायें; तो भी नीति-विरुद्ध दृष्टान्तोंका निस्सन्देह त्याग ही किया जाना चाहिए। 'रामायण'में गोमांसका विधान हो या 'वेद'में पशुवधका विधान मिल जाये तो हम उसके कारण आज न गोमांस खायेंगे और न पशुवध करेंगे। सिद्धान्त तो तीनों कालोंमें एकसे ही रहते हैं। लेकिन उनके आधार पर बनाये गये आचार नियम समय और स्थितिके बदलनेपर बदलते ही रहेंगे।

अब वफादारीपर विचार करें। सरकारी नौकरीका गुप्त या प्रसिद्ध-प्रकट ऐसा कोई भी नियम नहीं है जिसके अनुसार सरकारी कर्मचारी खादी नहीं पहन सकते। कुछ कर्मचारियोंको खास सरकारी वर्दी पहननी पड़ती है; लेकिन वह एक अलग बात है। ऐसी खास वर्दी पहननेवाले कर्मचारी भी अपने खानगी समयमें बिना दुराव-छिपाव के खादी पहन सकते हैं। खादी ऐसी वस्तु नहीं है जो सरकारके विरुद्ध हो और जो सरकारके विरुद्ध मानी जाती हो। उसी प्रकार ऐसा भी कोई नियम नहीं है कि सरकारी कर्मचारी किसी भी सार्वजनिक आन्दोलनके प्रति सहानुभूति नहीं दिखा सकता। हाँ, जो नौकर वफादार है वह जबतक नौकरी करता है तबतक सरकार जिस आन्दोलन-को देशद्रोहात्मक मानती है उसमें भाग नहीं ले सकता। लेकिन यदि वह सरकारके हुक्मको अनुचित मानता हो और उसमें विरोध करनेकी हिम्मत हो तो वह नौकरी छोड़कर सरकारका विरोध भी कर सकता है। नीतिका या दूसरा ऐसा कोई नियम नहीं है कि जिसने एक मरतबा नौकरी कर ली वह सदा नौकर ही बना रहे; अथवा यह बात भी नहीं है कि नौकरको स्वामीके कार्यकी नीति या अनीतिका विचार ही

१. पत्र यहाँ नहीं दिया गया है। इसमें राष्ट्रीय प्रवृत्तियोंसे सहानुभूति दिखानेके कारण सरकारी नौकरोंकी जो आलोचना की जाती है उसका उल्लेख था।

नहीं करना चाहिए। वफादारीकी भी एक मर्यादा होती है। वफादारीसे इतना ही अपेक्षित है कि जो नौकरी मिली हो उसकी हदतक और जबतक वह उक्त नौकरीको कर रहा है उसे वफादार रहना चाहिए। उदाहरणार्थ डाकखानेमें काम करनेवाला नौकर निश्चित किये हुए घंटोंमें काम करे और रुपयेकी या पत्रोंकी चोरी न करे, अथवा अपनी नौकरीके समयमें सरकारकी जो गुप्त बातें मालूम हुई हों उन्हें जाहिर न करे। लेकिन वह चौबीसों घंटेका चपरासी नहीं है। उसने अपनी आत्माको बेच नहीं डाला है। जो राष्ट्रीय आन्दोलनको समझता है वह उसके प्रति विचारसे अवश्य ही सहानुभूति रख सकता है और यदि प्रकट नियमोंके विरुद्ध न हों तो अपने व्यवहारमें भी सहानुभूति दिखा सकता है।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, २७-१२-१९२५

९०. पत्र: वसुमती पण्डितको

कानपुर
मौन वार [२८ दिसम्बर, १९२५][1]

चि० वसुमती,

पिछले चार दिनोंसे तुम्हारा कोई पत्र नहीं है। मुझे सप्ताहमें एक पत्र मिल जाये तो भी काफी है।

मेरी तबीयत अच्छी रहती है। दही और फल मुझे अनुकूल आते हैं। वजन तो बढ़ा ही है। कमानीके काँटेसे ९८ पौंड है; यह हमारी तराजूपर ९४ नहीं तो ९३ पौंड तो अवश्य है। वजनका इतना बढ़ जाना बहुत कहा जा सकता है। काम तो अच्छी तरह कर ही पाता हूँ।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती पत्र (सी० डब्ल्यू० ५९८) से।
सौजन्य: वसुमती पण्डित

१. २९-१२-२५ के एसोसिएटेड प्रेस ऑफ इंडियाको दी गई भेंटके अनुसार २८ दिसम्बरको गांधीजीका मौनवार था।

९१. पत्र : वालजी गो० देसाईको

[कानपुर]
सोमवार [२८ दिसम्बर, १९२५][1]

भाईश्री वालजी,

मैं सर हैरॉल्ड मैंनसे अहमदाबादमें ही मिल सकूँगा। मैं दिल्ली होकर अहमदाबाद जानेवाला हूँ। यहाँसे कल रवाना होऊँगा और ३१ तारीखको आश्रम पहुँचूँगा।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती पत्र (सी० डब्ल्यू० ७७४३) की फोटो-नकलसे।
सौजन्य : वालजी गो० देसाई

९२. प्रमाणपत्र : तुलसी मेहरको

कानपुर
२९ दिसम्बर, १९२५

श्री तुलसी मेहरजी सत्याग्रह आश्रममें कमसे कम चार वर्षतक रहे हैं। उनका संयमने मेरे दिलपर बड़ा प्रभाव डाला है। वे बड़ी सादगीसे आश्रममें रहते थे। उसका उद्यम भी स्तुत्य था। उन्होंने धुनना कातना बिनना सीख लीया है। और धुननेमें उनका पहला स्थान रहा है। आज भी मैं उनको आश्रमवासी समझता हुँ।

मोहनदास गांधी

मूल प्रति (जी० एन० ६५२३) की फोटो-नकलसे।

१. डाककी मुहरसे।

९३. भेंट : एसोसिएटेड प्रेस ऑफ इंडियाके प्रतिनिधिसे

कानपुर
२९ दिसम्बर, १९२५

एसोसिएटेड प्रेस ऑफ इंडियाके प्रतिनिधिने गत शाम कांग्रेस अधिवेशनमें पास हुए पण्डित मोतीलाल नेहरूके प्रस्तावके बारेमें गांधीजीका मत जाननेके लिए उनसे भेंट की। गांधीजीने प्रतिनिधिसे कहा :

मैंने कल कांग्रेसकी बैठकमें भाग नहीं लिया क्योंकि कल मेरा मौन दिवस था और जहाँतक बन सके मैं मौनके समय अपने स्थानसे बाहर नहीं जाता। जहाँतक स्वयं प्रस्तावका सम्बन्ध है, मेरी स्थिति इस प्रकार है। पटनामें मैंने सारा नियन्त्रण व्यक्तिगत रूपसे स्वराज्यवादी दलको सौंप दिया था और मैंने उन्हें ऐसी सहायता देनेका वादा किया था जैसा कोई कौंसिल विरोधी दे सकता है। मैं अब भी सिद्धान्त रूपसे कौंसिल प्रवेशके विरुद्ध हूँ। किन्तु मेरे सामने विकल्प अपने पुराने साथियोंको बिलकुल छोड़ देने या यथासम्भव उनकी सहायता करनेके बीच ही था। मुझे फैसला करनेमें कोई कठिनाई नहीं हुई। मैंने अनुभव किया कि यदि मैं सक्रिय रूपसे उन्हें सहायता नहीं दे सकता तो मुझे उन्हें किसी प्रकारकी हिदायत आदि भी न देनी चाहिए। इसलिए मुझे लगा कि मैं अपने जैसे दूसरे अपरिवर्तनवादियोंको भी यह सलाह दूँ कि वे कांग्रेसपर कब्जा करनेकी कोशिश न करें और उसे स्वेच्छया स्वराज्यवादियोंको सौंप दें। मुझे खुशी है कि उन्होंने वैसा ही किया है।

प्र० — क्या आप उस प्रस्तावसे सन्तुष्ट हैं जो कांग्रेसने पास किया है?

वास्तवमें पण्डित मोतीलाल नेहरूने मुझे वह प्रस्ताव दिखाया था। जब वे मेरे पास आये तो मैंने उनसे कहा कि प्रस्तावके पाठके बारेमें निर्णय करना उनका और स्वराज्यवादी दलका काम है। चूँकि उन्होंने प्रस्ताव मुझे दिखाया इसलिए मैंने कुछ सुझाव भी दिये थे। जो उन्हें ऐसे लगे कि वे विवेकपूर्वक स्वीकार कर सकते हैं उन्होंने स्वीकार कर लिये किन्तु कुछ ऐसे भी सुझाव थे, जिन्हें वे स्वीकार नहीं कर सके। लेकिन उन्हें स्वीकार करनेके लिए मेरा जोर देना भी उचित न था। मुझे अपने कर्त्तव्यका निर्वाह करना था और मैं अपने कर्त्तव्यका तभी निर्वाह कर सकता था जब कि मैं वही प्रस्ताव स्वीकार करता जो स्वराज्यवादी दलके अधिकांश प्रतिनिधियोंको स्वीकार हो।

यह पूछनेपर कि कांग्रेसके निर्णयके फलस्वरूप आपका भावी कार्यक्रम क्या होगा, गांधीजीने उत्तर दिया :

मेरा काम तो यही है कि मैं शान्त रहूँ; और जो रचनात्मक कार्य मैं कर सकूँ, करता रहूँ तथा बाकी अर्थात् कांग्रेसके प्रस्तावको कार्यान्वित करनेके दायित्वको

पूर्ण रूपसे स्वराज्यवादियोंपर छोड़ दूँ; उसमें कोई रुकावट न डालूँ, बल्कि जहाँ सम्भव हो मैं उन्हें मदद दूँ।

[अंग्रेजीसे]

हिन्दुस्तान टाइम्स, ३१-१२-१९२५

९४. मथुरादास त्रिकमजीको लिखे पत्रका अंश

दिसम्बर, १९२५

जिससे तुम्हें शान्ति मिले, मैं वही करना चाहता हूँ। इसलिए जैसे पुत्र पितासे, मित्र मित्रसे और रोगी डाक्टरसे निस्संकोच अपनी बात कहता है उसी तरह तुम मुझसे निस्संकोच होकर अपनी बात कहो। मुझसे जो माँगना हो वह माँगो। मैं तो पिता हूँ, मित्र हूँ; और डाक्टर तो हूँ ही।

[गुजरातीसे]

बापुनी प्रसादी

९५. पत्र : घनश्यामदास बिड़लाको

[१९२५][1]

भाई घनश्यामदासजी,

आपका पत्र मीला है। आपको दुःख हुआ है उसका कारण केवल अखबार-वाले हैं। मेरी भाषा वे समझते नहीं हैं तदपि कुछ न कुछ लीख डालते हैं। जो वस्तु मैंने स्तुतिभावसे कहा उसीको निंदाके भावसे लीख दीया। मैं सभ्योंकी गोरक्षाके विषयमें स्तुति कर रहा था और बता रहा था कि जबतक मारवाडीयोंकी पूरी सहाय मुझे नहिं मीलेगी मैं कुछ नहिं कर सकुंगा। मुझे सहाय केवल उनके धनकी नहिं परंतु उनकी बुद्धिकी भी चाहिये। इस सिलसिलेमें मैंने स्तुति रूपमें कहा की मैंने एक मारवाड़ी भाईको खजानची बननेका निमंत्रण दीया था नहिं धनके लीये परंतु उनके पाससे पूरी सेवा लेनेके लीये। कैसा भी हो मैंने आपके नकारका बुरा-कभी नहिं माना है न उस सभामें मैंने बुरा मानकर कहा था। मैं ऐसी उमेद किसी मित्रसे नहिं रखता हुं कि वह मेरी प्रत्येक प्रार्थनाको स्वीकार करे। आपके अस्वीकार-को मैं पूरा समझ सका था।

इसी तरह मैंने आपका देशबन्धु स्मारकके लीये निश्चय भी समझ लीया है उससे मुझको कुछ दुःख नहिं हुआ है।

१. देशबन्धु स्मारकके उल्लेखसे।

अखिल भारत स्मारकके बारेमें आपने जो पं० जवाहरलालको लीखा है उसका तात्विक भाव मैं समझ लुंगा जब हम मीलेंगे तब।

आपका स्वास्थ्य अब तक पूरा अच्छा नहिं हुआ है ऐसा जुगलकिशोरजी कहते थे। आपके खोराकमें कुछ फेरफार करनेकी आवश्यकता हो सकती है। आपकी धर्म-पत्नीको अब तक आराम नहिं हुआ है ऐसा भी वे कहते थे। ईश्वर उनको शांति दे।

आपका,
मोहनदास गांधी

मेरे दायने हाथमें दरद होनेके कारण मैं बायें हाथसे लीखता हुं।

मूल पत्र (सी० डब्ल्यू ६११९) से।
सौजन्य: घनश्यामदास बिड़ला

९६. पत्र: सतीशचन्द्र दासगुप्तको

१ जनवरी, १९२६

प्रिय सतीशबाबू,

यह नववर्षकी पहली सुबह है। मैं यहाँ कल दोपहरको पहुँचा।

भरूचाने मुझे बताया कि आप खिन्न और उदास थे। इसका कारण न तो [वह] समझ सके और न मैं ही। मैंने जमनालालजीसे पूछा। उन्होंने मुझे बताया कि हो सकता है कि आप कताई-प्रतियोगिताकी परीक्षा-सम्बन्धी किसी बातको लेकर खिन्न हों। कुछ भी कारण क्यों न हो आपको उदास या खिन्न नहीं होना चाहिए। हर परिस्थिति और हर कठिनाईका सामना करते हुए समभावसे रहना सीखना चाहिए। आपने, मैंने और बहुतसे लोगोंने ऐसी सेवाके कामको हाथमें लिया है जिसका जोड़ शायद ही संसारमें मिले। सेवा-कार्य जितना बड़ा होगा, उतने ही अधिक संयम, उतनी ही अधिक सहिष्णुता और उतना ही अधिक कष्ट-सहन दरकार होगा। इसलिए किसी भी बातको लेकर अपना उत्साह मन्द नहीं होने देना चाहिए। हमें सभी प्रकारके स्वभावके लोगोंके साथ निर्वाह करने योग्य बनना चाहिए। इसलिए कृपया लिखें कि आप फिर पहले जैसे उत्साहसम्पन्न व्यक्ति बन गये हैं। आपको 'चियर बॉयज़ चियर, नो मोर ऑफ आइडिल सॉरो!' वाला गीत तो याद होगा ही। एडविन आर्नोल्डके उस दिव्य गीतको बार-बार पढ़िये।

मेरा मन था कि मैं आपसे बातें करूँ। फिर मैंने सोचा कि आपको साथ ले चलूँ। लेकिन बातें करने योग्य समय मेरे पास नहीं था। और फिर मैं यह भी नहीं चाहता था कि आप अपना काम छोड़कर मेरे साथ रहें। मैं यह भी चाहता था कि डा० सुरेशसे आपका सम्पर्क फिर सध जाये। उनका कार्य मुझे अच्छा लगा है।

उनका तरीका अपना स्थान रखता है। मैं चाहता था कि इस सबके बारेमें आपसे बातचीत करूँ। किन्तु ऐसा हो नहीं सका। अब जब भी सम्भव हो, आप यहाँ अवश्य आयें।

आपको जरा भी संकोच किये बिना लिखना चाहिए कि आपको क्या पसन्द है। मेरा यहाँपर रहना एक वर्षके लिए निश्चित हो गया है।

हेमप्रभादेवीका क्या हाल है? मेरी उनसे काफी देरतक बातें हुई थीं। किन्तु मैं समझ गया कि उन्होंने अपने मनकी बात मुझसे नहीं कही। उन्हें जल्दीसे-जल्दी यहाँ आ जाना चाहिए। यदि उन्हें अलग रसोईघरकी आवश्यकता हो, तो मैं उसका प्रबन्ध कर दूँगा। एक बंगाली अध्यापक यहाँ हैं। किन्तु यदि आप उनके लड़कोंके लिए कोई अच्छा विद्वान् दे सकें तो दें। मौसमके पर्याप्त ठंडे रहते-रहते तक उन्हें यहाँ आ जाना चाहिए। यहाँ इस बार असामान्य रूपसे बहुत हलका जाड़ा पड़ रहा है, इसकी कानपुरसे कोई तुलना ही नहीं है।

आपका,

बापू

[पुनश्च :]

आपकी विज्ञापन पुस्तिकाको मैंने पूरा-पूरा पढ़ा है। बहुत अच्छी है। आपके सफरी चरखेकी बिक्री कैसी हो रही है?

बा०

अंग्रेजी पत्र (जी० एन० १५५७) की फोटो-नकल से।

९७. पत्र : नारणदास गांधीको

शुक्रवार [१ जनवरी, १९२६][1]

चि० नारणदास,

तुम्हारे दोनों पत्र मिले। तुम्हारे कार्यभार[2] छोड़ देनेकी बात मुझे मालूम नहीं थी। मैंने तुम्हें इसीलिए तार दिया था। कार्यालयके सम्बन्धमें तुम्हारा पत्र चि० जयसुखलालको[3] सौंप दिया है जिससे उसे मालूम हो जाये कि औरोंके विचार कैसे हैं। अब तो मैंने एक वर्ष यहीं रहनेका निश्चय किया है, इसलिए मैं इन मामलोंसे निपट सकूँगा।

तुमने अपने बारेमें जो निर्णय किया है वह ठीक नहीं है। घरेलू असुविधाएँ दूर हो सकेंगी। लेकिन अब तो तुम्हारे यहाँ आनेके सिवा कोई चारा नहीं, क्योंकि

१. मगनलालके उपवासके उल्लेखसे।
२. काठियावाड़ राजनीतिक परिषद्के मन्त्रीका।
३. जयसुखलाल गांधी, गांधीजीके भतीजे।

चरखा संघके कार्योंमें तुम्हारी बहुत जरूरत पड़ेगी। इस समय मगनलालका सात दिनका उपवास चल रहा है। आज उसका तीसरा दिन है। इस उपवासका कारण . . . की लड़कियोंका झूठ बोलना है। उसकी तबीयत अच्छी है; इसलिए चिन्ताका कोई कारण नहीं। तुम उसका उपवास समाप्त होनेके बाद आ जाओ अथवा अभी आ जाओ। मुझे अभी तो तुमसे बहुत काम लेना है, इसलिए तुम अपनी योजनाओंमें परिवर्तन कर लो।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती पत्र (सी० डब्ल्यू० ७७०५) से।
सौजन्य: नारणदास गांधी

९८. पत्र: शान्तिकुमार मोरारजीको

आश्रम
शुक्रवार [१ जनवरी, १९२६][1]

चि० शान्तिकुमार,

देवदास तो फिलहाल देवलालीमें मथुरादासकी सार-संभाल कर रहा है। लेकिन तुमने उसके नाम जो पत्र लिखा था, वह मेरे पास छोड़ गया है। उसमें पूछे गये एक प्रश्नका जवाब मुझे देना है। जो सदा नियमसे खादी पहनता हो, यदि वह किसी समय विवश होकर दूसरा कपड़ा पहन ले तो भी क्या वह 'आदतन खादी पहननेवाला'[2] माना जा सकता है? मेरा उत्तर है कि वह अवश्य 'आदतन खादी पहननेवाला'[3] माना जाना चाहिए। मुझे तो ऐसा खयाल है कि मैं तुम्हें इस प्रश्नका जवाब दे चुका हूँ।

शोलापुरके झगड़ेका कुछ निर्णय हो गया है या यह प्रश्न अभीतक वैसाका वैसा ही पड़ा है?

मेरा स्वास्थ्य अच्छा है। उपवासमें जितना वजन कम हो गया था वह फिर लगभग पूरा हो गया है। जब मैं कानपुर जा रहा था तब मुझे तुम्हारी ओरसे कोई एक टोकरी फल दे गया था।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती पत्र (सी० डब्ल्यू० ४६९८) की फोटो-नकलसे।
सौजन्य: शान्तिकुमार मोरारजी

१. गांधीजीके कानपुरसे वापस आश्रम पहुँचनेपर आनेवाला शुक्रवार इसी तारीखका था।
२ व ३. मूलमें यहाँ अंग्रेजी शब्द 'हैबिच्युअल वीयरर' है।

९९. सन्देश: स्नातक संघको

पौष बदी ३ [२ जनवरी, १९२६]

मैं आपके पत्रका जवाब अब जाकर दे पा रहा हूँ। मैं संघकी सफलताकी कामना करता हूँ। मेरी सलाह यही है कि संघने जो नियम बनाये हैं उनका पूर्ण रूपसे पालन किया जाये। संघ स्थापित तो बहुत सारे हुए लेकिन उनमें से बहुत कम सफल हो पाये हैं। मैं कामना करता हूँ कि आपके संघकी गिनती इन सफल संघोंमें हो।

मोहनदास गांधीके वन्देमातरम्

[गुजरातीसे]
साबरमती, खण्ड-४, अंक ५ और ६

१००. मथुरादास त्रिकमजीको लिखे पत्रका अंश

२ जनवरी, १९२६

तुमने महादेवको जो दो पत्र लिखे वे आज ही मिले हैं। मुझे इनमें तुम्हारी निराश भावना दिखाई देती है। लेकिन निराशाका कारण ही कहाँ है? रोग तो देर या सबेर चला ही जायेगा। तुम वहाँ चले गये, यह तो ठीक हुआ। अब आसपासकी चिन्ताएँ छोड़ो; स्वयं अपनी चिन्ता भी न करो। यदि तुम इतना भी न कर सको तो तुम्हारा सारा ज्ञान व्यर्थ ही होगा।

[गुजरातीसे]
बापुनी प्रसादी

१०१. कांग्रेस

कानपुरके कांग्रेस अधिवेशनके सम्बन्धमें अनेक भविष्यवक्ताओंकी यह भविष्य-वाणी थी कि यदि सरोजिनी देवी अधिवेशनकी अध्यक्षा चुनी गईं तो उन्हें भारी कठि-नाई होगी; अधिवेशनमें प्रेक्षक आयेंगे ही नहीं, प्रतिनिधि भी कम ही आयेंगे, आदि, आदि। लेकिन इस बारका कांग्रेस अधिवेशन पहले अधिवेशनोंसे किसी भी तरह कम नहीं रहा। सच पूछो तो वह उनसे बढ़कर ही रहा।

प्रबन्धमें वह अन्य अधिवेशनोंसे बढ़कर रहा, ऐसी मेरी मान्यता है। प्रतिनिधियों-की खास शिकायत ज्यादातर खानेके सम्बन्धमें होती है। लेकिन मैंने खानेके सम्बन्धमें तो प्रशंसाके सिवा और कुछ सुना ही नहीं। इस बार जैसा खाना दिया गया वैसा पहले कदाचित् ही कभी दिया गया होगा। प्रतिनिधियोंको इच्छानुसार दूध, दही, पापड़,

शाक आदि सभी दिये जाते थे। खानेकी चीजें भी अच्छीसे-अच्छी थीं और परोस भी बहुत फुर्तीसे दी जाती थीं। वस्तुतः देखा जाये तो स्वयंसेवक इतने ज्यादा थे कि किसीको कुछ कहनेकी जरूरत ही न पड़ती थी। स्वच्छता भी मनोनुकूल थी। मैंने स्वयं सब-कुछ देखाभाला, और मुझे टीका करने योग्य कोई बात नहीं दिखाई दी। इस सुव्यवस्थाके यशके भागी लाला फूलचन्द हैं।

खाने-पीनेकी तरह ही रहनेकी व्यवस्था भी उत्तम थी। सबके लिये छोलदारियाँ थीं। उनमें सर्दी लगनेका बहुत कम भय था। पाखानेकी व्यवस्था भी उत्तम प्रकार-की थी। खाइयाँ बहुत अच्छी खोदी गई थीं। पाखानोंके सामने पर्दे थे। लोगोंके पाखाना जानेके बाद मिट्टी डाल देनेके लिए स्वयंसेवक तुरन्त तैयार खड़े रहते थे। भंगी मौजूद थे; तथापि स्वयंसेवकोंको भंगीका काम करनेमें कोई संकोच न था। इस विभागका नाम ही 'आरोग्य और भंगी विभाग' रखा गया था। प्रत्येक स्वयंसेवकको जो चिह्न दिया गया था उसपर टोकरी और झाड़ूका चित्र बना हुआ था। मैं २९ तारीखके पहले इन सब चीजोंकी जाँचके लिए नहीं निकल पाया था; अर्थात् उन्हें तदनुसार काम करते हुए पाँच दिन बीत चुके थे। फिर भी मुझे पाखानोंके पास तनिक भी गन्दगी नहीं दिखी। कहीं दुर्गन्ध नहीं थी और मुझे पानी भी कहीं बहता नहीं दिखा। २९ तारीखको अर्थात् कांग्रेस अधिवेशनके समाप्त होनेके बादवाले दिन भी गन्दगी न होना सुव्यवस्थाका परिचायक है।

लगभग आठ सौ स्वयंसेवक और अस्सी स्वयंसेविकाएँ थीं। स्वयंसेविकाओंके लिए भगवे रंगकी खादीकी साड़ियाँ थीं; वे उन्हें पहने हुए बहुत अच्छी लग रही थीं।

कांग्रेस नगरका छपा नक्शा भी प्राप्य था। कांग्रेस मण्डपके आसपास अन्य सम्मेलनोंकी भी व्यवस्था की गई थी। लगभग ३० अन्य सम्मेलन किये गये थे।

लोगोंमें प्रबन्धके अनुकूल उत्साह भी था। तिलक नगरमें लोगोंकी भीड़पर-भीड़ उमड़ी पड़ती थी। कहीं निकलनेके लिए भी रास्ता नहीं मिलता था। सबके चेहरों-पर उत्साह और आनन्द छाया हुआ था। मण्डपके बाहर भीतर एक-सी भीड़ थी। पहले दिन ही मण्डप खचाखच भर गया था। इस कांग्रेस अधिवेशनमें अंग्रेजीभाषी स्त्री-पुरुषोंकी संख्या खासी बड़ी थी और उनमें सबसे ज्यादा अमेरिकी थे।

सरोजिनी देवीने अपना कार्य समझदारी और मधुरतासे किया और इस तरह सबका मन हर लिया। उनके उद्योगकी और उनकी सावधानीकी सीमा न थी। उन्होंने निर्धारित कार्यक्रमका पूरा पालन किया। जहाँ छूट देनी चाहिए वहाँ छूट दी और जहाँ दृढ़तासे काम लेना चाहिए वहाँ दृढ़तासे काम लिया।

सभानेत्रीका भाषण काव्यमय था। यह भाषण संक्षिप्ततम कहा जा सकता है। अंग्रेजी भाषाके सौन्दर्यका तो कहना ही क्या है? उनके इस संक्षिप्त भाषणमें भी कोई बात छूटी नहीं थी। भाषणमें नये सुझावोंकी आशा नहीं की जा सकती थी, क्योंकि नई व्यूह रचना सरोजिनी देवीका काम न था। वह तो पण्डित मोतीलालका काम था।

और उन्होंने उस व्यूहकी रचना की। मुझे उसके विषयमें कुछ नहीं कहना। मैं कौंसिल प्रवेशकी बात नहीं समझता। मुझे उससे जनताका लाभ होते नहीं

दिखता। लेकिन यह तो हुई पुरानी बात। कौंसिलोंमें जाना इष्ट है, अनेक अंग्रेजी पढ़े-लिखे लोग ऐसा मानते हैं; अतः मेरे जैसे लोगोंका काम इतना ही तय करना रह जाता है कि उनमें से किसी एक पक्षका समर्थन किया जाये। मैंने बेलगाँवमें यही किया और बादमें पटनामें और अन्तमें कानपुरमें भी यही किया। स्वराज्यदलमें दो पक्ष हो गये हैं, यह बात मुझे बहुत दुःख देती है; लेकिन जहाँ सिद्धान्त भेद हो वहाँ ऐसे पक्षोंका बनना अनिवार्य है। ऐसे प्रयोग करते-करते हम किसी दिन लक्ष्यपर पहुँच जायेंगे। मेरी समझमें तो हम १९२० में जिस स्थितिमें पहुँच गये थे, अन्तमें अब भी वैसी ही स्थितिमें पहुँच जायेंगे। यह हो अथवा न हो; लेकिन जहाँ मतभेद सच्चे हों वहाँ उन्हें व्यक्त करनेमें देशका अहित कदापि नहीं हो सकता। जो प्रस्ताव पारित हुआ है वह महत्त्वपूर्ण है। इसमें कौंसिल त्यागके बीज मौजूद हैं। अन्तिम परिणाम तो भगवान ही जाने।

लेकिन प्रथम और तात्कालिक महत्त्वका प्रश्न तो दक्षिण आफ्रिकाके भारतीयोंका है। उस प्रस्तावमें जो उपाय सुझाये हैं[1] यदि उनमें से एक भी अपनाया जाये तो वहाँ रहनेवाले हमारे भारतीय भाइयोंकी समस्याका समाधान अवश्य हो जायेगा।

यह प्रस्ताव कि जहाँतक हो सके कांग्रेसमें हिन्दी और उर्दूका ही उपयोग किया जाना चाहिए, महत्त्वपूर्ण है। यदि कांग्रेसके सभी सदस्य उसपर अमल करें तो गरीबोंको भी कांग्रेसके कार्यमें रस आने लगे।

प्रदर्शनीकी व्यवस्था भी बहुत अच्छी थी। कानपुरकी प्रदर्शनी अन्य अधिवेशनों-की प्रदर्शनियोंकी अपेक्षा अधिक अच्छी रही, ऐसा मुझे लगा। इसमें अन्य भागोंकी रचना खादीको केन्द्रबिन्दु मानकर की गई थी। योजनासे कोई भी खादीकी चार वर्षकी उन्नतिको अच्छी तरह समझ ले सकता था। कहाँ १९२१ की खादी और कहाँ १९२५ की खादी? इस प्रदर्शनीको देखनेके बाद कोई नहीं कह सकता कि खादीकी अच्छी प्रगति नहीं हुई है। कोई भी प्रेक्षक कह सकता है कि रचनात्मक कार्यमें खादी आसानीसे प्रथम स्थान प्राप्त कर सकती है।

प्रदर्शनीके दूसरे विभाग भी आकर्षक थे। हजारों स्त्री-पुरुषोंने प्रदर्शनीका लाभ लिया। दर्शकोंकी संख्या कई दिनोंतक १२,००० से भी अधिक रही।

कुल मिलाकार कांग्रेस और उससे सम्बन्धित अंगोंकी व्यवस्थाके बारेमें स्वागत-कारिणी समिति और डाक्टर मुरारीलाल बधाईके पात्र हैं। कांग्रेस अधिवेशनोंके प्रबन्धमें दिन-प्रतिदिन सुधार होता जाता है; इससे जनताकी स्वराज्यकी क्षमतामें कितनी वृद्धि हुई इसका माप भी हो जाता है।

कांग्रेसकी लोकप्रियताका माप उसके सदस्योंकी संख्यासे नहीं होता वरन् उसके वार्षिक अधिवेशनके समय लोगोंके उत्साहसे होता है। यह उत्साह इस वर्षके अधि-वेशनमें किसी कदर कम न था। यह बात तो सरोजिनी देवीके सम्मानार्थ जो जलूस निकाला गया था उसे देखनेवाले लोग भी देख सकते थे। रास्तेभर जनताकी भीड़ और जलूसके मार्गोंकी स्वेच्छासे की गई सजावट इस उत्साहकी परिचायक थीं। लोगोंमें उत्साह आखिरी दिनतक कायम रहा।

१. देखिए "भाषण: दक्षिण आफ्रिकी भारतीयोंसे सम्बन्धित प्रस्तावपर", २५-१२-१९२५।

कांग्रेसके अगले अधिवेशनका बीड़ा असमने उठाया है। असम है तो हिन्दुस्तानके उत्तरपूर्वके छोरमें। लेकिन वहाँके लोगोंमें उत्साहकी कोई कमी नहीं है। इसके अतिरिक्त जादू स्वयं कांग्रेसके नाममें है। जो संस्था चालीस वर्षसे चल रही है उसकी उन्नतिके सम्बन्धमें कोई शंका नहीं कर सकता। कांग्रेसकी उन्नतिमें स्वराज्य निहित है। कांग्रेसका कल्याण हो। भारतकी जय हो।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, ३-१-१९२६

१०२. पत्र: रवीन्द्रनाथ ठाकुरको

साबरमती
३ जनवरी, १९२६

प्रिय गुरुदेव,

आपका मधुर पत्र मिला, धन्यवाद। इससे मुझे काफी राहत मिली है।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

अंग्रेजी पत्र (जी० एन० २२८५ तथा ४६३०) की फोटो-नकलसे।

१०३. पत्र: हरिभाऊ उपाध्यायको

रविवार [३ जनवरी, १९२६][1]

भाई हरिभाऊ,

आपका खत मिला था। मार्तण्डकी[2] गलतीके लिए दुःख मानना अनावश्यक है। बहोत कम लड़के बच सके हैं। हम सावधान रहें। अपनी आत्म-शुद्धि करें, सत्य है कि हमारी ही गलतीयोंका प्रतिबिंब हम लड़कोंमें देखते हैं। तुम्हारा स्वास्थ्य अच्छा होगा।

बापूके आशीर्वाद

भाई हरिभाऊ उपाध्याय
७०, सराफा
इन्दौर

मूल पत्र (सी० डब्ल्यू० ६०५६) से।
सौजन्य: हरिभाऊ उपाध्याय

१. डाककी मुहरसे।
२. प्रेषीके भाई।

१०४. पत्र : नारणदास गांधीको

सोमवार [४ जनवरी, १९२६][1]

चि० नारणदास,

चि० मगनलालका उपवास ठीक तरह चल रहा है। दुर्बलताके अलावा और कोई खराबी नहीं है। रामदास अमरेलीके [खादी-कार्यके] सम्बन्धमें बात करने आ गया है। तुम आ जाओ तो इस विषयमें मेरा मार्गदर्शन कर सकते हो।

बापूके आशीर्वाद

चि० नारणदास खुशालचन्द गांधी
मिडिल स्कूलके सामने
नवापुरा
राजकोट

गुजराती पत्र (सी० डब्ल्यू० ७७०६) से।
सौजन्य : नारणदास गांधी

१०५. मथुरादास त्रिकमजीको लिखे पत्रका अंश[2]

४ जनवरी, १९२६

तुम चाहो तो बाको ही भेज दूँ। वह सार-संभाल अच्छी तरह करेगी और तुम्हारे साथ पर्याप्त रूपसे घुलमिल भी जायेगी।. . .

इसमें सन्देह नहीं कि तुम्हें आराम तो पूरा ही करना चाहिए। तुम्हें दूसरी दवा नहीं चाहिए। फिलहाल तो जिनसे मनमें बहुत खुशी हो ऐसी बातें न करना ही अच्छा है। तुम्हारे लिए तो अभी निर्मल और शान्त आनन्दकी आवश्यकता है। . . .

तुम बम्बई नगर निगमके सदस्य बने रहो; यह उचित ही है। यदि तुम अपनी अनुपस्थितिमें भी चुन लिये जाओ, तो यह एक बहुत शुभ चिह्न होगा।

[गुजरातीसे]

बापुनी प्रसादी

१. डाककी मुहरसे।

२. साधन-सूत्रमें अनुच्छेद १ पृष्ठ ८४, अनुच्छेद २ पृष्ठ ८५ और अनुच्छेद ३ पृष्ठ ८६ पर हैं; लेकिन तारीख तीनोंकी एक ही है; सम्भवत: ये एक ही पत्रके अंश हैं।

१०६. पत्र : वसुमती पण्डितको

मंगलवार [५ जनवरी, १९२६][1]

चि० वसुमती,

तुम्हारा पत्र मिला। रामदास तो यहाँ समयपर ही पहुँचा है। वह बहुत घबराया हुआ था।

तुमने संस्कृत पढ़नेका निश्चय किया है, यह उचित ही है। अब तुम्हें इसपर दृढ़ रहना चाहिए।

मेरा बुखार जैसे आया था वैसे ही चला गया। इसमें लिखनेकी क्या बात थी? मेरी तबीयत अच्छी रहती है। बुखार कुल तीन बार आया; वह एक दिन छोड़कर आता था। तुम्हें मालूम है, अभी तो मैं यहाँ एक वर्ष रहनेवाला हूँ।

मणिबहन (वल्लभभाईकी पुत्री) वर्धा गई है। वह वहाँ शिक्षिकाका कार्य करेगी।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती पत्र (सी० डब्ल्यू० ६०३) की फोटो-नकलसे।
सौजन्य : वसुमती पण्डित

१०७. पत्र : मणिबहन पटेलको

[६ जनवरी, १९२६ से पूर्व][2]

चि० मणि,

तुम्हारे वहाँ (वर्धा) पहुँच जानेका समाचार जमनालालजीने लिखा है। मुझे नियमपूर्वक पत्र लिखती रहना। कमला और मदालसाकी देखरेख अच्छी तरह करना। क्या कक्षाके शेष बच्चोंके बारेमें भी कुछ कहना आवश्यक है? तुमने देवधरको धन्यवादका पत्र लिखा था या नहीं? न लिखा हो तो अब मराठीमें लिख देना।

बापूके आशीर्वाद

[पुनश्च :]

मैं आते ही उसी दिन नन्दूबहनके[3] पास गया था। उन्होंने बड़े धैर्यका परिचय दिया।

[गुजरातीसे]

बापुना पत्रो – ४ : मणिबहेन पटेलने

१. पत्रमें रामदासके पहुँचनेके उल्लेखके आधारपर। देखिए "पत्र : नारणदास गांधीको", ४-१-१९२६।

२. देखिए "पत्र : मणिबहन पटेलको", ६-१-१९२६।

३. विजयागौरी कानूगा; अहमदाबादके सुप्रसिद्ध डाक्टर कानूगाकी पत्नी जिनके बारह वर्षीय पुत्रका एकाएक देहान्त हो गया था।

१०८. पत्र : मणिबहन पटेलको

बुधवार, ६ जनवरी, १९२६

चि० मणि,

मैंने तुम्हें एक पत्र विनोबाके पत्रके साथ भेजा था। वह तो तुम्हें मिला ही न होगा; क्योंकि विनोबा तो यहाँ हैं। तुम्हारा पत्र कल मिला। चि० कमलाको जो पसन्द हो वही पढ़ाया जाये। एक दो हिन्दी पुस्तकें ले ली जायें और उससे वे पढ़वाई जायें। उसका अंकगणित बहुत कच्चा है, इसलिए उसे वह सिखाया जाये। वह गुजराती समझ लेती है और भी जो विषय उसे पसन्द हों वे सिखाये जायें। उसके साथ 'रामायण' के कुछ अंश पढ़ो तो भी ठीक है। मुख्य बात तो कमलाको अध्ययनमें रुचि पैदा करानेकी है। तुम मराठी लिखने-पढ़नेका अपना अभ्यास बढ़ाना। नित्य घूमने जाना और सब कार्य नियमपूर्वक करना।

बापूके आशीर्वाद

[गुजरातीसे]

बापुना पत्रो — ४ : मणिबहेन पटेलने

१०९. तार : सी० एफ० एन्ड्र्यूजको[1]

[६ जनवरी, १९२६ या उसके पश्चात्][2]

एन्ड्र्यूज
मार्फत गुल
केपटाउन

ठीक समझो तो इंग्लैंड जरूर जाओ। भाग्यका फैसला संघ संसदमें होने तक तुम्हारा वहाँ ठहरना हर हालतमें अधिक अच्छा होगा।

गांधी

अंग्रेजी तार (एस० एन० ११९२५) की माइक्रोफिल्मसे।

१. यह एन्ड्र्यूजके ४ जनवरीके निम्न तारके उत्तरमें दिया गया था: "मन्त्रिमण्डल द्वारा विधेयकके भाग्यका निर्णय १४ जनवरीको। इस समय दबाव डालनेकी आवश्यकता। सम्भवतः ७को केपटाउन पहुँच रहा हूँ। शीघ्र ही इंग्लैंड जाना ठीक रहेगा। अपनी राय तारसे भेजें।"

२. एन्ड्र्यूजके तारकी डाक मुहरसे।

११०. आसक्ति या आत्मत्याग

अपने अगणित सहयोगियोंको मुझे यह बताते हुए दुःख होता है कि लगभग एक वर्षके लिए मैं अपने दौरेका कार्यक्रम स्थगित कर रहा हूँ। स्वास्थ्य-सम्बन्धी कोई अनिवार्य कारण आ पड़ने अथवा किसी आकस्मिक घटनाको छोड़कर इस वर्ष, कमसे-कम २० दिसम्बरतक मैं आश्रमके बाहर, और अहमदाबादके बाहर तो कदापि, पैर नहीं रखूँगा। यह निश्चय कानपुरमें कांग्रेस सप्ताहके दौरान वहाँ आये हुए प्रमुख सहयोगियोंके साथ सलाह करके लिया गया है। इस निश्चयके मुख्यतः तीन कारण हैं :

(१) अपने थके हुए शरीरको यथासम्भव अधिकसे-अधिक आराम दे सकूँ। डा० अन्सारीने इस सम्बन्धमें बड़ी लम्बी-चौड़ी हिदायतें लिख भेजी हैं और कहा है कि जहाँतक हो सके मैं मानसिक श्रम भी न करूँ।

(२) आश्रमकी देखभाल मैं स्वयं कर सकूँ। ध्यान तो मुझे उसपर उसकी शुरुआतसे ही देना चाहिए था; परन्तु उसके खुलनेके बाद पहले एक वर्षको छोड़कर मैं फिर कभी इस ओर ध्यान नहीं दे सका।

(३) अखिल भारतीय चरखा संघकी स्थितिको, जो सन्तोषजनक तो है ही, व्यावसायिक आधारपर ला सकूँ। इसके लिए लगातार देखभाल और छोटी-बड़ी सभी बातोंकी ओर ध्यान देनेकी आवश्यकता है। यह तभी सम्भव है जब संगठन मन्त्री किसी भी समय मुझसे काम ले सकें।

मैंने जो कदम उठाया है उसके लिए इन कारणोंमें से कोई भी कारण काफी है; यदि तीनों कारणोंको मिलाकर देखा जाये तो यह बात बिलकुल ही स्पष्ट हो जाती है कि सालभर मेरा आश्रममें बना रहना निहायत जरूरी है।

सम्भवतः इससे अखिल भारतीय देशबन्धु स्मारक अर्थात् अखिल भारतीय चरखा संघके लिए धन संग्रहके कार्यको धक्का लगेगा। लेकिन यह खतरा उठा लेना अधिक ठीक समझा गया। मैं अब सहयोगियोंसे पहले की अपेक्षा कहीं अधिक प्रयत्न करनेकी आशा करूँगा। लेकिन अपने मित्रोंसे मुझे यह आशा है कि वे चन्दा माँगे जानेका इन्तजार किये बिना चन्दा भेजते रहेंगे। इस कोषके साथ एक महान् व्यक्तिका नाम तो जुड़ा ही है, इसके अलावा यह कोष इसलिए इकट्ठा किया जा रहा है कि खादीके प्रसारके लिए इसका तुरन्त उपयोग किया जाये। यदि खादीका उत्पादन प्रचुर मात्रामें बढ़ाना है, और इसे सस्ते दामों बेचना है या दूसरे शब्दोंमें, यदि और अधिक बेकारोंको रोजी तथा और अधिक भूखोंको रोटी देनी है तो इस समय लगभग दस लाख रुपये खर्च करना जरूरी होगा। यद्यपि मैंने इस बातकी कभी घोषणा नहीं की, किन्तु मुझे यह स्वीकार करनेमें तनिक भी संकोच नहीं है कि मेरी अपनी इच्छा इस स्मारकके लिए एक करोड़ रुपया इकट्ठा करनेकी थी। यदि अखिल बंगाल स्मारक-के लिए दस लाखकी रकम हो सकती है तो अखिल भारतीय स्मारकके लिए उस

रकमके दस गुने अर्थात् एक करोड़को कोई बड़ी रकम नहीं कहा जा सकता। यदि एक अस्पतालके लिए दस लाखकी रकम ज्यादा नहीं है तो खादीके कामके लिए, जिससे कि करोड़ों घरोंसे भुखमरीको भगाया जा सकेगा, एक करोड़की राशि कोई बड़ी नहीं है। यह विचार साकार हो चाहे कोरा स्वप्न ही बना रहे, लेकिन दस लाख फौरन इकट्ठे होनेमें कोई भी कठिनाई नहीं होनी चाहिए। एक मित्रने एक लाख देनेका वचन दिया है जिसमें से १२,००० रुपये उन्होंने दे भी दिये हैं। श्रीयुत मणिलाल कोठारीने एक लाख रुपये दिलानेका वचन दिया है, जिसमें से २५,००० मिल भी चुका है। श्रीयुत एस० श्रीनिवास आयंगारसे १०,००० रुपये मिलनेकी शुभ सूचना आई है। खादी प्रेमी कार्यकर्त्ताओंसे मेरा निवेदन है कि वे अपने मित्रोंसे धन एकत्र करके स्मारक कोषके कोषाध्यक्ष श्री जमनालाल बजाजके पास भेजें।

लेकिन कोष एकत्र हो या न हो, निर्णय हो चुका है। 'मेरे मन कछु और है, कर्त्ताके कछु और'। बिहार छोड़ते समय मैंने अपने बिहारी मित्रोंको इस बातकी पूरी आशा दिलाई थी कि यदि कोई व्यवधान उपस्थित न हुआ तो मैं बिहारका अपना बाकी दौरा इसी वर्षके आरम्भमें ही और यदि सम्भव हुआ तो इसी मासमें पूरा कर दूँगा। जब कच्छके दौरेकी बात तय हुई थी तब श्री दास्तानेने मुझसे यह वचन ले लिया था कि मैं बिहारका शेष दौरा पूरा करनेके बाद फौरन महाराष्ट्रके कुछ हिस्सोंका दौरा करूँगा। बादमें असम भी जाना था और उसके बाद समूचे दक्षिणी प्रायद्वीपकी बारी थी। लेकिन सात दिनके मेरे अप्रत्याशित उपवासने मेरे सब मंसूबोंपर पानी फेर दिया। परमात्माने एक बार फिर हस्तक्षेप किया और बिना किसी चेतावनीके सारी योजना ज्योंकी-त्यों पड़ी रह गई। बिहार, महाराष्ट्र, असम और अन्य प्रान्तोंके मित्रगण मेरी इस कठिनाईको समझ जायेंगे।

मेरे लिए तो यह वर्ष आसक्ति और आत्मत्याग दोनोंका कहा जा सकता है। आसक्ति इस अर्थमें कि इससे आश्रमके लड़के-लड़कियों तथा वहाँ रहनेवाले सहयोगियोंके बीच रहनेकी मेरी चिरवांछित लालसा पूरी होनेकी आशा है। आत्मत्याग इस अर्थमें कि विभिन्न प्रान्तोंके अनेक मित्रोंसे मिलनेमें और जनताके प्रेमका भाजन बननेमें मुझे आनन्द मिलता था। मेरे और जनताके बीच एक ऐसा सम्बन्ध है जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता, लेकिन जिसे वह और मैं दोनों ही महसूस करते हैं। मुझे जनताके बीच रहनेमें अपने जनार्दनके दर्शन होते हैं। जनता-जनार्दनके बीच रहनेसे ही मुझे अपना समस्त सन्तोष, आशा और शक्ति मिलती है। यदि पूरे ३० वर्ष पहले, मैंने यह बन्धन दक्षिण आफ्रिकामें महसूस न किया होता तो मेरे लिए जिन्दगी भाररूप हो जाती। लेकिन मैं यह जानता हूँ कि चाहे मैं आश्रममें रहूँ, चाहे जनताके बीच, मैं काम उसके लिए ही करता हूँ, उसके ही बारेमें सोचता हूँ और उसके ही लिए प्रार्थना करता हूँ। मैं जनताके लिए ही जीना चाहता हूँ और तभी मेरा जीना सार्थक है।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ७-१-१९२६

१११. वार्षिक प्रदर्शन

कांग्रेस सप्ताहके दौरान कानपुरमें हुए प्रदर्शनको देखनेके बाद केवल कल्पनाशून्य व्यक्ति ही यह कह सकते हैं कि कांग्रेसका प्रभाव घट रहा है। कांग्रेसको तुच्छ ठहरानेके प्रयत्न तो कांग्रेसके जन्मके साथ ही शुरू हो गये थे। फिर भी यह चालीस वर्षोंतक जीवित रही और आगे भी बहुत वर्ष जीवित रहेगी।

प्रदर्शनका प्रारम्भ अध्यक्षके उस शानदार स्वागतसे हुआ जो उनके कानपुर पहुँचनेपर किया गया। विरोधकी कमजोर आवाज उस प्रथम भारतीय महिलाके स्वागत-के लिए इकट्ठा हुए हजारों लोगोंके नारोंके बीच दब गई थी, जो इस महान् राष्ट्रीय कांग्रेसकी अध्यक्षता करने आई थी। प्रसन्न मुद्रामें एकत्र जन-समूहसे सड़कें खचाखच भरी थीं। हर छत और हर छज्जेपर कानपुरकी महिलाओंका जमघट था और उनकी आँखें श्रीमती सरोजिनी देवीको देखनेके लिए आतुर थीं। सजावटको आकर्षक और प्रभावोत्पादक बनानेमें व्यापारियोंमें आपसमें होड़-सी लगी हुई थी। कांग्रेस मैदानमें जन-समुद्र हिलोरें ले रहा था। पहले ही दिन पंडालमें तिल रखने तककी जगह न थी। इससे पहले कांग्रेसके किसी भी अधिवेशनमें इतने अधिक यूरोपीय दर्शक नहीं आये थे। प्रतिनिधियोंने अध्यक्षको बड़े ध्यानसे सुना और उनकी आज्ञाओंका पूर्ण रूपसे पालन किया। अध्यक्षने अपनी सूझ-बूझ, अध्यवसाय, नियमितता, मृदुता और दृढ़ताके अपूर्व सामंजस्यसे अपने मित्रोंकी आशाके अनुरूप सफलता प्राप्त की और अधिवेशनकी असफलताका स्वप्न देखनेवाले आलोचकोंको हताश कर दिया। उनका भाषण, जो अबतकके कांग्रेस अध्यक्षों द्वारा लिखे गये सभी भाषणोंमें सबसे छोटा था, एक गद्य-काव्य ही था। उन्होंने १२ अठवरकी पृष्ठोंमें ही संघर्ष तथा जनताकी, जिसका वह प्रतिनिधित्व कर रही थीं, आकांक्षाओंको लिपिबद्ध कर दिया था। यह सच है कि उस भाषणमें कोई नई बात नहीं थी। वे कोई नई बात कहना भी नहीं चाहती थीं। उन्होंने किसी नीतिकी रूपरेखा प्रस्तुत नहीं की। यह काम सोच-विचारके बाद स्वराज्य पार्टीके नेता पण्डित मोतीलाल नेहरूके लिए छोड़ दिया गया था। सरोजिनी देवीकी विशेषता तो उनकी निरभिमानता और निष्पक्षता तथा इस बातमें निहित थी कि नेतृत्व करते हुए भी वह किसी दूसरेका नेतृत्व माननेके लिए तैयार थीं। उनकी सफलताका रहस्य उनके नारी-सुलभ व्यवहारमें था, जिसका लोगोंने पग-पगपर अनुभव किया।

वहाँ पास किये गये महत्त्वपूर्ण प्रस्तावोंके सम्बन्धमें यहाँ विशेष कुछ कहनेकी आवश्यकता नहीं है। उनमें वे सभी महत्त्वपूर्ण मुद्दे आ जाते हैं जिन्हें लेकर देशमें पिछले एक सालसे हलचल हो रही है। तात्कालिक महत्त्वकी दृष्टिसे दक्षिण आफ्रिकाका प्रस्ताव पहला था और वही सर्वप्रथम लिया भी गया था। उसके विरोधमें चाहे जो-कुछ भी क्यों न कहा जाये, मेरे विचारमें तो प्रस्तावित विधेयकसे १९१४का 'स्मट्स गांधी समझौता' भंग होता है। सम्राट् द्वारा विधेयकोंके अस्वीकृत किये जानेकी

बहुत-सी नजीरें हैं। यदि किसी निषेधाज्ञाका प्रयोग किसी भी परिस्थितिमें नहीं ही किया जाना होता तो फिर इस बातको सम्राट्की हिदायतोंमें आ जाना था और यदि उसका प्रयोग किन्हीं खास परिस्थितियोंमें किया जा सकता है तो निःसन्देह वह परिस्थिति इस अनर्थकारी विधेयकके संघीय विधानमण्डल द्वारा पास हो जानेपर उत्पन्न होगी।

कांग्रेस मताधिकारसे सम्बन्धित प्रस्ताव और विषय-समितिकी बहससे[1] खादीकी बढ़ती हुई लोकप्रियता सिद्ध हो जाती है। इस बातकी सम्भावना स्पष्ट है कि स्वराज्य-वादी खद्दर नहीं छोड़ेंगे और मतदाताओंपर उनका अधिकार अभी भी बना रहेगा। निस्सन्देह विषय समितिका रुझान खद्दर सम्बन्धी शर्तको और सख्त करनेकी ओर था। जैसा कि दावा किया जाता है, यदि खद्दर सर्वाधिक महत्वपूर्ण आर्थिक और राष्ट्रीय महत्वकी चीज है, तो खद्दर मताधिकारकी योग्यताका एक अंग होना उचित ही है। इस बातकी आशा की जाती है कि जब कांग्रेसने इस प्रस्तावको बहुत बड़े बहुमतसे पास किया है तो उसके सदस्य स्वयं अपने द्वारा लगाई गई शर्तका निष्ठा एवं ईमानदारीके साथ पालन करेंगे। जहाँ सदस्य सामान्य प्रामाणिकताका निर्वाह करनेको तैयार हों वहाँ किसी तरहकी जाँच-पड़तालकी जरूरत नहीं है।

कौंसिल प्रवेशका प्रस्ताव एक लम्बी चौड़ी बात है। यह स्पष्ट रूपसे सरकारके लिए एक प्रकारका नोटिस है और साथ ही मतदाताओंके लिए इस बातका स्पष्ट संकेत है कि उन्हें स्वराज्यदलसे क्या आशा करनी चाहिए। सविनय अवज्ञापर दिया गया जोर मेरे विचारसे बिलकुल उपयुक्त है। कोई भी राष्ट्र तबतक आगे नहीं बढ़ सकता जबतक कि उसे अपने संकल्पको क्रियान्वित करनेकी छूट न हो। सविनय अवज्ञा-में बार-बार आस्था प्रकट करनेका अर्थ यह है कि राष्ट्रके प्रतिनिधि सशस्त्र विद्रोहमें विश्वास नहीं करते। सविनय अवज्ञा दूरकी चीज भी हो सकती है; और लोगोंकी कल्पनासे कहीं अधिक निकटकी भी। समयका इसमें कोई सवाल नहीं है। अहिंसा-त्मक प्रतिरोधकी भावना पैदा करना ही सब-कुछ है। इसलिए जबतक कांग्रेसका सविनय अवज्ञामें विश्वास है, और उसका संकल्प क्रियान्वित नहीं होता, तबतक उसे सविनय अवज्ञाको जनताके सामने रखकर लोगोंको बताना चाहिए कि सशस्त्र विद्रोह-का पूरा और कारगर विकल्प यही है। लोगोंको यह बताना भी कांग्रेसका काम है कि भारतकी स्थितिको देखते हुए सशस्त्र विद्रोहकी तनिक-सी भी गुंजाइश नहीं है। जब लोगोंको विशेषकर स्वयंसेवकोंको, इस बातके लिए राजी किया जा सके कि बड़ीसे-बड़ी उत्तेजनाके क्षणोंमें भी आत्मसंयमसे काम लिया जाना चाहिए, सविनय अवज्ञा तभी पूरी तरह सम्भव है।

जहाँतक कौंसिलोंमें रहने या न रहनेका प्रश्न है, इसका निर्णय कि उनकी अपनी स्थिति और कौंसिलोंकी परिस्थिति क्या है, स्वयं स्वराज्यवादी ही कर सकते हैं। वे उस कार्यक्रमके विशेषज्ञ हैं। और यदि वे पटना-प्रस्तावको, जिसकी अब

१. देखिए "भाषण: कानपुर कांग्रेस अधिवेशनमें", २४-१२-१९२५।

कांग्रेसने पुष्टि की है, क्रियान्वित करना चाहते हैं तो दूसरोंको उनके मार्गमें बाधक नहीं होना चाहिए।

गहराईमें न जानेवालोंको स्वराज्यवादी दलमें फूट दुर्भाग्यपूर्ण लग सकती है। एक प्रकारसे यह दुर्भाग्यपूर्ण तो है ही। यदि सम्भव हो तो हम सभीको पूर्णतया एकमत होना चाहिए। लेकिन यदि हम बहादुरी और ईमानदारीके साथ अपने बुनियादी मतभेदोंको स्वीकार करते हुए उन्हें दूर करनेका प्रयत्न करें तो निःसन्देह यह दुर्भाग्यपूर्ण नहीं बल्कि प्रगतिका विश्वसनीय परिचायक है। हम यान्त्रिक करारों द्वारा जिनमें हमारा विश्वास नहीं है स्वराज्य नहीं पा सकेंगे। भारत-जैसे विशाल देशमें अनेक विचारधाराओंके लिए काफी गुंजाइश है। और जबतक विभिन्न विचारधाराओंके समर्थक आपसमें एक-दूसरेके प्रति आदरभाव रखते हैं और अपने-अपने दृष्टिकोणोंको ईमानदारीके साथ आगे बढ़ाते हैं, तबतक लोगोंको अपनी विचाराभिव्यक्तियोंसे लाभ ही हो सकता है। किसीके विचारोंका जोर-जबर्दस्तीसे दमन करना अवनति और हिंसाका द्योतक है। इसलिए मैं जनताको सचेत करना चाहूँगा कि वह स्वराज्यवादियोंके दलमें इस नाममात्रकी फूटके सम्बन्धमें निराश न हो।

इसके बाद बंगाल अध्यादेशके सिलसिलेमें कैद किये गये बन्दियों, गुरुद्वारा-बन्दियों और भारतीय प्रवासियोंके सम्बन्धमें बर्मा सरकारकी कार्रवाई-सम्बन्धी प्रस्ताव आते हैं। ये सभी प्रस्ताव हमारी वर्तमान दुर्बलताके परिचायक हैं और सरकारके विरुद्ध लगाये गये अभियोगोंमें एक और कड़ी जोड़ते हैं।

हिन्दुस्तानीके प्रयोगके बारेमें जो प्रस्ताव है, वह लोकमतकी भारी प्रगतिको प्रमाणित करता है। हमारी कार्यवाहीका अभीतक अधिकांशतः अंग्रेजीमें होना निःसन्देह अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीके अधिकांश सदस्यों अथवा प्रतिनिधियोंके प्रति एक ज्यादती है। इसके बारेमें किसी-न-किसी दिन हमें अन्तिम निर्णयपर पहुँचना ही है। हम यह निर्णय जब लेंगे, तभी कुछ-न-कुछ असुविधा तो होगी ही और कुछ लोग कुछ समयके लिए क्षुब्ध भी रहेंगे। लेकिन हम जितनी जल्दी अपनी कार्यवाही हिन्दुस्तानीमें शुरू करेंगे, राष्ट्रकी प्रगतिके लिए वह उतना ही अच्छा होगा।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ७-१-१९२६

११२. टिप्पणियाँ

उत्तम व्यवस्था

प्रतिनिधियोंके रहने और भोजनकी उत्तम व्यवस्थाके लिए स्वागत समिति हार्दिक बधाईकी पात्र है। ऐसी सुन्दर व्यवस्था पहले कभी नहीं हुई थी। सफाईकी व्यवस्थामें भी कोई कोर-कसर नहीं थी। भोजन भी शाहाना ढंगका था। न तो किसीको इन्तजार करना पड़ा और न किसी चीजकी कमी महसूस हुई। अपने असंख्य स्वयंसेवकोंके साथ लाला फूलचन्द एक आदर्श मेजमान थे। जैसा और जितनी मात्रामें स्वादिष्ट भोजन परोसा गया था, वह निःसन्देह काफी खर्चीला था और गरीब शहरोंके लिए वैसी व्यवस्था करना कठिन होगा। प्रदर्शनी भी आशासे अधिक शानदार थी। सभी सुन्दर वस्तुओंके बीच शुद्ध खादी ही मुख्य बिन्दु थी। चीजोंको बड़े कौशलके साथ क्रमसे सजाकर खादी और चरखेका विकास बड़े प्रभावशाली ढंगसे दिखाया गया था। लेकिन इसका विस्तृत वर्णन किसी अगले अंकमें किया जायेगा।[1]

श्री एन्ड्रयूजकी हलचल

श्री एन्ड्रयूज जबसे दक्षिण आफ्रिका गये हैं अनवरत परिश्रम कर रहे हैं। समाचारपत्रोंको तार भेजनेके अलावा उन्होंने कांग्रेस अधिवेशनके दिनोंमें कानपुर भी नियमपूर्वक तार भेजे थे। एक तारमें लिखते हैं:

> **१९१७ में शाही मन्त्रिमण्डलमें जनरल स्मट्सने दक्षिण आफ्रिकामें रहनेवाले भारतीयोंके सम्बन्धमें यह बात कही थी कि यदि किसी प्रश्नके सम्बन्धमें कोई मुश्किल दरपेश हो तो हम लोग उसपर साम्राज्यके इस मन्त्रणास्थानमें मित्रभावसे चर्चा कर सकते हैं और आपसमें विचार करके उसका कुछ-न-कुछ हल निकालनेका प्रयत्न कर सकते हैं। और मुझे यकीन है कि इस प्रकार हम उसका निबटारा अवश्य कर सकेंगे।**

इसके बाद वे तारमें पूछते हैं:

> **जनरल स्मट्सके इस वचनको देखकर क्या हमारी यह माँग उचित नहीं है कि जबतक ऐसी मन्त्रणा न कर ली जाये तबतक विधेयकको रोक रखना चाहिए?**

इस विधेयकको रोकनेके लिए दूसरी बहुत-सी बातें उचित गिनी जायेंगी और इसे खत्म करनेके लिए भी दूसरे कितने ही उपाय उचित माने जायेंगे। लेकिन उन्हें करेगा कौन? क्या सम्राट्की सरकार इस बड़े भारी अन्यायको, जो निकट भविष्यमें

१. यह विवरण **नवजीवन**के ३-१-१९२६ के अंकमें प्रकाशित हुआ था। देखिए "कांग्रेस", ३-१-१९२६।

होनेवाला है, रोकनेके लिए जितने साधन सम्भव हैं उन सबका उपयोग करनेके लिए तैयार है? क्या भारत सरकार इसके लिए सम्राट्की सरकारपर दबाव डालेगी? क्या हम लोग भारत सरकारको यह करनेके लिए मजबूर कर सकते हैं?

'रायटर' द्वारा तारसे भेजे गये कांग्रेस प्रस्तावके विषयमें श्री एन्ड्र्यूज कहते हैं: "कांग्रेसके रुखसे यहाँ सबको प्रसन्नता हुई है।"

अपने एक दूसरे तारमें उन्होंने सूचित किया है कि बिशप पाल्मरने उन्हें अपने समाजके सामने भारतीय प्रश्नपर बोलनेका अवसर दिया था और लोगोंपर उसका बहुत अच्छा असर पड़ा। इसी तारमें उन्होंने यह भी बताया है कि अनाक्रम प्रतिरोध-के जमानेमें जिस यूरोपीय समितिका गठन किया गया था, उसे पुनर्जीवित किया जा रहा है। इस तरह श्री एन्ड्र्यूज सुदूर दक्षिण आफ्रिकामें वह सब-कुछ कर रहे हैं जो किसी एक व्यक्तिके द्वारा अन्याय रोकनेकी दिशामें करना सम्भव हो सकता है।

बिशप फिशरकी पुस्तिका

पाठकोंको याद होगा कि अमेरिकी मिशनके बिशप फिशरने अभी हालमें दक्षिण आफ्रिकाकी यात्रा की थी। उन्होंने अपनी यात्राके संस्मरण "नेशनल क्रिश्चियन कौंसिल रिव्यू" द्वारा व्यक्त किये हैं। एसोसिएटेड प्रेस, कलकत्ताने उसे पुस्तिकाके रूपमें प्रकाशित किया है। उसका दाम दो आना है। दक्षिण आफ्रिकामें भारतीयोंके प्रश्नका इतिहास इस विवरणमें बहुत ही सुन्दरताके साथ संक्षिप्त रूपमें दिया गया है। अपनी भूमिकामें बिशप कहते हैं:

> **इसकी यथार्थता प्रमाणित है ही। भारतीयोंके साथ जो अन्यायपूर्ण और असमानजनक व्यवहार किया जा रहा है, उसे बढ़ा-चढ़ाकर नहीं, घटाकर लिखा गया है।**

मेरा नम्र निवेदन है कि जिन लोगोंको इस कठिन समस्याके प्रति रुचि है, उन्हें यह पत्रिका अवश्य पढ़नी चाहिए।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ७-१-१९२६

११३. संदेश : 'बॉम्बे क्रॉनिकल' को

साबरमती
९ जनवरी, १९२६

श्री हॉर्निमैनको मेरा हार्दिक अभिनन्दन। इस बहादुर अंग्रेजके प्रति और हमारे प्रति किये गये गम्भीर अन्यायका[१] परिमार्जन करनेके लिए सरकार बधाईकी पात्र है। ईश्वर करे श्री हॉर्निमैनका काम खूब फूले-फले। भारतको इस समय अपने मित्रोंसे सभी प्रकारकी सहायताकी आवश्यकता है।

मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]
बॉम्बे क्रॉनिकल, १२-१-१९२६

११४. संदेश : 'कुमार' को

पौष बदी १०, १९८२ [९, जनवरी १९२६]

मैं कुमारों और कुमारियोंसे चरखेकी बात न कहूँ तो और काहेकी कहूँ? 'कुमार' पढ़नेवाले बालक व बालिकाओंको चाहिए कि वे जो बालक 'कुमार' नहीं पढ़ सकते या जिन्हें वह नहीं मिलता उनके साथ चरखा-स्तवन करते हुए सूत कात कर उनके अर्थ यज्ञ करें। वे उनसे इस तरह सम्बन्ध स्थापित करें और ईश्वरकी झाँकी प्राप्त करें।

मोहनदास करमचन्द गांधी

[गुजरातीसे]
कुमार, पौष, १९८२

१. **बॉम्बे क्रॉनिकल**के सम्पादक बी० जी० हॉर्निमैनको २६ अप्रैल, १९१९ को निर्वासित किया गया था; देखिए खण्ड १५ पृष्ठ २५९-६०।

११५. पत्र : बी० जी० हॉर्निमैनको

साबरमती
९ जनवरी, १९२६

प्रिय मित्र,

हार्दिक स्वागत। कितना अनपेक्षित और सुखकर। आशा है आप अच्छे हैं और संघर्षकी क्षमता पहले जैसी ही बनी है।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]
बॉम्बे क्रॉनिकल १३-१-१९२६

११६. पत्र : देवचन्द पारेखको

शनिवार [९ जनवरी, १९२६][1]

भाई देवचन्दभाई,

तुम्हारा पत्र मिला। मैं तो अब क्षेत्र संन्यास ले चुका हूँ। इसलिए अध्यक्ष मुझे तो कैसे बनाया जा सकता है? तुम चाहो तो जवाहरलाल नेहरू मिल सकते हैं।

भाई फूलचन्द, जयसुखलाल और रामदास यहीं हैं। नारणदासको बुलाया है। वह आये तो अमरेलीके सम्बन्धमें कुछ निर्णय किया जा सकेगा।

बापूके वन्देमातरम्

गुजराती पत्र (जी० एन० ५७०८) की फोटो-नकलसे।

१. डाककी मुहरसे।

११७. पत्र : काका कालेलकरको

९ जनवरी, १९२६

भाईश्री काका,

आपका पत्र मिला। मुझे लगता है कि हमें अपनी शिक्षा पद्धतिमें अंग्रेजीको कुछ-न-कुछ स्थान प्रदान करना चाहिए। यदि पश्चिमसे और उसके साहित्यसे सम्बन्ध इष्ट हो तो इस समय अंग्रेजी भाषाके द्वारा ही उसका सर्वाधिक लाभ उठाया जा सकता है। मैंने उसे इसी कारण हाईस्कूलके पाठ्यक्रममें स्थान दिया है।

'पिलग्रिम्स प्रोग्रेस'के बारेमें जो मत आपका है वही मेरा भी है; लेकिन मैं फिलहाल आसानीसे इसीको पढ़ा सकता था। इसलिए मैंने इसे आरम्भ कर दिया। आश्रमवासियोंने यह थोड़ी-बहुत मुझसे पढ़ी भी थी। मैं अन्य कुछ पढ़ाना आरम्भ करता तो वह कृत्रिम होता। मैंने 'गीता' तथा 'रामायण' पढ़ानेका भी विचार किया था। लेकिन मैं इन्हें पढ़ानेके लिए उतना योग्य नहीं हूँ। मैं 'रामायण'का शब्दार्थ भी मुश्किलसे कर पाता हूँ। 'गीता'का शब्दार्थ भी जितना निश्चयपूर्वक करना चाहता हूँ उतना निश्चयपूर्वक नहीं कर पाता। मेरा धर्म, मेरे पास जो ज्ञान-धन है उसे ही वितरित करना है। मुझे ध्यान यही रखना है कि उसका परिणाम अनिष्टकर न हो, मैं सिद्धान्ततः आपके निर्णयको स्वीकार करता हूँ। लेकिन ऐसा लगता है कि यह बात हमारी परिस्थितियोंपर लागू नहीं होती। मैंने कहा तो है कि मेरा अंग्रेजी भाषाका ज्ञान और उसके द्वारा मेरा कार्य करना कुछ अंशोंमें हमारे सीधे-सादे जनसाधारणकी प्रगतिमें बाधा रूप है। लेकिन मालूम होता है, अनिवार्य होनेके कारण इसे सहन करना ही होगा।

मैं आपके दूसरे पत्रकी बाट जोहूँगा। मैं अभी बालकोंके लिए लिखे गये आपके पत्रको नहीं पढ़ सका हूँ। आप पत्र लिखनेमें बिलकुल भी संकोच न करें। मुझे यह बहुत अच्छा लगा है।

विनोबा और अप्पा यहीं हैं।

गुजराती प्रति (एस० एन० १२१७८) की फोटो-नकलसे।

११८. पत्र : कमलाशंकरको

९ जनवरी, १९२६

भाई कमलाशंकर,

आपके पत्रका उत्तर देनेमें विलम्ब हुआ है। आशा है आप मुझे इसके लिए क्षमा करेंगे।

१. मेरा दृढ़ विचार है कि अस्पृश्यताकी आत्माका नाश हो चुका है; और अब केवल उसकी देह रह गई है। कच्छ यात्राके बाद मेरा यह विश्वास और भी दृढ़ हो गया है।

२. आपका पण्डितजीके[1] कथनसे जितना विरोध है उतना विरोध मेरा नहीं है। स्कीन समितिकी[2] सदस्यता स्वीकार करने और उसका मन्त्री बननेमें जो भेद है मैं उसे समझ सकता हूँ। मुझे तो विधान सभाओंमें प्रवेश करनेकी बात ही निरर्थक लगती है। तब वहाँ जाकर प्रशासन सम्भालनेका तो प्रश्न ही कहाँ उठता है।

३. मेरा कार्य पूरा हो गया है अथवा नहीं, अगर मैं यह बात जान लूँ तब तो कहा जा सकता है कि मुझे ज्ञान प्राप्त हो गया; मेरे कार्योंसे नीति में वृद्धि हुई है या उसमें कमी हुई है, मैं तो इसे तौलनेमें भी असमर्थ हूँ।

४. 'संस्कृति' का अर्थ है व्यक्ति या समाज जिसे सभ्यता मानते हैं, उसका सार। नैतिकता तो देश और कालसे निरपेक्ष होती है। जो मनुष्य पाप और पुण्यमें भेद नहीं मानता मैं उसे दूरसे ही नमस्कार करता हूँ।

५. मेरा खयाल है कि इसमें से बहुत कम रुपया दिया गया था।

६. यदि सभी वल्लभभाई जैसा साफ-सुथरा हिसाब रखें तो राष्ट्रका नैतिक स्तर बहुत ऊँचा उठ जाये। थैली दस लाख रुपयेकी तो क्या होगी। मैं इतना जानता हूँ कि थैली मुझे मिलेगी अवश्य।

७. मैं तो विद्यापीठको एक भी अच्छे विद्यार्थीके लिए चलाता रहकर अन्ततः उस-की उन्नतिकी आशा रखूँगा। अवश्य ही मैं उसे बन्द करना बदनामी की बात मानूँगा।

८. मुझे बम्बई कांग्रेस कमेटीके प्रवन्धकी कोई जानकारी नहीं है।

९. मशरुवालाके विचारोंके प्रति मेरे मनमें बहुत सम्मानका भाव है। वे साधु चरित्र पुरुष हैं। मैंने उनके कला-सम्बन्धी विचार पढ़े हैं।

[अपूर्ण ?][3]

गुजराती प्रति (एस० एन० १२१७७) की फोटो-नकलसे।

१. मोतीलाल नेहरू।

२. यह सैंडहर्स्ट समितिके नामसे भी विदित थी। यह १९२५ में सर एन्ड्रयू स्कीनकी अध्यक्षतामें नियुक्त की गई थी।

३. यह एक शब्द प्रतिलिपिकारके अक्षरोंसे भिन्न अक्षरोंमें है।

११९. पत्र : हरिभाऊ उपाध्यायको

आश्रम
पौष कृष्ण १० [९ जनवरी, १९२६][1]

भाई हरिभाऊ,

चि० मार्तण्डके साथ भेजा हुआ खत मिला है। मार्तण्डके लिए जो-कुछ हो सकता है किया जायगा। तुम्हारे स्वास्थ्यके लिए योग्य आहार लेनेमें हि अच्छा है। भले कामपर चढ़नेमें थोड़ी देर हो।

बापूके आशीर्वाद

मूल पत्र (सी० डब्ल्यू० ६०५७) से।
सौजन्य: हरिभाऊ उपाध्याय

१२०. मुझे बचाओ

मैंने जो क्षेत्र-संन्यास लिया है, उसमें मोह अथवा भयवश अहमदाबादको शामिल नहीं किया था; तथापि मेरी इच्छा तो उसमें अहमदाबादको भी शामिल रखनेकी है। यदि मैं अहमदाबादको अपवाद मानूँ तो इस बातकी बड़ी आशंका है कि मैं आश्रममें रहकर जो सेवाकार्य वर्ष-भरमें कर डालना चाहता हूँ उसमें विघ्न पड़े बिना नहीं रहेगा। पिछले हफ्ते ही मैंने यह संकट आया हुआ देख लिया। रामकृष्ण मिशनका वार्षिक उत्सव आया और मुझसे उसमें अध्यक्ष-पद ग्रहण करनेका अनुरोध किया गया। चूँकि मैं स्थायी रूपसे आश्रममें रहता हूँ; इसलिए म उसे इनकार करूँ तो कैसे? और यदि उसमें जाना स्वीकार करूँ तो अहमदाबादमें जो अन्य शुभ कार्य होते हैं, उनमें क्यों न जाऊँ? और अगर उन सबमें जाने लगूँ तो मैंने शान्ति प्राप्तिके जिस उद्देश्यसे यह क्षेत्र-संन्यास लिया है वह उद्देश्य निष्फल हो जाये। यदि डा० हरिप्रसाद मुझे अहमदाबादकी हर गलीको एक-एक दिन देने तथा वहाँका कचरा साफ करनेके लिए कहें तो मैं उस कार्यको अपने योग्य ही मानूँगा; किन्तु उसे सिरपर ले लेनेसे सालका मेरा एक-एक दिन व्यस्त हो जायेगा और मैं जहाँ हूँ वहीं रह जाऊँगा।

जो भाई मुझे निमन्त्रण देने आये थे, वे मेरी बात समझ गये और उन्होंने मुझे बख्श दिया। अहमदाबादके प्रत्येक कार्यकर्त्तासे मैं ऐसी ही दयाकी आशा रखता हूँ। जैसे हिन्दुस्तान मुझे २० दिसम्बरतक भूला रहेगा, उसी तरह अहमदाबादको

१. प्रेषी द्वारा दी गई तिथि। देखिए "पत्र: हरिभाऊ उपाध्यायको", ३-१-१९२६।

भी मुझे भूल जाना चाहिए। यदि वल्लभभाई अनुमति दें तो मैं अहमदाबादको भी इस व्रतमें सम्मिलित करनेकी धृष्टता करना चाहता हूँ; ताकि मैं अपने मनके मोहसे और अन्य किसीको समझाकर बतानेसे छुटकारा पा जाऊँ। यदि कदाचित् वल्लभभाई मुझे वैसी मुक्ति न दे सकें तो स्वयं अहमदाबादनिवासी मुझे छोड़ दें और किसी भी आयोजनमें न बुलायें, ऐसी मेरी इच्छा है।

मैं ज्यों-ज्यों आश्रमकी प्रवृत्तियोंका अध्ययन कर रहा हूँ और चरखा संघके कार्यकी जाँच करता जा रहा हूँ त्यों-त्यों देखता हूँ कि यदि मैं आश्रम, चरखा संघ और 'यंग इंडिया' तथा 'नवजीवन' के साथ पूरा न्याय करना चाहता हूँ तो इनके कामके बाद मेरे पास बिलकुल भी समय नहीं रहता और और यदि मैं एक वर्ष तक शान्तिपूर्वक कार्य कर सकूँ तो मुझे विश्वास है कि मेरी सेवा करनेकी शक्तिमें वृद्धि हो जायेगी। इस बातको जानकर अहमदाबादके कार्यकर्त्ताओंसे मेरी विनती है कि वे इस वर्षके दौरान सार्वजनिक कार्योंके लिए मेरा अहमदाबाद जाना भी बचायें।

[पुनश्च :]

उपर्युक्त टिप्पणी लिखनेके बाद वल्लभभाईसे मेरी बातचीत हुई और वे इस बातसे सहमत हैं कि मैं अपनी प्रतिज्ञामें अहमदाबादको भी सम्मिलित कर लूँ। किन्तु वे यह मानते हैं कि यदि मैं सचमुचमें शान्ति चाहता हूँ तो मेरा क्षेत्र-संन्यास आश्रम-संन्यासतक ही सीमित होना चाहिए। अतः अब मैं आश्रमके बाहरकी किसी भी प्रवृत्तिमें भाग नहीं लूँगा; अहमदाबादमें भी नहीं जा सकूँगा। यदि कोई अचीता काम आ पड़े या स्वास्थ्यके ख्यालसे बाहर जाना मेरे लिए आवश्यक हो जाये तो ऐसी अपवादरूप स्थिति मान्य ही होगी।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, १०-१-१९२६

१२१. महागुजरातमें खादी

मेरी यात्राके दौरान अनेक स्थानोंपर लोगोंने मुझसे पूछा: "खादीके सम्बन्धमें आपका गुजरात क्या कर रहा है? वहाँ कितने खादीपोश हैं? वहाँ सूत कातनेवाले कितने सदस्य हैं? क्या वे नियमपूर्वक सूत देते हैं? गुजरातमें खादीका कितना उत्पादन किया जाता है? क्या वहाँ महीन खादी बनती है?" अनेक लोग भिन्न-भिन्न भावोंसे प्रेरित होकर ऐसे तमाम प्रश्न पूछते रहते हैं। मेरे पास इनका सन्तोषजनक उत्तर नहीं होता; क्योंकि गुजरातमें खादी पहननेवालोंकी संख्या अन्य प्रान्तोंकी अपेक्षा अधिक नहीं दिखाई देती। खादीके उत्पादनमें तो हम बहुत पीछे ही हैं। सूत कातनेवाले सदस्य भी अपेक्षासे कम ही हैं। लेकिन गुजरात चाहे तो इस सारी स्थितिको तुरन्त बदल सकता है। गुजरात सारे हिन्दुस्तानके लायक सूत कात सकता है क्योंकि गुजरातमें कपास बहुत होती है, गुजरातमें अन्य प्रान्तोंसे धन भी अधिक

है; गुजरातमें व्यापार करनेका साहस है; और खादीके सम्बन्धमें व्यापारिक साहसकी आवश्यकता है। गुजरातमें कताई विशेषज्ञोंकी संख्या खासी बड़ी है। अतः गुजरात केवल यज्ञार्थ सूत कातकर हजारों मन खादी तैयार कर सकता है और उसे सस्ती भी बना सकता है।

गुजरातके बालक और बालिकाएँ इस कार्यमें खूब योगदान कर सकते हैं।

गुजरातको तो स्वराज्यकी स्थापना करनी थी। बारडोली और आनन्दमें और सूरत तथा खेड़ामें होड़ चलती थी। आज तो हम "सूरत हुई बेहाल, बनी वह रोती सूरत," फिर यही रोना रो सकते हैं। और सत्याग्रही खेड़ा — अब्बास साहबका गर्वस्थान — कहाँ सो गया? और क्षेत्र-संन्यास लेनेवाले कार्यकर्त्ताओंका बोरसद किस तरह भुलाया जा सकता है? अतीत कालके वीर पुरुषोंकी बातें याद करके तो इस तरह बहुत-कुछ लिखा जा सकता है; लेकिन उससे फायदा ही क्या है? प्रश्न तो यह है, आज क्या हो रहा है?

[गुजरातीसे]

नवजीवन, १०-१-१९२६

१२२. भूत-प्रेतादि

एक सज्जनने बड़ा लम्बा पत्र लिखकर फिर उसे संक्षिप्त किया है। उसका भी सार निकालें तो वह इस प्रकार है:

(१) यदि आप भूत प्रेतोंको मानते हों तो उनके निवारणका उपाय क्या है?

(२) यदि आप उन्हें न मानते हों तो जो दृष्टान्त मैंने दिये हैं उनका जवाब देकर आप मेरे मनका समाधान करें।

मैं एक शिक्षित मनुष्य हूँ। मैं भूत-प्रेतोंको नहीं मानता। लेकिन मेरे घरमें ही बहुत वर्षोंसे उनका उपद्रव हो रहा है; इसलिए आखिर थककर इन बातोंकी सचाई जाननेके लिए आपको यह पत्र लिखा है।

फिर इस लेखकने अपनेको और अपने परिवारके लोगोंको दी गई पीड़ाके कई दृष्टान्त दिये हैं; लेकिन उन्हें यहाँ प्रकाशित करनेकी आवश्यकता नहीं मालूम होती।

भूत-प्रेत हैं या नहीं मैं इस प्रश्नका निर्णय नहीं कर सकता। मैं यही कह सकता हूँ कि वे नहीं हैं; मैंने अपने इतने वर्षोंके जीवनमें यही माना है। जहाँतक मैं जानता हूँ, जो लोग उनका अस्तित्व नहीं मानते उन्हें इस मान्यतासे कुछ हानि नहीं हुई है। मैंने यह भी अनुभव किया है कि जो लोग उनका अस्तित्व मानते हैं उन्हींको उनसे पीड़ा पहुँचती है; इस कारण मुझे तो 'अपनी इच्छा भूत और अपनी शंका डाइन' इस उक्तिको मानना ही उचित लगता है।

लेकिन थोड़ी देरके लिए मान भी लें कि भूत-प्रेत हैं तो भी वे सब ईश्वरकी ही माया हैं। हम जिस ईश्वरके वशमें हैं उसीने भूत-प्रेतोंको भी उत्पन्न किया है।

और एकेश्वरको माननेवाला कभी दूसरेकी आराधना न करेगा। जो ईश्वरका बन्दा बनता है वह दूसरेकी गुलामी कभी भी न करेगा। इसलिए जैसे मनुष्योंसे दुःख मिलनेपर ईश्वरवादीके लिए रामनाम ही रामबाण औषधि है उसी प्रकार भूत-प्रेतोंके सम्बन्धमें भी चाहिए। पत्र लिखनेवाले और उसके सगे-सम्बन्धी श्रद्धापूर्वक रामनामका जप करेंगे तो भूत प्रेत भाग जायेंगे। संसारमें करोड़ों मनुष्य भूत-प्रेतोंको नहीं मानते और वे उनका कुछ नहीं बिगाड़ सकते। लेखक अपना अनुभव बताते हुए यह लिखते हैं कि भूत-प्रेत उनके पिताजीको बहुत पीड़ा देते हैं, लेकिन जब वे अपने पिताजीसे दूर रहते हैं तब स्वयं उन्हें कोई पीड़ा नहीं देते। उपाय इसीसे प्रकट हो जाता है। उनके पिता भूत-प्रेतोंसे डरते हैं; इसलिए वे उन्हें डराते हैं। राजा दण्डसे डरनेवालेको ही दण्ड दे सकता है। जो दण्डसे डरता ही नहीं उसके लिए राजदण्ड किस कामका? जो भूतसे डरता ही नहीं, भूत उसका क्या कर सकता है?

[गुजरातीसे]

नवजीवन, १०-१-१९२६

१२३. हाथकती कहानी

कहानी भी कहीं हाथसे काती जाती है। लेकिन राजाजीने[1] यह भी कर दिखाया है। उन्होंने 'यंग इंडिया' के लिए सूतकी सुन्दर कहानी लिखी है और उसे हाथकती कहानी कहा है। इसका मतलब यह है कि उन्होंने यह कहानी कहींसे चुराई नहीं है; वह यान्त्रिक नहीं है, बल्कि अपने अनुभवके आधारपर तैयार की गई है। इसलिए यह कहानी हाथकते सूतके समान पवित्र तथा सब रसोंसे युक्त होनेपर भी इस जीवनकी करुणरस-प्रधान कहानी है। इसीलिए वह हाथकती कहानी कही जा सकती है, हाथ-कती अर्थात् अपने आप रचित। अनुवाद[2] नीचे दिया गया है:

[गुजरातीसे]

नवजीवन, १०-१-१९२६

१. चक्रवर्ती राजगोपालाचारी।

२. इसका अनुवाद यहाँ नहीं दिया गया है। यह ७-१-१९२६ के **यंग इंडिया**में प्रकाशित हुई थी और इसमें तमिलनाडके कालियूर गाँवके गरीब सूत कातनेवालों और बुननेवालोंके साहसपूर्ण उद्योगका वर्णन किया गया था। इसमें यह भी बताया गया था कि उनकी तैयार की गई खादीसे बम्बईके नुकताचीनी करनेवाले खादी खरीदनेवालोंका परितोष नहीं हो सका।

१२४. पत्र: रामेश्वरदास पोद्दारको

साबरमती
पौष कृष्ण १२ [११ जनवरी १९२६][1]

भाई रामेश्वरजी,

आपके दोनों पत्र मुझे मीले हैं। आप निष्काम बुद्धिसे रामनाम जपें। भूतकालमें हुए पापोंका आप स्मरण न करें परंतु ईश्वरका अनुग्रह मानें के अब आपको वह पाप कर्मोसे मुक्त रखता है और उससे मांगे कि भविश्यमें भी दूर रखे।

आप किसी पारमार्थिक कर्ममें लगे रहें।

चमड़ेका कार्य धार्मिक है उसमें मुझे संदेह नहिं है। आपके यहां वह काम नहिं हो सकता है। आप देना चाहें तो गोरक्षाके कार्यमें द्रव्यकी सहाय दें।

अंतमें आप रामायणादि पुस्तकोंका मनन करें।

आपका,
मोहनदास गांधी

मूल पत्र (जी० एन० १६२) की फोटो-नकलसे।

१२५. पत्र: मणिबहन पटेलको

सोमवार, ११ जनवरी, १९२६

चि० मणि,

मुझे तुम्हारे पत्रोंसे सभी समाचार मिल जाते हैं। तुमने भाई देवधरके नाम जो पत्र लिखा है वह अच्छा है। वह उन्हें भी अच्छा लगेगा।

वहाँ सब नया है, इसलिए तनिक घबराहट होती है। परन्तु मन इस तरह कच्चा नहीं करना चाहिए। कमला पढ़नेमें जितनी बढ़ सके उसे उतना बढ़ाओ। वह धीरे-धीरे रास्तेपर आयेगी। बातोंमें उसका मन बहलाओ। घूमने निकले तो घूमने ले जाओ। उसे प्रेमसे जीतो।

तुम्हें मराठी लिखनेकी और पढ़ानेकी आदत नहीं है। दोनों अभ्याससे आ जायेंगे। वहाँ मराठी है, वह तो हम जानते ही थे। हिन्दी घरपर पढ़कर सीख लो। किसीकी मददकी जरूरत हो तो मदद ले लो।

तुम्हें दूसरोंको खादीकी बात नम्रतासे समझानी चाहिए और वे जितना मान लें उतनेको ही गनीमत समझना चाहिए।

१. डाककी मुहरसे।

इसका अर्थ यह है कि प्रत्येक कार्य निष्काम वृत्तिसे किया जाना चाहिए। प्रयत्न करना हमारे अधिकारमें है, फल पाना नहीं। हम उद्योग करके ही पूर्ण सन्तोष मान लें। उसमें कभी हार न मानें। अन्तमें तो वह समय आयेगा ही जब तुम यहाँ काम करोगी।

मैं जब यहाँ हूँ, उस समय तुम्हें दूर रहना है, इस बातका खेद नहीं करना। हम पत्र द्वारा तो मिलेंगे ही।

अपना स्वास्थ्य सम्भालना; इसके लिए अपने मनको पूरी तरह बिलकुल प्रसन्न रखना चाहिए।

बापूके आशीर्वाद

[गुजरातीसे]
बापुना पत्रो – ४: मणिबहेन पटेलने

१२६. पत्र : विट्ठलदास जेराजाणीको

साबरमती आश्रम
शुक्रवार, ११ जनवरी, १९२६

भाई विट्ठलदास,

मेरे पास एक शिकायत आई है कि तिरुपुरकी खादीकी किस्म दिन-प्रतिदिन बिगड़ती जाती है और उसमें धोखाधड़ी बढ़ती जाती है। तुम तो इस खादीके बारेमें सब बातें जानते हो। इसलिए तुम्हारा जो अनुभव हो उससे मुझे अवगत करना।

तुमने नारणदासको जो पत्र लिखा सो मैंने पढ़ा। मुझे उससे बहुत हँसी आई। उसमें लिखी बात तनिक भी सच हो सकती है, ऐसा मुझे नहीं लगता। यदि हो तो उसे एक दृष्टिसे बहुत उचित माना जा सकता है।

बापूके वन्देमातरम्

गुजराती पत्र (एस० एन० ९७६१)की फोटो-नकलसे।

१२७. पत्र : नारणदास गांधीको

सोमवार [११ जनवरी, १९२६]

चि० नारणदास,

मैं तुम्हारी बड़ी राह देख रहा हूँ। १९को अवश्य ही आ जाओगे, मैं ऐसा मानता हूँ। परिवार सहित आना। अभी तो तुम बा अथवा काशी अथवा मगनलालके साथ रहोगे। तुम्हारे आनेके बाद जैसा तुम्हें अनुकूल जान पड़ेगा वैसा प्रबन्ध करूँगा। मैं तुम्हारे लिए नया मकान बनानेके लिए भी तैयार हूँ। तुम्हें किसी तरहकी असुविधामें रखनेका विचार नहीं है। मुझे एक वर्ष यहीं रहना है। मैं चाहता हूँ कि तुम इस दौरान यहाँ रहो।

मैंने जमनादासको पत्र तो लिखा है; लेकिन ऐसा लगता है कि उसे चित्तभ्रम हो गया है और वह अपनी विचारशक्ति खो बैठा है। उसे भी यहाँ बुलाया तो है। तुम्हारी सलाह मान ले तो उसे भी साथ ले आना।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती पत्र (सी० डब्ल्यू० ७७०७) से।
सौजन्य : नारणदास गांधी

१२८. पत्र : जमनालाल बजाजको

सोमवार [११ जनवरी, १९२६][2]

चि० जमनालाल,

विनोबाने मुझसे कहा था कि तुम्हें ऐसा लगता है कि मैं यहाँ किये जा रहे उपवासोंसे चिन्तामें पड़ जाऊँगा। लेकिन मुझे तो उनसे कोई भी चिन्ता नहीं हुई; यही नहीं, बल्कि मुझे आनन्द हुआ। भाई भन्सालीके उपवासका कारण उनकी इच्छा ही थी। वे इन दिनों भारी तपश्चर्या कर रहे हैं। भाई किशोरलालने व्यक्तिगत रूपसे और सिर्फ अपना विकार दूर करनेके लिए उपवास किया था। मगनलालका उपवास प्रायश्चित्तके रूपमें था और वह ठीक था।. . .ने उसे धोखा दिया। उसके पास इसका उपाय सिवा इसके कि वह स्वयं कष्ट सहन करे, दूसरा नहीं था। इसका असर उस कुटुम्बपर अच्छा हुआ है। किशोरलाल, भन्साली और मगनलाल तीनोंका स्वास्थ्य अच्छा है। अब इसमें मेरे लिए चिन्ताका कोई कारण नहीं।

१. यह पत्र १ तथा ४ जनवरीके उन पत्रोंके सिलसिलेमें लिखा गया जान पड़ता है जिनमें गांधीजीने नारणदासको आनेके लिए लिखा था।

२. मगनलालके उपवासके उल्लेखसे।

मेरी तबीयत अच्छी रहती है। इन दिनों मैं ४ सेर दूध पीता हूँ, जो बिस्कुट जमनाबहनने बनाकर भेजे हैं उनमें से ८ बिस्कुट खाता हूँ। मैं नियमित रूपसे घूमता-फिरता हूँ; अतः मेरे सम्बन्धमें तुम बिलकुल ही चिन्ता न करो।

इसके साथ चि० मणिका पत्र तुम्हारे पढ़नेके लिए भेजता हूँ। इसे लौटाना जरूरी नहीं है।

क्या कमलाके विवाहके सम्बन्धमें कोई खबर अभीतक नहीं मिली?

बापूके आशीर्वाद

गुजराती पत्र (जी० एन० २८५५) की फोटो-नकलसे।

१२९. एक पत्र

साबरमती
१२ जनवरी, १९२६

प्रिय महोदय,

इतने दिनोंतक आपका पत्र मैं अपने पास रखे रहा, ताकि थोड़ी-सी फुरसत मिलनेपर मैं उसका उत्तर दे सकूँ।

मैं मोटे तौरपर यही कहूँगा कि आपने जैसा मुझे चित्रित किया है उसमें मुझे अपनी झाँकी नहीं दिखाई पड़ती। आपने विचारोंको जिस ढंगसे पेश किया है, उसके कारण उनमें काफी बल दिखाई देता है।

अब मैं उन्हें अपने ढंगसे पेश करता हूँ।

१. मनुष्यके आध्यात्मिक विकासमें कलाका, जिसमें संगीत भी शामिल है, एक समुचित स्थान है। किन्तु एक समय ऐसा भी आता है जब वह उस कलासे ऊपर उठ जाता है। उसे इन्द्रियोंके माध्यमसे ही अनुभूत और ग्रहीत किया जा सकता है। इस प्रकार कला, जैसा कि मैंने उसे समझा है, अपने-आपमें मनुष्यका लक्ष्य नहीं बन सकती।

२. आनन्दित होनेके लिए जिस प्रकार आकाशके अनन्त सौन्दर्यको महसूस करनेवाले व्यक्तिको उसे चित्रपटपर उतारनेकी जरूरत नहीं रहती, ठीक उसी प्रकार आकाशके सौन्दयको अपने अन्तरमें देख पानेवाले व्यक्तिको ऊपरके स्थूल आकाशसे प्रेरणा लेनेकी भी जरूरत नहीं रहती। वास्तवमें, ये तीनों प्रक्रियायें साथ-साथ चलती हैं। सबसे सच्चा आन्तरिक आनन्द वही व्यक्ति अनुभव कर सकता है जिसने शारीरिक रूपसे अपनेको अन्धा, बहरा और गूँगा बना लिया हो।

३. मेरा निश्चित विश्वास है कि अपने अहं, अपनी व्यष्टिमूलक भावना, वासना, अपने व्यक्तित्व, जो भी संज्ञा आप दें, को पूर्णतः मिटा देना ही परम आनन्द और शान्तिकी एक अनिवार्य शर्त है। लेकिन यहाँ प्रश्न उठता है कि यह व्यष्टि-मूलक भावना या व्यक्तित्व, इत्यादि हैं क्या? मैं बौद्ध-निर्वाण और शंकराचार्यके

ब्रह्मनिर्वाणमें कोई भेद नहीं करता। किन्तु शंकर अपने दृष्टिकोणकी हदतक सही थे, क्योंकि वे बौद्ध निर्वाणको केवल शून्यता मानते थे। इसलिए सम्भव है कि आपकी व्यष्टिकी परिभाषा उस परिभाषासे बिलकुल भिन्न हो जो मैं करता हूँ। क्या समुद्रकी एक बूंदकी समुद्रसे अलग कोई अपनी व्यष्टिगत सत्ता होती है? फिर मुक्त आत्माकी अपनी एक व्यष्टिगत सत्ताका सवाल? बीमारीका बोध? किन्तु मुझे इसे लेकर अधिक गहराईमें नहीं उतरना चाहिए।

४. मैं सबसे तो यह नहीं कहता कि चरखा उन्हें आध्यात्मिक मुक्ति देगा। किन्तु वह मेरे लिए ऐसा ही है, क्योंकि मैंने सब तरहसे उसके साथ अपना ऐसा ही सम्बन्ध बना लिया है, जैसे रामनामका यूरोपीय लोगोंके लिए कोई अर्थ नहीं, पर तुलसीदास तथा उन जैसे लोगोंके लिए तो वह दिव्य संगीत है।

मैं जानता हूँ कि आपके अत्यन्त ही निष्ठाभावसे पूछे गये प्रश्नोंके मेरे उत्तर कितने अपर्याप्त हैं। आप उन्हें प्रकाशित करनेके लिए स्वतन्त्र हैं, किन्तु यदि आप मेरी राय मानें तो मैं आपको ऐसा करनेकी बिलकुल राय नहीं दूँगा। एक कारण यह भी है कि ये उत्तर बहुत संक्षिप्त हैं, इसलिए शायद समझे न जा सकें। हमारी पिछली बातचीतके सन्दर्भमें आप उन्हें समझ सकेंगे और जो-कुछ कमी रहेगी आप उसे भर लेंगे।

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १४०८०) की फोटो-नकलसे।

१३०. पत्र : वसुमती पण्डितको

मंगलवार [१२ जनवरी, १९२६][1]

चि० वसुमती,

तुम्हारा पत्र मिला। मैं इस पत्रको तो टिकट बचानेकी खातिर रामदासके साथ भेजूँगा। यदि उसे देना भूल गया तो डाकमें डाल दूँगा।

यहाँ तो जब आनेकी इच्छा हो तभी आ जाना, लेकिन वहाँ संस्कृत शुरू की है तो उसमें थोड़ी गति प्राप्त कर लेनी चाहिए। फिर भी बेचैनी रहती हो तो उसे भी छोड़-छाड़कर चली आना। इसमें शक नहीं कि शान्ता यहाँ ज्यादा सीख रही है।

अभी तुम्हारे अक्षर मुझे सुन्दर तो अवश्य ही नहीं लगे; किन्तु फिर भी इनमें सुधार तो बहुत-कुछ हुआ है। कदाचित् इससे और अधिक नहीं सुधरेंगे, ऐसा मानकर मैंने कहना ही छोड़ दिया है। अब जो सुधार होगा वह अभ्याससे होगा।

हरी मिर्च भी हानिकर होती है, ऐसा जानना। उसके बिना काम चले तो चलाना चाहिए।

यहाँकी बाकी खबरें रामदास बतायेगा।

१. मोतीके विवाहके उल्लेखसे। यह विवाह १८ जनवरी, १९२६ को हुआ था।

मोतीका[१] विवाह आगामी सोमवारको यहीं होगा।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती पत्र (सी० डब्ल्यू० ५५२) से।
सौजन्य: वसुमती पण्डित

१३१. पत्र: नाजुकलाल एन० चौकसीको

बुधवार, १३ जनवरी, १९२५

भाई नाजुकलाल,

तुम्हारा पत्र मिला। लक्ष्मीदास और मोतीने भी उसे पढ़ लिया है। मोती तो तुमसे ही विवाह करनेको कहती है। उसे हम सब इस ओर प्रोत्साहित रखना चाहते हैं। यदि वह दृढ़तापूर्वक तुमसे ही विवाह करेगी तो इसे तो मैं इस युगका आदर्श विवाह मानूँगा। लेकिन वसन्त पंचमीका मुहूर्त निकल जाये तो भी उसे विचार करने देना ही ठीक लगता है। तुम अपना खयाल रखना। तबीयत अच्छी हो गई हो तो यहाँ आ ही जाना। यहीं तुम्हारी सेवा-शुश्रूषा हो जायेगी। तुम सोमवारको यहाँ पहुँच जाओगे तो मुझे इससे बहुत प्रसन्नता होगी; लेकिन यदि स्थिति ऐसी न हो तो मेरा आग्रह नहीं है। तुम्हारे मनमें जो विचार आयें उनसे मुझे अवगत करना। तुम पत्र न लिख सको तो किसीसे लिखवा दिया करना।

भगवान तुम्हारा भला करे।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती पत्र (एस० एन० १२१०७) की फोटो-नकलसे।

१३२. वर्णभेदका पाप

दक्षिण आफ्रिकामें हम लोगोंको अपनी राष्ट्रीयता और रंगके अपराधके कारण दण्ड भोगना पड़ता है और हिन्दुस्तानमें हम हिन्दू लोग अपने सहधर्मियोंको जाति [और वर्ण] के अपराधके कारण दण्डित करते हैं। पंचम वर्णका मनुष्य बहुत बड़ा अपराधी है और इसलिए वह अस्पृश्यता, अनुपगम्यता, सवर्णोंकी दृष्टितकसे दूर रखने आदि अनेक सजाओंके योग्य समझा जाता है। मद्रास महाप्रान्तकी अदालतमें अभी जो एक असाधारण मुकदमा चला था उससे हमारे निम्न श्रेणीके दलित देशवासियोंकी उपर्युक्त दशापर बड़ा प्रकाश पड़ता है। सरल स्वभाववाले और साफ कपड़े पहने हुए पंचम जातिका एक व्यक्ति किसीका भी दिल दुखाने या किसी भी धर्मका अपमान करनकी जरा भी इच्छा न रखते हुए पूर्ण भक्तिभावसे प्रेरित होकर एक मन्दिरमें गया। वह

१. लक्ष्मीदास आसरकी पुत्री।

वहाँ हर साल देवदर्शनार्थ जाता था, लेकिन अन्दर प्रवेश नहीं करता था, परन्तु इस मर्तबा वह भक्तिकी तीव्रताके कारण अपनेको भूल गया और दूसरे यात्रियोंके साथ अन्दर चला गया। पुजारी यह न जान पाया कि यह व्यक्ति दूसरे लोगोंके वर्णका नहीं है और उसने उसकी भेंट-पूजा स्वीकार कर ली। लेकिन जब उस पंचमको खयाल आया कि मैं पंचम जातिका हूँ और मैं उस स्थानमें आ पहुँचा हूँ जहाँ मेरा प्रवेश वर्जित है, तब वह डरा और मन्दिरसे भाग गया। परन्तु किसी व्यक्तिने जो उसे पहचानता था, उसे पकड़ लिया और पुलिसके हवाले कर दिया। मन्दिरके अधिकारियोंको जब इस बातका पता चला तब उन्होंने मन्दिरकी विधिवत् शुद्धि कराई। उसपर मुकदमा चला। एक हिन्दू मजिस्ट्रेटने धर्मका अपमान करनेका अपराधी मानकर उसपर ७५ रुपये जुर्माना किया; तथा साथ ही यह निर्णय भी सुनाया कि यदि जुर्माना न दे तो एक महीनेकी सख्त कैद भोगे। अपील की गई और उसपर बड़ी लम्बी बहस हुई। पहला फैसला रद किया गया। उसे निर्दोष पानेपर मुक्त कर देनेका कारण यह नहीं था कि अदालत उस गरीब पंचमका मन्दिरमें जानेका हक मानती थी; बल्कि कारण यह था कि नीचेकी अदालत धर्मका अपमान साबित करना भूल गई थी। इस फैसलेसे न्याय, सत्य, धर्म या नैतिकता किसीकी भी विजय नहीं मानी जा सकती।

इस अपीलके सफल होनेसे सन्तोष केवल यही हो सकता है कि यदि कोई पंचम भक्तिके आवेशमें आकर अपनेको भूल जाये और उसे इस बातका खयाल न रहे कि उसके लिए मन्दिरमें प्रवेश करना वर्जित है तो उसे उस कारण सजा न भुगतनी होगी लेकिन यदि वह पंचम या उसके साथका कोई दूसरा पंचम मन्दिरमें प्रवेश करनेकी फिरसे हिम्मत करे तो बहुत सम्भव है कि जो लोग उनको घृणाकी दृष्टिसे देखते हैं वे यदि उन्हें मनमाने ढंगसे दण्डित करें तो अदालत उनको सख्त सजा अवश्य देगी।

यह स्थिति एक विचित्र स्थिति है। दक्षिण आफ्रिकामें हमारे देशवासियोंके प्रति जो व्यवहार किया जाता है उससे हमें बड़ा रोष होता है; और हमारा ऐसा करना उचित ही है। हम लोग स्वराज्य प्राप्त करनेके लिए अधीर हो रहे हैं। लेकिन हम हिन्दू लोग अपने सहधर्मावलम्बियोंके पाँचवें भागको कुत्तोंसे भी बुरा समझकर उनके साथ व्यवहार करनेमें जो अनौचित्य है उसे देखनेसे इनकार करते हैं; कुत्ते हमारे यहाँ अस्पृश्य नहीं हैं! हम लोगोंमें से कुछ तो उन्हें अपने बैठककी शोभा समझकर पालते हैं।

हमारी स्वराज्यकी योजना में 'अस्पृश्यों' का क्या स्थान होगा? यदि स्वराज्यमें उन्हें सब प्रकारकी विशेष कठिनाइयोंसे तथा निर्योग्यताओंसे मुक्त कर दिया जानेवाला है तो हम आज ही उनकी स्वतन्त्रताका ऐलान क्यों नहीं करते? और यदि आज हम ऐसा करनेमें असमर्थ हैं तो क्या स्वराज्य मिलनेपर हम लोग आजकी अपेक्षा कुछ कम असमर्थ होंगे?

इन प्रश्नोंके बारेमें हम अपनी आँखें और कान भले बन्द कर लें, लेकिन पंचम जातिवालोंके लिए तो यह प्रश्न बड़े ही महत्त्वका प्रश्न है। यदि हम लोग इस सामा-

जिक और धार्मिक अत्याचारके विरुद्ध एक होकर खड़े न होंगे तो यह निश्चित है कि दोष हिन्दूधर्मके माथे ही मढ़ा जायेगा।

इस बुराईको दूर करनेके लिए अवश्य ही बहुत-कुछ किया जा चुका है। लेकिन जबतक मन्दिरोंमें जानेके लिए उनपर फौजदारी मामला चलाया जाना सम्भव है और नीच वर्णोंको मन्दिरमें जानेका, सार्वजनिक कुओंपर पानी भरनेका और उनके बच्चोंको राष्ट्रीय शालाओंमें बिना किसी रुकावटके जानेका अधिकार नहीं दिया जाता, तबतक यह सब काम कुछ नहीं के बराबर है। हमें चाहिए कि हम उन्हें वे सारे हक दे दें जिन्हें हम दक्षिण आफ्रिकामें यूरोपीय लोगोंके द्वारा अपने देशवासियोंके लिए चाहते हैं।

लेकिन इस मामलेमें भी कुछ सन्तोषकारक बातें हैं ही नहीं, ऐसा नहीं है। अवश्य ही यह थोड़े बहुत सन्तोषका विषय है कि उसको जो सजा दी गई थी वह रद कर दी गई। लेकिन अधिक सन्तोषका विषय तो यह है कि बेचारे गरीब पंचमोंकी तरफसे अब सवर्ण हिन्दू भी सक्रिय दिलचस्पी दिखा रहे हैं। यदि अपराधीकी मददको कोई न पहुँचा होता तो इस अपीलपर किसीका ध्यान भी न जाता। श्री राजगोपालाचारीका अपीलकी पैरवी करना कुछ कम आनन्दवर्धक बात नहीं है। मेरे खयालसे असहयोगके सिद्धान्तका यह उचित प्रयोग था। यदि उनकी पैरवी करनेपर मुद्दालेहके छूटनेकी सम्भावना रहते हुए भी यदि वे "हम तो असहयोगी हैं", इस घमण्ड भरे खयालमें गर्क केवल हाथपर-हाथ धरे बैठे रहते तो वह एक पाखण्ड ही माना जाता। उस पंचमको असहयोगका कुछ भी ज्ञान न था। उसने तो जुर्माना या कैदकी सजा माफ करनेके लिए ही अपील की थी। वांछित यह है कि हरएक शिक्षित हिन्दू अस्पृश्योंका मित्र बन जाये और धर्मके नामपर किये गये रूढ़िजनित अत्याचारसे उनकी रक्षा करना अपना कर्त्तव्य माने। पंचम वर्गके व्यक्तिका मन्दिरमें जाना धर्मका अपमान नहीं है, उनके मन्दिरमें जानेका निषेध धर्मका और मनुष्यत्वका अपमान है।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १४-१-१९२६

१३३. टिप्पणियाँ

गलती सुधार ली गई

बम्बई सरकार और मेरे खयालसे भारत सरकार भी, अपनेको इस बातपर मुबारकबाद दे सकती है कि उन्होंने हिन्दुस्तान और एक बहादुर अंग्रेजके प्रति जो अन्याय किया था, उसे, अनमने भावसे ही सही, आज समाप्त कर दिया है। उन्होंने हॉर्निमैनके भारतमें — जिस देशसे उन्हें बड़ा प्रेम है और जिसके लिए वे सदा उद्योगरत रहे हैं — वापस आनेपर लगी पाबन्दीको हटा देनेका साहस दिखाया है। यह कोई नहीं जानता कि हॉर्निमैनको गुप्त रीतिसे और एकाएक देशके बाहर भेज देनेका वास्तविक कारण क्या था। उनपर कोई मुकदमा नहीं चलाया गया और न उनपर लगाये गये आरोपोंकी सफाई पेश करनेका ही उन्हें कोई अवसर दिया गया था। मनमाने ढंगसे और जबर्दस्तीसे दिये गये ऐसे देशनिकाले जनताके सामने यह बात स्पष्ट कर देते हैं कि भारत सरकारके हाथमें जो निरंकुश सत्ता है और जिसे वह काममें लाती है, उसका असली रूप क्या है। इस निरंकुश सत्ता द्वारा दण्डित किये जानेतक उसकी समाप्तिके लिए हॉर्निमैनकी अपेक्षा और कोई भी व्यक्ति अपने लेखोंमें इतने जोरदार और शानदार तर्क पेश नहीं कर पाया था। श्री हॉर्निमैनके स्वागतमें उठनेवाली हर्षध्वनिमें अपना एक स्वर मैं भी मिलाना चाहता हूँ। स्वराज्यके लिए जो शक्तियाँ संघर्ष कर रही हैं उनके देशमें लौट आनेसे उनके सामर्थ्य और उत्साहमें इजाफा होगा और जो लोग इस शुभ संघर्षमें लगे हुए हैं इससे उनके हृदयमें बड़ा ही आनन्द होगा। कामना है कि श्री हॉर्निमैन दीर्घायु और स्वस्थ हों ताकि वे अपने ऊपर आगे पड़नेवाले कठिन श्रमका निर्वाह कर सकें।

दक्षिण आफ्रिका

बड़ी कठिनाइयोंका सामना करते हुए श्री एन्ड्रचूज दक्षिण आफ्रिकामें भारतीयोंकी खातिर लड़ाई लड़ रहे हैं। भारत सरकारको इसका यकीन है कि दक्षिण आफ्रिकाकी सरकार कृपापूर्वक भारतके प्रतिनिधियोंसे बातचीत करनेको तैयार है; और इस बातका यकीन है कि वह अपने भारतीय आश्रितोंसे मन-भर लेकर उन्हें एकाधबार कुछ दाने लौटा देनेको भी तैयार है। श्री एन्ड्रचूज इसी सरकारसे यह आशा रखते हैं कि एशियावासियोंके विरुद्ध जो विधेयक तैयार हुआ है वह उसको अपनी तरफसे कमसे-कम उतने समयतक मुल्तवी रखनेके लिए दबाव डाले जबतक कि उत्तेजना कम नहीं हो जाती और विचारसे काम लेनेका वायुमण्डल नहीं बन जाता। लेकिन अब हम थोड़े ही दिनोंमें बहुत ही बुरी खबर सुनेंगे। शीघ्र ही संघ संसदमें वह विधेयक पेश किया जानेवाला है। यदि संघ सरकारने भारत सरकारके प्रति शिष्टाचार भी दिखाया तो वह तबतक उस विधेयकपर विचार करना मुल्तवी कर रखेगी जबतक भारत सरकारका शिष्ट मण्डल अपनी जाँच पूरी करके भारत

नहीं लौट आता, वह भारत सरकारके समक्ष अपनी रिपोर्ट पेश नहीं कर देता और जबतक स्वयं भारत सरकार अरजी तैयार करके संघ सरकारके पास नहीं भेज देती। लेकिन दक्षिण आफ्रिकाके रंग-ढंगको देखते हुए संघ सरकारका उतना शिष्टाचार दिखाना भी विवादास्पद है, जितने शिष्टाचारकी एक सरकार दूसरी सरकारसे आशा रख सकती है।

बिशप फिशरकी चेतावनी

अपनी तथ्यपूर्ण पुस्तिकाके अन्तिम भागमें पादरी फिशरने संघ सरकारको दृढ़ शब्दोंमें यह चेतावनी दी है:[1]

> **समस्या कठिन है और फिलहाल तो उसका कोई हल निकलता नहीं दिख रहा है। प्रस्तावित एशिया-विरोधी विधेयक इसका हल नहीं है; बल्कि उससे तो भारतीय जनताके दिलोंमें क्षोभ उत्पन्न हो सकता है। यदि वह विधेयक पास हो गया तो इससे भारतीयोंके मनमें सन्ताप पैदा होनेके अतिरिक्त अन्य कुछ न होगा। दमन किया गया तो उनके मनमें शहीद हो जानेकी भावना दृढ़ हो जाएगी और संसारमें सर्वत्र भारतीयोंके प्रति मैत्रीभाव रखनेवालोंकी संख्या बढ़ेगी। इसलिए मुझे पूर्ण विश्वास है कि सच्ची राजनीतिज्ञतासे काम लिया जायेगा और संघ-संसद वर्तमान प्रस्तावकी अव्यावहारिकता और उसमें निहित अविवेकको समझेगी। यदि मैं दक्षिण आफ्रिकाका कोई श्वेत नागरिक होता तो मैं इस विधेयकको श्वेत लोगोंके सबसे बड़े हितपर एक सीधी चोट मानता। यों यह चोट भारतीयोंके विरोधमें पड़ती दिखाई देती है; किन्तु इससे भारतीयोंको होनेवाली प्रत्यक्ष हानिसे कहीं अधिक अप्रत्यक्ष हानि श्वेत लोगोंकी होगी। इतिहासने यह सिद्ध कर दिया है कि दमनके उपायों और मूलोच्छेदन मूलक कार्यक्रमोंसे पीड़ितकी अपेक्षा दमनकारीके ही सद्गुणों और शक्तियोंका अधिक ह्रास होता है। राजनीतिक और आर्थिक दोनों क्षेत्रोंसे सम्बन्धित यूनान, रोम, रूस आदिसे लेकर इसके अनेक उदाहरण दिये जा सकते हैं।**

पूर्वग्रहका एक कारण

दक्षिण आफ्रिकामें भारतीयोंके प्रति अविवेकपूर्ण पूर्वग्रहके कारणोंमें बिशप फिशर निम्नलिखित कारण भी बतलाते हैं:[2]

> **दूसरी बात यह है कि भारतीय शराब नहीं पीते। दक्षिण आफ्रिकाके श्वेत नागरिक शराबपर अन्धाधुन्ध खर्च करते हैं। यह आशंका उठना स्वाभाविक ही है कि यूरोपीय समाज शराबपर इतना अन्धाधुन्ध खर्च करता हुआ दीर्घकाल तक किस प्रकार टिक सकता है। शराबपर जो रकम फूँकी जाती**

१. देखिए "टिप्पणियाँ", ७-१-१९२६ का उपशीर्षक 'बिशप फिशरकी पुस्तिका'।

२. अंशत: उद्धृत।

है वह इतनी ज्यादा होती है कि बहुधा यूरोपीयोंको सीमित आयमें गुजर करना कठिन हो जाता है। चूँकि भारतीय मितव्ययी होता है, वह अपना माल यूरोपीयोंके मुकाबिले सस्ता बेच सकता है। रेसोंमें तथा अन्य स्थानोंपर, जुआ, अत्यधिक खेल-तमाशे, भोगविलास, मोटी-मोटी तनख्वाहों तथा दूसरी फिजूल खर्चीके कारण श्वेत लोगोंका जीवन बहुत खर्चीला हो गया है। अश्वेत लोगोंका जीवन अपेक्षाकृत कम खर्चीला है।. . . श्वेत लोग जीवनका ऐसा एक स्तर चाहते हैं जो उनके अपने देशमें उपलब्ध जीवनस्तरसे भी बहुत ऊपरका है।

सरोजिनी देवीकी प्रशस्ति

श्रीमती सरोजिनी देवीके दक्षिणी आफ्रिकासे लौटनेपर वहाँ उनके कार्योंका जो प्रभाव पड़ा है, उसके बारेमें फीनिक्ससे श्री एन्ड्रयूज लिखते हैं:

श्रीमती सरोजिनी देवीके यहाँ हो जानेसे एक ऐसी बात हुई है जिसके लिए मेरा हृदय उन्हें रोज दुआ देता है। उन्होंने यहाँके आदिवासियों और भारतीयोंके हितोंमें एकता स्थापित कर दी है। आदिवासियों और अश्वेतों, दोनोंके मनपर उनका बड़ा गहरा प्रभाव पड़ा है और मैं हर जगह देखता हूँ कि उनके आनेसे उनके बीचकी एकता और भी दृढ़ हो गई है। सरोजिनी देवीके भ्रमणका जिस प्रकार व्यापक प्रचार हुआ, उससे वे बहुत आकर्षित हुए हैं और सरोजिनी देवीकी लोकप्रियतामें वृद्धि हुई है। आदिवासियों और अश्वेतोंके प्रति सरोजिनी देवीका प्रेम इतना वास्तविक था कि वे उन्हें रानीके रूपमें देखते थे। वह भारतीय नेताओंमें भी एक स्वस्थ चेतनाका संचार करके गई हैं और अब वे आदिवासियोंके हितसे अपना हित कदापि अलग नहीं मानेंगे। जहाँतक दक्षिण आफ्रिकाका सम्बन्ध है, वह खतरा एकदम दूर हो गया है। लेकिन पूर्व आफ्रिकाके बारेमें मेरा मन अभी आश्वस्त नहीं है।

वाइकोमका सत्याग्रह

जो हिन्दू सुधारक अस्पृश्यताको दूर करनेके लिए कृतसंकल्प हैं उन्हें वाइकोमके सत्याग्रहका वास्तविक अर्थ और उसके परिणाम समझ लेने चाहिए। सत्याग्रहियोंका तात्कालिक ध्येय मन्दिरके आसपासके रास्तोंको सबके लिए खुलवाना था, मन्दिरोंमें प्रवेश करना नहीं। उनका कहना यह था कि रास्ते जिस प्रकार दूसरे हिन्दुओं और अहिन्दुओंके लिए खुले हुए हैं उसी प्रकार अस्पृश्योंके लिए भी खुले होने चाहिए। इसमें उनकी पूरी-पूरी विजय हुई है। यद्यपि सत्याग्रह रास्तोंको खुलवानेके लिए ही किया गया था फिर भी सुधारकोंका अन्तिम उद्देश्य तो यही है कि अन्य हिन्दुओंको जो कठिनाइयाँ नहीं होतीं और जो अस्पृश्योंको ही सहन करनी पड़ती हैं वे दूर की जायें। इसलिए इसमें मन्दिर, कुएँ और शाला इत्यादि जगहोंमें जहाँ दूसरे अब्राह्मण

लोग बेखटके प्रविष्ट होते हैं, उनके जानेकी बात भी शामिल है। लेकिन इन सुधारों-को सफल बनानेके लिए सीधे संघर्षका सहारा लेनेके पहले दूसरा बहुत-कुछ काम करना जरूरी रहता है। सत्याग्रह कभी एकाएक नहीं छेड़ा जाता। जबतक अपेक्षाकृत अन्य नरम उपायोंकी आजमाइश नहीं कर ली जाती तबतक उसका आरम्भ हरगिज नहीं किया जा सकता। दक्षिणके सुधारकोंको पहले मन्दिर प्रवेश इत्यादि सुधारोंके सम्बन्धमें लोगोंको शिक्षित करके जनमत तैयार करना होगा और फिर यह निर्योग्यता भारतके केवल दक्षिणी भागमें ही नहीं बल्कि, हमें लज्जाके साथ स्वीकार कर लेना चाहिए कि दुर्भाग्यसे कम ज्यादा सभी हिन्दू धर्मावलम्बियोंमें विद्यमान है। इसलिए वाइकोम शिविरके संचालक श्री केलप्पन नायरने, उन पुलिया अस्पृश्योंमें जो सबसे अधिक दलित और अत्यन्त दुखी हैं और जिनकी परछाईंतक भ्रष्ट कर देनेवाली मानी जाती है, पूर्ण एकाग्रताके साथ काम करनेका जो निश्चय किया है मैं उसका स्वागत करता हूँ। किसी भी सीधे संघर्षके पीछे रचनात्मक कार्य अर्थात् शक्ति उत्पन्न करनेवाला कोई कार्यक्रम रखना बहुत श्रेयस्कर होता है। सुधार कार्य दोनों छोरोंसे शुरू करना होगा अर्थात् प्रथम तो सवर्ण लोग अस्पृश्योंके प्रति जिन्हें उन्होंने बहुत निर्दयताके साथ दबाया है, अपना कर्त्तव्य समझें; दूसरे सुधारक लोग अस्पृश्योंका रहन-सहन अधिक अच्छा बनानेमें सहायक हों और अस्पृश्योंसे उनकी वे आदतें छुड़वायें जिन्हें, यदि अस्पृश्य लोग समाजमें उचित स्थान प्राप्त करना चाहते हैं तो, छोड़ देना उनका कर्त्तव्य है; यद्यपि उन आदतोंके आ जानेकी जिम्मेदारी अस्पृश्योंकी किसी भी प्रकारसे नहीं ठहराई जा सकती।

कांग्रेसकी सदस्यता

जो लोग कांग्रेसके कताई सदस्य होना या बने रहना चाहते हैं उन्हें स्मरण रखना चाहिए कि इसके लिए उन्हें तो अपना चन्दा इसी महीने चुका देना है। केवल यह पर्याप्त नहीं है कि वे अखिल भारतीय चरखा संघके सदस्य हैं। चरखा संघका सदस्य कांग्रेसका सदस्य हो ही, सो बात नहीं है। कांग्रेसके सदस्य बननेके लिए तो हर व्यक्तिको निम्नलिखित प्रारूप भरकर भेजना पड़ता है:

सेवामें
मन्त्री
अखिल भारतीय चरखा संघ
(तकनीकी विभाग)
महोदय,

मैं *कांग्रेस कमेटीका सदस्य हूँ/बनना चाहता (चाहती) हूँ। कांग्रेस संविधानके अनुच्छेद १ में निर्दिष्ट भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसके उद्देश्य और पद्धति-योंको मैं स्वीकार करता (करती) हूँ . . . वर्षके लिए राष्ट्रीय कांग्रेसके चन्देके रूपमें मैं अपने हाथसे काता हुआ २००० गज सूत जो वजनमें. . .तोला है,

भेज रहा (रही) हूँ (या मैं क/ख श्रेणीके सदस्यके रूपमें पहले भेज चुका (चुकी) हूँ।) मेरी आयु. . .वर्ष और पेशा. . .है।

हस्ताक्षर

दिनांक. . .

*** कमेटीका नाम लिखें।**

चरखा संघके जो सदस्य संघके चन्देके रूपमें अपने हाथसे कता (कमसे-कम दो हजार गज) सूत भेज चुके हैं, उन्हें इस वर्षके लिए और अधिक सूत भेजनेकी आवश्यकता नहीं है।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १४-१-१९२६

१३४. दस्तूरी और बम्बईके भंगी

मेरे पास कुछ ऐसे कागज भेजे गये हैं जिनमें मेरे बारेमें यह कहा गया है कि मैंने १९१८ में और बातोंके साथ यह भी कहा था कि "(बम्बई नगर निगममें नियुक्त भंगियों द्वारा दी जानेवाली कथित घूसके बारेमें जिसे बोलचालकी भाषामें 'दस्तूरी कहते हैं) जो गवाहियाँ और बयान दिये गये हैं उन्हें कोई भी निष्पक्ष व्यक्ति सच नहीं मान सकता।" उन क़ागजोंसे यह भी मालूम होता है कि वर्तमान म्युनिसिपल कमिश्नरने मेरे उस कथनको अपने निर्णयके पक्षमें उद्धृत किया है कि कर्मचारियों द्वारा कोई दस्तूरी नहीं दी जाती। मुझे याद नहीं है कि १९१८ में मैंने क्या कहा था, लेकिन मेरा खयाल है कि आजसे सात वर्ष पहले दिये गये प्रमाणको उसी प्रकारके किसी ताजे दोषारोपणका खण्डन करनेके लिए उद्धृत करना उचित अथवा न्यायसंगत नहीं है। यदि यह मान भी लिया जाये कि १९१८ में स्वास्थ्य अधिकारीसे हुई मेरी बातचीतकी यह रिपोर्ट सही है, और जिन गवाहोंसे मैंने उस समय पूछताछ की थी, उनमें से कुछकी गवाही विश्वसनीय नहीं थी, तो इसका यह मतलब नहीं होता कि उस समय वहाँ घूसखोरी या भ्रष्टाचार था ही नहीं; या कि जिन लोगोंने अभी हालमें गवाहियाँ दी हैं, वे अविश्वसनीय हैं। मैं यह जानता हूँ कि श्री ठक्कर, जिनकी निष्पक्ष निर्णय देनेकी क्षमतापर सन्देह किया गया है और जिनपर सरकारी अफसरोंके प्रति द्वेष रखनेका आरोप किया गया है, ऐसे दोषारोपणके पात्र कदापि नहीं हैं। हमारे पास श्री ठक्कर जैसे ईमानदार और निष्पक्ष सार्वजनिक कार्यकर्त्ता बहुत कम हैं। वह जानबूझ कर किसी व्यक्तिको गलत नहीं समझेंगे। क्योंकि उन्हें अपना कोई निजी हितसाधन नहीं करना है और न उन्हें अपनी किसी गलतीको छिपाना ही है। जहाँतक घूसखोरीके दोषारोपणका सम्बन्ध है, मैं यह कहना चाहता हूँ कि सात वर्षके अवलोकनके बाद मैं इस निष्कर्षपर पहुँचा हूँ कि अन्य जगहोंकी भाँति नगर निगममें भी घूसखोरी फैली हुई है। मैं यह भी स्वीकार करता हूँ कि

इस दोषारोपणको साबित करना बहुत ही कठिन है, विशेषकर असहाय अछूतोंके सम्बन्धमें। म्युनिसिपल कमिश्नर महोदय यदि सचाई जानना चाहते हैं तो उन्हें वही काम करना चाहिए जो विक्रमादित्यने किया था। वे वेष बदलकर निकलें और देखें कि नौकरी दिलाने या वेतनमें तरक्कीके लिए वे इन गरीब आदमियोंके पाससे दस रुपयेका नोट हथियानेमें सफल होते हैं या नहीं। यदि मानवताके हितमें म्युनिसिपल कमिश्नर इस बातका पता लगानेके लिए कि उनके शासनमें लोगोंके सताये जानेकी रिपोर्ट सच है या नहीं, कटिबद्ध हैं तो यह तो पक्की बात है कि उन्हें साधारण लोगोंकी भाषा सीखनी होगी और अपने मातहतों-जैसा पहनावा भी पहनना होगा।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १४-१-१९२६

१३५. पत्र: नाजुकलाल एन० चौकसीको

बृहस्पतिवार, १४ जनवरी, १९२६

भाईश्री ५ नाजुकलाल,

तुम्हारा आजका पत्र मिला। चित्तको बहुत शान्ति हुई। मोतीका पत्र इसके साथ है। मैं चाहता हूँ कि तुम यहाँ आ जाओ। मोती वसन्त पंचमीके मुहूर्तको टलने देना नहीं चाहती। तुम्हारे साथ ही मरना-जीना चाहती है। वह तो तुम्हारी सेवामें हाथ बँटाना चाहती है; इसलिए तुम्हारे अच्छे हो जानेपर ही विवाह हो, ऐसा नहीं चाहती। तुम अपंग रहो तो भी वह तुम्हींसे विवाह करना चाहती है। भाई लक्ष्मीदास, बेलाबहन और मैं तीनों ही उससे सहमत हैं। इसलिए विवाहकी तिथिको स्थगित मत मानना। तुम चाहो तो हम विवाह वहीं करें। मुझे तार दे देना। हम विवाह विधि बिलकुल शान्तिसे सम्पन्न करायेंगे। तुम्हें तनिक भी उत्तेजना नहीं होने देंगे। और संस्कारमें बहुत ज्यादा लोगोंको भी नहीं बुलायेंगे।

मोहनदासके आशीर्वाद

गुजराती पत्र (एस० एन० १२१०८) की फोटो-नकलसे।

१३६. पत्र : शान्तिकुमार मोरारजीको

शुक्रवार, १५ जनवरी, १९२५

चि० शान्तिकुमार,

तुम्हारा पत्र मिला। तुमने जो कागजात भेजे हैं वे दिलचस्प हैं। मैं उन्हें पढ़ गया हूँ। तुम चरखा संघके सदस्य बनोगे, यह जानकर मुझे खुशी हुई।

पुरस्कार दो निबन्धोंपर[1] देने हैं। दोनों फिलहाल काशीमें हैं। पुरस्कार विजेता[2] उनकी जाँच कर रहे हैं। उन्हें मँगवाकर तुम्हें भेजनेकी तजवीज करूँगा।

चरखेके प्रति मैसूरके महाराजाके प्रेमका समाचार मुझे मिल चुका है।

तुम गुजरातीमें पत्र लिखनेका अभ्यास जारी रखोगे तो तुम्हारी लिखावट और भाषा दोनों सुधर जायेंगी।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती पत्र (सी० डब्ल्यू० ४७००) की फोटो-नकलसे।
सौजन्य : शान्तिकुमार मोरारजी

१३७. पत्र : शिवाभाई पटेलको

माघ सुदी १ [१५ जनवरी, १९२६][3]

भाई शिवाभाई,

तुम्हारा पत्र मिला। तुम अपनी स्त्रीका सर्वथा त्याग नहीं कर सकते; लेकिन तुम ब्रह्मचर्यका पालन करना चाहो तो कर सकते हो। मनुष्य काम भावको दबा सकता है और सो तो उसे दबाना चाहिए। अवश्य ही जीवनपर्यन्त ब्रह्मचर्यका पालन करनेवाले व्यक्ति मिलते हैं। विवाहित भी ब्रह्मचर्यका पालन कर सकते हैं।

तुम्हें अपनी पत्नीको शिष्या मानकर पढ़ाना चाहिए। प्रयत्न करनेसे उसकी बुद्धि विकसित हो सकती है। तुम्हें उसके साथ एकान्त सेवन नहीं करना चाहिए। दोनोंके सोनेकी व्यवस्था अलग-अलग कमरोंमें रहनी चाहिए। यदि परिणाममें वह व्यभिचार करे तो उसका दोष तुम्हें बिलकुल नहीं लगेगा। उस अवस्थामें तुम उसका सर्वथा त्याग कर सकते हो।

१. खादी विषयक।

२. एस० वी० पुण्ताम्बेकर, बनारस हिन्दू विश्वविद्यालयके एक प्राध्यापक और एन० एस० वरदाचारी, तमिलनाडके एक कांग्रेसी कार्यकर्त्ता।

३. साधन-सूत्रमें हिन्दू संवत्सरकी तिथिके नीचे "१९८२" लिखा हुआ है।

यदि तुम्हारी इच्छा चरोतर शिक्षा मण्डलमें सम्मिलित होनेकी हो तो मैं उसमें कोई दोष नहीं देखता। जो खुद असहयोगको धर्म मानता हो वह तो उसमें सम्मिलित नहीं हो सकता।

तुम किसी असहयोगी संस्थामें रहो तो भी आश्रममें तो अवश्य ही नहीं रह सकते। मुझे लगता है कि मैंने तुम्हारे सारे प्रश्नोंके उत्तर दे दिये। कुछ विशेष पूछना उचित लगे तो अवश्य ही फिर लिखना।

मोहनदास गांधीके वन्देमातरम्

गुजराती पत्र (सी० डब्ल्यू० ४०५) से।
सौजन्य: शिवाभाई पटेल

१३८. पत्र: नाजुकलाल एन० चौकसीको

शुक्रवार, १५ जनवरी, १९२६

भाईश्री ५ नाजुकलाल,

तुम्हारा पत्र मिल गया। उसे पढ़कर हम सबको प्रसन्नता हुई। अब दिन थोड़े ही हैं। यदि तुम आ सको तो मोतीका पाणिग्रहण करनेके लिए रविवार अथवा सोमवारको आ जाओ। यदि इसमें जोखिम हो और तुम चाहो तो मैं मोतीको वहाँ बड़ोदा भेज दूँ। साथमें विधि सम्पन्न करानेके लिए पण्डितजी आ जायेंगे और हममें से भी कोई-न-कोई तो आयेगा ही। बहुत सम्भव तो यह है कि लक्ष्मीदास, बेलाबहन और महादेव आयेंगे। यदि तुम्हें लगे कि तुम्हारे लिए अभी विवाहका उल्लास भी वांछनीय नहीं है तो तुम यह बात कहनेमें संकोच न करना। अब तुम्हारा हित किस बातमें है, केवल यही बात विचारणीय है। अब तो तुम्हारी ही दृष्टिसे मोतीकी सार-सम्भाल हम लोगोंका इष्ट है। वसन्त पंचमीका मुहूर्त न टले ऐसा हम सब चाहते हैं; लेकिन तुम्हारे स्वास्थ्यकी रक्षा उससे भी अधिक चाहते हैं। वसन्त पंचमी टल जायेगी तो तुम जिस दिन और जिस मुहूर्तको ठीक समझोगे हम उस दिन और उसी घड़ी मोतीको तुम्हें सौंप देंगे।

ईश्वर तुम दोनोंको दीर्घायु और सुखी रखे तथा तुम्हारे हाथों देश और धर्मकी सेवा हो।

मोहनदासके आशीर्वाद

गुजराती पत्र (एस० एन० १२१०९) की फोटो-नकलसे।

१३९. पत्र : फूलसिंहको

आश्रम
माघ सुदी २ [१६ जनवरी, १९२६][1]

भाई फूलसिंहजी,

आपका पत्र मिला। मैं आपके नजरियेको अच्छी तरह समझ सकता हूँ; लेकिन मैं समझता हूँ कि इस विषयमें व्यक्तिगत चर्चा करनेसे कोई ठीक उद्देश्य नहीं सधेगा।

मोहनदासके वन्देमातरम्

भाई फूलसिंहजी
चरोतर शिक्षा मण्डल
आनन्द

गुजराती पत्र (एस० एन० १२९४) की फोटो-नकलसे।

१४०. पत्र : नाजुकलाल एन० चौकसीको

शनिवार, १६ जनवरी, १९२६

भाई श्री ५ नाजुकलाल,

तुम्हारा पत्र मिला। चि० मोतीका पत्र उसे दे दिया है। तुमने जो पत्र मुझे लिखा है उसने वह पत्र भी पढ़ लिया है। जवाब इसके साथ है। उसकी खराब लिखावट और भाषा तो अब तुम्हें ही सुधारनी होगी। पत्रके विचार तो ठीक लगते हैं; यह खुद उसीने प्रकट किये हैं।

विवाह विधि ठीक तीन बजे सोमवारकी सांझको शुरू होगी। मैं उस समयतक तैयार रहूँगा।

तुम जिन्हें साथ लाना चाहो खुशीसे लाओ। कौन-कौन छुआछूतका विचार करते हैं, यह मुझे सूचित कर देना।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती पत्र (एस० एन० १२१११) की फोटो नकलसे।

१. डाककी मुहरसे।

१४१. पत्र : नाजुकलाल एन० चौकसीको

आश्रम

माघ सुदी २ [१६ जनवरी, १९२६]

भाईश्री ५ नाजुकलाल,

तुम्हारा पत्र मिल गया। हम सोमवारको तुम्हारी राह देखेंगे। तुम्हें लेनेके लिए अहमदाबाद स्टेशनपर कोई-न-कोई अवश्य आयेगा। तुम मोटरमें लाये जाओगे, जिससे तुम्हें झटके ज्यादा न लगें। यदि तुम विरोध नहीं करोगे तो विवाह तो सम्पन्न किया ही जायेगा। बादमें यदि तुम उसी दिन जानेके लायक हुए अथवा तुमने जाना चाहा तो चले जाना; नहीं तो हम तुम्हारी सेवा-शुश्रूषा यहीं करेंगे। ईश्वर तुम्हारी रक्षा करे और तुम्हारी यहाँकी यात्रा सफल हो।

मुझे तो यह सारी घटना बहुत प्रिय लगती है।

मोहनदासके आशीर्वाद

[पुनश्च :]

तुम्हारे पहुँचनेतक मैं मौन तोड़नेकी तैयारी तो कर ही चुकूँगा। तुम्हारी गाड़ीके समयका पता लगाकर मौन लूँगा, जिससे तुम्हारे जानेतक बोलने लगूँ।

गुजराती पत्र (एस० एन० १२११२) की फोटो-नकलसे।

१४२. तीन महत्त्वपूर्ण प्रश्न

एक सज्जनने बड़े ही विनम्र भावसे तीन प्रश्न हिन्दीमें पूछे हैं। उनकी हिन्दी इतनी सरल है कि मैं वे प्रश्न हिन्दी भाषामें ही, गुजराती लिपिमें नीचे दे रहा हूँ। लेखकने इन प्रश्नोंके साथ तत्सम्बन्धी उपायोंके विषयमें अपने सुझाव भी भेजे हैं। परन्तु स्थानाभावके कारण उन्हें मैं यहाँ नहीं दे रहा हूँ। प्रश्न इस प्रकार हैं :

> (१) वर्णभेद आप जन्मजात मानते हैं। किन्तु यह भी आपकी मान्यता है कि किसी आदमीको कोई भी कर्म करनेमें हर्ज नहीं तथा किसी भी आदमीमें ब्राह्मण, क्षत्रिय, या वैश्यादि द्विजोंके गुण आ सकते हैं। ऐसी हालतमें वर्णकी पदवीकी क्या जरूरत है? सिर्फ जन्मसे नामका आरोपण क्यों? जन्मको इतना महत्त्व क्यों?
>
> (२) आप अद्वैतवाद मानते हैं और यह भी कहते हैं कि सृष्टि अनादि, अनन्त तथा सत्य है। अद्वैतवाद सृष्टिके अस्तित्वसे इनकार करता है। आप

द्वैतवादी भी नहीं, क्योंकि आप जीवात्माके स्वतन्त्र कर्तृत्वपर श्रद्धा रखते हैं। इसलिए आपको अनेकान्तवादी या स्याद्वादी कहना ठीक क्यों नहीं है?

(३) आपने कई बार लिखा है कि ईश्वरके मायने देहरहित, वीतरागी, स्वतन्त्र और उपाधिरहित शुद्धात्मा है; अर्थात् ईश्वरने सृष्टि नहीं पैदा की और वह पाप-पुण्यका निर्णय करने भी नहीं बैठता। तो भी आप ईश्वरेच्छाकी बात बार-बार करते ही रहते हैं। उपाधिरहित ईश्वरको इच्छा कैसे हो सकती है और उसकी इच्छाके अधीन आप कैसे हो सकते हैं? आपकी आत्मा जो-कुछ करना चाहती है, कर सकती है। यदि आत्मा ऐसा नहीं कर पाती तो उसका पूर्वसंचित कर्म ही इसका कारण है, न कि ईश्वर। आप सत्याग्रही होनेके कारण सिर्फ मूढ़ात्माओंको समझानेके लिए यह असत्य बात तो नहीं कहते होंगे। फिर यह ईश्वरेच्छाका दैववाद क्यों?

(१) मेरा वर्णभेदका मानना सृष्टिके नियमोंका समर्थन करना है। हम अपने माता-पिताके कुछ गुणदोष जन्मसे ही विरासतमें प्राप्त करते हैं। मनुष्य योनिमें मनुष्य ही पैदा होते हैं, इसे जन्मानुसार वर्णका ही सूचक समझिए। हम जन्मतः प्राप्त गुण-दोषोंमें थोड़ा-बहुत परिवर्तन कर सकते हैं; इस दृष्टिसे कर्मको भी स्थान है। एक ही जन्ममें पूर्वजन्ममें अर्जित संस्कारोंको सर्वथा मिटा देना शक्य नहीं है। इस अनुभवको देखते हुए तो जो जन्मसे ब्राह्मण है उसे ब्राह्मण माननेमें ही सब प्रकारसे लाभ है। विपरीत कर्म करनेसे ब्राह्मण इसी जन्ममें शूद्र बन जाये और संसार उसे फिर भी ब्राह्मण ही मानता जाये तो इससे संसारकी कोई हानि नहीं। यह सच है कि आज वर्ण व्यवस्थाका अर्थ उलटा हो रहा है और इसीलिए यह भी सच है कि वह छिन्न-भिन्न हो गई है। फिर भी मैं जिस नियमकी सत्यता पद-पदपर सिद्ध होती देखता हूँ उससे कैसे इनकार कर सकता हूँ? मैं यह मानता हूँ कि यदि मैं उससे इनकार करूँ तो बहुत-सी मुश्किलोंसे बच सकता हूँ। लेकिन यह तो दुर्बुद्धि-का मार्ग है। मैंने तो यह स्पष्ट पुकार कर कहा है कि मैं वर्णोंको स्वीकार करनेमें ऊँच-नीचके भावको स्वीकार नहीं करता। जो सच्चा ब्राह्मण है वह सेवकका भी सेवक बनकर रहता है। ब्राह्मणमें भी क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रके गुण अवश्य ही रहते हैं। केवल उसमें ब्राह्मणके गुण, दूसरोंके गुणोंकी अपेक्षा अधिक होने चाहिए। लेकिन आज तो वर्ण भी कुम्हारके चाकपर चढ़े हैं और उसमें से गोल बनेगा या गागर, इसे तो विधाता ही जान सकता है या फिर ब्राह्मण।

(२) यह सच है कि मैं अपनेको अद्वैतवादी मानता हूँ, लेकिन द्वैतवादका समर्थन भी मैं कर सकता हूँ। संसारमें प्रतिक्षण परिवर्तन होता है इसीलिए सृष्टि असत्य —अस्तित्व रहित—कही जाती है। लेकिन परिवर्तन होनेपर भी उसका एक रूप ऐसा है, जिसे उसका अपना स्वरूप कह सकते हैं। उस रूपमें उसकी सत्ता है, यह भी हम देख सकते हैं; इसलिए वह सत्य भी है। इस कारण उसे सत्यासत्य कहें तो भी मुझे कुछ आपत्ति नहीं। मुझे यदि इसी कारण अनेकान्तवादी या स्याद्वादी माना जाये तो इसमें भी कोई आपत्तिकी बात नहीं है। मैं स्याद्वादको जैसा जानता हूँ,

वैसा मानता हूँ। उसका जो रूप पण्डित मानते हैं शायद वैसा नहीं है। वे मुझसे वादविवाद करें तो मैं हार जाऊँगा। मैंने अपने अनुभवसे यह देखा है कि मैं अपनी दृष्टिसे हमेशा ठीक होता हूँ और प्रामाणिक टीकाकारोंकी दृष्टिसे मेरी बहुत-सी बातोंमें त्रुटि होती है। किन्तु मैं यह जानता हूँ कि अपनी-अपनी दृष्टिसे हम दोनों ही ठीक हैं। और इस प्रतीतिके कारण मैं किसीको भी सहसा झूठा और कपटी नहीं मान सकता। सात अन्धोंने हाथीका सात प्रकारसे वर्णन किया था और वे सब अपनी-अपनी दृष्टिसे ठीक थे, आपसमें एक दूसरेकी दृष्टिसे भूलमें थे और ज्ञानीकी दृष्टिमें सच्चे भी थे और गलत भी। मुझे यह अनेकान्तवाद बहुत प्रिय है। उससे ही मैं मुसलमानकी दष्टिसे मुसलमानकी और ईसाईकी दृष्टिसे ईसाईकी परीक्षा करना सीखा हूँ। मेरे विचारोंको जब कोई गलत समझता था तो पहले मुझे उसपर बड़ा क्रोध आता था; लेकिन अब मैं उसके विचारपर उसकी दृष्टिसे भी विचार कर पाता हूँ; इसलिए मैं उससे भी प्रेम कर सकता हूँ, क्योंकि मैं संसारके प्रेमका भूखा हूँ। अनेकान्तवादके मूलमें अहिंसा और सत्य दोनों हैं।

(३) मैं ईश्वरको जिस रूपमें मानता हूँ उसी रूपमें उसका वर्णन करता हूँ। मैं लोगोंको भ्रममें डालकर अपना अधःपतन क्यों करूँ? मुझे उनसे कौन-सा इनाम लेना है? मैं तो ईश्वरको कर्त्ता-अकर्त्ता मानता हूँ। इसका उद्भव भी मेरे स्याद्वाद्में से होता है। मैं जैनोंके स्थानपर बैठकर उसका कर्तृत्व सिद्ध करता हूँ और रामानुजके स्थानपर बैठकर उसका अकर्तृत्व। हम सब अचिन्त्यका चिन्तन करते हैं, अवर्णनीयका वर्णन करते हैं और अज्ञेयको जानना चाहते हैं। इसलिए हमारी भाषा तोतली है, अपूर्ण है और कभी-कभी तो वक्रतक हो बैठती है। इसीलिए तो ब्रह्मके लिए वेदोंने अलौकिक शब्दोंकी रचना की और उसको 'नेति' कहकर पुकारा है। यद्यपि वह नहीं है, फिर भी वह है। अस्ति, सत्, सत्य, ०,१,११. . . .यह कह सकते हैं। हम लोग हैं, हमें पैदा करनेवाले माता-पिता हैं और उनको भी पैदा करनेवाले हैं. . .इसलिए सबको पैदा करनेवाला भी एक है; यह माननेमें कोई पाप नहीं है वल्कि पुण्य है, यह मानना धर्म है। यदि वह नहीं है, तो हम भी नहीं हैं। इसीलिए हम सब उसे एक स्वरसे परमात्मा, ईश्वर, शिव, विष्णु, राम, अल्ला, खुदा, दादा होरमज, जिहोवा, गॉड इत्यादि अनेक और अनन्त नामोंसे पुकारते हैं। वह एक है, अनेक है; अणुसे भी छोटा है और हिमालयसे भी बड़ा है; समुद्रके एक बिन्दुमें भी समा सकता है और सात समुद्र मिलकर भी उसे अपने भीतर समाविष्ट न कर सकें, इतना विशाल है वह। उसे जाननेके लिए बुद्धिका उपयोग ही क्या हो सकता है? वह तो बुद्धिसे परे है। ईश्वरके अस्तित्वको माननेके लिए श्रद्धाकी आवश्यकता है। मेरी बुद्धि अनेक तर्क-वितर्क कर सकती है और मैं किसी कट्टर नास्तिकसे विवाद करनेमें हार भी सकता हूँ; फिर भी मेरी श्रद्धा मेरी बुद्धिसे इतनी अधिक आगे दौड़ती है कि समस्त संसारके विरोध करनेपर भी मैं यही कहूँगा कि ईश्वर है, और अवश्य है।

लेकिन जिसे ईश्वरके अस्तित्वसे इनकार करना हो, उसे इनकार करनेका अधिकार है, क्योंकि वह तो दयालु है, रहीम है, रहमान है। वह कोई मिट्टीका बना हुआ

राजा तो है नहीं कि उसे अपनी सत्ता स्वीकार करानेके लिए सिपाही रखने पड़ें। वह तो हम लोगोंको स्वतन्त्रता देता है, फिर भी केवल अपनी दयाके बलसे हम लोगोंका शासन करता है। लेकिन हम लोगोंमें से यदि कोई उसका शासन नहीं मानता तो भी वह कहता है: "खुशीसे मेरा शासन न मानो; मेरा सूर्य तो तुम्हें भी रोशनी देगा, मेरा मेघ तो तुम्हारे लिए भी पानी बरसायेगा। मुझे अपनी सत्ता चलानेके लिए तुमपर बलात्कार करनेकी कोई आवश्यकता नहीं।" ऐसे ईश्वरकी सत्ताको वह भले ही न माने जो नादान है; लेकिन मैं उसे माननेवाले करोड़ों बुद्धिमानोंमें से एक हूँ, इसलिए उसको सहस्र बार प्रणाम करनेपर भी नहीं थकता।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, १७-१-१९२६

१४३. गुरुकुल

'गुरुकुल' एक पारिभाषिक शब्द हो गया है और उसका केवल विशेष प्रकारके आर्यसमाजी विद्यालयोंके लिए ही प्रयोग किया जाता है। इन गुरुकुलोंके सम्बन्धमें एक भाई लिखते हैं:[1]

मैं यह जानता हूँ कि मुझे किसीके भी प्रति घृणा नहीं है, फिर आर्यसमाजियोंके प्रति कैसे हो सकती है? मैं हमेशा आर्यसमाजियोंके सम्पर्कमें आया हूँ और उनसे मेरा सम्बन्ध आज भी कायम है। आलोचनात्मक शब्द लिखनेके बाद हमारा सम्बन्ध या प्रेम जरा भी कम नहीं हुआ है। इसलिए यदि मेरे लेखसे किसीके मनमें घृणा उत्पन्न हुई हो तो मेरे लिए यह आश्चर्य और दुःखकी बात है। आर्यसमाजियोंकी कुछ कृतियोंके सम्बन्धमें कोई मतभेद हो तो उससे उनके दूसरे गुण और उनकी देशसेवा भुलाई नहीं जा सकती। उन्होंने जनतामें नया जीवन डाला है। उन्होंने हिन्दू धर्ममें प्रविष्ट कितने ही दोषोंका हमें दर्शन कराया है। उन्होंने हिम्मत दिखाई है, स्त्री-शिक्षामें बड़ा योगदान दिया है, दलितोंकी सेवा की है, संस्कृत और हिन्दीके अध्ययन-अध्यापनमें वृद्धि की है। ऋषि दयानन्दने लड़कपनमें ही माता-पितासे सत्याग्रह करके जनताको ब्रह्मचर्यका बहुत बड़ा पदार्थ-पाठ पढ़ाया है। इन बातोंका पवित्र स्मरण हमेशा ही ताजा रहेगा। मैं विद्यादेवीजीके खादी प्रेमको जानता हूँ। मैं उनके पास एक बुनना जाननेवाली बहनको भेजनेका प्रयत्न कर रहा हूँ। कांगड़ी गुरुकुलका और मेरा सम्बन्ध पुराना है। स्वामीजीकी प्रेरणासे गुरुकुलके ब्रह्मचारियोंने शरीर-श्रम करके दक्षिण आफ्रिकामें मुझे कुछ धन भेजा था; उसे मैं किसी प्रकार नहीं भूल सकता। वहाँके अध्यापक खादी प्रेमी हैं, यह भी मैं जानता हूँ। सूपा गुरुकुलका उल्लेख 'नवजीवन' में नहीं आ सका तो उसका कारण लापरवाही नहीं है और घृणाकी तो बात हो ही

१. यहाँ नहीं दिया गया है। पत्र-लेखकने अस्पृश्योंके सम्बन्धमें आर्यसमाजियों द्वारा किये गये कार्योंकी सराहना की थी और कहा था कि आपने उनकी आलोचना सद्भावसे प्रेरित होकर की है, फिर भी उससे आपके अनुयायियोंमें भ्रम उत्पन्न हुआ है।

नहीं सकती। उल्लेखके अभावकी जवाबदेही मुझपर या महादेव देसाईपर ही हो सकती है। मैं तो यह जानता हूँ कि इसके लिए मैं जवाबदेह नहीं हूँ और महादेवके मनमें घृणा होना मैं असम्भव मानता हूँ। लेकिन जहाँ डाकगाड़ीकी तरह तेजीसे लिखा जा रहा हो वहाँ किसी बातका उल्लेख रह जाये, यह सम्भव है। मैं सूपा गुरुकुलके प्रयत्नको प्रशंसनीय प्रयत्न मानता हूँ। उसके अधिष्ठाताके उत्साहकी ओर मेरा ध्यान आकर्षित हुआ था। मैंने उन्हींके उत्साहके वश होकर वहाँ जाना स्वीकार किया था। मैंने यह देखा कि वहाँ खादीके लिए अच्छा प्रयत्न किया जा रहा है। मैं यह मानता हूँ कि गुरुकुल भी शिक्षा-क्षेत्रमें अच्छा योगदान कर रहा है। मैं उसकी उन्नतिकी कामना करता हूँ।

[गुजरातीसे]
नवजीवन, १७-१-१९२६

१४४. मथुरादास त्रिकमजीको लिखे पत्रका अंश

१७ जनवरी, १९२६

डाक्टर जितना कहता है, रोग उतना लम्बा चलेगा, ऐसा मेरा खयाल नहीं है। लेकिन तुम्हें जबतक पूरा आराम न आ जाये, तबतक वहाँ रहना चाहिए, इस बारेमें मुझे कोई शंका नहीं है।

[गुजरातीसे]
बापुनी प्रसादी

१४५. भाषण: विवाहोत्सवपर[1]

१८ जनवरी, १९२६

विवाहके अवसरपर हम दो काम करते हैं। आश्रमकी ओरसे वर-वधूको आशीर्वाद देते हैं तथा आश्रम अपने आदर्शोंसे प्रतिकूल प्रवृत्तिका सामना किस तरह करे, इस बातका विचार करते हैं।

अहिंसावादी बलप्रयोग नहीं कर सकता, इसलिए व्रतपालनमें जबर्दस्ती नहीं की जानी चाहिए और न की जा सकती है। मेरा और मेरे साथियोंका अनुभव है कि यदि समझमें आ जाये तो ब्रह्मचर्यका पालन करना सहल है। लेकिन उसे बुद्धिसे नहीं, हृदयसे समझना चाहिए। वह बुद्धिका विषय नहीं है। इसीसे शास्त्र इस बातपर जोर देते हैं कि शायद ही कोई मनुष्य मन, वचन और कर्मसे इसका पालन कर सकता है।

इसका पालन दूसरी तरहसे भी मुश्किल हो जाता है। हमारे प्रयोग संसारकी सामान्य प्रवृत्तिके विरुद्ध हैं। लोक-व्यवहारको निभाते हुए ब्रह्मचर्यका पालन करना

१. नाजुकलाल चौकसी और मोतीबहनके विवाहके अवसरपर।

और भी कठिन हो जाता है। जान पड़ता है कि शास्त्रोंने स्वादेन्द्रियपर संयम रखनेकी बातपर बहुत ज्यादा जोर नहीं दिया है। लेकिन जो मनुष्य इस संयमका पालन कर सकता है, उसके लिए ब्रह्मचर्य बिलकुल आसान हो जाता है। लेकिन स्वाद-संयम ब्रह्मचर्यके पालनसे भी अधिक कठिन है। मैंने कितने ही प्रयोग किये हैं और अब इस निश्चयपर आया हूँ। जो मनुष्य एक बारमें खानेकी गिनी हुई, कहिए चार वस्तुएँ ही लेता है अथवा सिर्फ दूध ही लेता है वह भी सफल नहीं होता। इसमें वह संयम तो करता ही है, परन्तु इन्द्रियोंको नहीं जीतता। ऐसा मनुष्य सारे रस एक वस्तुमें से ही प्राप्त करता है। इस बातका साक्षी मैं खुद हूँ। भोजनकी एक वस्तुमें से भी सब रस प्राप्त किये जा सकते हैं और हम जानते हैं, जीभमें से तो सारा दिन रस निःसृत होता रहता है। हम विवशता मानकर खायें, हमें रसका भान न रहे और खानेके बन्धनसे मुक्त होनेके लिए खायें तो ठीक है। किन्तु ऐसे बहुत ही कम लोग होंगे।

कितने लोग यहाँ इसका पालन करते होंगे, यह कौन जाने; लेकिन ब्रह्मचर्य पालन करनेका तो हमारा दावा अवश्य है। तब ब्रह्मचर्यके ठीक विपरीत विवाहोत्सव करना कितनी विचित्र बात है। यह धर्म है अथवा अधर्म, हम यह नहीं जानते। मैं अपनी ओरसे 'गीता'के इस वचनका कि क्या कर्म है और क्या अकर्म है, यह पाठ्यान्तर करता हूँ कि क्या धर्म है और क्या अधर्म है।

मेरी दृष्टिमें विवाह धर्म है। संसारकी प्रत्येक प्रवृत्ति संयमके लिए है। इसलिए जहाँ भोग अनिवार्य हो उसको वहीं भोगना चाहिए। जहाँ और लोग इसमें भोग देखते हैं वहाँ मेरी अन्तरात्मा गवाही देती है कि यह भोग नहीं है। मैं उस समय ईश्वरके सम्मुख याचना करता हूँ कि तू मुझे मुक्त कर। खाते समय मलत्यागकी बात याद आती है। विवाहका प्रसंग संयमकी खातिर है। विकारोंको वशमें न कर सकें तो उन्हें संयत करें अर्थात् उन्हें एक जगह सीमित कर दें। यह व्यभिचार करनेसे तो बहुत अच्छा है। विवाहकी प्रतिज्ञामें तीन बार यही कहा गया है 'नातिचरामि'। और फिर इस विवाहकी विधि भी नितान्त धार्मिक रखी गई है। इसमें न तो लालच है और न पैसेका लेना-देना, न साज-शृंगार है और न बारातका झगड़ा। इसलिए हमें इसमें से भी संयमका ही पाठ मिलता है। हमें इसमें से संयम ही खोजना चाहिए और उसपर अमल करना चाहिए। इसीसे हमने उसमें किसीको भी नहीं बुलाया। यह आश्रमका सौभाग्य है कि उसे ऐसे युवक और युवतीके विवाह करानेका अवसर मिला है जो सोच-विचारकर और संयम पालनेका निश्चय करके इस सूत्रमें बंधे हैं।

जो अन्य युवक और युवतियाँ विवाह कराना चाहें वे निस्संकोच हो कर करें; और आश्रमका कोई बन्धन है, ऐसा मनमें न सोचें।

[गुजरातीसे]

रावजीभाईकी हस्तलिखित डायरीसे।

सौजन्य : आर० एन० पटेल

१४६. भेंट : लैंजलॉथ और केलीसे

[२१ जनवरी, १९२६ से पूर्व]

श्रीमती लैंजलॉथ और श्रीमती केली गत सप्ताह गांधीजीसे मिलने आईं। वे अपने साथ "फेलोशिप ऑफ फेथ्स", "लीग ऑफ नेबर्स" तथा "यूनियन ऑफ ईस्ट एंड वेस्ट" का एक प्रस्ताव लाई थीं। उन्हें इन संस्थाओंकी ओरसे स्वयं जाकर गांधीजीको अमेरिका आनेके लिए निमन्त्रित करनेका कार्य सौंपा गया था। क्या उत्तर प्राप्त होगा सो तो स्पष्ट ही था; किन्तु गांधीजीके हाथमें उक्त प्रस्ताव देना उनका काम था। श्रीमती केलीने बहुत संकोचके साथ पूछा कि श्री गांधी, क्या आप अमेरिका नहीं पधारेंगे? हम लोगोंकी उत्कट इच्छा है कि आपका सन्देश हम आपके ही मुखसे सुनें? मैं जानती हूँ कि आप, वहाँ जो धन मिलेगा, उसका कोई खयाल नहीं करते, परन्तु मेरा निवेदन है कि आपके अमेरिका जानेसे आपके कार्योंके लिए यहाँ आर्थिक सहायता भेजनेमें हमें मदद मिल सकती है। वहाँ ऐसे अनेक निजी परिवार हैं जो आपका स्वागत करने तथा जबतक आप वहाँ ठहरेंगे, आपकी देखभाल करनेके लिए तैयार बैठे हैं। [गांधीजीने उत्तर दिया:]

मैं जानता हूँ कि यदि मैं कभी अमेरिका गया तो आप लोग मुझपर स्नेहकी वर्षा कर देंगे; किन्तु जैसा कि मैं पहले अन्य मित्रोंको बता चुका हूँ, मैं फिलहाल यहाँ अपना काम समाप्त किये बिना वहाँ जानेकी बात नहीं सोच सकता। मुझे अपने ही देशवासियोंके बीच काम करना है और अपने मार्गसे नहीं भटकना है। डा० वार्डने अभी कुछ ही दिन पहले मुझे लिखा था कि वे मेरे इस विचारसे सर्वथा सहमत हैं कि वर्तमान परिस्थितियोंमें मेरा वहाँ जाना अधिक उपयोगी न होगा। क्या आपके विचारमें उन्होंने ठीक नहीं कहा? मैं जानता हूँ कि मेरा भाषण सुननेके लिए मेरे चारों ओर भीड़ एकत्र होगी, मेरा सब जगह स्वागत होगा, किन्तु इसके अतिरिक्त मेरी अमेरिका-यात्राका और कोई परिणाम नहीं निकलेगा।

[श्रीमती केली:] श्री गांधी, क्या आप यह नहीं मानते कि हम लोग आपका सन्देश सुननेके लिए व्यग्र हैं? "फेलोशिप ऑफ फेथ्स" के तत्वावधानमें एकत्र होनेवाले जन-समूहके बारेमें विचार करें। उसमें कमसे-कम दस धर्मोंके प्रतिनिधि सम्मिलित हुए थे। और जब आपके बारेमें एक भाषण रेडियोपर प्रसारित किया गया तो उसे लाखों व्यक्तियोंने बड़े ध्यानसे सुना था। श्री जॉन हेन्स होम्स भी हृदयसे चाहते हैं कि आप वहाँ आयें। हमारा देश प्रगति कर रहा है; हम चाहते हैं कि प्रगतिकी गति और तेज हो।

मैं जानता हूँ, आपका देश बढ़ रहा है; किन्तु धीरे-धीरे तथा निरन्तर होती रहनेवाली वृद्धि उस वृद्धिसे अधिक टिकाऊ रहेगी जो धुआँधार भाषणों और व्याख्यान-

मालाओंके आयोजन और फुलझड़ीके समान चित्ताकर्षक परन्तु अस्थायी प्रभाव उत्पन्न करनेवाले कार्यक्रमोंसे होती है। फिलहाल जबतक मैं अपने ही देशके लोगों द्वारा उसे अपना लिये जानेकी आशा दृढ़ नहीं कर लेता, आप मेरे सन्देशका अध्ययन मेरे लेखोंके जरिये करें और उनमें सुझाये गये मार्गपर चलनेकी कोशिश करें। अभी तो मेरे समयके प्रत्येक क्षणका सदुपयोग यहीं हो रहा है; यदि मैं अपना काम छोड़कर अमेरिका जाऊँ तो वह अपनी अन्तरात्माके विरुद्ध आचरण करना होगा।

श्रीमती केली और श्रीमती लैंजलॉथ गांधीजीकी बातके औचित्यके विषयमें आश्वस्त हो गईं; ऐसा लगा। परन्तु विदा होनेके पहले उन्होंने एक दो प्रश्न और पूछे, "श्री गांधी! क्या यह सच है कि आप प्रतिक्रियावादी हैं? मैंने आपके अपने देशके कुछ लोगोंको ऐसा कहते सुना है।" [गांधीजीने पूछा :]

वे लोग 'प्रतिक्रियावादी'का क्या अर्थ लगाते हैं? यदि उनका आशय सविनय अवज्ञा करने और कानून तोड़नेवालेसे है, तो मैं इन वर्षोंमें यही करता रहा हूँ। परन्तु यदि उनका अभिप्राय यह है कि मैं अन्य सब तरीकोंको छोड़कर अहिंसाको अपना लेने और चरखेको अहिंसाका प्रतीक माननेके कारण प्रतिक्रियावादी कहा जाने योग्य हूँ तो फिर उनका कहना सही है।

श्रीमती केली इसपर कुछ नहीं कह सकीं; किन्तु उनके बादके प्रश्नोंसे भलीभाँति अनुमान लगाया जा सकता था कि उनके मनमें क्या है। हेनरी फोर्डने अपनी अनूठी आत्मकथामें जिन्हें वे 'प्रतिक्रियावादी' कहते हैं, एक प्रकारके ऐसे सुधारकोंका जिक्र किया है; उनका मतलब पुरानी बातोंकी पुनःप्रतिष्ठा करनेके प्रयत्नमें लगनेवाले सुधारकोंसे है। श्रीमती केलीका दूसरा प्रश्न था, "क्या यह सच है कि आप रेलवे, भापसे चलनेवाले जहाजों तथा आवागमनके अन्य तेज चलनेवाले साधनोंके खिलाफ हैं?"

यह सच है, और सच नहीं भी है। आपको वस्तुतः मेरी पुस्तक 'हिन्द स्वराज्य' पढ़नी चाहिए। उसमें मैंने इस सम्बन्धमें अपने विचार प्रकट किये हैं। यह बात इस अर्थमें सच है कि आदर्श परिस्थितियोंमें हमें इन चीजोंकी आवश्यकता नहीं होनी चाहिए; और इस अर्थमें सच नहीं है कि आजकल इन चीजोंसे अपनेको अलग रखना कोई सरल काम नहीं है। पर क्या संसार यातायातके इन तेज चलनेवाले साधनोंकी बदौलत कुछ अधिक सुखी हो पाया है? ये साधन मनुष्यकी आध्यात्मिक प्रगतिको किस प्रकार सुगम बनाते हैं? क्या ये अन्ततोगत्वा उसमें रुकावट नहीं डालते? क्या मनुष्यकी महत्वाकांक्षाओंकी कोई सीमा है? एक समय था जब हम एक घंटेमें कुछ मील चलकर ही सन्तुष्ट हो जाते थे। आज हम चाहते हैं कि हम एक घंटेमें सैकड़ों मीलकी यात्रा कर लें। एक दिन ऐसा आयेगा कि जब हम चाहेंगे कि हम अन्तरिक्षमें उड़ें। इसका परिणाम क्या होगा? अव्यवस्था। हम एक-दूसरेसे टकराने लगेंगे, हमारा दम घुटने लगेगा और हम नष्ट हो जायेंगे।

श्रीमती केलीने प्रश्न किया, "क्या जनता इन चीजोंको पसन्द नहीं करती?"

करती है, मैंने देखा है कि रविवार और छुट्टीके दिन लोग लगभग बदहवास हो जाते हैं। लन्दनमें हर सड़कपर मोटर गाड़ियोंकी अन्तहीन कतारें एक आम बात

हो गई है। यह सारी परेशानी और यह जानलेवा जल्दबाजी किसलिए? इसका उद्देश्य क्या है? मैं आपको अपने मनकी बात बताता हूँ कि यदि दैवयोगसे ये सबके-सब उपकरण एकाएक नष्ट हो जायें, तो मैं इनके लिए एक भी आँसू नहीं बहाऊँगा। मैं तो यही कहूँगा कि इस तूफानका आना ठीक हुआ; बखेड़ा मिटा, ऐसा ही होना चाहिए था।

श्रीमती केलीने पूछा: "किन्तु मान लीजिए कि आपको कलकत्ता जानेकी जरूरत पड़ गई है; आप रेलगाड़ीसे नहीं तो और किस प्रकार जायेंगे?"

निश्चय ही रेलगाड़ीसे। किन्तु मुझे कलकत्ता जानेकी आवश्यकता क्यों हो? जैसा कि मैंने कहा है, आदर्श परिस्थितियोंमें मुझे इतनी लम्बी दूरी तय करनेकी आवश्यकता ही नहीं हो सकती और बहुत ही कम अवधिमें तो कदापि नहीं। इसे मैं और स्पष्ट किये देता हूँ। आज अमेरिकासे अगर दो भले आदमी दया और प्यार-का सन्देश लेकर यहाँ आते हैं, तो उनके साथ अन्य दो सौ व्यक्ति अन्य कितनी तरहके उद्देश्योंको लेकर आते हैं। हमने तो यही देखा है कि उनमें से ज्यादातर लोग केवल शोषणकी और गुंजाइश ढूँढ़नेके लिए आते हैं। क्या इसे जल्दी पहुँचानेवाले वाहनोंका भारतके लिए लाभ मानें?

श्रीमती केलीने कहा: "हाँ, मैं समझी; किन्तु हम उस आदर्श परिस्थितिको कैसे वापस ला सकते हैं?"

सो सहज नहीं होगा। हम जिस गाड़ीमें बैठे हैं वह एक डाक गाड़ी है और भयानक गतिसे दौड़ रही है। हम उससे एकदम कूद कर बाहर नहीं आ सकते और कूद भी जायें तो उस एक ही छलाँगमें आदर्श स्थितितक पहुँचनेमें सफल नहीं हो सकते। हम भविष्यमें कभी किसी दिन वहाँ पहुँचनेकी आशा जरूर कर सकते हैं।

संक्षेपमें प्रतिक्रियावादिता, यदि वह वास्तवमें प्रतिक्रियावादिता हो, साधारण विवेककी ओर मुड़ना ही है। यह सभी समझ सकते हैं कि उस सामान्य विवेकको पुनः स्थापित करना एक स्वाभाविक व्यवस्थाकी स्थापना करना ही है। आज जो विद्यमान है यह अस्वाभाविक व्यवस्था है। संक्षेपमें कहा जाये तो इस प्रतिक्रिया-वादिताका अर्थ किसी वस्तुको उलट-पुलट या विकृत करना नहीं है; बल्कि उसे उचित स्थानपर पहुँचा देना है।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २१-१-१९२६

१४७. अस्पृश्यताकी हिमायत

त्रावणकोरसे एक महाशय लिखते हैं:

जाना पड़ता है आपको ब्राह्मणों और उनके आचार अथवा रीति-रिवाजोंके सम्बन्धमें कुछ गलतफहमी हो गई है। आप अहिंसाकी प्रशंसा करते हैं, लेकिन केवल हम ब्राह्मणोंकी ही एक ऐसी जाति है जो उसे धर्मकार्य समझकर उसका पालन करती है। यदि हमारे समाजका कोई व्यक्ति उसका भंग करता है तो हम उसे जातिसे बहिष्कृत समझते हैं। जो लोग मांस खाते हैं या मांसके लिए वध करते हैं उनके सहवासमें जाना ही हम लोगोंकी दृष्टिमें पाप है। कसाई, मछुवे, ताड़ी बनानेवाले, मांस खानेवाले, शराब पीनेवाले और धर्मके विरुद्ध चलनेवाले मनुष्यके नजदीक आने तकसे हमारा नैतिक और भौतिक वायुमण्डल भ्रष्ट हो जाता है। हमारे तप और धार्मिकताकी हानि होती है और पवित्रताका मंगलकारी प्रभाव नष्ट हो जाता है।

इसे हम लोग भ्रष्टता मानते हैं और इसलिए हमें तुरन्त स्नान करना पड़ता है। यद्यपि समय और भाग्यने कई मर्तबा पलटा खाया है; लेकिन ऐसे नियमोंकी बदौलत ही ब्राह्मण लोग अबतक अपने परंपरागत गुणोंकी रक्षा कर सके हैं। यदि इस प्रकारसे संयमको दूर कर दिया जायेगा और ब्राह्मणोंको दूसरोंसे स्वतन्त्रतापूर्वक मिलने-जुलनेको कहा जायेगा तो धीरे-धीरे उनका इतना अधःपतन होगा कि वे नीचोंसे भी नीच, शूद्रोंके समान बन जायेंगे। छुपे तौरसे वे दुराचार करेंगे, पवित्र होनेका ढोंग भी करेंगे और साथ-ही-साथ संयमकी मर्यादाको तोड़नेका भी प्रयत्न करेंगे, क्योंकि इस मर्यादाके कारण अपने पापोंको छिपानेमें उन्हें बड़ी कठिनाई मालूम होती है। हम जानते ही हैं कि आज जो ब्राह्मण नाममात्रके ब्राह्मण रहे गये हैं वे ऐसे ही हैं और वे लोग अपने गिरे हुए स्तरपर दूसरोंको खींच ले जानेके लिए भगीरथ प्रयत्न कर रहे हैं।

उस स्थानमें जहाँ लोगोंको उनकी आदतों और उनके सदसद् विवेकके अनुसार (रंग, अधिकार और धनके भेदके अनुसार नहीं जैसा कि पश्चिममें किया जा रहा है, और जो अनुचित है) वर्गीकरण करके विभिन्न जातियोंमें बाँटा जाता है तथा उनके धन्धे, उनकी सामाजिक स्थिति और घरेलू सुविधाओं-को देखकर और उनकी स्पष्ट मर्यादा बांधकर उन्हें जुदा-जुदा केन्द्रोंमें रहनेके लिए स्थान दिया जाता है, जैसा कि हमारी मातृभूमिमें किया जाता है, तब वहाँ यह सम्भव नहीं होता कि कोई मनुष्य अपनी आदतें बदल देनेपर लोगोंकी निगाहसे बहुत दिनोंतक बचा रह सके।

लेकिन इसके विपरीत यदि कोई व्यक्ति कसाई, मांस खानेवाले और शराबखोरोंमें जाकर रहे तो यह सम्भव नहीं कि वह उनमें रह भी सके और अपने विशिष्ट गुणोंकी रक्षा भी कर सके। स्वभावतः हम लोग अपनी रुचिके अनुकूल ही वातावरण ढूँढ़ते हैं। यही कारण है कि ब्राह्मणके रहनेकी जगह, उसका पास-पड़ोस भौतिक, नैतिक और धार्मिक रूपसे पवित्र बनाये रखना और कसाइयों, मछुओं और ताड़ी बनानेवालोंके अनधिकार प्रवेशसे रक्षित रहना जरूरी है।

भारतवर्षमें जाति और उनके धन्धे अविच्छिन्न भावसे जुड़े हुए हैं, इसलिए स्वभावतः जिस जातिका वह मनुष्य है, उसका धन्धा भी वही मान लिया जाना स्वाभाविक है।

यही कारण है कि हमें शास्त्रों द्वारा अस्पृश्यता और अनुपगम्यताकी मर्यादा माननेका आदेश दिया गया है। जैसा ऊपर कहा जा चुका है इससे हमारी जातिकी पवित्रताकी रक्षा ही नहीं होती है बल्कि मर्यादा भंग करनेवालोंको जातिसे बहिष्कृत होनेकी सामाजिक और धार्मिक सीधी सजा मिल जाती है और इसलिए प्रकारान्तरसे यदि वे हमारे साथ सब प्रकारका व्यवहार रखना चाहते हों तो यह व्यवस्था उन्हें अपनी बुरी आदतोंको छोड़नेके लिए मजबूर भी करती है।

इसलिए यदि वे लोग अनुपगम्यताके बन्धनसे कुछ ही वर्षोंमें मुक्त होना चाहते हैं तो आप उन्हें सार्वजनिक तौरसे यह उपदेश दें कि वे अपने दूषित कार्योंको त्याग दें और कताई-बुनाईका काम करने लगें। इसके साथ ही साथ वे आवश्यक धार्मिक कृत्य जैसे नहाना, उपवास और प्रार्थना इत्यादि भी किया करें। उन्हें उन लोगोंके साथ मिलना-जुलना बन्द कर देना चाहिए जिन लोगोंने अपनी पुरानी आदतोंका त्याग नहीं किया है। शास्त्रोंने यही मार्ग दिखाया है। चूँकि किसी व्यक्तिके खानगी कुकर्मोंको या उसके सत्कर्मोंको जाननेका कोई मार्ग नहीं है अतः यह कहना निरर्थक है कि अमुक व्यक्तिका मन पवित्र है और अमुकका मन मैला है। मनुष्यकी सामाजिक आदतोंसे ही हम उसके खानगी जीवनकी परीक्षा कर सकते हैं। इसलिए जो व्यक्ति खुले तौरसे हमारी-आपकी मातृभूमिके अहिंसा धर्मको अंगीकार नहीं कर सकता है या जो कमसे-कम मछली मारना, अन्य पशुओंका वध करना तथा मांस खाना नहीं छोड़ सकता है, वह इस योग्य नहीं माना जा सकता कि वह अनुपगम्यताकी परम्परासे मुक्त किया जाये। सच बात तो यह है कि अस्पृश्यता और अनुपगम्यता अहिंसा धर्मकी रक्षा और उसके प्रचारका एक व्यावहारिक साधन होनेके अतिरिक्त और कुछ नहीं है।

लेखकने जिस प्रश्नको उठाया है उसपर पहले कई मर्तबा विचार किया जा चुका है; फिर भी उनकी दलीलोंके मिथ्याभासको दूर करना आवश्यक मालूम होता है। पहली बात तो यह है कि ब्राह्मणोंकी तरफसे जो यह दावा किया जा रहा है कि वे निरामिषभोजी हैं, सोलहों आने सच नहीं है। यह केवल दक्षिणके ब्राह्मणोंके सम्बन्धमें ही ठीक है। दूसरी जगहोंमें तो जैसे बंगालमें वे खुलेआम मछली खाते हैं; कश्मीर इत्यादि स्थानोंमें तो मांस भी खाते हैं। और दक्षिणमें भी मांस और मछली खानेवाले सभी लोग अनुपगम्य नहीं है। और जो 'अनुपगम्य लोग' अत्यन्त पवित्र हैं वे भी बहिष्कृत हैं, क्योंकि उनका जन्म उस कुलमें हुआ है जो अन्यायपूर्वक 'अस्पृश्य' और 'अनुपगम्य' गिना जाता है। क्या ब्राह्मण किसी आमिषभोजी अब्राह्मण अधिकारीको स्पर्श नहीं करते? क्या वे मांस खानेवाले हिन्दू राजाओंका आदर नहीं करते?

पत्रके लिखनेवाले व्यक्ति जैसे शिक्षित मनुष्योंको, एक ऐसे रिवाज जिसका किसी भी प्रकारसे पक्ष नहीं लिया जा सकता है और अब जिसकी जड़ें हिल चुकी हैं, विवेकहीन जोशमें आकर अपनी दलीलोंके स्पष्ट अर्थका विचार किये बिना ही, समर्थन करते हुए देखकर मुझे बड़ा ही आश्चर्य और दुःख होता है। लेखक महोदय मांस खानेमें निहित छोटी-सी हिंसाकी बातको इतना तूल दे रहे हैं; परन्तु एक काल्पनिक शुचिताकी रक्षाके लिए करोड़ों भाइयोंको जानबूझकर दबाये रखनेकी कई गुनी हिंसाको वे भूल ही जाते हैं। मेरा उनसे यह निवेदन है कि जिस निरामिषताकी रक्षाके लिए दूसरे मनुष्योंको अपनेसे नीचा मानकर उनका बहिष्कार करना पड़ता है, वह संग्रह करने योग्य नहीं है। यदि उसकी रक्षा इस प्रकार की जायेगी तो वह गर्मीमें उगने-वाली घासके समान ठंडी हवाका झोंका लगते ही नष्ट हो जायेगी। निरामिषताको मैं बड़ा महत्व देता हूँ। मुझे पूरा विश्वास है कि ब्राह्मणोंने निरामिषता और स्वयं निर्मित संयमके प्रतिबन्धोंके पालनसे आध्यात्मिक लाभ उठाया है। लेकिन जब वे अति उन्नत अवस्थामें थे उस समय उन्हें अपनी पवित्रताकी रक्षा करनेके लिए वाह्य मददकी आवश्यकता नहीं थी। कोई भी गुण हो, जब वह बाह्य प्रभावोंका सामना करनेमें असमर्थ हो जाता है, तब उसकी जीवनी शक्ति नष्ट हो जाती है।

और फिर लेखक जिस प्रकार की रक्षाका जिक्र करते हैं वैसी रक्षाकी ब्राह्मणोंके द्वारा मांग पेश करनेकी घड़ी बीत चुकी है, क्योंकि अब सद्भाग्यसे ऐसे ब्राह्मणोंकी तादाद बढ़ रही है जो उस प्रकार रक्षाकी बातको घृणाकी दृष्टिसे देखते हैं। इतना ही नहीं; जो सताये जानेकी जोखिम उठा करके भी इसमें सुधार करनेकी हलचलके नेता बने हुए हैं। इसीसे सुधारके अतिशीघ्र प्रगति करनेकी जबर्दस्त आशा बंधती है।

लेखक मुझसे यह चाहते हैं कि मैं दलित वर्गोंके लोगोंको पवित्र बननेका उप-देश दूँ। मालूम होता है कि वे 'यंग इंडिया' नहीं पढ़ते हैं; अन्यथा वे यह अवश्य जान सकते थे कि उन्हें ऐसा उपदेश देनेका एक भी मौका मैं हाथसे नहीं जाने देता। मैं उन्हें यह भी बताऊँ कि इसका सन्तोषजनक उत्तर भी मिल रहा है। मैं लेखकको उन सुधारकोंके वर्गमें शामिल होनेके लिए आमन्त्रित करना चाहता हूँ जो

दीर्घकालसे दुःख उठाते आनेवाले लोगोंमें जाकर, उनके सरपरस्त बनकर नहीं, बल्कि उनके सच्चे हितैषी बनकर काम कर रहे हैं।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २१-१-१९२६

१४८. टिप्पणियाँ

बड़े दादाका स्वर्गवास

इस बातपर विश्वास करना कि द्विजेन्द्रनाथ ठाकुर अब नहीं रहे बड़ा ही कठिन है। शान्तिनिकेतनके तारसे यह शोकजनक समाचार मिला है कि बड़े दादाका, जो द्विजेन्द्रनाथ ठाकुरके नामसे प्रख्यात थे, देहावसान हो गया है।

उनकी उम्र ९० वर्षके लगभग थी; फिर भी उनमें ऐसा आनन्द और उत्साह झलकता था कि उनके पास जानेवालेको कभी यह महसूस ही नहीं होता था कि उनके ऐहिक जीवनके अब थोड़े ही दिन शेष हैं। प्रतिभासंपन्न व्यक्तियोंके उस कुटुम्बमें बड़े दादाका एक विशेष स्थान था। वे विद्वान् थे, संस्कृत और अंग्रेजी दोनों भाषाओंका उनका ज्ञान बढ़ा-चढ़ा था। वे बड़े धार्मिक मनुष्य थे और उनका हृदय विशाल था। उपनिषदोंके प्रति उनकी अटल श्रद्धा थी, परन्तु वे संसारकी दूसरी धर्मपुस्तकोंसे ज्ञान प्राप्त करनेको सदा तैयार रहते थे। उन्हें अपने देशके प्रति गहरा अनुराग था, फिर भी उनका देशप्रेम अन्य देशोंके प्रति प्रेमभाव रखनेमें बाधक न था। वे अहिंसात्मक असहयोगके आध्यात्मिक रहस्यको समझते थे, लेकिन वे उसके राजनैतिक महत्त्वको न समझते हों सो बात भी न थी। वे चरखेमें हृदयसे विश्वास रखते थे और इस बड़ी उम्रमें आकर भी उन्होंने खादी पहनना शुरू कर दिया था। आधुनिक बातोंको वे युवकों-जैसे उत्साहके साथ नियमित रूपसे जाननेके लिए उत्सुक रहा करते थे। बड़े दादाकी मृत्युसे हमारे बीचसे एक महान् साधु, तत्त्वज्ञानी और देशभक्त उठ गया है। मैं 'कवि' और शान्तिनिकेतनवासियोंके प्रति अपनी समवेदना प्रकट करता हूँ।

अखिल भारतीय देशबन्धु स्मारक

श्रीयुत मणिलाल कोठारी, अखिल भारतीय देशबन्धु स्मारककी ओरसे अथवा दूसरे शब्दोंमें खादी आन्दोलनके निमित्त धन-संग्रह करनेके उद्देश्यसे इस सप्ताह रंगून पहुँच रहे हैं। वह काठियावाड़ियोंसे काठियावाड़ परिषद्के बजटके लिए भी जो मुख्यतया खादी कार्य ही है, धन-संग्रह करेंगे। जो काठियावाड़ी केवल काठियावाड़में ही खादी कार्य करनेके लिए देशबन्धुनिधिमें धन देना चाहते हैं, उन्हें अपने चन्देमें इसका स्पष्ट उल्लेख कर देना चाहिए। लेकिन मुझे आशा है कि कोठारीजीकी अपीलपर उन लोगोंसे काफी धन मिलेगा जो उस महान् देशभक्तकी स्मृतिके प्रति श्रद्धा रखते हैं और खादीमें विश्वास करते हैं।

बड़ोदामें शिक्षाकार्य

बड़ोदाके राजाके अपने राज्यमें अधिक न रहने और रियासतमें थोड़ा-थोड़ा सुधार करनेकी नीतिके सम्बन्धमें चाहे कुछ भी क्यों न कहा जाये, परन्तु उस रियासतमें शिक्षाकी जो प्रगति हुई है उसके बारेमें कुछ भी सन्देह नहीं हो सकता है। महाराजा साहबके स्वर्ण जयन्ती उत्सवके अवसरपर रियासतके शिक्षा विभाग द्वारा जो पुस्तिका प्रकाशित की गई है, उससे यह बात स्पष्ट होती है। आजसे ५० साल पहले वहाँ केवल २०० प्राथमिक शालाएँ थीं और उनमें केवल ८०० लड़के पढ़ते थे। आज वहाँ ७८ अंग्रेजी स्कूल और एक कालेज भी है। उनमें कोई १४,४२५ विद्यार्थी पढ़ते हैं, जिसमें ३४५ लड़कियाँ भी हैं। देशी भाषाके २९१६ स्कूल हैं। उनमें २,१७,१३८ विद्यार्थी पढ़ते हैं जिनमें ६७,३८४ लड़कियाँ हैं। विद्यालयोंकी इस संख्यामें दलितवर्गोंके २१९ स्कूल भी शामिल हैं। १२४ उर्दूके स्कूल हैं जिनमें से २६ लड़कियोंके लिए हैं। इनमें ६,६९३ विद्यार्थी शिक्षा पा रहे हैं। यह सब निःसन्देह प्रशंसनीय है। लेकिन यह प्रश्न उठता है कि इस शिक्षासे लोगोंकी माँग पूरी होती है या नहीं। हिन्दुस्तानके दूसरे अंचलोंकी तरह यहाँ भी किसानोंकी ही बस्ती अधिक है। क्या इससे किसानोंके लड़के अधिक अच्छे किसान बनते हैं? क्या उन्होंने शिक्षा पाकर कुछ नैतिक और भौतिक उन्नति की है? परिणाम जाननेके लिए ५० सालका समय काफी लम्बा है। लेकिन मेरा अनुमान है कि इसका सन्तोषजनक उत्तर न मिल सकेगा। बड़ोदाके किसान दूसरे विभागोंके किसानोंकी अपेक्षा न अधिक सुखी हैं और न उनसे अच्छे ही। दुष्कालके समयमें दूसरी जगहोंके किसानोंकी तरह वे भी लाचार हो जाते हैं। उनके गाँवोंकी स्वच्छता-सम्बन्धी हालत भी दूसरे गाँवोंकी तरह वैसी ही है जैसी सभ्यताके प्रारम्भिक कालमें हुआ करती थी। वे अपना कपड़ा आप बना लेनेके महत्त्वको भी नहीं समझते। बड़ोदा राज्यकी कुछ जमीन तो बड़ी ही उपजाऊ है। उसे रुई बाहर भेजनेकी आवश्यकता नहीं होनी चाहिए। यह राज्य आसानीसे स्वावलम्बी राज्य बन सकता है और उसके किसान खुशहाल हो सकते हैं। लेकिन उसमें तो विदेशी कपड़ा इस्तेमाल किया जा रहा है; जो उसके दारिद्रय और पतनका स्पष्ट चिह्न है। वहाँ शराबखोरी भी कुछ कम नहीं है। शायद इस बातमें तो वह दूसरे क्षेत्रोंसे भी अधिक गिरा हुआ है। ब्रिटिश राज्यकी तरह बड़ोदा राज्यकी शिक्षा भी शराबकी आमदनीसे कलंकित है। कालीपरज जातिके लोग शिक्षा जरूर पा रहे हैं परन्तु शराबखोरीकी लतसे उनका सत्यानाश हो रहा है। सच बात तो यह है कि बड़ोदाके शिक्षाकार्यको ब्रिटिश हिन्दुस्तानकी शिक्षा पद्धतिका अनुकरण-मात्र समझना चाहिए। उच्च शिक्षा प्राप्त कर लेनेपर हम अपने देशमें ही विदेशी बन जाते हैं और जो प्राथमिक शिक्षा मिलती है उसका जीवनमें कोई उपयोग न होनेके कारण वह व्यर्थ ही चली जाती है। उसमें न मौलिकता है और न स्वाभाविकता ही। यदि वह देशीय हो तो उसे मौलिक होनेकी जरूरत ही न पड़े।

प्रशंसनीय भावना

एक सज्जनने जो महाराजा नाटोरकी प्राणलेवा बीमारीके समय उनके पास थे; उनके अन्तिम समयके दृश्यका निम्नलिखित वर्णन भेजा है:

> **महारानीजी बड़े ही साहसके साथ यह संकट-काल गुजार रही हैं। उनके दर्शन-मात्रसे ही बड़ा लाभ होता है। यह अल्पवयस्क महिला बड़ी बुद्धिमती और मर्यादापूर्ण स्त्री हैं। महाराजाकी मृत्युके चार दिन पहलेसे वे उनके पास जा बैठीं और फिर वहाँसे क्षणभरको भी नहीं हटीं। वे न खाती थीं, न सोती ही थीं; महाराजाकी सेवा-शुश्रूषामें ही लगी रहती थीं; सब काम अपने ही हाथों करती थीं। अन्तिम क्षणोंमें वे उनके कानोंमें भजन गा-गाकर भी सुनाती थीं और अन्तिम साँस निकल जानेपर उन्होंने उनकी आँखें भी बन्द कीं। वे न खुद रोती हैं, न दूसरोंको रोने देती हैं। वे छायाकी तरह घरमें इधरसे उधर फिरती रहती हैं और अपना सब कर्त्तव्य निबाहती रहती हैं। ऐसा मर्यादावान् शोक-सन्तप्त परिवार मैंने कभी नहीं देखा था।**

ऐसी भक्ति, ऐसी मर्यादा और ऐसा त्याग अनुकरणीय है। शास्त्रोंमें व्यक्तिके मरणोपरान्त रोना वर्जित है। फिर भी हिन्दू घरोंमें बहुत-कुछ रोना-धोना हुआ करता है। बहुतसे स्थानोंमें तो मृत्युके पश्चात् परिवारवालोंका रोना एक रिवाज ही हो गया है और जहाँ रुलाई नहीं आती वहाँ भी रोनेका दिखावा किया जाता है। यह रिवाज असंस्कृत और अधार्मिक है और बन्द कर दिया जाना चाहिए। जिन्हें ईश्वरमें श्रद्धा है उन्हें मानना चाहिए कि मृत्यु संसारसे मुक्ति है; उन्हें उसका स्वागत करना चाहिए। जवानी और वृद्धावस्थाके समान ही यह परिवर्तन भी निश्चित ही है और इसलिए जैसे वृद्धावस्थाके लिए कोई शोक नहीं करता है उसी प्रकार मृत्युपर भी किसीको शोक न करना चाहिए।

अब भी लड़ रहे हैं

नेलौरकी खिलाफत समितिके मन्त्रीने तार द्वारा सूचित किया है:

> **यहाँ हिन्दुओं और मुसलमानोंके बीच मनमुटाव और पारस्परिक वैमनस्य है। प्रतिक्रियावादी हिन्दू मामूलके खिलाफ मस्जिदोंके सामनेसे बाजा बजाते हुए जुलूस निकाल रहे हैं और मुसलमानोंने गायकी कुरबानी करनेका निर्णय किया है, मामला गम्भीर है। कृपया बीच-बचाव करें।**

यद्यपि मैं इस बातको अनेक बार प्रकट कर चुका हूँ कि इन झगड़ा-फसाद करनेवाले लोगोंपर मेरी बातोंका कोई असर नहीं पड़ता है। मुझे बीच-बचाव करनेके लिए कहना मेरे अभिमानका पोषण करना है। मालूम होता है कि आजकल उनका सितारा बुलन्द है। लेकिन शान्तिपूर्ण वातावरण उत्पन्न करनेकी दिशामें मेरा अभिमान कुछ भी नहीं कर सकता। मैं तो इन दोनों जातिके लोगोंको पंच निर्णय प्राप्त

करनेके सभ्य और बुद्धियुक्त मार्गको ही सुझा सकता हूँ। लेकिन यदि उन्हें यह मार्ग पसन्द नहीं है तो लाठीका कानून ही सुलभ है।

[अंग्रेज़ीसे]

यंग इंडिया, २१-१-१९२६

१४९. अनजानेमें चूक

बिशनपुरके एक पत्र-लेखकने मुझे इस बातकी याद दिलाई है कि मैंने अपनी आदतके विपरीत, 'यंग इंडिया' में कुछ दिन पहले लिखी गई बिहार सम्बन्धी अपनी टिप्पणियोंमें धर्मपुर गांधी विद्यालयके शिलान्यासका जिक्र नहीं किया था। मैं उस भूलका सुधार किये ले रहा हूँ। संस्थापकोंके इस सौजन्यको मैं भूल नहीं सकता कि वे मेरे इस दुर्बल शरीरका ध्यान रखते हुए, आधारशिला रखनेके लिए मुझे मुकाम पर जो कि चार-पाँच मील दूर था नहीं ले गये। धर्मपुरसे मेरे छू लेने भरके लिए एक ईंट लाकर ही उन्होंने सन्तोष मान लिया था। मुझसे कहा गया था कि आत्म-त्यागी स्वयंसेवक इस काममें निष्ठापूर्वक लगे हैं। मैं इसकी चर्चा करनेसे चूक गया। एक ही दिनमें सारी घटनाएँ हुई थीं और एक ही प्रकारकी सार्वजनिक बातें नित्य करनी पड़ती थीं। प्रति सप्ताह लिखी जानेवाली मेरी टिप्पणियोंमें अनेक घटनाओंके उल्लेखका छूट जाना स्वाभाविक है। यद्यपि वे घटनाएँ स्वयं अपनेमें अथवा सम्बन्धित व्यक्तियोंके लिए काफी महत्त्वपूर्ण होती हैं। मुझे आशा है कि विद्यालय अबतक पूरा बन चुका होगा और अच्छी तरह चल रहा होगा।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २१-१-१९२६

१५०. वक्तव्य: गांधी-स्मट्स समझौतेपर

[२१ जनवरी, १९२६][1]

श्री गांधीने १९१४ के गांधी-स्मट्स समझौतेके बारेमें निम्नलिखित वक्तव्य दिया है:

श्री एन्ड्रयूजने एक तार भेजकर मुझसे गांधी-स्मट्स समझौतेके बारेमें अपना एक वक्तव्य देनेको कहा है; क्योंकि उसे लेकर दक्षिण आफ्रिकामें बहस उठ खड़ी हुई है। इस बीच दक्षिण आफ्रिकाके दो पादरियोंने मेरे तर्कका समर्थन किया है।

याद रखना चाहिए कि समझौता अभिलेखोंमें सुरक्षित है। इस समझौतेके फलस्वरूप उस संघर्षकी समाप्ति हुई थी जो लगभग ८ वर्षोंतक चलता रहा था।

१. एसोसिएटेड प्रेस ऑफ इंडियाने बम्बईसे यह वक्तव्य इसी तारीखको समाचारपत्रोंको प्रकाशनार्थ भेजा था।

इसके अन्तर्गत बहुत-सी ऐसी समस्याओंसे सम्बन्धित व्यवस्थाएँ और इकरारनामे भी आते हैं जो इसके दौरान सामने आये थे। यह भी याद रखना चाहिए कि भारत सरकार इस समझौतेसे असम्बद्ध नहीं थी। भारतीयोंको राहत पहुँचानेवाला कानून लगभग उन्हीं दिनों बनाया गया था और उसे भारत सरकारने कार्यान्वित किया था। जैसा कि इस प्रकारके सभी इकरारनामोंमें सामान्यतया हुआ करता है, सम्बन्धित पक्षोंके बीच हुए पत्र-व्यवहारको पहले ही देख लिया जाता है और उसका अनुमोदन किया जाता है। इसी प्रकार यह पत्रव्यवहार भी दोनों पक्षोंने देख लिया था और दोनोंने उसे स्वीकृत भी कर दिया था। मैंने जो पत्र जनरल स्मट्स-को लिखा था उसमें उन निर्योग्यताओंका उल्लेख है जो राहत अधिनियमके अन्तर्गत नहीं आतीं। उस पत्रमें आशा व्यक्त की गई थी कि जिन निर्योग्यताओंको उस समय दूर नहीं किया गया था उन्हें आगे चलकर दूर कर दिया जायेगा। यह मान लेना ठीक न होगा कि ८ वर्षोंतक घोर कष्ट उठाते रहनेके बाद भारतीय प्रवासी किसी ऐसे समझौतेसे सन्तुष्ट हो सकते थे जो उनकी स्थितिमें सुधार करनेके बजाय उसे इस हदतक बिगाड़ दे कि उससे अन्तमें भारतीयोंका उन्मूलन ही हो जाये।

किन्तु मैं इस मुद्देके बारेमें और अधिक नहीं लिखूँगा। भारतीय अपना सुझाव सामने रख चुके हैं। कांग्रेसके उस सुझावके अनुसार यह मुद्दा पंच निर्णयके लिए सौंप दिया जाना चाहिए। भारत सरकारसे निवेदन है कि वह समझौतेके अर्थके बारेमें जाँच-पड़ताल करके एक निश्चित निष्कर्षपर पहुँचे और संघ सरकारसे पंच निर्णयका सिद्धान्त स्वीकार कर लेनेको कहे।

दक्षिण आफ्रिकाकी संघ सरकारके मन्त्रियोंका अपने ही द्वारा किये गये इकरारों और व्यवस्थाओंको अस्वीकार करनेका यह पहला ही अवसर नहीं है। वे ३ पौंडी करके सम्बन्धमें गोखलेजीके साथ किये गये इकरारसे भी नट गये थे। इसे फिर सम्मानका प्रश्न मानकर अनाक्रामक प्रतिरोध आन्दोलनके उद्देश्योंमें शामिल करना पड़ा था और तब कहीं अन्तमें संघ सरकारने इसे रद किया था। स्पष्ट है कि फिर वही पुरानी चाल चली गई है। १९१४ के समझौतेके यथावत् पालनके सम्बन्धमें दृढ़ता भारतकी अपनी प्रतिष्ठाका प्रश्न है।

[अंग्रेजीसे]

हिन्दू, २२-१-१९२६

१५१. अपील : त्रावणकोर सरकारसे

साबरमती
२१ जनवरी, १९२६

त्रावणकोर सरकारने तथाकथित अछूतों द्वारा मन्दिरोंके आसपासकी सार्वजनिक सड़कोंके उपयोगके बारेमें जो कदम उठाया है उसके लिए वह बधाईकी पात्र है। किन्तु यह तो कदापि नहीं कहा जा सकता कि वह इससे ज्यादा कुछ नहीं कर सकती थी। मैं तो यह आशा किये हूँ कि सरकार तथा लोकप्रिय विधान सभा साहसके साथ इस दिशामें सभी यथोचित कदम उठायेगी और सभी सार्वजनिक संस्थाओंको जिनमें मन्दिर भी शामिल हैं अछूतोंके लिए उन्हीं शर्तोंपर खोल दिये जानेका आग्रह करेगी जिन शर्तोंपर उनमें अन्य लोग प्रवेश करते हैं।

मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]
हिन्दू, ६-३-१९२६

१५२. पत्र : जवाहरलाल नेहरूको

२१ जनवरी, १९२६

प्रिय जवाहर,

मुझे खुशी है कि तुम कमलाको अपने साथ ले जा रहे हो। यदि तुम दोनों न आ सको तो जानेसे पहले कमसे-कम तुम्हें तो यहाँ आना ही चाहिए। देशबन्धु स्मारकके बारेमें जमनालालजीके नाम तुम्हारा पत्र काफी होगा। अ० भा० चरखा संघके मन्त्री तो तुम ही रहोगे; परन्तु यदि किसी सहायककी आवश्यकता पड़ी तो शंकरलालके प्राप्त हो सकनेकी आशा है। नक्शा तैयार न कर पानेके लिए मैं तुम्हें दोष नहीं दे सकता। तुमने अपना समय व्यर्थ नहीं गँवाया है। तुम्हारे पास यूरोपकी सर्दीके लायक कपड़े होने चाहिए।

तुम्हारा,
बापू

[अंग्रेजीसे]
ए बंच ऑफ ओल्ड लेटर्स

१५३. मथुरादास त्रिकमजीको लिखे पत्रका अंश

२१ जनवरी, १९२६

तुम्हें अच्छी लगनेवाली दो बातें लिखना तो मैं भूल ही गया। एक, बाने कहा कि वह तुम्हारी देखभाल करनेके लिए खुशीसे आयेगी। दूसरे, उसने कल रात कहा, "मथुरादासको बुलाकर यहाँ क्यों नहीं रखते?" मैंने कहा, "यहाँकी गरमी उससे सहन नहीं होगी।"

[गुजरातीसे]

बापुनी प्रसादी

१५४. पत्र: जमनालाल बजाजको

गुरुवार [२१ जनवरी, १९२६][१]

चि० जमनालाल,

तुम्हारा पत्र मैंने मंगलवारको पढ़ा; इसलिए चि० रामेश्वरप्रसादको बुला नहीं सका; लेकिन कल वे और केशवदासजी आये थे। मैं उन्हें अपने साथ घूमने ले गया। मैंने रामेश्वरप्रसादको विद्यार्थियोंकी प्रार्थनामें भाग लेनेके लिए आमन्त्रित किया। उसने आजसे आना शुरू भी कर दिया है। इस समय मैं उन्हें 'भक्तराजनी यात्रा'[२] सुनाता हूँ।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती पत्र (जी० एन० २८५६) की फोटो-नकलसे।

१५५. मथुरादास त्रिकमजीको लिखे पत्रका अंश

२२ जनवरी, १९२६

तारामती और दिलीपके आनेसे तुम्हारे साथियोंकी संख्या बढ़ी। दिलीपकी उपस्थिति तो तुम्हारे लिए स्वास्थ्यवर्धक सिद्ध होनी चाहिए।

[गुजरातीसे]

बापुनी प्रसादी

१. डाककी मुहरसे।

२. **पिलग्रिम्स प्रोग्रेस**का गुजराती अनुवाद।

१५६. चरखा बनाम मिल

एक हिन्दी अध्यापकने एक लम्बा पत्र लिखा है। यह पत्र गुजरातीके पाठकोंके लिए भी विचारणीय है, अतः मैं उसे यहाँ सार रूपमें देता हूँ :

> क्या भारतको स्वराज्य मिलनेके बाद भी आप अपनी चरखेकी प्रवृत्ति जारी रखेंगे? क्या उस वक्त देशी कारखाने अपने-आप न बढ़ जायेंगे? और तब उनका माल इतना सस्ता पड़नेसे चरखेकी प्रवृत्तिको धक्का नहीं पहुँचेगा? और अन्तमें विलायती कपड़ेका बहिष्कार मिलों ही से होगा; इसलिए आप जो चरखेके द्वारा गाँवोंकी भूख मिटाना चाहते हैं, क्या वह उद्देश्य ज्योंका-त्यों कल्पनामें ही न रह जायेगा? अथवा स्वराज्यमें उनके दारिद्रयके मिटानेका कोई दूसरा उपाय ढूंढ़ लिया जायेगा? यदि ऐसा ही होनेकी सम्भावना हो तो आप चरखेकी प्रवृत्तिके पीछे जो विराट् प्रयत्न कर रहे हैं, उस प्रयत्नको अभीसे मिलोंकी संख्या बढ़ाकर विदेशी वस्त्रोंके बहिष्कारको सफल करनेमें क्यों न लगायें? यदि आप यह मानते हों कि स्वराज्य मिलनेके बाद चरखेकी प्रवृत्ति बन्द ही हो जानेवाली है, और यह प्रवृत्ति दस पन्द्रह बरस तो चलनी ही चाहिए, तो फिर उतने समयमें नई मिलें खड़ी करके क्या एकदम बहिष्कार नहीं किया जा सकता?

इस दलीलका उत्तर 'नवजीवन' में कभी-न-कभी तो आ ही गया है, फिर भी यदि एक ऐसे विद्वान् सज्जनको भी जो 'यंग इंडिया' और 'नवजीवन' के नियमित पाठक हैं, आज भी शंका उत्पन्न होती है, तो उसके उत्तरमें उस प्रश्नपर विचार कर लेना मैं निरर्थक नहीं मानता।

मेरा दृढ़ विश्वास है कि स्वराज्य मिलनेके बाद भी चरखेकी प्रवृत्ति तो जारी ही रहेगी। चरखेकी प्रवृत्तिका मूल गाँवोंमें है। स्वराज्य मिलनेके बाद भी किसानोंको खेतीके सिवा दूसरे उद्योगकी आवश्यकता रहेगी। वह उद्योग इस देशमें तो केवल चरखा ही हो सकता है। स्वराज्य मिलनेके बाद मिलें बरसातके दिनोंमें रातभरमें जगह-जगह फूट निकलनेवाले कुकुरमुत्तोंकी तरह नहीं फूट निकलेंगी। मिलें खोलनेके लिए पूँजी चाहिए। पूँजीवालोंको ब्याज चाहिए। उनके लिए खास सुभीतेकी जगह चाहिए, बिजली और पानी वगैराकी सुविधाएँ चाहिए, मजदूर चाहिए, और करघे चाहिए। ये साधन चरखेकी तरह फूँक मारनेसे उत्पन्न नहीं हो सकते। यदि बहुतसे लोग निश्चय कर लें तो आज हिन्दुस्तानमें १ करोड़ चरखे एक दिनमें तैयार हो सकते हैं। लेकिन ३० करोड़ आदमी चाहें तो भी ३० करोड़ तकुओंकी मिल एक दिनमें खड़ी नहीं कर सकते और अनुभवसे इतना तो सिद्ध हो ही गया है कि मिलका एक तकुआ जितना सूत आठ घंटेमें दे सकता है, करीब-करीब उतना ही सूत चरखा भी दे सकता है। इसलिए अगर हिन्दुस्तानकी जनता चाहे, तो थोड़े ही महीनोंमें

चरखों और करघोंके जरिये अपनी जरूरतका पूरा कपड़ा बना सकती है। चरखेकी प्रवृत्तिके द्वारा सहज संकल्प और सहज प्रयत्नसे विदेशी वस्तुका तत्काल बहिष्कार सम्भव है। परन्तु चाहे जैसे संकल्प और प्रयत्नसे मिलोंके जरिये तत्काल बहिष्कार करना असम्भव है और हमें मिलोंके जरिये बहिष्कार करनेमें दो चीजोंके लिए बहुत समयतक परावलम्बी रहना पड़ेगा। हमें बहुत वर्षोंतक यन्त्र और इंजीनियर बाहरके देशोंसे मँगाने पड़ेंगे।

फिर मिलोंकी वृद्धि होनेसे गरीबोंकी भुखमरीका नाश तो हो ही नहीं सकता। और यदि हमें कंगालीको दूर करनेका कोई दूसरा उपाय आज नहीं मिलता तो स्वराज्य मिलनेपर मिल जायेगा, यह माननेका हमारे पास कोई कारण नहीं है। चरखेके बजाय सार्वजनिक भुखमरीको दूर करनेके जो-जो उपाय आजकल सुझाये गये हैं, उनका अभीतक कोई प्रयोग भी नहीं कर सका है।

इसलिए मेरा मत है कि हिन्दुस्तानके करोड़ों लोगोंकी भूख मिटानेवाली चरखेके सिवाय दूसरी कोई भी शक्ति नहीं है।

और यदि मेरा ऐसा ही अडिग मत है, तो मेरे लिए चरखेकी सफलता या निष्फलताका प्रश्न ही नहीं उठ सकता। मैंने तो ऐसा मत भी व्यक्त किया है कि विदेशी कपड़ेके बहिष्कारके बिना करोड़ोंको स्वराज्य प्राप्त होना सम्भव नहीं है। मैं अपने इस मतपर भी दृढ़ हूँ। इसलिए चरखा प्रवृत्तिके व्यापक होनेमें एक वर्ष लगे या सौ, मेरे लिए यही स्वराज्य प्राप्तिका सर्वोत्तम उपाय है, और उसके द्वारा मैं अस्पृश्योंकी सेवा करता हूँ और हिन्दू मुसलमान ऐक्यमें भी योगदान करता हूँ, क्योंकि मुझे तो उनको भी समझना होगा कि वे लोढ़ें, धुनें, कातें और बुनें। मिलकी प्रवृत्तिमें से ऐसी एक भी बात निष्पन्न नहीं हो सकती। मिलें सफल होनेपर ही अच्छी मानी जा सकती हैं और फिर भी उनका परिणाम अल्प ही हो सकता है। मैं किसी भी ऐसे-वैसे उपायसे साधे गये बहिष्कारके परिणामको अल्प समझता हूँ। करोड़ोंके प्रयत्नसे और उनकी भूख मिटाकर जो बहिष्कार हो, परिणाममें वही महान् माना जा सकता है। फिर चरखेकी प्रवृत्ति सफल हो या निष्फल, उसमें कोई दोष तो है ही नहीं। इसका अर्थ यह हुआ कि उसमें निष्फलताका भय होना सम्भव ही नहीं है।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, २४-१-१९२६

१५७. पत्र : कल्याणजी देसाईको

आश्रम
२४ जनवरी, १९२[६][1]

भाई कल्याणजी,

समाचार सुननेके तुरन्त बाद ही आपको पत्र लिखनेका इरादा था; लेकिन मैं ऐसा नहीं कर सका, क्योंकि तबतक फिर बीमार पड़ गया। जो जन्मा है उसके लिए बीमारीसे कष्ट पाना और मरना तो लिखा ही है। तब हम उसपर शोक क्यों करें? आपकी सयानी लड़की चल बसी; इससे दुःख तो स्वभावतः ही होता है। लेकिन यदि इस दुःखको गहराईसे सोचें तो हम देखेंगे कि इसमें स्वार्थ और भयके अलावा और कुछ नहीं। उसे अपनी माननेमें हमारा स्वार्थ है; और हम स्वयं भी मरना नहीं चाहते, इसलिए दूसरोंकी मृत्युसे भी हमें भय लगता है। स्वार्थ और भय दोनोंको छोड़ देना आत्माका स्वभाव है; लेकिन हम तो शरीरको ही आत्मा मान बैठे हैं, इसलिए एक दूसरेके दुःखमें रोते रहते हैं और मृत्युके भयको पोषित करते रहते हैं।

ईश्वर आपको शान्ति दे।

गुजराती प्रति (एस० एन० १२१७९) की फोटो नकलसे।

१५८. पत्र : एक समाज सेवकको

नवजीवन, सारंगपुर
अहमदाबाद
२४ जनवरी, १९२६

भाईश्री . . .,

चोट लग जानेके कारण मैं अपने हाथसे पत्र नहीं लिख पा रहा हूँ। मुझे तीन दिन पहले ही पत्र लिख देना था, लेकिन बहुत व्यस्त होनेके कारण लिख नहीं सका। यह व्यस्तता ही मेरे बुखारका मुख्य कारण है। आज इस समय बुखार नहीं है। सम्भव है, अब न भी आये। . . . सिहोर गई हैं, तुमने यह तो उनके पत्रसे ही जान लिया होगा। तार देखकर मुझे लगा था कि उन्हें सिहोर अवश्य जाना चाहिए। तार झूठा है, ऐसा मानकर नहीं चलना चाहिए। यह बात मेरे मनमें तो स्पष्ट ही थी। मुझे उनका कोई पत्र अभीतक नहीं मिला है। वे जबतक यहाँ रहीं तबतक मैंने उनसे काफी मिल-जुलकर खूब बातें कीं। इस सबसे मैं इस निर्णयपर

१. मूलमें अन्तिम अंक अस्पष्ट है। गांधीजीकी बीमारीके हवालेपर से निर्धारित।

पहुँचा हूँ कि यदि तुम विवाह करोगे तो उससे तुम दोनोंका ही अहित होगा और तुम्हारे अपने कार्यमें भी विघ्न पड़ेगा। . . . को विवाहके अलावा दूसरी बात सूझती ही नहीं है। मोहके अलावा इसका कारण और कुछ नहीं। यह बहन जितनी भली है उतनी ही भोली और सीधी है। इसे भारी देशसेवा अथवा लोकसेवा करनी है, ऐसा भी कुछ नहीं है। इसके विवाहको आदर्श विधवा विवाह नहीं माना जा सकेगा। तीस वर्षकी आयुमें विवाह करनेकी उसकी इच्छामें कुछ असाधारणता हो तभी तुम्हारे जैसे पुरुषका उस विचारसे सहमत होना उचित हो सकता है; किन्तु मैं ऐसी एक भी बात नहीं देखता। इसलिए मेरी सलाह तो यही है कि तुम दृढ़तापूर्वक . . . को मोहसे मुक्त करो। मैंने तो तुम्हारे रोगसे यह समझा था कि तुम जल गये होगे। तुम्हारे मित्र तुमसे सन्तानोत्पत्ति न करनेकी आशा रखें, यह कुछ बहुत नहीं है। तुम्हें उदाहरण प्रस्तुत करना चाहिए। और विवाह करनेके बाद तुम इससे बच सकोगे, मुझे ऐसा नहीं लगता। मैं यह इतना मान कर कह रहा हूँ कि तुम विषयोंको भोगते हुए कृत्रिम उपायों द्वारा सन्तति-नियमन करनेके पापमें लिप्त नहीं होओगे। मेरी दृष्टिमें जो व्यक्ति इन उपायोंका उपयोग कर सकता है वह स्त्री-समाजमें काम नहीं कर सकता। तुम विवाह न करके ही . . . की पूर्ण सेवा कर सकोगे। उसे तुम सगी बहनके समान मानो, उसको सहारा भी दो और उससे जितना बन सके, काम भी लो। हम हजारों स्त्रियोंसे माँ और बहनोंका सम्बन्ध रख सकते हैं; लेकिन मान लो बहुत सारी स्त्रियाँ हमारे मोहमें पड़ जायें तो हम उनमें से कितनी स्त्रियोंसे विवाह कर सकते हैं? आज जैसे . . . मोहित है वैसे ही कल और कोई स्त्री मोहके वशीभूत हो जाये तो उसका क्या उपाय हो सकता है? यदि इसे उचित मान लें तब तो इस युगके अथवा पश्चिममें प्रचलित उन्मुक्त प्रेमका अथवा स्वेच्छाचारका आश्रय लेना ही बच रहता है। मैं चाहता हूँ कि तुम बिना सोचे-समझे कोई भी कार्य न करो।

इन सब बातोंपर विचार करनेके बाद भी तुम करना तो वही जो तुम्हें उचित जान पड़े। लगता है कि तुम्हारे विवाहकी सम्भावनाकी बात बहुत लोग जानते हैं। यह मुझे ठीक नहीं लगा। यह बात आश्रमकी स्त्रियोंको भी मालूम हो गई है और भाई छगनलाल जोशी कहते हैं कि महाविद्यालयमें तो सभी यह मान बैठे हैं कि तुम्हारा विवाह आश्रममें ही सम्पन्न होगा।

यह पत्र भाई किशोरीलालको दिखा रहा हूँ और उसे भी जो वह लिखना चाहे सो लिखनेका सुझाव दे रहा हूँ।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती पत्र (एस० एन० १२१८०) की फोटो-नकलसे।

१५९. दक्षिण आफ्रिकाका प्रश्न

मुझे अफसोसके साथ यह कहना पड़ता है कि दक्षिण आफ्रिकामें उत्पन्न अत्यन्त गम्भीर स्थितिके सम्बन्धमें लॉर्ड रीडिंगके अभिवचनने मेरे मनमें कोई आशा उत्पन्न नहीं की। वे अपनी कूटनीतिके किसी हथकण्डेसे संघ संसदके वर्तमान सत्रमें उस विधेयकपर किये जानेवाले विचारको स्थगित करा सकते हैं; लेकिन आफ्रिकासे हाल ही में आये हुए तारसे मालूम होता है कि जिस कठोर सत्यका हमें सामना करना है वह यह है कि दक्षिण आफ्रिकामें सरकार अभीसे उस ढंगसे पेश आ रही है मानो वह विधेयक भूमि-सम्बन्धी कानून बन चुका हो; और वहाँ परवानेतक बदले नहीं जा रहे हैं। यह विधेयक जिस सिद्धान्तपर आधारित है वह स्वयं अन्यायमूलक है। मेरे खयालमें लॉर्ड रीडिंग जिस बातका प्रयत्न कर रहे हैं वह है, विधेयककी छोटी-मोटी बातोंमें कुछ रद्दोबदल कराना; वे लोग तत्वत: उसमें कुछ भी परिवर्तन न होने देंगे। तत्व है, वहाँ रहनेवाले भारतीयोंको १९१४के समझौतेके अनुसार प्राप्त हकोंका कम किया जाना। उस लम्बे और जबर्दस्त संघर्षके बाद १९१४के समझौतेका मूल आधार था कि निर्योग्यताएँ बढ़ाई नहीं जायेंगी, बल्कि यह स्पष्ट था कि भारत-वासियोंका मनमानी संख्यामें वहाँ आते रहना सदाके लिए बन्द हो जानेपर वहाँके भारतीय निवासियोंकी स्थितिको धीरे-धीरे लेकिन दृढ़तासे बेहतर बनाया जायेगा। भारतीयोंके वहाँ आते जानेका भय १९१४में ही दूर हो गया सो बात नहीं है। वह भय तो तभी समाप्त हो चुका था जब नेटालने अपना आव्रजन कानून पास किया था और केपकी सरकारने भी अपने यहाँ वही कानून पास कर लिया था। ट्रान्सवालमें तो भारतीयोंकी संख्या कभी अधिक ही नहीं थी। ऑरेंज फ्री स्टेटमें भी भारतीयोंकी बस्ती लगभग शून्य ही थी। लेकिन जनतन्त्रात्मक सरकारके अन्तर्गत लोगोंके दिल एक बार उत्तेजित हो उठनेपर किसी-न-किसी प्रकारसे उसे उन्हें सन्तुष्ट अवश्य करना पड़ता है। दक्षिण आफ्रिकाके सभी राजनीतिज्ञोंने लोगोंकी भावनाओंको उभार दिया था और सच कहा जाये तो वे सब इस प्रश्नका स्वयं अध्ययन किये बिना ही उस उत्तेजनाको बढ़ाते रहते थे। किन्तु जब सरकारने आव्रजन सम्बन्धी प्रतिबन्धपर अंकुश लगानेके लिए एक बहुत सख्त कानून बनाकर उनके इस भयको दूर कर दिया तो वहाँ बसे हुए भारतीयोंको यह आशा रखनेका पूरा हक हो गया कि जैसे-जैसे समय बीतता जायेगा उनकी स्थिति तो सुधरती ही जायेगी। लेकिन दीख ऐसा पड़ रहा है कि यह नहीं हुआ। १९१४से आजतकका इतिहास यही बताता है कि भारतीयोंके अधिकारोंपर एकके बाद एक आक्रमण करना बन्द नहीं हुआ। यदि लॉर्ड रीडिंग अपना फर्ज अदा करना चाहते हैं तो उन्हें सिर्फ उस विधेयकके पेश किये जानेके विचारको ही मुल्तवी नहीं करवाना चाहिए बल्कि कमसे-कम इस बातका आग्रह करना चाहिए कि भारतीयोंको फिरसे १९१४की सुविधायें प्राप्त हों; वैसे स्थिति तो

वह भी बुरी है। समझौतेके प्रयत्नोंका परिणाम मालूम होनेपर यह नहीं कहा जाना चाहिए कि लार्ड रीडिंग ऐसा कुछ भी प्राप्त नहीं कर सके जिसे प्रवासी भारतीयोंकी दृष्टिसे कोई ठोस लाभ माना जा सके।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २८-१-१९२६

१६०. खादी-प्रचार

अब यह जमाना आ गया है कि कुछ अति सुसंस्कृत व्यक्ति त्यागभावसे खादी-प्रचारके कार्यमें लग गये हैं। उनकी यह त्याग भावना देखकर इस देशकी उस युगकी प्राचीन परम्पराओंकी याद हो आती है जब राष्ट्रकी या धर्मकी सेवा राष्ट्र या धर्मके विचारसे ही की जाती थी। खादी प्रतिष्ठानके सतीश बाबूका एक पत्र पाकर मुझे ऐसा लगा। वे लिखते हैं कि डा० प्रफुल्ल घोष कांग्रेस कमेटियों द्वारा आयोजित सभाओंमें एक जगहसे दूसरी जगह जा-जाकर बंगालमें खादी-प्रचार कर रहे हैं और वे इस कामको बड़ी तत्परताके साथ कर रहे हैं। वे इसमें होनेवाले श्रमकी कुछ भी परवाह नहीं करते हैं और श्री भरुचाके जैसी लगनके साथ अपने कन्धोंपर खादीके थान रखे हुए फेरी लगा रहे हैं। डा० घोष, डा० रायके प्रिय शिष्योंमें से रहे हैं और वे टकसालमें ५००) माहवार वेतनकी जगहपर काम कर रहे थे। अब वे ३०) से अधिक वेतन नहीं लेते और स्वयं मैंने देखा है कि वे आजकल किस तरह रह रहे हैं। बंगालमें या यों कहिए सारे हिन्दुस्तानमें अकेले वे ही ऐसे व्यक्ति नहीं हैं जो गरीबीमें दिन काटते हुए चरखेके द्वारा देशमें दरिद्रनारायणकी सेवा कर रहे हैं। बंगाल और बंगालके बाहर कितनी ही संस्थाओंमें ऐसे अति योग्य और शिक्षित युवक मौजूद हैं, जिन्होंने खादीको अपना यदि एकमात्र नहीं तो मुख्य धन्धा बना लिया है और जो केवल थोड़ा-सा वेतन लेकर काम कर रहे हैं। लेकिन चूँकि खादीका अर्थ भारतके करोड़ों निर्धन लोगोंकी सेवा करना है इसलिए स्वभावतः इसके प्रति ऐसे कुछ सैकड़ों ही नहीं बल्कि हजारों युवा स्त्री-पुरुषोंकी श्रद्धा होनी आवश्यक है।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २८-१-१९२६

१६१. पत्र : रामदास गांधीको

आश्रम
२९ जनवरी, १९२६

चि० रामदास,

आज कुछ शक्ति आई है सो पहला पत्र तुम्हींको लिखने बैठा हूँ। दायें हाथको बादमें आराम देना होगा; इसलिए मुझे अधिकांश तो बोलकर ही लिखवाना पड़ेगा।

महादेवभाई तुम्हें मेरे स्वास्थ्यके समाचार तो देते ही रहते ह। इस बार बुखार बहुत तेज रहा और टिका भी लम्बे समयतक। अब चार दिनसे टूटा है। चार दिनसे मैंने दूध लेना भी बिलकुल बन्द कर दिया है। इससे पहले रविवारको दूध लिया था। बादमें दो दिन पानी, शहद और नीबूके रसपर रहा। अब दो दिनसे संतरा और अंगूर लेता हूँ। आज दूध शुरू करना है। मेरे बारेमें चिन्ता करने जैसी कोई बात नहीं है।

तुम अपने बारेमें भी यही कह सको तो कितना अच्छा हो। अपने मानसिक ज्वरको दूर करना तुम्हारे हाथमें है। क्या तुम उसे दूर नहीं करोगे? आखिर यह ज्वर है क्या? तुम्हें गहराईमें उतरकर और अपने मनको टटोलकर किसी निश्चयपर पहुँच जाना चाहिए। बम्बईमें क्या मिलेगा? कलकत्तामें क्या मिलेगा? जो मिलना है सो तो तुम्हारे हृदयमें है। उसकी यात्रा करो। उसमें घाटियाँ हैं, पहाड़ हैं और खानें भी हैं। उसमें अपार राशि भरी हुई है। उसे लूटो। वह लूटनेसे खत्म होनेवाली नहीं है। अपने मनको समझाओ तो अमरेलीमें क्या नहीं है? जब तुमने वहाँ रहनेका निश्चय किया तो उसे अब वापस कैसे लिया जा सकता है? वहाँ तुम्हारी जरूरत है। उसे तुम अपना सफल कर्मक्षेत्र बनाओ। वहाँसे हारकर भागोगे तो यह मुझे तनिक भी अच्छा न लगेगा। अब मैं रोज ऐसा इंजेक्शन भेजनेका प्रयत्न करूँगा। तुम भी मुझे रोज लिखना।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती पत्र (एस० एन० १२१८१) की फाटो-नकलसे।

१६२. पत्र : मोतीबहन चौकसीको

शनिवार, ३० जनवरी, १९२६

चि० मोती,

तुम्हारे पत्र नियमित रूपसे मिलने लगे हैं। इससे मुझे सन्तोष बना रहता है। मेरा बुखार टूट गया है। कमजोरी है, सो चली जायेगी।

नाजुकलालकी तबीयत सुधर रही है, यह जानकर हम सबको बहुत खुशी हुई। वह तुम्हारी शुद्ध भावसे की गई सेवासे बिलकुल ठीक हो जायेगा।

लगता है, तुम्हारी पढ़ाई अच्छी तरह चल रही है।

तुम्हें अपने अक्षर सुधारने चाहिये। तुम्हें लिखना तो सदा है; इसलिए यदि धीरे-धीरे सुन्दर अक्षर लिखोगी तो तुम्हारी लिखावट ही वैसी हो जायेगी।

मेरे पत्रकी आशा सदा नहीं रखना। दायें हाथमें दर्द होता है, इसी कारण यह पत्र बायें हाथसे लिखा है।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती पत्र (एस० एन० १२११५) की फोटो-नकलसे।

१६३. पत्र : रामेश्वरदास पोद्दारको

साबरमती आश्रम
माघ बदी २ [३० जनवरी, १९२६][1]

भाई रामेश्वरजी,

आपके पत्र मिले। रुपयेकी पहुँच आपको भेजी गई है, और सूचनाके अनुसार उसका व्यय होगा। दुबारा अगर कुछ द्रव्य भेजना हो तो रजिस्टर या तो बीमा करके भेजनेका प्रयत्न करें। शारीरिक स्वास्थ्यके लिए अच्छे वैद्य या डाक्टरकी सलाह लेना चाहिए और उनके कहनेके मुताबिक चलनेसे व्याधि मिटनेका सम्भव है। संग्रहणी असाध्य इलाज नहीं है। खानेपीनेमें परहेजगार रहना आवश्यक है। मानसिक व्याधिका एक अमूल्य उपाय रामनाम हि है। भले इस पवित्र नाम लेनेमें मुसीबत हो, परन्तु हार्दिक और निरंतरके प्रयत्नसे रामनाम प्रिय लगेगा। हम प्रेयके

१. रामेश्वरदासजीके स्वास्थ्यके उल्लेखसे।

पीछे न घूमें श्रेयसका ही खयाल करें और वह प्रेय न हो तभी करते रहें उसका अन्तिम परिणाम बड़ा हि अच्छा होगा इसमें शक नहिं।

आपका,
मोहनदास गांधी

मूल पत्र (जी० एन० २१८) की फोटो-नकलसे।

१६४. सत्याग्रहाश्रमका न्यासपत्र[1]

२ फरवरी, १९२६

२,७५,००० रुपयेके न्यासकी घोषणा।

हम, मोहनलाल करमचन्द गांधी तथा मगनलाल खुशालचन्द गांधी जो दोनों जातिसे बनिये हैं, क्रमश: लगभग ५५ तथा ४३ वर्षकी आयुके हैं, दोनों बुनाई तथा खेतीका धन्धा करते हैं और सत्याग्रहाश्रम वाडज, ताल्लुका उत्तर दसकरोई, जिला अहमदाबादके निवासी हैं, इस दस्तावेजके द्वारा घोषणा करते हैं कि:

हमने तथा हमारे साथियोंने मिलकर सन् १९१५ में दक्षिण आफ्रिकासे हिन्दुस्तानमें आनेके बाद सेवा करनेकी इच्छासे तारीख २५–५–१९२५ को सत्याग्रहाश्रम नामकी संस्थाकी स्थापना की थी। इस संस्थाकी मिल्कियत, जो इसके साथकी अनुसूची 'अ'[2] में हमारे द्वारा सूचित की गई है, और जो जमीन तथा मकान मिलाकर लगभग रु० २,७५,००० (दो लाख पचहत्तर हजार रुपया) मूल्यकी है, हमारे नामपर उक्त संस्थाकी ओरसे खरीदी गई थी। और उसका प्रबन्ध तथा उपयोग उक्त संस्थाके प्रमुख लोगोंके आदेशानुसार संस्थाके उद्देश्योंकी पूर्तिके निमित्त किया जाता रहा है और अब भी किया जाता है। इस दस्तावेजके द्वारा हम उन उद्देश्योंको व्यक्त करते हैं और घोषणा करते हैं कि हमारे नामपर यह मिल्कियत संस्थाके न्यासियोंकी हैसियतसे है और इसमें हमारा अथवा हमारे वली-वारिसोंका कोई भी निजी अधिकार अथवा हिस्सा न कभी था और न है।

इस दस्तावेजकी अनुसूची 'अ' में बताई गई सत्याग्रहाश्रमकी मिल्कियतका जिन उद्देश्योंके लिये उपयोग किया जाता है वे निम्नलिखित हैं:

१. अन्त्यजोंकी उन्नति;

२. कपासकी खेती और उससे सम्बन्धित कलाओं तथा हाथसे कपास लोढ़ने, रूई पींजने, सूत कातने तथा कपड़ा बुननेकी कलाओंका विकास करना;

१. यह न्यासपत्र १२-२-१९२६ को प्रातः ११ और १२ बजेके बीच अहमदाबादके उप-पंजीयकके कार्यालयमें पंजीयनके लिए गांधीजीने पेश किया था और पुस्तक सं० १ में क्रम संख्या ७२२ में पंजीयित किया गया था। इसपर ग० वा० मावलंकर तथा विनोबा भावेने गवाहोंके रूपमें हस्ताक्षर किये थे।

२. देखिए परिशिष्ट २।

३. हिन्दुस्तानकी नैतिक, आर्थिक और राजनीतिक उन्नतिके लिए आवश्यक उद्योग करनेके निमित्त सेवक तैयार करना;

४. अक्षरज्ञान आदिकी शिक्षा देनेके लिए शालाएँ स्थापित करना और चलाना;

५. तथा लोकोन्नतिके अन्य काम करना, जैसे गोरक्षा, गोवंशमें सुधार आदि।

हम घोषणा करते हैं कि संलग्न अनुसूची 'अ' में बताई गई मिल्कियतका पूर्वोक्त उद्देश्योंके अनुसार प्रबन्ध चलानेके लिए निम्न व्यक्ति न्यासी नियुक्त किये गये हैं:

१. श्री जमनालाल बजाज

२. श्री रेवाशंकर जगजीवन झवेरी

३. श्री महादेव हरिभाई देसाई

४. श्री इमाम साहब अब्दुल कादिर बावजीर

५. श्री छगनलाल खुशालचन्द गांधी

हम घोषणा करते हैं कि पूर्वोक्त परिशिष्टमें बताई गई मिल्कियतके बारेमें उपरोक्त न्यासियोंको निम्नलिखित अधिकार प्राप्त हैं:

१. न्यासके उद्देश्योंको पूर्ण करनेके लिए समय-समयपर आवश्यक जान पड़नेवाले तमाम कार्योंको करना, तथा आवश्यक कदम उठाने और उसके अन्तर्गत जैसा उचित जान पड़े न्यासकी मिल्कियतका वैसा प्रबन्ध अथवा उपयोग करना;

२. न्यासके उद्देश्योंको सफल बनानेके लिए न्यासकी मिल्कियतको बेचना अथवा गिरवी रखना;

३. न्यासकी खाली जगहोंमें बहुमतसे दूसरे न्यासी नियुक्त करना;

४. कमसे-कम तीन व्यक्तियोंकी सम्मतिसे कार्य चलाना;

५. न्यासियोंकी संख्यामें वृद्धि करनेकी आवश्यकता जान पड़े तो अन्य दो न्यासी बहुमतसे बढ़ाना।

अनुसूची 'अ' में बताई गई मिल्कियत पंजीयनके जिले अहमदाबादके दसकरोई ताल्लुकेके गाँवोंकी सीमामें स्थित है। यह पहले, हमारे हाथ बेचनेवालोंके कब्जेमें थी; और यह जबसे पूर्वोक्त संस्थाके लिए हमें बेची गई है तब से हमारे कब्जेमें है। इसका ब्यौरा इस प्रकार है:[1]

उपरोक्त घोषणा हमने अपनी खुशीसे सोचसमझकर और पूरे होशहवासमें की है। यह हमें तथा हमारे वली-वारिसों, पंजीयन करनेवालों और पंजीयन करानेवालों को मंजूर है। ता० २ फरवरी, सन् १९२६।

मोहनदास करमचन्द गांधी
मगनलाल खुशालचन्द गांधी

[गुजरातीसे]

पंजीकृत दस्तावेजकी प्रतिसे।
सौजन्य: छगनलाल गांधी

१. इसमें भूमिके १८ टुकड़ोंका ब्यौरा दिया गया है। देखिए परिशिष्ट २।

१६५. पत्र : मणिबहन पटेलको

बुधवार, ३ फरवरी, १९२६

चि० मणि,

देवदास तो यहाँ नहीं है। वह तो अभी देवलालीमें ही है। मेरी तबीयत अब अच्छी है। कमजोरी है सो दूर हो जायेगी। अबतक वहाँ तुम्हारी सारी व्यवस्था अच्छी तरह जम गई होगी। कमला जितनी तरक्की कर सके, उतनी करने दो। चिन्ता तनिक भी न करना। उम्मीद है, तुम्हारी तबीयत अच्छी रहती होगी। घूमने रोज जाना। गंगूताई जो आश्रम (वर्धा) में है कदाचित् तुम्हारे साथ जायेगी। कमला (बजाज) के विवाहके समय यहाँ आ सको तो आना। मुझे पत्र नियमित रूपसे लिखना।

बापूके आशीर्वाद

[गुजरातीसे]
बापुना पत्रो – ४ : मणिबहेन पटेलने

१६६. शराबबन्दी

मद्रासके स्वराज्यदलने अपने कार्यक्रममें शराबको सम्पूर्णतया बन्द कर देनेका कार्य भी शामिल किया है, इसलिए वह गरीब लोगोंके सभी हितैषियोंकी मुबारकबादीका पात्र है। यदि हमारी परम शक्तिशालिनी अकर्मण्यता बाधक न होती तो हमने यह बुराई कभीकी दूर कर दी होती। यह मजदूरी करनेवाले लोगोंकी जीवन-शक्तिकी जड़ें ही खोखली कर रही है और वे अपनेको सुधार न सकनेकी स्थितिमें हैं। फिर भी उनकी मदद की जानी चाहिए। शराबखोरीको अविलम्ब बन्द कर देनेके लिए भारतवर्षके समान कोई दूसरा उपयुक्त देश नहीं है। यहाँ इस विषयमें जनताकी राय सदा अनुकूल मार्गपर रही है। यूरोपकी तरह यहाँ समस्त जनताकी सम्मति लेनेकी आवश्यकता नहीं है। इसका कारण सीधा-सादा यह है कि यूरोपकी तरह भारतवर्षमें बुद्धिजीवी समाज शराब नहीं पीता। मद्रासके पादरी श्री डब्ल्यू० एल० फर्ग्युसनने एक पत्रिका प्रकाशित की है। उसमें उन्होंने शराबखोरीको एकदम बन्द कर देनेकी आवश्यकता सिद्ध की है। उसके कारण पड़नेवाले आर्थिक बोझके सम्बन्धमें उक्त पादरी सज्जन लिखते हैं:[1]

> **कोई भी देश, कितनाही धनी और खुशहाल क्यों न हो, वास्तवमें मद्यपानका बोझ सहन करनेकी क्षमता नहीं रखता। क्योंकि शराबखोरीसे राष्ट्र नाशकी**

१. अंशतः उद्धृत।

> **कगारपर जा पहुँचते हैं और कभी-कभी तो खड्डेमें भी जा गिरते हैं। भारतवर्ष तो आज भी गरीब देश है। उसके पास पूँजी स्वल्प है, शिक्षा भी बहुत कम है, स्वच्छता और सार्वजनिक स्वास्थ्यकी दृष्टिसे भी वह पिछड़ा हुआ है; रहनेके मकानों, खेती-बाड़ी, उद्योगधंधा, तथा गाँवोंमें यातायात-सम्बन्धी साधन — इन सभी बातोंमें वह गरीब है।. . . यह देश नशीली चीजोंका इस्तेमाल करनेका व्यय नहीं उठा सकता। उसकी वित्त व्यवस्थाके विषयमें हकीकत यह है कि देशके बाहर प्रतिवर्ष जानेवाली दौलत उसकी कमर तोड़ रही है। हम नहीं जानते कि इस सम्बन्धमें कितना धन बाहर चला जाता है लेकिन राजस्वके रूपमें सरकार जितना रुपया नशीली वस्तुओंसे वसूल करती है, उसपरसे कुछ अन्दाज लगाया जा सकता है। . . . नशीली चीजोंके राजस्वकी कुल रकम ८०,००,००,००० रु० ही मान ली जाये तो भी अनुचित न होगा। . . . यदि यह मान लें कि नशीली वस्तुओंकी कीमतका आधेसे अधिक भाग मजदूर वर्गों तथा गरीब लोगों द्वारा अदा किया जाता है तो लगभग ६० करोड़ रुपयोंका बोझ उन्हें वहन करना पड़ता है। उन्हीं लोगोंकी आमदनीमें से यह लिया जाता है जिन्हें अपनी, अपने कुटुम्बकी या जातिकी उन्नतिके लिए रुपयोंकी बड़ी आवश्यकता रहा करती है। यदि इतनी बड़ी रकम प्रतिवर्ष नशीली चीजोंमें खर्च होनेसे बचाई जाये, और उसको घरकी स्थिति सुधारने और राष्ट्र-निर्माणके मदोंमें खर्च किया जाये तो भारतवर्षके गरीब लोगोंको स्वावलम्बी बनानेकी दिशामें क्या नहीं किया जा सकता है? . . .**

आर्थिक हानिकी अपेक्षा नैतिक हानि तो और भी अधिक होती है। नशीली चीजोंके उपयोगसे उनका सेवन करनेवालों तथा उनका व्यापार करनेवालों — दोनोंका अधःपात होता है। मद्यपानका व्यसनी व्यक्ति, माता, बहन और पत्नीका भेद भूल जाता है और ऐसा अपराध कर बैठता है कि जिसके लिए यदि वह होशमें होता तो वह शर्मसे गड़ जाता। जिन लोगोंका मजदूरोंके साथ कुछ भी सम्बन्ध है वे जानते हैं कि जब मजदूर शराबके नशेमें चूर हो जाता है तब उसकी हालत कैसी हो जाती है। दूसरे वर्ग भी कुछ अच्छे नहीं हैं। मुझे मद्यपान करनेके अनन्तर अपनेको बुरी तरह भूल जानेवाले एक जहाजके कप्तानकी बात याद है। उस समय जहाजकी देखरेख उसके नीचे काम करनेवाले अधिकारीको सौंप देनी पड़ी थी। बैरिस्टर लोग भी शराब पी चुकनेके पश्चात नालियोंमें पड़े पाये गये हैं। संसारमें सब जगह पुलिसके द्वारा इन अच्छी स्थितिके लोगोंकी रक्षा की जाती है; और बेचारे गरीब शराबीको उसकी गरीबीके कारण सजा मिलती है।

यदि शराबखोरीकी बुराईको अनेक हानियोंके होते हुए भी अंग्रेजोंमें फैशनेबिल दुर्गुण न माना जाता तो आज इस गरीब देशमें उसे हम इस संगठित हालतमें न पाते। यदि हम लोग सम्मोहक शक्तिके वशीभूत न किये गये होते तो आज पापकी

कमाईसे — शराब इत्यादिसे प्राप्त होनेवाला राजस्व पापकी कमाई नहीं तो क्या है? — अपने बच्चोंको शिक्षा देनेसे हम अवश्य इनकार करते।

श्री फर्ग्युसन इस पापसे आमदनी करनेके बजाय नया कर चालू करनेका सुझाव देते हैं। मेरी रायमें तो यह सरकार अपने बड़े भारी सैनिक व्ययको, जिसकी आवश्यकता आक्रमणोंसे देशकी रक्षा करनेके लिए नहीं बल्कि आन्तरिक बलवोंको कुचल देनेके लिए है, घटा दे तो नया कर लगानेकी कोई आवश्यकता न रहेगी। इसलिए मद्यपान निषेधकी माँगके साथ-साथ सैनिक व्ययमें उतनी ही कमी करनेकी माँग भी पेश करनी चाहिए। यदि मिशनरी लोग जनताकी रायका साथ देनेको कटिबद्ध हो जायें और मद्यपानको एकदम बंद कर देनेपर जोर देने लगें तो उन्हें सैनिक व्ययका भी अध्ययन करना होगा। जब उन्हें यह सन्तोष हो जाये कि बहुत-सा खर्च तो आन्तरिक झगड़ोंके झूठे भयके कारण ही बढ़ाया गया है तो उन्हें भी लश्करी खर्चको कम करनेपर जोर देना होगा, कमसे-कम उतना खर्च कम करानेके लिए तो अवश्य ही प्रयत्न करना होगा जितना कि नशीली चीजोंके महसूलसे वसूल होता है।

स्वराज्य दल और दूसरे राजनैतिक दलोंका कर्त्तव्य बिलकुल स्पष्ट है। वे एक स्वरसे शराबखोरीको एकदम और पूर्णरूपसे बन्द कर देनेकी माँग पेश करनेके लिए देशके प्रति कर्त्तव्यबद्ध हुए हैं। यदि यह माँग पूरी न की जाये तो स्वराज्य दलको सरकारको दोषी ठहरानेका एक अतिरिक्त कारण मिलेगा। श्री राजगोपालाचारीने उचित ही कहा है कि शराबखोरीको एकदम रोक देना जनताको राजनैतिक शिक्षा देनेकी दिशामें प्रथम श्रेणीका कार्य है, और यह ऐसा कार्य है कि इसमें सभी दलों, जातियों और राष्ट्रोंके लोग आसानीसे एक होकर काम कर सकते ह।

यह लिखनेके बाद मैंने दीवान बहादुर एम० रामचन्द्ररावकी अध्यक्षतामें शराबखोरीको बन्द करनेके उद्देश्यसे दिल्लीमें आयोजित सभाकी कार्यवाहीका वर्णन पढ़ा। उस सभाने जो प्रस्ताव किया है वह मेरी रायमें बुजदिलीसे भरा प्रस्ताव है। उसमें बुजदिली दिखानेके पश्चात् भारत सरकार और प्रान्तीय सरकारोंसे प्रार्थना की गई है कि वे आबकारी विभागकी नीतिके तौरपर शराबखोरीको एकदम बन्द कर देना अपना ध्येय बनायें। मेरे खयालसे भारत सरकार और स्थानिक सरकारोंको भी इसको स्वीकार करनेमें कोई मुश्किल न मालूम होगी। सभी दलोंका, भारत सरकारका भी, अन्तिम ध्येय स्वराज्य है, लेकिन कांग्रेसके लिए तो वह शीघ्र ही प्राप्तव्य वस्तु है। और भारत सरकारके खयालमें तो वह काम्य होकर भी सुदूर भविष्यतक में अप्राप्तव्य ध्येय ही है। तब फिर सरकार शराबखोरीको बन्द कर देना भी असम्भव ही मानेगी। इसी प्रस्तावके अनुकूल उस सभाने सरकारको यह सलाह दी है: "वह इस विषयमें लोगोंकी राय जाननेके लिए पूरी सुविधा कर दे और सभाकी रायमें स्थानिक शराबबन्दीके कानूनको दाखिल करना ही इस विषयमें लोगोंकी राय जाननेके लिए उत्तम उपाय है।" जैसा कि मैंने ऊपर कहा है लोगोंकी राय मालूम करनेकी कोई आवश्यकता नहीं है क्योंकि जनताकी राय तो सभी जानते हैं। प्रश्न यह है कि सरकार आबकारीकी आमदनीको छोड़ देनेको तैयार है या नहीं। अच्छा होता यदि सभाने अधिक दृढ़तासे, अधिक विवेकपूर्ण रीतिसे और अधिक संगत कार्य

किया होता। अब तो उस सभाका रूप भारतीय मद्य-निषेध मण्डलके नामकी जगह राष्ट्रीय मद्य-निषेध दल हो गया है। तो अब मैं यह आशा करता हूँ कि वह दल अधिक साहसपूर्ण नीतिका अनुसरण करेगा और मद्यपान निषेधको दूर अथवा अनिश्चित भविष्यमें प्राप्तव्य ध्येय न समझकर, उसे जनमत लेनेकी तूल-तबील पद्धति अपनाये बिना फौरन ही अमल करने योग्य राष्ट्रीय नीति समझेगा और तदनुसार कार्य करेगा।

[अंग्रेजीसे]
यंग इंडिया, ४-२-१९२६

१६७. टिप्पणियाँ

अध्यवसायी श्री एन्ड्रयूज

दक्षिण आफ्रिकाकी संघ सरकारके द्वारा भारतीयोंके खिलाफ कानून बनानेके विधेयकका परिणाम चाहे कुछ भी निकले, परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि इस प्रश्नको हल करनेमें श्री एन्ड्रयूजका योगदान सबसे बढ़चढ़कर माना जायेगा। उनकी अदम्य शक्ति, उनकी अनवरत जागरूकता और मृदुतासे समझानेकी क्षमताने हमारे मनमें सफलताकी आशा उत्पन्न कर दी है। यद्यपि वे शुरूमें बड़े निराश हुए थे, परन्तु अब वे स्वयं हम लोगोंको यह आशा दिला रहे हैं कि वह विधेयक कमसे-कम इस सूत्रमें पेश नहीं होगा। वे चुपचाप पत्र सम्पादकों और सार्वजनिक कार्यकर्त्ताओंसे मुलाकातें कर रहे हैं। वे पादरियोंकी सहानुभूति प्राप्त करके उनसे इस नये कानूनका जोरदार शब्दोंमें विरोध करा रहे हैं। इस प्रकार उन्होंने दक्षिण आफ्रिकाके यूरोपीयों तककी रायको, जो इस कानूनके पक्षमें थी, डिगा दिया है। इस प्रश्न सम्बन्धी अपने गहरे अध्ययनकी बदौलत वे यह प्रमाणित कर चुके हैं और दक्षिण आफ्रिकाके नेताओंको यह यकीन भी होने लगा है कि उस कानूनसे स्मट्स-गांधी समझौतेका सरासर भंग होता है। उन्होंने बिखरी हुई भारतीय शक्तियोंको भी इस विधेयकका विरोध करनेके लिए एकत्रित किया है। इस प्रकार श्री एन्ड्रयूजने भारतकी और मनुष्य समाजकी अबतक की हुई अपनी सेवाओंमें एक और मजबूत कड़ी जोड़ी है। अंग्रेजों और भारतीयोंके सम्बन्धको मधुर बनानेके लिए जितना प्रयत्न श्री एन्ड्रयूजने किया है उतना आजतक किसी भी अंग्रेजने नहीं किया है। उनको यही धुन लगी हुई है कि इन दोनों राष्ट्रोंके निवासी एक ऐसे बन्धनमें बंध जायें जो कभी न टूटे और जिसका आधार पारस्परिक आदर और पूर्ण समानता हो। ईश्वर करे उनका यह स्वप्न सच्चा उतरे।

मिश्रित खादी कोई खादी नहीं है

एक पत्रलेखक लिखते हैं :

गुंटूर जिलेके पलनाडमें एक किस्मकी ऐसी खादी बन रही है जो नाम-मात्रकी खादी है। उस खादीकी किनारीमें एक विशेष डिजाइन है जिसे

'कुप्पडम' किनारी कहते हैं। इस किनारीमें इस्तेमाल किया गया सूत निश्चित रूपसे विलायती होता है। इसे शुद्ध खादीकी तरह इस्तेमाल किया जा रहा है और इसे महात्मा गांधीका समर्थन भी प्राप्त है। क्या यह ठीक है?

यह कदापि ठीक नहीं है। मैंने ऐसी किसी चीजको मान्यता नहीं दी है। मैं ऐसी धोतियोंको शुद्ध खादी कहना ज़ालसाजी समझता हूँ। यह प्रश्न १९१९ ई० में ही सामने आया था जब मिलकी बनी धोतियाँ जिनकी किनारी विलायती सूतसे तैयार की गई होती थी, इस्तेमाल की जाती थी। मुझे मालूम है कि अनेक सज्जन उन धोतियोंको पहननेसे इनकार करनेपर इसीलिए विवश हुए थे कि उनकी किनारीमें विलायती सूतका लगाया जाना सिद्ध हो चुका था। ऊपरसे ये बातें छोटी दिखाई देती हैं, लेकिन इनसे यथार्थतापर एक दबा-छुपा अतिक्रमण होता है। इसलिए ऐसे मामलोंमें किसी व्यक्तिको प्रमाण नहीं माना जा सकता। मैंने एक बातके बारेमें अपनी स्वीकृति अवश्य दी है; वह है बम्बईकी महिलाओंका कार्य। वे खादीके थानोंपर कढ़ाईका काम करती हैं। कढ़ाईके इस कामके लिए उन्हें विलायती रेशमका इस्तेमाल करना पड़ता है। लेकिन वे किसीको धोखेमें नहीं रखतीं। यदि उन्हें हाथसे कता रेशमी तागा मिले तो वे इस विलायती रेशमी तागेका इस्तेमाल नहीं करना चाहतीं। लेकिन जबतक उन्हें हाथसे कता रेशमी तागा नहीं मिलता, तबतक शौकीन लोगोंमें खादी बेचनेकी खातिर उन्हें कुछ-न-कुछ कढ़ाई करनी पड़ती है और जो लोग उनकी साड़ियाँ खरीदते या पहनते हैं, उनसे वे साफ-साफ कह देती हैं कि उनकी कढ़ाईमें कितना विलायती सूत लगाया गया है। लेकिन शुद्ध खादीपर कढ़ाई करनेके आधारपर खादी बनानेमें ही विदेशी सूतका इस्तेमाल करना और उसे शुद्ध खादी कहना, एक ऐसी लम्बी और खतरनाक छलांग है जिसे बर्दाश्त नहीं किया जा सकता।

मैसूरमें चरखा

'हिन्दू' में एक काफी बड़ा समाचार प्रकाशित हुआ है। शीर्षक है 'एक विशाल चरखा प्रदर्शनी और कताई प्रतियोगिता।' यह अभी हालमें चरखा संघके तत्वावधानमें बंगलोरमें आयोजित की गई थी। इस दिलचस्प और शिक्षाप्रद समारोहकी मुख्य घटना है, अध्यक्ष श्री जेड० मैकीके द्वारा, जो मैसूरके उद्योग और वाणिज्य निर्देशक हैं, दिया गया भाषण। श्री मैकीने चरखेके आलोचकोंको सर्वांगपूर्ण, और मेरे विचारसे शंकाओंको निर्मूल करनेवाला उत्तर दिया है। उन्होंने इस बातपर जोर दिया है कि चरखेको 'गरीबी और बेकारीकी दृष्टिसे देखना उचित है।'

उन्होंने यह भी कहा:

यह सभी जानते हैं कि ५० प्रतिशतसे अधिक लोग खेतीमें लगे हुए हैं और सालमें लगभग ६ महीने वे बेकार बैठे रहते हैं। इतना ही नहीं, वर्षा इतनी विरल और अनिश्चित है कि हर समय अकालकी-सी स्थितिके सामने खड़ा रहना एक आम बात-सी हो गई है।

उन्होंने बतलाया कि खेतीके काममें लगे हुए लोगोंके लिए खाली समयमें चरखा ही एकमात्र अतिरिक्त धन्धा है। उन्होंने यह भी कहा कि अगर राष्ट्रके लोगोंकी पसन्दगी विकृत न हो गई होती और उनकी रुचि पतनशील न हो गई होती तो खद्दरने अबतक जितनी प्रगति की है उससे कहीं ज्यादा कर चुकी होती। चरखेसे होनेवाली आमदनीके सम्बन्धमें श्री मैकीने कहा:

> **ध्यानपूर्वक हिसाब लगाकर देखा गया है कि २।। घंटे प्रतिदिन सूत कातकर एक आदमी आसानीसे हर महीने २।। रुपया कमा सकता है। यदि एक परिवारमें औसतन ५ आदमी हों और उनमें से दो ही प्रतिदिन २।। घंटे सूत कातें तो राज्यमें इन बेकारोंकी कुल अतिरिक्त आमदनी ५० लाख रुपये माहवार या ६ करोड़ रुपये सालानासे अधिक होती है। क्या चरखेके आलोचकोंने उनसे यह गम्भीरतापूर्वक कहा कि वे कताईको न अपनाकर इस रकमको गँवा दें? इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है कि कताई उद्योगका भविष्य महान् है और यदि पढ़े-लिखे, सभ्य और धनी लोग खद्दर पहनना शुरू कर दें तो इस उद्योगको बहुत प्रोत्साहन मिलेगा।**

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ४-२-१९२६

१६८. मथुरादास त्रिकमजीको लिखे पत्रका अंश

४ फरवरी, १९२६

कूड़ेके ढेरपर जा बैठनेके प्रयत्नमें[1] कई बार मात खा चुकनेके बाद तुम्हें इस बार जो विजय मिली है, उसपर बधाई चाहिए तो इसीको बधाई मान लेना।

[गुजरातीसे]

बापुनी प्रसादी,

१. बम्बई नगरनिगमके चुनाव संघर्षमें।

१६९. पत्र : वसुमती पण्डितको

गुरुवार [४ फरवरी, १९२६][१]

चि० वसुमती,

आज रामदासके बजाय तुम्हारे नाम पत्र लिख रहा हूँ। दवासे उस बहनको कोई लाभ हुआ या नहीं? घूमनेका नियम चला रखा है अथवा नहीं?

कुसुमकी तबीयत वहाँ कैसी रहती है? क्या वह कुछ लिखती-पढ़ती भी है? क्या सितार साथ है? वह अपना समय किस तरह व्यतीत करती है?

क्या शान्ता कुछ पढ़ती है? उसका लिखनेका अभ्यास बनाये रखना ठीक होगा।

बापूके आशीर्वाद

चि० वसुमती,
खादी कार्यालय
अमरेली

गुजराती पत्र (सी० डब्ल्यू० ४६९) से।
सौजन्य : वसुमती पण्डित

१७०. पत्र : मोतीबहन चौकसीको

शनिवार, ६ फरवरी, १९२६

चि० मोती,

मैंने तो तुम्हें अपनेसे जरा भी जुदा नहीं किया है; और न ऐसा माना है। मैं बड़े लड़के, लड़कियों और छोटे बच्चोंको भी अनेक बार पत्रोंमें, 'तुम' लिख देता हूँ। यदि हृदयमें भेद न हो तो 'तू' अथवा 'तुम'में कोई भेद नहीं है। तुम्हारी लिखावटमें सुधार होनेकी आशा तो मैं हमेशा करूँगा।

तुम्हें चरखा तो नित्य ही चलाना चाहिए।

गृहस्थाश्रम-सम्बन्धी पुस्तक मुझे पढ़कर देखनी होगी।

तुम्हें आश्रमके समाचार अभी न मिले हों तो मुझे लिखना।

नाजुकलालकी तबीयत अच्छी होती जाती है, यह बहुत ही खुशीकी बात है। तुम दोनों जब आना चाहो तब आना।

गोमतीबहन अभी चारपाईमें पड़ी है। थोड़ा खाती-पीती तो है, परन्तु वह अभी बिलकुल स्वस्थ नहीं है।

१. डाककी मुहरसे।

अभी मुझे बायें हाथसे ही लिखना पड़ता है।

बापूके आशीर्वाद

अ० सौ० सुकन्या नाजुकलाल चौकसी
भाटिया गली
बड़ोदा।

गुजराती पत्र (एस० एन० १२११५-अ) की फोटो-नकलसे।

१७१. हिन्दू धर्मकी स्थिति

एक भाई 'सनातनी हिन्दू' के उपनामसे लिखते हैं:[१]

आज हिन्दूधर्मकी स्थिति जितनी विषम है, उतनी ही विचित्र भी है। कट्टर हिन्दू शास्त्रोंके अनुसार चलनेका दावा करते हैं किन्तु ऐसा नहीं लगता कि कोई शास्त्र पढ़ता भी है। . . .

रूढ़ियाँ कौन-सी कट्टर सनातनी हैं इसके विषयमें कुछ नहीं मालूम। सनातन रूढ़ि क्या है? इस सम्बन्धमें भी हर प्रान्तकी कल्पनाएँ अलग-अलग हैं। सामाजिक धर्माचारका व्यापक अध्ययन कोई नहीं करता। . . . यदि आज हिन्दू प्रथाओंका कुछ अध्ययन कोई करता है तो यहाँके यूरोपीय हाकिम या पादरी।

हिन्दुओंमें सभी अपने प्रान्तके रिवाजको ही रूढ़ हिन्दू धर्म समझते हैं। . . .

इसका एक उदाहरण लें। आप कहते हैं कि अस्पृश्यता निवारणके बाद अस्पृश्योंकी स्थिति शूद्रोंके समान रहेगी। . . . पर क्या शूद्रोंकी स्थिति सब जगह एक समान है? जिन प्रान्तोंमें ब्राह्मण भी मांसाहार या मत्स्याहार करते हैं, वहाँ शूद्रोंकी एक प्रकारकी स्थिति है, जहाँ ब्राह्मणेतर दूसरे सवर्ण मांस-मत्स्यका सेवन करते हैं वहाँ शूद्रोंकी स्थिति दूसरे प्रकारकी है; और जिन प्रान्तोंमें ब्राह्मणोंके साथ वैश्यादि दूसरे वर्ण भी निरामिष हैं वहाँकी स्थिति तीसरे ही प्रकारकी है। आपने एक स्थानपर लिखा है, शूद्रोंके हाथका पानी पीनेमें अन्य वर्णोंको कोई ऐतराज नहीं होता तो अन्त्यजोंके हाथका पानी पीनेमें भी उन्हें कोई ऐतराज नहीं होना चाहिए।

अब जहाँ कितने ही हिन्दू मांसाहार करनेवालोंके हाथका पानी न लेनेका आग्रह रखते हैं वहाँ तिरस्कारकी अपेक्षा धार्मिक पवित्रताका विचार ही प्रधान

१. अंशतः उद्धृत।

होता है। कुछ हिन्दुओंको मांस खानेवालोंके हाथसे शुद्ध जल ग्रहण करनेमें कोई एतराज नहीं होता, लेकिन गोमांस खानेवाली जातियोंके हाथका पानी लेनेमें उन्हें बहुत एतराज होता है। . . .

यदि अन्त्यज लोग मुर्दार मांस खाना और अन्य लोग गोमांस खाना छोड़ दें तो अस्पृश्यता निवारणका कार्य आसान हो जायेगा और फिर उनके हाथका छुआ साफ पानी पीनेमें भी कोई एतराज न होगा। आप गुजरातके अन्त्यजोंकी एक परिषद् बुलाकर उनसे इतना करा सकें और उन्हींकी कौमके कुछ नेता इतना सुधार एकदम कर देनेके लिए कमर कस लें तो कितना अच्छा हो?

इस पत्रमें केवल एक पक्षीय दलीलें ही पेश की गई हैं। लेखककी इस शिकायतमें गुंजाइश तो है। हिन्दू धर्म एक जीवित धर्म है। उसमें चढ़ाव और उतार होते ही रहते हैं। वह संसारके नियमोंका ही अनुसरण करता है। मूलमें वृक्ष तो एक ही है; लेकिन उसकी शाखा-प्रशाखाएँ विविध हैं। उसपर ऋतुओंका असर होता है। उसमें वसन्त भी होता है और पतझड़ भी; शरद्ऋतु भी होती है और ग्रीष्म ऋतु भी। वह वर्षासे भी अप्रभावित नहीं रहता। उसके लिए शास्त्र हैं और नहीं भी हैं। उसका आधार एक ही धर्मपुस्तक नहीं है। 'गीता' सर्वमान्य है; लेकिन वह केवल मार्गदर्शिका है। रूढ़ियोंपर उसका असर बहुत कम होता है। हिन्दू धर्म गंगाका प्रवाह है। वह मूलमें शुद्ध है। उसमें मार्गमें मलिनता आती है, फिर भी जिस प्रकार गंगाकी प्रवृत्ति अन्तमें पोषक है उसी प्रकार हिन्दू धर्मकी प्रवृत्ति भी अन्ततः पोषक है। हरएक प्रान्तमें वह प्रान्तीय स्वरूप ग्रहण करता है, फिर भी उसमें एकता तो है ही। रूढ़ि धर्म नहीं है। रूढ़िमें परिवर्तन होगा; लेकिन फिर भी धर्मसूत्र तो वैसे-के वैसे ही बने रहेंगे।

हिन्दू धर्मकी शुद्धता हिन्दुओंकी तपश्चर्यापर निर्भर करती है। जब-जब इस धर्मपर संकट आया है, तबतब हिन्दू धर्मावलम्बियोंने तपस्या की है, उसकी मलिनताके कारण ढूंढे हैं और उनका निदान किया है। उसके शास्त्रोंमें वृद्धि होती ही रहती है। 'वेद', 'उपनिषद्', 'स्मृति', 'पुराण' और इतिहासादिका एक साथ एक ही समयमें सृजन नहीं हुआ है; बल्कि प्रसंग आनेपर ही विभिन्न ग्रन्थोंकी सृष्टि हुई है। इसलिए उनमें परस्पर विरोधी बातेंतक मिल जाती हैं। उनमें शाश्वत सत्य नहीं वरन् उनके समयमें शाश्वत सत्यका आचरण किस प्रकार किया गया था यही बताया गया है। उस समय जैसा आचरण किया गया था वैसा ही आचरण दूसरे समयमें भी किया जाये तो हम निराशाके कूपमें ही जा गिरेंगे। एक समय हमारे यहाँ पशु-यज्ञ होता था; क्या इसलिए आज भी करें? एक समय हम मांसाहार करते थे, इसलिए क्या हमें आज भी वैसा करना चाहिए? एक समय चोरोंके हाथ-पैर काट डाले जाते थे; क्या हम आज भी उनके हाथ-पैर काटें? एक समय हमारे यहाँ बहुपति प्रथा थी, क्या आज भी उसे रखा जा सकता है? एक समय हम नन्हीं-नन्हीं बालिकाओंका

विवाह कर देते थे तो क्या हम आज भी वैसा ही करें? एक समय हम लोगोंने कुछ मनुष्योंको तिरस्कृत माना था; क्या इसलिए हम आज उनकी सन्तानोंको भी तिरस्कृत ही मानें?

हिन्दू-धर्म जड़ बननेसे साफ इनकार करता है। ज्ञान अनन्त है, सत्यकी सीमा कोई खोज नहीं पाया है। आत्माकी शक्तिकी नई-नई शोधें होती ही रहती हैं और होती ही रहेंगी। हम अनुभवके पाठ पढ़ते हुए अनेक प्रकारके परिवर्तन करते रहेंगे। सत्य तो एक ही है, लेकिन उसे सम्पूर्ण रूपसे कौन जान सका है? 'वेद' सत्य है, 'वेद' अनादि है, लेकिन उसे पूर्णतः कौन जान सका है? आज जो 'वेद' के नामसे विख्यात है वह तो 'वेद' का करोड़वाँ भाग भी नहीं है। जो हम लोगोंके पास है उसका अर्थ भी पूर्णतया कौन जानता है?

इतना बड़ा जाल होनेके कारण ही तो ऋषियोंने हमें एक बहुत बड़ी बात सिखाई है, 'यथा पिण्डे तथा ब्रह्माण्डे'। ब्रह्माण्डका पृथक्करण करना असम्भव है। अपना पृथक्करण करके देखना शक्य है। और अपने आपको पहचाना कि सारे संसारको पहचान लिया। लेकिन अपनेको पहचाननेके लिए प्रयत्न करना आवश्यक है। और वह प्रयत्न भी निर्मल होना चाहिए। निर्मल हृदयके बिना प्रयत्नका निर्मल होना असम्भव है। यम-नियमादिके पालनके बिना हृदयकी निर्मलता भी सम्भव नहीं है। ईश्वरकी कृपाके बिना यम-नियमादिका पालन कठिन है, श्रद्धा और भक्तिके बिना ईश्वरकी कृपा प्राप्त नहीं हो सकती। इसीलिए तुलसीदासजीने रामनामकी महिमा गाई है और भागवतकारने द्वादशाक्षर-मन्त्र सिखाया है। जो हृदयसे इनका जप कर सकता है वही सनातनी हिन्दू है।

बाकी और सब तो अखा भगतकी भाषामें 'अन्ध कूप' हैं।

अब लेखककी शंकाओंका विचार करें। यूरोपीय लोग हमारे रीति-रिवाजोंको देखते अवश्य हैं; लेकिन मैं उसे अध्ययनके जैसा सुन्दर नाम न दूँगा। वे तो उन्हें आलोचना करनेकी दृष्टिसे ही देखते हैं, इसलिए मैं अपना धर्म उनके पाससे नहीं सीख सकता।

भूतकालमें गोमांसादि खानेवालोंका बहिष्कार भले ही उचित हो, लेकिन आज तो वह अनुचित और असम्भव है। अस्पृश्य माने जानेवाले लोगोंसे गोमांसादिका त्याग कराना हो तो यह केवल प्रेम ही से होगा, उनके विवेकको जागृत करनेसे ही होगा। उनका तिरस्कार करनेसे यह सम्भव नहीं होगा। उनकी बुरी आदतें छुड़ानेके प्रेममय प्रयोग हो ही रहे हैं; लेकिन हिन्दू धर्मकी परिसीमा खाद्याखाद्यमें ही नहीं है। उससे अनन्तकोटि अधिक महत्त्वकी बात अन्तराचरण है, सत्य और अहिंसादिका सूक्ष्म पालन है। गोमांसका त्याग करनेवाले दम्भी मुनिकी अपेक्षा गोमांस खानेवाला दयामय, सत्यमय और ईश्वरका भय मानकर चलनेवाला मनुष्य हजार गुना अधिक अच्छा हिन्दू है। और जो सत्यवादी और सत्याचारी है, जिसने गोमांसादिके आहारमें हिंसा देखी है, जिसने उसका त्याग किया है तथा जो जीव-मात्रके प्रति दयाभाव रखता है उसे तो हमारे कोटिशः नमस्कार हैं। उसने तो ईश्वरको देखा है, पहचाना है, वह परमभक्त है; वह जगद्गुरु है।

आज हिन्दू धर्मकी और अन्य धर्मोंकी परीक्षा हो रही है। सनातन सत्य एक ही है। ईश्वर भी एक ही है। लेखक, पाठक और हम सब मतमतान्तरोंके मोह-जालमें न फँसकर सत्यके सरल मार्गका ही अनुसरण करेंगे तभी हम लोग सनातनी हिन्दू रह सकेंगे। सनातनी माने जानेवाले तो बहुतसे लोग भटक रहे हैं। उसमें कौन जानता है कि किसका स्वीकार होगा। रामनाम लेनेवाले बहुतसे रह जायेंगे और चुपचाप रामका काम करनेवाले थोड़ेसे लोग विजयमाला पहन लेंगे।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, ७-२-१९२६

१७२. पत्र : सतीशचन्द्र दासगुप्तको

८ फरवरी, १९२६

प्रिय सतीश बाबू,

आज मेरा मौनवार है, इसलिए आपको लिखनेके लिए कुछ मिनट मिल गये। अरुणकी अन्य लड़कोंके साथ घनिष्ठता हो गई है। आशा है वह जल्दी ही गुजराती सीख जायेगा। किन्तु हेमप्रभा देवी प्रसन्न नहीं हैं। लगता है, वे रात-दिन घरकी याद करती रहती हैं। उन्होंने. वहाँ जानेकी अनुमति माँगी थी। मैंने उन्हें समझाया, किन्तु उन्होंने बासे फिर कहा कि कलकत्तामें सभी लोगोंने उनसे लौट जानेके लिए जोर देकर कहा था। उन्हें आपकी बड़ी चिन्ता है। उन्हें लगता है, आप जीवनमें पहले जैसा रस नहीं लेते। अब आप उदास रहते हैं और खादीके लिए हदसे ज्यादा चिन्ता किया करते हैं। हो सकता है वापस जानेकी उनकी इच्छा उपयुक्त हो; किन्तु मैं बखूवी जानता हूँ कि हदसे ज्यादा चिन्ता करनेसे आप तो खादीको नुकसान ही पहुँचायेंगे। हर काम 'निर्ममो भूत्वा'[1] करना चाहिए। मैं आपसे इस बातका वचन चाहता हूँ कि खादीका कुछ भी क्यों न हो, आप उसके बारेमें क्षुब्ध नहीं होंगे। हम कौन होते हैं? यदि यह अच्छी चीज है तो अवश्य ही ईश्वर स्वयं उसे समृद्ध बनायेगा। हम तो निमित्त-मात्र हैं। यदि हम अपनेको शुद्ध रखते रहें और पवित्रताके प्रवेशके लिए सदा द्वार खुले रखें तो हमें जो करना चाहिए था वह हम कर चुके। हमें अपनी लगाम उसके हाथमें दे देनी चाहिए, वह जैसा चलाये वैसे हमें चलना चाहिए।

मैं नहीं चाहता कि आप उनका मन अशान्त करें। मैं जो कुछ देखता हूँ वह आपको लिख भेजता हूँ, ताकि आप मुझे बता सकें कि क्या करना चाहिए और उन्हें सान्त्वना किस प्रकार देनी चाहिए। वास्तविक सान्त्वना तो उनको आपकी ओरसे मिलनी चाहिए। मैं अपनी ओरसे तो सतर्क रहता ही हूँ। किन्तु यदि उनकी

१. देखिए **भगवद्गीता**, अ० ३, ३०।

सुख-सुविधाओंके प्रति कोई उपेक्षा हुई है और उन्होंने उसके बारेमें आपसे कुछ कहा है तो आप मुझे सब-कुछ बतानेमें संकोच न करें।

सस्नेह,

बापू

अंग्रेजी पत्र (एस० एन० १४०८१) की फोटो-नकलसे।

१७३. प्रमाणपत्र : हासानन्दको

साबरमती आश्रम
फाल्गुन शुक्ल ९, १९८२ [८ फरवरी, १९२६]

प्रोफेसर हासानन्दने आश्रमवासियोंको अपनी करामतें बताई थीं और साथ-साथ देशहितकी बातें सुनाते थे।

मोहनदास गांधी

मैजीशियन ऑफ मैजीशियन्स

१७४. तार : सोराबजीको[1]

[८ फरवरी, १९२६ या उसके पश्चात्][2]

सोराबजी
सेवॉय होटल
दिल्ली

दोनों विधेयकोंमें रंग-भेद लागू होता है। खान विधेयक प्रभावकी दृष्टिसे उतना बुरा नहीं जितना कि एशियाई विधेयक। दोनोंकी मुखालिफत होनी चाहिए।

गांधी

अंग्रेजी तार (एस० एन० ११९३४)की माइक्रोफिल्मसे।

१. यह सोराबजीके ८ फरवरीके तारके उत्तरमें भेजा गया था। उस तारका मजमून यह था: "मेरा निजी खयाल तो यह है कि खान और निर्माण संशोधन विधेयकका पास होना एशियाई-विरोधी विधेयकसे अधिक हानिकर है। इसके द्वारा पहली बार स्थायी रंग-भेदको कानूनन मान्यता मिलती है। इसी सिद्धान्तके लिए आप लड़े थे। क्या मेरे निष्कर्ष ठीक हैं? कृपया अपनी राय तार द्वारा सेवॉय होटलके मार्फत भेजें। सस्नेह।"

२. डाककी मुहरसे।

१७५. पत्र : नरगिस डी० कैप्टेनको

साबरमती आश्रम
९ फरवरी, १९२६

चूँकि मुझे एक अच्छे आशु-लिपिककी सहायता मिल गई है, इसलिए मैं आजसे अपने पत्र-व्यवहारमें और अधिक तत्पर रहूँगा। इस समय मैं कितना विश्राम ले रहा हूँ यह जानकर आपको खुशी होगी। सुबह प्रार्थनाके लिए उठनेके बाद मैं शाम तक तीन बार सोता हूँ और जहाँतक सम्भव होता है बिस्तरपर लेटा रहता हूँ, बहुत कम लोगोंसे मिलता हूँ, 'नवजीवन' और 'यंग इंडिया'के लिए जो आवश्यक होता है वही लिखता हूँ तथा उन्हीं पत्रोंका उत्तर देता हूँ जिनके जवाब लिखना निहायत ज़रूरी होता है। शामकी प्रार्थनाके बाद कोई काम नहीं करता। धीरे-धीरे शक्ति आ रही है। मौसम ठण्डा और सुहावना है। इसलिए मेरे बारेमें चिन्ता करनेकी आवश्यकता नहीं।

मैं चाहता हूँ कि कश्मीर जानेकी बात आप अन्तिम रूपसे स्वीकार कर लें और वहाँ जरूर जायें और बम्बईमें फिर काम सम्हालनेसे पहले अपना स्वास्थ्य ठीक कर लें। इसलिए कृपया जितनी जल्दी हो सके उतनी जल्दी आप कश्मीर पहुँच जायें। यह जाननेपर कि आपका सिरदर्द पूरी तरहसे चला गया है और आपमें अपने कठिन भावी कार्यक्रमका बोझ उठानेके लिए पर्याप्त सामर्थ्य आ गया है, मुझे प्रसन्नता होगी।

आप, मिठूबहन तथा जमुनाबहनके लिए मैं बहुतसी योजनाएँ बना रहा हूँ, किन्तु जबतक आप स्वस्थ नहीं हो जातीं तबतक उनपर अमल करना सम्भव नहीं।

मीराकी जिस बदनामीका मैंने उल्लेख किया था वह लन्दनके 'संडे क्रॉनिकल' में छपी थी और 'इंडियन डेली मेल'ने उसे उद्धृत किया था। मीराने इसका साहसपूर्ण और समुचित उत्तर दिया है। कहनेकी जरूरत नहीं कि 'बदनामी' शब्द अतिशयोक्तिपूर्ण है, किन्तु मेरा खयाल था कि वह अभद्रता आपकी नजरोंमें भी आई होगी और इसलिए मेरा आशय आपकी समझमें आ गया होगा।

क्या आपने वह सारी खादी जो मैं छोड़ आया था, ठिकाने लगा दी है?

श्रीमती नरगिस कैप्टेन
भुज (कच्छ)

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १४०८२) की माइक्रोफिल्मसे।

१७६. पत्र : च० राजगोपालाचारीको

साबरमती आश्रम
९ फरवरी, १९२६

प्रिय च० राजगोपालाचारी,

महादेव यहाँ नहीं है। वह गुजरातमें एक सम्मेलनमें शरीक होने गया हुआ है। उसके नाम आपका पत्र मैंने खोला। सुब्बैयाने[1] अपना काम अभी-अभी शुरू किया है। इसलिए मैं अपना पत्र-व्यवहार पहलेकी अपेक्षा अब ज्यादा अच्छी तरहसे कर सकूँगा।

मैं कुनैन नहीं ले रहा हूँ। क्या आपने कुनैनके द्वारा एक भी बीमारी निश्चित रूपसे अच्छी होती देखी है? मैंने उसे तीन या चार दिन थोड़ी-थोड़ी मात्रामें लिया। इस समय बुखार नहीं है। डा० कानूगा प्रति सप्ताह आयरन और आर्सनिककी एक सुई लगा रहे हैं। दो सुइयाँ लगा चुके हैं। पता नहीं इनसे भी कोई लाभ होगा या नहीं। किन्तु मैं यह होने दे रहा हूँ, ताकि मैं अपनेको बहससे तथा सम्भावित जोखिमसे बचा सकूँ। आजकल तो मैं अपनेको लगभग पूरा-पूरा विश्राम दे रहा हूँ। दिनमें खूब सो लेता हूँ। धीरे-धीरे ताकत आ रही है। जबसे एपेंडिसाइटिसका ऑपरेशन हुआ है, तबसे किसी चीजसे भी मेरा स्वास्थ्य इतना कमजोर नहीं हुआ था जितना कि पिछले बुखारसे हुआ है।

जेराजाणीके[2] विज्ञापनकी आप परवाह न करें। वह खादीका विज्ञापन अपने तरीकेसे कर रहा है।

'नेशनल मेडिकल कालेज' के लिए मैं भला क्या कर सकता हूँ? जिनके हाथोंमें उसकी व्यवस्था है, उनका कामं करनेका अपना ही तरीका है। मैं इसे अनुचित नहीं कहता, लेकिन मैं उसे समझ नहीं सका। मैं हस्तक्षेप करनेकी धृष्टता नहीं करूँगा। वैसा करना मेरे लिए ठीक नहीं होगा। मैं नहीं समझता कि भारतीय चिकित्सकोंसे अपील करनेपर वांछित आर्थिक सहायता उपलब्ध होगी। हम शिक्षित व्यक्तियोंके आत्मत्यागकी सुनिश्चित सीमाएँ हैं। कलकत्तामें एक इसी प्रकारकी संस्था है जो अधिक पुरानी है; उसकी व्यवस्थामें कोई खराबी नहीं है फिर भी उसे ऐसी ही आर्थिक कठिनाइयोंसे गुजरना पड़ रहा है। इस प्रकारकी संस्थाओंको एक खास तरीकेसे ही चलना पड़ेगा।

१. गांधीजीके पास भेजे गये आशुलिपिक।
२. मूलमें जीवराजानी है।

आपके सबसे ताजे लेखमें मैंने कुछ काट-छाँट की है। आप उसे देख लें और जो परिवर्तन मैंने किये हैं उनपर अपनी राय दें।

श्रीयुत च० राजगोपालाचारी
गांधी आश्रम
पुदुपालयम,
तिरुच्चङ्गोड

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १४०८३) की फोटो-नकलसे।

१७७. पत्र : डी० वी० कालेको

साबरमती आश्रम
९ फरवरी, १९२६

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला। यद्यपि मेरी इच्छा आपको यहाँ रखनेकी है किन्तु मेरे सामने एक कठिनाई है। इस समय मैं थोड़ा-बहुत बीमार हूँ। मैं आश्रममें आपको अपने पास नहीं रख सकूँगा। किसी भी साहित्यिक महत्त्वाकांक्षा या अभिरुचिको सन्तुष्ट करना बड़ा कठिन होता है।

आश्रम एक ऐसा स्थान है जो विशेषकर शारीरिक श्रमके उद्देश्यसे बनाया गया है। इसलिए आप यहाँ निरन्तर किये जानेवाले शारीरिक परिश्रमसे मसलन पाखाना-सफाई, बुनाई, कताई, धुनाई आदिसे सन्तुष्ट नहीं होंगे। फिर प्रोफेसर बीजापुरकरकी इच्छा और अनुमतिके बिना मेरे लिए आपको यहाँ भरती करना किसी प्रकार भी सम्भव नहीं होगा।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत डी० वी० काले
मन्त्री,
नूतन महाराष्ट्र विद्या-प्रसारक मण्डल
तलेगाँव (दाभाड़े)

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १४०८४)की माइक्रोफिल्मसे।

१७८. पत्र : रायजादा भगतरामको

साबरमती आश्रम
९ फरवरी, १९२६

प्रिय मित्र,

आपका तार मिला। कल मैंने उसका उत्तर तारसे[1] भेज दिया है।

आप मेरे लिए जो चिन्ता कर रहे हैं उसकी मैं कद्र करता हूँ। मुझे आपके यहाँ रहना पसन्द भी है किन्तु मैं इस लोभका संवरण करूँगा। यद्यपि साबरमतीका मौसम जालन्धरके समान स्फूर्तिदायक नहीं है; किन्तु फरवरी और मार्चमें वह कष्ट-कारक नहीं होता। मुझे इन महीनोंमें आश्रममें ही रहना है। मैं प्रतिदिन शक्ति प्राप्त कर रहा हूँ और यथासम्भव विश्राम ले रहा हूँ।

अप्रैलमें डलहोजी जानेका विचार आकर्षक है, परन्तु मुझे मार्चके मध्यतक इसके बारेमें अपना अन्तिम निर्णय स्थगित रखना होगा। फिलहाल देवलाली ही जानेका विचार है। पंचगनी ठहरनेका प्रस्ताव भी आया है और अब अल्मोड़ा और श्रीनगरमें भी आमन्त्रित किया जा रहा हूँ। मेरे लिए तत्काल यह निर्णय करना कठिन है कि स्वास्थ्यकी दृष्टिसे कहाँ जाकर ठहरना सबसे अधिक फायदेमन्द होगा। साथ ही मैं आपसे यह हरगिज नहीं कहूँगा कि आप डलहौजीमें अपना घर मेरे लिए रोके रहें। यदि इस बीच किसी मित्रको उसकी आवश्यकता हो या स्वयं आपको ही उसकी जरूरत पड़े, तो आप उसे देने या उसका उपयोग करनेमें संकोच न करें। जब निर्णय करनेका अवसर आयेगा, तब देखा जायेगा। मिल गया तो ठीक, न मिला तो भी ठीक।

हृदयसे आपका,

रायजादा भगतराम, बार-एट-लॉ
जालन्धर सिटी

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १४०८५) की फोटो-नकलसे।

१. उपलब्ध नहीं है।

१७९. पत्र : के० सन्तानम्को

साबरमती आश्रम
९ फरवरी, १९२६

प्रिय सन्तानम्,

आपको मैंने कल तारसे उत्तर भेज दिया है। उस आशयका उत्तर भेजते समय हृदय बड़ा क्षुब्ध हुआ। किन्तु जब मैं कृष्णा और उसके बच्चोंकी ओर व्यक्तिगत रूपसे स्वयं ध्यान दे सकूँ और जब आश्रममें बहुत अधिक भीड़ हो गई हो, इतना ही नहीं मेरी उपस्थितिके कारण भीड़ बढ़ती भी जा रही हो, ऐसी स्थितिमें मैं नहीं चाहता था कि वह यहाँ रहे।

यद्यपि मैं अपना कुछ कार्य निबटा लेता हूँ, फिर भी अपना अधिक समय तो बिस्तरपर ही बिताता हूँ। श्रीमती गांधी हैरान हैं। यदि कृष्णा यहाँ आ जाती और फिर उसकी उपेक्षा होती या उसे किसी भीड़भाड़वाले कमरेमें टिका दिया जाता, तो मैं अपनेको कभी क्षमा न करता। साथ ही यह भी कह दूँ कि यह उसका घर है और यदि वह उक्त चेतावनीकी परवाह न करके आना ही चाहे तो वह अवश्य आये और अन्य आश्रमवासियोंके साथ कठिनाइयाँ और असुविधाएँ झेले।

इस बातकी सम्भावना नहीं है कि मार्चके अन्तसे पहले मैं किसी पहाड़ी स्थानपर जा सकूँगा। आशा है कि आप दोनों कताई कर रहे हैं।

हृदयसे आपका,

पण्डित के० सन्तानम्
१०, निस्बत रोड, लाहौर

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १४०८६) की फोटो-नकलसे।

१८०. पत्र : कौंडा वेंकटप्पैयाको

साबरमती आश्रम
९ फरवरी, १९२६

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला। हाँ, इस पिछले बुखारने मुझे बहुत कमजोर बना दिया है। साबरमतीकी जलवायु इन दिनों काफी ठण्डी और अच्छी है; मैं पर्याप्त विश्राम भी ले रहा हूँ। यदि तनिक भी सम्भव हुआ तो गरमी शुरू हो जानेपर मेरा कहीं बाहर जानेका विचार अवश्य है; किन्तु मैं यह निर्णय नहीं कर पाया हूँ कि कहाँ जाऊँगा। किन्तु मुझे आपके बारेमें तो जो-कुछ मालूम हुआ है, उससे मुझे यह आशंका हुई है कि आपकी स्थिति पहलेसे अच्छी न होकर शायद और भी खराब

हो गई हैं। क्या आपको अब भी घरेलू चिन्ताएँ घेरे हैं? आप कानपुरके कांग्रेस अधिवेशनमें शामिल क्यों नहीं हो सके, यह मुझे मालूम हो गया था।

मुझे याद आ रहा है कि हनुमन्तरावने कुछ मास पूर्व एक मित्रके बारेमें मुझे लिखा था। मेरा खयाल है, ये वे ही सज्जन हैं जिनका आपने अपने पत्रमें उल्लेख किया है। तबसे उनके बारेमें मुझे कोई और समाचार नहीं मिला।

अपने बारेमें पूरा हाल तथा आन्ध्र देशकी वर्तमान गतिविधियोंके बारेमें मुझे विस्तारपूर्वक अवश्य लिखें।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत कौंडा वैंकटप्पैया गारू
गुन्टूर

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १४०८७) की माइक्रोफिल्मसे।

१८१. पत्र : सतीशचन्द्र दासगुप्तको

साबरमती आश्रम
९ फरवरी, १९२६

प्रिय सतीशबाबू,

मुझे हेमप्रभा देवीके पत्रके साथ आपके दो पत्र मिले। जो सूत आपने भेजा है वह सचमुच बहुत ही महीन है। यदि उसे बुनवाया जा सके, तो यह एक बहुत बड़ी बात हो जायेगी।

स्वयं बीमारीका शिकार हो जानेके कारण मैं अपने मित्रोंको बीमार पड़नेके विरुद्ध चेतावनी नहीं दे सकता। इसलिए मैं आपसे केवल नम्रतापूर्वक निवेदन करता हूँ कि आप अपने स्वास्थ्यको संभाले रहें। यदि आपका स्वस्थ शरीर चिन्ता या अधिक श्रमके कारण टूट गया तो यह देखकर मैं दुःखी हो जाऊँगा। आपको बहुत ही सावधान रहना होगा और आरामकी जरूरत आ पड़नेपर आराम भी करना होगा।

पिछले बुखारने मुझे अन्य अवसरोंकी अपेक्षा अधिक कमजोर बना दिया है। इसलिए मैं अपने शरीरको पर्याप्त विश्राम दे रहा हूँ। जितना बिलकुल जरूरी है, मैं केवल उतना ही काम करता हूँ; अर्थात् थोड़ा-सा पत्र-व्यवहार और थोड़ा-सा सम्पादन।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत सतीशचन्द्र दासगुप्त
खादी प्रतिष्ठान
१७० बहू बाजार स्ट्रीट, कलकत्ता

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १४०८८) की फोटो-नकलसे।

१८२. पत्र : जमनालाल बजाजको

मंगलवार [९ फरवरी, १९२६][१]

चि० जमनालाल,

तुम्हारा पत्र मिला। मणिबहनके सम्बन्धमें जब तुम यहाँ आओगे तब सब बातें तय करेंगे।

मेरा वजन भी थोड़ा तो बढ़ा ही है। इस सप्ताहमें और बढ़नेकी आशा है। चिन्ता करनेका कोई कारण नहीं है।

तुम्हारे द्वारा भेजे गये सन्तरे मुझे मिल रहे हैं।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती पत्र (जी० एन० २८५७) की फोटो-नकलसे।

१८३. तार : नॉर्थ अमेरिकन न्यूज एलाएन्सको[२]

[१० फरवरी, १९२६]

लिखनेका अवकाश न होनेका खेद। मैंने कभी पैसेके लिए नहीं लिखा।

गांधी

अंग्रेजी तार (एस० एन० १२४६३) की फोटो-नकलसे।

१८४. पत्र : कुष्ठाश्रम, पुरुलियाके सुपरिंटेंडेंटको

साबरमती आश्रम
१० फरवरी, १९२६

प्रिय मित्र,

जब मैं आपके अस्पतालमें आया था, आपने मुझे एक ऐसे तेलका नाम बताया था जिसकी सुई कोढ़के उपचारमें लगाई जाती है। मैं नहीं जानता कि उस तेलकी सुई लगानेसे सफेद कोढ़में भी लाभ होता है या नहीं। एक मित्रके शरीरमें सफेद

१. डाककी मुहरसे।

२. यह उनके १० फरवरीके तारके उत्तरमें भेजा गया था। उनका तार इस प्रकार था: "क्या आप अमेरिकन न्यूज पेपर पब्लिकेशनके लिए संस्मरण लिखेंगे? सूचित करें कितने शब्दोंका होगा और कितना पारिश्रमिक लीजिएगा? — जेम्स वॉटॅन नॉर्थ अमेरिकन न्यूज एलाएन्स। तारका पता नन्यूजल पेरिस।"

कोढ़के लक्षण नजर आ रहे हैं। उनके मुँहपर ओठोंके पास एक बड़ा-सा सफेद दाग पड़ गया है। यह सूचित करनेका कष्ट कीजिए कि इस तेलकी सुई लगानेसे क्या इस बीमारीमें कुछ लाभ हो सकता है, कृपा होगी। यहाँके डाक्टर उन सज्जनके लिए कुछ भी करनेमें असमर्थ हैं।

हृदयसे आपका,

सुपरिंटेंडेंट
कुष्ठाश्रम
पुरुलिया (बिहार)

अंग्रेजी प्रति (एस० एन० १४०९१) की माइक्रोफिल्मसे।

१८५. पत्र : धीरेन्द्रनाथ दासगुप्तको

साबरमती आश्रम
१० फरवरी, १९२६

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला। अ० भा० च० संघकी बैठक इस मासकी २६ वीं तारीखको होगी। मेरा खयाल है, आपके प्रार्थनापत्रपर तभी विचार किया जायेगा। मेरे दौरेका कार्यक्रम स्थगित कर दिये जानेके फलस्वरूप संघकी अर्थ-व्यवस्थामें गतिरोध आ गया है और उन प्रार्थनापत्रोंके लिए जो इस समय हाथमें हैं, धन बहुत थोड़ा रह गया है। इसलिए हो सकता है कि आपको सहायता देनेमें कोई अपरिहार्य कठिनाई आ जाये।

मेरी ताकत धीरे-धीरे फिर लौट रही है।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत धीरेन्द्रनाथ दासगुप्त
विद्याश्रम
कुलनारा पोस्ट
(सिलहट)

अंग्रेजी प्रति (एस० एन०. १४०८९) की माइक्रोफिल्मसे।

१८६. पत्र : एस्थर मैननको

साबरमती आश्रम
१० फरवरी, १९२६

रानी बिटिया,

तुम्हारा पत्र और मैननका भेजा एक पार्सल भी मिला। पार्सलकी दवाओंके सम्बन्धमें कोई हिदायत साथ नहीं है; हाँ, यह जरूर कहा गया है कि पहले चूर्ण लिया जाये और बोतलमें मलेरियाकी दवा है। जहाँतक मेरा अपना सवाल है, फिलहाल मैं मलेरियासे मुक्त हूँ। यदि फिर उसका आक्रमण हुआ तो भी कह नहीं सकता, मैं यह दवा ले सकूँगा या नहीं; क्योंकि, जैसा कि तुम जानती हो, चाहे दवा हो या भोजन, मैं २४ घंटोंमें पाँचसे अधिक चीजें नहीं लेता। इन आयुर्वेदिक दवाओंमें प्राय: दर्जनों चीजें मिली रहती हैं। इसलिए वे चाहे कितनी ही लाभदायक क्यों न हों, मेरे लिए तो बिलकुल बेकार हैं। किन्तु मलेरिया यहाँ बहुतोंको होता रहता है। यदि मुझे हिदायतें मिल जायें तो मैं मैननकी दवाका उन लोगोंपर खुशीके साथ प्रयोग करके देखूँगा। इसलिए उनसे कहना कि वे मेरे पास कृपया हिदायतें भेज दें; और यदि उन्हें दवाका नुस्खा मालूम हो तो वह भी सूचित कर दें।

अब मैं मित्रतापर आता हूँ। तुमने "मित्र" शब्दका उपयोग तीन विभिन्न अर्थोंमें किया है। यदि हममें क्षमता हो तो हम ईसा-जैसे मित्र बन सकते हैं। यहाँ मित्रका अर्थ है दयालु सहायक। जो लोग हमसे बड़े हैं उन लोगोंके तथा हमारे बीचकी मित्रता भी, एकतरफा चीज है। पिता अपने बच्चोंका मित्र होता है; उसे होना भी चाहिए। यह अच्छोंकी संगतिके अर्थमें भी प्रयुक्त है, इसे संस्कृतमें सत्संग कहते हैं। मैंने जिस मित्रताके बारेमें लिखा है वह है दो या दोसे अधिक व्यक्तियोंके बीचकी घनिष्ठता — घनिष्ठता जिसमें कोई दुराव-छिपाव नहीं होता। इसमें सहायता पारस्परिक रहती है; और यह सहायता उद्देश्य न होकर मित्रताके परिणामके रूपमें प्रकट होती है। यह मित्रता घटित होती है एक अकथनीय आकर्षणके कारण। दो व्यक्तियोंकी इस प्रकारकी अनन्य मैत्रीको मैंने अवांछनीय और ईश्वरके साथ ऐक्य करनेमें बाधक माना है। जिस व्यक्तिका वर्णन मैंने अपनी 'आत्मकथा'में किया है उसके और मेरे बीच इसी प्रकारकी मित्रता थी।

क्या तुम्हें कताईमें सहज दिलचस्पी नहीं होती? यदि तुम कताई करती हो तो मुझे तुमसे आशा करनी चाहिए कि तुम उसे इसलिए करोगी कि तुम्हारी उसमें दिलचस्पी है। यदि तुम्हारे मनमें उसके प्रति लगाव है, तो उसकी कार्यविधिको अच्छी तरहसे सीख लो और अपने चरखेको उसी प्रकार बिलकुल ठीक हालतमें रखो जिस प्रकार रसोई बनानेमें दिलचस्पी रखनेके कारण तुम अपने स्टोव या अँगीठीको रखती हो।

मेरे लिए चरखा देशके सबसे गरीब लोगोंके साथ समानता स्थापित करनेका प्रतीक है और उसपर प्रतिदिन सूत कातना उन गरीबों और अपने बीचके उस सम्बन्धको नये सिरेसे जोड़ना है। इस प्रकार समझनेपर वह मेरे लिए सदैव सौन्दर्य और आनन्दकी वस्तु है। मैं बिना भोजनके रहना पसन्द करूँगा, किन्तु बिना चरखेके नहीं; और मैं कहूँगा कि तुम चरखेके इस महान् तात्पर्यको समझो। यदि तुम्हें कताई करनी हो तो मैं तुमसे यह आशा नहीं करता कि तुम ऐसा महज इसलिए करो कि मैंने कताईको अच्छा बताया है या कांग्रेसने सिफारिश की है अथवा इस खयालसे कि उससे कोई आर्थिक लाभकी सम्भावना है।

मैं कुछ-न-कुछ शक्ति रोज प्राप्त करता जा रहा हूँ।

तुम सबको प्यार,

तुम्हारा,
बापू

श्रीमती एस्थर मैनन
पोर्टोनोवो (एस० आई० आर०)

अंग्रेजी पत्रकी फोटो-नकलसे।
सौजन्य: नेशनल आर्काइव्ज ऑफ इंडिया

परिशिष्ट

परिशिष्ट १

'यंग इंडिया' में विश्वयुद्धसे सम्बन्धित श्री पेजकी पुस्तिकाका प्रकाशन

क्रम सं०	शीर्षक	प्रकाशन तिथियाँ
१.	युद्ध क्यों?	२६ नवम्बर; १०, १७ और २४ दिसम्बर, १९२५; १४ और २१ जनवरी, १९२६।
२.	युद्धसे विनाश	२८ जनवरी और ४ फरवरी, १९२६।
३.	युद्धसे नैतिक क्षति	११ और १८ फरवरी, १९२६।
४.	क्या युद्ध रोका जा सकता है?	२५ फरवरी; ४, ११, १८ और २५ मार्च; १, ८, और १५ अप्रैल, १९२६।
५.	विश्वयुद्ध	२२, २९ अप्रैल और ६ मई, १९२६।

सत्याग्रह आश्रम न्यास-पत्रमें

क्रम-सं०	गाँव जहाँ यह स्थित है	भूमि पट्टेका प्रकार	सर्वेक्षण संख्या	क्षेत्र		भू-राजस्व	चौहद्दी	
				एकड़	गुंठा	रु० आ० पा०	पूर्व	पश्चिम
१	राणीप	सरकारी	३६१	११	१३	२२–०–०	पानीका नाला राणीप	राणीपको जानेवाली सड़क
२	,,	,,	३६२	१०	१८	१४–०–०	,,	,,
३	,,	,,	३६६	६	१	१०–०–०	,,	,,
४	वाडज	,,	४५४	८	१९	३०–०–०	सर्वेक्षण संख्या ४५१ के अनुसार बंजर जमीन	१५१
५	,,	,,	५३२	९	३९	२३–०–०	५३४	बंजर जमीन
६	,,	सेवामें इनाम स्वरूप प्राप्त	५५८	१	२८	४–०–०	५६०	१५७
७	,,	,,	५५९/२	१	२८	४–०–०	५६०	१५७
८	,,	,,	५५८	०	१	०–२–०	५६१	सेंट्रल जेल सड़क
९	,,	सरकारी	५३३	६	१८	२०–०–०	मणिलाल शम्भूकी जमीन	सरकारी जमीन
१०	,,	,,	५२१	४	३	१–०–२	विनिमयमें प्राप्त	रस्तापुर गाँवकी
११	,,	,,	५२२	९	२३	४–१४–३	,,	,,
१२	,,	मुफ्त इनाम	५६०	२ बंजर जमीन	१३ १४	५–९–० १–१–१ ——— ४–९–०	साबरमती नदी	५५९
१३	,,	सरकारी	५२४	२	१६	४–०–०	साबरमती स्टेशनको जानेवाली सड़क	५२३
१४	,,	,,	५६१	६	७	१५–०–०	साबरमती नदी	साबरमती स्टेशनको जानेवाली सड़क
१५	,,	इनामी	५१२	५	०	५–९–० ४–१२–० ०–१३–० ——— ५–९–०	साबरमतीको जानेवाली सड़क	५१२
१६	,,	,,	५६२	४ १ ——— ३–	२२ ३ ——— १९	५–९–० ४–१२–० ०–१२–० ——— ५–९–०	साबरमती नदी	साबरमती स्टेशनको जानेवाली सड़क
१७	,,	सेवामें इनाम स्वरूप प्राप्त	५२५	१–२१		३–८–०	सेंट्रल जेलको जानेवाली सड़क	५२२
१८	,,	सरकारी	५२३	९–७		२३–०–०	५२४/५२५/५२६	५२२

संलग्न अनुसूची 'अ'

चौहद्दी		भूमि पट्टाधारीका नाम	टिप्पणी
उत्तर	दक्षिण		
भालचन्द्का मकान और कुबेर महादेवजी तथा अन्य लोगोंकी जमीन	वाडज गाँवकी बंजर जमीन	मगनलाल खु० गांधी	
,,		,,	
,,	,,	,,	
राणीप गाँवकी सीमा	४५५–४५३	,,	
सर्वेक्षण संख्या ५३३ और ५१८ के अधीन बंजर जमीन	५३१	,,	
लीला तेतार और पंजा तेतार की जमीन	५६१	,,	
उसी सर्वेक्षण संख्याका भाग	५५४	,,	
५५७	५६१	,,	
घासपातसे भरी जमीन	कालिदास जीजीकी जमीन	मगनलाल खु० गांधी	
जमीनका एक टुकड़ा		मोहनदास क० गांधी	
,,	,,	,,	
५५३	५५१	,,	
५२५	५१२	,,	
५५९–५६०	५६२	,,	चार कमरोंका खंड; छपरेला बरामदा; खादका गढ़ा; गौशाला और मगनलाल भाईका मकान
५२३	५११	,,	छात्रावास, पुस्तकालय और रसोईघर, अध्यापकोंके घरसंख्या १ और २, व्यायामशाला, कुआँ और अस्पताल की इमारत; बुनाईघर, कारखाना, ८ कमरोंका खंड, कुआँ, बापूजीका घर और शौचालय
५६१	उसी सर्वेक्षण संख्याके अनुसार आचार्य मणिशंकरकी १ एकड़, ३ गुंठा जमीन	,,	
बिल्वेश्वर माधवकी जमीन	मणिलाल पीताम्बरकी जमीन	,,	इमाम साहबका मकान
५२७	५१३	,,	बुनकरों और जमनालालजीके मकान

सामग्रीके साधन-सूत्र

गांधी स्मारक संग्रहालय, नई दिल्ली: गांधी साहित्य और सम्बन्धित कागजातका केन्द्रीय संग्रहालय एवं पुस्तकालय; देखिए खण्ड १, पृष्ठ ३५९।

साबरमती संग्रहालय: पुस्तकालय तथा संग्रहालय जिसमें गांधीजीके दक्षिण आफ्रिकी काल तथा १९३३ तकके भारतीय कालसे सम्बन्धित कागजात सुरक्षित हैं; देखिए खण्ड १, पृष्ठ ३६०।

राष्ट्रीय अभिलेखागार (नेशनल आर्काइव्ज़ ऑफ इंडिया), नई दिल्ली।

'अमृतबाजार पत्रिका': कलकत्तासे प्रकाशित अंग्रेजी दैनिक।

'कुमार': अहमदाबादसे प्रकाशित गुजराती मासिक।

'गुजराती': बम्बईसे प्रकाशित गुजराती साप्ताहिक।

'नवजीवन': गांधीजी द्वारा सम्पादित और अहमदाबादसे प्रकाशित गुजराती साप्ताहिक।

'बॉम्बे क्रॉनिकल': बम्बईसे प्रकाशित अंग्रेजी दैनिक।

'यंग इंडिया': गांधीजी द्वारा सम्पादित और अहमदाबादसे प्रकाशित अंग्रेजी साप्ताहिक।

'लीडर': इलाहाबादसे प्रकाशित अंग्रेजी दैनिक।

'साबरमती': राष्ट्रीय शाला, साबरमती, अहमदाबादकी पत्रिका।

'हिन्दुस्तान टाइम्स': नई दिल्लीसे प्रकाशित अंग्रेजी दैनिक।

'हिन्दू': मद्राससे प्रकाशित अंग्रेजी दैनिक।

'गांधीजीकी छत्रछायामें': घनश्यामदास बिड़ला; सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली।

'दक्षिण आफ्रिकाना सत्याग्रहनो इतिहास' (गुजराती): नवजीवन प्रकाशन मन्दिर, अहमदाबाद, १९५०।

'पाँचवें पुत्रको बापूके आशीर्वाद': काका कालेलकर, जमनालाल सेवा ट्रस्ट, वर्धा, १९५३।

'ए बंच ऑफ ओल्ड लेटर्स' (अंग्रेजी): जवाहरलाल नेहरू, एशिया पब्लिशिंग हाउस, १९५८।

'बापुना पत्रो—४: मणिबहेन पटेलने' (गुजराती): मणिबहन पटेल द्वारा सम्पादित। नवजीवन प्रकाशन मन्दिर, अहमदाबाद, १९५७।

'बापुनी प्रसादी' (गुजराती) : मथुरादास त्रिकमजी, नवजीवन प्रकाशन मन्दिर, अहमदाबाद, १९४८।

'माई डियर चाइल्ड' (अंग्रेजी) : एलिस एम० बार्न्ज द्वारा सम्पादित, नवजीवन प्रकाशन मन्दिर, अहमदाबाद, १९५६।

'मैजीशियन ऑफ मैजीशियन्स' (अंग्रेजी) : लक्ष्मीचन्द टी० रूपचन्दानी, लक्ष्मी साहित्य मन्दिर, अजमेर, १९५२।

'सत्याग्रह इन साउथ आफ्रिका' (अंग्रेजी) : वालजी गोविन्दजी देसाई द्वारा गुजरातीसे अनुवादित, नवजीवन प्रकाशन मन्दिर, अहमदाबाद, १९६१।

तारीखवार जीवन-वृत्तान्त

(२२ नवम्बर, १९२५ से १० फरवरी, १९२६ तक)

२२ नवम्बर: 'नवजीवन' में 'दक्षिण आफ्रिकाना सत्याग्रहनो इतिहास' पुस्तककी अन्तिम किस्तके रूपमें २६वाँ अध्याय प्रकाशित हुआ।

२४ नवम्बर: कुछ आश्रमवासियों द्वारा आश्रमके नियमोंका भंग होनेके प्रायश्चित्त-स्वरूप प्रार्थना सभामें सात दिनका उपवास करनेका निर्णय सूचित किया।

२६ नवम्बर: भारतीय शिष्टमण्डल दक्षिण आफ्रिकाके लिए रवाना।

१ दिसम्बर: उपवास समाप्त करनेसे पूर्व विद्यार्थियोंके समक्ष भाषण दिया। उपवासकी समाप्तिपर समाचार-पत्रोंको वक्तव्य दिया।

५ दिसम्बर: गुजरात विद्यापीठके दीक्षान्त समारोहमें भाषण दिया। आचार्य गिडवानीके चित्रका अनावरण किया।

६ दिसम्बर: धोलकाकी सार्वजनिक सभाको सन्देश दिया।

७ दिसम्बर: धोलकासे अहमदाबाद और अहमदाबादसे बम्बईके लिए रवाना।

८ दिसम्बर: गुजराती राष्ट्रीय शाला, बम्बईमें भाषण दिया।

९ दिसम्बर: वर्धाके लिए रवाना।

१० दिसम्बर: वर्धा पहुँचे और वहाँ ११ दिन रहे।

२१ दिसम्बर: वर्धामें आश्रमवासियोंके समक्ष भाषण दिया।

२२ दिसम्बर: कानपुर कांग्रेस अधिवेशनके लिए वर्धासे रवाना।

२३ दिसम्बर: कानपुर पहुँचे।

२४ दिसम्बर: कानपुरकी स्वदेशी प्रदर्शनीका उद्घाटन करते हुए भाषण दिया। विषय समितिकी बैठकमें मतदान-सम्बन्धी प्रस्तावपर भाषण दिया।

२६ दिसम्बर: कांग्रेस अधिवेशनमें दक्षिण आफ्रिकाके भारतीयोंकी स्थिति सम्बन्धी प्रस्तावपर बोले।

२९ दिसम्बर: एसोसिएटेड प्रेस ऑफ इंडियाके प्रतिनिधिसे भेंट की।

१९२६

३ जनवरी: 'नवजीवन' में सार्वजनिक जीवनसे सालभरका संन्यास लेने, आश्रममें ही विश्राम करने और उसकी देखभाल करनेका अपना निर्णय प्रकाशित किया।

७ जनवरी: 'यंग इंडिया' में "टिप्पणियाँ" के अन्तर्गत दक्षिण आफ्रिकाके भारतीयोंसे सम्बन्धित श्री एन्ड्र्यूजके कार्यों तथा बिशप फिशरकी पुस्तिकाकी सराहना की।

९ जनवरी : 'बॉम्बे क्रॉनिकल' को दिए सन्देश तथा हॉर्निमैनको भेजे पत्र द्वारा हॉर्नि-मैनके भारत आगमनका हार्दिक स्वागत किया।

१४ जनवरी : 'यंग इंडिया' में वाइकोम सत्याग्रहका अन्तिम ध्येय मन्दिर-प्रवेशके सम्बन्धमें लिखा।

१९ जनवरी : बड़ो दादा द्विजेन्द्रनाथ ठाकुरका देहावसान।

२१ जनवरी : १९१४के गांधी-स्मट्स समझौतेके बारेमें एसोसिएटेड प्रेस ऑफ इंडियाको वक्तव्य दिया।

मन्दिर-प्रवेशके सम्बन्धमें त्रावणकोर सरकारसे अपील की।

२८ जनवरी : 'यंग इंडिया' में दक्षिण आफ्रिकाके प्रश्नके सम्बन्धमें लिखा।

२ फरवरी : सत्याग्रह आश्रमके न्यासपत्रपर हस्ताक्षर किये।

१० फरवरी : 'नॉर्थ अमेरिकन न्यूज एलाएंन्स' के लिए अपने संस्मरण लिखनेकी प्रार्थना-को अस्वीकार किया।

शीर्षक-सांकेतिका

विविध

सांकेतिका : "दक्षिण आफ्रिकाके सत्याग्रहका इतिहास" की

ओ

क

ख

ग

घ

च

ज

झ

ट

ठ

ड

त

फ

ब

भ

म

य

ह

सांकेतिका : अन्य शीर्षकोंकी

प

फ

ब